भारतीयविद्या-श्रेणी—ग्रन्थः ३९

# मनुस्मृतिः

## मेधातिथि-सर्वज्ञनारायण-कुल्लूक-राघवानन्द-नन्दन-रामचन्द्र-मणिराम-गोविन्दराज-भारुचि

इति व्याख्यानवकेन समलङ्कृता

◎

## पञ्चमो विभागः

(९–१० अध्यायात्मकः)

◎

भारतशासनस्य शिक्षणविभागस्यार्थसाहाय्येन प्रकाशिता

◎

सम्पादकः

जयन्तकृष्ण हरिकृष्ण दवे

महामहोपाध्याय, विद्यावाचस्पति

एम्.ए., एल्एल्.बी., ॲड्व्होकेट (सु. को.)

इत्यनेन

भारतीयविद्याभवनस्य संमान्यनियामकेन परिष्कृता

१९८२

भारतीय विद्या भवनम्

कुलपति के. एम्. मुनशीपथः, चौपाटी

मुम्बई ४०० ००७

© सर्वाधिकाराः स्वायत्ताः
प्रथमावृत्तिः १९८२

मूल्यम् : रु. ६०

भारते मुद्रिता
वी. वरदराजन्, असोसिएटेड ॲडव्हर्टाइझर्स ॲण्ड प्रिन्टर्स
५०५ साने गुरुजी मार्ग, मुंबई ४०० ०३४

Bhāratīya Vidyā Series—Vol. No. 39

# MANU-SMRITI

**With Nine Commentaries by Medhātithi, Sarvajñanārāyaṇa, Kullūka, Rāghavānanda, Nandana, Rāmachandra, Maṇirāma, Govindarāja and Bhāruchi**

VOLUME V (Adhyāyas 9-10)

*Edited by*

JAYANTAKRISHNA HARIKRISHNA DAVE

Mahāmahopādhyāya, Vidyāvāchaspati

M.A., LL.B., ADVOCATE (SUPREME COURT)

Hon. Director, Bharatiya Vidya Bhavan

*Published with the financial assistance of the Ministry of Education, Government of India*

1982

**BHARATIYA VIDYA BHAVAN**

Kulapati K. M. Munshi Marg, Chowpatty, Bombay-400 007

© All Rights Reserved
First Edition, 1982

**Price Rs. 60**

PRINTED IN INDIA

By V. Varadarajan at Associated Advertisers & Printers, 505 Sane Guruji Marg, Bombay-400 034, and published by S. Ramakrishnan, Executive Secretary, Bharatiya Vidya Bhavan, Kulapati K. M. Munshi Marg, Bombay-400 007.

# INTRODUCTION

This is the fifth volume of Manusmṛti, with nine commentaries of Medhātithi, Sarvajñanārāyaṇa, Kullūka, Rāghavānanda, Nandana, Rāmachandra, Maṇirāma, Govindarāja and Bhāruchi.

It covers the ninth and the tenth Adhyāyas of Manusmṛti.

This project of Manusmṛti with these nine Sanskrit Commentaries is undertaken by the Bhāratīya Vidyā Bhavan with the financial assistance of the Ministry of Education, Government of India. The Editor expresses warm thanks to the Government of India for its kind and continued financial assistance.

The printing of this and the remaining volume has been delayed for various reasons like power-cuts, paper-shortage and other press problems for which the Editor apologises.

With the situation easing a bit, the remaining part of the project will soon be completed.

Bharatiya Vidya Bhavan,
Kulapati K. M. Munshi Marg,
Bombay-400 007.
January 15, 1982

Jayantakrishna Harikrishna Dave

# मनुस्मृतिः

## नवमदशमाध्याययोर्विषयानुक्रमकोशः

### नवमोऽध्यायः


| विषयः | अ. श्लो. |
|---|---|
| दम्पत्योः परस्परधर्मव्यतिक्रमे राजा धर्मव्यवस्थापनार्थं दण्डादिभिर्व्यवहरेत् .. .. | ९–१ |
| स्त्रियो भर्त्रादिभिः सुरक्षिताः कार्याः .. .. .. | ९–२ |
| कौमार्याद्यवस्थासु यथानुक्रमेण तासां संरक्षणव्यवस्था कार्या .. | ९–३–४ |
| तासामरक्षणे तूभयकुलयोस्ताः संतापं दापयेयुः .. .. | ९–५ |
| दुर्बलेनापि भर्त्रा भार्या सर्वथा रक्षितव्या .. .. | ९–६ |
| भार्याशीलरक्षणेन शिष्टसमाचारः स्वयं भर्ता वंशः धर्मश्च रक्षितो भवति | ९–७ |
| पतिः शुक्ररूपेण भार्यां प्रविश्य तस्यां पुत्ररूपेण जायते .. .. | ९–८ |
| यादृशं शास्त्रविहितमविहितं वा स्त्री पुरुषं भजते तादृशं पुत्रं सा जनयति | ९–९ |
| पित्रादयो वंशविशुद्ध्यर्थं स्त्रियो रक्षणोपायैः रक्षयितुं यतेरन् .. | ९–१० |
| स्त्रीणां रक्षणोपायनिरूपणम् .. .. | ९–११ |
| उक्तोपायप्रशंसा .. .. | ९–१२ |
| नारीणां षट् संदूषणानि .. .. | ९–१३ |
| स्त्रियः परपुरुषस्य वयोरूपादिकमप्यविचार्य पुमानित्येव तेन संयुज्यन्ते .. | ९–१४ |
| अतस्ता यत्नतो रक्षिता अपि चलचित्तत्वात्कामुकत्वेनान्यं स्पृहयन्ति .. | ९–१५ |
| धात्रा तासां स्वभावं ज्ञात्वैव रक्षणे पुरुष आदिष्टः .. .. | ९–१६ |
| मनुना स्त्रीणामेवंविधस्वभावः सर्गादौ कल्पितः .. .. | ९–१७ |
| स्त्रीणां मन्त्रैः क्रियादि नास्तीति धर्मे व्यवस्था विहिता .. .. | ९–१८ |
| स्त्रियः स्वभावत एवाशुद्धहृदया इत्यतस्तासां प्रायश्चित्तमाह .. | ९–१९ |
| मातुः स्वैरवर्तनापनोदको मन्त्रः .. .. | ९–२० |
| मातुर्व्यभिचारपापशुद्धौ मन्त्राः .. .. | ९–२१–२४ |
| अथ प्रजाधर्मनिरूपणम् .. .. | ९–२५ |
| लोकयात्राया नाम अपत्योत्पादनसंगोपनादौ स्त्रीनिबन्धनम् .. | ९–२६ |
| पतिव्रतास्त्रियः, इहपरलोकयात्रादौ व्यभिचारिण्याश्च फलनिरूपणम् .. | ९–२७–३० |
| महर्षिभिर्विश्वहितकारी पुण्यः पुत्र इति शंसनम् .. .. | ९–३१ |
| उद्वोढृ-कर्तृ-क्षेत्रिणां विषये मिथ आचार्याणां मतभेदः .. .. | ९–३२ |

| विषयः | अ. श्लो. |
|---|---|
| नारीपुरुषयोः समायोगाद्बीजसंभवः .. .. | ९–३३ |
| बीजस्य क्वचिद्वैशिष्ट्यं क्षेत्रजादिषु कुत्रचिदुभयं समं प्रशस्तम् .. | ९–३४–३५ |
| यादृशं बीजं तूप्यते तत्तज्जातीयमेव फलं जायते .. .. | ९–३६ |
| एषा भूमिर्भूतानां क्षेत्रम् .. .. | ९–३७ |
| एकस्मिन्नेव क्षेत्रे कर्षकैरुप्तानि बीजानि भिन्नरूपाणि भवन्ति .. | ९–३८ |
| बीजस्वभावस्योदाहरणम् .. .. | ९–३९–४० |
| प्राज्ञेनानुशिष्टेन परयोषिति बीजनिषेको न कर्तव्य इति परस्त्रीगमननिषेधः | ९–४१–४२ |
| परस्त्रियां सिक्तं बीजं क्षेत्रस्वामिनोऽपत्यं भवति .. .. | ९–४३ |
| कर्षकस्यैव फलं येन क्षेत्रीकृतमिति पृथिवीदृष्टान्तेन तद् विवृणोति .. | ९–४४–४५ |
| विक्रयविनिमयत्यागाभ्यां भार्यात्वं नापैति इति शास्त्रमर्यादा .. | ९–४६ |
| विभागकन्यादानानि त्रीणि सद्भिः सकृदेव दीयन्ते .. .. | ९–४७–५० |
| परक्षेत्रे बीजवप्तुः फलनिर्णयः .. .. | ९–५१ |
| बीजाद् योनिर्बलीयसीति क्षेत्रिण इत्यधिकबलं क्षेत्रमिति निर्णयः .. | ९–५२ |
| बीजार्थं यत्प्रदीयते तस्येह द्वावपि भागिनौ भवतः .. .. | ९–५३–५४ |
| जलनिषेकेन वायुना वा हृतं बीजं यस्य क्षेत्रे प्ररोहति तस्यैव तद्भवति .. | ९–५३–५४ |
| आपदि भोजनाच्छादनादिविरहे योषितां धर्मनिरूपणम् .. .. | ९–५६ |
| ज्येष्ठयवीयसोऽनापदि नियुक्तौ पातित्यम् .. .. | ९–५८ |
| सन्तानस्य परिक्षये शास्त्रविहिता नियुक्तिः .. .. | ९–५९ |
| विधवायां नियुक्तौ शास्त्रमर्यादा .. .. | ९- ६० |
| विधवानियोगार्थे निर्वृत्ते शास्त्रनिर्णयः .. .. | ९- ६१ |
| तदतिक्रमे तयोः पातित्यम् .. .. | ९–६२ |
| पूर्वविहितस्य प्रतिषेधः .. .. | ९–६३ |
| उद्वाहकर्मणि मन्त्रेषु न नियोगोक्तिः .. .. | ९–६५–६६ |
| पुरा वेने राष्ट्रं पालयति सत्यर्षे पशुधर्मः प्रवर्तितः .. .. | ९–६७ |
| वाग्दाने निर्वृत्ते पतिमरणे च संजाते विधिनिरूपणम् .. .. | ९–६९–७० |
| विधिवत् प्रतिगृह्यापि कन्यात्यागे निर्णयः .. .. | ९–७१–७३ |
| पत्युः प्रवासेऽवृत्तिकर्शितायाः स्त्रियः कार्याकार्यनिर्णयः .. .. | ९–७४ |
| धर्मकार्यादौ पतिप्रवासे शास्त्रोक्ता व्यवस्था .. .. | ९–७६–७७ |
| मत्तरोगार्तातिक्रमादौ निग्रहः .. .. | ९–७८ |
| नार्याः गृहात् रोषेण गमने व्यवस्था .. .. | ९–७९–८४ |
| कामतः प्रवृत्तानां समानासमानजातीयानां विवाहे विवाहक्रमः .. | ९–८६–८७ |
| अभिरूपाय वराय कन्यां दद्यात् .. .. | ९–८८ |
| गुणहीनाय कन्यां न प्रयच्छेत्, अपि तु ऋतुदर्शनेऽपि सा गृहे तिष्ठेत् .. | ९–८९–९० |

| विषयः | | | अ. श्लो. |
|---|---|---|---|
| अदीयमाना कन्या वर्षत्रयात्परं स्वयमधिगच्छेद्वरम् | .. | .. | ९–९१ |
| स्वयंवरया अलंकारग्रहणं निषिद्धम् | .. | .. | ९–९२ |
| ऋतुप्राप्तायाः कन्यायाः पिता शुल्कं न गृह्णीयात् | .. | .. | ९–९३ |
| वरकन्ययोरुद्वाहे वयोमर्यादा | .. | .. | ९–९४–९५ |
| सन्तानार्थं परिणयः | .. | .. | ९–९६ |
| दुहितरं ददन् शुल्कं न गृह्णीयात् इति प्रतिषेधः | .. | .. | ९–९७–९८ |
| गृहीते शुल्के कन्यामन्यं वरं ददतो निषेधः | .. | .. | ९–९९ |
| कल्पान्तरेष्वपि शुल्कग्रहणं न श्रुतम् | .. | .. | ९–१०० |
| आमरणान्तिकोऽन्योन्याव्यभिचारः प्रकृष्टो धर्मः | .. | .. | ९–१०१–१०२ |
| अथ दायधर्मविभागप्रस्तावः | .. | .. | ९–१०३ |
| दायधर्मविभागे भ्रातरः पैतृकं रिक्थं समं भजेरन् | .. | .. | ९–१०४ |
| ज्येष्ठ एव धर्मजः पुत्रः, इतरे कामजास्ततो ज्येष्ठं ते तूपजीवेयुः | .. | .. | ९–१०५–७ |
| अतः स यवीयस्त्वात् पितेवेतरान् पालयेत् | .. | .. | ९–१०८ |
| ज्येष्ठस्य महतीवर्णनं, ते सह वसेयुर्धर्मकाम्यया पृथक् | .. | .. | ९–१०९–१११ |
| ज्येष्ठस्य सर्वद्रव्याद् वंश उद्धारः, मध्यमादीनां चाप्युद्धारनिर्णयः | .. | .. | ९–११२–११४ |
| पृथक्कृत उद्धारसमांशकल्पनाव्यवस्था | .. | .. | ९–११६–११७ |
| भ्रातरोऽनूढाभ्यः कन्याभ्यः स्वादंशाच्चतुर्थभागं दद्युः | .. | .. | ९–११८ |
| प्रथमोढा-पश्चादूढयोर्जातानां विभागविषयो निर्णयः | .. | .. | ९–११९–१२३ |
| यमयोर्जन्मनो ज्यैष्ठ्यम् | .. | .. | ९–१२६ |
| अपुत्रो वंशवृद्ध्यर्थं पुत्रिका सुतामनेन विधानेन कुर्यात् | .. | .. | ९–१२७–१२९ |
| पुत्रेण दुहिता समा | .. | .. | ९–१३० |
| अपुत्रस्याखिलं धनं दौहित्र एव हरेत् | .. | .. | ९–१३१–१३२ |
| पुत्रिकायां कृतायां यदि पुत्रोऽनुजायेत तत्र व्यवस्था | .. | .. | ९–१३४ |
| अपुत्रापुत्रिकामरणे धनं तस्या भर्तुरेव | .. | .. | ९–१३५ |
| पुत्रो नरकात् त्रायते इत्यत एवेति तथा व्यपदेशः | .. | .. | ९–१३८ |
| दौहित्रोऽपि पौत्रवत् संस्मरयति, अन्ये न विशेषः | .. | .. | ९-१३९–१४० |
| दत्रिमपुत्रोऽन्यगोत्रसंप्राप्तोऽपि रिक्थहर एव | .. | .. | ९–१४१ |
| गोत्ररिक्थे जनयितुर्दत्रिमो न हरेत् | .. | .. | ९–१४२ |
| अनियुक्तासुतो देवरादाप्तश्च भागं नार्हतः | .. | .. | ९–१४३ |
| नियुक्तायां जात औरसवत् भागहरः | .. | .. | ९–१४५ |
| नियुक्तानियुक्तापत्यभागनिर्णयः | .. | .. | ९–१४६–१४९ |
| पितृधृतांगुलीयकादिविभागव्यवस्था | .. | .. | ९–१५० |
| विभागव्यवस्था धर्म्या विधिं चानुसृत्य कुर्यात् | .. | .. | ९–१५१–१५२ |

| विषयः | अ. श्लो. |
|---|---|
| द्विजातीनां शूद्रापुत्रो न रिक्थभाग्भवति | ९–१५५ |
| औरसक्षेत्रजानां निरुक्तिः | ९–१५८–६० |
| औरस एक एव पैतृकस्य धनस्य प्रभुः | ९–१६३–६५ |
| औरसपुत्रस्य निरुक्तिः | ९–१६७ |
| कृत्रिमपुत्रस्य निरुक्तिः | ९–१६९ |
| अविज्ञातबीजिनो निरुक्तिः | ९–१७० |
| पुत्रबुद्धचा परिगृहीतः स अपविद्धः | ९–१७१ |
| कानीनस्य निरुक्तिः | ९–१७२ |
| सहोढादीनां निरुक्तिः | ९–१७३–१७८ |
| दास-दासीपुत्रादीनां पुत्रांशभाक्त्वम् | ९–१७९ |
| अन्यबीजजातास्तस्यैव ते नेतरस्य | ९–१८० |
| एकपुत्रपुत्रिकादीनामंशव्यवस्था | ९–१८२–२०२ |
| क्लीबादिसंप्रयोगेच्छायां विवाहेऽपत्यदायार्हत्वम् | ९–२०३ |
| पितरि प्रेतेऽधिकोत्पत्ति जनयेत् तत्समेषां साधारणम् | ९–२०४–६ |
| सह वसन्नेको कृष्यादिनाऽन्यैः सह न व्यवहरेत् स निर्भाज्यः | ९–२०७ |
| व्यतिरिक्तकृष्यादिधनस्यादातव्यता | ९–२०८ |
| विभागकाले यस्यकस्यापि समापतिते मरणादौ निर्णयः | ९–२११–१२ |
| लोभाज्ज्येष्ठो यवीयसो विनिकुर्वीत चेत् स राज्ञा नियंतव्यः | ९–२१३ |
| प्रतिषिद्धाचरणानां विभागव्यवस्था | ९–२१४ |
| अविभक्तभ्रातृणां सहोत्थाने पितुर्विभागव्यवस्था | ९–२१५ |
| अनपत्यस्य पुत्रस्य माताया दायावाप्तिः | ९–२१७ |
| विभागात्पश्चान्न्यूनाधिकांशज्ञाने व्यवस्था | ९–२१८–१९ |
| द्यूतसमाह्वयौ राज्ञाभिवारणीयौ | ९–२२१–२८ |
| अर्थिप्रत्यर्थिकार्येषु नियुक्ताश्चेद्धनादि गृहीत्वा कार्यनाशकरणे निर्णयः | ९–२३१ |
| राज्ञानादिष्टे राजकृतमिति वदन्ति तेषां शासनम् | ९–२३२ |
| अमात्यप्राड्विवाकादिभिरन्यथा कार्यकरणे राज्ञः कर्तव्यम् | ९–२३४ |
| महापातकिनां दण्डः | ९–२३५ |
| प्रायश्चित्ताकरणे शारीरं धनसंयुक्तं दण्डकरणम् | ९–२३६ |
| सुरापानादौ दण्डः | ९–२३७ |
| ते दण्डिता ज्ञातिजनैस्त्यक्तव्याः | ९–२३८–३९ |
| महापातकिनो दण्डो राज्ञा वरुणाय विप्राय वोपपादयेत् | ९–२४१–४५ |
| ब्राह्मणान्बाधमाना दण्डचाः तत्फलं च | ९–२४९ |
| इति विवदमानयोर्व्यवहारनिर्णयः | ९–२५० |

| विषयः | अ. श्लो. |
|---|---|
| एवं धर्म्याणि कार्याणि कुर्वन् देशान्परिपालयेत् .. .. | ९–२५१ |
| कृतदेशनिवेशो राजा कण्टकोद्धारं कुर्यात् .. .. | ९–२५२–५५ |
| तस्करांश्चारचक्षू राजा प्रोत्साद्य वशीकुर्यात् .. .. | ९–२५६–६१ |
| तेषां दोषानभिख्याप्य तान्शासयेत् .. .. | ९–२६२–२९३ |
| सप्ताङ्गराज्यस्य निरूपणम् .. .. | ९–२९४ |
| राज्ञारंभपरेण भवितव्यम् .. .. | ९–३०० |
| एवं स्वराष्ट्रं कामैः पूरयेत् .. .. | ९–३०३ |
| इन्द्रार्कव्रतादिनिरूपणम् .. .. | ९–३०४ |
| तान्याचरन् राजा सर्वसमृद्धो भवति .. .. | ९–३१५ |
| विद्वानविद्वांश्चापि ब्राह्मणो महद् दैवतम् .. .. | ९–३२३ |
| तान् धनेन संपूज्य पुत्रे राज्यं समासादयेत् .. .. | ९–३२४ |
| एवं चरन् राजा लोकहिते भृत्यान्नियोजयेत् .. .. | ९–३२५ |
| राजधर्मनिरूपणात्परं वैश्यशूद्रकर्मविधिनिरूपणम् .. .. | ९–३२६–३३६ |


इति मनुस्मृतिनवमाध्यायविषयानुक्रमकोशः ।।

—: ० :—

## दशमोऽध्यायः


| | |
|---|---|
| त्रैवर्णिकानां स्वाध्यायविधिनिरूपणम् .. .. | १०–१ |
| शूद्रादिभ्यो वृत्तिधर्मोपदेशो विहितः .. .. | १०–२ |
| प्रकृतिश्रैष्ठ्यान्नियमधारणादिभिश्च वर्णानां ब्राह्मणः शासिता .. | १०–३ |
| ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यास्त्रयो द्विजातयः, शूद्रो नहीति स्फुटं निर्देशः .. | १०–४ |
| समानजातीयासूढासु जाता एव जात्या इति ज्ञेयाः .. .. | १०–५ |
| मातृत उत्कृष्टाः पितृतो निकृष्टाः सदृशा इति प्रोच्यन्ते .. .. | १०–६–७ |
| अम्बष्ठ-निषाद-पारशवलक्षणनिरूपणम् .. .. | १०–८ |
| उग्रस्य लक्षणम् .. .. | १०–९ |
| षण्णामपसदानां लक्षणम् .. .. | १०–१० |
| सूत–मागध–वैदेहानां लक्षणनिरुक्तिः .. .. | १०–११–१२ |
| अम्बष्ठोग्र-क्षत्तृवैदेहकानामानुलोम्यप्रातिलोम्यतः प्रतिपादनम् .. | १०–१३–१४ |
| आवृत–धिग्वणनिरूपणम् .. .. | १०–१५ |
| आयोगव-क्षत्तृ-चण्डालापसदानां विशदतया निरूपणम् .. .. | १०–१६ |
| मागधवैदेह–सूतादीनां निरूपणम् .. .. | १०–१७ |
| पुल्कस–कुक्कुटयोर्निरूपणम् .. .. | १०–१८ |
| श्वपाक–वेणयोर्निरुक्तिः .. .. | १०–१९ |

| विषयः | | | अ. श्लो. |
|---|---|---|---|
| व्रात्यनिरूपणम् | .. | .. | १०–२० |
| व्रात्याद् भृज्जकण्टकः आवन्त्यवाटधान-पुष्पध-शैखादीनां निरूपणम् | | .. | १०–२१ |
| भल्ल–मल्ल–निच्छवि–नटादीनां समुत्पत्तिः | .. | .. | १०–२२–२३ |
| व्यभिचारेण वर्णानां सङ्करा जायन्ते | .. | .. | १०–२४ |
| प्रतिलोमानुलोमान्योन्यव्यतिषक्तनिरूपणप्रस्तावः | .. | .. | १०–२५–२६ |
| सूतादिप्रतिलोमाः सजातीयाञ्जनयन्ति | .. | .. | १०–२७–३१ |
| तेषां जीवनसाधनादिनिरूपणम् | .. | .. | १०–३२–४९ |
| तेषां निवासस्थान–पात्रशुद्धचादि | .. | .. | १०–५०–५१ |
| विवाहश्च तेषां सदृशैः सह | .. | .. | १०–५३–५४ |
| दस्यूनां जीविकासाधनं कार्याकार्यादि | .. | .. | १०–५५–५८ |
| जारजातानां स्वभावात्परिचयः | .. | .. | १०–५८ |
| पित्र्यं मातुर्वा शीलं भजते, न स्वं गोपयितुं शक्नोति | .. | .. | १०–५९–६० |
| एते वर्णसंकरा राष्ट्रनाशहेतुकत्वाद्राज्ञा वर्जनीयाः | .. | .. | १०–६१–६२ |
| सर्वमनुष्यभेदजातेः सामासिको धर्मः | .. | .. | १०–६३ |
| ब्राह्मणाच्छूद्रायां जातस्य सप्तमाज्जन्मतो विशेषः | .. | .. | १०–६४ |
| शूद्रस्य ब्राह्मणता तथाभावे ब्राह्मणस्य च शूद्रत्वम् | .. | .. | १०–६५ |
| क्वचिद्बीजं क्वचिद्योनिरिति हीनोत्कृष्टत्वे निर्णयः | .. | .. | १०–६६–६८ |
| स्वजातिनिहितं स्वजातावपि संस्कारमर्हति | .. | .. | १०–६९ |
| बीजप्राधान्यवादिनामभिमतम् | .. | .. | १०–७०–७२ |
| मनुस्तु आर्यकर्माणमनार्यं समासममाह | .. | .. | १०–७३ |
| ब्रह्मयोनिस्थब्राह्मणानां षट्कर्मानुष्ठानम् | .. | .. | १०–७४ |
| अध्यापनाध्ययनादि–षट्कर्मणां निरूपणम् | .. | .. | १०–७५ |
| षट्सु कर्मसु ब्राह्मणस्यैव त्रिकं जीविकासाधनम् | .. | .. | १०–७६–७८ |
| क्षत्रवैश्ययोर्जीविकाकर्माह मनुः | .. | .. | १०–७९ |
| ब्राह्मणक्षत्रियविशां श्रेयस्करं जीवनकर्म | .. | .. | १०–८०–८२ |
| तत्र ब्राह्मणक्षत्रिययोः कृषिप्रतिषेधः | .. | .. | १०–८३–८४ |
| आपदि वाणिज्यया धनवृद्धिं कुर्यात् | .. | .. | १०–८५ |
| अविक्रेयद्रव्यनिरूपणम् | .. | .. | १०–८६–९० |
| निषिद्धद्रव्यविक्रयप्रतिषेधः | .. | .. | १०–९१–९४ |
| अधमो जात्योत्कृष्टकर्मभिर्न जीवेत् | .. | .. | १०–९५ |
| एवंविधं राजा दण्डयेत् | .. | .. | १०–९६ |
| स्वधर्म एव श्रेयान्परधर्मानुष्ठानादिति प्रतिपादनम् | .. | .. | १०–९७–९८ |
| विहितवृत्तिशक्त्यभावे व्यवस्था | .. | .. | १०–९९–१०० |

| विषयः | | | अ. श्लो. |
|---|---|---|---|
| ब्राह्मणस्य विहितकर्माशक्तौ आपत्सु व्यवस्था | .. | .. | १०-१०१-१०४ |
| धर्माधर्मविचक्षणैः पूर्वं कृतान्युदाहरणानि | .. | .. | १०-१०५-१०८ |
| गर्हितप्रतिग्रहो निषिद्धः | .. | .. | १०-१०९ |
| आतनापि ब्राह्मणेन शूद्रयाजनाध्यापने न करणीये | .. | .. | १०-११० |
| याजनाध्यापनप्रतिग्रहाणां दोषापहोपायाः | .. | .. | १०-१११ |
| दुष्टप्रतिग्रहाच्छिलोञ्छवृत्तिः प्रशस्ता | .. | .. | १०-११२ |
| कुटुम्बावसादप्राप्तौ राजा याच्यस्त्यागो वा विषयात्कार्यः | | .. | १०-११३ |
| सप्तवित्तागमानां धर्म्यत्वम् | .. | .. | १०-११५ |
| आपत्तौ दश जीवनहेतवः | .. | .. | १०-११६ |
| ब्राह्मणक्षत्रियाणामापदि वृत्तिः | .. | .. | १०-११७-११९ |
| आपत्प्रसक्तौ शूद्रस्य जीविकाविधिनिषेधौ | .. | .. | १०-१२०-१२३ |
| आपदि शूद्रस्य यथाशक्ति ब्राह्मणेन पालनम् | .. | .. | १०-१२४-१२८ |
| शक्तेन शूद्रेण धनसञ्चयो न कार्यः | .. | .. | १०-१२९ |
| इति चतुर्वर्णानामापद्धर्मोपसंहारः | .. | .. | १०-१३०-१३१ |


॥ इति नवमदशमाध्यायविषयानुक्रमकोशः ॥

# नवमोऽध्यायः ९



**पुरुषस्य स्त्रियाश्चैव धर्म्ये वर्त्मनि तिष्ठतोः ।।**
**संयोगे विप्रयोगे च धर्मान्वक्ष्यामि शाश्वतान् ।। १।।**

(१) **मेधातिथिः** । स्त्रीसंग्रहणानंतरं विवादपदनिर्देशः "स्त्रीपुंधर्मो विभागश्चेति" । (८।७)तदिदानीमुच्यते अत्यन्त +++++++++++++++++द्युपसृष्टेन भर्त्रा कथंचिदपि बाध्यमानया तेन सह राजनि विवदितव्यमिति +++++++++++++ ++++++++++++ विध एव न्यायानुवर्तिनि न द्वेषमत्सरादिमति भार्यायां तथा च विशील ++++++++++++++++++++++++++++ ति तथाविधस्य पत्युरुपचर्योक्ता । न भार्यां प्रति प्रभुत्वम् । उपचारश्च भृत्याच्छुश्रूषा पाद-संवाहनादि ++++++++++++++ स्त्रीपुरुषशब्दौ च यद्यपि लिङ्गविशेषाव-च्छिन्नमनुष्यजातिवचनौ तथापीह सम्बन्धिनि जायापत्या ++++++++++++ "अस्वतन्त्राः स्त्रियः कार्याः पुरुषैः स्वैर्दिवानिशमिति" (९।२) स्वग्रहणेन संबन्धितां लक्षयति । वर्तमानप्रतिज्ञावचन + प्रयोजन++++++++++भर्तुः **स्त्रियाश्च** जायायाः **संयोग** एकत्र संनिधाने तथा **विप्रयोगे** प्रवासप्रयाणे ++++++धर्मे या वृत्तिः प्रसाधनं शरीररक्षा हि ++++++++++++++++++++++++ ++++++++++++++++ **तान्वक्ष्यामि** । **शाश्वत**ग्रहणं स्तुतिः । **धर्म्ये वर्त्मनि तिष्ठतोः**–अनुवादोऽयम् । न्याय्यो धर्मशास्त्राचारनिरूढो मार्गः ।। १ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । क्रमप्राप्तं स्त्रीपुंधर्ममवतारयति **पुरुषस्येति** । संयोगे गार्हस्थ्य-काले । विप्रयोगे पतिप्रवासवैधव्यादौ ।

(३) **कुल्लूकः** । पुरुषस्य पत्न्याश्च धर्माय हि तेऽन्योन्याऽव्यभिचारिलक्षणे वर्त्मनि वर्तमानयोः संयुक्तवियुक्तयोश्च धर्मान्पारम्पर्यागतत्वेन नित्यान्**वक्ष्यामि** । दंपत्योः परस्पर-धर्मव्यतिक्रमे सत्यन्यतरज्ञाने दण्डेनापि स्वधर्मव्यवस्थानं राज्ञा कर्तव्यमिति व्यवहारमध्ये-ऽस्योपदेशः ।। १ ।।

(४) **राघवानन्दः** । स्त्रीपुंसोर्धर्मं प्रतिजानीते **पुरुषस्येति** । 'स्त्रीपुंधर्मो विभागश्च द्यूत-माह्वयमेव **च**' **इति** । व्यवहारमध्यपातित्वाद्राजकृत्येन संगतिरस्याध्यायस्य । **धर्म्ये** धर्मजनके धर्मादनपेते वा **वर्त्मनि** धर्मोपाये । **संयोगे** स्वदेशस्थयोः । विप्रयोगे देशान्तरस्थयोः मृतौ वा । शाश्वतान् वेदोक्तान् ।। १ ।।

(५) **नन्दनः** । अथ स्त्रीपुंधर्मं प्रस्तौति **पुरुषस्येति** । धर्मे(र्म्ये)ऽन्योन्यव्यभिचार-रहिते ।। १ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । धर्म्ये वर्त्मनि तिष्ठतोः दम्पत्योः ।। १ ।।

(७) **मणिरामः**। धर्म्ये वर्त्मनि अन्योन्याऽव्यभिचारिलक्षणे वर्त्मनि। तिष्ठतोः वर्तमानयोः। धर्मान् शाश्वतान् पारंपर्यागतत्वेन नित्यान् ॥ १ ॥

(८) **गोविंदराजः**। ॐशिवाय नमः। **पुरुषस्येति**। स्त्रीपुंसयोर्दम्पत्योरन्योन्याव्यभिचारलक्षणे मार्गे वर्तमानयोः संयुक्तयोर्वियुक्तयोश्च नित्यान् धर्मान् वक्ष्यामि। जायापत्योरितरेतरविप्रतिपत्तौ कथञ्चित् राजनिवेदने सत्यनया व्यवस्थया राज्ञा दण्डादिनापि मार्गस्थापनं करणीयम्। अकरणाद्राज्ञो दोषः। इत्येतदर्थं व्यवहारमध्ये राजधर्मेषु स्त्रीपुंसयोः धर्मा उच्यन्ते ॥ १ ॥

(९) **भारुचिः**। धर्म्ये वर्त्मनीत्यन्योन्याव्यभिचारलक्षणे तिष्ठतोर्दम्पत्योः संयोगे जीवति पत्यौ सन्निहिते वा विप्रयोगे च मृते प्रोषिते वा तयोर्धर्मान् वक्ष्यामि नियोगवृत्तिनियमादीन्। शाश्वतग्रहणं चानयोरनुष्ठानस्तुत्यर्थम्। इदं तावत् प्राक्प्रसिद्धमेव यथा ॥ १ ॥

**अस्वतन्त्राः स्त्रियः कार्याः पुरुषैः स्वैर्दिवानिशम् ॥**
**विषयेषु च सज्जन्त्यः संस्थाप्या आत्मनो वशे ॥ २ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। स्वेच्छया स्त्रीणां धर्मार्थकामेषु व्यवहर्तुं न देयम्। यत्किंचन धनं धर्मादौ विनियुज्यते तत्र यथावयः स्वपुरुषाः पत्यादयोऽनुज्ञापनीयाः। 'स्वपुरुषाः' रक्षाधिगताः "पिता रक्षति" (९।३)त्यादिनिर्दिष्टाः। **विषयेषु** हि गीतादिषु सज्जन्त्यः प्रसङ्गं कुर्वन्त्य **आत्मनो वशे स्थाप्याः** ततो निवारणीयाः। यद्यप्यस्वतन्त्रा इत्यनेनैव सर्वक्रियाविषया स्वातन्त्र्यनिवृत्तिरुपदिष्टा भवति तथापि पुनर्विषयव्यावृत्तिवचनं यत्नतः परिहारार्थम्। मा विज्ञायि यत्तेभ्य एव परपुरुषसंपर्कादिभ्यो निवारणीयाः, गृहावस्थितास्तु मद्यपानादिसक्ता न दुष्यन्ति।

**च**शब्देन तावदयं धर्मः पुरुषाणामुक्तः—स्वातन्त्र्यं स्त्रीणां तावन्न देयम्, अर्थात्तु ताभिरपि स्वतन्त्राभिर्न भवितव्यमित्युक्तं भवति। एवं च "पुरुषस्य स्त्रियाश्चैवेति" (९।१) चशब्द इतरेतरविषययोर्ये स्त्रीपुंसयोर्धर्मास्त एवोच्यन्ते, न तु यागादय इति समन्वयो भवति ॥ २ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। पुरुषैः पतिभिः। विषयेषु गीतादिषु। आत्मनो वशे स्थाप्याः यथा न सज्जन्ते ॥ २ ॥

(३) **कुल्लूकः**। स्वीयैर्भर्त्रादिभिः सदा स्त्रियः स्वाधीनाः कार्याः। अनिषिद्धेष्वपि रूपरसादिविषयेषु प्रसक्ता अप्यात्मवशाः कार्याः ॥ २ ॥

(४) **राघवानन्दः**। तत्रादौ स्त्रियाः स्वातन्त्र्यं निषेधति **अस्वतन्त्रा** इति पंचभिः। पितृभ्रातृपुत्रादिभिः विषयेषु पुरुषान्तरस्पर्शसंभोगशब्दादिषु रसायनादिषु च संस्थया (?) वशे कृत्वा दिवा गृह्यकृत्येषु, रात्रौ तु स्वनिकटे शयनादौ ॥ २ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। स्वैः पुरुषैः दिवानिशं अस्वतन्त्राः स्त्रियः कार्याः। पुनः विषयेषु नृत्यगीतादिषु सज्जन्त्यः आसक्तिं कुर्वन्त्यः स्त्रिय आत्मनो वशे च हि संस्थाप्याः ॥ २ ॥

(७) **मणिरामः**। स्वीयैः भर्त्रादिभिः। विषयेषु च रसायनादिविषयेषु। सज्जन्यः प्रसक्ता अपि आत्मवशाः कार्याः॥ २ – ३॥

(८) **गोविंदराजः**। **अस्वतंत्रा इति**। भर्त्रादिभिः स्त्रियः सर्वदा परतंत्राः कार्याश्च, निषिद्धेऽपि च शब्दादिषु विषयेष्वतिसक्तिं भजमानास्ततोऽपास्यात्मवर्तिन्यः कार्याः॥ २॥

(९) **भारुचिः**। नन्वासामस्वातन्त्र्यं स्त्रीधर्मे निर्दिष्टमेव पञ्चमेऽध्याये। सत्यं, स्त्रीधर्मा एव ते। इमे तु वक्ष्यमाणाः स्त्रीपुंसयोः। तथा च सति प्रतिज्ञेयं पुरुषस्य स्त्रि(या)श्चैवे'ति शास्त्रानुक्रमण्याञ्चैवमेवोक्तं 'साक्षिप्रश्नविधानं च धर्मः स्त्रीपुंसयोस्तथे'ति। पुनश्च व्यवहारानुक्रमण्यामष्टमेऽध्याये समस्तयोरेव निर्देशः 'स्त्रीपुंधर्मो विभागश्चे'ति (८।७)। अथवा उत्तरार्थमेतत् स्यात्। एवं च सति यदुक्तमासां स्त्रीधर्मेषु पारतन्त्र्यं तत् कुतः स्यादिति॥ २॥

**पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने॥**
**रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति॥ ३॥**

(१) **मेधातिथिः**। 'रक्षा' नामानर्थप्रतीघातः। अनर्थस्त्वनाचारवृत्तातिक्रमेणाप्रवृत्तिपरेण चान्यायतो धनहरणादिना परिभवः। तस्य प्रतीघातो निवारणम्। तत्स्त्रीभिः कर्तव्यम्। **रक्षतीति** भवन्तिर्लिङर्थे छान्दसत्वात्। ततो रक्षेदिति विधेयप्रत्ययः। वयोविभागश्रवणं चाधिकतरदोषार्थम्। सर्व एव तु सर्वदा रक्षार्थमधिक्रियन्ते। **कौमारग्रहणं** दानात्पूर्वकालोपलक्षणार्थम्। एवं **यौवनं** जीवद्भर्तृकायाः प्रदर्शनम्। अतश्च नित्यानुवाद एवायम्। यदा यदा यदधीना तदा तदा तेनावश्यं रक्षितव्या। तथा च जीवत्यपि भर्तरि पितुः पुत्रस्य चाधिकारः। तथा दर्शितं मानवे। सर्व एते सर्वदा तत्संरक्षणं कुर्युः। वक्ष्यमाणं तु ग्रन्थगौरवं करोति।

"ननु च 'बालया वा युवत्या वे'(५।१४७)त्यनेनोक्तमेवैतत्"। **मैवम्**, अन्यदेवास्वातन्त्र्यमन्या च रक्षा। तत्र चास्वातन्त्र्यमुपदिष्टम्, इह तु रक्षोच्यते। (तेन च सर्वक्रियाविषयम्।) अन्यतन्त्राया अपि शक्योऽनर्थः प्रतिहन्तुम्।

"ननु चेहापि पठ्यते 'न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हतीति'।" उच्यते। नानेन सर्वक्रियाविषयमस्वातन्त्र्यं विधीयते, किं तर्हि? नास्वतन्त्राऽन्यमनस्का स्वात्मसंरक्षणाय प्रभवति शक्तिविकलत्वात्स्वतः। पञ्चमे तु वचनमस्वातन्त्र्यार्थमर्थान्तरस्य तत्रोक्तत्वात्॥ ३॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। पिता रक्षति कन्यादूषणादेः॥ ३॥

(३) **कुल्लूकः**। पिता विवाहात्पूर्वं स्त्रियं रक्षेत्, पश्चाद्भर्ता, तदभावे पुत्राः। तस्मान्न स्त्री कस्यांचिदप्यवस्थायां स्वातन्त्र्यं भजेत्। 'भर्ता रक्षति यौवने' इत्यादिप्रायिकम्, अभर्तृपुत्रायाः पित्रादिभिरपि रक्षणात्॥ ३॥

(४) **राघवानन्दः**। रक्षितृव्यवस्थितिमाह **पितेति**। स्वातन्त्र्यं रक्षितृरहितत्वम्॥ ३॥

(५) **नन्दनः**। रक्षति रक्षेत् स्थविरे वार्धके ।। ३ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **पितेति**। प्राग्विवाहात् पिता स्त्रियं रक्षति। तदनु भर्ता, तदभावे पुत्राः, अत एभिर्न कदाचित्स्वतंत्राः कार्याः। भर्तृपुत्रयौवनवार्धक्यग्रहणं व्यवस्थार्थमपि त्वौचित्यात्प्राप्तानुवादोऽयम् ।। ३ ।।

(९) **भारुचिः**। यत इदं तत्सम्बन्धेनोच्यते **पितेति**। एवं च सति राजनि भर्तर्येवाऽऽसामस्वातन्त्र्यम्। किं तर्हि ? यथा वयं पित्रादिषु तत्संरक्षणपरेण च वाक्येन पित्रादयो वयोविभागाश्रयेण दुहित्रादिस्त्रीणां रक्षितारो नियम्यन्ते, एवं च सति सर्वदा सर्वेषां तद्रक्षणोपदेशोऽयं सामर्थ्याद्विज्ञेयः। सर्वत्र लङ् द्रष्टव्यः। विध्यथ(?) रक्षेदित्येवं छान्दसत्वाद्विशेषात् स्मृते युक्ति तल्लक्षणमत्र ।। ३ ।।

**कालेऽदाता पिता वाच्यो वाच्यश्चानुपयन्पतिः ।।**
**मृते भर्तरि पुत्रस्तु वाच्यो मातुररक्षिता ।। ४ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। दानकाले प्राप्ते यदि पिता न ददाति + + + + यः। कः पुनः कन्याया दानकालः ? 'अष्टमाद्वर्षात्प्रभृति प्रागृतोरिति' स्मर्यते। इहापि लिङ्गमस्ति + + + + + + + + + + + + + + + + तिः। अनुपयन्नगच्छन्नरमयन्भार्याभिर्निघ्नः। उपगमने कालश्च ऋतुः सद्व्रतस्य पर्ववर्ज्यमित्युक्तः ।। ४ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अदाता योग्याय। अनुपयन् वाग्दत्तामपि परिणयनेनासंस्तुवन्। वाच्यो गर्ह्यः। उच्य इति पाठे देहीत्यादि राज्ञा नियोज्यः ।। ४ ।।

(३) **कुल्लूकः**। प्रदानकाले पिता तामददन्गर्ह्यो भवति 'प्रदानं प्रागृतो'रिति (गौ.१८।३) **गौतम**वचनात् ऋतोः प्राक्प्रदानकालः। पतिश्च ऋतुकाले पत्नीमगच्छन्गर्हणीयो भवति। पत्यौ मृते मातरमरक्षन्पुत्रो निन्द्यः स्यात् ।। ४ ।।

(४) **राघवानन्दः**। रक्षितॄणां तदकरणे गर्ह्यतामाह **काल इति**। अदातेति च्छेदः। वाच्यः गर्हणीयः। अनुपयन्नृतावृतावगच्छन्। अरक्षिता रक्षणं प्रत्यकर्ता ।। ४ ।।

(५) **नन्दनः**। अदातेति पदच्छेदः। याप्यः कुत्सितो दण्डय इति यावत्। अनुपयन्नृतुकालेऽनुपगच्छन् ।। ४ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। काले दशवर्षाभ्यन्तरेऽदाता पिता वाच्यः निन्द्यः। च पुनः पतिः अनुपयन् स्त्रियम् अगच्छन् वाच्यो निन्द्यः। मृते भर्तरि मातुररक्षिता पुत्रो वाच्यो निन्द्यः ।।४।।

(७) **मणिरामः**। काले प्रदानकाले। अदाता चेन्न ददाति तदा पिता वाच्यः निंद्यो भवति। अनुपयन् ऋतुकाले अगच्छन् ।। ४ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **काल इति**। "प्रदानं प्रागृतो"रिति **गौतम**स्मरणात्; अस्मिन् काले पिता कन्यामददन् गर्ह्यः, ऋतुकालेऽगच्छन् भर्ता निन्द्यः। पतौ पुनर्मृते मातरमरक्षन् पुत्रो गर्हणीयः ।। ४ ।।

(९) **भारुचिः**। सर्वदा तत्संरक्षणमकुर्वन्तः कन्यादानादि च यथासम्भवं याप्याः वचनीयाः स्युः ॥ ४ ॥

**सूक्ष्मेभ्योऽपि प्रसङ्गेभ्यः स्त्रियो रक्ष्या विशेषतः ॥**
**द्वयोर्हि कुलयोः शोकमावहेयुररक्षिताः ॥ ५ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **प्रसङ्गः** कुसंपर्कः। यया कदाचिदविज्ञातशीलया + + + + + ण बालेन वा गृहद्वारावस्थानादिनोज्ज्वलवेषपुरुषदर्शनशीलयेत्येवमादय उच्यन्ते। अर्थाच्चित्तचलने + + + + + + + क्ष्यत्वं चैषाम्। नैते किल साक्षाद्दोषरूपाः। न हि साक्षात्स्त्रीसंपर्कः स्त्रियो दोषरूपाः + + + + + + + + + + सूक्ष्मादित्युच्यते। ततो **रक्ष्याः** निवारणीयाः। **विशेषतः** प्रयत्नेन निवारणे दारदः + + + + + + + + + + + + + + + + + + + तश्च। सर्वैस्तत्कुलीनैर्भ्रातृपितृव्यदेवराद्यै रक्षितव्या इति सिद्धं भवति। न तत्रा + + + + + + + + + + + + + + ॥ ५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। प्रसंगेभ्यः परपुरुषभाषणादिभ्यः ॥ ५ ॥

(३) **कुल्लूकः**। स्वल्पेभ्योऽपि दुःसङ्गेभ्यो दौःशील्यसंपादकेभ्यो विशेषेण स्त्रियो रक्षणीयाः किं पुनर्महद्भ्यः। यस्मादुरक्षितरक्षणाद् द्वयोः पितृभर्तृगणयोः संतापं दापयेयुः ॥ ५ ॥

(४) **राघवानन्दः**। इतोऽपि स्त्रियो रक्ष्या इत्याह **सूक्ष्मेभ्य** इति। प्रसंगेभ्यः दौःशील्यसंपादकेभ्यो नृत्तगीतपरगृहयानादिभ्यः। कुलयोः पतिपितृसंबन्धिनोः। शोकं जारादिदोषेण ॥ ५ ॥

(५) **नन्दनः**। सूक्ष्मेभ्योऽपि शुश्रूषादिभ्योऽपि ॥ ५ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। प्रसंगेभ्यः दुःसंगेभ्यः ॥ ५ ॥

(७) **मणिरामः**। प्रसंगेभ्यः दुःसंगेभ्यः ॥ ५ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **सूक्ष्मेभ्य इति**। अल्पेभ्योऽपि दुःसम्पर्केभ्यो दुःशीलत्वसम्पादिभ्योऽतिशयेन रक्षणीयाः। किमुत महद्भ्यो यस्मादरक्षिता सद्योऽभिचारोत्पत्त्या पितृभर्तृकुलयोर्द्वयोरपि सन्तापं कुर्युः ॥ ५ ॥

(९) **भारुचिः**। यतस्तद्दोषपरिहारार्थमेभिः। **सूक्ष्मेति**। सूक्ष्मप्रसङ्गाच्चासां व्यभिचारहेतवो लोके प्रसिद्धाः। परिव्राजिकादिसंसर्गाख्याः अननुशिष्टा अपि ॥ ५ ॥

**इमं हि सर्ववर्णानां पश्यन्तो धर्ममुत्तमम् ॥**
**यतन्ते रक्षितुं भार्यां भर्तारो दुर्बला अपि ॥ ६ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। चातुर्वर्ण्यस्य एष उत्तमो + + + + + + + + + + **पश्यन्तो** जानानाः **दुर्बला अपि भर्तारो भार्यां रक्षितुं** यतेरन्प्रयत्नं कुर्युः। लिङर्थे भवन्ती। यत + + + + + + + + + + + + + + वस्त्वनिजगुप्तीतमतरेयत्तत्र मणापरिवृत्तं

बहिराविरोद्भिजातं वधूवपुरहोरतयेऽतिरागात्। अ +++++++ क्षाभाय कियंचिन्नियमेनवतिद्युमानाराजकुलमाश्रयादिना रक्षितव्या ॥ ६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। इमं भार्यारक्षणरूपम् ॥ ६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। सर्वेषां ब्राह्मणादिवर्णानां भार्यारक्षणलक्षणं धर्मं वक्ष्यमाणश्लोकरीत्या सर्वधर्मेभ्य उत्कृष्टं जानन्तोऽन्धपङ्ग्वादयोऽपि भार्यां रक्षितुं यतेरन् ॥ ६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। अन्धपङ्गुक्लीबदरिद्रादिभिर्दुर्बलैरपि रक्षणीयास्ता इत्याह **इममिति**। **पश्यन्तो** जानन्तः। धर्मं उत्तमं तत्प्रसूतत्वाद्ब्राह्मण्याद्युत्तमत्रयस्य ॥ ६ ॥

(५) **नन्दनः**। **इमं धर्मं** भार्यापरिरक्षणलक्षणम् ॥ ६ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। इमं भार्यारक्षणरूपं धर्मम् ॥ ६ ॥

(७) **मणिरामः**। इमं धर्मं भार्यारक्षणरूपं। उत्कृष्टं उत्तमं पश्यंतो जानंतः ॥ ६ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **इममिति**। यस्मात्सर्वेषां ब्राह्मणादिवर्णानां भार्यारक्षणं वक्ष्यमाणश्लोकनीत्या सर्वधर्मेभ्य उत्कृष्टं अतो भर्तारो दुर्बला अपि भार्यां रक्षितुं यत्नं कुर्युः। यतः 'स्त्रियो रक्ष्या'(९।६) इति पूर्वमेव (उक्तम्?) ॥ ६ ॥

(९) **भारुचिः**। किं पुनरितरेतरच्च धर्मोत्तमत्वं स्त्रीरक्षणस्य यथा भवति तथेदमधुनोच्यते सर्वार्थम् ॥ ६ ॥

**स्वां प्रसूतिं चरित्रं च कुलमात्मानमेव च ॥**
**स्वं च धर्मं प्रयत्नेन जायां रक्षन्हि रक्षति ॥ ७ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। न केवलं शास्त्रोपदेशादेव स्त्रीरक्षा कर्तव्या, यावदिमानि बहूनि प्रयोजनानि। **प्रसूतिरपत्यं** पुत्रदुहितृलक्षणम्। संकरो न भवतीत्यर्थः। **चरित्रं** शिष्टसमाचारः। **कुलं** पूर्वोक्तम्। कस्यापि सत्कुलस्य भ्रष्टशीलायां भार्यायां दोषः सर्वं कुलमुपतिष्ठतीति– न साध्व्यः स्त्रिय एतेषामिति। अथवा पितृपितामहादीनां संततिशुद्धचभावादौर्ध्वदैहिकस्यानिवृत्ते रक्षा स्यात्। **आत्मानम्**। प्रसिद्धमुपपतिनाऽवश्यं हन्यते भार्ययैव वा विषादिना। **स्वं च धर्मम्**। व्यभिचारिण्या धर्मानधिकारात्। अतो जायां रक्षिता सर्वमेतद्रक्षति ॥ ७ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। प्रसूतिं पुत्रादिं। चरित्रमाचारं। कुलं कुलस्थितिं। स्वधर्मं गार्हस्थ्यनियतम् ॥ ७ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यस्माद्भार्यां रक्षतो रक्षणमसंकीर्णविशुद्धापत्योत्पादनेन स्वसंततिं तथा शिष्टसमाचारं पितृपितामहाद्यन्वयमात्मानं विशुद्धसंताननिमित्तौर्ध्वदेहिकलाभेन स्वधर्मं च विशुद्धभार्यस्याधानादावप्यधिकाराद्रक्षति; तस्मात्स्त्रियो रक्षितुं यतेतेति पूर्वस्य विशेषः ॥ ७ ॥

(४) **राघवानन्दः**। तद्रक्षणे अन्येऽपि सुरक्षिता इत्याह **स्वामिति**। प्रसूतिं सन्ततिं असंकीर्णविशुद्धापत्योत्पादनेन चरित्रं कुलपरंपरागतमाचारं न्यायोपात्तवित्तेन यच्चरितं श्राद्धातिथ्यादि तत्स्वीत एव कुलं इति आत्मानं विशुद्धसंतानोत्पत्तौ नरकादेः स्वधर्मं अग्निहोत्रादिधर्मं च रक्षतीत्यन्वयः ॥ ७ ॥

(५) **नन्दनः**। प्रसूतिः सन्तानपरिवारादिः, चरित्रमाचारम् ॥ ७ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। चरित्रं आचारं। **स्वं धर्मं** आश्रमधर्मम् ॥ ७ ॥

(७) **मणिरामः**। स्वां प्रसूतिं स्वसंततिं। चरित्रं शिष्टसमाचारं ॥ ७ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **स्वामिति**। भार्यां यत्नतो रक्षन् स्वां सन्ततिं सङ्करानुत्पादनेन रक्षति। भार्यासंरक्षणे च तिष्ठन् समाचारं च रक्षति। पितृपितामहाद्यन्वयमात्मानं चासंकीर्णापद्यौर्ध्वदैहिककरणेषु रक्षति। स्वं धर्मं विशुद्धना (भा?)र्यस्याधानाद्यधिकाराद्रक्षति ॥७॥

(९) **भारुचिः**। स्वां प्रसूतिमपत्यशुद्धिं जायां रक्षन् हि रक्षति यथा तथैव चरित्रमाचारं भार्यां संरक्षणीयेत्येवं कुलं च पूर्वपुरुषान् आत्मानं च प्रेतं सन्तमसंकीर्णापत्यपिण्डोदकक्रियया जीवन्तं चापत्यसङ्करपरिहारेण। तथा च स्मृत्यन्तरम्-"एभिरुपाः (?) कुले जाताः विद्याशीलसमन्विताः। सत्पुत्रशिष्यास्त्रायन्ते मातरं पितरं गुरुम् ॥" स्वं धर्मं, श्रौतं येनासङ्कीर्णापत्यस्याधानादिभिरधिकारः 'जातपुत्रो हि नादधीते'ति वचनात्। न चान्यजातमपत्यं भवति गौणं वा तदिति वक्ष्यामः ॥ ७ ॥

**पतिर्भार्यां संप्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायते ॥**
**जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः ॥ ८ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। अर्थवादोऽयम्। न च पत्या पत्न्या उदरे प्रवेशदर्शनम्। अतः शरीरसारभूतशुक्रद्वारेण गुणवादतः प्रवेशोऽयमुच्यते। "आत्मा वै पुत्रनामासीति"—एतदेव जायाशब्दस्य भार्यावचनत्वे प्रवृत्तिनिमित्तम्। यतोऽस्यां **पतिर्जायते**। अपत्यजन्मनिमित्ते जायाशब्दे जारस्यापि जायोच्यते ॥ ८ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। पतिर्जायते शुक्रजननात् ॥ ८ ॥

(३) **कुल्लूकः**। पतिः शुक्ररूपेण भार्यां संप्रविश्य गर्भमापाद्य तस्यां भार्यायां पुत्ररूपेण जायते। तथाच श्रुतिः (आश्व. गृ. सू. १।१५) 'आत्मा वै पुत्रनामासी'ति। जायायास्तदेव जायात्वं यतोऽस्यां पतिः पुनर्जायते। तथा च **बह्वृचब्राह्मणं** 'पतिर्जायां प्रविशति गर्भो भूत्वेह मातरं। तस्यां पुनर्नवो भूत्वा दशमे मासि जायते। तज्जाया जाया भवति यदस्यां जायते पुनः ॥' ततश्चासौ रक्षणीयेत्येतदर्थं नामनिर्वचनम् ॥ ८ ॥

(४) **राघवानन्दः**। जायापदं व्युत्पादयंस्तद्रक्षणेऽपीव यत्नमाविष्करोति **पतिरिति** द्वाभ्याम्। गर्भो भूत्वा तस्या आहुतेर्गर्भः संभवति। तथा 'पतिर्जाया प्रविशति गर्भो भूत्वेह मातरम्। तस्यां पुनर्नवो भूत्वा दशमे मासि जायते। तज्जाया जाया भवति यदस्यां जायते

पुन'रिति श्रुतेः ।। पतिः पतिरेतोऽवच्छिन्नं लिङ्गशरीरपरिवेष्टितं चैतन्यं भूतपञ्चकसहितं स्त्रीरजोयुक्तं गर्भपात(भंता) मापद्यापत्यतया जायत इति । अत्र श्रुत्यन्तरम् (तै. २।६) 'सोऽकामयत जाया मे स्यादथ प्रजायेये'ति। तथा (बृ.उ.६।४।९) 'अङ्गादङ्गात्संभवसी'ति; तथा 'आत्मा वै जायते पुत्र' इत्यत्र चात्मपदं देहारम्भकभूतसाररेतःपरं, लिङ्गदेहात्मनोरनादित्वेन जन्मासंभवात् ।। ८ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । पतिः यस्मात् अस्यां जायायां पुनः जायते ।। ८ ।।

(७) **मणिरामः** । जायाया निरुक्तिमाह **पतिरिति** । संप्रविश्य शुक्ररूपेण ।। ८ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **पतिरिति** । भर्ता भार्यायां संप्रविश्य गर्भतामापद्येह जायते । एवञ्चाप्यक्षरवर्णसामान्यानि ब्रूयादिति तेन हेतुना जायाया जायात्वं पुनरसौ पुत्ररूपेणैवं चासौ रक्षणीयेत्येतदर्थं नामनिर्वचनम् ।। ८ ।।

(९) **भारुचिः** । नामधेयं च स्त्रियः संरक्षणार्थमर्थवादी कुर्वन्निदमाह वेदस्मृतिशास्त्रन्यायविरोधश्चायमर्थवादो भार्यासंरक्षणार्थः । तथा च प्रकरणं–दृष्टश्चायं लोकप्रवादस्तत्संरक्षणार्थः ।। ८ ।।

**यादृशं भजते हि स्त्री सुतं सूते तथाविधम् ।।**
**तस्मात्प्रजाविशुद्धचर्थं स्त्रियं रक्षेत्प्रयत्नतः ।। ९ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । "स्वां प्रसूतिमिति" (९।७) यदुक्तं तद्दर्शयति । न चैवं मन्तव्यं—यादृशं 'द्वितीयं पुरुषं सेवेत सुतं सूते पुत्रं जनयति तथाविधजातीयम्' । नापि गुणसादृश्यमभिप्रेतम् । यतः शूद्रादिजातस्य चण्डालादिजातित्वम् । समानजातीयजातस्यापि नैव तज्जातीयत्वं— "पत्नीष्वक्षतयोनिष्विति" वचनात् । गुणसादृश्येऽपि विशीलदरिद्रपतिकाया उत्कृष्टपुरुषगमनमनुज्ञा स्यात् । यदा त्वयमर्थवादस्तदा यादृशं तथाविधमित्यकुलानुरूपमिति नीयते ।। ९ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । भजते संप्रयोगकाले न मनसा ध्यायति रक्षेन्मनोव्यभिचारात् ।। ९ ।।

(३) **कुल्लूकः** । यस्माद्यादृशं पुरुषं शास्त्रेण विहितं प्रतिषिद्धं वा स्त्री भजते तादृशशास्त्रोक्तपुरुषसेवनेनोत्कृष्टं निषिद्धपुरुषसेवनेन च निकृष्टं पुत्रं जनयति । तस्मादपत्यविशुद्धचर्थं पत्नीं यत्नतो रक्षेत् ।। ९ ।।

(४) **राघवानन्दः** । यादृशं शास्त्रविहितं निषिद्धं वा पतिं भजते तथाविधं तज्जातिमेव । नहि मनुष्याद्गौः शूद्राद्विप्रः । अतः प्रयत्नतः स्त्रियं रक्षेदित्यन्वयः ।। ९ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । यादृशं पुरुषं स्त्री ऋतुस्नानकाले भजते मनसापि संगच्छेत तादृशं सुतं सूते जनयति, 'सू प्रस्रवणे' ।। ९ ।।

(७) **मणिरामः** । यादृशं पुरुषं शास्त्रे विहितं प्रतिषिद्धं वा । तथाविधं तादृशं सुतं सूते ।। ९ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **यादृशमिति**। यस्माद्यथाविधं पुरुषं यथा-चोदितं भर्तारं शास्त्र-निषिद्धं वा स्त्री सेवते तादृशं शास्त्रोक्तमेव तथोत्कृष्टं निषिद्धसेवनेन च निकृष्टं पुत्रं जनयति। तस्मादपत्यशुद्धचर्थं भार्यां यत्नतो रक्षेत् ।। ९ ।।

(९) **भारुचिः**। अपरो(ऽर्थ)वाद उच्यते। तत्संरक्षणाच्चापत्यशुद्धचा सर्व-धर्माधिकारोऽत्यन्तोत्कर्षप्रयोजनो यस्मात् अतश्चायमुक्तो मुहुर्मुहुरादरेण तत्संरक्षणे ।। ९ ।।

**न कश्चिद्योषितः शक्तः प्रसह्य परिरक्षितुम् ।।**
**एतैरुपाययोगैस्तु शक्यास्ताः परिरक्षितुम् ।। १० ।।**

(१) **मेधातिथिः**। वक्ष्यमाणोपायप्रशंसार्थः श्लोकः। **प्रसह्य** बलेनावष्टभ्य शुद्धान्ताव-रोधादिना परपुरुषादिनिष्कासनादिना न शक्या **रक्षितुम्**। किंत्वेतैरुपाययोगैः **शक्याः**। 'योगाः' प्रयोगाः। 'उपायैः' प्रयुज्यमानैरित्यर्थः ।। १० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। प्रसह्य बलात्। एतैर्वक्ष्यमाणैः ।। १० ।।

(३) **कुल्लूकः**। कथं रक्षणीयेत्यत आह **नेति**। कश्चिद्बलात्संरोधादिनापि स्त्रियो रक्षितुं न शक्तस्तत्रापि व्यभिचारदर्शनात्; किंत्वेतैर्वक्ष्यमाणै रक्षणोपायप्रयोगैस्ता रक्षयितुं शक्याः ।। १० ।।

(४) **राघवानन्दः**। उपायाभावात्तद्रक्षणमशक्यमित्याशङ्क्याशक्यत्वं स्वीकुर्वन्निवोपाय-माह **नेति** द्वाभ्याम्। प्रसह्य बलात्। एतैः औत्तरैः संग्रहणाद्यैः ।। १० ।।

(५) **नन्दनः**। प्रसह्य परिरक्षितुमाप्तपुरुषादिभिर्गृहाभ्यन्तरनिरोधनादिना रक्षितु-मेतैर्वक्ष्यमाणैः ।। १० ।।

(६) **रामचन्द्रः**। एतैः वक्ष्यमाणैरुपाययोगैः तु शक्याः ताः परिरक्षितुम् ।। १० ।।

(७) **मणिरामः**। एतैः वक्ष्यमाणैः ।। १० ।।

(८) **गोविन्दराजः**। एवं रक्षणीयमुपदिष्टे कथं रक्ष्या इत्यत आह **न कश्चिदिति**। न कश्चिद्बलादन्त(रनि)रोधादिना स्त्रियो रक्षितुं (पारयति?) अनयोर्मनोव्यभिचार-त्वेऽरक्ष्यत्वाद् वक्ष्यमाणै रक्षणोपाययोगैस्तु शक्यास्ताः परिरक्षितुम् ।। १० ।।

(९) **भारुचिः**। पूर्वापरविरोधः शास्त्रे न न्याय्यः भिन्नप्रकरणेऽपि, किं पुनरेकप्रकरणे। यत एव '..... द्योषितः शक्याः प्रसह्य परिरक्षितुमि'तीदं वक्ष्यमाणोपायस्तुत्यर्थम्। एवं च पूर्वं स्त्रीसंरक्षणोपदेशो न विरुध्यते ।। १० ।।

**अर्थस्य संग्रहे चैनां व्यये चैव नियोजयेत् ।।**
**शौचे धर्मेऽन्नपक्त्यां च पारिणाह्यस्य वेक्षणे ।। ११ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **अर्थो** धनम्, तस्य **संग्रहः** संख्यादिना परिच्छिद्य रक्षार्थं वेश्मनि निधानं रज्ज्वायसबन्धादिना संयम्य मुद्राङ्कमित्येवमादि। **व्ययो** विसर्गस्तस्यैव—इदमेता-

वद्भक्तार्थमिदं च सूपार्थमेतावच्छाकार्थमिति। **शौचं** दर्वीपिठरादिशुद्धिर्भूमिलेपनादिश्च। **धर्मं** आचमनोदकतर्पणाददानं स्त्रीवासगृहकादौ बलिकुसुमविकारैर्देवार्चनम्। **अन्नपक्तिः** प्रसिद्धा। **पारिणाह्यं** यस्यासंदीखट्वादि। तत्प्रत्यवेक्षणे नियोक्तव्या ॥ ११ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। शौचे गृहादिशोधने। धर्मे सायंबलिदानादौ। अन्नपक्त्या-मन्नपाके। पारिणह्यमौपासनाग्नेः। पारीणह्य इति पाठे पारिणाहो गृहबन्धहेतुः, स एव पारिणाह्यो गृहपरिकरस्तस्य तद्भाण्डादेरित्यर्थः ॥ ११ ॥

(३) **कुल्लूकः**। तानुपायानाह **अर्थेति**। धनस्य संग्रहणे विनियोगे च द्रव्यशरीरशुद्धौ भर्त्रग्निशुश्रूषादिकेऽन्नसाधने पारिणाह्यस्य गृहोपकरणस्य शय्यासनकुण्डकटाहादेरवेक्षणे एनां नियोजयेत् वेक्षणे अवस्य आदिलोपः ॥ ११ ॥

(४) **राघवानन्दः**। अर्थस्य संग्रहणे रक्षणे व्यये शास्त्राविरुद्धे शौचे द्रव्यशरीरादेः धर्मे आतिथ्यादिके अन्नपक्त्यां तत्पाके पारिणाह्यस्य गृहोपस्करणस्य शय्यासनकुण्डकटाहादेः ईक्षणे एतां स्त्रियं नियोजयेदित्यन्वयः। एतेषु परं व्यग्रचित्तायाः परपुरुषाद्यभिलाषानुत्पत्तेः। 'स्थानं नास्ति क्षणं नास्ति नास्ति प्रार्थयिता नरः। तेन नारद नारीणां सतीत्वमुपजा-यते।" इति **पञ्चचूडोक्तेः** ॥ ११ ॥

(५) **नन्दनः**। तानेवोपाययोगान्दर्शयति **अर्थस्य संग्रहे चैनामिति**। परितो नह्यत इति परिणह्यं, तत्र भवं पारिणाह्यमासनशयनादिकं अर्थसंग्रहणादिषु नियुक्ताः स्त्रियस्तदधि-कारभ्रंशभयादात्मनाऽरक्षन्तीत्यभिप्रायः ॥ ११ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। एनां स्त्रियं अर्थस्य संग्रहे नियोजयेत्, व्यये शौचे गृहशौचधनादौ धर्मे सायंबलिदानादौ च पुनः अन्नपक्त्यां गृहस्य भाण्डादे; उपस्करस्य पारिणाह्य औपा [स]-नाग्नेः एतेषां अवेक्षणे नियोजयेत् ॥ ११ ॥

(७) **मणिरामः**। एनां स्त्रियं। शौचे धर्मे द्रव्यशरीरशुश्रूषादिके। अनुपक्त्यां पाके। पारिणाह्यस्य च गृहोपस्करणस्य शय्यासनभूषणादेश्च वेक्षणे अवेक्षणे नियोजयेत् ॥ ११ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। तानुपायानाह **अर्थस्येति**। धनावस्थानविनियोगयोस्तथा द्रव्य-शरीरशुद्धौ शौचे धर्मे च शयनासनादिषु प्रतिजागरणे एवञ्च तद्व्यापृतमना श्रान्ता स्वपिति संयोगं न स्मरति ॥ ११ ॥

(९) **भारुचिः**। के पुनस्तद्रक्षणोपायाः? यतस्तान् दर्शयति पारिणह्यमासनशयनाव-धानास्तरणादि। 'पत्नी परिणह्यस्येष्ट' इति श्रुतेः ॥ ११ ॥

**अरक्षिता गृहे रुद्धाः पुरुषैराप्तकारिभिः ॥**
**आत्मानमात्मना यास्तु रक्षेयुस्ताः सुरक्षिताः ॥ १२ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। आप्तं प्राप्तं काले तं कुर्वन्त्याप्तकारिणोऽवधानवन्त उच्यन्ते शुद्धान्ता-धिकारिणः। कञ्चुकिनः। तैः स्वे गृहे **रुद्धा**श्चास्वतन्त्रीकृता यथेष्टविहारनिषेधेन रक्ष्यमाणा

न रक्षिता भवन्ति, किंत्वात्मनाऽऽत्मानं रक्षन्ति। ताः कथं रक्षन्ति? यद्येतेषु कार्येषु नियुज्यन्ते ।। १२ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। निरोधं कृत्वा या रक्ष्यन्ते ता अरक्षिताः। आप्तकारिभिः यथार्थकारिभिः ।। १२ ।।

(३) **कुल्लूकः**। आप्ताश्च ते आज्ञाकारिणश्च तैः पुरुषैर्गृहे रुद्धा अप्यरक्षिता भवन्ति या दुःशीलतया नात्मानं रक्षन्ति। यास्तु धर्मज्ञतयाऽऽत्मानमात्मना रक्षन्ति ता एव सुरक्षिता भवन्ति। अतो धर्माधर्मफलस्वर्गनरकप्राप्त्याद्युपदेशेनासां संयमः कार्य इति मुख्यरक्षणोपाय-कथनपरमिदम् ।। १२ ।।

(४) **राघवानन्दः**। एतैरपि तद्रक्षणाशक्ति स्वीकुर्वन्निव तास्वेव रक्षणधुरं निक्षिपति **अरक्षिता इति**। आप्तकारिभिः आप्ताश्च ते कार्यकारिणश्च तैः रक्षिता अपि अरक्षिता इति स्वयं रक्षिताश्चेदात्मानं प्रति सुरक्षिता एवेति भावः ।। १२ ।।

(५) **नन्दनः**। एष एवोपाययोगो नतु बलात्कार इत्याह **अरक्षिता इति**। गृहे रुद्धा गृहान्तरे गुप्ता अरक्षिता भवन्ति, रक्षिता न भवन्तीत्यर्थः ।। १२ ।।

(७) **मणिरामः**। याः स्त्रियः आप्तकारिभिः पुरुषैः गृहे रुद्धा अपि अरक्षिता भवंति ताः दुःशीलाः ज्ञातव्याः। यास्तु आत्मना आत्मानं रक्षेयुस्ताः सुरक्षिताः, सुशीला ज्ञातव्या इत्यर्थः। अतो धर्माधर्मफलस्वर्गनरकप्राप्त्याद्युपदेशेन आसां संयमः कार्य इति मुख्यरक्षणो-पायकथनमिदं ज्ञेयं ।। १२ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **अरक्षिता** इति। ता अपि अरक्षिता एव मनोव्यभिचारसंभवाद्याः पुनरात्मनैवात्मानं संयमाश्रयेण रक्षत एव सुष्ठुमना (समा?)चारेण संयमाधान आसां यत्नः कार्यः। इति प्रधानसंरक्षणोपायोपदेशः ।। १२ ।।

(९) **भारुचिः**। अनन्तरश्लोकोक्तेन चोत्प(न्ना एता) आत्मानमात्मना रक्षन्ति। तस्मात् तत्स्तुतिपरमेवेदं न तु गृहोपरोधात्परपुरुषौपग्रहक्षणस्त्री(रक्षण) हेत्वोरयं प्रतिषेधः सामर्थ्यात् प्रकरणाच्चेति। अथवा नारीसन्दूषणपरिवर्जनस्तुतिपरमेतत् 'आत्मानमात्मना यास्तु रक्षेयुस्ताः सुरक्षिताः' इति ।। १२ ।।

**पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम् ।।**
**स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारीसंदूषणानि षट् ।। १३ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **अटनमापणभूमिषु** अन्नशाकादिक्रयार्थम् देवतायतनेषु च। ज्ञाति-कुले बहूनि दिनान्यवस्थानम् **अन्यगेहवासः**। **नारीसंदूषणानि**। **स्त्रीणामेते** चित्तसंक्षोभहेतवः। एता हि श्वशुरादिभयं जनापवादभयं च त्यजन्ति ।। १३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। पानं मद्यस्य। दुर्जनैरसतीभिः संसर्गं। अटनमितस्ततो भ्रमणं। स्वप्नः सातत्येन। तेन हि जागरादौ बुद्धिर्विपरिवर्तते ।। १३ ।।

(३) **कुल्लूकः**। मद्यपानम्, असत्पुरुषसंसर्गः, भर्त्रा सह विरहः, इतस्ततश्च भ्रमणं, अकालस्वापः, परगृहनिवास इत्येतानि षट् स्त्रिया व्यभिचाराख्यदोषजनकानि तस्मादेतेभ्य एता रक्षणीयाः ॥ १३ ॥

(४) **राघवानन्दः**। ताभिरपि स्वरक्षणार्थं पानादिषट्कं वर्जनीयमित्याह **पानमिति**। पानं मद्यादेः। दुर्जनसंसर्गः पारदारिकसंसर्गः। पतिदेशात्स्थानान्तरावस्थानेन शयनादिना वियोगो विरहः। अटनं परगृहादौ। स्वप्नोऽकाले अहनि वा ॥ १३ ॥

(५) **नन्दनः**। तस्मात्पानादिभ्यः स्त्रियो रक्ष्या इत्यभिप्रायः ॥ १३ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। यानं उत्सवादिदर्शननिमित्तं गमनं, दुर्जनसंसर्गः व्यभिचारिणीसंसर्गः, पत्या विरहः भर्तृविरहः, अटनं परिभ्रमणं, स्वप्नः शयनं, अन्यगेहवासः; एतानि षट् नारीणां दूषणानि ॥ १३ ॥

(७) **मणिरामः**। पानं मद्यपानं, अटनं इतस्ततो भ्रमणं, स्वप्नः अकालस्वापः ॥ १३ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **पानमिति**। मद्यपानदुर्जनसंसर्गोऽसत्पुरुषेण सहाधिवासः, भर्तृवियोगः, इतरगृहे वासः सर्वथैव नारीणां (?) इत्येतानि षट् दूषणानि साधुप्रकृतेरपि नार्याः व्यभिचाराख्यदोषजननानि; तस्मादेभ्य एताः परिरक्षणीयाः ॥ १३ ॥

(९) **भारुचिः**। यतस्तत्परिवर्जनार्थं तानि दर्शयति– परिवर्जनार्थं एषामुपदेशस्तत्पुरुषाणाम्। यतश्च पानादिव्यभिचारकरणेषु वर्तमानाः ॥ १३ ॥

**नैता रूपं परीक्षन्ते नासां वयसि संस्थितिः ॥**
**सुरूपं वा विरूपं वा पुमानित्येव भुञ्जते ॥ १४ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। नायमभिमानो वोढव्यः—सुभगः स्वाकृतिस्तरुणोऽहं मां हित्वा कथमन्यं कामयिष्यते? यतो नैता दर्शनीयोऽयं शूराकृतिरयमित्येव विचारयन्ति। **पुमानयमित्येतावतैव भुञ्जते** संयुज्यन्ते तेन ॥ १४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। संस्थितिर्व्यवस्थितिः ॥ १४ ॥

(३) **कुल्लूकः**। नैताः कमनीयरूपं विचारयन्ति, नचासां यौवनादिके वयस्यादरो भवति, किन्तु सुरूपं कुरूपं वा पुमानित्येतावतैव तमुपभुञ्जते ॥ १४ ॥

(४) **राघवानन्दः**। ताभिः परपुरुषालोकनमपि न कार्यमित्याह **नैता इति**। रूपमङ्गसौष्ठवम्, वयः पञ्चविंशतिवर्षादि पुंसः। आसां च षोडशवर्षादि। तत्र हेतुः **पुमानिति**। भुञ्जते भोगायाभिमुखाः स्युः ॥ १४ ॥

(५) **नन्दनः**। स्त्रीणां दुःस्वभावमवश्यं रक्षणार्थमष्टभिः श्लोकैराह **नैता इति**। रूपं पुंसः कान्तिः ॥ १४ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। एताः स्त्रियः रूपं न परीक्षन्ते ॥ १४ ॥

(८) **गोविन्दराजः** । **नैता** इति । नैता सुरूपकुरूपविचारं कुर्वन्ति । न ह्यासां यौवनवान् पुरुषश्च प्रियो भवति । अपि तु सुरूपं वा विरूपं वा पुमानित्येतावतैव ताः नरमुपभुञ्जन्ते । अपि च पुंमात्रदर्शनेन धैर्यचलनायासां (?) ताः पुंश्चल्यः ।। १४ ।।

(९) **भारुचिः** । एतास्ववस्थासु वर्तमाना विसंज्ञास्सत्यः यतः पावनादीन् वर्जयेयुः ।। १४ ।।

**पौंश्चल्याच्चलचित्ताच्च नैःस्नेह्याच्च स्वभावतः ।।**
**रक्षिता यत्नतोऽपीह भर्तृष्वेता विकुर्वते ।। १५ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । यस्मिन्कस्मिंश्च पुंसि दृष्टे धैर्याच्चलनं—कथमनेन संप्रयुज्येयेति चेतसो विकारः स्त्रीणां—**तत्पौंश्चल्यम्** । अन्यत्रापि धर्मादौ कार्येऽस्थिरता **चलचित्तत्वम्** । य एव द्वेष्यः स एव स्पृह्यत इति भ्रातृपुत्रादिर्यो दृष्टस्तस्मा एव कामुकत्वेन स्पृहयन्ति । स्नेहो रागस्तृष्णा च भर्तरि पुत्रादौ मानविरुद्धहृदया भवन्ति । एतैर्दोषैर्योगाद्विकुर्वते विक्रियां भर्तृषु गच्छन्ति तस्मात् ।। १५ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । पौंश्चल्यात्पुरुषेच्छुत्वात् चालचित्त्यात् अस्थिरबुद्धित्वात् ।। १५ ।।

(३) **कुल्लूकः** । पुंसो दर्शने संभोगाद्यभिलाषशीलत्वाच्चित्तस्थैर्याभावात्स्वभावतः स्नेहरहितत्वाच्चैता यत्नेनापि लोके रक्षिताः सत्यो व्यभिचाराश्रयणेन भर्तृषु विक्रियां गच्छन्ति ।। १५ ।।

(४) **राघवानन्दः** । किंच विश्वासश्च न कर्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु चेति न्यायेन स्वरक्षणीया इति स्मारयन्नाह **पौंश्चल्याच्चेति** । पुंमात्रदर्शनेन मैथुनेच्छुत्वं तद्गतचित्तत्वनिःस्नेहत्वानां स्वभावत्वात् । ननु मात्रादिशिक्षिताम् अहो पापीयसी सृष्टिरित्याह **भर्तृष्विति** । पुरुषान्ताराभिलाषितया विकुर्वते मारणादिविक्रियां कुर्वते ।। १५ ।।

(५) **नन्दनः** । पुंसश्चलन्तीति पुंश्चल्यः, तद्भावः पौंश्चल्यं, परिचितपुंसः परित्यज्य नूतनं भजन्त इति यावत् । पौंश्चल्यादिति प्रत्येकं संबध्यते ।। १५ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । पौंश्चल्यात् पुंश्चल्या भावः पौंश्चल्यं, तस्माच्चलचित्तस्य भावः चालचैत्त्यं, तस्मात् चालचैत्त्यात् निःस्नेहस्वभावः नैःस्नेह्यं तस्माद्धेतस्मात्स्वभावतः ।। १५ ।।

(७) **मणिरामः** । विकुर्वते व्यभिचाराश्रयणेन भर्तृषु विक्रियां गच्छन्ति ।। १५ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **पौंश्चल्यादिति** । पुंश्चल्याः चलचित्तत्वात् स्वभावेनैव स्नेहाभावात् एताः यत्नेन रक्षिता अपि (अ) सत्योक्त्यभिचाराश्रयेण भर्तृषु विक्रियां गच्छन्ति ।। १५ ।।

(९) **भारुचिः** । आसु पानाद्यवस्थासु । अतो न पूर्वविश्वासात् पानादिषूपेक्ष्याः ।। १५ ।।

**एवं स्वभावं ज्ञात्वाऽऽसां प्रजापतिनिसर्गजम् ॥**
**परमं यत्नमातिष्ठेत्पुरुषो रक्षणं प्रति ॥ १६ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। प्रजापतिर्हिरण्यगर्भस्तदीये निसर्गे उत्पत्तिकाले जातम्। शिष्टं स्पष्टम् ॥ १६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। प्रजापतिनिसर्गः प्रजापतिना तादृक्स्वभावस्य दानम् ॥ १६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। एवं श्लोकद्वयोक्तमासां स्वभावं हिरण्यगर्भसृष्टिकालजनितं ज्ञात्वा रक्षणार्थं प्रकृष्टं यत्नं पुरुषः कुर्यात् ॥ १६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। अतस्ता रक्षणीया इत्याह **एवमिति**। प्रजापतिनिसर्गजं प्रजापतिसृष्टिकालीनमनादिम्। अतस्तासां रक्षणप्रतियत्नमातिष्ठेदित्यन्वयः ॥ १६ ॥

(५) **नन्दनः**। प्रजापतिनिसर्गजं स्वायंभुवमनुप्राणजातम् ॥ १६ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। आसां स्त्रीणाम्, निसर्गजं विधातृसृष्टिकम् ॥ १६ ॥

(७) **मणिरामः**। प्रजापतिनिसर्गजं सृष्टिकालजनितं स्वभावं ॥ १६ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **एवमिति**। एवं श्लोकद्वयं दौःशील्याच्चलचित्तत्वोक्तरूपमासां स्वभावं हिरण्यगर्भसृष्टिकाले जनितं ज्ञात्वा रक्षायां यत्नेन (यत्नः?) पुरुषेण कार्यम् (कार्यः?) ॥ १६ ॥

(९) **भारुचिः**। व्यभिचारात्मकत्वमासां स्वभावतः। अतस्तं विदित्वा नित्यमेता रक्ष्याः। न विश्वासादुपेक्षणीयाः गृहीतविनया इति कृत्वा ॥ १६ ॥

**शय्यासनमलङ्कारं कामं क्रोधमनार्जवम् ॥**
**द्रोहभावं कुचर्यां च स्त्रीभ्यो मनुरकल्पयत् ॥ १७ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **शय्या** शयनं स्वप्नशीलत्वम्। **आसनम**नभ्युत्थानशीलता। **अलङ्कारः** शरीरमण्डनम्। **कामं** पुरुषोपभोगस्पृहा। **क्रोधो** द्वेषः। **अनार्यता** स्निग्धेऽपि द्वेषो द्विष्टेऽपि स्नेहः, आकारसंवरणं, निर्धर्मता। **द्रोग्धृभावः**। द्रोग्धृत्वं भर्तृपित्रादेः। द्रुहेः कर्तरि तृचा भावशब्देन समासः। **कुचर्या** नीचपुरुषसेवनम्। एष स्वभावः स्त्रीणां मनुना सर्गादौ कल्पितः। शय्यासनालङ्कारा द्रोहकुचर्ययोर्दृष्टान्तत्वेनोपादीयन्ते। यथैते पदार्थाः स्वभावभूता अविचालिता एवं कुचर्यादयोऽपि ॥ १७ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। शय्यां उत्तमशयनम्। आसनं सततोपवेशनम्। अलङ्कारमलंक्रियाम्। अनार्यतामनृजुताम्। द्रोहभावं हिंसात्वम्। कुचर्यामसदाचारम्। मनुरकल्पयदिति प्रजापतिनिसर्गविवरणम् ॥ १७ ॥

(३) **कुल्लूकः**। शयनोपवेशनालङ्करणशीलत्वं कामक्रोधानार्जवपरहिंसाकुत्सिताचारत्वानि सर्गादौ मनुः स्त्रीभ्यः कल्पितवान्। तस्माद्यत्नतो रक्षणीयाः ॥ १७ ॥

(४) **राघवानन्दः**। ताश्च दानमानाभ्यां स्ववशमायान्तीत्येतन्मनुनैव प्रकाशितमित्याह **शय्येति**। कामो मैथुनेच्छा सोऽप्यष्टगुणः स्मृतः। द्रोहभावं स्वभर्तुरपि द्रोहाद्युपक्रमम्। कुचर्यां कुत्सिते कर्मणि रतिम्। एतावद्वा निसर्गजम् ॥ १७ ॥

(५) **नन्दनः**। शय्यां सुप्ति आसनमुपवेशनं अलंकारमलंक्रियां द्रोहभावं द्रोहक्रियां मनुः स्वायंभुवः स्त्रीभ्य आदावकल्पयत् ॥ १७ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। शय्या शयनार्थं, आसनम् ॥ १७ ॥

(७) **मणिरामः**। हिंसा। शय्यादिकं सर्वं सृष्ट्यादौ मनुः स्त्रीभ्यः कल्पितवान् तस्माद्यत्नतो रक्षणीयाः ॥ १७ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **शय्यासनमलङ्कारं कामक्रोधमनार्यतामिति**। स्वापोपवेशनालङ्करणमणिं कामक्रोधलोभापथातित्वकुत्सिताचारत्वानि स्त्रीभ्यो मनुः सर्गादौ कल्पितवान्। ततो आसां रक्षाकरणे यत्नः कार्यः ॥ १७ ॥

(९) **भारुचिः**। अतश्च युक्तास्ताः प्रयत्नतो रक्षितुमेवंस्वभावत्वात्। तत्र शय्याभावो नाधिकरणं सुप्यतेऽस्यामिति। एवमासनालङ्कारकामक्रोधाः अनार्यता द्रोहभाव इत्यत्र स्वशब्देनैव भाव उपदिष्टः वाक्यभावप्रत्ययाभावेऽपि। विचरणं चर्या। कुचर्या कुत्सिता चर्या, सर्व एते स्वभावाः। एवं स्वभावं ज्ञात्वासामिति प्रकृतत्वादस्य। एवं च सति पतन्निन्दावचनं रक्षार्थम्। यतश्च ॥ १७ ॥

**नास्ति स्त्रीणां क्रिया मन्त्रैरिति धर्मे व्यवस्थितिः ॥**
**निरिन्द्रिया ह्यमन्त्राश्च स्त्रियोऽनृतमिति स्थितिः ॥ १८ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। केचिदेवं मन्यन्ते—'सत्यपि प्रमदाव्यभिचारे वैदिकेन जापेन रहस्यप्रायश्चित्तादिना शुद्धिमाप्स्यन्ति, ततो नास्ति दोष इति'—तन्न; न हि **स्त्रीणां मन्त्रैः क्रिया** जपोऽप्यस्ति। येन वृत्तव्यतिक्रमेऽप्रख्यातैः स्वत एव वैदुष्याच्छुद्धिमाप्नुवन्ति। तस्माद्यत्नतो रक्ष्या इत्येतच्छेषमेवैतत्। अतो ये केचिदविशेषेण मन्त्रप्रतिषेधोऽयमिति वर्णयन्ति—ततश्च प्रतिषेधं मन्यमाना यत्किञ्चित् स्त्रीसम्बंधि कर्म येन केनचित् क्रियते तत्र सर्वत्र यत्र स्त्रियः कर्तृतया संबध्यन्ते सायंबलिहरणादौ तथा संस्कार्यतया चूडादिषु सम्प्रदानतया श्राद्धादौ,—तत्र सर्वत्र मन्त्रप्रतिषेधादमन्त्रकं स्त्रीणां श्राद्धादि कार्यमिति—तेऽयुक्तवादिनोऽन्यपरत्वादस्य। अर्थवादतया यदस्ति तदालम्बनं न्यायेन विहितप्रतिषेधमन्त्रसंबन्धमन्त्रचूडासंस्कारापेक्षं व्याख्येयमेतत्। अध्ययनाभावाच्च प्रायश्चित्तमन्त्रजपाभावः। **निरिन्द्रियाः**। 'इन्द्रियं' वीर्यं धैर्यप्रज्ञाबलादि तासां नास्त्यतोऽनिच्छन्त्योऽपि कदाचित्पापाचारैर्बलेनाक्रम्यन्ते। ततो रक्षितुं युक्ताः। **स्त्रियोऽनृतमिति**। शीलस्नेहयोरस्थिरत्वादनृतवचनेन निन्द्यन्ते ॥१८॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। क्रिया परिणयनप्राक्कालीनः संस्कारो गर्भाधानादिः। मन्त्रवत्संस्कारयोग्यतानिमित्तमन्त्रप्रकाश्यपुल्लिङ्गरहिताः। अत एवामन्त्राः। स्थितिर्मर्यादा॥१८॥

(३) **कुल्लूकः**। जातकर्मादिक्रिया स्त्रीणां मन्त्रैर्नास्तीत्येषा शास्त्रमर्यादा व्यवस्थिता। ततश्च मन्त्रवत्संस्कारगणाभावान्न निष्पापान्तःकरणा इंद्रियं प्रमाणं, धर्मप्रमाणश्रुतिस्मृतिरहितत्वान्न धर्मज्ञाः अमन्त्राः पापापनोदनमन्त्रजपरहितत्वात् जातोऽपि पापे तन्निर्णेजनाक्षमः अनृतवदशुभाः स्त्रियः इति शास्त्रमर्यादा। तस्माद्यत्नतो रक्षणीया इत्यत्र तात्पर्यम् ॥ १८ ॥

(४) **राघवानन्दः**। तासां तु दौःशील्यं नानुयोज्यं चाण्डालादेरिव मन्त्रेण संस्काराभावादित्याह **नास्तीति**। क्रिया नामकरणादिका; 'विवाहस्तु समन्त्रक'इत्युक्तेः। निरिन्द्रियाः इन्द्रियं प्रमाणं धर्मप्रमाणश्रुतिस्मृतिरहिताः। अनृतवदशुभाः नित्यमनृतवादिन्यो वा सूनृतवैदिकशब्दप्रयोक्तृत्वाभावात् ॥ १८ ॥

(५) **नन्दनः**। निरिन्द्रियाः ज्ञानरहिता इत्यर्थः, अमन्त्रा अध्ययनबाह्याः ॥ १८ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। निरिन्द्रियाः समन्त्रसंस्कारयोग्यतारहिताः ॥ १८ ॥

(७) **मणिरामः**। क्रिया जातकर्मादि। स्त्रीणां मंत्रैर्नास्ति इति धर्मो व्यवस्थितः शास्त्रमर्यादा व्यवस्थिता। ततश्च निरिंद्रियाः इंद्रियं प्रमाणं, धर्मप्रमाणश्रुतिस्मृतिरहितहतत्वरन्नधर्मज्ञाः। अमंत्राः पापापनोदनमंत्रजपारहितत्वात् जातेऽपि रूपे तन्निर्णेजनाऽक्षमाः ॥ अनृतं अनृतवदशुभाः इति शास्त्रमर्यादा। तस्मात्ततो रक्षणीया इति तात्पर्यं ॥ १८ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **नास्ति स्त्रीणां क्रिया मंत्रैरिति धर्मो व्यवस्थितः** इति। मन्त्रैर्जातकर्मादिसंस्कारक्रिया स्त्रीणां नास्तीति शास्त्रमर्यादा। एवं मन्त्रवज्जातकर्मादिसंस्काराभावात्स्वभावतश्च स्त्रियो निर्वीर्या अध्ययनाभावाच्चामन्त्राश्चामन्त्रित्वे सति धर्मज्ञत्वाभाव(वाद ?)शौचेऽपि प्रवृत्ते (वर्ते) रन्। तत्प्रवृत्तौ च भयाद्यभावत्वादशुभाः स्त्रिय इति शास्त्रमर्यादा ॥ १८ ॥

(९) **भारुचिः**। 'अमन्त्रिका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः' (२।६६) इत्युक्तं यत् तदिदमुच्यते 'नास्ति स्त्रीणां क्रिया मन्त्रै'रिति। विवाहसंस्कारश्च मन्त्रतः पुरुषसम्बन्धापेक्षया न स्वातन्त्र्येण साधारणो वा, यतो न व्याघातः। अर्थवादार्थं च तन्निन्दावचनम्। इन्द्रियं प्रज्ञाधैर्यादि। तदभावात् स्त्रियोऽनिन्द्रिया इत्युच्यन्ते नान्यथा। एवं चावला इत्येवमेताः प्रसिद्धाः। यतो निरिन्द्रिया अमन्त्राश्च स्त्रियः अतस्तासां स्ववीर्यस्याभावात् स्वयमात्मरक्षणे सामर्थ्यं नास्ति। अमन्त्रत्वाच्च पुरुषवन्मन्त्रवता संस्कारेण शुद्धिर्नास्ति। आत्मसंयमने त्वासां शुद्धिरेषितव्या। अतश्चता निरिन्द्रियाः निर्वीर्याः निःसंज्ञात्वान्निर्विज्ञानास्सत्योऽनृतशब्देन निन्द्यन्ते। व्यभिचारात्मकत्वेन वा प्रकृतेन ॥ १८ ॥

**तथा च श्रुतयो बह्व्यो निगीता निगमेष्वपि ॥**
**स्वालक्षण्यपरीक्षार्थं तासां शृणुत निष्कृतीः ॥ १९ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। स्वभावतोऽशुद्धहृदयाः स्त्रिय इत्यस्मिन्नर्थे वैदिकानि मन्त्रार्थवादरूपाणि वाक्यानि साक्षित्वेनोपन्यस्यति। **तथा च** यथा मयोक्तं 'स्त्रियोऽनृतम्' इति तथैव **निगमेषु** वेदेषु **श्रुतयः** सन्ति। निगमशब्दो वेदपर्यायो दृष्टप्रयोगश्च। निगमो वेदार्थ-

व्याख्यानाङ्गवचनोऽप्यस्ति—'निगमनिरुक्तव्याकरणान्यङ्गानीति' निरुक्ते हि प्रयोगो—'निगमा इमे भवन्तीति'। तस्येह श्रुतिग्रहणाद्वा वक्ष्यमाणोदाहरणाच्चासंभवः। अतो वेदवचनो निगमशब्द इह गृह्यते। समुदायावयवभेदाच्चाधाराधेयभावः। तेषु निगमेषु **श्रुतयं** एकदेशभूतानि वाक्यानि **निगीता** अधीताः संशब्दिताः पठ्यन्त इति यावत्। नित्यप्रवृत्ते च कालाविभागादि निरुक्तम्।

पाठान्तरम् 'निगदा' इति। 'निगदा' मन्त्रविशेषाः। **श्रुतयो** ब्राह्मणवाक्यानि। मन्त्रेषु ब्राह्मणेषु चायमर्थो दर्शितो 'यदनृताः स्त्रिय' इति। **बहव्यस्ताः** संतीत्यस्मिन्पक्षेऽध्याहारः। **तासां** श्रुतीनां या या **निष्कृति**रूपा व्यभिचारप्रायश्चित्तभूतास्ताः **शृणुत**। किमर्थमुदाह्रियन्त इति चेत् **स्वालक्षण्य-परीक्षार्थम्**। 'स्वलक्षणं' नित्यसंनिहितस्वभावस्तत्प्रतिपादनार्थम्। अङ्गदकुण्डलादि यत् लक्षणं तत्परिभूतमिदं 'स्वलक्षणं' स्वभाव इत्यर्थः। एतदासां 'स्वलक्षणं' यदव्यभिचारात्मकम्॥ १९॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। श्रुतयः श्रुतिभागाः। निगमेषु वेदेषु। स्वालक्षण्यस्य स्त्रीणां पौंश्चल्यादिस्वभावस्य परीक्षार्थं निश्चयार्थम्। तथाहि—'इन्द्राद्वरं प्रार्थयमाना अपि कामनाविजनिताः संभवामेत्याप्रसवं पुरुषसंसर्गमेव वृतवत्य' इति श्रुतिः। यद्येवं यत्नतो रक्षणेऽपि मनोव्यभिचारसंभवस्तस्य तर्हि कथं निष्कृतिरत आह—तासां स्त्रीणां निष्कृतिं तद्दोषशान्त्युपायं शृणुत॥ १९॥

(३) **कुल्लूकः**। व्यभिचारशीलत्वं स्त्रीणां स्वभाव इत्युक्तं, तत्र श्रुतिं प्रमाणतयोपन्यस्यति। तथा बह्व्यः श्रुतयो बहूनि श्रुतिवाक्यानि 'नचैतद्विद्मो ब्राह्मणाः स्मोऽब्राह्मणा वे'त्येवमादीनि निगमेषु स्वालक्षण्यं व्यभिचारशीलत्वं तत्परिज्ञानार्थं पठितानि। तासां श्रुतीनां मध्ये या निष्कृतिरूपा व्यभिचारप्रायश्चित्तभूतास्ताः श्रुतीः शृणुत। एकस्याः श्रुतेर्वक्ष्यमाणत्वाच्छ्रुतिं शृणुतेत्यर्थः। 'सुपां सुपो भवन्ती'ति (पा. ७।१।३९) द्वितीयैकवचने बहुवचनम्॥ १९॥

(४) **राघवानन्दः**। ननु किमिति स्त्रीणां व्यभिचारित्वादिस्वारसिकं ब्रूत मात्रादिशिक्षितं कथनं स्यात्—इति चेन्न; अनादिप्रवृत्तश्रुतिसिद्धप्राकृतिकथनेन तस्याप्यनादित्वसिद्धिरित्याह **यथा चेति**। स्वालक्षण्यपरीक्षार्थं व्यभिचारित्वज्ञापनार्थम्। यो ब्राह्मणा (?) चेत्येव अतः श्रुतयस्तासां श्रुतीनां मध्ये निष्कृतिंनिष्कृतिसाधनं श्रुतिं शृणुत॥ १९॥

(५) **नन्दनः**। यथैतदुक्तं तथाच निगमेषु वेदेषु गदिताः श्रुतयो वाक्यानि स्वालक्षण्यपरीक्षार्थं, सुशब्दोऽत्र बहुलवचनः; अलक्षणमलक्षणत्वं दुःस्वभावत्वं, दोषबाहुल्यमिति यावत्। परीक्षार्थं परीक्षां कर्तुं तासां श्रुतीनामाकृतिं सन्निवेशं शृणुत॥ १९॥

(६) **रामचन्द्रः**। स्वलक्षणपरीक्षार्थं पौंश्चल्यादित्वपरिज्ञानाय निष्कृतीः शृणुत॥ १९॥

(७) **मणिरामः**। स्वालक्षण्यपरीक्षार्थं व्यभिचारशीलत्वपरीक्षार्थं। तासां श्रुतीनां मध्ये याः निष्कृतिरूपाः व्यभिचारप्रायश्चित्तभूताः। ताः श्रुतीः शृणुत। एकस्याः श्रुतेर्वक्ष्यमाणत्वात् श्रुतिं शृणुतेत्यर्थः। द्वितीयैकवचनेन बहुवचनं ज्ञेयं॥ १९॥

(८) **गोविन्दराजः**। **तथेति**। निश्चितमेव व्यभिचारात्मकत्वे ज्ञापिका 'न चैतद्-विद्मो ब्राह्मणो(णाः ?) वा' इत्येवमाद्या बहव्यः श्रुतयो वेदेष्वपि पठिताः। तासां च श्रुतीनां मध्यात्प्रायश्चित्तरूपां श्रुतिं शृणुत ॥ १९ ॥

(९) **भारुचिः**। स्वालक्षण्यमासां व्यभिचारः। यत्तस्तासां व्यभिचारनिष्कृतिमिमां शृणुत ॥ १९ ॥

**यन्मे माता प्रलुलुभे विचरन्त्यपतिव्रता ॥**
**तन्मे रेतः पिता वृङ्क्तामित्यस्यैतन्निदर्शनम् ॥ २० ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **इति**करणान्तेन पादत्रयेण मन्त्रैकदेशोऽनुकृतः।

**यन्मे माता अपतिव्रता**—'पत्युरन्यपुरुषे न कामश्चेतसापीति' यस्या 'व्रतं'—नियमः सा 'पतिव्रता'। तद्विपरीताऽपतिव्रता। **विचरन्ती** परगृहान्गच्छन्ती। तत्रोज्ज्वलवेषं दृष्ट्वा **प्रलुलुभे**। लोभं स्पृहामन्यपुरुषं प्रति कृतवती। तत्पापं ममोत्पत्त्या मत्पितुः संबन्धि **यद्रेतः** शुक्रं **तद्वृङ्क्तामपनुदतु**। तद्रेतसा स दोषोऽपमृज्यताम्। **पितेति** षष्ठीस्थाने प्रथमा व्यत्ययेन। अथवा **रेत** एव पितृत्वेन परिकल्प्यते। अपरित्यक्तस्वलिङ्ग एव रेतसा सामानाधिकरण्यमनुभवति। "द्यौर्मे पितेति" (ऋ० सं० २। ३। २०) यथा। अथवा मातृबीजमप्युच्यते 'रेतः'। **तद्रेतः पिता** जनको **वृङ्क्तां** शोधयताम्। पितृजबीजप्रभावेन मातृदोषोऽपनुद्यतामित्यर्थः।

**अस्य** व्यभिचारात्मकस्यैत**न्निदर्शनं** दृष्टान्तः। सर्वे जपमाना एतं मन्त्रमुच्चारयन्ति। यदि च सर्वाः स्त्रियो दुष्टस्वभावास्ततो मन्त्रस्य नित्यवत्प्रयोगोपपत्तिः। इतरथा पाक्षिकः स्यात्। चातुर्मास्येष्वयं मन्त्रो विनियुक्तः (आपस्तम्ब. श्रौत. १। ९९) पाद्यानुमन्त्रणे च श्राद्धे (शांखायन. गृह्य. ३। १३। ५) ॥ २० ॥

(३) **कुल्लूकः**। कश्चित्पुत्रो मातुर्मानसव्यभिचारमवगम्य ब्रूते। मनोवाक्कायकर्मभिः पतिव्यतिरिक्तं पुरुषं या न कामयते सा पतिव्रता, ततोऽन्याऽपतिव्रता। मम माताऽपतिव्रताऽसती परगृहान्गच्छन्ती यत्प्रलुलुभे परपुरुषं प्रति संजातलोभाऽभूत्तत्पुरुषसंकल्पदुष्टं मातृरजोरूपं रेतो मम पिता शोधयत्वित्यस्य स्त्रिया व्यभिचारशीलत्वस्यैतदितिकरणान्तं मन्त्रपादत्रयं ज्ञापकम्। अयं च मन्त्रश्चातुर्मास्यादिषु विनियुक्तः ॥ २० ॥

(४) **राघवानन्दः**। तामेवाह **यदिति**। यदित्यादिवृङ्क्तामित्यन्ता श्रुतिः। अस्या अर्थः—कश्चित्पुत्रो ब्रूते पतिं पाणिग्राहं विना नान्यं वृणे इति व्रतं नियमो यस्याः सा पतिव्रता तद्भिन्नाऽपतिव्रता मे माता विचरन्ती व्यवहरन्ती यत्पुरुषान्तरं लुलुभे चकमे तेन कामेन यद्दुष्टं रेतो मातू रेतः पिता एतत् वृङ्क्तां शोधयत्विति। अस्य स्त्रीव्यभिचारस्य एतदेषा श्रुतिः निदर्शनं मानमिति पद्यार्थः ॥ २० ॥

(५) **नन्दनः**। श्रुतिमेकामुदाहरणार्थमाह **यन्मे मातेति**। पतिमननुव्रता(वि)चरंती मे माता अन्यस्मात्पुंसो यद्रेतः प्रलुलुभ आदृता दधार तद्रेतो मे पिता वृङ्क्तां मातुः पाणिग्राहकः

स्वीकरोतु मम पित्रैव तद्रेत आहितमस्त्वित्यर्थः। अथवा यच्छब्दो वृत्त्यर्थः, ततो न यत्नः अस्य स्त्रीणां स्वालक्षण्यस्यैतद्वचनं निदर्शनं प्रमाणं, एष मन्त्र उदाहरणमिति यावत्॥ २०॥

(६) **रामचन्द्रः**। यन्मे मातेति मन्त्रेण श्राद्धे होमं कुर्वाणेनोच्यते प्रकथ्यते अपतिव्रता मे माता यत् प्रचरन्ती प्रलुलुभे तन्मे रेतः लोभाद्रजारूपं यद्रेतः स्कन्नं तद्रेतो मे पिता भजताम्॥ २०॥

(७) **मणिरामः**। कश्चित्पुत्रो मातुर्मानसं व्यभिचारमवगम्य ब्रूते। **यदि**त्यादि। पतिव्रता सती मे माता विचरंती परगृहान् गच्छंती यत् प्रलुलुभे परपुरुषं प्रति संजातलोभा अभूत् तत् परपुरुषसंकल्पदुष्टं मातृरजोरूपं रेतः मे पिता वृङ्क्तां शोधयतु, इति अस्य स्त्रियाः व्यभिचारशीलस्य एतत् निदर्शनं॥ २०॥

(८) **गोविन्दराजः**। **यन्म इति**। मम माता अपत्यपरायणा यथान्यपुरुषः संजातलोभाऽभूत् परपुरुषसंकल्पदुष्टं मातृरजो मम पिता बोधयित्वान्यस्य व्यभिचारात्मकत्वस्यैतत् लिङ्गमिति कारणावस्थितोऽयम् मंत्रोऽयं च चातुर्मास्येष्टचन्वष्टकायां च पाद्यानुमंत्रणे विनियुक्तप्रसंगान्मन्त्रप्रयोजनमाह॥ २०॥

(९) **भारुचिः**। कस्मिंश्चित् किल कर्मणि यजमान इदमाह—यद्यपि मे माता परपुरुषलोभा व्यभिचारिणी भवेत् तथापि तद्रेतः पितैव मे वृङ्क्ता...मेतन्निदर्शनम्। वेऽपि(?) च स्वभावव्यभिचारित्वं स्त्रीणां दृश्यते, ततस्तत्संरक्षणार्थमयं वैदिको निगम उदाहृ(हृतः)॥ २०॥

**ध्यायत्यनिष्टं यत्किंचित्पाणिग्राहस्य चेतसा॥**
**तस्यैष व्यभिचारस्य निह्नवः सम्यगुच्यते॥ २१॥**

(१) **मेधातिथिः**। **पाणिग्राहो** भर्ता, तस्य **चेतसा यदनिष्टम**प्रियं परपुरुषसंपर्कादिकं स्त्री चिन्तयति **तस्य** मानसस्य **व्यभिचारस्य निह्नवः** शुद्धिरनेन मन्त्रेण कर्मणि नियुक्तेनोच्यते। प्रसङ्गान्मन्त्रप्रयोजनं दर्शितम्। यद्यपि कर्मगुणतैव कर्माङ्गमन्त्रप्रयोजनं तथापि जपादौ विनियोगान्मानसव्यभिचारनिवृत्त्यर्थताऽप्युच्यते॥ २१॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अस्योक्तस्यार्थस्य निष्कृतेर्निदर्शनं निश्चितं दर्शनं श्रुतौ कथमित्यत आह **ध्यायतीति**। पाणिग्राहस्यानिष्टं पुरुषान्तरयोगम्। तस्य व्यभिचारस्य मानसस्य निह्नवोपनयः। श्राद्धे पुत्रेणानेन होमं कुर्वतोच्यते प्रार्थ्यते तस्य निष्कृतिर्भवत्विति॥ 'यन्मे मातेति मन्त्रश्चानुष्टुबनुरोधात्किंचिदन्यथा कृत्वा पठितः। तथाहि— यन्मे माता प्रलुलोभे विचरत्यननुव्रता। तन्मे रेतः पितावृङ्क्तामातुरन्योवपद्यता'मिति मन्त्रपाठः। तस्य चार्थो **यन्म इति** यत् मे मम मातुः पत्यननुव्रतं तं चरन्त्याः कुर्वत्या लोभात रेतो रजोरूपं स्कन्नं तन्मम पितैव भजतां, व्यभिचारदोषो मा भूदित्यर्थः। यस्तु तन्मनाः सन्मातुरभिभवितान्यः पत्युः सोऽवपद्यतामधः पतत्विति॥ २०—२१॥

(३) **कुल्लूकः**। संप्रति मानसव्यभिचारप्रायश्चित्तरूपतामस्य मन्त्रस्याह **ध्यायतीति**। भर्तुरप्रियं यत्किंचित्पुरुषान्तरगमनं स्त्री मनसा चिन्तयति तस्य मानसस्य व्यभिचारस्यैष प्रकृतो मन्त्रः सम्यक्शोधनो मन्वादिभिरुच्यते। मातेति श्रवणात्पुत्रस्यैवायं प्रायश्चित्तरूपो मन्त्रो न मातुः ॥ २१ ॥

(४) **राघवानन्दः**। श्लोकद्वयार्थं संकलयन्नाह **ध्यायतीति**। यत्पुरुषान्तरेण सह भोगं ध्यायति चेतसा तदेव पाणिग्राहस्य स्वभर्तुरनिष्टम्, तस्यैव व्यभिचारस्यानिष्टस्य एव मन्त्रपाठः पुत्रस्यायं निह्नवः प्रायश्चित्तं गम्यते न मातुरित्यन्वयः ॥ २१ ॥

(७) **मणिरामः**। मानसव्यभिचारप्रायश्चित्तरूपता महामंत्रस्याह **ध्यायेति**। पाणिग्राहस्य भर्तुः। यत् **अनिष्टं** पुरुषांतरगमनं। **चेतसा ध्यायति**। **तस्य** मानस**व्यभिचारस्य**। एषः यन्मे माता इति मंत्रः। सम्यक् निह्नवः शोधनः उच्यते मन्वादिभिः। उच्यते इति श्रवणात् 'पुत्रस्यैवायं मंत्रो न मातुः ॥ २१ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **ध्यायतीति**। भर्तुरनभिप्रेतं यत्किञ्चित् पुरुषगमनं मनसा चिन्तयति तस्य मनोव्यभिचारस्यानेन मन्त्रेणैषां सम्यग् बुद्धिरुच्यते। न वाक्कायविषयोऽतस्तस्यां तद्व्यभिचारस्वभावत्वादेता यत्नतो रक्ष्या। मातेति श्रवणात् पुत्रस्यैवेदं प्रायश्चित्तं न मातुः ॥ २१ ॥

(**भारुचिः**। अन्यं चाह—एवं च मनोव्यभिचार एतद्विज्ञेयम्, 'यादृग्गुणेन भर्त्रा स्त्री संयुज्येत यथाविधि'। तादृग्व्यभिचारस्य निह्नवः प्रमार्जनं प्रायश्चित्तमस्य नि... व्यभिचारप्रदर्शकमेतत्, किन्तर्हि? कर्मव्यभिचारप्रायश्चित्तमेवं विज्ञेयम् "अतश्चात्मसंयमे यत्नः कर्तव्यः स्त्रीसंरक्षणार्थमिति। तस्येति" ॥ २१ ॥

**यादृग्गुणेन भर्त्रा स्त्री संयुज्येत यथाविधि ॥**
**तादृग्गुणा सा भवति समुद्रेणेव निम्नगा ॥ २२ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। भार्यासंरक्षणकामेन दौःशील्यादात्मा रक्षितव्यः। नाप्येतयैव केवलया। यतो दुःशीलस्य भार्याऽपि तथाविधैव भवति, गुणवतः शीलवती। यथा **समुद्रेण निम्नगा** नदी संयुज्यमाना क्षारोदका भवति मधुररसापि सती ॥ २२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। यादृग्गुणेन पत्या परिणेत्रा, अतो नाधमाय देहीत्यर्थः। समुद्रेण निम्नगा क्षारोदतां यथा याति ॥ २२ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यथारूपेण भर्त्रा साधुनाऽसाधुना वा स्त्री विवाहविधिना संयुज्यते सा भर्तृसदृशगुणा भवति। यथा समुद्रेण संयुज्यमाना नदी स्वादूदकाऽपि क्षारजला जायते। भर्तुरात्मसं(संमाना)यमनाख्यस्त्रीरक्षणोपायान्तरोपदेशार्थमिदम् ॥ २२ ॥

(४) **राघवानन्दः**। दुःशीलाय सुशीला न देया, सुशीलाय तु दुःशीलाऽपि देयेत्यत्र दृष्टार्थं सदृष्टान्तमाह **यादृगिति** द्वाभ्याम्। यादृग्गुणेन साधुना असाधुना भर्त्रा स्त्री संयुज्यते

साऽपि स्त्री तादृग्गुणा सा साध्वी असाध्वी वा भवति । तत्र दृष्टान्तः–निम्नगा स्वादूदकापि गंगाद्याः क्षारोदेन समुद्रेण संगतास्तादृशा दृष्टाः ।। २२ ।।

(५) **नन्दनः** । एवं प्रतिनियतस्वभावा अपि स्त्रियः स्वगुणानुसारेण दंड्याः कर्तुं शक्या इत्याह **यादृग्गुणेनेति** ।। २२ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । स्पष्टः ।। २२ ।।

(७) **मणिरामः** । या विधिविवाहविधिना निम्नगा नदी स्वादूदकापि क्षारजला जायते तथेत्यर्थः ।। २२ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **यादृग्गुणेनेति** । यथारूपेण साधुनाऽसाधुना वा स्त्रीभिः सह विधिना संयोगं (गो ?) भवेत् तथा रूपेण तत्सम्पर्कात् साध्वाचारा दुःशीला वा भवति । समुद्रेण संयुज्यमाना गङ्गापि तथा स्वादूदकापि क्षारोदका सम्पद्यत इत्यात्मसंयमाख्यं स्त्रीरक्षणोपायान्तरोपदेशार्थमिदम् ।। २२ ।।

(९) **भारुचिः** । आत्मसंयमनेनाप्येताः शक्या रक्षितुं मनुष्येणेत्युपायान्तरनिर्देशः । न केवलमसंयततयाऽऽत्मानमेवोपहन्ति मनुष्यः । किं तर्हि ? स्त्रियाप्युपघात (?) एवंवृत्तो वर्तत इत्यस्यार्थस्य निदर्शनम् ।। २२ ।।

**अक्षमाला वसिष्ठेन संयुक्ताऽधमयोनिजा ।।**
**शारङ्गी मन्दपालेन जगामाभ्यर्हणीयताम् ।। २३ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । हीनजातीयाऽप्यक्षमाला वसिष्ठभार्या तत्संयोगादप्यर्हणीयतां प्राप्ता । शारङ्गी तिर्यग्जातिः चटका मन्दपालेन मुनिना संयुक्ता तथैव पूज्या । अतो हीनजातीयाः कनीयस्योऽपि भूयो भर्तृवत्पूज्याः । तथा चोक्तं "वयसि स्त्रिय" इति ।। २३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । अक्षमाला अरुंधती वसिष्ठेन महर्षिणा सम्यग्योगं गता । अधमयोनिजा चतुर्वर्णतरकुलजा । सारङ्गीपक्षिणो । शार्ङ्गीति क्वचित्पाठः ।। २३ ।।

(३) **कुल्लूकः** । अत्रोत्कर्षदृष्टान्तमाह **अक्षेति** । अक्षमालाख्या निकृष्टयोनिजा वसिष्ठेन परिणीता, तथा चटका मन्दपालाख्येन ऋषिणा संगता पूज्यतां गता ।। २३ ।।

(४) **राघवानन्दः** । अत्रेतिहासं प्रमाणयति **अक्षेति** । अधमयोनिजा चण्डाली अक्षमाला ऋषीणामनुरोधेनोढा 'वसिष्ठश्चण्डालीमुपयेम' इति श्रुतेः । सारङ्गी चटका मन्दपालेन ऋषिणोढा अभ्यर्हणीयतां पूज्यताम् ।। २३ ।।

(५) **नन्दनः** । अत्रोदाहरणमाह **अक्षमालेति** ।। २३ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । अक्षमाला अरुन्धती । शार्ङ्गपक्षिणी मन्दपालेन ऋषिणा संगता अभ्यर्हणीयतां जगाम इति महाभारते आदिपर्वणि ।। २३ ।।

(७) **मणिरामः** । उत्कृष्टदृष्टांतमाह **अक्षेति** । अक्षमाला अक्षमालाख्या स्त्री । संयुक्ता परिणीता । मन्दपालेन ऋषिणा शारंगी चटका ।। २३ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। अत्र दृष्टान्तमाह **अक्षमालेति। शार्ङ्गी चेति**। अक्षमालाख्या चण्डाली परिणीता वसिष्ठेन चाटविका शार्ङ्गी च मन्दपालाख्येन ऊढा सती पूज्यतां प्राप्ता ॥ २३ ॥

**एताश्चान्याश्च लोकेऽस्मिन्नपकृष्टप्रसूतयः ॥**
**उत्कर्षं योषितः प्राप्ताः स्वैः स्वैर्भर्तृगुणैः शुभैः ॥ २४ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **अवकृष्टा** निकृष्टा **प्रसूति**रुत्पत्तिर्यासां ता **अवकृष्टप्रसूतयः** अन्याश्च गङ्गाकालीप्रभृतयः। द्वयोः प्रकृतत्वादेता इति बहुवचनं, चशब्देन तृतीयामाक्षिप्य द्विर्वचनं वा 'एते च' ॥ २४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **एता** इति पूज्यताभिप्रायेण बहुवचनम्। **अन्याः** सत्यवत्याद्याः अत्र च पञ्चमाध्यायस्त्रीधर्मोक्तस्य शब्दतोऽर्थतश्च पुनरुक्तिः पुरुषकार्यतया, तत्रात्र तु स्त्रीकार्यं तत्परिग्राह्यम् ॥ २४ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यद्यपि द्वे प्रकृते तथापि प्रदर्शनार्थत्वमनयोर्मत्वैता इति बहुवचनं कृतं। एताश्चान्याश्च सत्यवत्यादयो निकृष्टप्रसूतयः स्वभर्तृगुणैः प्रकृष्टैरस्मिँल्लोक उत्कृष्टतां प्राप्ताः ॥ २४ ॥

(४) **राघवानन्दः**। उपसंहरति **एता इति**। अवकृष्टप्रसूतयः निकृष्टयोनयः उत्कर्षं जातितः ख्यातितो पतितश्च स्वैर्भर्तृगुणैरेव प्राप्ता इत्यन्वयः ॥ २४ ॥

(५) **नन्दनः**। **एता** इति ॥ २४ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **अपकृष्टप्रसूतयः** निकृष्टजातयः ॥ २४ ॥

(७) **मणिरामः**। अन्याः सत्यवत्यादयः निकृष्टयोनिजाः ॥ २४–२५ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। एता इति। **उत्कर्षं योषितः प्राप्ताः स्वैः स्वैर्भर्तृगुणैः शुभैः**। एताः प्रकृतत्वे दर्शनार्थमनयोर्मत्वा एता इति बहुवचनमाहुः, अपि तास्तथान्याधमकुलाद्या निकृष्टपतयो नार्यः स्वभर्तुरस्मिल्लोके उत्कृष्टतां प्राप्ताः। अतो भार्यासंरक्षणार्थं मयात्मसंयम आश्रयणीयः ॥ २४ ॥

**एषोदिता लोकयात्रा नित्यं स्त्रीपुंसयोः शुभा ॥**
**प्रेत्येह च सुखोदर्कान्प्रजाधर्मान्निबोधत ॥ २५ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। "ननु च का सुखोदर्कता प्रजाधर्मस्य। या च प्रजाऽस्याधीना स्त्रियश्च बहुभिर्दोषैरावृतत्वत्यागार्हा, को हि गृहे सर्वान्बिभृयात्"–इत्येतन्निवृत्त्यर्थमाह। **लौकयात्रा** लोकवृत्तं लोकाचारः। लोकसिद्धमेतत्। नायं विधिलक्षणोऽर्थो यदेवं शक्यते रक्षितुं नान्यथेति–अपरिरक्षिताभिश्च ताभिः प्रसूत्यादिदोषो भवतीति। इदानीं **प्रजाधर्मान्निबोधत**। कस्य प्रजा बीजिनो वा क्षेत्रिणो वेति। **उदर्क** आगामी कालः स **मुखो** येषाम्। सर्वे हि वस्त्ववसाने विरमन्ते–ते तु नैवमिति प्रशंसा ॥ २५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। प्रजाधर्मान् प्रजोत्पादनार्थं धर्मान् ।। २५ ।।

(३) **कुल्लूकः**। एष लोकाचारो जायापतिविषयः सदा शुभ उक्तः, इदानीमिह्लोके परलोके चोत्तरकालशुभसुखहेतून् 'किं क्षेत्रिणोऽपत्यमुत बीजिन' इत्यादीन्प्रजाधर्मान् शृणुत ।।२५।।

(४) **राघवानन्दः**। स्त्रीणां स्वाभाविकौपाधिकधर्मानुपसंहरन् तत्कार्यप्रजनप्रकारमाह **एषेति**। लोकयात्रा लोकाचारपरंपरा। सुखोदर्कान् इह दृष्टसुखमुत्तरकालेऽपि तत्कृतसुकृतजं सुखं येभ्यस्तान् प्रजाधर्मान् प्रजैव धर्मस्तान् पुत्रेणायं लोकः। 'दश पूर्वापरान्वंश्यानात्मानं चैकविंशकम्। ब्राह्मीपुत्रः सुकृतकृत्तारयेत्।' इत्यादिश्रुतिस्मृतिभ्यो धर्महेतुत्वश्रवणात्प्रजायाः ।। २५ ।।

(५) **नन्दनः**। गार्हस्थ्यस्य स्त्रीनिबन्धनत्वात्स्त्रीणां संमानेन रक्षणं कार्यं, नावमाननेनेत्यभिप्रायेणाह **एषोदितेति** ।। २५ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। यात्रा चर्या ।। २५ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **एष** इति। एष लोकाचारः सर्वो वः शुभो दम्पतीनिर्णय उक्तः, इदानीं सुखहेतून् कृपणो पण्यसुतजीविनोश्चोभयोरित्येवंविधान् प्रजाधर्मान् शृणुत ।। २५ ।।

(९) **भारुचिः**। कस्य प्रजा किं क्षेत्रिणो बीजिनः उभयोर्वेति ।।२५।।

**प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः ।।**
**स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन ।। २६ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। शक्यप्रतिविधानत्वाद्दोषाणां **पूजार्हाः**। यदेतद्दोषप्रपञ्चनं तन्नावज्ञानार्थं परिवर्जनार्थं वाऽभिशस्तपतितादिवत्। किं तर्हि? रक्षार्थं दोषाणाम्। न हि भिक्षुकाः सन्तीति स्थाली नाधिश्रियते। न च मृगाः सन्तीति यवा नोप्यन्त इति।

प्रजनं गर्भग्रहणात्प्रभृत्यपत्यपरिपोषणपर्यन्तो व्यापारोऽभिप्रेतः। तथा च वक्ष्यति "उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम्" इति (९।२७)। **गृहे दीप्तय** इव। न हि गृहे सेवा स्त्रीभिर्विना काचिदस्तीति सुप्रसिद्धमेतत्। सत्यपि श्रीविभवे भार्यायामसत्यां सुहृत्स्वजनादिष्वागतेषु न गृहस्थाः प्रतिपुरुषं भोजनादिभिरावर्जयितुं समर्थाः। यथा दरिद्रे न भवति शक्तिः **अतः स्त्रियः श्रियश्च न विशेषो गेहेष्विति** ।। २६ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। प्रजनार्थं संतानार्थम्। महाभागा महाभाग्याः ।। २६ ।।

(३) **कुल्लूकः**। यद्यप्यासां रक्षणार्थं दोषा उक्तास्तथापि शक्यप्रतीकारत्वादिह दोषाभावः। एताः स्त्रियो महोपकारा गर्भोत्पादनार्थं बहुकल्याणभाजनभूताः वस्त्रालङ्कारादिदानेन संमानार्हाः स्वगृहे शोभाकारिण्यः स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु तुल्यरूपाः; नानयोर्विशेषो विद्यते। **यथा निःश्रीकं गृहं न राजत्येवं निःस्त्रीकमिति** ।। २६ ।।

(४) **राघवानन्दः**। गर्भधारणपोषणाभ्यां तेन माता गरीयसीति मानयन् स्त्रियं स्तौति **प्रजनार्थमिति** त्रिभिः। प्रजनार्थं प्रजनमपत्यं तस्मै। गृहदीप्तयः गृहस्य दीप्तिः शोभा याभ्यस्ताः स्त्रिय एव श्रियः, श्रीहेतुत्वात् ॥ २६ ॥

(५) **नन्दनः**। न विशेषोऽस्ति स्त्रीणां श्रीणाञ्च ॥ २६ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **प्रजनार्थं** सन्तानार्थम्, गेहेषु स्त्रियः श्रियः लक्ष्मीरूपाः पूजायोग्याः ॥ २६ ॥

(७) **मणिरामः**। प्रजनार्थं गर्भोत्पादनार्थं। महाभागाः बहुकल्याणभाजनभूताः प्रजार्हाः वस्त्रालंकारादिना प्रजायोग्याः गृहदीप्तयः गृहशोभाकारिण्यः ॥ २६ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **प्रजनार्थमिति**। एवमेषां दोषवत्यपि शक्यप्रतीकारत्वादतः स्त्रियो माल्यवस्त्रालङ्करणादिदानेन सम्पादनार्हाः। एताश्च गृहशोभाभूताः स्त्रियः श्रियश्च गृहेषु तुल्यरूपाः निःश्रीकं गृहं न राजते स्त्रीं विना गृहं च। एवं महाधनमपि प्रजानिमित्तत्वात् स्त्रीणामियं श्लोकत्रयेऽपि भूतिः ॥ २६ ॥

(९) **भारुचिः**। एषोऽस्याभिप्रायः—सर्वदोषावस्कन्नानामपि हि स्त्रीणां प्रजननायोगात् महाप्रयोजनत्वे सत्ययुक्तस्तासां परित्यागः; प्रायश्चित्तप्रत्याहरणीयत्वात्। तथा च वक्ष्यति 'संयतां वासयेत् गृहे। यत्पुंसः परदारेषु कश्चैनां चारयेद्व्रतमि'ति वचनात्। न चाकस्मात् स्तुतिः प्रवर्तत इति कृत्वाऽवश्यमेतदभ्युपगन्तव्यम्। यतश्च ॥ २६ ॥

## उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम् ॥
## प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्री निबन्धनम् ॥ २७ ॥

(१) **मेधातिथिः**। **स्त्री निबन्धनम्** निमित्तम्। अपत्योत्पादनादौ **प्रत्यक्षमेतत्**। **लोकयात्रा** गृहागतानामन्नादिदानेनावर्जनमामन्त्रणनिमन्त्रणादि। अस्य **प्रत्यर्थं** सर्वस्मिन्नर्थे **स्त्री निबन्धनम्**। प्रत्यहमिति पाठः। **प्रत्यक्ष**शब्दोऽन्तरङ्गवचनः, अन्तरङ्गमित्यर्थः ॥ २७ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। उत्पादनमुत्पत्तेः कारणं स्त्री। परिपालनं रक्षाकारणभूता। प्रीत्यर्थं या लोकस्य यात्रा व्यवहारः संभोगस्तस्य निबन्धनं स्त्री प्रत्यक्षं नतु पक्षो धर्मादिवत्। प्रत्यर्थमिति पाठे प्रतिविषयमित्यर्थः ॥ २७ ॥

(३) **कुल्लूकः**। अपि च **उत्पादेति**। अपत्यस्य जननं जातस्य परिपालनं प्रतिदिनं चातिथिमित्रभोजनादेर्लोकव्यवहारस्य प्रत्यक्षं भार्यैव निदानम् ॥ २७ ॥

(४) **राघवानन्दः**। तदेवाह **उदिति**। **लोकयात्रायाः** अतिथिबन्धुमित्रभोजनादेर्व्यवहारस्य **स्त्री निबन्धनं** स्त्री हेतुरिति प्रत्यक्षम् ॥ २७ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **प्रीत्यर्थं लोकयात्रा** प्रियोक्तिसंभोगरूपलोकव्यवहारस्य **प्रत्यक्षं स्त्री** निबन्धनं निमित्तम् ॥ २७ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **उत्पादनमिति**। **प्रीत्यर्थं लोकयात्रायाः प्रत्यहं स्त्री निबन्धनम्**। अपत्योत्पादनं जातस्य च पालनं मित्रबन्धुभोजनादेश्च लोकव्यवहारस्य एकैकगुणः ॥ २७ ॥

(९) **भारुचिः**। अयमपरः स्त्रीप्रशंसार्थः श्लोकः पूर्वोक्तप्रयोजनार्थ एव विज्ञेयः ॥ २७ ॥

**अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा ॥**
**दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितॄणामात्मनश्च ह ॥ २८ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। प्राग्दर्शितार्थोऽयं श्लोकः ॥ २८ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। शुश्रूषोपचारः। रतिः कामसुखम् ॥ २८ ॥

(३) **कुल्लूकः**। अपत्योत्पादनमुक्तमप्येतदभ्यर्हितत्वज्ञापनार्थं पुनरभिधानम्। धर्मकार्याण्यग्निहोत्रादीनि परिचर्योत्कृष्टा रतिः पितॄणामात्मनश्चापत्यजननादिना स्वर्ग इत्येतत्सर्वं भार्याधीनम् ॥ २८ ॥

(४) **राघवानन्दः**। धर्मकार्याणि बल्यग्निहोत्रादीनि शुश्रूषाऽतिथ्यादीनां। रतिः स्त्रीसंपर्कजा प्रीतिः। 'स्वर्गे यत्कर्तव्यं तदनया सहे'ति श्रुतेः। एतत्सर्वं दाराधीनमिति द्योतयति हकारः ॥ २८ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **अपत्यमिति**। **दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितॄणामात्मनः सदा**। प्रजोत्पादनमग्निहोत्रसाधनशरीरशुश्रूषारतिक्रीडापितॄणामात्मनश्चापत्यजननादिना स्वर्ग इत्येतत् सदा भार्यायत्तम् ॥ २८ ॥

(९) **भारुचिः**। किञ्चान्यत्। येन अ(त)श्च यथोक्त एवार्थो विज्ञेयः ॥ २८ ॥

**पतिं या नाभिचरति मनोवाग्देहसंयता ॥**
**सा भर्तृलोकानाप्नोति सद्भिः साध्वीति चोच्यते ॥ २९ ॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अभिचरति मनोवाग्देहसंयतेति मनःप्रभृतिभिर्न व्यभिचरतीत्यर्थः। वाग्व्यभिचारः परपुरुषादिप्रशंसा। कायेन तद्वीक्षणस्पर्शादि ॥ २९ ॥

(३) **कुल्लूकः**। या स्त्री मनोवाग्देहसंयता सतीति विशेषणोपादानसामर्थ्यान्मनोवाग्देहैरेव न व्यभिचरति सा भर्त्रा सहार्जितान्स्वर्गादिलोकानाप्नोति, इहलोके च विशिष्टैः साध्वीत्युच्यते ॥ २९ ॥

(४) **राघवानन्दः**। तां दृष्टादृष्टफलेन प्रलोभयन्निव व्यभिचारान्निवर्तयति **पतिमिति**। या वाङ्मनोदेहेषु संयता सती नातिक्रमते सा भर्तृलोकं स्वर्गादिकं प्राप्नोति, साध्वी चेहोच्यते इति शेषः ॥ २९ ॥

(५) **नन्दनः**। एवं स्त्रीषु पुरुषाणां कर्तव्यमुक्तमिदानीं पुरुषेषु स्त्रीणामाह **पतिमिति** ॥ २९ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। मनोवाक्कायकर्मभिः वाग्दण्डसंयता ॥ २९ ॥

(७) **मणिरामः**। मनोवाग्देहसंयता सती मनोवाग्देहैरेव या पतिं न व्यभिचरति ॥ २९ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **पतिमिति**। **या मनोवाग्देहसंयता** सती मनोवाग्देहैः **पतिं न व्यभिचरति सा भर्त्राजितान् स्वर्गलोकान् प्राप्नोति सा साध्वीति चोच्यते** ॥ २९ ॥

**व्यभिचारात्तु भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निंद्यताम् ॥**
**शृगालयोनिं चाप्नोति पापरोगैश्च पीड्यते ॥ ३० ॥**

(१) **मेधातिथिः**। पञ्चमे श्लोकाविमौ (५। १६४–१६५) व्याख्यातौ ॥ २९-३० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। शृगालयोनिमतिमहापातकभोग्यनरकाद्युपलक्षणम्। तदन्ते शृगालयोनिगमनात् पापरोगैः क्षयादिभिः ॥ ३० ॥

(३) **कुल्लूकः**। पुरुषान्तरसंपर्कात्स्त्री लोके निन्द्यतां जन्मान्तरे च शृगालजातिं प्राप्नोति, पापरोगादिभिश्च पीड्यते। पञ्चमाध्याये स्त्रीधर्म उक्तमप्येतच्छ्लोकद्वयं सदपत्यसंपत्त्यर्थत्वेन महाप्रयोजनतया पुनः पठितम् ॥ ३० ॥

(४) **राघवानन्दः**। विपक्षे दण्डमाह **व्यभिचारादिति**। व्यभिचारात् स्वभर्तारं व्यतीत्याभिमुख्येनान्यत्र मनोवाग्देहानां चरणात् गतैः पापरोगैः कुष्ठादिभिः पीड्यते पीडिता स्यात् ॥ ३० ॥

(७) **मणिरामः**। भर्तुः व्यभिचारात् परपुरुषांतरसंपर्कात् ॥ ३० ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **व्यभिचारादिति**। दुर्जनसंसर्गाल्लोके स्त्री गर्ह्यतां, जन्मान्तरे शृगालयोनिं चाप्नोति। अन्तःकरैश्च कुठारै रोगादिभिः पीड्यते। महाप्रयोजनतया स्त्रीणामुत्सेकोत्पत्त्याशङ्कायां तन्निवारणार्थमिह पुनरुक्तम् ॥ ३० ॥

(९) **भारुचिः**। यस्मात्तस्मादाभिः भर्तृपारतन्त्र्यं न मोक्तव्यम् ॥ ३० ॥

**पुत्रं प्रत्युदितं सद्भिः पूर्वजैश्च महर्षिभिः ॥**
**विश्वजन्यमिमं पुण्यमुपन्यासं निबोधत ॥ ३१ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **उपन्यासो** विचार्यवस्तुप्रक्षेपः, विचारो वा। तं **निबोधत पुत्रं प्रति** पुत्रमधिकृत्योदितमुक्तम्। **सद्भिर्विद्वद्भिर्महर्षिभिश्च**। **विश्वजन्यं** सर्वेभ्यो जनेभ्यो हितम्। **पुण्यं** कल्याणकरम्। स्त्रीस्तुत्या व्यवधानात् 'प्रजाधर्मं निबोधत' इत्यस्यार्थस्यापि पुनरादरार्थमुपन्यासः **उपन्यासं निबोधतेति** ॥ ३१ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। एवं स्त्रीणां नियते यत्र क्वचिद्दैवाद्व्यभिचारस्तत्र यः पुत्रं प्रति बीजिनोऽपत्यं क्षेत्रिणो वेत्यपत्यार्थः उपन्यासस्तं शृणुत। सद्भिर्वर्तमानैः पूर्वजैरतीतैः। विश्वजन्यं विश्वजनहितम् ॥ ३१ ॥

(३) **कुल्लूकः**। पुत्रमधिकृत्य शिष्टैर्मन्वादिभिः पूर्वमुत्पन्नैश्च महर्षिभिरभिहितमिमं वक्ष्यमाणं सर्वजनहितं विचारं शृणुत ।। ३१ ।।

(४) **राघवानन्दः**। प्रजननार्थमित्युक्तं तदेवाह **पुत्रमिति**। पुत्रमुद्दिश्योपन्यासं विचारं **निबोधत** शृणुत। विश्वजन्यं विश्वस्मै सर्वस्मै जनाय हितं पुण्यं पुण्यफलदम् ।। ३१ ।।

(५) **नन्दनः**। 'इदानीं बीजिनः किं पुत्रः क्षेत्रिणो वे'त्येतन्निरूपयितुमुपक्रमते **पुत्रं प्रत्युदितमिति**। विश्वजन्यं विश्वजनहितं। इमं वक्ष्यमाणम् ।। ३१ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। विश्वजन्यं सकलजनहितम्। उपन्यासं व्याख्यानम् ।। ३१ ।।

(७) **मणिरामः**। पुत्रं प्रति पुत्रमधिकृत्यसद्भिः मन्वादिभिः। पूर्वजैश्च महर्षिभिः उदितं कथितं इमं वक्ष्यमाणं विश्वजन्यं सर्वजनहितं उपन्यासं विवादं निबोधत शृणुत ।। ३१ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **पुत्रमिति**। पुनरधिकृत्य शिष्टैर्मन्वादिभिः पूर्वजातैश्चान्यैर्महर्षिभिः संवक्ष्यमाणं सर्वजनहितं कल्याणकरं परं शृणुत ।। ३१ ।।

(९) **भारुचिः**। यथा विश्वजन्योऽसौ तथेदमुच्यते ।। ३१ ।।

**भर्तुः पुत्रं विजानन्ति श्रुतिद्वैधं तु भर्तरि ।।**
**आहुरुत्पादकं केचिदपरे क्षेत्रिणं विदुः ।। ३२ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **भर्ता** उद्वोढा। विवाहसंस्कारेण संस्कृता येन या नारी तस्यां **यस्तस्मादेव** जातस्तं **पुत्रं** तस्य **विजानन्त्यभ्युपगच्छन्ति** सर्व एव विद्वांसः। नात्र विप्रतिपत्तिः। सिद्धांतोऽयम्।

**श्रुतिद्वैधं तु कर्तरि**। यः कर्तैव केवलमुत्पादयिताऽन्यदीयक्षेत्रे न तूद्वोढा—तत्र **श्रुतिद्वैधं** मतभेदः, तं दर्शयति-**आहुरुत्पादकमपत्यवन्तं केचित्**। **अपरे क्षेत्रिणम्**—यस्य सा भार्या तस्यामनुत्पादकमपि। एवमाचार्यविप्रतिपत्तेः संशयमुपन्यस्य कारणकथनेन तमेव समर्थयते ।। ३२ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। भर्तुर्भार्यावतः पाणिग्राहस्य पुत्रं सर्वे विजानन्ति। केचित्तु बीजिनः। श्रुतेर्द्वैधं श्रुतौ 'बीजिनः पुत्र' इति दर्शनात् श्रुतिकृतं द्वैधं सन्देहः। तथा हि— 'न शेषोऽग्रे अन्यजातमस्ती'त्यादिश्रुतेः। शेषः पुत्रः अन्येन जनितः पुत्रो नास्तीत्यस्या अर्थः। एतेन न क्षेत्रिणः किंतु जनकस्यैवेति गम्यते, अत एव दर्शनात्केचिदुत्पादकमाहुः, अन्ये तु न्यायबलात्क्षेत्रिणमिति ।। ३२ ।।

(३) **कुल्लूकः**। भर्तुः पुत्रो भवतीति मुनयो मन्यन्ते। भर्तरि द्विःप्रकारा श्रुतिर्वर्तते। केचिदुत्पादकमवोढारमपि भर्तारं तेन पुत्रेण पुत्रिणमाहुः, अन्ये तु वोढारं भर्तारमनुत्पादकमप्यन्यजनितेन पुत्रेण पुत्रिणमाहुः ।। ३२ ।।

(४) **राघवानन्दः**। विचारमेवाह **भर्तुरिति**। तत्र भर्तृत्वं द्विविधं श्रुतिद्वैविध्याद्वोढृत्वाऽवोढृत्वभेदात्। तत्रावोढृत्वेनापत्योत्पादकमपि भर्तारमाहुः। गर्भधारणात्पुत्र-

स्यानुत्पादकत्वेऽपि वोढृत्वेन तत्र वोढुः क्षेत्रसंबन्धात्वात्पुत्रो भवेत्। तदुक्तं **याज्ञवल्क्येन** (आचा. ६९) 'अनेन विधिना जातः क्षेत्रिणः संभवेत्सुत' इति ॥ ३२ ॥

(५) **नन्दनः**। भर्तृशब्दः स्वामिवचनः, भर्तरि श्रुतिद्वैविध्यं, कर्तरीति पाठेऽप्ययमेवार्थः उत्तरार्धेन द्वैविध्यमेवोच्यते उत्पादकं बीजिनं कर्तारं केचिदाहुः ॥ ३२ ॥

(७) **मणिरामः**। भर्तुः पुत्रं विजानंति भर्तुः पुत्रो भवतीति मुनयो मन्यंते, तत्र भर्तरि श्रुतिद्वैधं द्विःप्रकारा श्रुतिः आहुः। यथा केचित् आचार्याः उत्पादकं अवोढारमपि भर्तारं तेन पुत्रेण पुत्रिणं आहुरित्यर्थः ॥ ३२ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **भर्तुरिति**। यो भर्ता साक्षादुत्पादितपुत्र इति तं यो न मन्यते नात्र विप्रतिपत्ति(त्तिः), यत्र पुनरुद्वोढा जनयिता तत्र द्विःप्रकारा श्रुतिः। केचिदुत्पादकमवोढारं अपि तेन पुत्रेण पुत्रवन्तमात्मानमाहुः। अपरे तु क्षेत्रस्वामिनं वोढारमन्यजनितेनापि पुत्रेण पुत्रवन्तमाहुः ॥ ३२ ॥

(९) **भारुचिः**। अपरेषां पक्ष उभयोः ॥ ३२ ॥

**क्षेत्रभूता स्मृता नारी बीजभूतः स्मृतः पुमान् ॥**
**क्षेत्रबीजसमायोगात्संभवः सर्वदेहिनाम् ॥ ३३ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। क्षेत्रमिव **क्षेत्रभूता नारी**। व्रीह्यादेरुत्पत्तिस्थानं भूमिभागः क्षेत्रं, तत्तुल्या नारी। यथा क्षेत्रे बीजमुप्तं तत्र विधियमाणं जायते, एवं नार्यामपि निषिक्तं रेतः। **बीजभूत** एव **पुमान्**। अत्रापि **भूत**शब्द उपमायाम्। तदीयं रेतो 'बीजं' **न** साक्षात्पुमान्—तदधिकरणत्वात्तु तथावद्व्यपदिश्यते। **समायोगः** संबन्ध आधाराधेयलक्षणः। ततः **संभव** उत्पत्तिः **सर्वदेहिनां** शरीरिणाम्। चतुर्विधस्य भूतग्रामस्य। स्वेदजानामप्याकाशः क्षेत्रं, बीजं स्वेदः। अतो युक्तः संशयः; उभयमन्तरेण संभवानुपपत्तेः। अपत्योत्पत्तौ उभयोर्व्यापारः। विनिगमनाय च हेत्वभावात्कस्य तत् ?—उभयोः अथान्यतरस्येति संदेहः।

सर्वस्य च प्रकरणस्यायमर्थो नानुमानपरिच्छेद्योऽपत्यापत्यवद्भावः। तथा च विभागश्लोके वक्ष्यामः ॥ ३३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। एवं च क्षेत्रसंबन्धात्क्षेत्रिणो बीजसंबन्धाद्बीजिन इत्युभयोरपि प्राप्तम्॥ ३३ ॥

(३) **कुल्लूकः**। व्रीह्याद्युत्पत्तिस्थानं क्षेत्रं तत्तुल्या स्त्री मुनिभिः स्मृता, पुरुषश्च व्रीह्यादिबीजतुल्यः स्मृतः; यद्यपि रेतो बीजं तथापि तदधिकरणत्वात्पुरुषो बीजमिति व्यपदिश्यते। क्षेत्रबीजसमायोगात्सर्वप्राणिनामुत्पत्तिः, एवं चोभयोः कारणत्वस्याविशिष्टत्वाद्युक्ता विप्रतिपत्तिः—किं यत्संबन्धि क्षेत्रं तस्यापत्यमुत यदीयबीजं तस्येति ॥ ३३ ॥

(४) **राघवानन्दः**। क्षेत्रिणमिति प्रसंगेन क्षेत्रबीजे व्याकुर्वंस्तयोः कृत्यमाह **क्षेत्रेति**। क्षेत्रवदुत्पादनपरिपालनकर्तृत्वात्क्षेत्रभूता। बीजं रेतः तदाश्रयत्वाद्बीजभूतः तत्र चेतनस्य रजोरेतःसंयोगादचेतनस्य भूबीजसंयोगात् संभव उत्पत्तिः ।। ३३ ।

(५) **नन्दनः**। द्वैविध्ययुक्तिमाह **क्षेत्रभूता स्मृतेति**। तस्माद्युक्तं द्वैविध्यमिति ।। ३३ ।।

(७) **मणिरामः**। क्षेत्रभूता बीजाद्युत्पत्तिस्थानं क्षेत्रं तत्तुल्या, एवं चोभयोर्भर्त्रोः कारणविशिष्टत्वाद्विप्रतिपत्तिर्युक्ता – किं यत्संबंधि क्षेत्रं तस्याऽपत्यं, उत यदीयं बीजं तस्यापत्यमिति ।। ३३ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **क्षेत्रभूतेति**। व्रीह्याद्युत्पत्तिस्थानतुल्या ऋषिभिः स्मृता, मनुष्यश्च व्रीह्यादिबीजतुल्यः स्मृतो यस्मात्क्षेत्रबीजसंयोगात्सर्वप्राणिनामुत्पत्तिरेवं चोभयोः कारणत्वस्यातिशिष्टत्वाद् युक्ता विप्रतिपत्तिः – किं यत्सम्बन्धि क्षेत्रं तस्यापत्यं उत बीजिनः ? इति ।। ३३ ।।

(९) **भारुचिः**। अस्या विप्रतिपत्तेः कारणमाह अत एतस्मात् कारणाद् युक्तेयं विप्रतिपत्तिः ।। ३३ ।।

**विशिष्टं कुत्रचिद्बीजं स्त्रीयोनिस्त्वेव कुत्रचित् ।।**
**उभयं तु समं यत्र सा प्रसूतिः प्रशस्यते ।।३४ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। बीजस्य वैशिष्ट्यं व्यासऋष्यशृङ्गादीनां महर्षीणां दृष्टम्। **स्त्रीयोनिस्त्वेव** क्षेत्रजादिपुत्रेषु धृतराष्ट्रादिषु। ब्राह्मणाज्जाता अपि मातृजातयः क्षत्रियास्ते। **उभयं तु समं** एकस्वामिकमेकजातीयं **समम्**। **सा प्रसूतिः प्रशस्यते** विप्रतिपत्त्यभावात्। तदुक्तमेतत् (९।३२)–"भर्तुः पुत्रं विजानन्तीति" ।। ३४ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। युक्त्यन्तरमाह **विशिष्टमिति**। बीजं बीजी पुरुषः विशिष्टं ब्राह्मण्यादिगुणवत्। अन्यतरविशिष्टत्वेन प्रजा विशिष्टा न भवति, किंतु यत्रोभयं विशिष्टं स एव प्रसवः शस्यते, उभयोः प्राधान्यात्। अतः क्षेत्रद्वारा क्षेत्रिणोऽप्यपत्यमित्यर्थः ।। ३४ ।।

(३) **कुल्लूकः**। क्वचिद्बीजं प्रधानं 'जाता ये त्वनियुक्तायां'मिति न्यायेनोत्पन्नो बीजिनो बुध इव सोमस्य। तथा व्यासऋष्यशृङ्गाद्यो बीजिनामेव सुताः। क्वचित्क्षेत्रस्य प्राधान्यं यथा 'यस्तल्पजः प्रमीतस्य' (९।१६७) इति वक्ष्यति। अत एव विचित्रवीर्यक्षेत्रे क्षत्रियायां ब्राह्मणोत्पादिता अपि धृतराष्ट्रादयः क्षत्रियाः क्षेत्रिण एव पुत्रा बभूवुः। यत्र पुनर्बीजयोन्योः साम्यं तत्र वोढैव जनयिता तदपत्यं प्रशस्तं भवति, तत्र बीजप्राधान्यापेक्षं तावदाहुः ।।३४।।

(४) **राघवानन्दः**। तत्र तयोः प्राधान्यं भिन्दानः समे कार्यं प्रशंसति **विशिष्टमिति**। बीजस्य प्राधान्यं व्यासऋष्यशृङ्गादौ तेनैषां ब्राह्मण्यमेवोत्कृष्टता। क्षेत्रस्य प्राधान्यं धृतराष्ट्रविदुरादौ क्षत्रियक्षेतृत्वे। उभयं बीजयोन्यात्मकमनूढो सजातीयपरिणयेन समं यत्र प्रसूतौ सा प्रसूतिरत्यंतं प्रशस्यत इत्यन्वयः ।। ३४ ।।

(५) **नन्दनः**। स्वमतमाह **विशिष्टं कुत्रचिदिति**, कुत्रचित्प्रसूतौ बीजं विशिष्टं, न सर्वत्र। प्रसूतिः शिष्टा एवं स्थित उभयत्र समं एकजातीयम् ॥ ३४ ॥

(७) **मणिरामः**। क्वचित् बीजं विशिष्टं प्रधानं। यथा बुध-व्यास-ऋष्यशृङ्गादयो बीजिनावत्पाराशरादीनामेव पुत्राः। क्वचित् योनिः क्षेत्रं प्रधानं। यथा धृतराष्ट्रादयो ब्राह्मणोत्पन्ना अपि क्षत्रियक्षेत्रोत्पन्नाः क्षत्रिया विचित्रवीर्यस्यैव सुताः। यत्र तु उभयं साम्यं बीजयोन्योः साम्यं सा प्रसूतिः प्रशस्यते, तत्र वोढैव जनयिता तदपत्यं भवति ॥ ३४ ॥

(८) **गोविन्दराजः। विशिष्टमिति**। कुत्रचिद्बीजं प्रधानं यत्र 'जाता ये त्वनियुक्तायां'-मिति न्यायेन शुल्कोपनीता स्त्री क्वचित्पुनः क्षेत्रं यत्र यत्तत्पजाप्रमीतस्येति न्यायेनोपनता यत्र पुनर्बीजयोन्या माता पिता च समं जनयितारौ तदपत्यं प्रशस्तं भवति ॥ ३४ ॥

(९) **भारुचिः**। विप्रतिपत्तौ स्थितं पक्षं दर्शयति–अपरेषां पक्षः इत्ययं स्थितः पक्षः आचार्यस्य विज्ञेयः ॥ ३४ ॥

**बीजस्य चैव योन्याश्च बीजमुत्कृष्टमुच्यते ॥**
**सर्वभूतप्रसूतिर्हि बीजलक्षणलक्षिता ॥ ३५ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। एवमुपपादिते संशये बीजप्राधान्यपक्षं पूर्वं परिगृह्णाति। तत्प्राधान्याद्यस्य बीजं तस्यापत्यम्। तस्य च प्राधान्यं व्रीह्यादेर्द्रव्यस्य क्षित्याद्यनेककारणत्वेऽपि तद्धर्मानुविधानदर्शनात्। अतश्च स्फुटमदृष्टबीजानुविधानस्यापत्यस्य कार्यत्वाद् व्रीह्यादीनामिव तद्धर्मानुविधायित्वं युक्तमभ्युपगंतुम्। तथा हि–सर्वत्र कार्य ऐक्यरूप्यं न त्यक्तं भवति। तथा च बीजे प्राधान्यं तद्दर्शयति **सर्वभूतप्रसूतिर्हि**। सर्वेषां भूतानां प्रसूतिरुत्पत्ति-**बीजलक्षणलक्षिता**। बीजस्य यल्लक्षणं रूपवर्णसंस्थानादि तेन लक्षिता चिह्निता, तद्रूपानुविधायिनीति यावत् ॥ ३५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अत्र पूर्वपक्षमाह **बीजस्येति**। बीजलक्षणलक्षिता बीजजाति-प्रयुक्तनियतजातिः ॥ ३५ ॥

(३) **कुल्लूकः**। बीजक्षेत्रयोर्बीजं प्रधानमभिधीयते, यस्मात्सर्वेषां भूतारब्धानामुत्पत्तिर्बीजगतवर्णस्वरूपादिचिह्नैरुपलक्षिता दृश्यते ॥ ३५ ॥

(४) **राघवानन्दः**। भेदफलमाह **बीजस्येति**। बीजलक्षणलक्षिता बीजस्य लक्षणानि रूपसंस्थानार्थं क्रियास्तैर्लक्षिता विशिष्टा दृश्यन्ते, अत एवोपरिचरवसोरपत्यं मत्स्योदरी सत्यवती नाम ॥ ३५ ॥

(५) **नन्दनः**। अथ बीजमेव विशिष्टं षड्भिः श्लोकैराह **बीजस्य चैवेति**। बीजस्य योन्याश्च द्वयोर्मध्ये बीजलक्षणलक्षिता बीजगुणेनैव दृष्टा ॥ ३५ ॥

(७) **मणिरामः**। बीजलक्षणलक्षिता बीजगतवर्णस्वरूपादिचिह्नैः उपलक्षिता दृश्यते ॥ ३५ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। तत्र प्राधान्यपक्षे भावमाह **बीजस्येति**। बीजक्षेत्रयोर्मध्यात् **बीजं** प्रधानमुच्यते, यस्मात्सर्वपदार्थानामुत्पत्तिर्बीजगतवर्णरूपादिचिह्नेनोपलक्षिता दृश्यते ॥ ३५ ॥

(९) **भारुचिः**। अत्र पूर्वः पक्षः प्रदर्श्यते। **बीजस्येति**। यस्मात् **सर्वेति**। तथा सति **यादृशमिति**। अतश्च बीजानां तत्प्राधान्यम् ॥ ३५-३६ ॥

**यादृशं तूप्यते बीजं क्षेत्रे कालोपपादिते ॥**
**तादृग्रोहति तत्तस्मिन्बीजं स्वैर्व्यञ्जितं गुणैः ॥ ३६ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। अनन्तरस्यैवार्थविस्तरत्वेन श्लोकोऽयं वक्रान्वयप्रदर्शनेन। **यादृशं** शब्दस्यार्थं व्याख्यास्यति (९।३९) 'व्रीहयः शालय' इत्यादिना। **कालोपपादिते**—काले वर्षादौ वपनकाले **उपपादिते** कृष्टसमीकरणादिना संस्कृते। **तादृग्रोहति** जायते। **स्वैर्गुणैर्वर्णसंस्थानरसवीर्यादिभिर्गुणैः व्यञ्जितं** परिदृश्यरूपम् ॥ ३६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। कालोपपादिते कालेन युक्ते। एतेन कालवत्क्षेत्रस्यापि गुणतैवेत्युक्तम्। स्वैरसाधारणैर्गुणै रूपादिभिः ॥ ३६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यज्जातीयं बीजं व्रीह्यादि ग्रीष्मादिकाले वर्षादिना संस्कृते क्षेत्र उप्यते तज्जातीयमेव तद्बीजमात्मीयैर्वर्णादिभिरुपलक्षितं तस्मिन् क्षेत्रे जायते ॥ ३६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। एतदेव प्रत्यक्षयति **यादृशमिति**। कालोपपादिते तत्तत्सस्योचितकालयुक्ते। रोहत्यङ्कुरः संपद्यते तस्मिन्नङ्कुरे तादृशबीजावयवस्वल्पाङ्कुरपत्रकाण्डादिपरंपरया। पुनस्तादृशं बीजं व्यञ्जितं स्वैर्गुणैः शाल्यादिगन्धरसैः जनयति, भूर्न ॥ ३६ ॥

(५) **नन्दनः**। एतदेव विशदयति **यादृशं तूप्यत इति**। कालोपपादितकालेन संयोजितमपि महतापि कालेनेत्यर्थः ॥ ३६ ॥

(७) **मणिरामः**। **कालोपपादिते** ग्रीष्मकाले वर्षादिना संस्कृते। **स्वैः** गुणैः आत्मीयैर्वर्णादिभिः व्यंजितं उपलक्षितं तस्मिन् क्षेत्रे तद् बीजं तादृक् रोहति जायते ॥ ३६ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। तथा च **यादृशमिति**। यज्जातीयं द्रव्यं व्रीह्यादि काले सङ्गवादौ कर्षणादिना क्षेत्रे उप्यते तज्जातीयमेव तद्बीजं स्वचिह्नैरुपलक्षितं तस्मिन्क्षेत्रे जायते ॥ ३६ ॥

**इयं भूमिर्हि भूतानां शाश्वती योनिरुच्यते ॥**
**न च योनिगुणान्कांश्चिद्बीजं पुष्यति पुष्टिषु ॥ ३७ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। बीजगुणानुवृत्तिः पूर्वेणोक्ता। अनेन क्षेत्रगुणानामभावमाह—**एषा भूमिर्भूतानां** स्थावराणामोषधीतृणगुल्मलतानां **योनिः** क्षेत्रमुच्यते। **न च** तद्गुणास्तेषु भूतेषु **केचन** दृश्यन्ते। न मृदः पांसवो वा तत्रोपलभ्यन्ते।

**बीजं पुष्यति पुष्टिषु।** बीजशब्दोऽङ्कुरनिर्गतव्रीह्यादिवचनो न मूलवचनः। तदपि हि पुनरुपभुक्तशेषमुप्यमानमपरस्मिन्वत्सरे भवत्येव बीजम्। तन्न **पुष्यति** नानुवर्तते। पुष्टचङ्गभूतायामनुवृतौ पुष्यतिर्वर्तमानः। सकर्मकत्वं द्वितीयानिमित्तम्। **योनिगुणान्प्राप्नोति** वा भजते। **पुष्टिषु** तदवयवेषु। यदि पुष्टचङ्गाऽनुवृत्तिराख्यातेनोच्यते पुष्टिष्वित्यनर्थकम्। तस्मादनेकार्थत्वाद्धातूनामन्यवचनमात्र. एवाख्यातेनानुव्याख्येयः।

श्लोकपूरणार्थं वा **पुष्टिष्विति**। कथंचित्पौनरुक्त्यं परिहार्यम्। सामान्यविशेषभावेन वाऽन्वयो वक्तव्यः। 'स्वपोषं पुष्ट' इति यथा ॥ ३७ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। पुष्टिष्वङ्कुरादिप्रादुर्भावेषु ॥ ३७ ॥

(३) **कुल्लूकः**। एवमन्वयप्रकारेण बीजप्राधान्यं प्रदर्श्य व्यतिरेकमुखेन दर्शयितुमाह **इयमिति**। हिरवधारणे, इयमेव भूमिर्भूतारब्धानां तरुगुल्मलतादीनां नित्या योनिः कारणं क्षेत्रात्मकं सर्वं लोकैरुच्यते। न च भूम्याख्ययोनिधर्मान्कांश्चिदपि मृत्स्वरूपत्वादीन्बीजं स्वविकारेष्वङ्कुरकाण्डाद्यवस्थासु भजते। भजत्यर्थत्वात्पुष्यतेः सकर्मता; तस्माद्योनिगुणानुवर्तनाभावान्न क्षेत्रप्राधान्यम् ॥ ३७ ॥

(४) **राघवानन्दः**। एतदेव व्यनक्ति **इयमिति**। इयं प्रत्यक्षापि शाश्वती नित्या योनिरपि न स्वगुणान्पुष्यति समर्पयति। पुष्टिषु वृक्षादिषु। बीजं तु स्वानुरूपाणि प्ररोहकाण्डपत्रपुष्पफलरसगन्धादीनि पुष्णाति पोषणेन प्रकटयति ॥ ३७ ॥

(५) **नन्दनः**। एतदेव व्यतिरेकमुखेन दर्शयति **इयं भूमिर्हि भूतानामिति**। शाश्वती **चिरन्तनी**। एतावता चिरेण कालेन भूमिगुणः किञ्चिद्बीजं नहि पुष्यति ॥ ३७ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। सर्वभूतिर्हि भूतानामिति पाठः। **पुष्टिषु** अङ्कुरादिप्रादुर्भावेषु ॥ ३७ ॥

(७) **मणिरामः**। अन्वयदर्शनेन बीजप्राधान्यं प्रदर्श्येदानीं व्यतिरेकेण दर्शयति **इयमिति**। हिः अवधारणे, इयमेव भूमिः। भूतानां भूतारब्धानां तरुगुल्मलतादीनां योनिः कारणं सर्वलोकैः उच्यते। योनिगुणान् भूम्याख्ययोनिधर्मान् कांश्चिदपि मृत्स्वरूपत्वादीन् बीजं पुष्टिषु स्वविषयेषु करकांडाद्यवस्थास्तु नच पुष्यति न भजति। तस्मात् योनिगुणान्। न वर्तमानाख्यक्षेत्रस्य प्राधान्यं ॥ ३७ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। एवमन्वयद्वारेण बीजप्राधान्यं प्रदर्श्य व्यतिरेकगुणेन संश(शंस)यितुमाह **इयमिति**। यस्मात्तु गुल्मलतादीनां भूतानामेषा भूमिर्यदि योनिः क्षेत्रं सर्वलोकैरुच्यते न च भूम्याख्ययोनिधर्मः कांश्चिदपि मृन्मयत्वादीन् गुणान् गुल्मादिबीजमात्मदोषे स्वाङ्कुरकाण्डव्यवस्थासु खलु वर्तते तस्माद्योनिगुणाननुवर्तमाना प्रक्षेपं प्रधानम् ॥ ३७ ॥

(९) **भारुचिः**। अतश्च तद्धर्माननुवृत्तेर्बीजस्य क्षेत्रमप्रधानम्। यतश्च ॥ ३७ ॥

**भूमावप्येककेदारे कालोप्तानि कृषीवलैः ।।**
**नानारूपाणि जायन्ते बीजानीह स्वभावतः ।। ३८ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। अनन्तरोक्तोऽर्थ उदाहरणेन व्याक्रियते। **एककेदारे**–'अपि'रत्र योजनीयः। एकस्मिन्नपि क्षेत्रे भूमेः। **काले** यस्य बीजस्य यो वैकः कालस्तस्मिन् **उप्तानि** कर्षकैः **भिन्नरूपाणि जायन्ते, बीजानि** स्वभावानुविधानादित्यर्थः। यदि च क्षेत्रे प्राधान्यं स्यात्क्षेत्रस्यैकत्वात्सर्वाण्येकरूपाणि स्युः ।। ३८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। भूमिगुणपोषणमुक्त्वा बीजगुणपुष्टिमाह **भूमाविति**। एककेदार इत्यन्तमनुप्रयोगकथनम्। स्वभावतः स्वस्य यो भावो धर्मः शालित्वादिस्तेन सदृशम् ।। ३८ ।।

(३) **कुल्लूकः**। अपि च **भूमाविति**। भूमावेकस्मिन्नपि केदारे कर्षकैर्वपनकालोप्तानि व्रीहिमुद्गादीनि नानारूपाण्येव बीजस्वभावाज्जायन्ते, नतु भूमेरेकत्वादेकरूपाणि भवन्ति ।। ३८ ।।

(४) **राघवानन्दः**। तदेव दृष्टान्तेन स्वहस्तयति **भूमाविति** द्वाभ्याम्। केदारे क्षेत्रे कृषिवलैः कर्षकैः कालोप्तानि तत्तद्बीजप्ररोहकाल उप्तानि नानारूपाणि यवशाल्यादीनि जायन्ते कार्याकारेण परिणमन्ति। स्वभावतो बीजस्वभावेन ।। ३८ ।।

(५) **नन्दनः**। बीजानां भूमिगुणपोषणे हेतुर्देशकालवैषम्यविकृत इति चेत्तत्राह **भूमावपीति**। एककेदारे समाने संस्थाने संस्कृतक्षेत्रेऽपि। कालोप्तानि नानारूपाणि भिन्नजातीयानि स्वभावतः प्रकृत्यैव। इहास्मिल्लोके जायन्ते, एकमपि बीजं स्वभावतो न व्यभिचरतीत्येतद्दर्शयितुमुक्तम् ।। ३८ ।।

(७) **मणिरामः**। अन्यच्च, **भूमेति**। नानारूपाणि व्रीहिमुद्गादीनि, न तु भ्रमेरेकत्वादेकरूपाणि भवंति ।। ३८ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। किञ्च **भूमाविति**। भूमावेकस्मिन्नपि क्षेत्रे कर्षकैर्योग्यवापनकाले कलममुद्गादीनि विचित्राण्युप्तानि बीजानि अन्यरूपाणि च बीजस्वभावानुवर्तमानाज्जायन्ते भूमावनेकरूपाणि भवन्ति ।। ३८ ।।

(९) **भारुचिः**। बीजानुविधानेन भूमिजात्यननुविधानेन च ।। ३८ ।।

**व्रीहयः शालयो मुद्गास्तिला माषास्तथा यवाः ।।**
**यथाबीजं प्ररोहन्ति लशुनानीक्षवस्तथा ।। ३९ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। तानि नानारूपत्वेन बीजानि दर्शयति– **यथाबीजम्** बीजस्वभावाभिप्रेत्या। सर्वत्र जात्याख्यायां बहुवचनम् ।। ३९ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। शालयो हेमन्तपक्वधान्यानि। व्रीहयस्तेभ्योऽन्यानि धान्यानि। लशुनानीक्षव इति निन्दितानिन्दितयोरुदाहरणम् ।। ३९ ।।

(३) **कुल्लूकः**। तथा हि **व्रीहय** इति। व्रीहयः षष्टिकाः, शालयः कलमाद्याः, **तथा** मुद्गादयो बीजस्वभावानतिक्रमेण नानारूपाणि जायन्ते ॥ ३९ ॥

(४) **राघवानन्दः**। तदेवाह **व्रीहय** इति। व्रीहयः षष्टिकाद्याः। शालयः कलमाद्याः। लशुनानि स्थूलकन्ददुर्गन्धीनि ॥ ३९ ॥

(५) **नन्दनः**। नानाबीजानां नानारूपत्वमेवोदाहरति **व्रीहयः शालय** इति ॥ ३९ ॥

(७) **मणिरामः**। तदेव प्रदर्शयति **व्रीहय** इति ॥ ३९ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **व्रीहय** इति। शूकधान्येषु मध्यादीयत्शूका (?) व्रीहयः षष्टिकाद्यानि दीर्घशूकाः शालयो रक्ता शाल्यादयस्ते तथा मुद्गादयो बीजत्वभावानतिक्रमेणैव विचित्रा जायन्ते ॥ ३९ ॥

(९) **भारुचिः**। तथा च दर्शयति **व्रीहय इति** ॥ ३९ ॥

**अन्यदुप्तं जातमन्यदित्येतन्नोपपद्यते ॥**
**उप्यते यद्धि यद्बीजं तत्तदेव प्ररोहति ॥ ४० ॥**

(१) **मेधातिथिः**। एष एवार्थः शब्दान्तरेण निगम्यते। मुद्गेषूप्तेषु व्रीहयो जायन्त इत्येतन्नास्ति। प्रतिषेधमुखेनोक्तस्य विधिमुखेन पुनः प्रतिपादनमुच्यते **यद्धि यद्बीजम्** ॥ ४० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अन्यदन्यजातीयम्। अतो बीजिन एव प्रजाः, **न क्षेत्रिण इति** समुदायार्थः ॥ ४० ॥

(३) **कुल्लूकः**। एवं च सति **अन्यदिति**। व्रीहिरुप्तो मुद्गो जायत इत्येतन्न संभवति यस्माद्यदेव बीजमुप्यते तत्तदेव जायते, एवं बीजगुणानुवर्तनात्क्षेत्रधर्माननुवृत्तेश्च **व्रीह्यादौ** मनुष्येष्वपि बीजप्राधान्यम् ॥ ४० ॥

(४) **राघवानन्दः**। एतदेवान्वयव्यतिरेकाभ्यां दृढयन्नाह **अन्यदिति**। **अन्यत्** शाल्यादिबीजमुप्तं न यवाद्याकारेण स्यादिति व्यतिरेकः। अन्वयमाह **यद्यदेवेति**। **तत्तदेव** शालिपरंपराया यदि निश्चितमेव ॥ ४० ॥

(५) **नन्दनः**। उक्तमेवार्थं निगमयति **अन्यदुप्तमिति**। प्ररोहति प्रत्यक्षतः प्ररोहति। तस्मादुप्तादन्यद्रोहतीत्येतन्नोपपद्यत इति ॥ ४० ॥

(६) **रामचन्द्रः**। अन्यत् उप्तं अन्यत् जातं एतत्कर्म न उपपद्यते न संघटते। अन्यदुक्तं अन्यद्वान्तमिति न्यायो न संघटते ॥ ४० ॥

(७) **मणिरामः**। एवं च सति **अन्येति** ॥ ४० ॥

(८) **गोविन्दराजः**। एवञ्च सति **अन्यदिति**। तिलाद्युप्तं मुद्गादि जायत इत्येतन्न संभवति। यस्माद्यदेव बीजमुप्यते शाल्यादाविव मनुष्येष्वपि बीजप्राधान्यम् ॥ ४० ॥

(९) **भारुचिः**। एवं च सति प्रत्यक्षतः **अन्यदिति** ॥ ४० ॥

**तत्प्राज्ञेन विनीतेन ज्ञानविज्ञानवेदिना ।।**
**आयुष्कामेन वप्तव्यं न जातु परयोषिति ।। ४१ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। एवं पूर्वपक्षे सिद्धान्तमाह। क्षेत्रप्राधान्यमनेनोच्यते।

"ननु च नात्र क्षेत्रप्राधान्याभिधायकं किंचित्पदमस्ति, केवलं परक्षेत्रोपगमननिषेधः श्रूयते **वप्तव्यं न जातु परयोषितीति**–परदारेषु बीजनिषेको न कर्तव्य इत्यस्यार्थः। न पुनर्यस्य क्षेत्रं तस्यापत्यमित्यनेनोक्तं भवति।"

सत्यम्। "तथा नश्यति वै क्षिप्तं बीजं परपरिग्रहे" इत्यनेनैकवाक्यत्वात् दृष्टापत्यापहारलक्षणदोषनिमित्तोऽयं प्रतिषेधः–नादृष्टार्थं उपगमनप्रतिषेधः। स हि चतुर्थे विहित एव – "न हीदृशमनायुष्यम्" (४।१३४) इत्यादिना। तस्मादन्यशेषतया प्रतिषेधश्रुतेरनन्तरेणैकवाक्यत्वादसति स्वातन्त्र्ये युक्ता क्षेत्रप्राधान्यप्रतिपादनपरता।

**प्राज्ञेन** सहजया प्रज्ञया। **विनीतेन** पित्रादिभिरनुशिष्टेन। **ज्ञानविज्ञानवेदिना** करणसाधनौ **ज्ञानविज्ञान**शब्दौ। 'ज्ञानं' वेदाङ्गशास्त्राणि। 'विज्ञानं' तर्ककलादिविषयम्। एतदुक्तं भवति – यस्य काचिद्बुद्धिर्विद्यते तेनैवं न कर्तव्यं–यतः सर्वशास्त्रेष्वेषा स्थितिः। यस्तु मूर्खस्तिर्यक्प्रख्यः सोऽत्र नाधिकृत एवेत्यनुवादोऽयम्।

**आयुष्कामेनेति** चातुर्थिकस्य प्रतिषेधस्य प्रत्यभिज्ञानार्थमेतत्। ततश्च पृथक्प्रतिषेधशङ्का निरस्ता भवति।। ४१ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। एवं पूर्वपक्षे उक्तीरुक्त्वा यद्यप्येवं तथापि लोके क्षेत्रिण एवं फलसंबन्धदर्शनात् (स्वक्षेत्रद्वारा क्षेत्रिण एव प्रजेत्याह **तत्प्राज्ञेनेति**। तद्बीजं। प्राज्ञेन स्वतो बुद्धिमता। विनीतेन गुरुशिक्षितेन। ज्ञानं धर्मविषया धीः।) विज्ञानं लोकविषया तद्वेदी तत्रत्यभावात्।। ४१ ।।

(३) **कुल्लूकः**। संप्रति क्षेत्रप्राधान्यमाह **तदिति**। तद्बीजं सहजप्रज्ञावता पित्रादिभिरनुशिष्टेन ज्ञानं वेदः, एवं विज्ञानमपि तदङ्गादिशास्त्राणि तद्वेदिनाऽऽयुरिच्छता न कदाचित्परजायायां वपनीयम्।। ४१ ।।

(४) **राघवानन्दः**। दृष्टान्तजातस्य दार्ष्टान्तिके फलितमाह **तदिति**। तस्मादर्थे ज्ञानविज्ञानवेदिना श्रुतिस्मृतिविदा न वप्तव्यं, रेत इति शेषः। परयोषिति नियुक्तायामपि न वप्तव्यमित्युक्तम्।। ४१ ।।

(५) **नन्दनः**। एवं बीजप्राधान्यमुक्तमधुना क्षेत्रप्राधान्यं चतुर्भिः श्लोकैराह **तत्प्राज्ञेनेति**। तद्बीजं, ज्ञानं लौकिकं, विज्ञानं शास्त्रजं प्रधानमिति कृत्वा परक्षेत्रे (?) वप्तव्यं क्षेत्रस्वामित्वादित्यर्थः।। ४१ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। विनीतेन गुरुशिक्षितेन। विज्ञानवेदिना ज्ञानं धर्मविषयं विज्ञानं लोकविषयं तयोर्वेदिना।। ४१ ।।

(७) **मणिरामः**। तत् बीजं।। ४१ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। इदानीं क्षेत्रप्राधान्यमाह **तदिति**। तद्बीजं प्रज्ञावता नीतियुक्तेन लोकशास्त्रव्यवहारज्ञेन ईदृशमनायुष्यं इत्युक्तत्वादायुरिच्छता न कदाचित्परभार्यायां वप्तव्यं निष्फलत्वात्। तथा च वक्ष्यति (९।४३) 'तथा नश्यति तत्क्षिप्तं बीजं परपरिग्रहे' इति ॥ ४१ ॥

(९) **भारुचिः**। एतावद्बीजप्राधान्यपक्षः। अधुना...ते ॥ ४१ ॥

**अत्र गाथा वायुगीताः कीर्तयन्ति पुराविदः ॥**
**यतो बीजं न वप्तव्यं पुंसा परपरिग्रहे ॥ ४२ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **गाथा**शब्दो वृत्तविशेषवचनः। यथोक्तं पिङ्गलेन "अत्रासिद्धं गाथेति"। अविगीताः परंपरागताः श्लोका अप्युच्यन्ते। 'तदेषापि विज्ञगाथा गीयते' इत्युक्ता 'गाथाः श्लोका उत्तरत्र वेदे पठ्यन्ते—यदस्य पूर्वमपरं तदस्येति'। **वायुना गीताः** पठिता वायुप्रोक्ताः। **पुराविदः** पुराणकल्पान्तरवेदिनः। **परपरिग्रहे** परक्षेत्रे ॥ ४२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। मा भूदायुष्कामस्य कर्तव्यं किं ततोऽत आह **अत्रेति** ॥ ४२ ॥

(३) **कुल्लूकः**। अतीतकालज्ञा अस्मिन्नर्थे वायुप्रोक्ता गाथाः छन्दोविशेषयुक्तानि वाक्यानि कथयन्ति—यथा परपुरुषेण परपत्न्यां बीजं न वप्तव्यमिति ॥ ४२ ॥

(४) **राघवानन्दः**। तत्र सतां वाक्यं प्रमाणयति **अत्रेति**। गाथाः विगीतश्लोकाः। परपरिग्रहे परगृहीतदाररूपे ॥ ४२ ॥

(५) **नन्दनः**। यथा येन हेतुना ॥ ४२ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। परपरिग्रहे परस्त्रियां यथा न वप्तव्यम् ॥ ४२ ॥

(७) **मणिरामः**। पुराविदः अतीतकालज्ञाः। परपरिग्रहे परस्त्रियां ॥ ४२ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **अत्रेति**। अस्मिन्नर्थे वायुप्रोक्ता गाथाः छन्दोविशेषयुक्तानि वाक्यानि नीतिकालज्ञाः कथयन्ति यथा परभार्यायां बीजं मनुष्येण न वप्तव्यमिति ॥ ४२ ॥

(९) **भारुचिः**। क्षेत्रप्राधान्यात् मा भूत्परक्षेत्रे बीजापहारः। अनाशु...बीजिनोऽपत्यम्। एवञ्च ॥ ४२ ॥

**नश्यतीषुर्यथाऽऽविद्धः खे विद्धमनुविध्यतः ॥**
**तथा नश्यति वै क्षिप्रं बीजं परपरिग्रहे ॥ ४३ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। ता इदानीं गाथा दर्शयति। **इषुः** शरः। स **नश्यति**। **खे** छिद्रे अन्येनेष्वासेन **विद्धं** मृगं **अनुविध्यतः** पूर्वस्य वेधकस्यात्र स्वाम्यम्।

अथवाऽऽकाशे **खे** शरः क्षिप्तो लक्ष्यमन्तरेण—**नश्यति** निष्फलो भवति—**विद्धं चानुविध्यतः**, एवं परस्त्रियां तेजो निःक्षिप्तं तस्य बीजिनः। क्षेत्रस्वामिनोऽपत्यं भवति ॥ ४३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अन्येन विद्धमनु पश्चाद्विध्यतः वृथा विध्यतः क्षिप्तोऽपीषुर्नश्यति। अन्येन पूर्वविद्धत्वेन स्वीकृतत्वादिषुविद्धत्वेऽपि पक्षिणो मांसलाभोऽत्र पूर्वपरिग्रहीतुरेवेत्यर्थः। नश्यति निष्फलं भवति ।। ४३ ।।

(३) **कुल्लूकः**। यथाऽन्येन विद्धं मृगं कृष्णसारं तस्मिन्नेव छिद्रे पश्चादन्यस्य विध्यत आविद्धः क्षिप्तः शरो निष्फलो भवति, पूर्वहन्त्रैव हतत्वात्तस्यैव तन्मृगलाभात्; एवं परपत्न्यामुप्तं बीजं शीघ्रमेव निष्फलं भवति, गर्भग्रहणानन्तरं क्षेत्रिणः सद्यः फललाभात् ।। ४३ ।।

(४) **राघवानन्दः**। परक्षेत्रे बीजस्योप्तिर्वप्तुः फलाय न पर्याप्तेति दृष्टान्तगाथामाह **नश्यतीति**। विद्धं मृगमन्येन। खे तत्कृतच्छिद्रे। खमित्युपलक्षणम्। अनुविध्यतः पश्चात्ताडयतः इषुः शरो नश्यति मृगलाभायापर्याप्तः, यतः पूर्वहन्तुरेव स शरः मृगस्य विद्यमानत्वाद्विद्धेषुर्नश्यति। पाश्चात्येन यथा स पशुर्न लभ्यते एवं गर्भो बीजिना न लभ्यत इत्यर्थः ।। ४३ ।।

(५) **नन्दनः**। तामेव गाथामाह **नश्यतीषुर्यथेति**। खे विद्धं खे संबद्धं, वायुमिति यावत्; वायुं लक्षीकृत्य विद्धो युक्तः इषुर्विध्यतः प्रहरतः पुरुषस्य यथा नश्यति निष्फलो भवति तत्फलं बीजिनो न भवति, क्षेत्रिणो भवतीत्यर्थः। क्षेत्रं प्रथमपरिग्रहीतुरेवेति ।। ४३ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। यथा क्षिप्त इषुर्बाणः खे आकाशे नश्यति, निराधारत्वात्। कीदृशः? इषुर्विद्धं लक्ष्यं अनुविध्यतः ।। ४३ ।।

(७) **मणिरामः**। यथा अन्येन विद्धं मृगं तस्मिन्नेव खे छिद्रे अनु पश्चात् अन्यस्य विध्यतः आविद्धः क्षिप्तः इषुः शरः नश्यति निष्फलो भवति, पूर्वहंत्रैव हतत्वात्; तथा परपरिग्रहे उप्तं बीजं क्षिप्रमेव नश्यति। गर्भग्रहणानंतरं क्षेत्रिणः सद्यः फललाभात् ।। ४३ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। अत्र दृष्टान्तमाह **नश्यतीषुर्यथा क्षिप्त** इति। यथाऽन्येन मृगं विद्धं तस्मिन्नेव छिद्रे अन्यथा पश्चाच्च्युतशरो निष्फलो भवति, पूर्वहन्तुरेव मृगभागत्वात्। एवं परभार्यायामुप्तं क्षिप्रमेव निष्फलं भवति। गर्भग्रहणसमनन्तरमेव क्षेत्रिणः फलमित्युक्तम् ।। ४३ ।।

**पृथोरपीमां पृथिवीं भार्यां पूर्वविदो विदुः ।।**
**स्थाणुच्छेदस्य केदारमाहुः शल्यवतो मृगम् ।। ४४ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। ईदृशोऽयं पुराणकृतो जायापतिलक्षणसम्बन्धो यद्भिन्नावपि तावेकीकृताविव दर्शयति। तथा हि अनेकवर्षसहस्रातीतपृथुसम्बन्धा मही तेनैव व्यपदिश्यते **पृथिवीति**। तस्मादन्याऽपि स्त्री यस्य भार्या तस्य पुत्रोऽन्येनापि जातः।

**स्थाणुच्छेदस्य केदारं** स्वमाहुः—सम्बन्धान्तरस्याभावात् स्वस्वामिसम्बन्धं षष्ठी प्रतिपादयति। 'स्थाणु'र्गुच्छगुल्मलतादिप्ररूढो यत्र भवति तच्छिनत्ति यः स 'स्थाणुच्छेदः'। तस्य तत्क्षेत्रं येन प्ररूढगुल्मलतावीरुधः छित्त्वा भूमिः क्षेत्रीकृता। तत्र कर्षणवपनजातं फलं तस्यैव।

**शल्यवतो** मृगमाहुरित्यनुषज्यते। बहूनां मृगमनुधावतामाखेटकार्थं यस्यैव सम्बन्धि शरशल्यं मृगे दृश्यते तस्य तमाहुः। यत् प्रथमवेद्धृश्च स भवतीत्युक्तं 'नश्यतीषुः' इत्यत्र ॥ ४४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। यथा पृथोः परिग्रहानन्तरमनेकराजपरिगृहीतार्थामपि पृथिवीं प्रथमपरिग्रहीतृत्वात्पृथोस्तस्यैव नाम्ना पृथिवीति व्यपदिशन्ति, तथा प्रथमपरिग्रहीतुरेव भार्या-ऽतोऽनन्तरं परिग्रहाद्बीजिन एव क्षेत्रं किं तस्मादित्यपि नाशङ्कनीयमित्यर्थः। स्थाणुच्छेदस्य यः प्रथमं खिलभङ्गार्थं क्षेत्रे स्थाणुमुत्पादयति तस्य न द्वितीयपरिग्रहीतुः। केदारं क्षेत्रम्। शल्यवतो यस्य तोयेन विद्धो नतु तदनन्तरं मृगग्रहीतुः ॥ ४४ ॥

(३) **कुल्लूकः**। इमामपि पृथ्वीं पृथुना पूर्वं परिगृहीतत्वात् अनेकराजसंबन्धेऽपि पृथो-र्भार्यामित्यतीतज्ञा जानन्ति, तस्मात्स्थाणुं छिन्दति स्थाणुच्छेदः, कर्मण्यण्, येन स्थाणुमुत्पाट्य क्षेत्रं कृतं तस्यैव तत्क्षेत्रं वदन्ति; तथा शरादि शल्यं येन पूर्वं मृगे क्षिप्तं तस्यैव तं मृगमाहुः, एवं च पूर्वपरिग्रहीतुः स्वामित्वाद्वोढुरेवापत्यं भवति, न जनयितुः ॥ ४४ ॥

(४) **राघवानन्दः**। अत्रार्थे पुरावृत्तं स्फुटयन्परयोषिति पुत्रार्थमाशासानस्य पुत्रा-शावैफल्यमाह **पृथोरिति**। अनेकराजसंबन्धित्वे भूमेः भुवः पृथ्वीति समाख्याबलात्। पृथोरेव भार्यामाहुः। भुवः स्थाणुच्छेदस्य प्रथमं तदुच्छेदकस्य केदारं क्षेत्रं एवं शल्यवतः अग्रे मृगं प्रति शरं योजयितुः दृष्टान्तत्रये क्षेत्रिण एवापत्यम् ॥ ४४ ॥

(५) **नन्दनः**। तेन तत्र क्षिप्तमन्येन बीजं नश्यति तस्येत्यभिप्रायेणाह **पृथोरपीमा-मिति**। पूर्वविदः प्रथमं लब्धवतः पृथोरिमां पृथिवीमपि भार्यां विदुः। पूर्वविद इति स्थाणुच्छेदशल्यवतोरपि विशेषणं, स्थाणुच्छेदः खिलीकृतक्षेत्रसंस्कर्ता जायापत्योरभेदश्चायम् ॥ ४४ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। स्थाणुच्छेदस्य केदारं। भूमिस्थवृक्षच्छेदकस्य क्षेत्रम्। च पुनः शल्यकर्तुः मृगं मृगयायां इति आहुः ॥ ४४ ॥

(७) **मणिरामः**। यद्यप्यनेके राजानः पृथिव्याः पतयो जाताः तथापि पृथोरियं भार्येति पूर्वविदो जानंति। तथा स्थाणुं छेदयित्वा येन क्षेत्रं कृतं तस्यैव तं क्षेत्रमाहुः, न तु बीजवप्तुः। तथा येन पूर्वं मृगो विद्धस्तस्यैव तं मृगमाहुः, न तु पश्चाद्विद्धस्य। एवं च वोढुरेव, नतु बीज-प्रक्षेप्तुः ॥ ४४ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **पृथोरिति**। इमामपि पृथिवीं अनेकराजसम्बन्धिपरिगणित-त्वात् यथा येनैव स्थाणुमुत्पाट्य क्षेत्रं रक्षितं तद्वयुपदर्शितक्षेत्रमाहुः। मृगमाहुरेवं पूर्वपरि-ग्रहीतुः स्वाम्यात्तस्यैवापत्यं भवति, न जनयितुः ॥ ४४ ॥

(९) **भारुचिः**। सत्यन्यस्य पश्चादस्वामित्वात् फलाभावं दर्शयति **पृथोरिति**। अतश्च पूर्वपरिग्रहीतुः क्षेत्रिणः क्षेत्रं यस्य तत्क्षेत्रं तस्य क्षेत्रफलं विज्ञेयम्, न बीजिनः ॥ ४४ ॥

**एतावानेव पुरुषो यज्जायात्मा प्रजेति ह ।।**
**विप्राः प्राहुस्तथा चैतद्यो भर्ता सा स्मृताङ्गना ।। ४५ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । युक्तं च यस्य भार्या तस्यापत्यं यस्माद्भार्याया भर्तुश्चैकत्वमेव–प्रजाऽप्यात्मभूतैव । कथं वाऽन्यस्यात्मा सोऽन्यस्य भवेत् । एवं तावद् दृष्टमेतल्लोके । शास्त्रज्ञा अप्येवमेव विप्राः प्राहुरिति ।। ४५ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । एतावानेव तत्त्रयमेलकः परिणामः । तत्र प्रजातोऽपि जायान्तरङ्गमित्याह **यो भर्तेति** । प्रजावयवभूता जाया चात्मैवेत्यर्थः ।। ४५ ।।

(३) **कुल्लूकः** । नैकः पुरुषो भवति अपि तु भार्या स्वदेहमपत्यानीत्येतत्परिणाम एव पुरुषः । तथा च **वाजसनेयब्राह्मणम्** 'अर्धो ह वा एष आत्मनस्तस्माद्यज्जायां न विंदते नैतावत्प्रजायते असर्वो हि तावद्भवति, अथ यदैव जायां विंदतेऽथ प्रजायते तर्हि सर्वो भवति । **तथा चैतद्वेदविदो** विप्रा वदन्ति यो भर्ता सैव भार्या स्मृते'ति । एवं च तस्यामुत्पादितं भर्तुरेवापत्यं भवतीति, यतश्च दंपत्योरैक्यमतः ।। ४५ ।।

(४) **राघवानन्दः** । 'आत्मैवेदमग्र आसीत् एकमेव सोऽकामयत जाया मे स्यादथ प्रजायेय अर्धो ह वा एष आत्मनो यज्जाया आत्मा वै पुत्रनामासि' इत्यादिश्रुतेरात्मन एव जायापत्यपतित्रितयरूपत्वेन पूर्णत्वात्पुरुषत्वमित्याह **एतावानिति** । त्रिभिर्मिलित्वा यतः पुरुषत्वमतोऽपत्यं दंपत्योरेव । एतदेवाह **तथेति** । भर्तुरेवापत्याकारेण परिणामो जायोपादानकः । अङ्गाय पुत्रार्थमानीयत इत्यङ्गना ।। ४५ ।।

(५) **नन्दनः** । जायाजातस्य भर्तुरपत्यत्वप्रतिपादनार्थमाह **एतावानेवेति** । आत्मा स्वयं पुरुषः जाया प्रजा इति च यदेतावानेव पुरुषः अत्र प्रमाणं प्राहुः **विप्रा** इत्यादि इतरयोरुपन्यासो दृष्टान्तार्थः ।। ४५ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । भर्ता सा तस्य अङ्गना स्मृता भर्तैव अङ्गनेति एतावानेव पुरुषः त्रितयसमुदायरूपः यत् यस्मात्कारणात् जाया स्त्री आत्मा प्रजा इति त्रयं । तथा च पुनः विप्रा एतत् आहुः ।। ४५ ।।

(७) **मणिरामः** । जायां विना पुरुषः पूर्णः पुरुषो न भवतीत्याह **एतावानेवेति** । एतावानेव उत्पत्तिमात्रेणैव पुरुषः पूर्णः पुरुषो न भवति किंतु यत् जायात्मा प्रजेति ह जायादेहेन प्रजायते संबुध्यते विवाहेन एतावानेव पुरुषो भवति । तथा च एतत् विप्राः वदंति यो भर्ता सैव अंगना स्मृतेति । एवं च तस्यामुत्पादितं वोढुरेवापत्यं भवति; दंपत्योरेकदेहत्वात् । अयमर्थो **वाजसनेयब्राह्मणे** स्पष्टः । यथा 'अर्धो ह वा एष आत्मनस्तस्माद्यज्जायां न विंदते नैतावत्प्रजायते असर्वो हि तावद्भवति अथ यदैव जायां विंदतेऽथ प्रजायते तर्हि सर्वो भवती'ति ।। ४५ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **एतावानिति** । नैकः पुरुषो वापि तु भार्या शरीरमपत्यानीत्येतत् परिणाम एव । तथा चैवं तस्यामुत्पादितं भर्तुरेवापत्यं भवति यतश्च दम्पत्योरैक्यमतः ।। ४५ ।।

(९) **भारुचिः**। तथा चागमः–**एतावानेति**। एतद्दर्शयत्यनेन न परस्त्री केनचित्क्रयेण प्रतिग्रहेण वात्मीया धर्मतः शक्या कर्तुम्। यतोऽस्य बीजनाशः, परस्यावश्यंभावी क्षेत्रप्राधान्यात् ॥ ४५ ॥

## न निष्क्रयविसर्गाभ्यां भर्तुर्भार्या विमुच्यते ॥
## एवं धर्मं विजानीमः प्राक् प्रजापतिर्निर्मितम् ॥ ४६ ॥

(१) **मेधातिथिः**। अथ मन्येत–'धनादिदानेन क्रीत्वा स्वीयाः करिष्यन्ते, परभार्यायां ततो विनिवृत्ते दुःस्वाम्ये तज्जातो जनयितुः पुत्रो भवतीति'–एतन्न; यतो न शक्या भार्यात्वेन निष्कसहस्रैरप्यन्यदीयाः स्वत्वमानेतुम्। नापि भर्त्रा त्यक्ता प्रहीणद्रव्यतया प्रतिग्रहीतुः स्वत्वमापद्यते। यत "उद्वहेतेति" (मनु. ३।४) कर्त्रभिप्रायक्रियाफलविषयादात्मनेपदाल्लिङ्गाच्चान्येन संस्कृताऽन्यस्य भार्या भवति। यथा नाहवनीयादय आधातुरन्यस्य क्रयादिनाऽऽहवनीयादिव्यपदेश्याः। **निष्क्रयो** विक्रयो विनिमयश्च। **विसर्ग**स्त्यागः। ताभ्यां न **विमुच्यते**। न भार्यात्वमस्या अपैति ॥ ४६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। निष्क्रयो विक्रयविनिमयौ। विसर्गः दानं। न मुच्यते पुनर्मूल्यं दत्वा ग्रहीतुं लभ्यत इत्यर्थः ॥ ४६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। निष्क्रयो विक्रयः, विसर्गस्त्यागः, न ताभ्यां स्त्री भर्तुर्भार्यात्वादपैत्येवं पूर्वं प्रजापतिना स्मृतं नित्यं धर्मं मन्यामहे। एवं च क्रयादिनापि परस्त्रियमात्मसात्कृत्वा तदुत्पादितापत्यं क्षेत्रिण एव भवति, न बीजिनः ॥ ४६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। अतो विक्रयपरित्यागयोरपि भार्यात्वं नापैतीत्याह **नेति**। अस्या दानं विक्रयो वा नास्ति अभिन्नत्वात्तस्याः। 'आत्मनोऽर्धं पत्नी नामेति श्रुतेरेवं युक्तत्वमपि नापैति। 'यस्य ते बीजतो जातास्तस्य ते नेतरस्य त्वि'त्युक्तेर्भार्यां पुत्रदानविक्रयस्मरणं राजादौ तदुद्भूतसेवादिपरम्। प्रजापतिर्निर्मितमिति तत्र प्रमाणम् ॥ ४६ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। निष्क्रयविसर्गाभ्यां विक्रयदानाभ्यां भर्तुः सकाशात् भार्या न मुच्यते ॥ ४६ ॥

(७) **मणिरामः**। निष्क्रयो विक्रयः, विसर्गः त्यागः, ताभ्यां न भर्तुर्भार्या विमुच्यते, भर्तुः स्वाम्यान्न मुच्यते। एवं च क्रयादिनापि परस्त्रियमादाय तस्यामुत्पादितमपत्यं क्षेत्रिण एव भवति, न बीजिनः ॥ ४६ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **नेति**। **एवं धर्मं विजानीमः प्राक्प्रजापतिर्निर्मितम्**। बन्धविक्रयादिना त्यागेन न च भार्यात्वात् स्त्री भर्तुरपैत्येवं प्रजापतिना स्मृतम्। पूर्वमेव स्त्री च आत्मसात्कर्तुं न शक्येति ॥ ४६ ॥

(९) **भारुचिः**। यतश्चैतदेवम्। **नेति** ॥ ४६ ॥

**सकृदंशो निपतति सकृत्कन्या प्रदीयते ।।**
**सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सतां सकृत् ।। ४७ ।।**

(१) **मेधातिथिः ।** अयमनुशयविधावष्टमे व्याख्यातः (८।२२७) । विभागकाले हि समविषमांशभागिभिः समविषमांशभागेषु परिकल्प्य विभागः कर्तव्यः । तत्र कृते यो विप्रतिपद्येत तस्य प्रतिषेधार्थमिदम् । तत्रापि यद्यादावेव यथार्थतां कस्यचिदंशस्य प्रज्ञापयेत्तदा स्यादेव पुनर्विभागः । अथ बहुना कालेनायथाकृततां ब्रूयाद्यावदितरैः स्वेषु स्वेषु भागेष्वन्यनिवेशशीर्णप्रतिसंस्कारादि कृतं भवेद्—वस्त्रहिरण्यादि चोपयुक्तं स्यात्—तदा समतामात्रकरणे प्रभवति, न पुनः सर्वं समवायविभागम् ।

अन्ये तु क्लीवादीनामनर्हितविभागकानां पश्चादभागहरत्वनिमित्तक्लीवत्वादिपरिज्ञानान्नास्ति भागापहार इति सकृन्निपातप्रयोजनं वदन्ति ।

एवं द्विचिचतुर्भागहराणां यदृच्छया ये समतां प्रकल्पयेयुः पश्चादनुशयनाः प्राक्तनं व्यवस्थानमतिक्रम्यापहर्तुं न लभेरन् । पतितस्य तु लब्धभागस्याप्यपहारं वक्ष्यामि ।

**सकृत्कन्या प्रदीयते ।** यद्यपि चानेन दानोत्तरकालं प्रागपि विवाहाद्भर्तुः स्वतोच्यते, तथापि "दत्तामपि हरेत्कन्यां" (याज्ञ. १।६५) "तेषां तु निष्ठा विज्ञेया विद्वद्भिः सप्तमे पदे" (मनु. ८।२२७) इत्यादिपर्यालोचनया विशिष्टविषयतैव । सा च व्याख्याता ।

**सकृदाह ददामीति ।** गवादयो हि येनैव रूपेणात्मनः स्वं तेनैवान्यस्मा आपद्यन्ते । कन्या तु दुहितृत्वेन स्वं सती भार्यात्वेनानिवृत्तस्वसम्बन्धा दीयत इति पृथगुपन्यासः ।

"ननु चानिवर्तमाने पितुः स्वसम्बन्धे कथं कन्यादानं प्रवर्तते ? एतद्धि दानस्य रूपं यदेकस्य सम्बन्धो निवर्ततेऽन्यस्योपजायत इति" ।

नैष दोषः । द्वावत्र सम्बन्धौ—अपत्यापत्यवद्भावः स्वस्वामिसम्बन्धश्च । तत्रापत्यापत्यवद्भावो न निवर्तते, इतरस्तु निवर्तते । तथा च "बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत्" (मनु. ५।१४८) पितुश्चात्र स्वाम्यनिवृत्तिमाह "पाणिग्राहस्येति" भर्तुस्तदुत्पत्तिम् ।। ४७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः ।** अंशो दायादानां विभक्तोऽर्थः सकृत्पतति सकृदेव नियम्य य एकदा नियतः स एवेति यथा तथा । सकृदेव कन्या प्रदीयते प्रकर्षेण हस्तोदकेन दीयते । किं बहुना, कन्यां ददानीति वाङ्मात्रेणापि सकृदेवाह । वाग्दानमपि यत्रादौ कृतं तस्यैव भार्या, नतु दोषाभावे स्वेच्छयाऽनन्तरं पित्राऽन्यस्मै प्रदाने तस्य भवतीत्यर्थः । केचित्सकृदाह ददानीति द्रव्यान्तरविषयमाहुः ।। ४७ ।।

(३) **कुल्लूकः ।** पित्रादिधनविभागो भ्रातृणां धर्मतः कृतः सकृदेव भवति, न पुनरन्यथा क्रियत इति, तथा कन्या पित्रादिना सकृदेकस्मै दत्ता न पुनरन्यस्मै दीयते । एवं चान्येन पूर्वमन्यस्मै दत्तायां पश्चात्पित्रादिभिः प्राप्तायामपि जनितमपत्यं न बीजिनो भवतीत्येतदर्थमस्योपन्यासः । तथा कन्यातोऽन्यस्मिन्नपि गवादिद्रव्ये सकृदेव ददानीत्याह, न पुनस्तदन्यस्मै दीयत इति त्रीण्येतानि साधूनां सकृद्भवन्ति । यद्यपि कन्यादानस्य सकृत्करणं प्रकृतोप-

युक्तं तथापि प्रसङ्गादंशदानयोरपि सकृत्ताभिधानं 'सकृदाह ददानी'त्यनेनैव कन्यादानस्यापि सकृत्करणसिद्धौ प्रकृतोपयोगित्वादेव पृथगभिधानम् ॥ ४७ ॥

(४) **राघवानन्दः**। अत आह **सकृदिति**। अंशो विभागः, सच भ्रातॄणामेकवारमात्रं विभागाद्यनुष्ठानं न पुनरनुष्ठानं शास्त्रप्रमाणकमेवं कन्यादानं प्रतिश्रुतं चोत्सर्गतः। अन्यथा संसृष्टविभागे वाग्दत्ताया देवरपरिग्रहे दानोद्देश्यमृतावतिप्रसंगः॥ ४७ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। सकृत् एकवारम्। अंशः विभक्तदायभागः पतति सकृद्दाति इति आह – सतां एतानि त्रीणि सकृत् सकृत् ॥ ४७ ॥

(७) **मणिरामः**। अंशः पित्रादिधनविभागः निपतति भवति ॥ ४७ - ४९ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **सकृदिति। सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सतां सकृत्।** भागकाले पैतृकादिधनभाग एकवारमेवापतति न धर्मभागकल्पनायां पुनर्भागी क्रियते। कन्यापि सकृद्दातव्या वाग्दत्तायाः कन्यायाः पण्यतः प्राप्ताया अपि न बीजिनोऽपत्यं भवति। तथा कन्यातोऽन्यस्मिन्नपि गवादिषु एतानि त्रीणि अङ्गनिपातनादीनि साधूनां सकृद्भवन्ति। न पुनःकरणमेषामस्ति सकृदाह ददानीति ॥ ४७ ॥

**यथा गोऽश्वोष्ट्रदासीषु महिष्यजाविकासु च ॥**
**नोत्पादकः प्रजाभागी तथैवान्याङ्गनास्वपि ॥ ४८ ॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अन्यस्वामिकपश्वादिष्वित्यर्थः ॥ ४८ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यथा गवादिषु परकीयेष्वात्मवृषभादिकं नियुज्य वत्सोत्पादको न तद्भागी तथा परकीयभार्यास्वपि नोत्पादकः प्रजाभागी भवति ॥ ४८ ॥

(४) **राघवानन्दः**। ननु परयोषिति बीजवापिन एव फलं स्याद्बीजसारूप्यदर्शनादिति चेन्न; लोके तथाऽदृष्टचरत्वादित्याह **यथेति**। उत्पादकः स्वामी परगवादिषट्सु स्ववृषादिकं नियोज्यापि न प्रजाभागी एवमन्याङ्गनास्वपि ॥ ४८ ॥

(५) **नन्दनः**। क्षेत्रप्राधान्यप्रतिपादकं क्षेत्रिण एव पुत्रो न बीजिन इत्येतन्निदर्शनैरुपपादयति **यथा गोऽश्वोष्ट्रदासीष्विति**। अन्यगोष्वन्यदीयासु तथैवान्याङ्गनास्वपीति पूर्वेण संबन्धः ॥ ४८ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **यथेति** ॥ ४८ ॥

(९) **भारुचिः**। तथा च न बीजप्राधान्यं परपरिगृहीतायां कथम् ॥ ४८ ॥

**येऽक्षेत्रिणो बीजवन्तः परक्षेत्रप्रवापिणः ॥**
**ते वै सस्यस्य जातस्य न लभन्ते फलं क्वचित् ॥ ४९ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। प्रसिद्धमेवैतत्। **अक्षेत्रिणो बीजवन्तो** व्रीह्यादिबीजस्वामिनः **सस्यस्य** मुद्गमाषादेर्जातस्य **न लभन्ते फलं**–परक्षेत्रे चेदुत्पत्तिः ॥ ४८ – ४९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। ये क्षेत्रिणः क्षेत्रस्वामिनः। केवलं बीजवप्तारः। **परक्षेत्र इति प्रवापिण इति** दृष्टान्तः। यथेति पूरणीयम् ॥ ४९ ॥

(३) **कुल्लूकः**। क्षेत्रस्वामिनो ये न भवन्ति, अथ बीजस्वामिनः सन्तः परक्षेत्रे बीजं वपन्ति ते तत्र क्षेत्रजातस्य धान्यादेः फलं क्वचिदपि देशे न लभन्त इति प्रकृतस्य दृष्टान्तः ॥ ४९ ॥

(४) **राघवानन्दः**। निगमयति **य इति**। अक्षेत्रिण इति च्छेदः। येऽक्षेत्रिणः परदार-रतास्ते सस्यबीजानुरूपतो निर्णीतस्यापि फलं पिण्डादि न लभन्ते स्म ॥ ४९ ॥

(५) **नन्दनः**। अक्षेत्रिण इति पदम् ॥ ४९ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **य इति**। ये क्षेत्रस्वामिनो न भवन्ति केवलं बीजस्वामिनः परकीये क्षेत्रे बीजे च पतिते तस्मिन्क्षेत्रे धान्यादेर्जातस्य यत्फलं न कदाचिद्देशे लभन्त इति प्रकृतस्य दृष्टान्तः ॥ ४९ ॥

(९) **भारुचिः**। तथा च लोके—**सकृदिति**। कन्यातोऽन्यदपि देयद्रव्यं दाता प्रति-ग्रहीत्रे, एवं च सति त्रीण्येतानि सतां सकृत्। अतश्च पुनर्दानासम्भवस्तस्याः ॥ ४९ ॥

**यदन्यगोषु वृषभो वत्सानां जनयेच्छतम् ॥**
**गोमिनामेव ते वत्सा मोघं स्कन्दितमार्षभम् ॥ ५० ॥**

(१) **मेधातिथिः**। पूर्वेण स्थावरेषु धर्मः प्रसिद्धवदुदितो ज्ञापितो वा। अनेन तिर्यक्षु परिगृहीतेषु यवादिषु निदर्श्यते। अन्यदीयो वृषभो यद्यप्यन्यगवीषु वत्सान्बहूनपि **जनयेन्न** वृषभस्वाम्येकमपि वत्सं लभेत—सर्व एव ते वत्सा **गोमिनां** गोस्वामिनाम्। **आर्षभमृषभ-सम्बन्धि स्कन्दितं** बीजनिषेको **मोघं** वृथा निष्फलम् ॥ ५० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। गोमिनां गोगवीमताम्। मोघं वृथा। वृषभस्य स्कन्दितं चेष्टितं मैथुनार्थे ॥ ५० ॥

(३) **कुल्लूकः**। यदन्यदीयगवीषु वृषभो वत्सशतमपि जनयेत्सर्वे ते वत्साः स्त्रीगवी-स्वामिनो भवन्त्येव, न वृषभस्वामिनः। वृषभस्य यच्छुक्रसेचनं तद्वृषभस्वामिनो निष्फलमेव भवति। 'यथा गोऽश्वोष्ट्र' (९।४८) इत्यनेनोत्पादकस्य प्रजाभागित्वं न भवतीत्येतत्परत्वेन दृष्टान्त उक्तः, अयन्तु क्षेत्रस्वामिनः प्रजाभागित्वं भवतीत्येतत्परत्वेनातो न पुनरुक्तिः ॥५०॥

(४) **राघवानन्दः**। एतदेव दृष्टान्तान्तरेण दृढयति **यदिति**। **गोमिनां** स्त्रीगोस्वा-मिनाम्। गोपदमपश्वाद्युपलक्षकम्। स्कन्दितं शुक्रसेचनम्। आर्षभमृषभस्येदम्। **मोघं** स्वस्वामिफलाजनकम् ॥ ५० ॥

(५) **नन्दनः**। **अन्यगोषु** अन्यदीयगोषु ॥ ५० ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **गोमिनां** गोस्वामिनाम्, आर्षभं ऋषभाणामिदमार्षभं, **स्कन्दितं** सद्रेतः ॥ ५० ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **यदिति**। **स्वामिनामिति**। यद्यन्यसम्बन्धिनीषु गोस्त्रीषु परकीयो वृषभः शतमपि वत्सानां जनयेत्तदा ते सर्ववत्सा गोस्वामिनामेव, तं नैकोऽपि बीजं स्वामिनो वृषभसम्बन्धीयकः शुक्रो (?) वृषभस्वामिनो निष्फल एव ।। ५० ।।

**तथैवाक्षेत्रिणो बीजं परक्षेत्रप्रवापिणः ।।**
**कुर्वन्ति क्षेत्रिणामर्थं न बीजी लभते फलम् ।।५१।।**

(१) **मेधातिथिः**। पूर्वस्य निर्देशोऽयम्। यथा गवादिषु स्थावरेषु चैवं मनुष्येष्वपि **कुर्वन्ति**। क्षेत्रस्वामिना**मर्थं** प्रयोजनं बीजकार्यं सम्पादयन्ति ।। ५१ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। प्रकृते योजयति **तथैवेति**। बीजमिति विभक्तिव्यत्ययः, बीजस्य परक्षेत्रे वापिणो वप्तारोऽक्षेत्रिणः। क्षेत्रिणां भार्यावतां। अर्थं फलम् ।। ५१ ।।

(३) **कुल्लूकः**। यथा गवादिगर्भेषु तथैवापत्यरहिताः सन्तः परकीयभार्यायां ये बीजं वपन्ति ते क्षेत्रस्वामिनामेवापत्यलक्षणमर्थं कुर्वन्ति। बीजसेक्ता त्वपत्याख्यं फलं न लभते ।। ५१ ।।

(४) **राघवानन्दः**। तत्र परोपकारमात्रं कुत इत्यत आह **अर्थमिति**। सपतिकायां स्त्रियां स्कन्दनं सन्दिग्धो गर्भोऽसन्दिग्धोऽतिगूढोत्पन्नोऽपि क्षेत्रिण एवेति भावः ।। ५१ ।।

(५) **नन्दनः**। तथैव वृषभवत्फलं **क्षेत्रिणो** बीजवन्तः ।। ५१ ।।

(७) **मणिरामः**। आर्षभं स्कंदितं वृषभस्य शुक्रसेचनं ।। ५१ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **तथेति**। यद्वद्गोषु तद्वदेवाविद्यमानस्त्रीस्वाम्याः सन्तो ये परकीयायां योषिति **बीजं** वपन्ति ते क्षेत्रस्वामिनामेवापत्यलक्षणमुक्तं जनयितापत्याख्यं फलं न लभते ।। ५१।।

**फलं त्वनभिसंधाय क्षेत्रिणां बीजिनां तथा ।।**
**प्रत्यक्षं क्षेत्रिणामर्थो बीजाद्योनिर्गरीयसी ।।५२।।**

(१) **मेधातिथिः**। अविशेषेणोक्तं क्षेत्रिणां फलं न बीजिनः। तस्यावशिष्टविषयत्वमाह **अनभिसंधायेति**। अभिसंधानं बीजक्षेत्रिणोरितरेतरसंविद्व्यवस्थापनम्—'नष्टाश्वदग्धरथवदुभयोरावयोः फलमस्त्विति'—यत्र वचनव्यवस्था न भवति तत्र **क्षेत्रिण एव प्रत्यक्षोऽर्थो** निश्चितं फलम्। **प्रत्यक्ष**शब्देन निःसंदिग्धतामाह। यतो **बीजाद्योनिर्बलीयसी**। क्षेत्रमधिकबलम् ।। ५२ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। फलमनभिसंधायावयोस्तुल्यं फलमिति समयमकृत्वा बीजिनः प्रवृत्तौ क्षेत्रिणामेवार्थः फलमिति प्रत्यक्षं लोकसिद्धम्। गरीयसी स्वत्वहेतुः ।। ५२ ।।

(३) **कुल्लूकः**। 'यदस्यामुत्पत्स्यतेऽपत्यं तदावयोरुभयोरेवैव' एवं यत्र नियमो न कृतस्तत्र निःसंदिग्धमेव क्षेत्रिणोऽपत्यम् उक्तरीत्या बीजात्क्षेत्रं बलवत् ।। ५२ ।।

(४) **राघवानन्दः**। ननु न ते परोपकारार्थं यतन्ते किंतु कामात् सत्यं आर्थिकः स इत्याह **फलमिति**। अनभिसंधाय एतदपत्यमुभयोरित्यनियमे। बीजिनो रागमात्रोपाधिकत्वात् किंच यो**निर्गरीयसी**त्युक्तम्। निगमयति **योनिर्गरीयसीति**। स्वक्षेत्रे बीजस्योत्कृष्टत्वेऽपि परक्षेत्रे स्कन्दनेऽतिवृत्ते तद्विशेषे विप्रतिपत्तेः क्षेत्रत्वेन सर्वत्रानुगमात्क्षेत्रस्यैव कारणत्वनिश्चितिरिति भावः॥ ५२॥

(५) **नन्दनः**। क्षेत्रिणामियत्फलं बीजिनामियत्फलमित्यभिसन्धाय परक्षेत्रप्रवापिण इत्यनुकर्षणं क्षेत्रिणामर्थं कुर्वन्तीति। चास्यानुकर्षः प्रत्यक्षं लोके कृषीवलैः क्रियमाणं दृश्यते तेन बीजाद्योनिर्बलीयसी॥ ५२॥

(६) **रामचन्द्रः**। फलं अनभिसंधाय आवयोः समं फलमिति समयमकृत्वा बीजात् योनिः गरीयसी॥ ५२॥

(८) **गोविन्दराजः**। **फलमिति**। 'यदत्रोत्पद्यते तयोरुभयोरपत्यं' एवं क्षेत्रबीजिनोर्यत्र सम्बन्धो नास्ति तत्र निःसन्दिग्धमेव क्षेत्रिणोऽपत्यं यदुक्तनीत्या बीजात्क्षेत्रं बलवत्॥ ५२॥

(९) **भारुचिः**। एवं च सति 'फलं त्वनभिसन्धाये'ति वचनात् प्रकृतस्यार्थस्य सर्व एते दृष्टान्तश्लोकाः प्ररूपणाय; एवं योनिबलीयस्त्वात् परक्षेत्रजाता न बीजिनो भवन्तीति॥ ५२॥

**क्रियाभ्युपगमात्त्वेतद्बीजार्थं यत्प्रदीयते॥**
**तस्येह भागिनौ दृष्टौ बीजी क्षेत्रिक एव च॥ ५३॥**

(१) **मेधातिथिः**। सत्यां तु संविदि–अनभिसंधाय क्षेत्रिणः फलमुक्तम्। अभिसंधाने किं बीजिनं उतोभयोरिति संशय उभयोरित्याह–**क्रियाया अभ्युपगमो**ऽङ्गीकरणमेवमेवैतदिति संविल्लक्षणः यो निश्चयः सा 'क्रिया'ऽभिप्रेता तामभ्युपगमय्य **बीजार्थं** बीजकार्यफलनिष्पत्त्यर्थं **यत्प्रदीयते**–सामर्थ्याद्बीजमिति गम्यते। **तस्येह** द्वावपि **भागिनौ**॥ ५३॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। क्रिया नियमस्तुल्यमावयोः फलमिति तामभ्युपगम्य यत्क्षेत्रं परस्मै दीयते बीजार्थं बीजवपनार्थम्॥ ५३॥

(३) **कुल्लूकः**। 'यदत्रापत्यं भविष्यति तदावयोरेवेति' नियम्यैतत्क्षेत्रं स्वामिना बीजवपनार्थं यद्बीजिनो दीयते तस्यापत्यस्य लोके बीजिक्षेत्रिणौ द्वावपि भागिनौ दृष्टौ॥ ५३॥

(४) **राघवानन्दः**। अनभिसंधायेत्युक्तं, तत्राभिसंधानपूर्वकं चेदुभयोरपीत्याह **क्रियेति**। क्रियासमये, यदत्रापत्यं भविष्यति तदावयोरुभयोर्भवेदिति नियम्य तत्क्षेत्रस्वामिना बीजवपनार्थं यद्बीजिनो दीयते तस्यापत्यस्य लोके बीजिक्षेत्रिणौ द्वावपि भागिनौ दृष्टौ॥ ५३॥

(५) **नन्दनः**। क्रियाभ्युपगमाद्बीजनिक्षेपक्रियां प्रति क्षेत्रिणो बीजिनोऽनुज्ञानाद्यो बीजार्थो बीजरूपोऽर्थः प्रदीयते निक्षिप्यते तस्य बीजी क्षेत्रिकश्चेहलोके कृष्यारम्भफलभागिनौ दृष्टौ॥ ५३॥

(६) **रामचन्द्रः**। क्रियाभ्युपगमात् समयकारणात् एतद्बीजार्थं यत्प्रदीयते तस्य इह भागिनौ दृष्टौ बीजी क्षेत्री एव च ॥ ५३ ॥

(७) **मणिरामः**। 'फलं त्वनभिसंधाय यदस्यामुत्पद्यतेऽपत्यं तदावयोरेवैवं' यत्र नियमो न कृतः तत्र प्रत्यक्षं निःसंदेहं क्षेत्रिणां अर्थः। यतो बीजाद्योनिर्गरीयसी ॥ ५३ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **क्रियाभ्युपगमादिति**। आवयोरुभयोरपत्यं स्यादित्येवं संविदङ्गीकरणे पुनरेतत्क्षेत्रस्वामिना बीजवपनार्थं यद्बीजिनो फलम् ॥ ५३ ॥

(९) **भारुचिः**। एवं च संविदा बीजी फलं लभते, नान्यथा; अयं च संविदा करणे न तृतीयः पक्षो विज्ञेयः ॥ ५३ ॥

**ओघवाताहृतं बीजं यस्य क्षेत्रे प्ररोहति ॥**
**क्षेत्रिकस्यैव तद्बीजं न वप्ता लभते फलम् ॥ ५४ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। परक्षेत्रे वप्तुर्बीजनाश उक्तः। तत्र मन्येत—"पुरुषापराधात्तस्य युक्तोपहारो नूनमसौ क्षेत्रं जिहीर्षति—नो चेत्किमिति परक्षेत्रे वपतीति। येन तु स्वक्षेत्रे व्युप्तमोघवाताभ्यामन्यत्रानीतं तस्य कोऽपराधो यदि स्वं द्रव्यं हारयति ?"—तदर्थमाह। **ओघवाताहृतं बीजम्**। **ओघो** जलनिषेकः, तेन वायुना चाहृतं **नीतं यस्य क्षेत्रे प्ररोहति** तस्यैव तद्भवति। एतेनैव सिद्धे विस्पष्टार्थं **न बीजी लभते फलमिति**। सर्वत्र क्षेत्रप्राधान्यमित्यर्थः ॥ ५४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। प्रत्यक्षमिति प्रागुक्तं लोकव्यवहारं दर्शयति **ओघेति**। ओघो नदीरयः ॥ ५४ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यद्बीजं जलवेगवाताभ्यामन्यदीयक्षेत्रादानीतं यस्य क्षेत्रे जायते तत्क्षेत्रस्वामिन एव तद्बीजं भवति, नतु येन बीजमुप्तं स तत्फलं लभते। एवं च स्वभार्याभ्रमेणापरभार्यागमने 'ममायं पुत्रो भविते'त्यवगमेऽपि क्षेत्रिण एवापत्यमित्यनेन दर्शितम् ॥ ५४ ॥

(४) **राघवानन्दः**। आकृत्यादिभिर्निश्चयेऽपि नियमं विना फलं क्षेत्रिकस्यैवेत्याह **ओघेति**। ओघेन स्रोतसा वातेन प्रबलेन वाहृतं प्रापितं बीजं प्ररोहति अङ्कुरयति। तद्बीजं बीजजं फलं ज्ञेयं मानतः। न्यायोऽत्र गर्भधारणपोषणादिबाहुल्यम् ॥ ५४ ॥

(५) **नन्दनः**। अविद्यमानायां मिथः संविदि क्षेत्रिण एव फलमिति दृष्टान्तेनोपपादयति **ओघवाताहृतमिति**। यस्य बीजमित्यन्वयः, तद्बीजं क्षेत्रिकस्यैव। **वप्ता** बीजी ॥ ५४ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **ओघः** नदीप्रवाहः तेन हृतं **बीजं यस्य क्षेत्रे प्ररोहति** ॥ ५४ ॥

(७) **मणिरामः**। क्रियाभ्युपगमात् यदत्रापत्यं भविष्यति तदुभयोरिति कृतनियमात् ॥ ५४ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **ओघवाताहृतमिति**। **तत्क्षेपं क्षेत्रिकस्येह न बीजी लभते फलम्**। जलवातभ्यामन्यदीयक्षेत्रादानीतं बीजं यदीयक्षेत्रे स्वामिनस्तद्बीजं भवति न तु तत्फलं येन बीजं न्युप्तं स लभते। एवं स्वभावाच्चैवमेषां द्विपूर्वमपि परस्त्रीगमने क्षेत्रिण एवापत्यमित्येतदनेन सूच्यते ॥ ५४ ॥

(९) **भारुचिः**। यत्र त्वेवमुभयोः संविन्नास्ति तत्र **ओघेति** ॥ ५४ ॥

**एष धर्मो गवाश्वस्य दास्युष्ट्राजाविकस्य च ॥**
**विहङ्गमहिषीणां च विज्ञेयः प्रसवं प्रति ॥ ५५ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। अपत्याधिकारात्तद्विषयतैव मा विज्ञायीति गवाश्वादिग्रहणम्। यदि वा बीजफलव्यवहारः सस्यादिविषयतया प्रसिद्धतरस्तन्निवृत्त्यर्थमाह। द्विपदां चतुष्पदां पक्षिणां स्थावराणां च सर्वत्रैष धर्मः। **एष** इति द्वयं प्रत्यवमृश्यते। अनभिसंधाने यस्य क्षेत्रं तस्य फलमभिसंधाने चोभयोः। उदाहरणार्थत्वाच्च गवाश्वादिग्रहणस्य श्वमार्जारादिष्वप्ययमेव न्यायः। तर्हि किमर्थं "यद्यन्यगोषु" इति? । प्रायेण गावः पुरुषाणां भवन्ति, न तथा विहङ्गमादय इति प्रसिद्धेरनुवादोऽसौ। **दास्यः** सप्तभिर्दासयोनिभिरुपगताः। **प्रसवः** कायजन्म। **तं प्रति** तत्रेत्यर्थः ॥ ५५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। प्रसवं प्रति प्रसवविषये ॥ ५५ ॥

(३) **कुल्लूकः**। एषैव व्यवस्था गवाश्वादीनां संतर्ति प्रति ज्ञातव्या—यत्क्षेत्रस्वाम्येव गवाश्वादेः संततिस्वामी, नतु वृषभादिस्वामी, नियमे तु कृते सत्येतयोरेव संततिस्वाम्यम् ॥ ५५ ॥

(४) **राघवानन्दः**। 'यथा गोऽश्वे'त्याद्युक्तमुपसंहरति **एष इति**। **विहङ्गः** पक्षी। **प्रसवमपत्यम्** ॥ ५५ ॥

(५) **नन्दनः**। एवं गवाश्वादिष्वपीत्याह **एष धर्म इति**। धर्मो न्यायः ॥ ५५ ॥

(७) **मणिरामः**। **विहङ्गवाताहृतं** जलप्रवाहवातवेगाभ्यां अन्यक्षेत्रादानीतं ॥ ५५ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **एष इति**। गोऽश्वोष्ट्रछागैडकपक्षिमहिषाणां सन्तर्तिं प्रत्येषा व्यवस्था ज्ञेया। यत्क्षेत्रस्वामिन एवं गवादिसन्ततेः स्वाम्यं न ऋषभादेः, ताः संवेदात्तूभयोरपीति ॥ ५५ ॥

(९) **भारुचिः**। ओघवातग्रहणं च प्रदर्शनार्थं विज्ञेयम्। अतश्च यश्चौर्याद्बलाद्वा परक्षेत्रवापी न तस्यास्ति भाग इति गम्यते। गर्दभस्याननुक्रान्तस्यापि पशुसामान्यादयमेव धर्मः स्यात् ॥ ५५ ॥

**एतद्वः सारफल्गुत्वं बीजयोन्योः प्रकीर्तितम् ॥**
**अतः परं प्रवक्ष्यामि योषितां धर्ममापदि ॥ ५६ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **सारं** प्रधानम्। **फल्गु**असारम्। उपसंहारः पूर्वप्रकरणस्य। उत्तरार्धेन वक्ष्यमाणसूचनम्। **आपत्** जीवनस्थितिहेतुभूतभोजनाच्छादनाभावः, सन्तानविच्छेदश्च ॥ ५६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। श्रुतिस्तु 'नान्यजातः पुत्रोऽस्ती'ति परबीजप्रभवस्य सुतस्य परलोकानुपयोगित्वपरा नतु संबन्धाभावपरेति सारत्वं योनेः फल्गुत्वं बीजस्य। आपदि भर्तुरभावे सति स्वपतिजन्यसंतानासंभवे ॥ ५६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। एतद्बीजयोन्योः प्राधान्याप्राधान्यं युष्माकमुक्तं, अतोऽनन्तरं स्त्रीणां संतानाभावे यत्कर्तव्यं तद्वक्ष्यामि ॥ ५६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। बीजक्षेत्रयोः प्राधान्याप्राधान्यमुपसंहरन्पुत्रशून्यायाः स्त्रियः स्वकुल्यादप्यपत्यमुत्पाद्यमित्याह **एतदिति**। सारफल्गुत्वं प्राधान्याप्राधान्यम्। आपदि पुत्रानुत्पत्तिदशायाम्। अन्यथा 'पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रिया' (अग. १।४२) इति स्मृतितः प्रत्यवायः ॥ ५६ ॥

(५) **नन्दनः**। आपत् सन्तानपरिक्षयः ॥ ५६ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। फल्गुत्वं निःसारत्वम्, आपदि भर्तृभावे ॥ ५६ ॥

(७) **मणिरामः**। एष धर्मः क्षेत्रिण एवाऽपत्यमिति व्यवस्था ॥ ५६ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **एतदिति**। एतद्बीजयोन्योः सारफल्गुत्वं युष्माकं कथितम्। अतोऽनन्तरं स्त्रीणां सन्तानाभावे यत्कर्तव्यं तद्वक्ष्यामि ॥ ५६ ॥

(९) **भारुचिः**। उपसंहारोपन्यासार्थः श्लोकः ॥ ५६ ॥

**भ्रातुर्ज्येष्ठस्य भार्या या गुरुपत्न्यनुजस्य सा ॥**
**यवीयसस्तु या भार्या स्नुषा ज्येष्ठस्य सा स्मृता ॥ ५७ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। श्लोकद्वयेन प्राकृतव्यवस्थामनुवदत्यापदि नियोगं विधातुम्। **ज्येष्ठोऽग्रे** जातः। **अनुजः** पश्चाज्जातः कनीयान्। **यवीयान**नुज एव ॥ ५७ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **स्नुषा** स्नुषावद्व्यवहर्तव्या ॥ ५७ ॥

(३) **कुल्लूकः**। ज्येष्ठस्य भ्रातुर्या भार्या सा कनिष्ठस्य भ्रातुर्गुरुपत्नी भवति, कनिष्ठस्य च भ्रातुर्या भार्या सा ज्येष्ठभ्रातुः स्नुषा मुनिभिः **स्मृता** ॥ ५७ ॥

(४) **राघवानन्दः**। एतदेवाविष्कुर्वन्वर्ज्यावर्ज्यत्वमाह **भ्रातुरिति**। **यवीयसः** कनिष्ठस्य गुरुपत्नी मातैव 'ज्येष्ठभ्राता समः पितु'रित्युक्तेः। स्नुषा पुत्रपत्नीति ॥ ५७ ॥

(५) **नन्दनः**। वक्ष्यमाण आपद्धर्मोऽनापदि न कर्तव्य इति श्लोकद्वयेनाह **भ्रातुर्ज्येष्ठस्येति**। **गुरुपत्नी** ज्येष्ठस्य पितृसमत्वात्। स्नुषा यवीयसः पुत्रसमत्वात् ॥ ५७ ॥

(७) **मणिरामः**। सारफल्गुत्वं प्राधान्यं ॥ ५७ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **भ्रातुरिति**। 'यवीयसस्तु या भार्या स्नुषा ज्येष्ठस्य सा स्मृता'। ज्येष्ठभ्रातृपत्नी अनुजस्य गुरुभार्यया तुल्या। कनीयसः पत्नी पुनर्ज्येष्ठस्य स्नुषा प्रचक्षते ॥ ५७ ॥

**ज्येष्ठो यवीयसो भार्यां यवीयान्वाऽग्रजस्त्रियम् ॥**
**पतितौ भवतो गत्वा नियुक्तावप्यनापदि ॥ ५८ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। इतरेतरभार्यागमने ज्येष्ठानुजयोः पातित्य**मनापदि** सत्यपि नियोगे ॥ ५८ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। नियुक्तौ गुरुभिः। अनापदि संतत्यन्तरसंभवे ॥ ५८ ॥

(३) **कुल्लूकः**। ज्येष्ठकनिष्ठभ्रातरावितरेतरभार्यां गत्वा संतानाभावं विना नियुक्तावपि पतितौ स्याताम् ॥ ५८ ॥

(४) **राघवानन्दः**। ततः किं तत्राह **पतितावि**ति। पतिभोगवन्मैथुन्यभोगेच्छया नियुक्तावपि भवतः। अनापदि संभवत्पुत्रदशायाम् ॥ ५८ ॥

(५) **नन्दनः**। यत एवमत आह **ज्येष्ठ इति**। पतितौ स्नुषागमनाद्गुरुतल्पगमनाच्च। नियुक्तौ गुरुभिर्नियुक्तौ अनापदि सन्तानापरिक्षये ॥ ५८ ॥

(७) **मणिरामः**। अनुजस्य कनिष्ठस्य सा गुरुपत्नी ज्ञेया। **यवीयसः** कनिष्ठस्य ॥ ५८ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **ज्येष्ठ** इति। ज्येष्ठः कनीयःपत्नीं कनीयान् ज्येष्ठभार्यां वक्ष्यमाणनीत्या गुरुनियुक्तामपि सामान्यं (?) गत्वा पतितौ भवतः ॥ ५८ ॥

**देवराद्वा सपिंडाद्वा स्त्रिया सम्यङ्नियुक्तया ॥**
**प्रजेप्सिताऽधिगन्तव्या संतानस्य परिक्षये ॥ ५९ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। सर्वविशेषेण विशिष्टोऽनेन नियोगो विधीयते। **संतानस्य परिक्षये नियुक्तया** देवरादिभ्यः **सम्यक्** प्रजोत्पादयितव्येति। यदुक्तं "योषितां धर्ममापदि" (५।९६) इति सेयमापत्। "संतानस्य परिक्षयः"। संतानशब्देन पुत्र उच्यते, दुहिता च पुत्रिका। सा हि पितृवंशं संतनोति नान्या। तस्य **परिक्षयो**ऽनुत्पत्तिरुत्पन्ननाशो वा पुत्रिकायाश्चाकरणम्। न हि स्त्रियाः केवलायाः पुत्रिकायामन्यस्मिन्वा पुत्रप्रतिनिधावधिकार इति वक्ष्यामः। नियुक्तोत्पादयंदनुज्ञाता गुरुभिः। कुतः पुनः गुरुभिरिति? स्मृत्यन्तरनिदर्शनात्। **अथवा** नियोगशब्दादेव। नियोगो हि गुरुसम्बन्धी लोकेऽप्युच्यते। न हि शिष्येण नियुक्तोऽ-

ध्यापयतीत्युच्यते। आचार्येण नियुक्तः करोत्येव वदति। 'गुरवश्च' श्वश्रूश्वशुरदेवरादयो भर्तृसगोत्रा द्रष्टव्याः, न पित्रादयः। एतेनापत्येनापत्यवन्तस्ते उच्यन्ते, येषां चोपकारस्तत्कृत और्ध्वदेहिको भवति।

"यद्येवं मातामह्यापि दौहित्रोपकारोऽस्ति। ततः पित्रा दुहिता नियोक्तव्येत्यापन्नम्।" उक्तं—येनापत्यवन्त उच्यन्ते। देवरसपिण्डग्रहणेन तद्गोत्रा एव हृदयमागच्छन्ति। **महाभारते** च तत्र तत्र नियोक्तृभावो भर्तृपक्षिणामेव दर्शितः। अत एव भ्रातृपुत्रे सति न नियोगः कर्तव्यः। "यं हि नियुक्तास्तेषामेव सन्तानोपकारः। पुत्रजनिते स्नेहेऽपत्योपकारमर्थयमाना अधिक्रियन्ते। न मृतस्याधिकारोऽस्ति। कथं तर्हि तस्यापत्यमिति व्यपदिश्यते?"

कथंचित्पिण्डदाने स उपकरोति। वचनादिति च ब्रूमः। न ह्यपत्यमुत्पादयितव्यमित्येष विधिस्तेनानुष्ठित इति—तथापि तदीये क्षेत्रे नियोगविधिजातेन पिण्डदानादि कर्तव्यमिति शास्त्रार्थः। ततश्च तस्योपकारकमवगतम्। यथा चैतत्तथा पुरस्तान्निपुणं वक्ष्यामः।

**देवरः** पतिभ्राता। **सपिण्डः** पत्यन्वयः। स्मृत्यन्तरे जातिमात्राच्चेत्युक्तं भवति। **सम्यगिति** घृताक्तादिनियमं वक्ष्यमाणमनुवदति। **प्रजेप्सिताधिगन्तव्या** विधौ कृत्ये। ईप्सितशब्देन कार्यक्षमतामाह। ततो दुहितर्यन्धबधिरादौ च जाते पुनर्नियोगोऽनुष्ठेयः॥ ५९॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। देवरात्पत्युः सोदरभ्रातुः तदभावे सपिण्डात् सपिण्डमात्रदेवरात्पतिसापत्नभ्रातुः मातुलपुत्रादेः सम्यक् घृताभ्यङ्गादि कृत्वा नियुक्तया पत्या गुरुभिर्वा प्रजेप्सिता पुत्ररूपा नतु स्त्रीक्लीबरूपा। ततश्च पुमानुत्पत्तौ पुनः पुत्रार्थं प्रवर्तनमुक्तम्॥५९॥

(३) **कुल्लूकः**। संतानाभावे स्त्रिया पत्यादिगुरुनियुक्तया देवरादन्यस्माद्वा सपिण्डाद्वक्ष्यमाणघृताक्तादिनियमवत्पुरुषगमनेनेष्टाः प्रजा उत्पादयितव्याः। ईप्सितेत्यभिधानमर्थात्कार्याक्षमपुत्रोत्पत्तौ पुनर्गमनार्थम्॥ ५९॥

(४) **राघवानन्दः**। उद्देश्यं समर्थयति **देवराद्वेति**। सम्यगव्याजेन। 'अपुत्रां गुर्वनुज्ञातो देवरः पुत्रकाम्यया। सपिंडो वा सगोत्रो वा घृताभ्यक्त ऋताविया'त्। आ गर्भसंभवात् गच्छेत्पतितस्त्वन्यथा भवेदि'ति **याज्ञवल्क्य**(आचार० ६८)वचनादेकापत्यजननपर्यन्तं गन्तव्या। ईप्सितेति विशेषणात् षण्डादिव्यावृत्तिः॥ ५९॥

(५) **नन्दनः**। अथ तमेवापद्धर्ममाह **देवराद्वेति**। नियुक्तया गुरुभिः सन्तानस्य परिक्षये भर्तुरपुत्रत्वे॥ ५९॥

(७) **रामचन्द्रः**। **देवरादिति**। स्त्रिया भर्तुरभावे श्वशुरादिभिर्भर्त्रा वा व्याधितेन वा पुत्रोत्पादनविधियुक्तत्वात् नियुक्ततया भर्तृभ्रातुस्तदभावे तत्सपिण्डस्य वा सकाशादभीष्टाः पुत्रलक्षणप्रजाः पुत्राभावात्सम्पादनीयाः॥ ५९॥

(७) **मणिरामः**। आपदि संतानाभावे विना नियुक्तावपि आज्ञप्तावपि॥ ५९॥

(९) **भारुचिः**। एवं च सति ज्येष्ठकनिष्ठावुभावपि देवरशब्देनै....एषापेक्षा नियोग इति गम्यते। तथा च वक्ष्यति 'निजो विन्देत देवर' इति। आपत् सन्तानाभावः

अनुत्पन्नापत्यतया मृतपुत्रस्या...न्ति...च्चेज्जीवि(व)तो मुखमि'ति वचनात् जन्मनैव कृतोऽनेन सन्तत्यर्थं' इति–तदयुक्तं; शास्त्रविरोधात्। एवं हि श्रूयते–तस्मात् पुत्रमनुशिष्टं... सतीति वाजसनेयिनां सम्प्रतिविधावेतद्रहस्यब्राह्मणम्। तथा च स्मृत्यन्तरं 'सत्पुत्रशिष्यास्त्रायन्त' इति। एवं च मृतपुत्रस्यापि नियोगः। तथा च विशेषशास्त्रमिदम्'। **सन्तान(स्य)परिक्षय** इति। यथानुत्पन्नपुत्रस्य सन्तानपरिक्षयः। एवं विनष्टस्यापीयमुच्यते। यतः कार्यसामान्याद्युक्त उभयत्रापि नियोगः॥ ५९॥

**विधवायां नियुक्तस्तु घृताक्तो वाग्यतो निशि॥**
**एकमुत्पादयेत्पुत्रं न द्वितीयं कथंचन॥ ६०॥**

(१) **मेधातिथिः**। **विधवाग्रहणमतन्त्रम्**। क्लीबादिरूपे पत्यौ जीवत्यप्येष एव विधिः। यतो वक्ष्यति "नियुक्तौ यौ विधिं हित्वेति" (९।६३)। एतदेव तस्य प्रयोजनम्। नियमोऽत्र विषयाणाम्, न नियमानामन्यथा विज्ञाते प्रकृतत्वाद्विधवाया एव स्युः। **निशि**। प्रदीपाद्यालोकनिवृत्त्यर्थमेतत्। वचनान्तरेण दिवोपगमनप्रतिषेधात्। अन्ये त्वाहुः–पुरुषार्थोऽसौ प्रतिषेधः कर्मार्थस्त्वयम्। तेनाह्नि गमनेन न क्षेत्रजमुत्पादयेत्। **एकमुत्पादयेत्पुत्रं न द्वितीयम्**॥ ६०॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। विधवायां प्रजोत्पादनसमर्थधवहीनायां 'प्रमीतस्य क्लीबस्य व्याधितस्य वे'ति स्मृतेः। न द्वितीयमिति केषांचिन्मतम्॥ ६०॥

(३) **कुल्लूकः**। 'विधवाया'मित्यपत्योत्पादनयोग्यपत्यभावपरमिदं, जीवत्यपि पत्यावयोग्यपत्यादिगुरुनियुक्तो घृताक्तसर्वगात्रो मौनी रात्रावेकं पुत्रं जनयेन्न कथंचिद् द्वितीयम्॥ ६०॥

(४) **राघवानन्दः**। तत्रेतिकर्तव्यतामाह **विधवायामिति**। विधवाधवोऽत्रोभयलोकशोधकतया पतिः। तद्रहिताऽतोऽधवपदमपत्यजनकयोग्यपत्यभावपरं गुर्वनुज्ञातश्च स्वरसाद्वचनस्यापत्यतात्पर्यकत्वादतः षण्डस्य भार्याद्वारा पुत्रवत्ता संगता। अनुज्ञापदं तादृशपुत्ररागोपलक्षणपरं, अन्यथा गुर्वभावे संतानक्षतिः॥ ६०॥

(५) **नन्दनः**। व्यर्थं धवा च विधवा, वैयर्थ्यं च पुत्रानुत्पादकत्वम्॥ ६०॥

(६) **रामचन्द्रः**। विधवायां स्मृत्या क्लैब्येन व्याधितत्वेन वा प्रजोत्पादनार्थं अयोग्यभर्तृसहितायां यथा कुन्ती पाण्डोः सभर्तृका॥ ६०॥

(७) **मणिरामः**। संतानस्य परिक्षये नियुक्तया पत्यादिगुरुनियुक्तया सम्यग्घृतलापनादिनियमवत्। देवरादितः संतान उत्पादनीयः, न तु विद्यमानसंताने॥ ६०–६१॥

(८) **गोविन्दराजः**। **विधवायामिति**। 'यस्तल्पजः प्रमीतस्य वे'ति दर्शनादभर्तृकाव्याधितभार्याविषये गुरुभिर्नियुक्तो घृताभ्यक्तो मौनवाक् रात्रावेकं पुत्रं जनयेत्, न द्वितीयम्॥ ६०॥

(९) **भारुचिः**। एवं च सति 'द्वितीयमेके प्रजन'मित्येकपदाद्युक्तरूपं भवति। इदानीमुपगमविधिरयमुच्यते। विधवाग्रहणस्य निदर्शनार्थत्वादविधवायामपि नियोगो न विज्ञायते। वक्ष्यति हि–'यद्यर्थिता तु दारैः स्यात् क्लीबादीनां कथञ्चने'ति (९।२०३)। एवं च पाण्डोरविधवानियोगादेवापत्योत्पत्तिः स्मर्यते। दिवा च प्रतिषेधात् निशीत्ययमन्धकारोपदेशः। तथा च व्यासोपगमः स्मर्यते ॥ ६० ॥

**द्वितीयमेके प्रजनं मन्यन्ते स्त्रीषु तद्विदः ॥**
**अनिर्वृत्तं नियोगार्थं पश्यन्तो धर्मतस्तयोः ॥ ६१ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **द्वितीयः** पुत्र इत्येकेषां मतम्। **तद्विदः** क्षेत्रजोत्पत्तिविधिज्ञाः। **अनिर्वृत्तं नियोगार्थं** पश्यन्तः। नियुक्तया प्रजोत्पादयितव्येत्यस्य विधेरेकस्योत्पादनेनासंपत्ति **मन्यन्ते**। "कस्तेषामभिप्रायः?" एकवचनमविवक्षितं मन्यन्ते। द्रव्यप्रधानत्वात् कर्मणो गुणभावादविवक्षा–ग्रहैकत्ववत्। ननु चानुपात्तोपदेशे सत्यपि द्वितीयया द्रव्यप्राधान्यावगमे संख्यादिविशेषेण विवक्षा स्थितैव। "उद्वहेत द्विजो भार्याम्" इति लिङ्गादपत्यविधावेकत्वसंख्यातिक्रमो "दशास्यां पुत्रमाधेहीति" (ऋग्वेद. ९१०-८)। यद्येव न द्वित्व एवावस्थानम्।

अस्यामेवाशङ्कायां **द्वितीयमिति** वचनं अन्यनिवृत्त्यर्थम्। अर्थवत्ता तस्याप्ययमभिप्रायः। औरसे लिङ्गम्–विवाहप्रकरणे मन्त्रपाठात्। इह त्वेकत्वातिक्रमः। 'अपुत्र एकपुत्र' इति शिष्टप्रवादात्। अथवाऽस्या एव स्मृतेर्द्वितीयपुत्रस्तुतिकल्पनात्। **धर्मतः** शिष्टाचारात् ॥ ६१ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अपरेषां मतमाह **द्वितीयमिति**। धर्मतो धर्मनिमित्तं यो नियोगस्तस्यार्थं नियोगप्रयोजनमनिर्वृत्तमनिष्पन्नं पश्यन्तः एकस्य पुत्रस्य बहूवापत्तितयाऽसत्कल्पत्वात् ॥ ६१ ॥

(३) **कुल्लूकः**। अन्ये पुनराचार्या नियोगात्पुत्रोत्पादनविधिज्ञा 'अपुत्र एकपुत्र' इति शिष्टप्रवादादनिष्पन्नं नियोगप्रयोजनं मन्यमानाः स्त्रीषु पुत्रोत्पादनं द्वितीयं धर्मतो मन्यन्ते ॥ ६१ ॥

(४) **राघवानन्दः**। अत्रार्थे मतभेदमाह **द्वितीयमिति**। नियोगः पुत्रोत्पादना(र्थ)। अनिर्वृत्तं 'अपुत्र एकपुत्र' इति नियोगार्थं न निर्वृत्तमिति मन्यमाना इति। तयोः नियुक्तयोः स्त्रीपुंसयोः ॥ ६१ ॥

(५) **नन्दनः**। तद्विद आपद्धर्मविद अनिर्वृत्तं संपूर्णनियोगार्थं नियोगप्रयोजनम् ॥ ६१ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। अनिर्वृत्तं अनिष्पन्नम्। धर्मतः धर्मनिमित्तम् ॥ ६१ ॥

(७) **मणिरामः**। एके आचार्याः तद्विदः पुत्रोत्पादनविधिज्ञाः 'अपुत्र एकपुत्र' इति शिष्टप्रवादादा निर्वृत्तनियोगार्थं पश्यतः अनिष्पन्ननियोगप्रयोजनं मन्यमानाः स्त्रीषु द्वितीयप्रजनपुत्रोत्पादनं धर्मतो मन्यन्ते ॥ ६१ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **द्वितीयमिति**। **केचित्पुनराचार्याः** पुत्रविधिज्ञा 'एकपुत्रोऽप्युत्र-तुल्य' इत्येवमेकपुत्रोत्पादने सति धर्मेण तयोरनिष्पन्ननियोगप्रयोजनं मन्यमानाः स्त्रीषु द्वितीयपुत्रोत्पादनं **मन्यन्ते** ॥ ६१ ॥

(९) **भारुचिः**। अनयोः स्मृत्योः द्वितीयपुत्रजननस्मृतिर्ज्यायन्ति सन्तानानुग्रहात् कारणमत्र गृह्यत इति चेत् उभयत्र कारणग्रहणादप्रवृत्तिरेव सति स्यात् ॥ ६१ ॥

**विधवायां नियोगार्थे निर्वृत्ते तु यथाविधि ॥**
**गुरुवच्च स्नुषावच्च वर्तेयातां परस्परम् ॥ ६२ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। इह तु नियोगविषयो यत्र नियुज्यते। स च सम्प्रयोगाभिमर्दपर्य-वसान उपगमनलक्षणः तस्मिन्निवृत्ते पूर्वैव वृत्तिः। **गुरुवत्स्नुषावत्**। ज्येष्ठस्य भार्यायां गुरुवद्यवीयसः स्नुषावत्। **परस्परग्रहणात्** स्नुषावद्वर्तेत स्त्री पुरुषे ज्येष्ठे, देवरे गुरुवत् ॥ ६२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। गुरुवत् पत्युर्ज्येष्ठः यदि तु देवरः कनिष्ठस्तदापि गुरुवद्वर्तेत। भर्तृभार्येति योज्यम् ॥ ६२ ॥

(३) **कुल्लूकः**। विधवादिकायां नियोगप्रयोजने गर्भधारणे यथाशास्त्रं संपन्ने सति ज्येष्ठो भ्राता कनिष्ठभ्रातृभार्या च परस्परं गुरुवत्स्नुषावच्च व्यवहरेताम् ॥ ६२ ॥

(४) **राघवानन्दः**। पुत्रोत्पादनानन्तरं पुनरुभयत्र न गन्तव्यमित्याह **विधवाया-मिति**। नियोगार्थे गर्भे जाते गुरुवत् ज्येष्ठो भ्राता स्यात्। तेन तद्भार्यायां कनीयसा न गन्तव्यमिति भावः। कनिष्ठभार्या च स्नुषावच्च स्यात् ॥ ६२ ॥

(५) **नन्दनः**। गुरुवद्गुरुपत्न्यामिव स्नुषायामिव कनिष्ठज्येष्ठौ परस्परमेकैकं वर्तेयातामाचरेताम् ॥ ६२ ॥

(७) **मणिरामः**। परस्परकनिष्ठभार्यां गुरुवत् ज्येष्ठः कनिष्ठभार्यां स्नुषावत् पश्येदित्यर्थः ॥ ६२ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **विधवायामिति**। विधवादिकाया नियोगप्रयोजने संयोगाख्ये पुनर्यथाशास्त्रसम्पन्ने सति ज्येष्ठो भ्रातृभार्या च परस्पर**गुरुवत् स्नुषावच्च वर्तेयाताम्** ॥६२॥

(९) **भारुचिः**। एतस्माच्च ज्येष्ठनियोगो विज्ञायते। तथा च परिभाषोक्ता (९।५८) 'ज्येष्ठो यवीयसो भार्यामि'ति। उभयोश्च देवरशब्देन ग्रहणं युक्तम्। 'देवराद्वा सपिण्डाद्वे'त्यत्र अस्य प्रतिषेधविधेरर्थवादः ॥ ६२ ॥

**नियुक्तौ यौ विधिं हित्वा वर्तेयातां तु कामतः ॥**
**तावुभौ पतितौ स्यातां स्नुषागगुरुतल्पगौ ॥ ६३ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **विधिः** "घृताक्त" इत्यादिः। तदतिक्रमे पातित्यम्। **नियुक्तो** ज्येष्ठः, **स्नुषागः** पुमान् **गुरुतल्पगः** कनीयान् ॥ ६३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। विधिं वाग्यमनादिनियमम् ॥ ६३ ॥

(३) **कुल्लूकः**। ज्येष्ठकनिष्ठभ्रातरौ यौ परस्परभार्यायां नियुक्तौ घृताक्तादिविधानं त्यक्त्वा स्वेच्छातो वर्तेयातां तौ स्नुषागगुरुदारगौ पतितौ भवेताम् ॥ ६३ ॥

(४) **राघवानन्दः**। पूर्वं नियुक्तयोर्विधिमुक्त्वा कामतो गमनं निषेधति **नियुक्ताविति**। गुरुतल्पगाविति अनियुक्तदशायां ज्येष्ठकनिष्ठयोः अतिपातकित्वमहापातकित्वख्यापनं तदुचितप्रायश्चित्तप्रदर्शनार्थम्। यद्यप्यावश्यकत्वेनेतिकर्तव्यतापेक्षा तथाप्यत्र सैव विधेया; तदकरणे रोधः पातित्यहेतुः पुत्रोत्पादनस्य रागावरोधात्। अत एव देवरपदं भ्रातृमात्रोपलक्षकं; तथाच ज्येष्ठस्यापि व्यासस्य विचित्रवीर्यभार्यागमनं निदर्शनं संगच्छते। सपिण्डपदं तूत्कृष्टजातिपरं तेनेन्द्रादिभ्यः पाण्डवाद्युत्पत्तिः। 'अपुत्रां गुर्वनुज्ञातो देवरः पुत्रकाम्यया। सपिण्डो वा सगोत्रो वा घृताभ्यक्त ऋताविया'त्। आ गर्भसंभवाद्गच्छेदन्यथा पतितो भवेदि'ति (आचार० ६८) संकलितो **याज्ञवल्क्येन** पञ्चश्लोकार्थः ॥ ६३ ॥

(५) **नन्दनः**। यौ ज्येष्ठकनिष्ठौ, विधिं घृताभ्यक्तत्वादिकम् ॥ ६३ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। यौ स्त्रीपुरुषौ नियुक्तौ विधिं हित्वा घृताभ्यक्तादिविधानं हित्वा कामतो वर्तेयातां स्नुषागुरुतल्पगामी ॥ ६३ ॥

(७) **मणिरामः**। यौ ज्येष्ठकनिष्ठौ ॥ ६३ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **नियुक्ताविति**। **यौ** ज्येष्ठकनिष्ठौ **नियुक्तौ** घृताभ्यक्तत्वादिविधानं परित्यज्य स्वेच्छातो **वर्तेयातां तौ द्वावपि स्नुषागगुरुतल्पगौ** स्याताम् ॥ ६३ ॥

(९) **भारुचिः**। विधवानियोगविधीनां सर्वेषां व्यतिक्रमनिन्दार्थवादोऽयमविशेषाद्विज्ञेयः। न केवलमनन्तरश्लोकस्य नियोगार्थं निर्वृत्त्युत्तरकालप्रतिषेधस्यैष तावदेवंकरणाद्विधवानियोगः ॥ ६३ ॥

**नान्यस्मिन्विधवा नारी नियोक्तव्या द्विजातिभिः ॥**
**अन्यस्मिन्हि नियुञ्जाना धर्मं हन्युः सनातनम् ॥ ६४ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। पूर्वेण विहितस्य नियोगस्य प्रतिषेधोऽयम्।

तत्र केचित्–'विधवाग्रहणान्मृतभर्तृकायाः प्रतिषेधः, क्लीबेन तु पत्या नियोक्तव्येति विधिप्रतिषेधौ विभक्तविषयाविति' प्रतिपन्नाः।

अन्ये तु–विधिवाक्ये सन्तानविच्छेदस्य निमित्तश्रवणात्तस्य च क्लीबव्याधितयोर्मृतस्याप्युपपत्तिः। तथा च विधिवत् प्रतिषेधोऽप्यविशिष्ट एव। अपेतधवसम्बन्धा विधवेत्युच्यते। तत्तुल्यमुभयत्रापि।

अवश्यं चैतदेवं विज्ञेयम्। इतरथा घृताभ्यक्तादिनियमोऽपि क्लीबेन नियुज्यमानाया न स्यात्। तत्रापि ह्यामनन्ति "विधवायां नियुक्तश्च घृताक्त–" (९।६०) इति। तस्माद्विहितस्या-

विशेषेण प्रतिषेधोऽप्यविशिष्टः। अतश्च विषयसमत्वे विधिनिषेधयोर्विकल्पः। अयं च नित्योऽपत्योत्पादनविधिर्विकल्प एव कल्पते ग्रहणाग्रहणवत्।

यदा तु "पुत्रेण लोकान् जयति" (९।१३७) इत्येवमादिफलोत्पादनविधिस्तदाऽसत्यपत्ये तत्कार्यस्यौर्ध्वदेहिकस्योपकारस्याभावाद्भिन्नफलयोः कुतो विकल्पः? समानविषयौ विधिनिषेधावेकार्थे विकल्प्येते। षोडशीग्रहणाग्रहणयोरिति केचित्। उक्तमङ्गभूयस्त्वे फलभूयस्त्वम्। प्रधानकार्यसिद्धौ त्वविशेषः। तस्मादस्मिन्पक्षे पुत्रोपकाराभावमाह। उपकारविशेषार्थे नास्य प्रवृत्तौ प्रतिषेधातिक्रमेण श्येनतुल्यता।

इदं त्वत्र निरूप्यम्—योऽसौ नियुज्यते स किमिति प्रवर्तते? न हि तस्य विधिरस्ति। 'नियुक्तेन गन्तव्यम्' इति। स्त्रिया पुनर्विद्यते "सम्यक् स्त्रिया नियुक्तयेति"। न च "देवरादिषु प्रवर्तमानेषु स्त्रिया नियोगसिद्धिरित्यर्थः। तेषामपि प्रवृत्तिस्तद्विधिना। क्षेत्रज ईप्सित" इति वाच्यम्। यतो रागतः प्रवृत्तिरुपपद्यते। "घृताक्तादिनियमविधानमनर्थकम्" इति चेन्नानर्थकम्; तथा नियमैरुत्पन्ने क्षेत्रजव्यपदेशो नान्य इति।

यदपि 'गुरुवचनं कर्तव्य'मिति केचित्प्रवृत्तिनिबन्धनमाहुः,—एवं सति सुरापानादिष्वपि गुर्विच्छया प्रवृत्तिः प्राप्नोति। न चासौ गुरुरकार्ये यः प्रवर्तयति।

"गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः। उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते।" इति स्मरणात्। परित्यागश्च गुरुकार्यान्निवृत्तिः। एतेनैतदपि प्रत्युक्तं—यन्नियमातिक्रमपातित्यवचननियमपूर्विकां वृत्तिमनुजानाति—'तावुभौ पतितौ स्याताम्' इति। इतरथा सर्वप्रकारं गच्छतः पातित्यमिति विशेषपातित्यमनुपपन्नम्"। यतस्तत्र केवलस्य पुंसः श्रूयते, किं तर्हि? स्त्रिया इति, तस्याश्च पुत्रार्थिन्या नियोगो विहितः। तदपेक्षं हि व्यतिक्रमे पतितवचनं "तावुभौ पतितौ स्यातामिति"। असति व्यतिक्रम एकः पतितः पुमानेव, अतिक्रमे तु द्वावपीत्येवमपि लिङ्गान्निर्गच्छत्येव। तस्माद्देवरादिविधिलक्षणा प्रवृत्तिः कथमिति वक्तव्यम्? उच्यते—व्यासादिदर्शनेनापत्यपिण्डदान इव क्षेत्रजोत्पत्त्यर्थं सपिण्डानां गुरुनियोगापेक्षा। तदा नोपगमने च्युतिरस्तीत्यनुमन्तव्यम्। न हि महात्मनां रागलक्षणप्रवृत्तिरभ्युपगन्तुं न्याय्या। यच्चोक्तं नियमातिक्रमे पतिततववचनं लिङ्गमिति—तदयुक्तम्; यतः पुंसः पतिततवे पतितोत्पन्नस्याधिकाराभावादुत्पादनमनर्थकम्। तस्मादस्ति देवरादिविधेराभासोऽयम्॥ ६४॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। नान्यस्मिन्, परिसोदरसपिण्डभ्रातृभ्याम्॥ ६४॥

(३) **कुल्लूकः**। एवं नियोगमभिधाय दूषयितुमाह **नान्येति**। ब्राह्मणादिभिर्विधवा स्त्री भर्तुरन्यस्मिन्देवरादौ न नियोजनीया। स्त्रियमन्यस्मिन्नियुञ्जानास्ते स्त्रीणामेकपतित्वधर्ममनादिसिद्धं नाशयेयुः॥ ६४॥

(४) **राघवानन्दः**। ननु विधवायां नियुक्त इति लिङ्गाद्विधवाया पुनर्विवाहोऽपि स्यात्; भोग्यतासंपादकत्वस्य तुल्यन्यायत्वात्। तत्राह **नेति पञ्चभिः**। नान्यस्मिन्नुक्तातिरिक्तेन नियोक्तव्या। कुतस्तदाह **अन्यस्मिन्निति**। नियुञ्जानाः यथावत् पाणिग्रहमन्त-

विधिना तज्ज्ञेयं; अन्यथा विधिनिषेधयोः परस्परविरोधधर्ममेकपतित्वम् । द्रौपदीन्वर्जुन (?) स्मैवसतीकायव्यूहेनान्याभोजयतीति भट्टोक्तं) सनातनं वेदोक्त्यादौ ।। ६४ ।।

(५) **नन्दनः** । योऽयं नियोग उक्तः सोऽर्वाचीनैर्दुरनुष्ठानस्तस्मात्स नानुष्ठेय इति श्लोकपञ्चकेनाह **नान्यस्मिन्विधवेति** । अन्यस्मिन् भर्तुरन्यस्मिन् नियुंजाना द्विजातयः सनातनवेदविहितं अनन्यनियोगरूपं धर्मं हन्युः ।। ६४ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । द्विजातिभिः विधवा नारी अन्यस्मिन्नियोगानधिकारिणि सपिण्डादौ न नियोक्तव्या ।। ६४ ।।

(७) **मणिरामः** । अन्यस्मिन् देवरादौ ।। ६४ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । एवं नियोगमुक्त्वा दूषयितुमाह 'नान्यस्मिन्विधवा नारी नियोक्तव्या कदाचने'ति । विधवा नारी अन्यस्मिन्देवरादौ न नियोजनीया, यस्मात्ते देवरादौ नियोजयन्तोऽनादिधर्ममेकपत्नीव्रतं प्रतिषेधं नाशयेयुः ।। ६४ ।।

(९) **भारुचिः** । अस्य प्रतिषेधः, विवाहविधिशास्त्र इत्यर्थः ।। ६४ ।।

**नोद्वाहिकेषु मन्त्रेषु नियोगः कीर्त्यते क्वचित् ।।**
**न विवाहविधावुक्तं विधवावेदनं पुनः ।। ६५ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । उद्वाहनं कर्म–तत्र ये मन्त्राः प्रयुज्यन्ते "अर्यमणं नु देव" "कन्या अग्निमयक्षत" इत्यादयः । तथान्येऽपि तत्संबन्धाः "मया पत्या जरदष्टिः" इति, "मया पत्या प्रजावतीति"–तत्र सर्वत्र वोढुर्वरयितुः स्वापत्यं भवतीत्याहुः । न तत्र श्रूयते 'मया यत्र नियुज्यसे ततो जनयेति' ।

मन्त्रग्रहणेनैतद्दर्शयति मन्त्रार्थवादा अपि नैवंविधाः सन्ति । दूरत एव तद्दर्शयति **न विवाहविधावुक्तं विधवावेदनं पुनः** । **'आवेदनं'** गमनमभिप्रेतमत्र । अथ–"विवाह एवेयं वा संयुज्यते । विवाहयिष्यति देवरो भ्रातृजायाम् । ततोऽयं नियोगो विवाहो विहित एव ।" न त्वत्र विवाहविधिरिति पूर्वशेषोऽयमर्थवादः ।। ६५ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । एवमेतत्सर्वमृष्यन्तरमतमुक्त्वा स्वमतमाह **नेति** । न कीर्त्यते न मन्त्रलिङ्गाद् गम्यते । विवाहविधौ ब्राह्मणभागे ।। ६५ ।।

(३) **कुल्लूकः** । 'अर्यमणन्नु देव' (आश्व.गृ.सू.१।७) मित्येवमादिषु विवाहप्रयोजनकेषु मन्त्रेषु क्वचिदपि शाखायां न नियोगः कथ्यते । नच विवाहविधायकशास्त्रेऽन्येन पुरुषेण सह पुनर्विवाह उक्तः ।। ६५ ।।

(४) **राघवानन्दः** । अत एवाह **नोद्वाहिकेष्विति** । मन्त्रेषु 'अर्यमणं नु देव'मित्यादिषु । विवाहविधौ ब्राह्मो देव इत्यादौ । वेदनं विवाहः ।। ६५ ।।

(५) **नन्दनः** । कुतः पुनः सनातनधर्मस्य वधो नियोगस्य वेदविहितत्वादित्याह **नोद्वाहिकेषु मन्त्रेष्विति** । विवाहविधौ विवाहविधायके मन्त्रब्राह्मणे विधवावेदनं विधवायाः पतिलाभः ।। ६५ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **विधवावेदनं** विवाहः। विवाहविधौ विवाहप्रतिपादकब्राह्मण-भाजनः न उक्तम् ॥ ६५ ॥

(७) **मणिरामः**। उद्वाहिकेषु मंत्रेषु 'अर्यमणं नु देव'मित्यादिषु क्वचित् क्वचिदपि शाखायां विनियोगः विवाहं विनाऽन्यत्र न कथ्यते। न च विवाहविधौ विवाहविधायकशास्त्रे **पुमज्यं (राज्यं ?) प्रशासति मनुष्याणामपि प्रोक्तः** वेणे (नेन ?) विधवावेदनं विधवाया अन्येन पुरुषेण सह पुनर्विवाह उक्तः ॥ ६५ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **नेति**। विवाहप्रयोजनेषु मन्त्रेषु 'अर्यमणं नु देवं' नच विवाह-शास्त्रे विधवाया अन्येन पुंसा सह पुनर्विवाह उक्तः ॥ ६५ ॥

**अयं द्विजैर्हि विद्वद्भिः पशुधर्मो विगर्हितः ॥**
**मनुष्याणामपि प्रोक्तो वेने राज्यं प्रशासति ॥ ६६ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। अयमप्यर्थवाद एव नियोगप्रतिषेधशेषः। येऽविद्वांसः सम्यक् शास्त्रं न जानते तत्र व्यवहारिणो लिङ्गाद्यन्वयपरत्वं च न जानते तैरयं **पशुधर्मः—स चात्यन्त-गर्हितो मनुष्याणामपि प्रोक्तः** प्रवर्तितः। स चेदानींतनो न, आदि**वेने राज्ञि प्रशासति** राष्ट्रं पालयति। "ननु च लिङ्गानि नैव सन्तीत्युक्तम्।" नैवम्; उद्वाहकेषु मन्त्रेषु न सन्तीत्युक्तम्। अन्यत्र तु दृश्यते। "को वा स पुत्रो विधवेव देवरं मर्यं न योषा कृणुते सधस्थ आ" इत्यादि। यथा विधवा स्त्री देवरपतिं मनुष्यं कुरुते समानशयन एवं को वा मनस्विनौ कुरुते येन नागच्छतः। को विशेषो विवाहमन्त्रेषु? स किलापत्योत्पत्तिविध्यनुक्रमरूप इत्यभिप्रायः।

अन्यै**र्विद्वद्भिरिति** पठितम्। **गर्हितो मनुष्याणां प्रोक्तः**। पशूनामेष धर्मो भ्रातृस्त्री-गमनं नाम। स च प्रवृत्तो वेनस्य राज्ये ॥ ६६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अपि न विधवाया वेदनं भर्तृलाभः पुनरित्युक्तं, तर्हि कथं देव-रोपगमाचारस्मृती इत्यत आह **अयमिति**। द्विजैर्बहुभिः गर्हितः पशुधर्मः पशूनामेव धर्मो गुरुस्त्रीस्तुवागमनं मनुष्याणामपि धर्मेण कैश्चिन्मुनिभिः प्रोक्तो वेने पृथोः पितरि पापकर्म-प्रवर्तके राजनि ॥ ६६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यस्मादयं पशुसंबन्धी मनुष्याणामपि व्यवहारो विद्वद्भिर्निन्दितः, योऽयमधार्मिके वेने राज्ञि राज्यं कुर्वाणे तेन कर्तव्यतया प्रोक्तः, अतो वेनादारभ्य प्रवृत्तोऽय-मादिमानिति निन्द्यते ॥ ६६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। ननु विवाहफलं भोगो दृश्यत इति तत्राह **अयमिति**। पशुधर्मः पुनर्विवाहः मन्त्रं विना रागतस्तत्संभोगदर्शनेऽपि न शास्त्रीयः। **स इति**। 'वेने राज्यं प्रशासती'-त्यर्थवादमात्रम्; 'एकमुत्पादयेत्पुत्र'मिति विधिविरोधात् ॥ ६६ ॥

(५) **नन्दनः**। एवञ्चेत्किमुपज्ञोऽयं नियोगविधिरित्यत्राह **अयं द्विजैर्हीति**। पशुधर्मो तिर्यग्योनिभिरनुष्ठितोऽन्यायो नियोगाख्यः ॥ ६६ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। अयं पशुधर्मः ॥ ६६ ॥

(७) **मणिरामः**। हि यस्मात् यः अयं पशुधर्मः पशुसंबंधी भ्रातृभार्यागमनरूपः मनुष्याणां विद्वद्भिर्द्विजैर्विगर्हितः निंदितः स वेनो राज्यं प्रशासति मनुष्याणामपि प्रोक्तः वेनेन कर्तव्यतया उक्तः; अतो वेनादारभ्य प्रवृत्तोऽयमनादिमानिति निषिद्धः ॥ ६६ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **अयमिति**। यस्मादयं पशुसम्बन्धी व्यवहारोऽत्यन्तकुत्सितो वेनाख्ये राजनि राज्यं कुर्वाणेऽन्यत्वेन प्रोक्तस्तस्मादादिमन्वादिभिरेष श्रुतौ नास्तीति पूर्वोक्तस्यायं हेतुः ॥ ६६ ॥

**स महीमखिलां भुञ्जन् राजर्षिप्रवरः पुरा ॥**
**वर्णानां संकरं चक्रे कामोपहतचेतनः ॥ ६७ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। भुञ्जन्पालयन्। "कथं पुनर्वर्णसङ्करं प्रवर्तयन् राजर्षीणां प्रवर इत्युक्तम्?" **महीमखिलां** भुनक्ति यः महाराजत्वात्। **कामेन** रागादिलक्षणेनोपहता नाशिता **चेतना** चित्तस्थैर्यं यस्य सः ॥ ६७ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **राजर्षिप्रवरो** राजर्षीणां प्रवरो मूलभूतः। वर्णानां संकरमधर्म्यं मैथुनम् ॥ ६७ ॥

(३) **कुल्लूकः**। स वेनो महीं समग्रां पूर्वं **पालयन्** अत एव **राजर्षिश्रेष्ठो** नतु धार्मिकत्वात्**कामोपहतबुद्धि**र्भ्रातृभार्यागमनरूपं वर्णसंकरं प्रावर्तयत् ॥ ६७ ॥

(४) **राघवानन्दः**। स वेनः, संकरत्वे हेतुः—कामोपहतचेतनः। स्वयं सापत्यामपि नियुक्तवानिति विशेषः ॥ ६७ ॥

(५) **नन्दनः**। **संकरं** नियोगाख्यम् ॥ ६७ ॥

(७) **मणिरामः**। अमुमेवार्थं प्रकटयति स **महीमिति**। **स** वेनः अखिलां **महीं** पूर्वं **भुंजन्** **राजर्षिप्रवरः** न तु धार्मिकः, अत एव **कामोपहतचेतनः** **वर्णसंकरं** भ्रातृभार्यागमनरूपं **चक्रे** प्रावर्तयत् ॥ ६७ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **स इति**। स वेनः पूर्वं समग्रां पृथिवीं पालयन् तत एव राजर्षिश्रेष्ठो न तु धार्मिकः, ततो ब्राह्मणानुज्ञयैतद् भ्रातृभार्यागमनलक्षणं वर्णसङ्करं वर्तितवान् ॥ ६७ ॥

**ततःप्रभृति यो मोहात्प्रमीतपतिकां स्त्रियम् ॥**
**नियोजयत्यपत्यार्थं तं विगर्हन्ति साधवः ॥ ६८ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। स्पष्टार्थोऽर्थवादः ॥ ६८ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। तदाप्रभृति नियोजयतीति तदाप्रभृति तु न गर्हन्तीति तं साधवो विगर्हन्ति ॥ ६८ ॥

(३) **कुल्लूकः**। वेनकालात्प्रभृति यो मृतभर्तृकादिस्त्रियं शास्त्रार्थाज्ञानादपत्यनिमित्तं देवरादौ नियोजयति तं साधवो नियतं गर्हयन्ते। अयं च स्वोक्तनियोगनिषेधः कलियुगविषयः। तदाह **बृहस्पतिः** 'उक्तो नियोगो मुनिना निषिद्धः स्वयमेव तु। युगक्रमादशक्योऽयं कर्तुमन्यैर्विधानतः। तपोज्ञानसमायुक्ताः कृतत्रेतायुगे नराः। द्वापरे च कलौ नृणां शक्तिहानिर्हि निर्मिता। अनेकधा कृताः पुत्रा ऋषिभिश्च पुरातनैः। न शक्यन्तेऽधुना कर्तुं शक्तिहीनैरिदंतनैः॥' अतो **यद्गोविन्दराजेन** युगविशेषव्यवस्थामज्ञात्वा सर्वदैव संतानाभावे नियोगादनियोगपक्षः श्रेयानिति स्वमनीषया कल्पितं तन्मुनिव्याख्याविरोधान्नाद्रियामहे। 'प्रायशो मनुवाक्येषु मुनिव्याख्यानमेव हि। नापराध्योऽस्मि विदुषां क्वाहं सर्वविदः कुधीः'॥६८॥

(४) **राघवानन्दः**। ततः किं तत्राह **तदेति**। प्रमीतपतिकां प्रमीतो हिंसितः पतिर्यस्यास्तां, पुत्रवतीमिति शेषः। यो नियोजयत्यपत्यार्थेऽपत्योत्पादनाय तं गर्हयन्तीत्यन्वयः। अपत्यार्थे विद्यमानपुत्रे सतीति। एषु वेदनश्रुत्यनुरोधेन 'यस्या म्रियेत' इत्युत्तरस्वरसात् 'सकृत्प्रदीयते कन्या'इत्यादिवचनबलात्पुनर्विवाहो निषिद्धो नत्वपत्यार्थे नियोग इति। यत्तु **बृहस्पतिः** "उक्तो नियोगो मनुना निषिद्धः स्वयमेव तु। युगक्रमादशक्योऽयं कर्तुमन्यैर्विधानतः। तपोज्ञानसमायुक्ताः कृतत्रेतायुगे नराः। द्वापरे च कलौ नृणां शक्तिहानिर्हि निर्मिता। अनेकधा कृताः पुत्रा ऋषिभिश्च पुरातनैः। न शक्यन्तेऽधुना कर्तुं शक्तिहीनैरिदंतनै" रिति। तदन्यथा सिद्धं; निषेधस्य पुनर्विवाहविषयत्वात्। पुत्रप्रयोजना भार्येति तात्पर्यम्। शास्त्रतात्पर्यादग्नीषोमीयपशोरिव क्वचिदननुष्ठानस्य शास्त्रासंकोचकत्वाद्धोलाकाद्यननुष्ठानत्रदेकमुत्पादयेत्। **पुत्रमिति**। नियोगविधेः प्राधान्येनार्थवादस्य 'न हिंस्यात्सर्वा भूतानी'तिवत्। स्तनाद्युपमर्दरागनिवर्तनेऽन्यथासिद्धेर्गोविन्दराजव्याख्या गरीयसी। अन्यथा संतानकृतेर्दोषापत्तिः। यत्तु 'अग्निहोत्रं गवालंभं संन्यासं पलपैतृकम्। देवरेण सुतोत्पत्तिः कलौ पञ्च विवर्जये' दिति;—तदनमूलम्; समूलत्वे वा लाभाख्यात्यादिरागिनां निवृत्तितात्पर्यकम्। अन्यथा 'यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत्।' 'यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोती'त्यादिश्रुतिविरोधश्चेति दिक्। अत एव **मेधातिथिर्देवराद्वेत्यादि** साधव इत्यन्ते ग्रन्थे षोडशिग्रहणादिवद्विकल्पः। नियोगतदभावयोः पित्राद्युद्धरणफलं गन्तुश्च परमोपकारः तदाप्रभृत्ययं श्लोकोऽर्थवाद एवेति॥ ६८॥

(५) **नन्दनः**। नियोगनिन्दा च तदाप्रभृत्येवासीदित्याह **तदाप्रभृतीति**। सप्रकारः सापवादश्च नियोगः पुनरेव प्रतिषिद्धः। तत्र मनोरयमभिप्राय इति **बृहस्पतिना** व्याख्यातं नियोगमुक्त्वा **मनुना** निषिद्धः स्वयमेव तु। युगह्रासादशक्योऽयं कर्तुमन्यैर्विधानतः। तपोज्ञानसमायुक्ताः कृते त्रेतायुगे नराः। द्वापरे च कलौ नृणां शक्तिहानिर्हि निर्मिता। अनेकधा कृताः पुत्रा ऋषिभिश्च पुरातनैः। न शक्यन्तेऽधुना कर्तुं शक्तिहीनैरिदंतनै'रिति॥६८॥

(६) **रामचन्द्रः**। मृतभर्तृकां प्रत्याह **तदेति**। प्रमीतपतिकां मृतभर्तृकाम्॥ ६८॥

(७) **मणिरामः**। अयं च निषेधः कलियुगविषयः। तदाह **बृहस्पतिः** 'उक्तो नियोगो मनुना निषिद्धः स्वयमेव तु। युगक्रमादशक्योऽयं कर्तुमन्यैर्विधानतः। तपोज्ञान-

समायुक्ताः कृतत्रेतायुगे नराः। द्वापरे च कलौ नृणां शक्तिहानिर्हि निर्मिता। अनेकधा कृताः पुत्रा ऋषिभिश्च पुरातनैः। न शक्यंतेऽधुना कर्तुं शक्तिहीनैरिदंतनैरिति ॥ ६८ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **तदाप्रभृतीति**। एवं चेदानींतनत्वादमुष्याचारस्य तस्माद्येनकालात्प्रभृति यो मृतभर्तृकां स्त्रियं सम्यक्शास्त्रविगर्हिते एवं च विहितप्रतिषेधत्वान्नियोगस्य कालसूत्रनियोक्तॄणां निन्दाश्रवणं स्त्रीधर्मेषु ॥ ६८ ॥

(९) **भारुचिः**। इमे नियोगप्रतिषेधार्थाः सपुराकल्पाः पञ्च श्लोकाः। उक्तप्रतिषिद्धत्वाच्च नियोगस्य विकल्पः, अनयोस्तु स्मृत्योः कतरा ज्यायसीति। किन्न एतेन शक्यते तदेवं वक्तुम् उभयत्राभ्युदयः यो नैकत्रापत्यमन्यत्र संयमः, उभयं च विशेषतः संस्कृतो यतो नियोगोऽभ्युदयाय। न हि मृतस्य जीवतो वा पत्युर्नियोक्तुः काचिदिन्द्रियप्रीतिरस्ति। नापि पित्रादीनां विधानसामर्थ्याच्च पित्रादीनामपि योगाभ्युदयायेति गम्यते। प्रतिषेधोपदेशसामर्थ्याच्चानियोगेऽप्यनत्ययः। विधवानियोगसाम्याच्च तत्प्रकरण एवायं कन्यानियोगः शिष्यते ॥ ६८ ॥

**यस्या म्रियेत कन्याया वाचा सत्ये कृते पतिः ॥**
**तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः ॥ ६९ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। नियोगरूपत्वात्कन्यागतोऽयं धर्म उच्यते। **वाचा सत्ये कृते** वाग्दाने निवृत्ते एकेन दत्ताऽपरेणाप्रतिगृहीता। **तामनेन** वक्ष्यमाणेन **विधानेन निजः** सोदरो **देवरः विन्देत** विवाह्येत् ॥ ६९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। सर्वदैव कथं पुनर्देवरोपगमस्मृतीनां व्यवस्थेत्यत आह **यस्या इति**। वाग्दत्ताविषयमेव, परिणीतविषयतैव तद्भ्रान्तेर्गृहीतमित्यर्थः। वाचा सत्यवचनेन सत्यं मया दातव्येयमिति सत्याङ्गीकार इत्यर्थः। अनेन विधानेन विवाहविधिना निजः पतिसोदरो देवरो विन्देत ॥ ६९ ॥

(३) **कुल्लूकः**। नियोगप्रकरणत्वात्कन्यागतं विशेषमाह **यस्या इति**। यस्याः कन्याया वाग्दाने कृते सति भर्ता म्रियते तामनेन वक्ष्यमाणेनानुष्ठानेन भर्तुः सोदरभ्राता परिणयेत् ॥ ६९ ॥

(४) **राघवानन्दः**। अत एव वाग्दत्ता विधितो देवरैव ग्राह्यत्वमाह **यस्या** इति द्वाभ्याम्। सत्ये कृते वा अमुकस्य पौत्रायामुकस्य पौत्रीमित्यादिवंशमुच्चार्येमां दातुं **प्रतिजान** इति। प्रतिश्रुतेऽनेन वक्ष्यमाणेन विधिना ॥ ६९ ॥

(५) **नन्दनः**। अथ वाग्दत्तायां पत्यौ मृते कर्तव्यं श्लोकद्वयेनाह **यस्या म्रियेतेति**। अनेन वक्ष्यमाणेन निजः पत्युस्सोदरः ॥ ६९ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। वाग्दानदत्तां प्रत्याह **यस्येति**। अनेन विधानेन विवाहविधानेन निजो देवरः विन्देत विवाह्येत् ॥ ६९ ॥

(७) **मणिरामः**। कन्यागतं विशेषमाह **यस्या इति**। वाचा सत्ये कृते वाग्दाने कृते सति अनेन वक्ष्यमाणेन निजः देवरः विंदेत परिणयेत् ॥ ६९ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। नियोगप्रकारकत्वात्कन्यागतमिदमाह **यस्या** इति। वाग्दत्तायाः कन्यायाः भर्ता म्रियेत तामनेन विधिना भर्तुः सोदर्यो भ्राता उद्वहेत् ॥ ६९ ॥

(९) **भारुचिः**। विधानं विधिर्विवाहो यथोक्तः 'विन्देते'ति वचनात् इतरथा ह्यनूढामुपगच्छतः कन्यादूषणमुपपातकं स्यात् नियमार्थश्चैवमारम्भः। एतस्मादेव च लिङ्गात् प्राग्विवाहात् वाक्प्रदानमस्ति यस्मिन्निवृत्ते मृते भर्तरि साऽन्यस्मै दीयते ॥ ६९ ॥

**यथाविध्यधिगम्यैनां शुक्लवस्त्रां शुचिव्रताम् ॥**
**मिथो भजेताऽऽप्रसवात्सकृत्सकृदृतावृतौ ॥ ७० ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **यथाविधि** यथाशास्त्रं वैवाह्यो विधिस्तथा विवाह्य। वाचनिकोऽयं विवाहः। पुनर्भूश्च तथोच्यते। नवा व्यूढाऽपि सती भार्या भवति। केवलं परार्थोऽस्या वाचनिको विवाहः। तथा च दर्शयति (९।१७१) "न दत्वा कस्यचित्कन्यां पुनरन्यस्य दीयते" **न इति**। नासौ देवराय दीयत इत्यर्थः। अदत्ता चास्वभूता कथमिव भार्या भवेत्? **शुक्लवस्त्राम्**। नियमो गमने। अन्यस्मिन्नपि नियोगे धर्मोऽयमिष्यते ॥ ७० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। शुक्लवस्त्रां न रक्तवस्त्राम्। शुचिव्रतां सच्चरित्रवतीम्। आ प्रसवात् प्रसवानन्तरं निवर्तेत। एतदपत्यं क्षेत्रिण एव तदपेक्षया च क्षेत्रिणोऽपत्यं देवराज्जात इति स्मृतिषूच्यत इति समुदायार्थः ॥ ७० ॥

(३) **कुल्लूकः**। स देवरो विवाहविधिनैनां स्वीकृत्य शुक्लवस्त्रां कायवाङ्मनःशौचशालिनीमा गर्भग्रहणाद्गर्हसि ऋतावृतावेकैकवारं गच्छेत्। एवं कन्याया नियोगप्रकारत्वाद्विवाहस्याग्रहाच्च गमनोपदेशाद्यस्मै वाग्दत्ता तस्यैव तदपत्यं भवति ॥ ७० ॥

(४) **राघवानन्दः**। यथाविधि विवाहविधिमनतिक्रम्य। शुचिव्रतां कायवाङ्मनोभिरनन्यपराम्। मिथो भजेतां ऋतावृतौ मैथुनेनेति शेषः। आ प्रसवादिति लिङ्गादपत्यं यस्मै वाग्दत्ता तस्यैव न पुनर्देवरस्येति। ततः परं न गम्या सेति भावः ॥ ७० ॥

(५) **नन्दनः**। **अधिगम्य** उद्वह्य ॥ ७० ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **शुचिव्रतां** सुचरिताम् ॥ ७० ॥

(७) **मणिरामः**। शुचिव्रतां कायवाङ्मनःशौचशालिनीं। यस्मै वाग्दत्ता तस्यैव तदपत्यं नोत्पादकस्येति ज्ञापनार्थमत्रोक्तिः ॥ ७० ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **यथेति**। स देवरो विवाहविधिना एतां स्वीकृत्य शुक्लवस्त्रां वाक्कायसंयुतां रहस्याऽऽगर्भग्रहणात्प्रभृति वाचनिकत्वात् च संस्कारस्य नाऽसौ देवरस्य भार्या भवतीति क्षेत्रस्वामिन एव तदपत्यं भवतीति ॥ ७० ॥

(९) **भारुचिः**। यथाविध्यधिगम्यैनां विधिवदूढां शुक्लवस्त्रामिति नियमः। शुचिव्रतां मनोवागादिसंयतामितरथा भजेताऽऽप्रसवात्। सकृत्सकृदृतावृतौ कार्यसामान्या विधवानियोगेऽप्येवमेव स्यात्। पूर्वं च घृतात्तदिह सर्वं स्यात् समानत्वान्नियोगस्य ॥७०॥

**न दत्वा कस्यचित्कन्यां पुनर्दद्याद्विचक्षणः ॥**
**दत्वा पुनः प्रयच्छन् हि प्राप्नोति पुरुषानृतम् ॥ ७१ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। "तेषां निष्ठा तु विज्ञेया विद्वद्भिः सप्तमे पद" (९।२२७) इति प्राग्विवाहान्मृते वरे दत्तायामपि पुनर्दानाशङ्कायां प्रतिषेधोऽयम्। विशिष्टे तु पुनर्वचनम्, तथाविधा पुनर्भूरुक्ता। **नान्यस्मै दत्वा** तस्मिन्मृतेऽन्यस्मै **दद्यात्**। तथा कुर्वन्**प्राप्नोति पुरुषानृतम्**। मनुष्यहरणैः यत्पापं तत् तस्य भवति ॥ ७१ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। दत्वा ददानीत्युक्त्वा नादद्यादन्यस्मै। पुरुषानृतं पुरुषविषयानृताभिधानम् ॥ ७१ ॥

(३) **कुल्लूकः**। कस्मैचिद्वाचा कन्यां दत्वा तस्मिन्मृते दानगुणदोषज्ञस्तामन्यस्मै न दद्यात्। यस्मादेकस्मै दत्वाऽन्यस्मै ददत् पुरुषानृतं 'सहस्रं पुरुषानृते'(८।९८)इत्युक्तदोषं प्राप्नोति। सप्तपदीकरणस्याजातत्वाद् भार्यात्वानिष्पत्तेः पुनर्दानाशङ्कायामिदं वचनम् ॥७१॥

(४) **राघवानन्दः**। नान्यस्मिन्नित्याद्युपसंहरन् विपक्षे दोषमाह **न दत्वेति**। वाग्दाने दानं भाक्तं दत्त्वा ददत् प्राप्नोति पुरुषानृतं 'सहस्रं पुरुषानृत' इत्युक्तत्वात्। अत एव 'दत्तामपि हरेत्कन्यां श्रेयांश्चेद्वर आव्रजे'दित्यविधिना वाचा दत्ता दानाशंका ॥ ७१ ॥

(५) **नन्दनः**। अस्य देवरस्यैव दातव्यत्वे कारणमाह **न दत्वा कस्यचिदिति**। पुरुषविषयेऽयं दत्तो दत्तः क्रीतो क्रीत इत्यादौ विवादे प्रोक्तमनृतं पुरुषानृतं पुरुषाणां 'सहस्रं पुरुषानृते' हन्तीति पूर्वोक्तदोषं प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ ७१ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। कस्यचिद्वराय कन्यां दत्वा ददामीत्युक्त्वा पुनः अन्यस्मै न दद्यात् पुरुषानृतं पापं आप्नोति ॥ ७१ ॥

(७) **मणिरामः**। दत्त्वा वाचा दत्वा 'पुरुषानृते सहस्रं'इत्युक्तदंडं ॥ ७१ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **नेति**। शास्त्रज्ञोऽन्यस्मै कन्यां पुनरन्यस्मै न दद्यात् ॥ ७१ ॥

[*अत्र द्विसप्ततितमश्लोकादारभ्याध्यायसमाप्तिपर्यन्तमुपलब्धेषु पुस्तकेषु **गोविन्दराज**कृतटीका न दृश्यते, केवलं मूलश्लोका एव वर्तन्ते अतस्ते श्लोका अत्र न गृहीताः]

(९) **भारुचिः**। **सहस्रं पुरुषानृत इति**। दत्वान्यस्य कस्यचिद्दानाशङ्कया प्रतिषेधानुवादोऽयम् ॥ ७१ ॥

**विधिवत्प्रतिगृह्यापि त्यजेत्कन्यां विगर्हिताम् ॥**
**व्याधितां विप्रदुष्टां वा छद्मना चोपपादिताम् ॥ ७२ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **विधिः** शास्त्रं तदर्हतीति **विधिवत्**। यादृशः शास्त्रेण **विधिरुक्तः** "अद्भिरेव द्विजाग्र्याणाम्" (३। ३५) इति। स च कैश्चिदुदकाधिकारः कन्याविषये स्मर्यते।

तेन **प्रतिगृह्यापि त्यजेत्कन्यां** प्राग्विवाहात् । **विगर्हितां** दुर्लक्षणाम् । पूर्वप्रतिगृहीतामक्षतयोनिमपि । तथा निर्लज्जां बहुपुरुषभाषिणीम् । **व्याधितां** क्षयव्याधिगृहीताम् । **विप्रदुष्टां** रोगिण्यादिशब्दितामन्यगतभावां च त्यजेत् । अन्ये क्षतयोनिं **विप्रदुष्टां** व्याचक्षते ।

न ते सम्यङ्मन्यन्ते । यदि तावत्पुरुषानुपभुक्ता स्त्रीकन्यादिविकृता तदा नैव दुष्यति । अथ पुरुषसंयुक्ता तदा अन्यैव न भवति । तत्र "त्यजेत्कन्यामिति" सामानाधिकरण्यानुपपत्तिः । उक्तश्च तस्यास्त्यागः । **छद्मना चोपपादिताम्** । न्यूनाधिकाङ्गीम् । यतो हेतुरुक्तोऽकथितेषु स्वल्पेष्वपि दोषेषु कृतवरणाऽपि त्याज्यैव ।। ७२ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । विगर्हितां दुष्कुलत्वादिना व्याधितामसाध्यव्याधिम् । विप्रदुष्टां पुरुषान्तरदूषिताम् । छद्मना श्वित्रादिदुष्टामेव दोषं वस्त्रादिनावृत्य उपपादितां दत्ताम् । पूर्वाध्याये दोषवत्कन्यादातुर्दोष उक्तोऽत्र तु वतुर्दोषाभावः ।। ७२ ।।

(३) **कुल्लूकः** । 'अद्भिरेव द्विजाग्र्याणा' (३।३५) मित्येवमादिविधिना प्रतिगृह्यापि कन्यां वैधव्यलक्षणोपेतां रोगिणीं क्षतयोनित्वाद्यभिशापवतीमधिकाङ्गादिगोपनच्छद्मोपपादितां सप्तपदीकरणात्प्राक् ज्ञातां त्यजेत् । ततश्च तत्त्यागे दोषाभाव इत्येतदर्थं न तु त्यागार्थम् ।। ७२ ।।

(४) **राघवानन्दः** । दातुर्नियममभिधाय स्वीकर्तृनियमं संकोचयति **विधिवदिति** । विधिः शास्त्रं तत्पुरःसरं प्रतिगृह्यापि कन्यां विगर्हितां वैधव्यादिलक्षणोपेतां । विप्रदुष्टा क्षतयोनित्वादिति शापवतीं छद्मनोपपादितां अधिकांगादि प्रच्छाद्य दत्तां सप्तपदीगमनात्प्राक् त्यजेदूर्ध्वं न त्यागः किंतु वस्त्राच्छादनादिना भर्तव्या । पाणिग्रहणिका मन्त्राः पितृगोत्रापहारकाः इति । 'तेषां निष्ठा तु विज्ञेया विद्वद्भिः सप्तमे पदे' इत्युक्तः ।। ७२ ।।

(५) **नन्दनः** । विगर्हितलक्षणां विप्रदुष्टां क्षतयोनिम् ।। ७२ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । निन्दितां प्रत्याह **विधिवदिति** । विगर्हितां दुष्कुलां व्याधितां अचिकित्स्यव्याधितां विप्रदुष्टां पुरुषान्तरसंसृष्टां छद्मना कुष्ठादिव्याध्याच्छादनेन उपपादितां प्राप्ताम् ।। ७२ ।।

(७) **मणिरामः** । विगर्हितां वैधव्यलक्षणयुक्तां, विप्रदुष्टां क्षतयोनित्वाद्यभिशापवतीं । छद्मना अधिकांगादिदोषगोपनछद्मनोपपादितां । एतादृशीं विधिवत्परिगृह्यापि सप्तपदीकरणात्प्राक् त्यजेत् । त्यागे न दण्डभाग्भवति ।। ७२ ।।

**यस्तु दोषवतीं कन्यामनाख्यायोपपादयेत् ।।**
**तस्य तद्वितथं कुर्यात्कन्यादातुर्दुरात्मनः ।। ७३ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । कन्यादोषा उक्ताः । **ताननाख्याया**नुक्त्वा **प्रयच्छति** ददाति तस्य तद्दानं **वितथं** निष्फलं **कुर्यात्**प्रत्यर्पणेन । उक्त एवायमर्थः पूर्वश्लोकेनातिस्पष्टीकृतः ।। ७३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । तद्दानं वितथं गृहीतस्य पुनरग्रहणात् ।। ७३ ।।

(३) **कुल्लूकः**। यः पुनर्दोषवतीं कन्यां दोषाननभिधाय ददाति तस्य कन्यादातुर्दुरात्मनो दानं तत्प्रत्यर्पणेन व्यर्थं कुर्यात्। एतदपि त्यागे दोषाभावकथनार्थम् ॥ ७३ ॥

(४) **राघवानन्दः**। तत्र दातुर्दोषं प्रकटयन् त्यक्तुर्दोषाभावमाह **यस्त्विति**। अनाख्याय दोषमिति शेषः। वितथं प्रत्यर्पणेन व्यर्थम्। तेन त्यागे दोषो नास्तीति भावः ॥ ७३ ॥

(५) **नन्दनः**। वितथं विकृतं कुर्यात् पाणिग्राहकमनाख्यायेति विशेषणाद्दोषं ज्ञापितमभ्युपगम्य परिग्रहीत्रा न परित्याज्येति सूचितम् ॥ ७३ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। तत् दानरूपं कार्यं वितथं निष्फलं कुर्यात् ॥ ७३ ॥

(७) **मणिरामः**। तत् दानं वितथं परावृत्य दानात् मिथ्या कुर्यात् ॥ ७३ ॥

**विधाय वृत्तिं भार्यायाः प्रवसेत्कार्यवान्नरः ॥**
**अवृत्तिकर्शिता हि स्त्री प्रदुष्येत्स्थितिमत्यपि ॥ ७४ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। यदा प्रवसेत्तदा भार्यायां **वृत्तिं विधाय प्रवसेदि**ति विधिं **विधाये**त्येवमर्थं द्रष्टव्यम्—प्रवसन्भार्यायां वृत्तिं विदधीतेति। तथा कुर्याद्यथाऽस्या यावत्प्रवासं वृत्तिर्भवति। शरीरस्थितिहेतुभोजनाच्छादनगृह्योपकरणादि। **तां विधाय प्रवसेत्**स्वदेशादेशान्तरं गच्छेत्। **कार्यवान्** कार्यं पुरुषार्थो दृष्टोऽदृष्टश्च। अदृष्टो धर्मो दृष्टावर्थकामौ। तथा वक्ष्यति (९।७६) "प्रोषितो धर्मकार्यार्थम्" इत्यादिना। अन्तरेणैतानि निमित्तानि भार्यां हित्वा प्रवासो निषिध्यते। **अवृत्तिकर्शिता हि**। दृष्टदोषप्रदर्शनमर्थवादः। अवृत्त्या दारिद्र्येण **कर्शिता** पीडिता **प्रदुष्येत्** पुरुषान्तरसम्पर्कादिना। **स्थितिमत्यपि**। स्थितिः कुलाचारस्तत्संपन्ना क्षुधावसरे दीना दोषमवाप्नुयादन्यं भर्तारमाश्रित्य जीवतीति सम्भाव्यत एतत्। सम्भावनायां लिङ् ॥ ७४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। वृत्तिं प्राणवर्तनोपायम्। कार्यवान् प्रयोजनवान्। प्रदुष्येत् धनलोभात्परपुरुषेण संयुज्येत। स्थितिमती वृत्तवती ॥ ७४ ॥

(३) **कुल्लूकः**। कार्ये सति मनुष्यः पत्न्या ग्रासाच्छादनादि प्रकल्प्य देशान्तरं गच्छेत्, यस्माद् ग्रासाद्यभावपीडिता स्त्री शीलवत्यपि पुरुषान्तरसंपर्कं भजेत् ॥ ७४ ॥

(४) **राघवानन्दः**। स्त्रीप्रसंगेन परलोकभीरुणा सर्वदा पत्नी पोष्येत्याह **विधायेति**। तत्र हेतुः—**अवृत्तिकर्षितेति**। प्रदुष्येद्वस्त्रान्नलोभादिना परपुरुषं व्यभिचरेत्। 'अस्य दग्धोदरस्यार्थे को न कुर्यादसांप्रत'मिति न्यायात् स्थितिमती स्थिरा सापि प्रदुष्यतीति कैमुतिकम् ॥ ७४ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। विधायेति प्रवासार्थमाह अवृत्तिकर्शिता स्त्री जीवनोपायरहिता ॥७४॥

(७) **मणिरामः**। वृत्तिं भोजनाच्छादनादि विधाय प्रवसेत् देशांतरं गच्छेत्। स्थितिमत्यपि शीलवत्यपि ॥ ७४ ॥

(९) **भारुचिः**। कार्यार्थं नियमेन ग्रासाच्छादनप्रविधानं कुर्यात् भार्यायाः अस्या नियमे विधेरर्थवाद उत्तरश्लोकार्धः ॥ ७४ ॥

**विधाय प्रोषिते वृत्तिं जीवेन्नियममास्थिता ।।**
**प्रोषिते त्वविधायैव जीवेच्छिल्पैरगर्हितैः ।। ७५ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । 'नियमो' यथा सन्निहिते भर्तरि परगृहप्रयाणादिनिषेध एवं **प्रोषितेऽपि आस्थिता** आश्रिता गृहीतवती । अकृत्वा तु **वृत्तिं प्रोषिते शिल्पैर्जीवेदिति** । कर्तनजालिकाकरणादिना । गर्हितानि वस्तूनि विजनादीनि । एष एव विधवादीनां निजश्रमजन्यो वृत्त्युपायः ।। ७५ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । नियमं मनोवाक्कायनियमम् । शिल्पैः सूत्रकर्तनाद्यैः । अगर्हितैर्देशान्तरभ्रमणाद्यसाध्यैः ।। ७५ ।।

(३) **कुल्लूकः** । भक्ताच्छादनादि दत्वा पत्यौ देशान्तरं गते देहप्रसाधनपरगृहगमनरहिता जीवेत् । अदत्वा पुनर्गते सूत्रनिर्माणादिभिरनिन्दितशिल्पैः जीवेत् ।। ७५ ।।

(४) **राघवानन्दः** । वृत्तिमतीं शिक्षयन् तद्रहिताया वृत्त्यन्तरमाह **विधायेति** । प्रोषिते विद्याद्यर्थे । नियमं परगृहोत्सवाद्यदर्शनम् । अविधाय वृत्तिमित्यनुषङ्गः । शिल्पैः सूत्रकर्तनाद्यैः ।। ७५ ।।

(५) **नन्दनः** । अथ प्रोषिते भर्तरि स्त्रिया कर्तव्यमाह **विधाय प्रोषितेति** । प्रोषिते भर्तरि पत्यौ शिल्पैरगर्हितैः कर्तनावघातादिभिः ।। ७५ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । वृत्तिं विधाय भर्तरि प्रोषिते गते सति नियमास्थिता जीवेत् । वृत्तिं अविधायैव प्रोषिते भर्तरि अगर्हितैः शिल्पैः सूत्रकर्तनादिभिः जीवेत् ।। ७५ ।।

(७) **मणिरामः** । अविधायैव प्रोषिते वृत्तिमकृत्वैव देशांतरं गते भर्तरि अविगर्हितैः शिल्पैः सूत्रनिर्माणसीवनादिभिः जीवेत् ।। ७५ ।।

(९) **भारुचिः** । कार्यवतश्च मनुष्यस्य प्रवासोपदेशाद्विना कार्येण भार्यां मुक्त्वान्यत्र गमनं प्रतिषेधति गृहीतापि सत्येव निमित्ते त्याज्या नान्यत्र । 'निष्क्रयविसर्गाभ्या'मिति वचनात् । अतोऽस्याः त्यागनिमित्तैर्विना यथाकामं न त्यागोऽस्ति, यथोच्छिष्टद्रव्याणाम्" एतस्यामवस्थायामवगर्हितशिल्पजीवनमभ्यनुज्ञायते—तस्या जालिकादिकरणम् । एतेन विधवाया अजातपुत्राया वृत्त्युपायो व्याख्यातः, गर्हितं च वस्त्रनिर्णेजनादि । प्रवासप्रयोजनविशेषेण तदाजीवनापेक्षया कालविकल्पमिदानीं दर्शयति ।। ७५ ।।

**प्रोषितो धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टौ नरः समाः ।।**
**विद्यार्थं षड् यशोऽर्थं वा कामार्थं त्रींस्तु वत्सरान् ।। ७६ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । यदुक्तं 'कार्यवान्प्रवसेदि'ति तानि कार्याणि दर्शयति । तद्विशेषेणाप्रतीक्षाकालभेदः । परतस्त्विदं तया कर्तव्यमिति नोक्तम् । तत्र केचिदाहुः प्रकरणादगर्हितैर्जीवेदिति ।

तदयुक्तम्; प्रागस्मात्कालादगर्हितैरितीयं किं म्रियताम् ? न ह्यस्या आत्मत्याग इष्यते; पुंस इव प्रतिषिद्धत्वात्। तस्मात्प्रागप्यस्मात्प्रतीक्षणविधेरगर्हितैः शिल्पैरजीवन्ती गर्हितैर्जीवेत्।

अन्ये व्यभिचारमिच्छन्ति। तथा च स्मृत्यन्तरे (नारद० १२। ९७) "नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ। पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते॥"

अन्येऽप्याहुः— नास्या ज्ञानेन ब्रह्मचर्यमपनेतुं शक्यते। स्त्रीधर्मेषु हि तदस्या विहितं **मनुना**ऽपि—"न तु नामापि गृह्णीयात्पत्यौ प्रेते परस्य तु" (५।१५८) इति। मृते भर्तरि नास्ति व्यभिचारः, किमङ्ग प्रोषिते। पतिशब्दो हि पालनक्रियानिमित्तकः—ग्रामपतिः, सेनायाः पतिरिति। अतश्चास्माद्वचनान्नैषा भर्तृपरतंत्रा स्यात्, अपि त्वात्मनो जीवनार्थं सैरंध्रीकरणादिकर्मभिरन्यमाश्रयेत। तच्च यदा षण्मासभृत्या संवत्सरभृत्या कस्मिंश्चिदाश्रिते भर्ता यद्यागच्छेत्तदानीं तां चेद्वशीकर्तुं शक्नुयात्—'त्यज त्वं भार्यामिति यावद्भवति कालो न पूर्णः प्राक् पत्युरेव सा।' पञ्चमे चर्वितमन्यत् (५।१५६)।

अन्येऽप्यर्थमिममाहुः— पूर्वे तु पुनर्भूवृतमिच्छन्ति। या पत्या वा परित्यक्ता भवति, यस्याः किल पतिरियन्तं कालं विहितवृत्तिको नागच्छति, सा तेन त्यक्तैव भवति। ततश्च यदि सा पुनर्भूधर्मेणान्येनोढा भवेत्तदा भर्ताऽभ्यागतो न किंचिद् ब्रूयात्। पुनर्भवस्येयं भार्येति— तदयुक्तम्; 'न निष्क्रयविसर्गाभ्याम्' (९।४६) इति तस्य श्लोकस्यार्थवत्त्वं दर्शयिष्यामः।

धर्मश्च तत्कार्यं च 'धर्मकार्यम्'। सोऽर्थः प्रयोजनं प्रवासस्येति **धर्मकार्यार्थम्**।

"कुतः ? न गृहस्थस्य धर्मार्थो दीर्घकालः प्रवासः। अवश्यं ह्यग्नयस्तेन परिचरणीयाः। पाञ्चयाज्ञिकमनुष्ठेयम्। कुतो गन्तव्यम् ? "वसन्ते वसन्ते ज्योतिषा यष्टव्यमिति"। तीर्थस्नानादीन्यपि स्मार्तानि च श्रौताविरोधीन्यनुष्ठेयानि। संविधाय प्रोषितस्य वा भवतीति न च येनोच्येत संविधायापि प्रवास आपर्वणः। स्वयं पर्वणि जुहुयादृत्विजामेकतरकालमित्युक्तम्। अनाहिताग्नेस्तीर्थयात्रायां पाञ्चयाज्ञिकस्य तुल्यत्वेऽपि स्मार्तत्वे भार्यासहितस्योपपत्तेः न तत्त्यागे तीर्थगमनं युक्तम्।" उच्यते – गुरुवचनेन। यं गुरवो धर्मार्जने राजोपसेवायां वा स्वकार्याय प्रेषयन्ति स 'धर्मार्थं' प्रवासः। प्रायश्चित्तं वा—तपोवनदेशभ्रमणेन। अथवाऽर्थार्जनार्थमेव **धर्मकार्यार्थम**भिप्रेतम्। दरिद्रोऽहं कुतश्चिद्धनमर्जयिष्ये।

**विद्यार्थम्**। "ननु स्नातस्य च भार्याधिगमः। कृतविद्यस्य च स्नानम्। तत्र कुतः कृतविवाहस्य विद्यार्थिता ?" दर्शितमेतत्। ईषदवगतवेदार्थो विवाहेऽधिक्रियते। निश्चिते स्नानादौ।

"नैतद्युक्तम्; कृतायां धर्मजिज्ञासायां स्नानं—जिज्ञासा च विचारपूर्वकसंशयच्छेदेन निश्चितार्था।"

सत्यम्; नायं विधिर्विद्यार्थितायाः। तथा च सति धर्मकार्यार्थमित्यनेनैवावगता स्यात्। उत्पन्नेऽप्यधिकारोपयोगिन्यवगमेऽभ्यासातिशयार्थं विशेषार्थं चान्यासु विद्यासु।

क्षिप्रं शौर्ययशःख्यापनार्थं बहिः सविशेषविद्वत्त्वख्यापनार्थं देशान्तरप्रवसने यशोहेतुः प्रवासः। **कामार्थं** रूपाजीवानुगमोऽभिप्रेततरां भार्यामुद्वोढुम्।

स्मृत्यन्तरे प्रसूताभेदेन च कालभेदः स्मर्यते। तथा च **विष्णुः**—"अष्टौ विप्रसूताः षट् राजन्याः चतुरो वैश्या द्विगुणं प्रसूतेति। न शूद्रायाः कालनियमः स्यात्। संवत्सरमित्येक" इति ॥ ७६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। धर्मकार्यार्थं तीर्थयात्रादिधर्मप्रतिग्रहादिकार्यार्थम्। प्रतीक्ष्यस्तद्गृहावस्थानादिना। "तदूर्ध्वं तु पत्युः संनिकर्षमेव गच्छेत्, ऊर्ध्वं भर्तुः सकाशं गच्छेदि"ति **वसिष्ठस्मरणात्**। यशोर्थमुद्ग्राहादिना दिग्विजयाद्यर्थं गतः। कामार्थं स्त्र्यन्तरप्राप्त्यर्थम्॥७६॥

(३) **कुल्लूकः**। गुर्वाज्ञासंपादनादिधर्मकार्यनिमित्तं (व. स्मृ. १७/१५) प्रोषितः पतिरष्टौ वर्षाणि पत्न्या प्रतीक्षणीय· ऊर्ध्वं, पतिसन्निधिं गच्छेत्। तदाह **वसिष्ठः**— 'प्रोषितपत्नी पञ्चवर्षाण्युपासीत, ऊर्ध्वं पतिसकाशं गच्छे'दिति। विद्यार्थं प्रोषितः षड् वर्षाणि प्रतीक्ष्यः निजविद्याविभाजनेन यशोर्थमपि प्रोषितः पतिः षडेव। भार्यान्तरोपभोगार्थं गतस्त्रीणि वर्षाणि॥ ७६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। प्रोषितप्रसंगेन प्रयोजनं प्रदर्शयंस्तदुचितकालनियममाह **प्रोषित** इति। धर्मकार्यार्थं तीर्थाटनगुर्वाद्याज्ञार्थम्। प्रतीक्ष्यः स्त्रिया नरः पतिः, तदूर्ध्वं पतिसमीपं गच्छेत्। समाः वत्सरान्। तदाह **वसिष्ठः** 'प्रोषितपत्नी पञ्चवर्षाण्युपासीत ऊर्ध्वं पञ्चभ्यो भर्तुः सकाशं गच्छेदि'ति। अत्र पञ्चपदं न्यूनाधिकसंख्योपलक्षणार्थम्। कामार्थं पत्यंतरनिकटस्थितये॥ ७६ ॥

(५) **नन्दनः**। प्रतीक्ष्यो भार्ययेति शेषः, ऊर्ध्वं भर्त्रन्तरपरिग्रहे न दोषोऽस्तीत्यभिप्रायः। यत्तु मृतभर्तृकाणां ब्रह्मचर्यवचनं तत्फलातिशयकामानां नान्यासामित्यविरोधः॥ ७६ ॥

(७) **मणिरामः**। धर्मकार्यार्थं गुर्वाज्ञा संपादनादिधर्मकार्यनिमित्तं गतः पतिः अष्टौ वर्षाणि स्त्रिया प्रतीक्ष्यः, तदनंतरं स्वयं पतिसमीपं गच्छेत्। विद्यार्थं यशोर्थं च गते षट् वर्षाणि। कामार्थं भार्यांतरोपभोगाद्यर्थं गते त्रीणि वर्षाणि प्रतीक्ष्यः; तदनंतरं स्वयं गच्छेत्॥ ७६ ॥

(९) **भारुचिः**। **अवगर्हितेनाजीवेदिति**। अविधायेत्यधिकारात् तस्या एवायं कालनियमः अगर्हितशिल्पजीवनेन। ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद् गर्हितेनापि जीवेच्छिल्पेन। एवं च विरुद्धशिल्पप्रतिप्रसवोऽयं विज्ञेयः, धर्मार्थं गुरुवचनादिकामार्थो रूपाजीवनानुगमः। न तु व्यभिचारः। 'प्रतीक्ष्योऽष्टौ नरः समा' इत्येवमादिवचनाद्येन शास्त्रं विरुद्ध(स्ता)सासां व्यतिक्रमः अत्यन्तमसंयमोपदेशात्। तथा च सति विधवानियोग एव तावत् कथञ्चिल्लब्धः कुत एव व्यभिचारः? अन्यस्त्वाह— अत ऊर्ध्वं व्यभिचारदोषाभावः; प्रतिप्रसवसामर्थ्यात्। न तु नियमेन व्यभिचारोपदेशः। न हि प्रोषितोऽन्योढायोगोऽस्ति, यतो गुरुनियुक्तापत्यार्थं प्रवर्तते। एवं च सत्यत्यन्तमजीवन्त्याः प्राणवृत्तिमात्रार्थो रहसि जन्यो वा व्यभिचारमात्रप्रतिप्रसवोऽयं विज्ञेयः। या पत्या वा परित्यक्तेत्येवं परित्यागो(पा ?)यजन्यवो नवविषयः।

तत्त्वेतदत्यन्तशास्त्राविरोधादयुक्तम्, अपरे एनं मनुष्याणामेव प्रवासकालनियमार्थं वर्णयन्ति। अतः परं प्रोषितस्यावस्थाने धर्मार्थेऽपि प्रत्यवायः स्यादिति। सोऽयमन्यार्थे वाक्ये सामर्थ्यगम्योऽर्थः न तु शक्यार्थतया शक्यः कल्पयितुम् ।। ७६ ।।

**संवत्सरं प्रतीक्षेत द्विषन्तीं योषितं पतिः ।।**
**ऊर्ध्वं संवत्सरात्त्वेनां दायं हृत्वा न संवसेत् ।। ७७ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। द्वेष्यः पतिर्यस्यास्तां **द्विषाणाम्**। एतेन तु न निष्कासनं कुर्यात्। सम्पूर्वस्य वसे**रेनामिति** च द्वितीयानुपपत्तेः। वासयेदिति निर्भर्त्सयेत्। पातकेऽपि तस्या निष्कासनं नास्ति "निरुन्ध्यादेकवेश्मनि" इति वचनात्। प्रायश्चित्तेऽप्यस्मिन्निमित्ते विनयाधानार्थोऽपहार इष्यते। न सर्वेण सर्वं आत्यन्तिक आच्छेदः ।। ७७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। उपेक्षितः प्रतीक्षेत् । द्विषन्तीं संभोगाद्यर्थमनुपस्थायिनीम्। दायं स्त्रीधनं स्वयं दत्तं संगृह्य गृहीत्वा न संवसेत् त्यजेत्। जीवनं तु देयमेव ।। ७७ ।।

(३) **कुल्लूकः**। पतिर्विषयसंजातद्वेषां स्त्रियं वर्षं यावत्प्रतीक्षेत। तत ऊर्ध्वमपि द्विषंतीं स्वदत्तमलङ्कारादिधनं दत्वा नोपगच्छेत्। ग्रासाच्छादनमात्रन्तु देयमेव ।। ७७ ।।

(४) **राघवानन्दः**। संवत्सरादूर्ध्वमपि पतिं स्वरसतो द्विषन्त्याभरणमात्रं न भोग इत्याह **संवत्सरमिति**। दायं स्वदत्तमलंकारादिकं हृत्वा ग्रासाच्छादनादिकं दद्यात्, न संवसेत् नोपगच्छेत् ।। ७७ ।।

(५) **नन्दनः**। उदीक्षेत प्रतीक्षेत दायं भूषणादिकं नच संवसेन्न संगच्छेत्तया सहेति शेषः ।। ७७ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। दायं स्वयं दत्तं हृत्वा न संवसेत्, त्यजेदित्यर्थः ।। ७७ ।।

(७) **मणिरामः**। द्विषन्तीं पतिविषये संजातद्वेषां। दायं स्वदत्तमलंकारादिधनं हृत्वा न संवसेत् नोपगच्छेत्। भोजनाच्छादनमात्रं तु देयमेव ।। ७७ ।।

(९) **भारुचिः**। न संत्यजेतदित्युपगमनिवृत्तिः न निर्वासनं पातकेऽपि तस्याः युक्तं निरुन्ध्य मयेदमे(वा) श्मनी (तन्त्र?) प्रायश्चित्तोपदेशात्। अन्यस्तु त्यागमेवाह। एवं च (सन्त्यजतो) नातिदोषः; कारणोपदेशात्। न त्वन्यत्र सर्वत्र स्त्रीद्याशप्रागन्याधेयात् विज्ञेयः। नोत्तर(त्र) तया सार्धमस्य प्रजाकर्म सहत्वोपदेशादिति ।। ७७ ।।

**अतिक्रामेत्प्रमत्तं या मत्तं रोगार्तमेव वा ।।**
**सा त्रीन्मासान्परित्याज्याऽविभूषणपरिच्छदा ।। ७८ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **अतिक्रम**स्तदुपचार्याऽवज्ञानं पथ्यौषधादिष्वतत्परता—न पुरुषान्तरसञ्चारः। मासत्रयं परित्यागश्च सम्भोगस्यैव, पूर्वस्मादेव हेतोः। हारकटकादिभूषणैर्वियुक्ता कर्तव्या। **परिच्छद**परिग्रहेण भाण्डकुण्डादिना दासीदासेन च ।। ७८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अतिक्रामेत् तच्छासनं लङ्घयेत्, नतु व्यभिचरेदित्यस्यार्थः। प्रमत्तं द्यूताद्याकृष्टमनसम्। मद्येन मत्तं। भूषणपरिच्छदादिना विरहिततत्वमापाद्य त्रीन्मासान्परित्याज्या तदूर्ध्वमुपादेया ।। ७८ ।।

(३) **कुल्लूकः**। या स्त्री द्यूतादिप्रमादवन्तं मदजनकपानादिना मत्तं व्याधितं वा शुश्रूषाद्यकरणे नावजानाति सा विगतालङ्कारशय्यादिपरिच्छदा त्रीन्मासान्नोपगन्तव्या ।। ७८ ।।

(४) **राघवानन्दः**। भर्तृशुश्रूषणाद्यकरणे कंचित्कालं परित्यजेदित्याह **अतीति**। प्रमत्तं मानादिना। मत्तं मद्येन। रोगार्तं कुष्ठाद्युपहृतम्। साऽतिक्रामन्ती। अविभूषणेत्यादि च्छेदः, अतिक्रमणमत्र शुश्रूषाद्यकरणम्, जारादिनातिक्रान्तायावधाद्युक्तेः। तदुत्तरं स्वीकार्येति शेषः ।। ७८ ।।

(५) **नन्दनः**। उत्क्रामत्यतिवर्ततेऽविभूषणपरिच्छदा विगतभूषणादिपरिवर्हा त्रीन्मासान्परित्याज्या संगमादौ नोर्ध्वमिति ।। ७८ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। अतिक्रामेत् आज्ञातिक्रमेण। प्रमत्तं द्यूतासक्तम्। मत्तं मद्यपानेन ।। ७८ ।।

(७) **मणिरामः**। प्रमत्तादिदोषयुक्तं पतिं अतिक्रामेत् शुश्रूषाद्यकरणेनाऽवजानाति सा स्त्री त्रीन् मासान् अविभूषणपरिच्छदा विगतालंकारशय्यादिपरिच्छदा कृत्वा त्याज्या नोपगंतव्या ।। ७८ ।।

(९) **भारुचिः**। अन्नासंभोगस्त्यागो(नूद्य)निर्वासनम् ।। ७८ ।।

**उन्मत्तं पतितं क्लीबमबीजं पापरोगिणम् ।।**
**न त्यागोऽस्ति द्विषंत्याश्च न च दायापवर्तनम् ।। ७९ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **क्लीब-बीज**शब्दौ नपुंसकमाहतुः। भेदस्तु एको वातरेता, अप्रवृत्तेन्द्रियोऽपरः। तादृशं या द्वेष्टि तस्या नास्ति निग्रहः पूर्वोक्तः। **अपवर्तनम**पहारः। प्रोषितप्रतिषिद्धान्नादयः स्मृत्यन्तरनिषिद्धाः ।। ७९ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। उन्मत्तं वातादिना क्लीबं जन्मना अबीजमन्तरा नष्टबीजं पापरोगा अपस्माराद्यास्तदाक्रान्तं पतिं द्विषन्त्या नार्या न त्यागोऽत्यन्तत्यागः, नच दायापवर्तनं दायस्य स्त्रीधनस्यापहरणं नास्ति, तत्कालद्वेषिण्यपि सुस्थेन परिग्राह्येत्यर्थः, द्विषाणाया इति क्वचित्पाठः ।। ७९ ।।

(३) **कुल्लूकः**। वातादिक्षोभादप्रकृतिस्थं पतितमेकादशाध्याये वक्ष्यमाणं नपुंसकमबीजं बाध्यरेतस्त्वादिना बीजरहितं कुष्ठाद्युपेतं च पतिमपरिचरन्त्यास्त्यागो न करणीयो नच धनग्रहणं करणीयम् ।। ७९ ।।

(४) **राघवानन्दः**। अचिकित्सितव्याध्यादौ पतिं द्विषाणाया न त्यागादीत्याह **उन्मत्त**मिति। अबीजं शुक्रहीनम्। एतादृशं पतिं द्विषन्त्या अपि न त्यागो नापि दायापवर्तनं, ततो धनाद्यादानम् ।। ७९ ।।

(५) **नन्दनः**। अस्यापवादविधिमाह **उन्मत्तं पतितमिति**। अबीजमशुल्कमपवर्तनमपहरणम् ॥ ७९ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। उन्मत्तं वातादिना। अबीजं द्विषन्ती या अपचरन्ती। दायापवर्तनं न स्त्रीधनं ॥ ७९ ॥

(७) **मणिरामः**। उन्मत्तादिदोषयुक्तं पतिं उपचरंत्या द्विषंत्या अपि न त्यागः। नच दायाऽपवर्तनं, नच धनग्रहणं करणीयमित्यर्थः ॥ ७९ ॥

(९) **भारुचिः**। अत्र निमित्ते अत्याग एव तस्याः ॥ ७९ ॥

**मद्यपाऽसत्यवृत्ता च प्रतिकूला च या भवेत् ॥**
**व्याधिता वाऽधिवेत्तव्या हिंस्राऽर्थघ्नी च सर्वदा ॥ ८० ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **मद्यपाऽसौ** मद्यपानरता। पक्तिसंस्कारगृहकार्यानुष्ठानासमर्था। तत्परिरक्षणाय सा परिवेदनमर्हति। या तु गुरुभिः प्रतिषिद्धमद्यपाना, तस्या दण्डं वक्ष्यति "प्रतिषेधे पिबेदिति" (९।८४)। स्वयं नियमस्य त्वन्यनियमव्यतिक्रमवत्प्रायश्चित्तेन प्रत्यापत्तिर्युक्ता, पुनरधिवेदनं च।

तथा च धर्मानुष्ठानप्रजोत्पत्तिगृहकार्योपघातनिमित्तान्यधिवेदननिमित्तानि पठ्यन्ते— **"प्रतिकूला व्याधितार्थघ्नीति"**।

ब्राह्मण्यास्तु शास्त्रेण प्रतिषिद्धमद्यायास्तत्पानप्रायश्चित्तमेव भूयोऽप्रवृत्तौ। पातित्यं तु—भ्रूणहनि हीनसेवायां स्त्री पततीति परिसंख्यानान्न मद्यपाने पातित्यमिति। तदेकादशे वक्ष्यामः। उक्तं च पञ्चमे (५।९०)।

**असत्यवृत्ता**ऽसाध्वाचारा—भृत्येष्वसत्परुषवाक्, बलिकर्मणां प्रागेव भुङ्क्ते, दैवपित्र्यो-ब्राह्मणभोजनादौ न श्रद्धावती। **अर्थघ्नी** अतिव्ययशीला भाण्डोपस्करणं न परिरक्षति अनल्पमूल्येन क्रीणाति। **हिंस्रा** नाकुलशङ्क्या स्यादेवाततिताडनशीला। अन्वाहिकस्य व्ययस्यापहन्त्री। **अधिवेदनं** तस्या उपर्यन्याविवाहः ॥ ८० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। असत्यवृत्ता सदामिथ्यावादिनी प्रतिकूला प्रतिकूलचेष्टा हिंस्रा ताडनादिना सदाभृत्यादिहिंसाकारिणी अर्थघ्नी अप्रयोजकव्ययपरा अधिवेत्तव्या अधिवेदनं द्वितीयभार्यासंबन्धस्तेन प्रतियोगेनासंबन्धनीया ॥ ८० ॥

(३) **कुल्लूकः**। निषिद्धमद्यपानरता असाध्वाचारा भर्तुः प्रतिकूलाचरणशीला कुष्ठादव्याधियुक्ता भृत्यादिताडनशीला सततमतिव्ययकारिणी या भार्या भवेत्साधिवेत्तव्या। तस्यां सत्यामन्यो विवाहः कार्यः ॥ ८० ॥

(४) **राघवानन्दः**। स्त्र्यन्तरसत्त्वेऽपि स्त्र्यन्तरमुद्वहेदित्याह **मद्यपेति** द्वाभ्याम्। मद्यपा निषिद्धमद्यपा। असत्प्रवृत्ता असदाचारा असत्यभाषिणी वा। अधिवेत्तव्या सत्यामपि तस्याम् अधिवेदनं पूर्वामधि तस्या उपरि स्त्र्यन्तरस्य परिग्रहः, तेन पूर्वकृतं सपत्निका स्यादतः।

'कृतसापत्निकाध्यूढाऽधिविन्ने'त्यमरः। हिंस्रा भृत्यादिताडनशीला। अर्थघ्नी अतिव्ययशीला व्यये चामुक्तहस्तमित्युक्तत्वात् ॥ ८० ॥

(५) **नन्दनः**। अथाधिवेत्तव्यामाह **मद्यपेति**। यस्यां विद्यमानायामेवाधिकं अपरा वोढव्या भवति साधिवेत्तव्या ॥ ८० ॥

(६) **रामचन्द्रः**। स्त्रीणां त्यागे कारणमाह **मद्यपेति**। मद्यपा असत्यवृत्ता सदा मृषावादिनी हिंस्रा ताडनादिहिंसाकारिणी व्याधिता अधिवेत्तव्या आसामुपरि अन्या विवाहितुं योग्या, सदोषत्वात् ॥ ८० ॥

(७) **मणिरामः**। अधिवेत्तव्या तस्यां विद्यमानायामपि अन्यो विवाहः कर्तव्यः ॥८०॥

**वन्ध्याष्टमेऽधिवेद्याऽब्दे दशमे तु मृतप्रजा ॥**
**एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी ॥ ८१ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। तत्र **वन्ध्याऽष्टमेऽब्देऽधिवेद्या दशमे तु मृतप्रजा**। नाधिवेदनेऽपत्योत्पत्त्यभावाद्धि वन्ध्याया अनुष्ठानपरिपातनं स्यात्, अपत्योत्पत्तिविधेराधानविधेश्च। **नापुत्रे** ह्याधानं श्रूयते। एवं **मृतप्रजायाः स्त्रीजनन्याः**। **अप्रियवादिन्यास्तु** दोषाभावेन नाधिवेदनेन सत्यां क्षमायां श्रमनियमः (?) ॥ ८१ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। 'वन्ध्याष्टम' इत्यादियोग्यतायामष्टवर्षोपरि गर्भग्रहणाभावे प्रायशो गर्भग्रहणं नास्तीत्यादिशास्त्रान्तरसिद्धस्वभावनियमापेक्षयोक्तम्। एवं द्वादशाब्दानन्तरमपि मृतप्रजात्वानुवृत्तौ। एकादशोर्ध्वं च स्त्रीजन्मानुवृत्तौ। मृतप्रजात्वं स्त्रीप्रसूतिश्च न निवर्तेत इति शास्त्रान्तरादेव सिद्धम्। **सद्य इति** तथा गृहिण्या सद्य एव गृहकार्यासिद्धेः ॥८१॥

(३) **कुल्लूकः**। प्रथमऋतुमारभ्याविद्यमानप्रसूताऽष्टमे वर्षेऽधिवेदनीया, मृतापत्या दशमे वर्षे स्त्रीजनन्येकादशे अप्रियवादिनी सद्य एव। यद्यपुत्रा भवति पुत्रवत्यान्तु तस्यां धर्मप्रजासंपन्ने दारे नान्यां कुर्वीतान्यतरापाये तु कुर्वीतेत्यापस्तंबनिषेधादधिवेदनं न कार्यम् ॥ ८१ ॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच **वन्ध्येति**। अष्टमे षोडशवर्षादिप्रसूतियोग्यकालापेक्षया। मृतप्रजा म्रियते प्रजामात्रं यस्याः सा। स्त्रीजननीस्त्यपत्यमात्रं यस्याः सा। **सद्यस्त्वप्रियवादिनीति**। 'धर्मप्रजासुसंपन्ने दारे नान्यां कुर्वीते'त्याद्यापस्तम्बवचनादप्रियवादित्वं धर्मपुत्रशून्याविषयम् ॥ ८१ ॥

(५) **नन्दनः**। अष्टमेऽब्दे युक्तान्प्रसवकालादारभ्याष्टमेऽब्दे ॥ ८१ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। अष्टमे अब्दे अधिवेद्या अन्या विवाह्या ॥ ८१ ॥

(७) **मणिरामः**। वन्ध्यादीनां परीक्षाकालमाह **वंध्येति** ॥ ८१ ॥

(९) **भारुचिः**। धर्महानौ यामेतदासनमधिवेदननियमतो विज्ञेयम्, येन जातपुरुषाधिकारः श्रौतेषु अप्रियवादिन्यास्त्वनित्यमधिवेदनं जातपुत्रत्वे सति तया सहाधिकृतत्वात् कर्मसु ॥ ८१ ॥

**या रोगिणी स्यात्तु हिता संपन्ना चैव शीलतः ।।**
**साऽनुज्ञाप्याऽधिवेत्तव्या नावमान्या च कर्हिचित् ।। ८२ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । भर्त्रे हिता परिचर्यापरा । अनुज्ञापना अवमानयोरिह विधानम्, पूर्वासामेतद्भावात् ।

**रोगिणी**ग्रहणं वन्ध्यस्त्रीजनन्यावपि लक्षयति । प्रकृतत्वाविशेषादवमाननिमित्ताभावाच्च **कर्हिचित्**कदाचिदवमाननं शिष्टचर्थं परिभाषितम् ।। ८२ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । हिता भर्तृहिता । अनुज्ञाप्य यद्यप्यनुमन्यते, अननुमतौ त्वननुज्ञाप्यैव ।। ८२ ।।

(३) **कुल्लूकः** । या पुनर्व्याधिता सती पत्युरनुकूला भवति, शीलवती च स्यात्तामनुज्ञाप्यान्यो विवाहः कार्यः । कदाचिच्चासौ नावमाननीया ।। ८२ ।।

(४) **राघवानन्दः** । सा चेदनुकूला तदा तवैव सर्वमित्यादिस्तुत्या ततोऽधिवेदनार्थमनुमतिर्ग्राह्येत्याह **येति** । हिता हितैषिणी शीलतश्चरित्रेण ।। ८२ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । या रोहिणी स्यात् 'अष्टवर्षा च रोहिणी' सा अनुज्ञाप्य अधिवेत्तव्या न अवमान्या ।। ८२ ।।

(७) **मणिरामः** । या रोगिणी स्यात्तु हिता । व्याधिता सती या पत्यनुकूला भवति । सानुज्ञाप्याऽधिवेत्तव्या तस्या आज्ञां गृहीत्वाऽन्यो विवाहः कर्तव्यः । कदाचिच्चासौ नावमाननीया ।। ८२ ।।

(९) **भारुचिः** । अस्याश्चावमानप्रतिषेधात् । इतरा न केवलमधिवेद्याः । किं तर्हि ? शिष्य (त्वं) परिभाष्य च ।। ८२ ।।

**अधिविन्ना तु या नारी निर्गच्छेद्दुषिता गृहात् ।।**
**सा सद्यः सन्निरोद्धव्या त्याज्या वा कुलसन्निधौ ।। ८३ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । क्रोधेनाधिवेदनहेतुना निर्गतायास्त्याग-संनिरोधौ विकल्पतो विधीयेते । न तु यथोपपन्नहेतुना भोजनाच्छादनादिना तत्र प्रीत्या क्रोधावमार्जनं श्वश्रूभिः श्वशुरादिभिर्वा परिभाषणम् । **संनिरोधो** रक्षिपुरुषाधिष्ठानम् । त्यागो व्याख्यातः—असंभोगः सहशय्यावर्जनम् । **कुलं** ज्ञातयः—तत्पितृपक्षाः स्वपक्षाश्च ।। ८३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । निर्गच्छेत् गृहान्तरं गच्छेत् । संनिरोद्धव्या बन्धनेन । कुलस्य तत्पितृकुलस्य संनिधौ ।। ८३ ।।

(३) **कुल्लूकः** । या पुनः कृताधिवेदना स्त्री कुपिता निर्गच्छति सा तदहरेव रज्ज्वादिना बद्ध्वा स्थापनीया आ कोपनिवृत्तेः पित्रादिकुलसन्निधौ वा त्याज्या ।। ८३ ।।

(४) **राघवानन्दः**। कृतसपत्नीत्वज्ञानेन रुष्टां प्रत्याह **अधिविन्नेति**। 'कृतसपत्निकाध्यूढाऽधिविन्ने'त्यमरः। सन्निरोद्धव्या बन्धनादिना कुलसंनिधौ जनसमूहः कुलं ज्ञातिर्वा देशकालापेक्षया विकल्पः ॥ ८३ ॥

(५) **नन्दनः**। त्याज्या दुर्निरोधा चेत्त्यागविधानात् श्रौतस्मार्तकर्मणां तया विनानुष्ठाने नास्ति विरोधः ॥ ८३ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। या अधिविन्ना नारी रुषिता क्रोधयुक्ता सा सद्यः सन्निरोद्धव्या आ कोपनिवृत्तेः त्याज्या। कुलसंनिधौ तत्पिते वा ॥ ८३ ॥

(७) **मणिरामः**। अधिविन्ना उत्पन्नसापत्ना। सद्यः तदहरेव ॥ ८३ ॥

(९) **भारुचिः**। उक्तेषु निमित्तेष्वधिविन्नाया निर्गतायाः क्रोधेन त्यागः। श्रुतिकर्माधिकाराविरोधे कुलसन्निधौ असम्भोगो वा त्यागः सन्निरोधो वा तस्याः। अपरे तु प्रजाकर्मसहत्वनिवृत्त्यर्थमिदं त्यागवचनं कथयन्ति श्रौतकर्माविरोधेन ॥ ८३ ॥

**प्रतिषेधे पिबेद्या तु मद्यमभ्युदयेष्वपि ॥**
**प्रेक्षासमाजं गच्छेद्वा सा दण्ड्या कृष्णलानि षट् ॥ ८४ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **प्रतिषेधे** गुरुसम्बन्धिभिः। अयं दण्डः क्षत्रियादिस्त्रीणाम्। न शास्त्रीयो ब्राह्मणीनाम्। न हि तत्र दण्डमात्रेण मोक्षः। किं तर्हि? महता। न च तत्राभ्युदयेषु पानाशङ्का। अप्रतिषिद्धमद्यानां तु नियमेनोत्सवसमागता नामादरवती प्रवृत्तिर्दृश्यते।

यां सम्यङ्निषेधत्यभ्युदयेष्वपीति। दण्डश्चायं भर्त्रा दीयते। सत्यपि राजवृत्तित्वे "स्त्रीणां भर्ता प्रभुः" इति विज्ञायते। अन्येषामपि परिग्रहवतां भृत्यादिविषये कियति दण्डे स्वातन्त्र्यम्।

**अभ्युदयः** पुत्रजन्मविवाहादय उत्सवाः। **प्रेक्षा** नटादिदर्शनम्। **समाजो** नितान्तमपि जनसमूहः। तत्र कुतूहलिन्या अयं दण्डः ॥ ८४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। मद्यं सुराव्यतिरिक्तम्। अभ्युदयेषूत्सवेषु। क्षत्रियादयो मद्यं पिबन्ति। प्रेक्षा नृत्यादिदर्शनस्थानं, समाजः सभा ॥ ८४ ॥

(३) **कुल्लूकः**। या पुनः क्षत्रियादिका स्त्री भर्त्रादिनिवारिता विवाहाद्युत्सवेष्वपि निषिद्धमद्यं पिबेत् नृत्यादिस्थानजनसमूहौ वा गच्छेत् सा सुवर्णकृष्णलानि षट् व्यवहारप्रकरणाद्राज्ञा दण्डनीया ॥ ८४ ॥

(४) **राघवानन्दः**। अकार्ये निषिद्धायाः पुनःप्रवृत्तौ दण्डमाह **प्रतिषिद्धेति**। अपि कामोद्बोधसंभावनार्थम्। प्रेक्षासमाजौ नृत्यादिदिदृक्षुजनसमूहः प्रेक्षा, समाजः उत्सवार्थं जनता, तौ चेद्गच्छेत्तदा दण्ड्या, राज्ञेति शेषः ॥ ८४ ॥

(५) **नन्दनः**। **प्रतिषिद्धेति**। विशेषणादप्रतिषिद्धायां मद्यपानेऽल्पदोषः अपिशब्दग्रहणादभ्युदयेऽल्पतरः, अभ्युदय उत्सवः, अनभ्युदये प्रतिषिद्धायां भूयस्तरः ॥ ८४ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। भर्त्रा प्रतिषिद्धा या स्त्री क्षत्रियादिका मद्यं सुराव्यतिरिक्तं अभ्युदये पिबेत् प्रेक्षासमाजे नृत्यस्थलसभायां गच्छेत् सा दण्डया कृष्णलानि गुंजाषट्परिमितं रजतम् ॥ ८४ ॥

(७) **मणिरामः**। अभ्युदयेष्वपि विवाहाद्युत्सवेष्वपि। प्रेक्षासमाजं नृत्यादिस्थानसभायां। कृष्णलानि सुवर्णकृष्णलानि ॥ ८४ ॥

(९) **भारुचिः**। प्रतिषेधो मद्यपानस्य। प्रेक्षासमाजगमनेऽप्यधिवेदननिमित्तेन मद्यपाने एषैव व्याख्या, 'मद्यपा सत्यवृत्ता चे' त्यत्र इतरवर्णविषयं चैतत् प्रतिषेधरूपं विज्ञेयम् ॥८४॥

**यदि स्वाश्चापराश्चैव विन्देरन्योषितो द्विजाः ॥**
**तासां वर्णक्रमेण स्याज्ज्यैष्ठ्यं पूजा च वेश्म च ॥ ८५ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। कामतः प्रवृत्ता यदि समानजातीया असमानजातीयाश्च **विन्देरन्**विवाहयेयुस्**तासां वर्णक्रमेण** जात्यनुरूपं **ज्यैष्ठ्यं**—न वयसा न च विवाहक्रमतः। फले हि दाननिमित्ते **पूजा**। प्रथमं ब्राह्मण्यास्ततः क्षत्रियावैश्ययोरित्येष वर्णक्रमः। **वेश्म** प्रधानं गृहम्। तद्ब्राह्मण्याः सवर्णानां विवाहक्रमो निश्चयः स्मृतः ॥ ८५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। स्वाः स्वजातीयाः। अवरा अधमजातीयाः। द्विजा विप्रादयः। वर्णक्रमेण न वयसा। ज्यैष्ठ्यं ज्येष्ठासाध्यकर्मसंबन्धः। वेश्म सोत्कर्षम् ॥ ८५ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यदि द्विजातयः स्वजातीया विजातीयाश्चोद्वहेयुस्तदा तासां द्विजातिक्रमेण वाक्संमानदायविभागोत्कर्षार्थं ज्येष्ठत्वं पूजा च वस्त्रालङ्कारादिदानेन गृहं च प्रधानं स्यात् ॥ ८५ ॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच स्त्रीप्रसंगेन समानाऽसमानजातीयानामपि समानजातीयाया एव पूजावेश्मनी इतीतिहेतुमाह **यदीति**। यदीत्यमनुमितौ। स्वाः सजातीयाः, अपराः विजातीयाः अनुविन्देरन् उद्वहेरन्। ज्यैष्ठ्यम् पूर्वं विप्रस्य विप्रोद्वाहः तथा प्रथमं पूजा प्रधानं वेश्म एव क्षत्रियवैश्ययोरिति वर्णक्रमः, हेतुरत्र विवाहतो ज्यैष्ठ्यम् ॥ ८५ ॥

(५) **नन्दनः**। स्वाः सवर्णाः, अपरा असवर्णाः, द्विजास्त्रैवर्णिकाः, वर्णक्रमेण ज्यैष्ठ्यं स्यान्न विवाहक्रमेण 'क्रमतस्तु प्रवृत्तानामिमाः स्युः क्रमशोऽपरा' इत्युक्तस्य क्रमस्यापवादादिना; कृते भङ्गे सत्ययमुपदेशः ॥ ८५ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। यदि स्वाः सवर्णाः, अपराश्चैव असवर्णाः द्विजाः, योषितः, विन्देरन् प्राप्नुयुः, तासां स्त्रीणां वर्णक्रमेण ज्यैष्ठ्यं पूज्या पूजार्हा। वेश्म गृहादिकम् ॥ ८५ ॥

(७) **मणिरामः**। स्वाः सजातीयाः, अपराः विजातीयाः। विंदेरन् उद्वहेरन् तासां उद्वाहितानां ॥ ८५ ॥

(९) **भारुचिः** । 'इमाः स्युः क्रमशोऽपराः' इत्येतत्क्रमेणैव दारकर्मोक्तम् । इदं तु सृज्य इति क्रमेणाद्यूढानां वर्णक्रमेणैव ज्यैष्ठ्यादि स्यात् । प्रयोजनमस्य दायविभागः । पूजा चैतेनैव च सवर्णानामनुक्रमेणैव ज्येष्ठं विज्ञेयम्, न तु जन्मना ।। ८५ ।।

**भर्तुः शरीरशुश्रूषां धर्मकार्यं च नैत्यकम् ।।**
**स्वा चैव कुर्यात्सर्वेषां नास्वजातिः कथंचन ।। ८६ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । **शरीरशुश्रूषा** भर्तुरुपयोगिपाकादिलक्षणा दानभोजनप्रतिजागरणं **स्वा स्वैव** कुर्यात् । पृष्ठपादसंवाहननिर्णेजनादौ त्वनियमः । युगपत्संनिधौ तु शरीरावयवक्रमो वर्णक्रमेण । **नैत्यकं धर्मकार्यं** "सायं त्वन्नस्येत्यादि" अग्निशरणोपलेपनाचमनोदकतर्पणदानादि ।। ८६ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । धर्मकार्यं यज्ञादि । नैत्यकं नित्यकर्तव्यं श्राद्धादि । नास्वजातिः स्वजातिसंभवे ।। ८६ ।।

(३) **कुल्लूकः** । भर्तुर्देहपरिचर्यामन्नदानादिरूपान्धर्मकार्यं च भिक्षादानातिथिपरिवेषणहोमीयद्रव्योपकल्पनादिप्रात्यहिकं सर्वेषां द्विजातीनां सजातिभार्यैव कुर्यान्नतु कदाचिद्विजातीयेति ।। ८६ ।।

(४) **राघवानन्दः** । यज्ञादिसहकारित्वान्नादिपाकशुश्रूषादावपि सजातीयाया एवाधिकार इत्याह **भर्तुरिति** । स्वा स्वेति वीप्सा । नैत्यकमिति विशेषणात्काम्येऽन्यासामपि प्रवेशः बहुसाध्यत्वात्तस्य ।। ८६ ।।

(५) **नन्दनः** । धर्मकार्यं अग्निशरणालेपनादि ।। ८६ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । सर्वेषां वर्णानां स्वाः नैत्यकं नित्यं कर्म कुर्युः, असजातिः, अन्यजातिः न कथंचन ।। ८६ ।।

(७) **मणिरामः** । शरीरशुश्रूषां अन्नदानादिरूपां । धर्मकार्यं च नैत्यकं भिक्षादानाऽतिथिपरिवेषणहोमीयद्रव्योपकल्पनादिप्रात्यहिकं ।। ८६ ।।

(९) **भारुचिः** । अग्निशरणोपलेपनादिधर्मकार्यं यत् स्त्रिया कर्तव्यं तद् गृह्यते । पुरुषस्यापि धर्मकार्यप्रवृत्तस्यैवोपस्पर्शनदानादिलक्षणा शरीरशुश्रूषा धर्मकार्यसाहचर्याद् गृह्यते । न तु पादनिर्णेजनादिस्वरूपा धर्मकार्येणासरूपत्वात् ।। ८६ ।।

**यस्तु तत्कारयेन्मोहात्सजात्या स्थितयाऽन्यया ।।**
**यथा ब्राह्मणचाण्डालः पूर्वदृष्टस्तथैव सः ।। ८७ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । **यस्त्वेतत्कर्माऽन्ययाऽसमानजातीयया कारयेत्सजातीयायां स्थितायां ब्राह्मण** एव स **चण्डालः** पूर्वस्माद्दृष्टः ।। ८७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । एतत्स्फुटयति **यस्त्विति** । दृष्टपूर्वः (?) पुराणे श्रुतः ।। ८७ ।।

(३) **कुल्लूकः**। यः पुनः स्वजातीयया सन्निहितया देहशुश्रूषादिकं कर्तव्यं विजातीयया मौर्ख्यात्कारयेत्स यथा ब्राह्मण्यां शूद्राज्जातो ब्राह्मणचाण्डालस्तथैव पूर्वैर्ऋषिभिर्दृष्ट इति पूर्वानुवादः ॥ ८७ ॥

(४) **राघवानन्दः**। असवर्णागुणमोहितं प्रत्याह **यस्त्विति**। तत् शूश्रूषादिकं स्थितिरप्रयोजिकास्थितया सुस्थया अन्ययाऽसजात्या। ब्राह्मणचाण्डालः चातुर्वर्ण्यत्वेऽपि सति कुत्सिताचारत्वाच्चण्डालवदुपेक्ष्यः स इत्यर्थवादः। पूर्वदृष्टः पूर्वैर्मन्वादिभिः तथैव दृष्टः कथितः ॥८७॥

(५) **नन्दनः**। तच्छरीरशुश्रूषादिकं स्वजात्या स्थितया स्वजातेरन्यथा ब्राह्मणचाण्डालः कृच्छ्रलब्धायां ब्राह्मणजातौ तिष्ठन्नेव कर्मणा चाण्डालः स्याद्यथा तथैव च पूर्वदृष्टः पूर्वैर्विद्वद्भिर्निरूपितः ॥ ८७ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। यस्तु पुरुषः सजात्या स्थितया स्त्रिया मोहात् अन्यया गृहकार्यं नैत्यकं सह कारयेत्सः। ब्राह्मणः यथा चाण्डालः तथैवेति पूर्वदृष्टः प्राक्तनैर्मुनिभिर्दृष्टः॥८७॥

(७) **मणिरामः**। अन्यया असमानजात्या। ब्राह्मणचांडालः ब्राह्मण्यां शूद्राज्जातो ब्राह्मणचांडालः। पूर्वदृष्टः पूर्वैः ऋषिभिः दृष्टः॥ ८७ ॥

(९) **भारुचिः**। शुश्रूषानियमार्थवादौऽयम्, एवं च सति नान्यया कार्यः, यस्तु व्यतिक्रमे वर्तते तस्यायं निन्दार्थवादः। केनचित् सामान्येन ॥ ८७ ॥

**उत्कृष्टायाभिरूपाय वराय सदृशाय च ॥**
**अप्राप्तामपि तां तस्मै कन्यां दद्याद्यथाविधि ॥ ८८ ॥**

**(प्रयच्छेन्नग्निकां कन्यामृतुकालभयान्वितः ॥**
**ऋतुमत्यां हि तिष्ठन्त्यामेनो दातारमृच्छति ॥)**

(१) **मेधातिथिः**। **उत्कृष्टायाभिरूपायेति** विशेषणविशेष्यभावः। उत्कृष्टायाभिरूपतराय इत्यर्थः। अथवोत्कृष्टाय जात्यादिभिरभिरूपायेति पृथग्विशेषणम्। रूपमाकृतिमाभिमुख्येन प्राप्तोऽ'**भिरूपः**', स्वभाववचनो वा। सुखभावो विद्वानप्यभिरूप उच्यते। **सदृशाय** जात्यादिभिः। **वरो** वोढा जामाता। **अप्राप्तामप्ययोग्यामपि** कामावशत्वेन बालामप्राप्तां कौमारं वयः। स्मृत्यन्तरे नग्निकेत्युच्यते। कामः स्पृहा यस्या नोत्पन्ना सा चाष्टवर्षा षड्वर्षा वा, न त्वत्यन्तबालैव। तथाहि लिङ्गम् "अष्टवर्षामिति"। इदमेव लिङ्गं धर्मप्रयुक्ततायामपि विवाहस्येति। अन्यथा रागस्यैव प्रयोजकत्वे कुतोऽप्राप्ताया विवाह इत्याहुः।

तदयुक्तम्; धनार्थिनोऽपि बालां विवाहयन्ति। न शास्त्रीयैव सर्वा प्रयुक्तिस्तृतीये निरूपिता ॥ ८८ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। उत्कृष्टायोत्तमजातीयाय। अप्राप्तामष्टवर्षन्यूनवयसीमपि ॥ ८८ ॥

(३) **कुल्लूकः**। कुलाचारादिभिरुत्कृष्टाय सुरूपाय समानजातीयाय वरायाप्राप्तकालामपि विवाहयेत्; 'अष्टवर्षामिवं धर्मो न हीयत'इति दक्षस्मरणात्। तस्मादपि कालात्प्रागपि कन्यां ब्राह्मविवाहविधिना दद्यात् ॥ ८८ ॥

(४) **राघवानन्दः**। कन्यायाः स्त्रीत्वेन विप्रादेरभ्यर्हितत्वेन च तत्प्रसंगमवलम्ब्य यादृग्गुणेनेत्युक्तं, संस्मारयंस्तत्रैव नियमान्तरमाह **उत्कृष्टायेति** द्वाभ्याम्। कुलसौन्दर्यविद्याशीलबलादिविशेषणैर्युक्तायेति भावः। अप्राप्तां कन्यात्वमिति शेषः; 'अष्टवर्षा भवेद्गौरी'त्युक्तेः ॥ ८८ ॥

(५) **नन्दनः**। अथ कन्याप्रदानमाह **उत्कृष्टायेति**। अप्राप्तामपि वयोरूपादिभिरसदृशमपि ॥ ८८ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। एतादृशाय वराय प्राप्तां अष्टवर्षन्यूनवयस्कान्तां तस्मै कन्यां दद्यात् ॥ ८८ ॥

(७) **मणिरामः**। अप्राप्तामपि अप्राप्तकालामपि सूक्ष्मामपीति यावत्, तस्मै उत्कृष्टाय वराय। कालप्रतीक्षायां कदाचिदेतादृशः वरो न लभ्यः स्यादित्यर्थः ॥ ८८ ॥

(९) **भारुचिः**। आत्मनो विद्यादिभिरुत्कृष्टकारणैरुत्कृष्टाय अभिरूपाय (व)राय तावाभे(?)सदृशाय वा। ऋज्वन्यत्। 'उत्तमैरुत्तमैर्नित्यं सम्बन्धानाचरेत्सह' (४।२४४) इत्यत्रोक्तामप्येतत्सदृशदानार्थं पुनरारभ्यते। एवं च गुणहीने ददतः प्रत्यवायः ॥ ८८ ॥

**काममा मरणात्तिष्ठेद्गृहे कन्यर्तुमत्यपि ॥**
**न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ॥ ८९ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। प्रागृतोः कन्याया दानम्। ऋतुदर्शनेऽपि न दद्याद्यावद्गुणवान्वरो न प्राप्तः। **गुणो** विद्याशौर्यातिशयः शोभनाकृतिर्वयोमहत्त्वोपेतता लोकशास्त्रनिषिद्धपरिवर्जनं कन्यायामनुराग इत्यादिः ॥ ८९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। ऋतुलङ्घनेनापि गुणवत एव देयेत्यर्थः ॥ ८९ ॥

(३) **कुल्लूकः**। संजातार्तवापि कन्या वरं मरणपर्यंतं पितृगृहे तिष्ठेन्न पुनरेनां विद्यागुणरहिताय कदाचित्पित्रादिर्दद्यात् ॥ ८९ ॥

(४) **राघवानन्दः**। ऋतुमती स्पष्टरजाः। उक्तचतुष्टयविशेषणान्यतरहीनाय न देयेत्युत्कृष्टवरे तात्पर्यात्। अन्यथा 'अप्रयच्छन्समाप्नोति भ्रूणहत्यामृतावृता'(आचार० ६८)-विति **याज्ञवल्क्यवचनविरोधः** ॥ ८९ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। एनां गुणहीनाय न प्रयच्छेत् दद्यात् ॥ ८९ ॥

(७) **मणिरामः**। गेहे पितुर्गेहे ॥ ८९ ॥

(९) **भारुचिः**। तथा चेदमनूद्यते–अनेन चाप्राप्तकालदानेन पारस्याप्राप्तकालस्य कन्याप्रतिग्रहोऽनुमीयते। येन प्राप्नोत्यप्राप्तां न प्रतिग्रहीष्यति, अर्थगृहीतत्वाच्च प्राप्तकाल-संयोगस्याप्राप्ते कालदानकीर्तनं नार्थवादी क्रियते ।। ८९ ।।

**त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती ।।**
**ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम् ।। ९० ।।**

(१) **मेधातिथिः**। रेतो ऋतुकालं–तद्वत्यपि **त्रीणि वर्षाणि** तद्गृहे आसीत। अतः परममुत्कृष्टाभावे **सदृशं** समानजातीयं स्वयं वृणुयात् ।। ९० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। उदीक्षेत प्रतीक्षेत, न ततः प्राक्स्वयंवरणमस्तीत्यर्थः। उपासीतेति क्वचित्पाठः। विन्देत स्वप्रयत्नेनैव। सदृशमित्यधमव्यवच्छेदार्थम् ।। ९० ।।

(३) **कुल्लूकः**। पित्रादिभिर्गुणवद्वरायादीयमाना कन्या संजातार्तवा सती त्रीणि वर्षाणि प्रतीक्षेत। वर्षत्रयात्पुनरूर्ध्वमधिकगुणवरालाभे समानजातिगुणं वरं स्वयं वृणीत ।। ९० ।।

(४) **राघवानन्दः**। दातृणामेवाभावे तु स्वयंवरा स्यादित्याह **त्रीणीति**। उदीक्षेत सद्वरं दातारं वा प्रतीक्षेत। एतस्माद्वर्षत्रयात्। सदृशं सजातिं विन्देत वृणुयादित्यन्वयः ।।९०।।

(६) **रामचन्द्रः**। ऋतुमती सती कुमारी त्रीणि वर्षाणि उदीक्षेत। एतस्मात्कालात् ऊर्ध्वं सदृशं बन्धूनामभावे वर्णयोग्यं पतिं विन्देत प्राप्नुयात् ।। ९० ।।

(७) **मणिरामः**। प्रतीक्षेत उत्तमवरप्राप्त्यर्थं तिष्ठेत्। एतस्मात् कालात् वर्षत्रयात्। सदृशं अधिकगुणवराऽलाभे समानजातिगुणं पतिं विंदेत् स्वयं वृणीयात् ।। ९० ।।

(९) **भारुचिः**। कन्याया अयमुपदेशः। सा च द्वादशवर्षं(र्तुः) पश्यतीति स्मर्यते यत एतस्मात् कालादूर्ध्वं वर्षत्रयं स्वयम्, परस्याग्रहणं ।। ९० ।।

**अदीयमाना भर्तारमधिगच्छेद्यदि स्वयम् ।।**
**नैनः किंचिदवाप्नोति न च यं साऽधिगच्छति ।। ९१ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। वर्षत्रयादूर्ध्वं**मदीयमाना यं भर्तारं** वृणुते तस्य दोषो न। कन्यायाः पूर्वेणैव दोषाभाव उक्ते म्रियमाणस्य दोषार्थमिदम्। ऋतुदर्शनं च द्वादशवर्षाणामिति स्मर्यते ।। ९१ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। नैनः पापं पित्राननुमतिकृतं यं साधिगच्छति सोऽपि नैनो रजस्वलापरिणयनादिकृतं प्राप्नोतीत्यनुषङ्गः ।। ९१ ।।

(३) **कुल्लूकः**। पित्रादिभिरदीयमाना कुमारी यथोक्तकाले यदि भर्तारं स्वयं वृणुते तदा सा न किंचित्पापं प्राप्नोति, न च तत्पतिः पापं प्राप्नोति ।। ९१ ।।

(४) **राघवानन्दः**। कन्येच्छया पाणिग्रहणे कन्यातत्पत्योर्न पापाशङ्केत्याह **अदीयमानेति**। अदीयमाना पित्रादिभिः। पतिं निकृष्टमुत्कृष्टं वा। सापि यं गच्छति सोऽपि पापदण्डं न प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ ९१ ॥

(५) **नन्दनः**। यं साऽधिगच्छति, स च नैनः प्राप्नोति ॥ ९१ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। अदीयमाना बन्धुहीना यदि स्वयं भर्तारमधिगच्छेत्स्वयंवरं कुर्यात्सा एनः पापं किंचित् न आप्नोति ॥ ९१ ॥

(७) **मणिरामः**। अदीयमाना पित्रादिभिः एनः पापं यं च पतिं सा कन्या अधिगच्छति वरयति सोऽपि पापं न प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ ९१–९२ ॥

(९) **भारुचिः**। तस्या ऊर्ध्वं तु ये वरं स्वयं कन्याधिगच्छति तस्या दोषार्थं कन्याया अदोषवचनात् ॥ ९१ ॥

**अलङ्कारं नाददीत पित्र्यं कन्या स्वयंवरा ॥**
**मातृकं भ्रातृदत्तं वा स्तेना स्याद्यदि तं हरेत् ॥ ९२ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। भ्रात्रादिभिर्यदादौ दत्तं स्वयंवरणाभिप्रायं तस्या अजानद्भिस्तदलङ्करणं तेषामेव प्रत्यर्पयेत्। यदि तु तथाविधाया एव ददाति तदा न त्यागः। तेनास्मै न वयमेनां दास्याम इत्येवमभिप्रायं यद्भूषणं न तस्मिन्नन्यथात्वमापन्ने युक्तम्। **"स्तेनः स्यादिति"** पुँल्लिङ्गेन पाठान्तरम्। वरस्य चौरत्वमाहुः। तस्मात्तेनालङ्कारस्त्याजयितव्यः ॥ ९२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **पित्र्यं** परिणयनात्प्राग्दत्तम्। एवं **मातृकं** भ्रातृदत्तं च ॥ ९२ ॥

(३) **कुल्लूकः**। स्वयंवृतपतिका कन्या वरस्वीकरणात्पूर्वं पितृमातृभ्रातृभिर्दत्तमलङ्कारं तेभ्यः समर्पयेत्। यदा नार्पयेत्तदा चौरी स्यात् ॥ ९२ ॥

(४) **राघवानन्दः**। स्वयंवरा तु पूर्वं पितृभ्रातृभ्यो लब्धमपि धनं त्यक्त्वा पतिं भजेतेत्याह **अलंकारमिति**। **पित्र्यं** मातृकमिति भूतपूर्वगत्या। तमलंकारम्। उक्तवैपरीत्ये दोषमाह **स्तेनेति**। ग्रहणे स्तेनत्वं यतः स्वयंवरा स्वदेहमात्रमादाय वरं पतिं वृणीते तस्याः पित्रादिधने नाधिकारः ॥ ९२ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **यदि** तं मातृभ्रातृदत्तं हरेत्सा **स्वयंवरकन्या स्तेना** चौरप्राया **स्यात्** ॥ ९२ ॥

(९) **भारुचिः**। अन्ये त्वेवमिमं श्लोकं पठन्ति। "नाददीत त्वलङ्कारं पित्र्यं कन्या स्वयंवरे। मातृकं भ्रातृदत्तं वा स्तेनः (ना) स्याद्यदि तं हरेत् ॥" एवं चापाठे पुरुषविषयश्लोको भवतीति ॥ ९२ ॥

**पित्रे न दद्याच्छुल्कं तु कन्यामृतुमतीं हरन् ॥**
**स च स्वाम्यादतिक्रामेदृतूनां प्रतिरोधनात् ॥ ९३ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। शुल्कदेयाया ऋतुमत्याः शुल्कनिषेधोऽयम्। तत्र हेतुः—**स च स्वाम्यादतिक्रामेत्**। "बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत्" (५।१४८) इत्युक्तम्। वयोन्तरप्राप्तौ चाददतः पितुः स्वाम्यं नास्ति। शुल्कादेयाया अपि हेतोः समानत्वात्पितुः स्वाम्यनिवृत्तिः। केचिदाहुः अमानवोऽयं श्लोकः ॥ ९३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। ऋतुमतीं पित्रा दीयमानामपि। अत्र हेतुः **स चेति**। स पिता स्वाम्याच्छुल्कहेतोरतिक्रामेदपगच्छेत्। ऋतूनां प्रतिरोधनादिति गर्भनिरोधनकृतं पापमपेक्षितम् ॥ ९३ ॥

(३) **कुल्लूकः**। ऋतुयुक्तां कन्यां वरः परिणयन्पित्रे शुल्कं न दद्यात् यस्मात्स पिता ऋतुकार्यापत्योत्पत्तिनिरोधात्कन्यायाः स्वामित्वाद्धीयते ॥ ९३ ॥

(४) **राघवानन्दः**। आर्षे गोमिथुनं विहितमपि ऋतुमत्यां निषेधति **पित्र इति**। स हि पिता स्वाम्यादतिक्रामेत्स्वाम्यात्प्रच्युतः। ऋतूनां प्रतिरोधनात् ऋतुजापत्यप्रतिरोधात्। ऋतुपर्यन्तं कन्यायाः कन्यात्वं पितुः स्वत्वं च। यतः स्वयंवरा स्वदेहमात्रमादाय वरं वरयतीति पित्राद्यनधीनत्वं 'बाल्ये पितुर्निदेशे तिष्ठे'दित्युक्तेर्दशवर्षादिकालस्य स्वत्वनिवर्तकत्ववदृतुकालस्यापि स्वत्वनिवर्तकत्वात्। ('अष्टवर्षा भवेत्कन्या नववर्षा तु रोहिणी। दशवर्षा भवेद्गौरी अत ऊर्ध्वं रजस्वले'त्युक्तेः) ॥ ९३ ॥

(५) **नन्दनः**। सः पिता ॥ ९३ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। सः पिता ॥ ९३ ॥

(७) **मणिरामः**। स हि पिता ऋतूनां प्रतिरोधनात् ऋतुकार्याऽपत्योत्पत्तिनिरोधनात् स्वाम्यात् अतिक्रामेत् कन्यायाः स्वाम्याद्धीयते, अतस्तस्मै शुल्कं न देयमित्यर्थः ॥ ९३ ॥

(९) **भारुचिः**। स्मृत्यन्तरे त्वयं श्लोको न त्वत्र समाम्नायते ॥ ९३ ॥

**त्रिंशद्वर्षो वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम् ॥**
**त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः ॥ ९४ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। इयता कालेन यवीयसी कन्या वोढव्या, न पुनरेतावद्वयस एव विवाह इत्युपदेशार्थः। अथापि न यथाश्रुतवर्षसंख्यैव। किं तर्हि? बहुना कालेन यवीयसी वोढव्या। न ह्येतद्विवाहप्रकरणे श्रुतम्। येन संस्कार्यविशेषणत्वेन तदङ्गकालो दशादिवर्षा पञ्चविंशत्यादिवर्ष च निवर्तयेत्। "ननु च वाक्यान्तरस्थस्याप्यङ्गविधिर्भवत्येव"। सत्यम्; इह प्रकरणोत्कर्षेण पाठादाचार्यस्याभिप्रायान्तरमनुमीयते। तथा शिष्टसमाचारः। सुतस्य च पुनर्दारक्रियायां नैष कालः संभवतीति 'पुनर्दारक्रियां कुर्यात्' इति नोपपद्यते ॥ ९४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। त्रिंशद्वर्ष इत्येतद्ग्रहणान्तिकव्रतचरणपक्षे। धर्मे स्वकर्तव्ये गार्हस्थ्यधर्मे सीदति मन्दीभवतीति त्वराहेतुरुक्तः ।। ९४ ।।

(३) **कुल्लूकः**। त्रिंशद्वर्षः पुमान् द्वादशवर्षवयस्कां मनोहारिणीं कन्यामुद्वहेत्। चतुर्विंशतिवर्षो वाऽष्टवर्षां गार्हस्थ्यधर्मेऽवसादं गच्छति त्वरावान्। एतच्च योग्यकालप्रदर्शनपरं, नतु नियमार्थं; प्रायेणैतावता कालेन गृहीतवेदो भवति। त्रिभागवयस्का च कन्या वोढुर्यूनो योग्येति गृहीतवेदश्चोपकुर्वाणको गृहस्थाश्रमं प्रति न विलंबेतेति 'सत्वर' इत्यस्यार्थः ।।९४।।

(४) **राघवानन्दः**। ब्राह्मादिविवाहे वयःपरिमाणमनुक्तं विकल्पेनाह **त्रिंशदिति**। वहेदुद्वहेत् व्यष्टवर्ष उत्कटरागापेक्षया गार्हस्थ्यधर्मापेक्षया वा। अत एवाह **धर्मे सीदतीति**। 'उद्वहेत्सदृशीं भार्यां'मित्यस्य शेषोऽयम् स्थानभ्रष्टः। 'जातपुत्रः कृष्णकेशोऽग्नीनादधीते'त्यादिश्रौताधानस्यापत्योत्तरकालीनत्वादधर्मोऽत्रावसथ्याख्याग्निसाध्यः ।। ९४ ।।

(५) **नन्दनः**। 'व्यष्टवर्षश्चतुर्विंशतिवर्षः धर्मे सीदति सत्वरः' अन्यकन्यां वहेत् ब्रह्मचर्यविप्लवसंभावनायां वयोवस्थानियमो नादरणीय इत्यस्यार्थः ।। ९४ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। धर्मे सीदति सति रजोदर्शने समुपागते सति सत्वरो भवेत् ।। ९४ ।।

(७) **मणिरामः**। व्यष्टवर्षः चतुर्विंशतिवर्षः धर्मे सीदति गार्हस्थ्यधर्मे नश्यति सत्वरः त्वरया उद्वहेत् विवाह्येत्। एतच्च योग्यकालप्रदर्शनार्थं, न त्वस्मिन्नेव काले विवाहं कुर्यादिति नियमार्थं ।। ९४ ।।

(९) **भारुचिः**। गुरुणानुमत इयता कालेन यवीयसीमुद्वहेत् कन्याम् ।। ९४ ।।

**देवदत्तां पतिर्भार्यां विन्दते नेच्छयात्मनः ।।**
**तां साध्वीं बिभृयान्नित्यं देवानां प्रियमाचरन् ।। ९५ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। साध्वी भार्या प्रातिकूल्याप्रियवादादिदोषयुक्ताऽपि भर्त्रा न त्याज्येति श्लोकार्थः। अवशिष्टा प्रशंसा। यत् तु 'निरुन्ध्यादेकवेश्मनी'त्यसाध्व्या अपि विहितं तत्सकृद्व्यभिचारे, अभ्यासे तु त्याग एव। नान्यथा **तां साध्वीं बिभृयादित्यनेन** किंचित्कृतं स्यात्।

यदपि "हृताधिकारां मलिनां पिण्डमात्रोपजीविनीम्। परिभूतामधःशय्यां वासयेद्व्यभिचारिणीम्।" (याज्ञ. १-७०)–तच्च सत्यां शक्तौ पत्युरिच्छा सा, अनिच्छायां तु त्याग एव।

यच्चेदं पतितास्वपि 'वस्त्रान्नदानं देयं चे'त्यादि वक्ष्यति, तद् ब्रह्महत्यादिषु प्रायश्चित्तेषु भैक्ष्यभोजनारम्भे निर्वापप्राप्तौ प्रतिषेधवचनमिति वक्ष्यामः। सर्वथा तु पुनर्व्यभिचारिण्या भरणं नास्ति। न चात्र त्यागः श्रुतो येन संभोगविषयतया कल्प्येत।

"सोमोऽददत्" इत्यादिमन्त्रार्थवादेभ्यो (ऋग्वेद० १०-८५-४१) देवतानां दातृत्वं प्रतीयते। अथवा विवाहे देवताया भार्या भवत्यत उच्यते–**देवदत्तामिति**।

**विन्देत–नात्मन इच्छया।** यथान्यद्गोहिरण्याद्यापणभूमौ लभ्यते तथा नेयं भार्या। अत उच्यते **नेच्छयात्मन** इति। **देवानां प्रियं** देवेभ्यो हितं–त्यक्तायां भार्यायां वैश्वदेवादिक्रियानिमित्ते नास्ति देवहितम्। **अतस्तां** द्विषाणां द्विषंतीमपि **बिभृयात्।** पातित्ये तामनधिकारप्राप्तां पतिरधिविन्देत ।। ९५ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** देवदत्तां देवेनाग्निना दत्ताम्। 'रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमा'मिति मन्त्रलिङ्गात् ।। ९५ ।।

(३) **कुल्लूकः।** 'भगोऽर्यमा सविता पुरंधिर्मह्यं त्वा दुर्गार्हपत्याय देवा' इत्यादिमन्त्रलिङ्गाद्या देवैर्दत्ता भार्या तां पतिर्लभते, नतु स्वेच्छया तां सतीं देवानां प्रियं कुर्वन् ग्रासाच्छादनादिना सदा द्वेषाद्युपेतामपि पोषयेत् ।। ९५ ।।

(४) **राघवानन्दः।** 'भगोऽर्यमा देवः सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वा दुर्गार्हपत्याय देवा' इति मन्त्रलिङ्गात् भार्यायां देवदत्तात्वं ख्यापयन्नुपस्थितायां श्रद्धातिशयं विधत्ते **देवदत्तामिति।** 'विवाहो जन्म मरणं यदा यत्र च येन चे'ति स्मारयन्नाह **नेच्छयेति।** द्वेषादिमत्यपि साध्वीति कृत्वा वस्त्रान्नादिना पोषयेदिति श्लोकार्थः ।। ९५ ।।

(५) **नन्दनः।** अतोऽस्या वृत्तिर्विधातव्येत्याह **देवदत्तामिति।** देवदत्तां सोमगन्धर्वाग्निभिर्दत्तां प्रियमाचरन्प्रियाचरणहेतोः धर्मसाधारण्याच्च ।। ९५ ।।

(६) **रामचन्द्रः।** देवदत्तां सोमादिभोगकाले दत्तां अथवा विवाहे देवदत्ता भार्या भवेति वा 'सोमोऽददद्गन्धर्वाय गन्धर्वोऽदददग्नय' इति श्रुतेः ।। ९५ ।।

(७) **मणिरामः।** देवदत्तां 'भगोऽर्यमा देवः सविते'त्यादि मंत्रलिंगोक्तदेवैर्दत्तां बिभृयात् पोषयेत् ।। ९५ ।।

(९) **भारुचिः।** स्वप्रयत्नाहते पित्रोपनीता देवदत्ता भवति स्वव्यापारप्राप्ता वा उपदेशप्रयोजना, तां साध्वीं द्विषन्तीमपि द्वेष्यां च सतीं बिभृयात्। येनेदृश्या सहधर्मचारिण्या यजमानेन हविः प्रत्तं देवताभिः प्रतिगृह्यते प्रसवशुद्धा च सा देवपितृमनुष्याणामानृण्येनेति निमित्तं भवति यतस्तामीदृशीं द्वेष्यतादिभिरपि कारणैर्न परित्यजेत् ।। ९५ ।।

**प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाः संतानार्थं च मानवाः ।।**
**तस्मात्साधारणो धर्मः श्रुतौ पत्न्या सहोदितः ।। ९६ ।।**

(१) **मेधातिथिः। प्रजनं** गर्भग्रहणम्। **सन्तानो** गर्भाधानम्। **तस्माद्धेतोरपत्योत्पत्तेरुभयाधीनत्वाद्वेदे स्त्रीपुंसयोः साधारणो धर्मः पत्न्या सह** पुंस उक्तः। अतः केवलस्याधिकाराभावात् स्त्रियो द्वेष्या अपि न त्याज्याः ।। ९६ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** प्रजनार्थं गर्भप्रसवार्थम्। संतानार्थं बीजनिक्षेपेण संतानसिद्धयर्थं मानवाः ।। ९६ ।।

(३) **कुल्लूकः**। यस्माद्गर्भग्रहणार्थं स्त्रियः सृष्टा गर्भाधानार्थं च मनुष्यास्तस्माद् गर्भोत्पादनमेवानयोः, अग्न्याधानादिरपि धर्मः पत्न्या सह साधारणः। 'क्षौमे वसानावग्नीनादधीयाता'मित्यादिवेदेऽभिहितः, तस्माद्'भार्यां बिभृयादि'ति (९।९५) पूर्वोक्तस्य शेषः ॥९६॥

(४) **राघवानन्दः**। श्रद्धातिशयस्य प्रयोजनमाह **प्रजनार्थमिति**। प्रजनार्थं प्रजनं 'प्रजन्यते'ऽनेनेति प्रजनं कामः, तदर्थं तन्निवृत्त्यर्थं। 'मशकार्थो धूम' इतिवत्। संतानार्थं गर्भाधानार्थं मानवाः पुमांसश्च सृष्टाः मनुष्याणामेव मन्त्रतो गर्भाधानमिति सूचनार्थम्। 'क्षौमे वसानावग्नीनादधीयाता'मित्यादिश्रुत्युदितः पत्न्या सह साधारणो धर्म इत्यन्वयः। मानवा इति हे ऋषय इति वा ॥ ९६ ॥

(५) **नन्दनः**। भर्तव्येत्याह **प्रजनार्थमिति**। प्रजनार्थं गर्भधारणार्थं सन्तानार्थं बीजनिक्षेपणार्थं मानवाः पुरुषाः ॥ ९६ ॥

(७) **मणिरामः**। प्रजनार्थं गर्भग्रहणार्थं संतानार्थं गर्भाधानार्थं साधारणो धर्मः अग्निहोत्रादिः श्रुतौ 'क्षौमे वसानामग्नीनादधीयाता' मित्यादि वेदे। तस्माद् 'भार्यां बिभृयादि'ति पूर्वोक्तस्यैवायं शेषः ॥ ९६–९७ ॥

(९) **भारुचिः**। एवमनयोः प्रजासहत्ववत् कर्मसहत्वं स्मर्यते, येन अतस्तां न परित्यजेत् अधिकारानुग्रहाय ॥ ९६ ॥

**कन्यायां दत्तशुल्कायां म्रियेत यदि शुल्कदः ॥**
**देवराय प्रदातव्या यदि कन्याऽनुमन्यते ॥ ९७॥**

(१) **मेधातिथिः**। यस्याः पित्रादिभिर्गृहीतं शुल्कं, न च दत्ता, केवलवचनेन देयत्वेन व्यवस्थिता–अत्रान्तरे स **चेन्म्रियेत** तदा–"अन्यद्रव्यवद्देवरेषु प्राप्ता सर्वेषु वा युधिष्ठिरादिवत्, तदभावे सपिण्डेषु"–अतो विशेषार्थमिदमुच्यते–**देवराय प्रदातव्येति**–न सर्वेभ्यो भर्तृभ्रातृभ्यो नापि सपिंडेभ्यः। किं तर्हि? एकस्मै देवरायैव। तत्रापि कन्याया अनुमतौ सत्याम्। "अथासत्यां कन्यायाः शुल्कस्य च का प्रतिपत्तिः?"। यदि कन्यायै रोचते ब्रह्मचर्यं तदा शुल्कं कन्यापितृपक्षाणामेव। अथ पत्यन्तरमर्थयते तदा प्राग्गृहीतं शुल्कं त्यक्त्वाऽन्यस्मादादाय दीयते ॥ ९७ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। पुरुषार्थं यद्यनुमन्यते, अननुमते तु नान्यस्मै देया किंतु कन्यैव तिष्ठेदिति फलिष्यति ॥ ९७ ॥

(३) **कुल्लूकः**। कन्यायां दत्तशुल्कायां सत्यामसंजातविवाहायां यदि शुल्कदो वरो म्रियेत तदा देवराय पित्रादिभिर्वाऽसौ कन्या दातव्या यदि सा स्वीकरोति। 'यस्या म्रियेत' (९।६९) इति प्रागुक्तं नियोगरूपं, इदन्तु शुल्कग्रहणविषयम् ॥ ९७ ॥

(४) **राघवानन्दः**। 'यस्या म्रियेत कन्याया' (९।६९) इत्यस्माद्विशेषं वक्तुमाह **कन्यायामिति**। वाग्दानशुल्कग्रहणाभ्यां वा भेदः। तथा च तस्याः स्वत्वनिवृत्तेरननुमतौ स्वयंवरा स्यान्नतु बलाद्दातुं शक्येत्याह **यदीति** ॥ ९७ ॥

(५) **नन्दनः**। अनुमत्यभावेऽन्यस्मै देया 'सकृत्कन्या प्रदीयत' (६।४७) इत्यस्यायमपवादः ॥ ९७ ॥

(९) **भारुचिः**। केनचिद्विशेषेणास्य पुनरारम्भः, एवं च सति 'यस्या म्रियेत कन्याया' (९।६९) वाचा सत्ये कृते परित्यक्तं तत्तु शुल्काया विधानं स्यात्। देवरग्रहणाच्च पुनस्सपिण्डनिवृत्तिर्गम्यते। युक्ता च तन्निवृत्तिः, सा हि क्रीतत्वात्तद्द्रव्याभिसन्धिन्येव देवरेऽभ्यनुज्ञातुं युक्ता, शुल्कपण्यत्वात् तस्याः ॥ ९७ ॥

**आददीत न शूद्रोऽपि शुल्कं दुहितरं ददन् ॥**
**शुल्कं हि गृह्णन्कुरुते छन्नं दुहितृविक्रयम् ॥ ९८ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। इच्छातः शुल्कग्रहणे पूर्वेण विधिरुक्तः। कस्यचित्तत एवाशङ्का स्यात्—'अदोषं शुल्कग्रहणं शास्त्रे गृहीतशुल्काया विशेष उक्तो यतः'अत इमामाशङ्कामपनेतुमाह **आददीत न शूद्रोऽपि शुल्कमिति**। इच्छातः प्रवृत्तौ शास्त्रीयो नियमो न तु शास्त्रेण पदार्थस्यैव कर्तव्यतोक्ता; यथा मद्यपीतस्य प्रायश्चित्तविधानेन न मद्यपानं शास्त्रेणानुज्ञातं भवति। शुल्कसंज्ञेन यदेवोक्तं "गृह्णन्हि शुल्कं लोभेन" (३।५१) इति। येन तु विशेषेण पुनः पाठोऽसौ प्रदर्शित एव ॥ ९८ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अत्र प्रसंगादर्थान्तरमाह **आददीतेति**। छन्नमपि शुल्कं प्रतिग्रहादिरूपेणापि छद्मना कन्याभिसंधिना शुल्कं गृह्णन्दुहितृविक्रयं कुरुते ॥ ९८ ॥

(३) **कुल्लूकः**। शास्त्रमभिज्ञः शूद्रोऽपि पुत्रीं ददञ्छुल्कं न गृह्णीयात्किं पुनः शास्त्रविद्द्विजातिः; यस्माच्छुल्कं गृह्णन्गुप्तं दुहितृविक्रयं कुरुते। 'न कन्यायाः पिते'(३।५१)-त्यनेन निषिद्धमपि शुल्कग्रहणं कन्यायामपि गृहीतशुल्कायां शास्त्रीयनियमदर्शनाच्छुल्कग्रहणे शास्त्रीयत्वशङ्कायां पुनस्तन्निषिध्यते ॥ ९८ ॥

(४) **राघवानन्दः**। शुल्कद इत्यनेन कन्याशुल्कं परमते प्रतिषेधति **आददीतेति**। सर्वाशी सर्वविक्रयीति सर्वविक्रयिणः शूद्रग्रहणमत्यन्तपतकसूचनार्थं 'तं देशं पतितं मन्ये यत्रास्ते शुक्र(लक)विक्रयी'ति स्मरणात्। छन्नं गुप्तं पापमावश्यकमिति भावः ॥ ९८ ॥

(७) **मणिरामः**। पूर्वं निषिद्धमपि शुल्कग्रहणं कन्यायामपि गृहीतशुल्कायां शास्त्रीयनियमदर्शनात् शुल्कग्रहणशास्त्रीयशंकायां पुनस्तन्निषिध्यते **आददीतेति** ॥ ९८ ॥

(९) **भारुचिः**। 'न शूद्रोऽपि'(९।९८)इति वचनात् शुल्कग्रहणं दोषवदित्येतद्दर्शयति, न तु शूद्रस्य प्रतिषेधः ॥ ९८ ॥

**एतत्तु न परे चक्रुर्नापरे जातु साधवः ॥**
**यदन्यस्य प्रतिज्ञाय पुनरन्यस्य दीयते ॥ ९९ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। यदुक्तं 'गृहीते शुल्के कन्येच्छायां सत्यां मृते तु शुल्कदेऽस्या अन्यत्र दानमिति' तन्निषेधति। **यदन्यस्य** शुल्कदस्य **प्रतिज्ञाय पुनरन्यस्मै दीयते** पुनः शुल्कं गृहीत्वेति वरं स्वयंवरं तु कारयेत्कन्याम्—एष एवार्थः ॥ ९९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अतो देवरं प्रत्यननुमतायां कन्यायां नान्यस्मै सा देया। सोदरस्तु भ्रातात्मैवेति गृहीतस्य शुल्कस्य तद्धनत्वात्तस्मै दीयमानायां कन्यायां दोषाभाव इति तात्पर्यम्। अभ्यनुज्ञाय शुल्कग्रहणेनान्यस्मै प्रतिपाद्य ॥ ९९ ॥

(३) **कुल्लूकः**। एतत्पुनः पूर्वे शिष्टा न कदाचित्कृतवन्तो नाप्यपरे वर्तमानकालाः कुर्वन्ति यदन्यस्य कन्यां अङ्गीकृत्य पुनरन्यस्मै दीयत इति। एतच्चागृहीतशुल्ककन्यामदत्वा कस्यचित्, 'कन्याया' (९।९७) मिति तु गृहीतशुल्कविषयम् ॥ ९९ ॥

(४) **राघवानन्दः**। वाक्शुल्काभ्यां अस्मै प्रदाय देवरादन्यस्मै प्रदानं साधुकृत्याप्रसिद्धमित्याह **एतदिति**। अनपरे पूर्वे। देवरादतिरिक्तविषयमेतत् ॥ ९९ ॥

(५) **नन्दनः**। परे पुरातनाः, अपरे नूतनाः, अभ्यनुज्ञाय प्रतिश्रुत्य ॥ ९९ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। यत्तु या कन्या अन्यस्य अभ्यनुज्ञाय दास्यामीति उक्त्वा पुनः अन्यस्मै दीयते ॥ ९९ ॥

(७) **मणिरामः**। परे पूर्वे शिष्टाः, अपरे वर्तमानकालीनाः ॥ ९९ ॥

(९) **भारुचिः**। अनेन दानमन्यत्र नास्ति प्रकृतापेक्षमेतत् ॥ ९९ ॥

**नानुशुश्रुम जात्वेतत्पूर्वेष्वपि हि जन्मसु ॥**
**शुल्कसंज्ञेन मूल्येन छन्नं दुहितृविक्रयम् ॥ १०० ॥**

(१) **मेधातिथिः**। न कुतश्चिदस्माभिः श्रुतम्। **पूर्वेषु जन्मसु**, कल्पान्तरेष्वित्यर्थः ॥ १०० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। छन्नशुल्कग्रहेण दुहितृविक्रये प्रागुक्ते सदाचारविरोध दर्शयति **नानुशुश्रुमेति**। पूर्वेषु जन्मसु लोकजन्मकालेषु कल्पेषु छन्नमपि नानुशुश्रुम, किं पुनः स्पष्टम् ॥ १०० ॥

(३) **कुल्लूकः**। पूर्वकल्पेष्वप्येतद्वृत्तमिति कदाचिद्वयं न श्रुतवन्तो यच्छुल्काभिधानेन मूल्येन कश्चित्साधुर्गूढं दुहितृविक्रयमकार्षीदिति शुल्कनिषेधार्थवादः ॥ १०० ॥

(४) **राघवानन्दः**। न केवलं कृत्यविषयमपि तु श्रवणपथं नावतीर्णमित्याह **नेति**। पूर्वेषु जन्मसु कल्पेषु मनोजीतिस्मरत्वेऽविरतिपत्तेः कामबाणप्रपीडितायास्तादृश्या अदीयमानाया भर्तारमधिगच्छेदिति गतिरुक्ता ॥ १०० ॥

(५) **नन्दनः**। जन्मसु सृष्टिकालान्तरेष्विति यावत् ॥ १०० ॥

(७) **मणिरामः**। शुल्कनिषेधार्थवादमाह **नेति**। पूर्वेष्वपि हि जन्मसु पूर्वकल्पेष्वपि जातु कदाचित् ॥ १०० ॥

(९) **भारुचिः**। एवं च सति शुल्कदोषान्नियोगोऽपि सपिण्डे नास्ति। अतो देवराभावपक्षे नियतः प्रजनविभागः ॥ १०० ॥

**अन्योन्यस्याव्यभीचारो भवेदामरणान्तिकः ॥**
**एष धर्मः समासेन ज्ञेयः स्त्रीपुंसयोः परः ॥ १०१ ॥**

(१) **मेधातिथिः** । अविशेषेण वचनक्रिया सर्वक्रियास्वव्यभिचारः । तथा **चापस्तम्बः** 'धर्मे चार्थे च कामे च नाभिचरितव्या" इति । एतावच्च श्रेयो धर्मोऽर्थः । तथा चोक्तम्– "त्रिवर्ग इति तु स्थितिः" इति ।

यच्चाहुः–"अपरित्यागोऽन्याव्यभिचारः, इतरथा स्त्रीवत्पुरुषस्यानेका भार्या परिणयनं न स्यात्"–तदयुक्तम्; अस्ति पुरुषे वचनं "कामतस्तु प्रवृत्तानाम्", तथा "वन्ध्याष्टमेऽधिवेत्तव्या" इति, न तु स्त्रियाः । तथा च लिङ्गान्तरं स्यात् "एकस्य बहूव्यो जाया भवन्ति नैकस्या बहवः सहपतय" इति (ऐत० ब्रा० ३।३) । आमरणान्ते भव **आमरणान्तिकः** । अन्यतरमरणेऽपि तस्यान्तोऽस्तीत्यर्थः । **एष** संक्षेपेण **स्त्रीपुंसयोः** प्रकृष्टो **धर्मो** वेदितव्यः ॥ १०१ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । आमरणान्तिको यावदुभयोर्मरणम् । पर उत्तमः ॥ १०१ ॥

(३) **कुल्लूकः** । भार्यापत्योर्मरणान्तं यावद्धर्मार्थकामेषु परस्परव्यभिचारः स्यादित्येव संक्षेपतः स्त्रीपुंसयोः प्रकृष्टो धर्मो ज्ञातव्यः ॥ १०१ ॥

(४) **राघवानन्दः** । स्त्रीपुंसयोरामरणं न क्वापि वियोगो युक्त इति दृढयन्नाह **अन्योन्यस्येति** द्वाभ्याम् । एषो वक्ष्यमाणः । पर उत्कृष्टो यतो व्यभिचारे । 'संकरो नरकायैव' (भग. १।४२) इत्युक्तम् ॥ १०१ ॥

(७) **मणिरामः** । स्त्रीपुंसोः आमरणांतिकः, मरणांतं यावत्, धर्मार्थकामेषु अन्योन्यस्याऽव्यभिचारो भवेत् परस्परसहायता स्यात्, एष समासतः संक्षेपतः उत्कृष्टधर्मो ज्ञातव्यः ॥ १०१ ॥

(९) **भारुचिः** । अव्यभिचारोऽन्योपगमपरित्यागः स्त्रियाः, न तु पुरुषस्य स्त्रीवदन्योपगमप्रतिषेधः; तस्मादेकस्य बहूव्यो जायाः भवन्ति । 'नैकस्यां बहवः सहपतय' (ऐ. ब्रा. ३/३) इति श्रुतिः । स्त्रियास्तु पुरुषान्तरसङ्कल्पेनापि व्यभिचार इत्युक्तम् ॥ १०१ ॥

**तथा नित्यं यतेयातां स्त्रीपुंसौ तु कृतक्रियौ ॥**
**यथा नातिचरेतां तौ वियुक्तावितरेतरम् ॥ १०२ ॥**

(१) **मेधातिथिः** । **यतेयातां** प्रयत्नवन्तौ **तथा** स्यातां **यथेतरेतरं** परस्परं **नातिचरेताम्** । 'अतिचारो'ऽतिक्रमः, धर्मार्थकामेष्वसहभावः । **कृतक्रियौ** कृतविवाहादिसंस्कारौ नियुक्तौ । ततः परोपसंहारश्लोकोऽयं नानुक्तार्थोपदेशकः ॥ १०२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । कृतक्रियौ कृतनियमौ नातिचरेतामिति । पुरुषोऽपि यथा परस्त्रियं न गच्छेदित्यर्थः ॥ १०२ ॥

(३) **कुल्लूकः**। तथा च सति **तथेति**। स्त्रीपुंसौ कृतविवाहौ तथा सदा यत्नं कुर्यातां यथा धर्मार्थकामविषये वियुक्तौ परस्परं न व्यभिचरेताम्॥ १०२॥

(४) **राघवानन्दः**। तदेवाह **तथेति**। यतक्रियौ यतचित्तौ॥ १०२॥

(५) **नन्दनः**। कृतक्रियौ यतेयातां, क्रियाभिर्यतेयातामित्यर्थः॥ १०२॥

(६) **रामचन्द्रः**। नियुक्तौ धर्मार्थकामनियुक्तौ॥ १०२॥

(७) **मणिरामः**। एतदेव स्पष्टयति **तथेति**। कृतक्रियौ कृतविवाहौ स्त्रीपुंसौ तथा नित्यं यतेयातां यत्नं कुरुतां यथा धर्मार्थकामविषये इतरेतरं वियुक्तौ परस्परारहितौ तौ स्त्रीपुरुषौ नातिचरेतां न कार्यं कुरुतां॥ १०२॥

(९) **भारुचिः**। विहितस्य स्त्रीपुंधर्मस्यानेकप्रकारेऽस्यास्मिन् प्रकरणे तदनुष्ठानादरार्थमिदमुक्तानुकीर्तनम्॥ १०२॥

**एष स्त्रीपुंसयोरुक्तो धर्मो वो रतिसंहितः॥**
**आपद्यपत्यप्राप्तिश्च दायभागं निबोधत॥ १०३॥**

(१) **मेधातिथिः**। उक्तेषु स्त्रीपुंसयोश्चापत्योत्पत्तौ च दायधर्मस्य विभागस्यावसरः॥ १०३॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अथ विभागं वक्तुमारभते **एष इति**। रतिसंहितो रतिसंबन्धी रतेरपि न विरोधी। दायधर्मान् दायमधिकृत्य विभागादिधर्मान्॥ १०३॥

(३) **कुल्लूकः**। एष भार्यापत्योरन्योन्यानुरागयुक्तो धर्मो युष्माकमुक्तः, संतानाभावे चापत्यप्राप्तिरुक्ता। इदानीं दीयते इति दायः पित्रादिधनं, तस्य विभागव्यवस्थां शृणुत॥ १०३॥

(४) **राघवानन्दः**। उपसंहरति **एष इति**। रतिसंहितः परस्परानुरागयुक्तः। आपद्यपत्यप्राप्तिश्च स्वसुताभावे देवरादेरप्यपत्यावाप्तिश्च। दायभागं दीयत इति दायः पित्रादिधनं, तस्य भागो व्यवस्था॥ १०३॥

(५) **नन्दनः**। आपद्यपत्यप्राप्तिर्देवरादिनियोगः। दायधर्मं रिक्थपरिग्रहम्॥ १०३॥

(६) **रामचन्द्रः**। **एष** इति सार्धेनाह। आपदि अपत्यप्राप्तिर्न पुनः दायधर्मान्निबोधत॥ १०३॥

(७) **मणिरामः**। रतिसंहितः अन्योन्यानुरागयुक्तः दीयत इति दायः पित्रादिधनं, तस्य विभागः॥ १०३॥

(९) **भारुचिः**। पूर्वयोः प्रकरणयोः उपसंहारोपन्यासवचनमिदम्, श्रोतृसम्बोधनार्थम्॥ १०३॥

**ऊर्ध्वं पितुश्च मातुश्च समेत्य भ्रातरः समम् ॥**
**भजेरन्पैतृकं रिक्थमनीशास्ते हि जीवतोः ॥ १०४ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **भजेरन्निति** प्राप्तकालतायां लिङ्। (तथा पञ्चमे प्रपञ्चितम्। अथवा यस्मिन् शयने संक्रामति) ॥ १०४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। पिता माता च पितरौ, तयोः रिक्थं पैतृकम्। ऊर्ध्वं मरणात्। पितुर्मरणादूर्ध्वं पितुर्धनं विभजनीयं, मातुरूर्ध्वं मातृकमिति विभज्य योज्यं; स्मृत्यन्तरदर्शनात्। तत्र च मातृधनं दुहित्रभाव एव पुत्रैर्ग्राह्यम्। समेत्यैकत्र स्थित्वा। समं नतु मातृपितृधनयोर्विभागे अन्योन्यं विशेषः। अनीशाः विभागेऽस्वतन्त्राः; तेन पित्रोरनुमत्या जीवतोरपि तयोर्विभाग इति लभ्यते ॥ १०४ ॥

(३) **कुल्लूकः**। भ्रातरो मिलित्वा पितृमरणादूर्ध्वं पैतृकं मातृमरणादूर्ध्वं मातृकं धनं समं कृत्वा विभजेरन्। ज्येष्ठगोचरतयोद्धारस्य वक्ष्यमाणत्वात्। समभागोऽयं ज्येष्ठभ्रातर्युद्धारगनिच्छति बोद्धव्यः। पित्रोर्मरणादूर्ध्वं विभागहेतुमाह **ऊर्ध्वमिति**। यस्मात्ते पुत्रा जीवतोः पित्रोस्तदीयधने स्वामिनो न भवन्ति, मातुरपि प्रकृतत्वात्; 'पैतृक'मित्यनेन मातृकस्यापि ग्रहणं। अयं च पितृमरणानन्तरं विभागो जीवतः पितुरिच्छाभावे द्रष्टव्यः, पितुरिच्छया जीवत्यपि तस्मिन्विभागः। तदाह **याज्ञवल्क्यः** (व्यव० ११४)—'विभागं चेत्पिता कुर्यादिच्छया विभजेत्सुतानि'ति ॥ १०४ ॥

(४) **राघवानन्दः**। तमेवाह **ऊर्ध्वमिति**। त्रिपञ्चाशता। ऊर्ध्वं मातापित्रोर्मरणात्। विभागे हेतुः **अनीशाः** अस्वामिनः जीवतोर्मातापित्रोः। तयोर्मरणं स्वत्वस्योत्पादकं व्यञ्जकं चोभयथापि ऊर्ध्वपदमुपलक्षणं पातित्यप्रव्रज्यादेः। स्वत्वध्वंसकत्वसाम्यात्। समं समभागं कुर्युरित्यपि पितुरिच्छापक्षे। 'विभागं चेत्पिता कुर्यादिच्छया विभजेत्सुतान्। ज्येष्ठं वा श्रेष्ठभागेन सर्वे वा स्युः समांशिनः।' इति **याज्ञवल्क्योक्ते**-(व्य० ११४)स्तदिच्छैव कारणं, न ज्यैष्ठ्यादिकम् ॥ १०४ ॥

(५) **नन्दनः**। समेत्य एकशो भूत्वा पैतृकं पितृसंबन्धि पितुरूर्ध्वं पैतृकं रिक्थं भजेरन्विभजेरन् मातुरूर्ध्वं मातृकं, जीवतोः पित्रोः ॥ १०४ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। जीवतोर्मातापित्रोः ते पुत्राः अनीशाः ॥ १०४ ॥

(७) **मणिरामः**। समेत्य मिलित्वा। तत्र हेतुमाह **अनीशेति**। हि यस्मात् जीवतोः पित्रोः अनीशाः तदीयधने अस्वामिनः जीवतः पितुरिच्छया विभागः ॥ १०४ ॥

(९) **भारुचिः**। तदनुज्ञाता जीवत्पितृमातृका अपि धर्मकार्यापेक्षया भजेरन्नित्येतदर्थादाद्रियते, तथा च **गौतम** आह—'जीवति वेच्छति पितरी'ति। मातुरपि चोर्ध्वं तदीयद्रव्यविभागः पाक्षिको विज्ञेयो भगिनीभिः सह ॥ १०४ ॥

**ज्येष्ठ एव तु गृह्णीयात्पित्र्यं धनमशेषतः ।।**
**शेषास्तमुपजीवेयुर्यथैव पितरं तथा ।। १०५ ।।**

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । **ज्येष्ठ एव त्विति** । एतज्ज्येष्ठस्य युक्तत्वे, अन्येषां च हीनवत्त्वे ।। १०५ ।।

(३) **कुल्लूकः** । यदा पुनर्ज्येष्ठो धार्मिको भवति तदा ज्येष्ठ एव पितृसंबन्धि धनं गृह्णीयात्कनिष्ठाः पुनर्ज्येष्ठं भक्ताच्छादनाद्यर्थं पितरमिवोपजीवेयुः । एवं सर्वेषां सहैवावस्थानम् ।। १०५ ।।

(४) **राघवानन्दः** । धार्मिकज्येष्ठसत्वे त्वाह **ज्येष्ठ इति** षड्भिः । शेषाः कनीयांसः । अन्नाच्छादनाद्यर्थं पुत्रा यथा पितरमुपजीवेयुस्तथेत्यन्वयः ।। १०५ ।।

(५) **नन्दनः** । पक्षान्तरमाह **ज्येष्ठ एवेति** ।। १०५ ।।

(७) **मणिरामः** । ज्येष्ठश्चेद्धार्मिकस्तदाह **ज्येष्ठ इति** ।। १०५ ।।

(९) **भारुचिः** । एष कारणतः पाक्षिको विभागो विज्ञेयः, कारणं न स्यात् । तदा ज्येष्ठमध्यमकनिष्ठानां विभागमनेकप्रकारं वक्ष्यति । ज्येष्ठग्रहणपक्षे चायमर्थवादो भवति ।। १०५ ।।

**ज्येष्ठेन जातमात्रेण पुत्री भवति मानवः ।।**
**पितॄणामनृणश्चैव स तस्मात्सर्वमर्हति ।। १०६ ।।**

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । पितॄणामनृणस्तेनैव तदृणापगमात् । अयं पूर्वस्यार्थवादः ।। १०६ ।।

(३) **कुल्लूकः** । उत्पन्नमात्रेण ज्येष्ठेन संस्काररहितेनापि मनुष्यः पुत्रवान्भवति । ततश्च 'नापुत्रस्य लोकोऽस्ती'ति श्रुतेः । पुण्यलोकाभावपरिहारो भवति । तथा 'प्रजया पितृभ्य' इति श्रुतेः । 'पुत्रेण जातमात्रेण पितॄणामनृणश्च सः' इति । अतो ज्येष्ठ एव सर्वधनमर्हति पूर्वस्य अनुजास्तेन साम्ना वर्तेरन् ।। १०६ ।।

(४) **राघवानन्दः** । ज्येष्ठस्य सर्वधनभुक्तौ हेतुमाह **ज्येष्ठेनेति** । अनृणः निस्तीर्णः । 'जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणवा जायत' इति श्रुतेः पितुर्ऋणवतः श्रवणात् ।। १०६ ।।

(५) **नन्दनः** । कनिष्ठेभ्यो ज्येष्ठस्य विशेषमाह **ज्येष्ठेनेति** ।। १०६ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । **ज्येष्ठेनेति** । स पिता तस्मात् पुत्रात् अनृणः भवति च ततः सर्वं अर्हति ।। १०६ ।।

(७) **मणिरामः** । तत्र हेतुमाह **ज्येष्ठेनेति** ।। १०६ ।।

**यस्मिन्नृणं संनयति येन चानन्त्यमश्नुते ॥**
**स एव धर्मजः पुत्रः कामजानितरान्विदुः ॥ १०७ ॥**

(१) **मेधातिथिः** । **इतरानित्यर्थवादोऽयम्** । यथाश्रुततात्पर्यग्रहणाद्धि कनीयसोऽमभागार्हतैव स्यात् । ततश्च वक्ष्यमाणविरोधः ॥ १०७ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । आनन्त्यममृतत्वं उत्पादितपुत्रस्यैव मोक्षाश्रमाधिकारात् । धर्मजो धर्मार्थमुत्पादितः । कामजान् एकेनैव धर्मस्य सिद्धेः ॥ १०७ ॥

(३) **कुल्लूकः** । यस्मिञ्जाते ऋणं शोधयति, येन जातेनामृतत्वं प्राप्नोति । तथा च श्रुतिः 'ऋणमस्मिन्त्समुन्नयत्यमृतत्वं च गच्छति । पिता पुत्रस्य जातस्य पश्येच्चेज्जीवतो मुख'मिति स एव पितुर्धर्मेण हेतुना जातः पुत्रो भवति, तेनैकेनैव ऋणापनयनाद्युपकारस्य कृतत्वात् । इतरांस्तु कामजान्मुनयो जानन्ति । ततश्च सर्वं धनं गृह्णीयादित्यस्यैवायमपि विशेषः ॥ १०७ ॥

(४) **राघवानन्दः** । तत्रैवार्थवादमाह **यस्मिन्निति** । यस्मिन् प्रथमजे संनयति स्वर्णं समर्पयति ध्यायति । तथा च श्रुतिः 'ऋणमस्मिन्त्संनयत्यमृतत्वं च गच्छति पिता पुत्रस्य जातस्य पश्येच्चेज्जीवतो मुख'मिति । धर्मजो धर्मार्थं जात इति ॥ १०७ ॥

(५) **नन्दनः** । क्वचित्कुले ज्येष्ठो गुणहीनः कनिष्ठो गुणवांश्च दृश्यते, तत्र किं प्रवर्तितव्यमित्यपेक्षायामाह **यस्मिन्नृणमिति** । ऋणं पितृभ्यः प्रदेयं पिण्डादिकं संनयति निक्षिपति येन यशस्विना संतानकरेणानन्त्यं मरणराहित्यमश्नुते स एव पुत्रो धर्मजः धर्मार्थं जातः ज्येष्ठ इत्यर्थः । इतरान्निर्गुणान् ॥ १०७ ॥

(६) **रामचन्द्रः** । यस्मिन्पुत्रे ऋणं त्रिविधं देवर्षिपित्र्यं संनयति समर्प्य नयति धर्मजः धर्मार्थं जातः ॥ १०७ ॥

(७) **मणिरामः** । हेत्वन्तरमाह **यस्मिन्निति** । यस्मिन् ज्येष्ठे जाते । ऋणं पितृणां संनयति शोधयति । आनंत्यं अमृतत्वं । तथा च यदर्थं पुत्र उत्पाद्यते सोऽर्थो ज्येष्ठेन सिध्यति त्वन्येषां संभोगप्रसंगेनोत्पन्नत्वान्न तेषां धनभागित्वमिति ज्ञेयं ॥ १०७ ॥

(९) **भारुचिः** । स शिष्टः स्यात् अविभागपक्षे ज्ञेयं ॥ १०७ ॥

**पितेव पालयेत्पुत्रान् ज्येष्ठो भ्रातॄन्यवीयसः ॥**
**पुत्रवच्चापि वर्तेरन् ज्येष्ठे भ्रातरि धर्मतः ॥१०८॥**

(१) **मेधातिथिः** । पुत्रवत्पालनीया न तु बाला इति धनादिना गर्हणीयाः । तैरप्ययं पितेति भावनीयम् । तदाह—**पुत्रवच्चापि वर्तेरन्निति** ॥ १०८ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । पालयेदन्नवस्त्रादिदानेन । धर्मतो धर्मापेक्षया ॥ १०८ ॥

(३) **कुल्लूकः** । ज्येष्ठो भ्राता । विभागाभावेऽनुजान्भ्रातॄन्भक्ताच्छादनादिभिः पितेव बिभृयात् । अनुजाश्च भ्रातरः पुत्रा इव ज्येष्ठे भ्रातरि धर्माय वर्तेरन् ॥ १०८ ॥

(४) **राघवानन्दः**। ज्येष्ठस्येतरेषु वृत्तिं सदृष्टान्तां शिक्षयति **पितेति**। पालयेत् धर्मतो ज्येष्ठो ज्येष्ठधर्मेण। कनिष्ठधर्मेण च ते ज्येष्ठे वर्तेरन्, यवीयांस इति शेषः ॥१०८॥

(५) **नन्दनः**। वर्तेरन् यवीयांसः॥ १०८॥

(६) **रामचन्द्रः**। यवीयसः कनिष्ठान्। ज्येष्ठे भ्रातरि कनिष्ठाः पुत्रवच्चापि वर्तेरन्॥ १०८॥

(७) **मणिरामः**। यवीयसः कनिष्ठान्। वर्तेरन् कनिष्ठाः॥ १०८॥

(९) **भारुचिः**। ज्येष्ठस्य कनीयस्सु वृत्तिरुच्यते॥ १०८॥

**ज्येष्ठः कुलं वर्धयति विनाशयति वा पुनः॥**
**ज्येष्ठः पूज्यतमो लोके ज्येष्ठः सद्भिरगर्हितः॥ १०९॥**

(१) **मेधातिथिः**। य एवंगुणो **ज्येष्ठः** स **वर्धयति कुलम्**। अयमेव निर्गुणस्तत्कुलं **विनाशयति**। शीलवति ज्येष्ठे कनीयांसोऽपि तथा वर्तन्ते। तेऽपि गुणहीनेन विवदन्ते॥ १०९॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **ज्येष्ठ इति**। तस्मिन् सम्यग्वृत्ताविंतरेषामन्यथात्वेऽपि कुलं वर्धत एवेत्यर्थः। पूज्यतमः कनिष्ठैः। सद्भिः शिष्टैः कनिष्ठैरगर्हितो न गर्हणीयः॥ १०९॥

(३) **कुल्लूकः**। अकृतविभागो ज्येष्ठो यदि धार्मिको भवति तदानुजानामपि तदनुयायित्वेन धार्मिकत्वाज्ज्येष्ठः कुलं वृद्धिं नयति। यद्यधार्मिको भवति तदाऽनुजानामपि तदनुयायित्वेन धार्मिकत्वात् ज्येष्ठः कुलं नाशयति। तथा गुणवाञ्ज्येष्ठो लोके पूज्यतमः साधुभिश्चागर्हितो भवति॥ १०९॥

(४) **राघवानन्दः**। अत्राप्यर्थवादमाह **ज्येष्ठ इति**। ज्येष्ठो हि धार्मिकतयाऽन्यानपि धर्मशिक्षया कुलं वर्धयति। एवमधार्मिकोऽपि नाशयत्यधर्मोपसेवनेन; 'यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जन' (भ०गी० ३।२१) इति स्मृतेः॥ १०९॥

(५) **नन्दनः**। ज्येष्ठ उक्तलक्षणः कुलं वर्धयतीतरो नाशयति, तस्माल्लोके पूज्यतमः सद्भिरगर्हितश्च तथाविधो ज्येष्ठो नान्यः॥ १०९॥

(७) **मणिरामः**। धर्मात्मा चेत्कुलं वर्धयति तद्रहितो नाशयति। गुणवान् चेत्पूज्यतमः, साधुश्चाऽगर्हित इत्यर्थः॥ १०९॥

**यो ज्येष्ठो ज्येष्ठवृत्तिः स्यान्मातेव स पितेव सः॥**
**अज्येष्ठवृत्तिर्यस्तु स्यात्स संपूज्यस्तु बन्धुवत्॥ ११०॥**

(१) **मेधातिथिः**। ज्येष्ठस्य वृत्तिः 'पुत्रे इव स्नेहः', पालनं, शरीरधनेषु तदीयेषु स्ववदनुपेक्षा, अकार्येभ्यो निवर्तनम्। यस्त्वन्यथा वर्तते तत्र बन्धुवत्प्रत्युत्थानाभिवादनैः मातुलपितृव्यवत्संपूजा कर्तव्या। अन्यथाकरणे विधेयतानिवृत्तिः॥ ११०॥

(७) **मणिरामः**। ज्येष्ठवृत्तिः कनिष्ठेषु पितृवद्वर्तेत। स कनिष्ठैः पितृमातृवत्पूज्यः। बंधुवत् मातुलादिवत् ॥ ११० ॥

**एवं सह वसेयुर्वा पृथग्वा धर्मकाम्यया ॥**
**पृथग्विवर्धते धर्मस्तस्माद्धर्म्या पृथक्क्रिया ॥ १११ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। स्वेच्छानियोज्यत्वाभावान्निरपेक्षस्तद्द्रव्यसाध्येषु ज्योतिष्टोमादिष्वसंभवात्तत्सिद्धयर्थोऽयं न्यायप्राप्तो विभाग उच्यते **पृथग्वा धर्मकाम्ययेति**—न पुनरविभागादधर्मो विभाग एवाग्निहोत्रादिवद्धर्मः। "ननु च धर्मानुष्ठानप्रतिबन्धहेतुत्वादधर्मतैवाविभागस्य"। नैष दोषः। अधिकृतस्याननुष्ठाने प्रत्यवायः। न चाविभक्तधनस्याधिकारोऽग्निमत्त्वाभावात्। विभागकाल एवाग्निपरिग्रहस्य विहितत्वात्। यस्तु जीवत्येव पितरि कृतविवाहस्तदैव च परिगृहीताग्निस्तस्याधिकृतत्वान्नैवाविभागः। सोऽपि यदि विच्युतः परिग्रहादन्यतो वा विहितानुष्ठानपर्याप्तधनस्तदा नैव सह वसन्प्रत्यवेयात्। न हि विभागाविभागयोर्धर्माधर्मत्वं स्वरूपेणास्तीत्युक्तम्। "ननु च 'भ्रातॄणामविभक्तानामेको धर्मः प्रवर्तत' इति वचनाद्दम्पत्योरिव सहानुष्ठाने प्राग्विभागादस्त्येव धर्मव्यक्तिः—साधारण्याद्द्रव्यस्य सर्वैः संभूय कर्तव्यमिति।" नैतदग्निहोत्रादौ। आहवनीयादिषु ह्यग्निहोत्रादयः। संस्कारनिमित्ताश्चाहवनीयादय आत्मनेपददर्शनादन्यतरस्य संबन्धितां न प्रतिपद्यन्ते। परकीये वाऽग्नौ जुह्वतः प्रतिषेधदर्शनमस्ति—'नान्यस्याग्निषु यजेतेति'। न स्मार्ते ह्यपि गृह्येऽग्नौ विधानम्। गृहशब्दस्य विशिष्टोपादानादग्निवचनत्वादेष एव न्यायः। अतिथ्यादिभोजनदाने महायज्ञमध्ये पाठात् "वैवाहिकेऽग्नौ कुर्वीत गृह्यं कर्म यथाविधि। पञ्चयज्ञविधानं च" इति गृह्यत एवाधिकारः। तेनैतद्वचनमेको धर्म इति श्राद्धपूर्तान्नादिमात्रं विज्ञेयम् ॥ १११ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। पृथग्वेति यदि धर्मोचिता भवन्ति। पृथग्विवर्धत इति भूयान्भवतीत्यर्थः। धर्म्या धर्मवती ॥ १११ ॥

(३) **कुल्लूकः**। एवमविभक्ता भ्रातरः सह संवसेयुः; यदि वा धर्मकामनया कृतविभागाः पृथग्वसेयुः; यस्मात्पृथगवस्थाने सति पृथक्पृथक् पञ्चमहायज्ञाद्यनुष्ठानधर्मरतेषां वर्धते तस्माद्विभागक्रिया धर्मार्था। तथा च **बृहस्पतिः** – 'एकपाकेन वसतां पितृदेवद्विजार्चनम्। एकं भवेद्विभक्तानां तदेव स्याद्गृहे गृहे' ॥ १११ ॥

(४) **राघवानन्दः**। एवं पितुरूर्ध्वं सहवसतिमुक्त्वा, सर्वेषां धार्मिकत्वे विभागमाह **एवमिति**। पृथक्क्रिया विभागक्रिया धर्म्या धर्मार्था, न स्वातन्त्र्यार्था। अत आह धर्मकाम्यया (इति ॥ 'एकपाकेन वसतां पितृदेवद्विजार्चनम्। एकं भवेद्विभक्तानां तदेव स्याद्गृहे गृहे' इति बृहस्पतिः) ॥ १११ ॥

(५) **नन्दनः**। वसेयुर्भ्रातरः ॥ १११ ॥

(७) **मणिरामः**। एवं अविभक्ताः धर्मकाम्यया कृतविभागाः पृथक् वसेयुः। पृथग्वासे हेतुमाह **पृथगिति**। पृथगवस्थाने सति पृथक् पृथक् पंचमहायज्ञाद्यनुष्ठानाद्धर्मवृद्धिर्भवतीत्यर्थः ॥ १११ ॥

(९) **भारुचिः**। तथा च सति अत्र कारणमिदमुच्यते। यदि ज्येष्ठो गुणवत्तया धर्माधिकारार्हो भवति इतरे चानधिकृताः असमर्थाश्च धर्मानुष्ठाने अतोऽयमविभागो द्रष्टव्यः। यदि त्वज्येष्ठवृत्तिर्ज्येष्ठः स्यात् गुणवानपि सन् गतोऽसमर्थेष्वपि धर्मानुष्ठाने कनीयः स्वयमविभागो न स्यात्। उक्तं हि—'यो ज्येष्ठो ज्येष्ठवृत्तिः स्यादि'(९।११०)ति। तथाऽज्येष्ठवृत्तिर्यस्तु स्यादिति च। एवं च सति धर्मानुष्ठानसमर्थेष्वधिकारार्हेषु कनीयस्सु दण्डापूपिकया प्रतिषिद्ध एवायमविभागो द्रष्टव्यः, सत्यपि ज्येष्ठस्य गुणवत्त्वे ज्येष्ठवृत्तित्वे च। तथा चोक्तं—'तस्माद्धर्म्या पृथक्क्रिये'ति। नच धर्म्ये विभागे सत्यविभागो युक्तः, कारणोपदेशात्। तथा च तदुक्तमेव। एतेन पितृपुत्रविभागो व्याख्यातः; तुल्यहेतुत्वात्। न चायं नास्तीति मन्तव्यः; ऊर्ध्वं पितुर्विभागापदेशात्। यस्माद्वक्ष्यति—'न तत्सुतैर्भजेत् सार्ध'मिति। ततो लिङ्गात् पितृपुत्रयोर्विभागो विज्ञेयः। अतश्च सर्वेष्वधिकारार्हेषु धर्मानुष्ठानसमर्थेषु च धर्म्या पृथक्क्रिया ।। १११ ।।

**ज्येष्ठस्य विंश उद्धारः सर्वद्रव्याच्च यद्वरम् ।।**
**ततोऽर्धं मध्यमस्य स्यात्तुरीयं तु यवीयसः ।। ११२ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। इयमुद्धारनियोगस्मृतिरतिक्रान्तकालविषया, न त्वद्यत्वेऽनुष्ठेया, 'नियतकालत्वात्स्मृतीनामिति' केचित्। अनुष्ठेयत्वव्यपदेशो दीर्घसत्रवज्ज्ञानादभ्युदयो यथा स्यादिति। न हि दीर्घसत्रमद्यत्वे केचिदाहरमाणा दृश्यन्ते। अधीयते तु तदुपदेशं ब्राह्मणाः। तथाच 'अन्ये कृतयुगे धर्मा' (१।८५) इत्युक्तम्। तेन देशनियमवत्कालनियमोऽपि धर्माणां द्रष्टव्यः। न ह्यपदिष्टो धर्मः सर्वत्र देशेऽनुष्ठीयते। तथा हि देशधर्मा नियतदेशव्यवस्थिता उच्यन्ते। अन्यथा सर्वानुष्ठाने न देशव्यपदेश्यता धर्माणाम्। तथा च पठति (९।६६) 'अयं द्विजैर्हि विद्वद्भिः' इत्यादि। तस्मादुद्धारनियोगगोवधस्मृतय उपदिष्टा नानुष्ठेयाः—तदेतदपेशलम्; न ह्येवंविधः कालनियमः क्वचिदपि श्रूयते; सायंप्रातःपर्वादिनियमादन्यत्र। यच्च 'अन्ये कृतयुगे धर्मा' इति तत्प्रथम एव व्याख्यातम्। न हीदं युगभेदेन धर्मव्यवस्थाहेतुः। देशनियमोऽपि प्राचीनप्रवणादिव्यतिरेकेण मध्यदेशपूर्वदेशकृतो नैवास्तीत्युक्तम्—(८।४१) 'जातिजानपदान् धर्मान्श्रेणिधर्मांश्च' इत्यत्र। दीर्घसत्रेष्वद्यत्वेऽप्यनुष्ठानसंभवः। संवत्सरशब्दस्त्वहःसु प्रथम एव दर्शितः। यत्तु नाद्यत्वे केचिदनुतिष्ठन्तो दृश्यन्त इति—उपदिष्टार्थस्य नित्यवदाम्नातस्यापि बहुभिः प्रकारैरनुष्ठानसाधनाशक्त्या फलानिच्छया वा नास्तिकतया वा। यत्तु 'वेने राज्यं प्रशासति' (९।६६) तदाप्रभृतिकं महापौर्वकालिकमनुष्ठानं दर्शयतीत्यर्थवादोऽसौ न कालोपदेशः।

**ज्येष्ठस्य विंशः**। ज्येष्ठस्य सर्वद्रव्याद् विंशतितमो भाग उद्धृत्य दातव्य एव। **मध्यमस्य तदर्धं** चत्वारिंशत्तमो भागः। एवं कनिष्ठस्य तुरीयो ज्येष्ठापेक्षयाऽशीतितमो भागः। एवमुद्धृते परिशिष्टं त्रिधा कर्तव्यम्। तत्र सर्वेभ्यो द्रव्येभ्यो यद्वरं श्रेष्ठं तज्ज्येष्ठस्यैव। अथवा "द्रव्येष्वपि परं वरम्" इति पाठः। उत्तमाधममध्यमानि यानि द्रव्यादीनि सन्ति। ततस्तस्माद्यदेकं श्रेष्ठं तत्तस्यैव तदुक्तं भवति। यत्र गावोऽश्वा वा सन्ति एकः श्रेष्ठाज्ज्येष्ठस्य

दातव्यो न द्रव्यान्तरेण मूल्येन वा स्वीकर्तव्यः। त्रयाणां सर्वेषां गुणिनामयमुद्धारविधिः। गुणवतामुद्धारदर्शनात् ॥ ११२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। ज्येष्ठस्येति मध्यकाद्धनाद्विंशतितमं भागं कृत्वोद्धृत्योद्धारावशिष्टमध्योत्तमं किंचिदेव द्रव्यहितं ज्येष्ठ याद्यमुद्धारमन्यौ तु द्वौ तदन्तरजाभ्यां क्रमाद्दत्वा शेषं समं कृत्वा विभाज्यमित्यर्थः। एतत्समगुणत्वे सर्वेषां भ्रातॄणां च त्रित्वे ॥ ११२ ॥

(३) **कुल्लूकः**। उद्धियत इत्युद्धारः, ज्येष्ठस्याविभक्तसाधारणधनादुद्धृत्य विंशतितमो भागः सर्वद्रव्येभ्यश्च यच्छ्रेष्ठं तत् दातव्यम्। मध्यमस्य चत्वारिंशत्तमो भागो देयः। कनिष्ठस्य पुनरशीतितमो भागो दातव्यः, अवशिष्टं धनं समं कृत्वा विभजनीयम् ॥ ११२ ॥

(४) **राघवानन्दः**। सति ज्येष्ठे विभागप्रकारमावेदयति **ज्येष्ठस्येति**। विंश उद्धारः उद्धृत्यादौ दीयते ज्येष्ठं प्रत्युद्धारः अविभक्तधनेभ्यो विंशो भाग एवमुत्तरत्र सर्वद्रव्येभ्यः श्रेष्ठं द्रव्यं चोद्धृत्य मध्यमं प्रति चत्वारिंशद्भागं चोद्धृत्य कनिष्ठं प्रत्यशीतिभागमुद्धृत्य शेषं समं विभजेयुः। विभज्यमाने द्रव्ये योग्ये ज्येष्ठः गृह्णीयादिति भावः ॥ ११२ ॥

(५) **नन्दनः**। विभागपक्षे कर्तव्यमाह **ज्येष्ठस्य विंश** इति। सर्वद्रव्याद्विंशो विंशतिभाग उद्धारो ज्येष्ठस्य स्यात्, सर्वद्रव्याच्च यद्वरं तस्योद्धारः स्यात्। मध्यमस्य ततोऽर्धः परिशिष्टेभ्य एकोनविंशतिभागेभ्यो ज्येष्ठोद्धारपरिमाणार्धपरिमाण उद्धारः स्यात्। यवीयसस्ततस्तुरीयं परिशिष्टेभ्योऽर्धाष्टादशभागेभ्यो ज्येष्ठोद्धारपरिमाणस्तुरीयपरिमाण उद्धारः स्यात् ॥ ११२ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। ज्येष्ठस्य विंश उद्धारः। च पुनः सर्वद्रव्याच्च यत्परं श्रेष्ठं तज्ज्येष्ठेनैव ग्राह्यम्। यवीयसः कनिष्ठस्य तुरीयचतुर्थांशम् ॥ ११२ ॥

(७) **मणिरामः**। उद्धियत इत्युद्धारः। तथा च विभागात्पूर्वं सर्वद्रव्यस्य विंशांशो ज्येष्ठाय, चत्वारिंशत्तमोंऽशो मध्यमाय, अशीतितमो भागः कनिष्ठाय दत्त्वा पश्चात्समविभागः कर्तव्य इत्यर्थः ॥ ११२ ॥

(९) **भारुचिः**। अत इदमुच्यते—ज्येष्ठस्य विंशतिभागः सर्वद्रव्येषु यद्वरम्। मध्यमस्य ततोऽर्धं चत्वारिंशद्भागः। वरद्रव्यानन्तरं चोद्धारो मध्यमस्यैव चतुर्थस्त्वशीतिभागो यवीयसः सर्वद्रव्येभ्यश्च हीनः। उद्धारद्रव्येभ्यश्च वरम्। वर इत्येतस्मिन् पाठे मध्यमकनिष्ठयोस्तदनुरूपैवांशकल्पना विज्ञेया। एवं च मध्यगा उद्धृत्य यदन्यच्छिष्यते तस्य धर्मो विभागः कार्यः। त्रयाणां चायं समगुणानां विभागविधिः। त्रयाणामुद्धारदर्शनादयमपरो विभागः ॥ ११२ ॥

**ज्येष्ठश्चैव कनिष्ठश्च संहरेतां यथोदितम् ॥**
**येऽन्ये ज्येष्ठकनिष्ठाभ्यां तेषां स्यान्मध्यमं धनम् ॥ ११३ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। त्रिभ्योऽधिकपुत्रस्य ज्येष्ठकनिष्ठयोर्गुणवतोर्यथोक्तमुद्धृत्य बहूनामपि मध्यमानां गुणवतो मध्यमस्य यश्चत्वारिंशत्तमो भाग उक्तोऽनन्तरश्लोके बहुभिरपि

मध्यमैः स विभजनीयः। समगुणानां तु मध्यमानां सर्वेषामेकैकस्य पूर्ववचनाच्चत्वारिंशत्तमो भाग उक्त उद्धार्यः। **तेषां स्यान्मध्यमं धनमिति**। उभयथा वचनं व्यज्यते। मध्यमधनं यदनन्तरश्लोके निर्दिष्टं तत्सर्वेषां समवायेन दातव्यम्। यदि वा प्रत्येकमेव ज्येष्ठकनिष्ठतामपेक्ष्य। तत्र प्रथमपक्षो निर्गुणेषु युक्तः। ते न बहुधनार्हाः। द्वितीयो गुणवत्स्वेव ॥ ११३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। यत्रानेके मध्यमा भ्रातरस्तत्राह **ज्येष्ठ** इति। कनिष्ठः सर्वकनिष्ठः संहरेतां गृह्णीयाताम्। प्रत्येकं मध्यमस्य यदुक्तमुद्धारधनं तन्मध्यभ्रातॄणां प्रत्येकमुद्धृत्योद्धृत्य देयमनेकत्वेऽपीत्यर्थः ॥ ११३ ॥

(३) **कुल्लूकः**। ज्येष्ठकनिष्ठौ पूर्वश्लोके यथोक्तमुद्धारं गृह्णीयातां, ज्येष्ठकनिष्ठव्यतिरिक्ता ये मध्यमास्तेषामेवावान्तरज्येष्ठकनिष्ठतामनपेक्ष्य मध्यमस्योक्तचत्वारिंशद्भागः प्रत्येकं दातव्यः। मध्यमानामवान्तरज्येष्ठकनिष्ठदेयभागे वैषम्यवारणार्थमिदम् ॥ ११३ ॥

(४) **राघवानन्दः**। पुत्राणां त्रित्वे विभागतमं भागं चतुष्टयादौ तद्विशेषमाह **ज्येष्ठश्चेति**। यथोदितं विंशत्यशीतिभागौ संहरेतां गृह्णीयाताम्। **मध्यमं धनमिति**। स्वरसात्तयोर्मध्यवर्तिनां समतया देयमिति। तेषामवान्तरज्येष्ठकनिष्ठता नास्तीति भावः ॥ ११३ ॥

(५) **नन्दनः**। मध्यमानां बहुत्वे कथमुद्धार इत्याह **ज्येष्ठश्चैवेति**। संहरेतां लभेयातां तेषां मध्यमानां मध्यमं ज्येष्ठकनिष्ठयोर्मध्यम्। एतदुक्तं भवति—यथैकस्य मध्यमस्योद्धारपरिमाणमुक्तं तथा बहूनामपि प्रत्येकं स्यादिति ॥ ११३ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। अन्ये मध्यमाः, तेषां मध्यमं धनम् ॥ ११३ ॥

(७) **मणिरामः**। बहवश्चेत्पुत्रास्तदा किं कर्तव्यमित्याह **ज्येष्ठश्चेति**। यथोदितविंशांशं ज्येष्ठाय चत्वारिंशत्तमं भागं कनिष्ठायेति पूर्वोक्तम्, अन्ये ज्येष्ठकनिष्ठयोर्मध्यवर्तिनः सर्वे तेषां मध्यमं अशीतितमं भागैः पृथक् पृथक् दत्त्वा पश्चात्समविभाग इत्यर्थः ॥ ११३ ॥

(९) **भारुचिः**। बहुपुत्रस्य ज्येष्ठकनिष्ठयोर्गुणवतोर्यथोक्तमुद्धृत्य निर्गुणानां बहूनामपि मध्यमानां गुणवतो मध्यमस्य यश्चत्वारिंशभाग उक्तोऽनन्तरश्लोके स बहुभिरपि च मध्यमैर्विभजनीयः। समगुणानां तु मध्यमानां सर्वेषामेकैकस्य पूर्ववच्चत्वारिंशद्भाग उद्धार्यः ॥ ११३ ॥

**सर्वेषां धनजातानामाददीताग्र्यमग्रजः ॥**
**यच्च सातिशयं किंचिद्दशतश्चाप्नुयाद्वरम् ॥ ११४ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। आद्येनार्धश्लोकेन "सर्वद्रव्याच्च यद्वरम्" इत्युक्तमनुवदति। **जातशब्दो** जातिपर्यायः प्रकारवचनो वा। **अग्रजो** ज्येष्ठः। **अग्र्यं** श्रेष्ठम्। **यच्च सातिशयमेकमपि** वस्त्रमलङ्कारं वा। दशतो दशावयवाद्वा वरमेकमाददीत। यदि दश गावोऽश्वा वा सन्ति तदा एकं श्रेष्ठमाददीत। अर्वाग्दशावयवाद्वा न लभते। वर्गे दशशब्दः। अन्ये तु स्वार्थे तसिं चाचक्षते। "दशैव दशतो वरान्" इति बहुवचनं पठन्ति। दश वरानाददीत। अन्यस्तद्विशिष्टान्स्मरति "दशतः पशूनामेकशफद्विपदानाम्" इति ॥ ११४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। ज्येष्ठस्यातिशयितगुणत्वमाह **सर्वेषामिति**। विभक्तेषु भागेषु मध्ये यः श्रेष्ठतमः सर्वेषामग्र्यो (?) भिरुचितो भागस्तं ज्येष्ठो गृह्णीयात्। तथा सर्वेषु विभागेषु यत्किंचिदेकं सातिशयं तद्गृह्णीयात्। तथा दशसु पशुषु विभजनीयेषु मध्ये य एक उत्कृष्टः पशुस्वभागाद्बहिर्ग्राह्यः, 'दशतः पशूना'मिति **गौतमस्मृतेः**। एतच्चातिबहुगुणज्येष्ठातिहीनगुणकनिष्ठविषयम्॥ ११४॥

(३) **कुल्लूकः**। सर्वेषां धनप्रकाराणां मध्याद्यच्छ्रेष्ठं धनं ज्येष्ठस्तद्धनं गृह्णीयात् 'सर्वद्रव्याच्च यद्वरम्'(९।११२)इत्युक्तमनूदितसमुच्चयबोधनाय, यच्चैकमपि प्रकृष्टं द्रव्यं विद्यते तदपि ज्येष्ठ एव गृह्णीयात्तथा 'दशतः पशूना'मिति (गौ. स्मृ.२९।३) **गौतमस्मरणात्**। दशभ्यो गवादिपशुभ्य एकैकं श्रेष्ठं ज्येष्ठो लभते। इदं च यदि ज्येष्ठो गुणवानितरे निर्गुणास्तद्विषयम्॥ ११४॥

(४) **राघवानन्दः**। यद्वरमित्युक्तं तद्गुणवत् ज्येष्ठविषये विशेषमाह **सर्वेषामिति**। सर्वेषां विभाज्यानाम्। दशतः दशभ्यो गवादिपशुभ्य इति 'दशतः पशूना'मिति **गौतमोक्तेः** संभवद्विषयम्॥ ११४॥

(५) **नन्दनः**। तुल्यगुणभ्रातृविषयोऽयमुद्धार उक्तः। अथ गुणविशिष्टभ्रातृविषय उच्यते **सर्वेषामिति**। सर्वेषां धनजातानां गोभूहिरण्यादीनामग्र्यमग्रजः आददीत सातिशयमुत्कर्षयुक्तं यत्किञ्चिद्विभागानर्हं देवतादीनां प्रतिमादि तच्चाददीत। ततो दशसु वरञ्चाप्नुयात् सर्वेषु दशधा कृतेष्वेकं भागमात्मनोंऽशत्वेन प्राप्नुयादित्यर्थः॥ ११४॥

(६) **रामचन्द्रः**। सर्वेषां धनजातानां भागानां अग्र्यं श्रेष्ठं अग्रजः दशतः दशपशुभ्यः वरम्॥ ११४॥

(७) **मणिरामः**। अग्रजः ज्येष्ठः। अग्र्यं सर्वधनमध्ये यदुत्तमं। आददीत गृह्णीयात्। यच्च सातिशयं किंचित् यदेकमपि प्रकृष्टं द्रव्यं विद्यते तदपि ज्येष्ठ एव गृह्णीयात्, तथा 'दशतः पशूना'मिति **गौतमस्मरणात्** दशतः दशभ्यः गवादिपशुभ्यः यद्वरं एकं श्रेष्ठं तदपि ज्येष्ठो गृह्णीयात्। इदं यदा ज्येष्ठो गुणवान्निर्गुणा इतरे तद्विषयं बोद्धव्यम्॥ ११४॥

(९) **भारुचिः**। धनजाताद्विभागाद्यच्छ्रेष्ठं, यच्चैकमपि सातिशयं। सर्वस्माच्च धनजाताद्दशभागः, एतज्ज्येष्ठस्योद्धृत्य पूर्ववदन्यात् सप्तधा विभजेरन्। यत्रैव च ज्येष्ठो महागुणः, इतरे च गुणहीनाः, तत्रायं विधिरसामर्थ्याद्विज्ञेयः। तथा चोत्तरश्लोके चैनमर्थं स्फुटीकरिष्यत्येव। अपरे तु 'दशतश्चाप्नुयाद्वरा'नितिद्वितीयाबहुवचनं पठन्ति, गा अश्वान् वा। तथा चैतादृशपशवः एव स्मृत्यन्तरे विशेषिताः। दशतः पशूनां नैकशः द्विपदानामिति॥ ११४॥

**उद्धारो न दशस्वस्ति संपन्नानां स्वकर्मसु॥**
**यत्किंचिदेव देयं तु ज्यायसे मानवर्धनम्॥ ११५॥**

(१) **मेधातिथिः**। **दशसु** पशुषु यः पूर्वत्रोद्धार उक्तः, स नास्ति। ये भ्रातरः **स्वकर्मसु** श्रुताध्ययनादिषु **संपन्ना** विशेषवंतो दशस्विति चोपलक्षणं व्याख्यानयन्ति। दशसु यत्र श्लोक

उद्धार उक्तः स सर्व एव नास्ति, कर्मसंबन्धात्। किंतु तैरपि यत्किंचिदेवाधिकमुपायनविधिः **मानवर्धनं** पूजाकरं ज्येष्ठाय देयम् ।। ११५ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अल्पगुणत्वे ज्येष्ठस्य कनिष्ठानां च स्वस्वाचारादिकर्मसंपत्त्या समगुणत्वे आह **उद्धार इति**। पूर्वश्लोकोक्तं दशवरोद्धारसहितमुद्धारसहितमुद्धारत्रयं दशस्वित्यनेनोपलक्षयति। स्वकर्मसंपन्नानां मध्यमानां दायविभागे यत्किंचिद्देयं किंचिदधिकं वस्त्वाकृष्य देयं संमानायेत्यर्थः ।। ११५ ।।

(३) **कुल्लूकः**। सर्वेषां समगुणत्वे तु 'दशतश्चाप्नुयाद्वर' (९।११४) मिति योऽयमुद्धार उक्तः सोऽयमध्ययनादिकर्मसमृद्धानां भ्रातृणां ज्येष्ठस्य नास्ति, तत्रापि यत्किंचिदस्य देयमिति द्रव्यं पूजावृद्धिकरं ज्येष्ठाय देयं। एवं च समगुणेषूद्धारप्रतिषेधदर्शनात्पूर्वत्र गुणोत्कर्षाविशेषापेक्षयोद्धारवैषम्यं बोद्धव्यम् ।। ११५ ।।

(४) **राघवानन्दः**। सर्वेषां गुणवत्त्वे तु नाग्र्यप्राप्तिरग्रजस्येत्याह **उद्धार इति**। दशसु दशभ्यो य उद्धार उक्तः, स नास्ति। स्वकर्मसु वेदाध्ययनादिषु। ज्येष्ठस्य संमानार्थं किंचिद्देयमित्याह **यदिति**। मानवर्धनं पूजार्थम् ।। ११५ ।।

(५) **नन्दनः**। उद्धारापवादमाह **उद्धारो न दशस्वस्तीति**। स्वकर्मसु संपन्नानां दायविभागं ज्येष्ठस्य दशतश्चाप्नुयात्। मानवर्धनं सत्कारद्योतनम् ।। ११५ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। उद्धारो विभागः सातिशयितवस्तूनां उपलक्षणं, संपन्नानां दशसु उद्धारो नास्ति। ज्यायसे अतिगुणज्येष्ठे भ्रातरि मानवर्धनं मानस्य वर्धनम् ।। ११५ ।।

(७) **मणिरामः**। सर्वेषां समगुणत्वे त्वाह **उद्धार इति**। स्वकर्मसु अध्ययनादिकर्मसु संपन्नानां युक्तानां ।। ११५–११६ ।।

(९) **भारुचिः**। पूर्वश्लोके य उद्धारो ज्येष्ठस्योक्तः स निवर्त्यते। उद्धारो दशस्वपि पशुषु नास्ति, ज्येष्ठस्य प्रागेवान्यत्र यथोक्त.. ... निमित्तेनायं ज्येष्ठांशापवादस्तं दर्शयति–सम्पन्नानां स्वकर्मसु तद्भ्रातृणाम्। एवं चैषामध्ययनविज्ञाने कर्मसम्पद्वचनादर्थगृहीते एतदपि .....षु। 'यत्किञ्चिदेव देयन्तु ज्यायसे मानवर्धनम्।' नोद्धारः पूर्वः। तथा च समगुणेषु भ्रातृष्वयं विभागो विज्ञेयः ।। ११५ ।।

**एवं समुद्धृतोद्धारे समानंशान्प्रकल्पयेत् ।।**
**उद्धारेऽनुद्धृते त्वेषामियं स्यादंशकल्पना ।। ११६ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **समुद्धृते** पृथक्कृत उद्धारेऽधिके भागेऽवशिष्टे धने **समानंशान् प्रकल्पयेत्**। **अनुद्धृते** वक्ष्यमाणा भागकल्पना ।। ११६ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। समानंशानुद्धारशेषधने। उद्धारेऽनुद्धृते कथंचित् पित्रादेरनिच्छया अनपेक्षया वक्ष्यमाणा ।। ११६ ।।

(३) **कुल्लूकः**। एवमुक्तप्रकारेण समुद्धृतविंशद्भागाधिके धने समान्भागान्भ्रातॄणां कल्पयेत् विंशतितमभागादौ पुनरनुद्धृत इयं वक्ष्यमाणभागकल्पना भवेत् ॥ ११६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। उद्धारमुपसंहरन्कृतोद्धारे व्यवस्थितिं जानीते **एवमिति**। समुद्धृतोद्धारे उद्धृतावशिष्टे धने। उद्धारव्यवस्थितिरुक्ताऽनुद्धृते इयं वक्ष्यमाणा ॥ ११६ ॥

(५) **नन्दनः**। समुद्धृतोद्धारे खंडविभागमाह **एवं समुद्धृतोद्धार** इति। एवं समुद्धृतोद्धारे द्रव्ये सति परिशिष्टं समानंशान्प्रकल्पयेत्। एषां भ्रातॄणामियं वक्ष्यमाणा 'उद्धारेऽनुद्धृत' इति वचनादुद्धारस्यानित्यता सूचिता ॥ ११६ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। 'उद्धारेऽनुद्धृते तेषां' इयं वक्ष्यमाणलक्षणा अंशकल्पना स्यात् ॥ ११६ ॥

(९) **भारुचिः**। उद्धारग्रहणपक्षे चेदमुच्यते **एवमिति**। एवं यथोक्तं न्यायविरोधेनोद्धृत्य शिष्टस्य समो विभागः ॥ ११६ ॥

**एकाधिकं हरेज्ज्येष्ठः पुत्रोऽध्यर्धं ततोऽनुजः ॥**
**अंशमंशं यवीयांस इति धर्मो व्यवस्थितः ॥ ११७ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। एकेनांशेनाधिकं स्वांशं हरेत्स्वीकुर्यात्, द्वावंशौ प्रतिपद्येतेत्यर्थः। **ततोऽनुजस्तदनन्तरमध्यर्धमर्धद्वितीयम्**। **यवीयांसस्तस्मादवर्गजाताः** सर्वे सममंशं नाधिकं किंचिन्नाल्पमित्यर्थः ॥ ११७ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। एकाधिकं, द्वौ भागावित्यर्थः। ततोऽनन्तरः कनीयानध्यर्धं सार्धभागम्। इतरे समांशा इति गुणसाम्ये शेषाणाम्। गुणाधिक्ये त्वेतदपेक्षयोन्नेयम् ॥११७॥

(३) **कुल्लूकः**। एकाधिकमंशं द्वावंशाविति यावज्ज्येष्ठपुत्रो गृह्णीयात् अधिकमर्धं यत्रांशे सार्धमंशं ज्येष्ठादनन्तरजातो गृह्णीयात्। कनिष्ठाः पुनरेकैकमंशं गृह्णीयुरिति व्यवस्थितो धर्मः। इदन्तु ज्येष्ठतदनुजयोर्विद्यादिगुणवत्त्वापेक्षया, कनिष्ठानां च निर्गुणत्वे बोद्धव्यं। ज्येष्ठतदनुजयोरधिकदानदर्शनात् ॥ ११७ ॥

(४) **राघवानन्दः**। तमाह **एकेति**। एकाधिकं अंशद्वयं अध्यर्धं सार्धैकमंशं ज्येष्ठतदनुजयोर्विद्यादिभिर्ज्येष्ठत्वे कनीयसां विगुणत्वे ज्ञेयं, तुल्यत्वे ततोऽनुजः ज्येष्ठादव्यवहितः ताभ्यामन्ये यावन्तः शेषाः पुत्रास्तावन्तः समभागाः स्युरिति ॥ ११७ ॥

(५) **नन्दनः**। एकाधिकं एकांशाधिकम्, अंशद्वयमिति यावत्। ततोऽनुजः अध्यर्धमंशं अंशमंशमेकैकमंशं यवीयांसो हरेयुः, गुणवत्तरज्येष्ठविषयमेतत् ॥ ११७ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। एकाधिकं द्वावंशौ, ततोऽनुजः अर्धम्। यवीयांसः अंशमंशम् ॥११७॥

(७) **मणिरामः**। एकाधिकं द्वावंशौ, ज्येष्ठो गृह्णीयादित्यर्थः, अध्यर्धं अधिकमर्धं, सार्धमिति यावत्, यवीयांसकनिष्ठाः। एकांशं एकैकमंशं गृह्णीयुः इदमपि ज्येष्ठतदनुजयोर्गुणाधिक्ये कनिष्ठानां च निर्गुणत्वे बोद्धव्यम् ॥ ११७ ॥

(९) **भारुचिः**। गुणाधिकं ज्येष्ठः ईषदपकृष्टगुणे च तदनन्तरजे तदवरज्येष्ठे च ताभ्यां निकृष्टगुणेषु समेषु वाऽयं विभागः सामर्थ्याद्विज्ञायते–'समेत्य भ्रातरः सहे'ति वचनात् प्रतिषिद्धं भगिनीभ्यः पित्र्यधनांशदानमिष्यते च, तासामनूढतया निमित्तेन तत्प्राप्तिः ॥ ११७ ॥

**स्वेभ्योंऽशेभ्यस्तु कन्याभ्यः प्रदद्युर्भ्रातरः पृथक् ॥**
**स्वात्स्वादंशाच्चतुर्भागं पतिताः स्युरदित्सवः ॥११८॥**

(१) **मेधातिथिः**। 'कन्या'शब्दः प्रायोऽनूढासु प्रयुज्यते। 'कनीनपुत्रः'। स्मृत्यन्तरे च 'उपात्ताना'मिति पठ्यते। अतोऽनूढायामयं भाग उच्यते।

**स्वाभ्यः** स्वजात्यपेक्षया **स्वाभ्यो भ्रातरः कन्याभ्यश्चतुर्भागमंशं दद्युः स्वादंशात्**। यत्र बहव्यः कन्याः सन्ति तत्र समानजातीयभ्रात्रपेक्षया चतुर्थांशकल्पना कर्तव्या। तथा चायमर्थः––त्रीनंशान्पुत्र आददीत, चतुर्थं कन्येति।

यदपि कैश्चिदुक्तं–"महानुपकारः पितृकरणं कन्यानामदत्तानां, येन जीवति पितरि तदिच्छयाऽमूल्येनापि धनेन संस्क्रियन्ते मृते त्वंशहरा" इति तत्पुत्रेऽपि तुल्यम्। वाचनिके चार्थे केयं नोदना? अथाभिप्रायः "समाचार उद्वाहमात्रप्रयोजनं दानम्"इत्याचारो दुर्बलः स्मृतेरिति। न चैकान्तिकः। अनैकान्तिकत्वे च स्मृतितोऽयं नियमो युक्तः।

यदपीदं केनचिदुक्तम् "उद्वाहमात्रप्रयोजनं देयं, न चतुर्थो भागो यथाश्रुति"मिति। स इदं वाच्यो नोद्वाहेऽपरिमितधनदानमस्ति। तस्य द्वादशशतं दक्षिणेतिवत् (केवलमाच्छाद्यालंकृतां विवाहयेत्। सौदायिकं वाऽस्या दद्यादिति श्रूयते। अलङ्कारस्तु सुवर्णमणिमुक्ताप्रवालादिरनेकधा भिन्न इति। तत्र न ज्ञायते कियद्दातव्यं धनं, कीदृशो वाऽलङ्कार इत्यतश्च परिमाणार्थमेवेदं युक्तं **स्वात्स्वादंशाच्चतुर्भागमिति**। न चास्मिन्नर्थे शास्त्रविरोधो युक्तिविरोधो वा।

स्मृत्यन्तराण्येवमेव पक्षमुपोद्बलयन्ति। "असंस्कृतास्तु संस्कार्या भ्रातृभिः पूर्वसंस्कृतैः। भगिन्यश्च निजादंशाद्दत्वांशं तु तुरीयकम्"। इति (याज्ञ. व्यव. ८।१२४)। तथा "आ संस्काराद्धरेद्भागं परतो बिभृयात्पतिः" इति।

अस्यायमर्थः–यत्र स्वल्पं धनमस्ति भ्रातुर्भगिन्याश्च न चतुर्भागे कन्याया भरणं भवति। तत्र समभागं कन्या हरेत् आ संस्कारात्। परतस्तु स्मृत्यन्तराच्चतुर्भागं गृह्णीयात्स्वल्पमपि। कथं तर्हि भरणमात्रं कुर्यात्? अत उक्तं–"परतो बिभृयात्पतिः" इति।

**भ्रातृग्रहणं** सोदर्यार्थं व्याचक्षते। कोऽभिप्रायः? भ्रातृशब्दो निरुपपदसोदर्य एव मुख्यया वृत्त्या वर्तते। **पृथक्**वचनं च लिङ्गम्।

यस्यास्तु हि सोदर्यो नास्ति तस्या अयं दायः सौदायिकस्य प्राप्नोति। "वैमात्रेयो दास्यतीति" चेन्नासति वचनान्तरे ददात्ययम्। भ्रातृशब्दा एकात्ममातृकाश्च गृह्यन्ते। पैतृष्वस्रेयादिषु तूपचाराद्वर्तत इति युक्तम्। एवमेकशब्दस्यानेकार्थत्वं नाभ्युपगतं भवति।

स्मृत्यन्तरसमाचारश्चेति श्रेयान्। तत्र हि पठ्यते (यच्छिष्टं पितृदायेभ्यः प्रदानिकम्") इति। नात्र भगिनीशब्दो भ्रातृशब्दो वा श्रूयते यत इयमाशङ्का स्यात्।

यत्तु **पृथगिति** तदेकैकस्यैव समूहः भागः सर्वाभ्य इत्येवमपि युज्यते।

इदमप्युच्यते—अददतां प्रत्यवायो न तु हठाद्ग्राप्यन्ते। यत उच्यते **पतिताः स्युरदित्सव इति**। यो हि यत्र यावत्यंशे स्वामी स 'हरेदि'त्युच्यते। न पुनः 'अनेनास्मै दातव्यमिति'। यथा नोच्यते भ्राता भ्रात्रे दद्यादिति। यच्चोच्यते तत् पुनरस्वामिभ्यः॥ ११८॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। कन्याभ्योऽपुत्रीभ्यः। ब्राह्मणीपुत्रास्तत्कन्यायै क्षत्रियापुत्रास्तत्कन्याया इति क्रमेण स्वस्वांशचतुर्थभागं दत्वा भागत्रयं गृह्णीयुः। अत्र च कन्याबहुत्वेऽपि तदेव विभजनीयम्। बहुत्वे तु भ्रातृणां कन्याया एवैकत्वे एकस्य भ्रातुर्भागाच्चतुर्थो भागो यावांस्तावद्धनं स्वस्वांशेभ्य आकृष्य देयम्॥ ११८॥

(३) **कुल्लूकः**। ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्राश्चत्वारो भ्रातरः स्वजात्यपेक्षया **स्वेभ्यः** 'चतुरोंऽशान्हरेद्विप्र' (९।१५३) इत्यादिना वक्ष्यमाणेभ्यो भागेभ्य आत्मीयादात्मीयाद्भागाच्चतुर्थभागं पृथक् कन्याभ्योऽनूढाभ्यो भगिनीभ्यो या यस्य सोदर्या भगिनी स तस्या एव संस्कारार्थमिति एवं दद्युः। सोदर्याभावे विमातृजैरुत्कृष्टैरपकृष्टैरपि संस्कार्यैव। तथा च **याज्ञवल्क्यः** (व्यव. ८।१२४)'असंस्कृतास्तु संस्कार्या भ्रातृभिः पूर्वसंस्कृतैः। भगिन्यश्च निजादंशाद्दत्वांशं तु तुरीयकम्'। यदि भगिनीसंस्कारार्थं चतुर्भागं दातुं नेच्छंति तदा पतिता भवेयुः। एतेनैकजातीयवैमात्रेयबहुपुत्रभगिनीसद्भावेऽपि सोदर्यभगिनीभ्यश्चतुर्थभागदानमवगन्तव्यम्॥ ११८॥

(४) **राघवानन्दः**। दुहितृसत्त्वे तु व्यवस्थामाह **स्वेभ्य इति**। स्वांशात्तुरीयो भागः स्वजातिस्वभगिनीनां संस्कारार्थं देयः। तदुक्तं **याज्ञवल्क्येन** 'असंस्कृताश्च संस्कार्या भ्रातृभिः पूर्वसंस्कृतैः। भगिन्यश्च निजादंशाद्दत्वांशं तु तुरीयकम्॥' त्रिधा विभक्ता ये चतुर्भागास्तेषामेकं भ्रातरः पृथक्पृथग्, भ्रातर इत्यर्थः। इदं त्वनेकमातृकाणां वक्ष्यमाणानाम्। तददाने दण्डमाह **पतिता इति**॥ ११८॥

(५) **नन्दनः**। विभक्ता भ्रातरः कन्याभ्यो वृत्ताभ्यो भगिनीभ्यः स्वेभ्योंऽशेभ्यः पृथक् प्रदद्युः। कियता परिमाणेन, चतुर्भागं कुत एतत्स्यात्? स्वादंशाच्चतुर्भागनियमात् 'अदित्सवः पतिताः स्यु'रिति प्रत्यवायदर्शनाच्च॥ ११८॥

(६) **रामचन्द्रः**। कन्यां प्रत्याह भ्रातरः स्वेभ्यः स्वेभ्योंऽशेभ्यः पृथक् पृथक्। कन्याभ्यः चतुर्भागं प्रदद्युः। पतिता भ्रातरः अदित्सवः अभागार्हाः॥ ११८॥

(७) **मणिरामः**। प्रदित्सवो विवाहार्थं चतुर्थभागं दातुं चेत् न इच्छंति तदा पतिता भवेयुः॥ ११८॥

(९) **भारुचिः**। यत इदं तदपवादार्थमारभ्यते—अनूढानां भगिनीनां नियमेन दानमिदमुच्यते। सान्तानिकादिदानात् 'पतिताः स्युरदित्सव' इति वचनात्। एतच्च स्वांशतो न समुदायतः उद्वाहमात्रप्रयोजनं देयम्। स्वधर्मानुरोधेन न चतुर्भागो यथाश्रुतः। एवं हि बहु-

भ्रातृकाणामल्पत्वाच्च कन्यानां धनं बहुतरमापद्येत। द्व्येकयोश्च भ्रात्रोर्बह्वीनां भगिनीनां दाने निर्धनत्वं प्रसज्येत। न चैतदिदं 'धर्म्या पृथक्क्रिये'ति वचनात्। अथवा 'प्रदद्युर्भ्रातरः पृथ'गित्यत्र श्लोकपादे पृथग्वचनाद् भिन्नमातृका एवैते सोदर्याभ्यो भगिनीभ्यः पूर्ववद्दद्युरिति ॥ ११८ ॥

**अजाविकं सैकशफं न जातु विषमं भजेत् ॥**
**अजाविकं तु विषमं ज्येष्ठस्यैव विधीयते ॥ ११९ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **एकशफमश्वाश्वतरगर्दभादयः** विभागकाले समसंख्यया यद्विभक्तुमजाविकं न शक्यते **ज्येष्ठस्यैव** स्यान्न तदन्यद्रव्यांशपातेन समतां नयेद्विक्रीतं वा ततस्तन्मूल्यं दापयेत्। **अजाविक**मिति पशुद्वन्द्वविधावेकवद्भावः ॥ ११९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। विषमं तावद्भ्यो भ्रातृभ्यः एकैकत्वेन विभजनीयापर्याप्तविक्रयादिना पदार्थान्तरीकृत्य न विभजेत् किंतु ज्येष्ठस्यैव। 'अजाविकं तु विषम'मित्येकशफस्याप्यश्वादेरुपलक्षणम् ॥ ११९ ॥

(३) **कुल्लूकः**। एकशफा अश्वादयः छागमेषादि एकशफसहितं विभागकाले समं कृत्वा विभक्तुमशक्यं तन्न विभजेत्किन्तु ज्येष्ठस्यैव तत्स्यान्नतु तत्तुल्यद्रव्यान्तरदानेन समीकृत्य विक्रीय वा तन्मूल्यं विभजेत्। अजाविकमिति पशुद्वन्द्वाद्विभाषैकवद्भावः ॥ ११९ ॥

(४) **राघवानन्दः**। पशुषु गुणवष्ठचे(ज्ये)ष्ठस्यैव विषमं भागं विदधत्तदन्येषां तदभावमाह **अजेति**। अजाविकं अजाश्वावयश्च तत् सैकशफं एकशफा अश्वगर्दभादयः तैः सह वर्तमानं यावन्तः पुत्रास्तैरुक्तपशुषु समतया गृहीतेषु अधिकमूल्यं कृत्वा न विभजनीयम्। सज्येष्ठस्यैवेति भावः ॥ ११९ ॥

(५) **नन्दनः**। 'एकाधिकं हरेज्ज्येष्ठ' इत्यादिनोक्तस्य विषमविभागस्य क्वचिद्विषयेऽपवादं श्लोकद्वयेनाह **अजाविकमिति**। एकशफमभिन्नखुरमश्वादिकं न विषमं भजेद्विभजेत्किन्तु सममेव विभजेत्; विषमसंख्यया विभक्तुमशक्यं यथा त्रयाणां भ्रातृणामेकं द्वे चत्वार इत्यादिसंख्याया ज्येष्ठस्यैव विधीयते। कालतो विभज्य भोगेन वा विक्रीय मूल्यं विभज्य वांशं स्वीकुर्यादित्यर्थः ॥ ११९ ॥

(७) **मणिरामः**। अजमेषाश्वादीनां विभागे क्रियमाणे यद्येकं वर्धते तदा तज्ज्येष्ठस्यैव दातव्यं, नतु तद्विक्रयं कृत्वा प्राप्तधनमपि विभज्य ग्राह्यमित्यर्थः। एकशफं एकखुरमश्वादिकं ॥ ११९ ॥

(९) **भारुचिः**। अजाविकं तु विभागकाले यदि विषमसंख्यया विभक्तुमशक्यं ज्येष्ठस्यैव स्यात्, 'न तदन्यस्य द्रव्यांशपातेन समतां नयेत्' विक्रीय वा तन्मूल्यं खण्डयेत् ॥ ११९ ॥

**यवीयाञ्ज्येष्ठभार्यायां पुत्रमुत्पादयेद्यदि ।।**
**समस्तत्र विभागः स्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ।। १२० ।।**

(१) **मेधातिथिः**। ज्येष्ठस्य नियोगधर्मेण पितृवत्सोदरेऽतिदेशे प्राप्ते तन्निवृत्त्यर्थमुच्यते। **समस्तत्र विभागः स्यात्**। न चोद्धारं न चैव "अधिकं हरेज्ज्येष्ठ" इति। नापि यत्किंचिदेव देयमिति।

**समः** स्यात्। केन? उत्पादकेन पितृव्यकेन कनीयसा। अनियुक्तासुतस्य त्वभागार्हतैव वक्ष्यते। इदं च लिङ्गं भ्रातरि सहिते। सत्यपि भ्रातृशब्दे भ्रातृपुत्रेणाप्यसति भ्रातरि सह विभागः कर्तव्यः ।। १२० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। समस्तत्र पितृद्वारा। तस्मान्नापि देवरजाय समो भागो देयः, नतु पितृव्यैः सह तस्य विभागे तस्य पितृज्यैष्ठचाज्ज्येष्ठोद्धारः। एतेन यवीयसीभार्यायां ज्येष्ठेनापत्योत्पादने भागान्न्यूनतेत्यर्थादुक्तम् ।। १२० ।।

(३) **कुल्लूकः**। कनिष्ठो यदि ज्येष्ठभ्रातृभार्यायां नियोगेन पुत्रं जनयेत्तदा तेन पितृव्येन सह तस्य क्षेत्रजस्य समो विभागः स्यान्नतु पितृवत्सोद्धारो भवतीति विभागव्यवस्था नियता। अनियोगोत्पन्नस्यानंशित्वं वक्ष्यति, यद्यपि 'समेत्य भ्रातरः सम' (९।१०४) मित्युक्तं तथाप्यस्मादेव लिङ्गात्पौत्रस्यापि मृतपितृकस्य पैतामहे धने पितृव्यवद्विभागोऽस्तीति गम्यते ।। १२० ।।

(४) **राघवानन्दः**। वक्ष्यमाणदशविधपुत्रेष्वौरसानां विभागमुक्त्वा क्षेत्रजे विशेषमाह **यवीयानिति**। ज्येष्ठभार्यायां ज्येष्ठभ्रातुः पत्न्याम्। समस्तत्र विभाग इत्येव धर्मः ।। १२० ।।

(५) **नन्दनः**। पुत्रमिति जातावेकवचनं, पुत्राविति पाठः। गुरुनियोगादुत्पादयेदिति व्याख्येयम्। इतरो नाश इति वक्ष्यमाणत्वात्तत्र नियोगोत्पादिते ज्येष्ठे समो विभागः स्यात् ।। १२० ।।

(७) **मणिरामः**। समस्तत्र विभागः, न तु ज्येष्ठपुत्रत्वाज्ज्येष्ठवदुद्धारं दत्त्वा विभाग इत्यर्थः ।। १२० ।।

(९) **भारुचिः**। ज्येष्ठांशापवादार्थोऽयमारम्भः। एवं ज्येष्ठापत्यतया तदंशाधिको भागो न स्यात्। गुणवतोऽपि कनीयसोत्पन्नत्वात् क्षेत्रजत्वाच्च नाप्यर्धांशः। किं तर्हि? समस्तत्र विभागः स्यात्। केन? पितृव्येन पितुः कनीयसेनोत्पादकेनेति। अयं च नियुक्तासुतः क्षेत्रज्ञो विज्ञेयः। अनियुक्तासु तस्य त्वनंशार्हत्वमेवावाप्यते, ज्येष्ठपुत्रस्य गुणवतः पितुरिव सोद्धारो धनांश इत्येतदपि च सामर्थ्याद् गम्यते ।। १२० ।।

**उपसर्जनं प्रधानस्य धर्मतो नोपपद्यते ।।**
**पिता प्रधानं प्रजने तस्माद्धर्मेण तं भजेत् ।। १२१ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **उपसर्जनं**अप्रधानं क्षेत्रजः। **प्रधानस्यौ**रसस्य तुल्य इत्येतदध्याहृत्य। **तद्धर्मतः** शास्त्रतो न युज्यते। औरसः किल पितृवज्ज्येष्ठांशं कृत्स्नं लभते। अयं

तु क्षेत्रजोऽप्रधानम्। **तस्माद्धर्मेण तं भजेत्**। 'धर्मः' पूर्वोक्ता भागकल्पना। "ननु चायमपि ज्येष्ठः पुत्रो भवति, किमित्यौरसवन्न लभते ?"।

अत आह **पिता प्रधानं प्रजने**। 'पिता' जनकोऽत्राभिप्रेतः। स प्रधानमपत्योत्पादने। अयं चाप्रधानः, कनीयसा जनितः। 'उपसर्जनं प्रधानस्य सम'मित्येवाध्याहृत्य श्लोको गम्यते। अर्थवादोऽयं पूर्वस्य ज्येष्ठांशनिषेधस्य। अर्थवादत्वाच्च प्रधानोपसर्जनशब्दयोर्यत्किंचिदालम्बनमाश्रित्य व्याख्या कर्तव्या।

अन्ये पठन्ति "तस्माद्धर्मेण तं त्यजेत्" इति—तदयुक्तं; सर्वत्र समभागस्योक्तत्वात्। अर्थवादत्वाच्चास्य न विकल्पाशङ्का कार्या ॥ १२१ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। प्रधानस्य भ्रातृमध्ये ज्येष्ठस्य पितुः स्थाने उपसर्जनममुख्यः पुत्रो नोपपद्यते न युज्यते, अतो न ज्येष्ठोद्धारः। न चैवं भागो न देयो यस्मात् प्रजने संताने तत्र तत्पितैव ज्येष्ठतया प्रधानं; तथा च तस्यानुकल्पिकः पुत्रः संततिमध्ये साम्यसहायेऽतस्तमपि धर्मेण युक्तेन क्रमेण समभागेन भजेन्न न्यूनेन। तेन यत्र पितुरप्राधान्यं तत्र न्यूनतापीति पूर्वोक्तशेषः ॥ १२१ ॥

(३) **कुल्लूकः**। ज्येष्ठभ्रातुः क्षेत्रजः पुत्रोऽपि पितेव सोद्धारविभागी युक्त इतीमां शङ्कां निराकृत्य पूर्वोक्तमेव दृढयति **उपेति**। अप्रधानं क्षेत्रजः पुत्रः प्रधानस्य क्षेत्रिणः पितृधर्मेण सोद्धारविभागग्रहणरूपेण न संबध्यते। क्षेत्र्यपि पिता तद्द्वारेणापत्योत्पादने प्रधानं, तस्मात्पूर्वोक्तेनैव धर्मेण विभागव्यवस्थारूपेण पितृव्येन सह तं क्षेत्रजं विभजेदिति पूर्वस्यैव शेषः ॥ १२१ ॥

(४) **राघवानन्दः**। तत्र हेतुरुपेत्यादि। अयमर्थः—प्रधानस्य ज्येष्ठभ्रातुः यद्यप्युद्धारे नोपसर्जनता तस्मा अवश्यमुद्धारो देयस्तथापि तस्य मरणादौ तत्क्षेत्रे कनिष्ठस्य यस्मादुपसर्जनत्वमेव पितुरेव जनने प्राधान्यात्तस्य चात्र कनिष्ठत्वादत एव नोद्धारभागः पितुः समभागः पितृव्यैः सहेति तं क्षेत्रजं धर्मेणोत्पादकपित्रनुरूपेण नतु मात्रनुरूपेण 'ज्येष्ठता नास्ति हि स्त्रियः' इति वक्ष्यमाणो हेतुरिति भावः ॥ १२१ ॥

(५) **नन्दनः**। अत्र कारणमाह **उपसर्जनमिति**। कनिष्ठभावत्वादुपसर्जनमप्रधानम्, स पुत्रः प्रधानधर्मभाजनं न भवतीत्यर्थः। पिता प्रधानं प्रजने न माता तेन मातुः ज्येष्ठतया तस्य ज्यैष्ठ्यं नायाति; तस्मात्पितुः प्राधान्याद्धर्मेण पूर्वश्लोकोक्तेन विधिना समं विभागं कनिष्ठप्रभवो भजेन्न ज्यैष्ठ्येन मातुरधिकम् ॥ १२१ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। उपसर्जनं गौणम् ॥ १२१ ॥

(७) **मणिरामः**। अमुमर्थमेव दृढयति **उपसर्जनमिति**। उपसर्जनं अप्रधानं क्षेत्रजः पुत्रः प्रधानस्य क्षेत्रिणः पितुः धर्मतः धर्मेण संभजेत्, विभागं कुर्यादित्यर्थः ॥ १२१ ॥

(९) **भारुचिः**। अयं पूर्वश्लोकार्थवादः। उपसर्जनप्रधानं पितुः कनीयान् भ्राता क्षेत्रज्ञस्योत्पादयिता। यस्मात्—अतः प्रधानज्येष्ठस्य भ्रातुः समांशमित्येतद्धर्मतः शास्त्रतो नोपपद्यते। तथा चोक्तं ज्येष्ठस्यांशदानम्। तथा च सति पिता प्रधानोऽपत्यप्रजने तथा च

वक्ष्यत्यौरसप्राधान्यं न चायं क्षेत्रजः पित्रा जातः। तस्माद्धर्मेण तं भजेद्धर्मः। पूर्वश्लोकशास्त्रं समस्तत्र विभागः स्यादित्येतत्। केचिदर्धेन तं भजेदिति पठन्ति–तदयुक्तं; पूर्वोक्तव्याघातप्रसङ्गात्। न चात्र विकल्पो युक्तः अविधित्वादस्य, अविधित्वं च पूर्वश्लोकार्थवादत्वादिति। अथवा उपसर्जनं क्षेत्रजः प्रधानस्यौरसस्य समांश इत्येतद्धर्मतो नोपपद्यते, तथा च वक्ष्यति–'एक एवौरसः पुत्रः पित्र्यस्य वसुनः प्रभुरि'ति (९।१६३)। यतश्च पित्राप्रधानः प्रजनेन चायं, न चायं तेन जातः, तस्मादस्य समांशतैव युक्ता पूर्वशास्त्रे...पितृदानं ततः। अथवोपसर्जनं क्षेत्रजः प्रधानस्य क्षेत्रिणः समांशमित्येतद्धर्मतो नोपपद्यत इति, अन्यत्समानम्॥ १२१॥

**पुत्रः कनिष्ठो ज्येष्ठायां कनिष्ठायां च पूर्वजः॥**
**कथं तत्र विभागः स्यादिति चेत्संशयो भवेत्॥ १२२॥**

(१) **मेधातिथिः**। **ज्येष्ठा** प्रथमोढा, पश्चादूढा **कनिष्ठा**, तयोर्जातानां किं मातुरुद्वाहक्रमेण ज्यैष्ठ्यं स्यात्स्वजन्मक्रमेण वेति संशयमुपन्यस्योत्तरत्र निर्णेष्यते संप्रतिपत्तुम्॥ १२२॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। कनिष्ठोऽल्पवयाः॥ १२२॥

(३) **कुल्लूकः**। यदि प्रथमोढायां कनीयान्पुत्रो जातः, पश्चादूढायां च ज्येष्ठस्तदा तत्र कथं विभागो भवेदिति संशयो यदि स्यात्किं मातुरुद्वाहक्रमेण पुत्रस्य ज्येष्ठत्वमुत स्वजन्मक्रमेणेति तदाह॥ १२२॥

(४) **राघवानन्दः**। बहुमातृकाणां पुत्राणां मातृविवाहक्रमेणैव ज्यैष्ठ्यम्, उत सुतजन्मक्रमेणेति संदिग्धे पुत्र इति पूर्वजो ज्येष्ठ इति॥ १२२॥

(५) **नन्दनः**। यत्र विषये ज्येष्ठायां कनिष्ठः पुत्रः, कनिष्ठायां ज्येष्ठः पुत्रः, कथं तत्र विभागः स्यात्किं मातृज्यैष्ठ्येन विभागः, किमपत्यजन्मना वेति संशयश्चेत्तत्रोत्तरं वक्ष्यामीति शेषः॥ १२२॥

(६) **रामचन्द्रः**। ज्येष्ठायां स्त्रियां कनिष्ठपुत्रः च पुनः कनिष्ठायां स्त्रियां पूर्वजः ज्येष्ठः पुत्रः भवेत्। यद्वा ब्राह्मणस्य द्वे भार्ये ब्राह्मणी क्षत्रिया चेति। ज्येष्ठायां ब्राह्मण्यां कनिष्ठः पुत्रः, कनिष्ठायां क्षत्रियायां च पूर्वजः ज्येष्ठो भवेत्। 'ततो वैश्यायां क्षत्रियादिपुत्राणां स्वजातितः त्रि-द्व्येकभागाः स्युः' इति **योगीश्वरः**॥ १२२॥

(७) **मणिरामः**। **ज्येष्ठायां** सोद्धारविभागग्रहणरूपेण नोपपद्यते न संबद्धचते। यस्मात् प्रजने क्षेत्रजोत्पादने पिता प्रधानं क्षेत्रद्वारा प्रधानं तु औरसवत्साक्षात्। तस्मात् धर्मेण समविभागरूपेण धर्मेण संभजेत्, विभागं कुर्यादित्यर्थः॥ १२२॥

**एकं वृषभमुद्धारं संहरेत स पूर्वजः ।।**
**ततोऽपरे ज्येष्ठवृषास्तदूनानां स्वमातृतः ।।१२३ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। पूर्वस्यां जातः **पूर्वजः**। कनीयान् वृषभस्योक्तो भागवान्।

**ततो** वृषादन्ये ये वृषभा **अज्येष्ठास्ते** बहूनामेकशः कृत्वा देयाः। अतश्च ज्येष्ठिने यस्यैतावदुक्तमधिकं यच्छ्रेष्ठो **वृषो** गुणमात्रेणाधिक्यं न संख्यया **तदूनानां** तस्मात्पूर्वजादूनानाम्। कियतामित्याह–**स्वमातृतः** पुनर्मुख्यतोढत्वात्तेनात्र मातृज्यैष्ठ्यमाश्रितो भवति, न जन्मतः ।। १२३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। एकं श्रेष्ठं उद्धारमधिकं स पूर्वजः कनिष्ठः पुत्रः। ततोऽन्ये ये ज्येष्ठवृषा ज्येष्ठग्राह्यवृषास्ते तदूनानां कनिष्ठेयाद्धीनवयसाम्। स्वमातृतः स्वमातृज्येष्ठत्वानुरूपेण यस्य माता ज्येष्ठा तस्याप्येको वृष उद्धारः किंतु पूर्ववृषाद्धीनः। एवं तद्धीनोऽन्येषां तन्मातृकनिष्ठासुतानामिति क्रमेणोद्धृत्य शेषं समांश विभाज्यमित्यर्थः ।। १२३ ।।

(३) **कुल्लूकः**। पूर्वस्यां जातः पूर्वजः 'ऊचापोः संज्ञाछंदसोर्बहुल'मिति (पा. ६।३।६३) ह्रस्वत्वम्। स कनिष्ठोऽप्येकं वृषभमुद्धारं गृह्णीयात्ततः श्रेष्ठवृषभादन्ये ये संत्यपराः श्रेष्ठवृषभास्ते तस्माज्ज्यैष्ठिनेयान्मातृत ऊनानां कनिष्ठेयानां प्रत्येकमेकैकशो भवन्तीति मातृद्वाहक्रमेण ज्यैष्ठ्यम् ।। १२३ ।।

(४) **राघवानन्दः**। तन्निर्णयमाह **एकमिति**। पूर्वस्यां जातः 'ऊचापोः संज्ञाछन्दसोर्बहुल'मिति ह्रस्वा अपरे ये पुत्रास्ते ज्येष्ठवृषा न्यूना ये वृषास्ते भागत्वेन येषां सन्ति ते ज्येष्ठवृषाः एकैकशः। तत्र हेतुः तदुत्पन्नानां स्वस्वमातुरुत्तरकालोद्वाहेन तेषां न्यूनत्वात्कनिष्ठत्वमिति ।। १२३ ।।

(५) **नन्दनः**। पूर्वजः कनिष्ठायां प्रथमं जातः संहरेल्लभेत न परे तस्माद्वृषभादन्ये ये ज्येष्ठवृषास्ते ज्येष्ठस्य ज्यैष्ठिनेयस्य वृषस्य बहुवचनात्त्र्यवरास्तदूनानां ज्येष्ठान्मातृभ्यो न्यूनानां स्वमातृतोंऽशकल्पना न्यूनान्न्यूनतरा चेत्यर्थः ।। १२३ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। स पूर्वजः पूर्वस्यां जातः कनिष्ठापुत्रो वा ।। १२३ ।।

(७) **मणिरामः**। ज्येष्ठायां प्रथमोढायां। कनिष्ठः पश्चादुत्पन्नः। कनिष्ठायां पश्चादूढायां। पूर्वजः प्रथमत उत्पन्नः। स पूर्वजः प्रथमविवाहितायां जातः कनिष्ठोऽपि ज्येष्ठो ज्ञेय इत्यर्थः। सः एकं वृषभमुद्धारं ज्येष्ठोक्तभागं गृण्हीयात्। ततोऽपरे, ततः पूर्वोढापुत्रात् अन्ये। कनिष्ठायां पूर्वोत्पन्नत्वेन ये ज्येष्ठवृषाः संति ते ततः तस्मात् पूर्वोढापत्यात् स्वमातृत ऊनानां प्रत्येकं एकैकशो भवंति। तस्माद्विवाहक्रमेण ज्येष्ठत्वं ज्ञेयं ।। १२३ ।।

**ज्येष्ठस्तु जातो ज्येष्ठायां हरेद्वृषभषोडशाः ।**
**ततः स्वमातृतः शेषा भजेरन्निति धारणा ।। १२४ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। उद्धारान्तरं वैकल्पिकमेषामुच्यते। **अज्येष्ठायां ज्येष्ठो जातः** पंचदश गा हरेत्। षोडशो वृषभो वृषभसंबन्धाद्गावो लभ्यन्ते। यथाऽस्य गोर्द्वितीयेनार्थ इति।

अन्ये शेषा गा हरेरन्स्वमातृतः यथैवैषां माता गरीयसी स गरीयसीं यस्य कनीयसी स कनीयसीमाहरेत्। अथवा ज्येष्ठिने यस्यायमुद्धारोऽधिक उच्यते, पूर्वस्तु स्थित एव। नात्रानुद्युत्प्रश्लेषः। शेषाः कनीयांसः स्वमातृतो हरेरन्। स्वमातृत इति विविच्यते। श्लोकद्वयस्यार्थवादत्वान्न विवेके यत्नः। उपक्रममात्रमेतत्। सिद्धान्तस्त्वयमुच्यते ॥ १२४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। ज्येष्ठायां प्रथमोढायाम्। षोडशो वृषभो यासां पञ्चदशानां गवां तासां संघं वृषभषोडशम्। तत इति। ततोऽन्ये स्वमातृज्यैष्ठचक्रमेणैकैकं वृषभमुत्तममहीनक्रमेण गृह्णीयुः ॥ १२४ ॥

(३) **कुल्लूकः**। प्रथमोढायां पुनर्यो जातो जन्मना च भ्रातृभ्यो ज्येष्ठः स वृषभः षोडशो यासां गवां ता गृह्णीयात्, पञ्चदश गा एकं वृषभमित्यर्थः। ततोऽनन्तरं येऽन्ये बह्वीभ्यो जातास्ते स्वमातृभागत ऊढज्येष्ठापेक्षया शेषा भागादि विभजेरन्निति निश्चयः ॥ १२४ ॥

(४) **राघवानन्दः**। ज्येष्ठायां जन्मतोऽपि ज्येष्ठस्तु वृषभैकोत्तराः पञ्चदश गाः प्राप्नुयादित्याह **ज्येष्ठस्त्विति**। स्वमातृतः मातुद्वाहक्रमेण शेषाः कनिष्ठायां जाताः सवर्णायां भजेरन्, भागमिति शेषः ॥ १२४ ॥

(५) **नन्दनः**। वृषभषोडशं वृषभषोडशकं धारणीयः ॥ १२४ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। षोडशवृषभः षोडशी ॥ १२४ ॥

(७) **मणिरामः**। प्रथमोढायां प्रथमश्च यो जातः तद्विभागमाह **ज्येष्ठस्त्विति**। वृषभषोडशः वृषभः षोडशो यासां गवां तावद्गृण्हीयात्, पंचदश गाः एकं वृषभमित्यर्थः। तत अनंतरं येऽन्ये बह्वीभ्यो जाताः ते स्वमातृतः स्वमातृभागतः उद्वोढज्येष्ठापेक्षया शेषाः भागा विभजेरन्निति धारणा निश्चयः ॥ १२४ ॥

**सदृशस्त्रीषु जातानां पुत्राणामविशेषतः ॥**
**न मातृतो ज्यैष्ठचमस्ति जन्मतो ज्यैष्ठचमुच्यते ॥ १२५ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **सदृशः** समानजातीयः ॥ १२५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अभिवादनादिक्रियां प्रति विशेषमाह **सदृशेति**। वन्द्यो ज्येष्ठ एवाभिवादनादिविषय इत्यर्थः ॥ १२५ ॥

(३) **कुल्लूकः**। समानजातीयस्त्रीषु जातानां पुत्राणां जातिगतविशेषाभावे सति न मातृक्रमेण ज्यैष्ठचमृषिभिरुच्यते, जन्मज्येष्ठानान्तु पूर्वोक्त एव विंशतिभागादिरुद्धारो बोद्धव्यः। एवं च मातृज्यैष्ठचस्य विहितप्रतिषिद्धत्वात् षोडशीग्रहणाग्रहणवद्विकल्पः, स च गुणवन्निर्गुणतया भ्रातृणां गुरुलघुत्वावगमाद्व्यवस्थितः। अत एव 'जन्मविद्यागुणज्येष्ठस्त्र्यंशं दायादवाप्नुयादि'ति बृहस्पत्यादिभिर्जन्मज्येष्ठस्य विद्याद्युत्कर्षेणोद्धारोत्कर्ष उक्तः। 'निर्गुणस्यैकं वृषभं'इति, मन्दगुणस्य वृषभषोडशा इति मातृज्यैष्ठचाश्रयणेनोद्धारो बोद्धव्यः। मातृज्यैष्ठचविधिं त्वनुवादं मेधातिथिरवदत्। गोविन्दराजस्त्वन्यमतं जगौ। न केवलं विभागे ॥ १२५ ॥

(४) **राघवानन्दः**। पुत्रः 'कनिष्ठ' इत्यादिश्लोकत्रयेणैकदेशिमते विभागमुक्त्वा स्वमते तूक्तविभागान्वक्तुं पुत्राणां जन्मतैव ज्यैष्ठ्यमाह **सदृशस्त्रीष्विति**। लाघवात्सदृशस्त्रीषु जन्मोत्कर्षं उद्धारप्रयोजको नतूद्वाहस्य यौगपद्यं क्रमिकत्वं चेति। मातृज्येष्ठत्वविधिनिषेधयोः पुत्रगतगुणवदगुणवत्त्वव्यवस्थितविकल्पेन समाधिरिति **कुल्लूकः**। **मेधातिथिस्त्वर्थवादमाह**। वस्तुतस्तु जन्मज्यैष्ठ्यमेव प्रयोजकम्॥ १२५॥

*जन्मज्येष्ठानान्तु पूर्वोक्त एव विंशतिभागादिरुद्धारो बोद्धव्यः, किन्तु जन्मक्रमेणैवातः कनिष्ठाजोऽपि पूर्वोक्तमेव विंशभागाद्यंशादिकं गृह्णीयात् (अ)

(५) **नन्दनः**। इदं मातृतो ज्यैष्ठ्यं विभागविधावेव नान्यत्रेति श्लोकाभ्यामाह **सदृशस्त्रीष्विति**। सदृशस्त्रीषु सवर्णस्त्रीषु॥ १२५॥

(७) **मणिरामः**। सदृशस्त्रीषु समानजातीयासु स्त्रीषु सुब्रह्मण्यास्वपि जन्मज्येष्ठेनाह्वानं स्मृतं। ज्योतिष्टोमे सुब्रह्मण्याख्येन मंत्रेण इत्याह्वानं क्रियते तत्र अमुकपिता यजत इत्यत्र जन्मतो यो ज्येष्ठः पुत्रस्तस्य पितेत्युच्चारः कार्य इत्यर्थः। तथा ज(य)मलजातकयोरपि जन्मतो ज्येष्ठता स्मृता॥ १२५-१२६॥

**जन्मज्येष्ठेन चाह्वानं सुब्रह्मण्यास्वपि स्मृतम्॥**
**यमयोश्चैव गर्भेषु जन्मतो ज्येष्ठता स्मृता॥ १२६॥**

(१) **मेधातिथिः**। अर्थवादोऽयं जन्मज्येष्ठतामभ्युपगमयति। **सुब्रह्मण्या** नाम मंत्रो ज्योतिष्टोमे छन्दोगैः प्रयुज्यत "इन्द्राह्वानाय सुब्रह्मण्यो ३३ इन्द्र आगच्छे"त्यादिप्रयोगे—बहुत्वाद्बहुवचनम्। तत्रेदमुच्यते— प्रथमपुत्रेण पितरं व्यपदिश्य हूयते। 'देवदत्तस्य पिता यजते'। जन्मनो ज्यैष्ठ्यं मुख्यम्। अन्यत् तु मातृविवाहसंबंधाद्गौणम्। **यमयोर्गर्भ** एककालनिषिक्तयोरपि जन्मतो ज्यैष्ठ्यम्॥ १२६॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। श्रौतेऽपि कर्मण्येवमाह **जन्मज्येष्ठेनेति**। अमुकशर्मणः पिता यजत इत्याकारमाह्वानम्। जन्मतो ज्येष्ठतेति युक्तिप्राप्तस्यैवानुवादः॥ १२६॥

(३) **कुल्लूकः**। जन्मज्यैष्ठ्यं किन्तु सुब्रह्मण्याख्यो मन्त्रो ज्योतिष्टोम इति इन्द्रस्याह्वानार्थं प्रयुज्यते, तत्र प्रथमपुत्रेण पितरमुद्दिश्याह्वानं क्रियते—अमुकपिता यजत इत्येवमृषिभिः स्मृतं तथा यमयोर्गर्भे एककाले निषिक्तयोरपि जन्मक्रमेणैव ज्येष्ठता स्मृता। गर्भेष्विति बहुवचनं स्त्रीबहुत्वापेक्षया॥ १२६॥

(४) **राघवानन्दः**। तच्च श्रुतिसिद्धमित्याह **जन्मेति**। सुब्रह्मण्यासु ज्योतिष्टोमे इन्द्राह्वानार्थं सुब्रह्मण्याख्यो मन्त्रोऽस्ति, तत्र प्रथमजपुत्रेण पितरमुद्दिश्याह्वानं क्रियते—अमुकपिता यजते इति। अत एव यमयोरपि प्रथमसेकजस्यैव ज्येष्ठतामाह **यमेति**। गर्भेषु जन्यत इति वचनान्निषेककाले प्रथमनिषिक्तस्यैव ज्येष्ठत्वं योनिनिःसरणापेक्षया तु कनिष्ठत्वेऽपि। अन्यथा गर्भेष्विति व्यर्थं बहुवचनं, स्त्रीषु व्यक्त्यपेक्षया तेन मातृद्वयं गर्भद्वयं यदा धत्ते तत्रापि पूर्वनिषिक्तस्यैव ज्येष्ठता, नतु दैवादष्टमासादिजातस्येति भावः॥ १२६॥

(५) **नन्दनः**। सुब्रह्मण्यां सुब्रह्मण्याह्वाने एकगर्भेऽप्येककालनिषिक्तयोरपि सतोः ॥ १२६ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। सुब्रह्मण्यासु क्रियासु सोमयागादौ को यजति? अमुकशर्मणः प्रपौत्रो यजति। च पुनः, कः? अमुकशर्मणः पौत्रो यजति। च पुनः अमुकशर्मणः पुत्रः प्रपुत्रः यजति, च पुनः अमुकशर्मा यजति। च पुनः एवंविधक्रियासु जन्मज्येष्ठेन आह्वानं स्मृतं; यतः सुब्रह्मण्य-वेदाध्यायिनां घोषा एवं भवन्ति। यमयोः निषिक्तयोः गर्भेषु जन्मतो ज्येष्ठता स्मृता॥१२६॥

**अपुत्रोऽनेन विधिना सुतां कुर्वीत पुत्रिकाम् ॥**
**यदपत्यं भवेदस्यां तन्मम स्यात्स्वधाकरम् ॥ १२७ ॥**

**[अभ्रातृकां प्रदास्यामि तुभ्यं कन्यामलंकृताम्॥**
**अस्यां यो जायते पुत्रः स मे पुत्रो भवेदिति॥]**

(१) **मेधातिथिः**। **यदपत्यमस्यां** जायेत **तन्मे** मह्यं **स्वधाकरम्**। और्ध्वदेहिकस्य श्राद्धादिपुत्रकार्यस्योपलक्षणार्थः स्वधाशब्दो न त्वयमेवोच्चार्यः। तथा च **गौतम** :–'पितोत्सृजेत्पुत्रिकामनपत्योऽग्निं प्रजापतिं चेष्टास्मदर्थमपत्यमिति संवाद्य' 'अभिसंबन्धमात्रात्पुत्रिकेत्येषाम्' (गौ० स्मृ० २८-१९) इति मन्त्रादियोगेन विनाऽपि भवति पुत्रिका।

"ननु संवादाभावेन यद्यप्यभिसंबन्धो हृदयात्कृत इत्युच्यते पुनर्वचनेन यावन्न ज्ञापितस्तावज्जामाता विप्रतिपद्येत"। **कुर्वीत पुत्रिकामेष** तस्या व्यपदेशः॥ १२७॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अनेन वक्ष्यमाणेन। यदपत्यमित्यादि अभिधाय, दद्यादिति शेषः। स्वधाकरं पुत्रकार्यश्राद्धादिपरम्॥ १२७॥

(३) **कुल्लूकः**। अविद्यमानपुत्रो यदस्यामपत्यं जायेत तन्मम श्राद्धाद्यौर्ध्वदेहिककरं स्यादिति कन्यादानकाले जामात्रा सह संप्रतिपत्तिरूपेण विधानेन दुहितरं पुत्रिकां कुर्यात् ॥ १२७॥

(४) **राघवानन्दः**। पुत्रिकापुत्रस्य भागं विधास्यन् तत्प्रकारमाह **अपुत्र इति**। उत्पन्नपुत्रेण भागयोग्या पुत्रिका। स्वधाकरं पिण्डादिदातृ। पुत्रिकापुत्रस्य त्वष्टकाश्राद्धे विशेषो यतो मातामहस्य मातामहादिश्राद्धं नास्ति दौहित्रस्यास्तीति॥ १२७॥

(५) **नन्दनः**। अथ पुत्रिकायाः पुत्रस्य च दायप्राप्ति विवक्षन्पुत्रिकाविधिं तावदाह **अपुत्रोऽनेनेति**। अनेनोत्तरार्धेन वक्ष्यमाणेन विधिना संविद्वाक्येन पुत्रिकामिवार्थे कन्प्रत्ययः, पुत्रानुकारिणीमित्यर्थः। स्वधाकरं पिण्डोदकप्रदानादिकरं इति शब्दोऽन्ते द्रष्टव्यः॥ १२७॥

**अनेन तु विधानेन पुरा चक्रेऽथ पुत्रिकाः ॥**
**विवृद्धयर्थं स्ववंशस्य स्वयं दक्षः प्रजापतिः ॥ १२८ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। प्रजोत्पादनविधिज्ञः **प्रजापतिर्दक्षः** स एवोदाह्रियते। **अर्थवादोऽयं** परिकृतिर्नाम॥ १२८॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। स्ववंशस्य स्वसपिण्डधारायाः ।। १२८ ।।

(३) **कुल्लूकः**। अत्र परप्रतिपत्तिरूपमनुवादमाह **अनेनेति**। दक्षः प्रजापतिः पुत्रोत्पादनविधिज्ञः स्ववंशवृद्ध्यर्थमनेनोक्तविधानेन कृत्स्ना दुहितरः पूर्वं पुत्रिकाः स्वयं कृतवान्। कात्स्न्र्ये अथशब्दः ।। १२८ ।।

(४) **राघवानन्दः**। अस्य निर्मूलत्वं धुनीते **अनेनेति** ।। १२८ ।।

(५) **नन्दनः**। अस्यार्थवादं परिकृतिरूपं च श्लोकाभ्यामुदाहरति **अनेनेति**। अनेनोक्तेन प्रजाविज्ञो हि प्रजापतिः सोऽप्येवं स्वयं चक्रे इति ।। १२८ ।।

(७) **मणिरामः**। अविद्यमानपुत्रः अनेन यदस्यामपत्यं भवेत् तन्मम स्वधाकरं श्राद्धाद्यौर्ध्वदेहिककरं स्यादिति कन्यादानकाले जामात्रा सह संप्रतिपत्तिरूपेण विधानेन सुतां पुत्रिकां कुर्वीत ।। १२८-१३० ।।

**ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ।**
**सोमाय राज्ञे सत्कृत्य प्रीतात्मा सप्तविंशतिम् ।। १२९ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **सत्कृत्येति**। एतदत्र विधीयते। दशेत्यादिलिङ्गादनेकपुत्रिकाकरणमपीच्छन्ति ।। १२९ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। दश पुत्रिकाः। प्रीतात्मा पुत्रजन्मतुष्टिमान् ।। १२९ ।।

(३) **कुल्लूकः**। स दक्षो भाविपुत्रिकापुत्रलाभेन प्रीतात्माऽलङ्कारादिना सत्कृत्य दश पुत्रिका धर्माय, त्रयोदश कश्यपाय, सप्तविंशतिं चन्द्राय–द्विजानामोषधीनां च राज्ञे दत्तवान्। सत्कारवचनमन्येषामपि पुत्रिकाकरणे लिङ्गम्। दशेत्यादि च बहूनामपि पुत्रिकाकरणज्ञापकम् ।। १२९ ।।

(४) **राघवानन्दः**। तत्रैव पुरावृत्तं कथयति **ददाविति**। प्रीतात्मा स इति सर्वत्राषनुज्यते ।। १२९ ।।

**यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा ।**
**तस्यामात्मनि तिष्ठन्त्यां कथमन्यो धनं हरेत् ।। १३० ।।**

(१) **मेधातिथिः**। "यदपत्यं भवेदस्यां तन्मम स्यात्" इत्युक्तम्। अपत्यं च ऋक्थभाक्। अतः पितरि मृते पुत्रिकाया अनुत्पन्नपुत्राया धनहरत्वमप्राप्तं विधीयतेऽर्थवादेन। **तस्यामात्मनि** पुत्रनिमित्ते तिष्ठन्त्यामेव धनं न पुत्रोत्पत्तिस्तदीयाय युज्यते। अथवा **तस्यामात्मभूतायां** पितृरूपायामिति।

**पुत्रेण दुहिता समेति** सामान्यवचनो दुहितृशब्दः प्रकरणात्पुत्रिकाविषयो विज्ञेयः ।।१३०।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। तथा च सैव पुत्रिकाऽपुत्रस्य धनं हरति, नान्य इत्याह **यथेति** ।।१३०।।

(३) **कुल्लूकः**। आत्मस्थानीयः पुत्र 'आत्मा वै पुत्रनामासि' (आश्व. गृ. सू. १/१५) इति मन्त्रलिङ्गात्तत्समा च दुहिता तस्या अप्यङ्गेभ्य उत्पादनात् अतस्तस्यां पुत्रिकायां पितुरात्मस्वरूपायां विद्यमानायामपुत्रस्य मृतस्य पितुर्धनं पुत्रिकाव्यतिरिक्तः कथमन्यो हरेत् ।। १३० ।।

(४) **राघवानन्दः**। ततः किं तत्राह **यथेति**। तस्यामात्मनीति सामानाधिकरण्ये सप्तम्यौ। 'आत्मा वै जायते पुत्र' इति श्रुतेर्दुहितापि आत्मा तेन अपुत्रस्य पितुः पुत्रिका धनभाक्। तत्पुत्रश्च पौत्रस्थानीयः। अन्यो ज्ञात्यादिः ।। १३० ।।

(५) **नन्दनः**। अथ प्रकृतमेव दायविभागविधिमाह **यथैवात्मेति**। दुहितापुत्रिकः आत्मन्यात्मभूतायामन्योन्यात्मभूतो भ्रात्रादिर्धनं हरेल्लभेत ।। १३० ।।

(७) **मणिरामः**। तस्यां आत्मनि तिष्ठंत्यां आत्मस्वरूपायां विद्यमानायां। अन्यो पुत्रिकाव्यतिरिक्तः ।। १३० ।।

**मातुस्तु यौतकं यत्स्यात्कुमारीभाग एव सः ।।**
**दौहित्र एव च हरेदपुत्रस्याखिलं धनम् ।। १३१ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **यौतक**शब्दः पृथग्भावेन च स्त्रीधने। तत्र हि तस्या एव केवलायाः स्वाम्यम्। अन्ये तु सौदायिकमेव न संबन्धस्त्रीधनम्। तत्र हि तस्याः स्वातन्त्र्यम्। "सौदायिकं धनं प्राप्य स्त्रीणां स्वातन्त्र्यमिष्यते"।

इतरे तु भक्तभूषाद्युपयोगिनः आन्वाहिकाद्भर्तृदत्ताद्धनादुपयुक्तशेषमेव। युवत्या स्वीकृतं **यौतकमाहुः**।

**कुमारीभाग एव** कुमारीग्रहणादूढा नास्ति। एवकारस्य च प्रसिद्धानुवादकत्वात्प्रकरणबाधकत्वमतश्च पुत्रिकाकुमारीविषयमिति **यौतकम्**। एवं च **गौतमः**—(२८।२४) "स्त्रीधनं तदपत्यानाम्" इत्युक्त्वाऽऽह "दुहितृणामप्रत्तानामप्रतिष्ठितानां चेति"। तत्रा'प्रतिष्ठिता' या ऊढा अनपत्या निर्धना भर्तृगृहे याभिः प्रतिष्ठा न लब्धा।

**दौहित्र एव च** हरेदपुत्रस्यानौरसपुत्रस्याखिलं धनं हरेत्। सति त्वौरसे यावानंशस्तं वक्ष्यति। अत्रापि पुत्रिकापुत्र एव "दौहित्रो" न सर्वत्र, पूर्ववत्प्रकरणत्यागस्य यौतकविषयत्व एव प्रमाणसंभवात् ।। १३१ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। यौतकं स्त्रीधनम्। कुमारीभागोऽपुत्रकन्याभागः, सत्यपि पुत्रे सत्यामपि पुत्रिकायां तत्पुत्रे च। **दौहित्र इति**। दौहित्रो पुत्रिकापुत्रः। अपुत्रस्य मातामहस्य अखिलम्। स तु ततः कुमारीभागकर्म। एतेन पुत्रिकाविषयादन्यत्रापि मातुः स्त्रीधनं कुमारीणामेव तस्मिन् संगृहीते पितृवित्तात्। स्वस्यांशचतुर्थभागदानं तासां न कर्तव्यम्। **याज्ञवल्क्य**स्मृतौ चतुर्थांशदानस्य भगिनीसंस्कारत्वेन श्रवणात् तस्य च मातृयौतकेनैव सिद्धेरिति ग्राह्यम्। पुत्रिकायां त्वकृतायामपुत्रस्य धनं पत्न्यभाव एव दुहितृदौहित्रगामि ।। १३१ ।।

(३) **कुल्लूकः**। मातुर्यद्धनं तत्तस्यां मृतायां कुमारीभाग एव स्यान्न पुत्राणां तत्र भागः। कुमारी चानूढाभिप्रेता। तथा **गौतमः** (गौ. स्मृ. २९।६)'स्त्रीधनं दुहितॄणामदत्तानामप्रतिष्ठितानां च। अपुत्रस्य च मातामहस्य दौहित्र एव प्रकृतत्वात्पौत्रिकेयः समग्रं धनं गृह्णीयात्' ॥ १३१ ॥

(४) **राघवानन्दः**। मातामहेन स्वभार्यायै यद्दत्तं तत्कुमार्यां पर्याप्तं तन्मातुरूर्ध्वं तत्पुत्र एव तद्धरेदित्याह **मातुस्त्विति**। ननु पारितोषिके धने दातुः स्वत्वापरित्यागात्कथं तत्पुत्रस्तद्धरेत्तत्राह **कुमारीभाग इति**। 'स्त्रीधनं पतदपत्याना'मिति **गौतमोक्तेः**। न केवलमेवमपि तु मातामहस्यापि धनभागित्याह **अपुत्रस्येति** ॥ १३१ ॥

(५) **नन्दनः**। यौतकं मातुः पितृकुलप्राप्तं धनमसत्यपि पुत्रिकापुत्रे कुमार्यां यौतकप्राप्तिरेवकारेण सूचिता, अपुत्रस्य पुत्रिकाकरणोत्तरकालं जातपुत्रस्य मातामहस्याखिलं धनं दौहित्रः पुत्रिकापुत्र एव हरेन्न पुत्रिका ॥ १३१ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। यौतकं स्त्रीधनम् ॥ १३१ ॥

(७) **मणिरामः**। यौतकं (स्त्रीस्)धनं। कुमारी अनूढा ग्राह्या। 'स्त्रीधनं दुहितॄणामदत्ताना'मिति **गौतमस्मरणात्**। दौहित्रप्रकृतत्वात्पुत्रिकापुत्रः ॥ १३१ ॥

**दौहित्रो ह्यखिलं रिक्थमपुत्रस्य पितुर्हरेत्॥**
**स एव दद्याद्द्वौ पिण्डौ पित्रे मातामहाय च ॥ १३२॥**

(१) **मेधातिथिः**। अपुत्रमातामहप्रमातामहाय। पूर्वेणैव पौत्रिकेयदौहित्रस्याखिलं रिक्थहरत्वमुक्तम्। अतोऽयं श्लोकस्तदनुवादेन पिण्डदानविधानार्थ इति कैश्चिद्व्याख्यातम्। 'हरेद्यदी'ति च ते पठन्ति। यस्मिन्पक्षे सर्वं हरेत्तस्मिन्नेव पक्षे दद्यात्। यदा तु "समस्तत्र विभागः स्यात्" इति पक्षस्तदा न दद्यात्। अन्यथा "यो यत आददीत स तस्मै दद्यात्" इत्यनेनैव पिण्डदाने सिद्धे पुनर्वचनमनर्थकम्। अखिलरिक्थग्रहणानुवादश्चानर्थक एवेतदयुक्तम्; "अपुत्रस्य पितुर्हरेत्" इत्ययमेवार्थोऽत्र गीतश्चिरन्तनपाठः। पितृशब्दश्च जनके प्रसिद्धतरो न मातामहे। अतश्च पुत्रिकाया भर्ता यदि तदन्यभार्यायामपुत्रः पुत्रिका च पुत्रवती। तदाऽनेनैव पुत्रेण जातेन पिता मातामहश्चोभावपि पुत्रवन्तौ वेदितव्यौ। यदा तु बीजीतरासु जातपुत्रस्तदा पुत्रिकापुत्रः समानजातीयायामूढायां जातोऽपि नैव बीजिनो रिक्थं हरेन्नापि पिण्डं दद्यात्। अन्यो हि जन्यजनकभावोऽन्यश्चापत्यापत्यवत्सम्बन्धः। अजनका अपि क्षेत्रजादिभिरपत्यवन्तो जनकाश्च विक्रीतापविद्धादिपितरो नैवाजीगर्तादयः पुत्रवन्तः। तथा चौरसलक्षणे 'स्वक्षेत्र' (९। १६६) इति स्वग्रहणम्। क्षेत्रं च पुत्रिकापितुरेव। भर्ता हि तस्य चानुविधेयवर इति मातृकुले स्वामी। तस्मादेवं तद्वक्तव्यम्। यस्मिन्पक्षेऽविद्यमानान्यपुत्रं पुत्रिकाभर्ता पुत्रिकापुत्रश्चाखिलद्रव्यहारी, तस्मिन्पक्षे येन कार्यमतः पिण्डदानम्। यदा तु बीजी स पुत्रः संपद्यते तदा स पुत्रिकापुत्रो नैव बीजिने पिण्डं दद्यात्। स तु दौहित्र इत्युच्यते, पौत्रिकेय इत्यर्थः। यथा मातामहपक्षे पितुरपि यो हरेत्तत्रापि स च दद्यादिति श्रूयते। न पुनः पक्षान्तरेऽपि पक्षान्तरेषु दद्यात्। न च सर्वग्रहणपक्षे दद्यादिति

नोदना पक्षान्तरेऽपि निषेधमनुमापयति, पित्रे पितामहाय चेत्युभयोरप्राप्तत्वात् । द्योतनं परिसङ्ख्येति अनुद्यमाने द्योतनमन्यस्मा एव दद्यात्तद्युगपदुभाभ्यामनेनायमनुवादः । यथैव पित्रे मातामहाय च एवं पितामहाय प्रमातामहाय च । तथैव च ततः पराभ्यां द्वाभ्याम् ।। १३२ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । न केवलं मातामहस्य धनं हरेदपितु पितुः बीजिनः स्वमातृभर्तुरप्यपुत्रस्य पुत्रान्तरशून्यस्य दौहित्रः पुत्रिकापुत्रो धनं हरेत्, तद्बीजप्रभवत्वादस्य ज्ञात्यन्तरापेक्षयाऽन्तरङ्गत्वात् । पुत्रिकापुत्रनियमे च स मे पुत्र इत्यभिधानस्य न ममैव पुत्र इतीतरपुत्रत्वव्यवच्छेदने तात्पर्यं, किंतु स्वपुत्रतायाम् । यदासावृक्थहरस्तदा स एव मातामहाय यथैकोद्दिष्टं तत्पितृपितामहौ चादाय पार्वणं यथा करोति तथा स्वबीजिनेऽपि कुर्यात् । पिण्डद्वयदानविधिः श्राद्धद्वयविधिपरः । द्व्यामुष्यायणस्य श्राद्धविधानं श्रुतौ श्रुतम् ।। १३२ ।।

(३) **कुल्लूकः** । दौहित्रः प्रकृतत्वात्पौत्रिकेय एव तस्य मातामहधनग्रहणमनन्तरोक्तं जनकधनग्रहणं च । पिण्डदानार्थोऽयमारंभः; पितृशब्दस्य तत्रैव प्रसिद्धत्वात् । अन्यस्य पौत्रिकेयपुत्रान्तररहितस्य जनकस्य समग्रं धनं गृह्णीयात्स एव पितृमातामहाभ्यां द्वौ पिण्डौ दद्यात् । पिण्डदानं श्राद्धोपलक्षणार्थं, पौत्रिकेयत्वेन जनकधनग्रहणपिण्डदानव्यामोहनिरासार्थं वचनम् ।। १३२ ।।

(४) **राघवानन्दः** । तत्रैव कैमुतिकन्यायमाह **दौहित्रेति** । अपुत्रस्य पुत्रान्तररहितस्य स्वपितुर्मातामहस्य वा । अत आह **स इति** । नास्य पितृमातामहपक्षे पिण्डदातृत्वं, मातामहमातृपक्षे तु पिण्डदातृत्वमिति भावः । पितुः पुत्रान्तरासत्वे स्वपितुर्धनस्य न्यायसिद्धत्वात्पिण्डदातृत्वं विधेयम् । पिण्डदानं श्राद्धाद्युपलक्षणार्थम् ।। १३२ ।।

(५) **नन्दनः** । दौहित्रोऽपि पुत्रिकापुत्रः सन्नपि अपुत्रस्य पुत्रान्तररहितस्य पितुः स्वजनकस्य कथं हरेत्? कस्मात्? रिक्थहारित्वात् । पिण्डं पित्रे स्वजनकायापुत्राय पितामहाय च स एव दद्यात् ।। १३२ ।।

(७) **मणिरामः** । अपुत्रस्य मातामहस्य । पितुः स्वजनकस्य च ।। १३२ ।।

**पौत्रदौहित्रयोर्लोके न विशेषोऽस्ति धर्मतः ।।**
**तयोर्हि मातापितरौ संभूतौ तस्य देहतः ।। १३३ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । पूर्वशेषोऽयमर्थवादः । कथमविशेषस्तयोर्हि **मातापितराविति** ।। १३३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । यदि पुत्रिकायां कृतायां पुत्रो जायते मातामहस्य तदा दुहित्रपेक्षया पुत्रस्याभ्यर्हितत्वादधिकभागतास्थित्याशङ्कां निवारयति **पौत्रेति** । मातापितरौ पिता च माता चेत्यर्थः । अत्र च दुहितुःपुत्रस्थानीयत्वात्तस्याश्च स्त्रीत्वेन बहिरङ्गत्वात्स्वाम्योक्त्यसंभवात्पौत्रदौहित्रोपादानम् । तेन पुत्रतुल्यत्वात्पौत्रस्य तुल्यत्वाच्च दौहित्रस्य पुत्रेण साम्यमित्युक्तम् ।। १३३ ।।

(३) **कुल्लूकः**। पौत्रपौत्रिकेययोर्लोके धर्मकृत्ये न कश्चिद्विशेषोऽस्ति, यस्मात्तयोर्माता-पितरौ तस्य देहादुत्पन्नाविति पूर्वस्यैवानुवादः ।। १३३ ।।

(४) **राघवानन्दः**। किंच **पौत्रेति**। लोके धर्मकृत्ये धर्मतः शास्त्रानुसारेण तयोः पौत्रदौहित्रयोर्न विशेषोऽस्ति यतः तस्य पितुः देहतो मातापितरौ तयोः संभूताविति समाधिं कारितेति भावः ।। १३३ ।।

(५) **नन्दनः**। पुत्रिकायाः पुत्रस्य मातामहपिण्डप्रदत्वमुपपन्नमित्यभिप्रायेणाह **पौत्र-दौहित्रयोरिति**। दौहित्रः पुत्रिकापुत्रः कार्य इहामुत्र च कर्तव्ये धर्मतो न्यायतः एवं न्याय उत्तरार्धेनोच्यते तस्य पुत्रदुहितृपितुर्देहतः तयोः पौत्रदौहित्रयोः मातापितरौ संजातौ पौत्रस्य पिता संभूतो दौहित्रस्य माता हि यस्मात्तस्मादविशेषोऽस्तीति ।। १३३ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। तयोः पौत्रदौहित्रयोः ।। १३३ ।।

(७) **मणिरामः**। तयोः दौहित्रपौत्रयोः। तस्य देहतः मातामहपितामहदेहतः ।।१३३।।

**पुत्रिकायां कृतायां तु यदि पुत्रोऽनुजायते ।।**
**समस्तत्र विभागः स्याज्ज्येष्ठता नास्ति हि स्त्रियाः ।। १३४ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **समस्तत्र** तुल्यो विभागो जातेन पुत्रेण ज्येष्ठांशनिषेधः। **ज्येष्ठता नास्ति हि स्त्रियाः** रिक्थभाग एव ज्येष्ठता निषिध्यते न त्वस्यां गुरुवृत्तौ ।। १३४ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। यद्येवं ज्येष्ठत्वात्पुत्रिकापुत्रस्य ज्येष्ठस्य ज्येष्ठभागो देय इत्यत आह **पुत्रिकायामिति**। पुत्रो जायते मातामहस्य। ज्येष्ठता गुणविशेषकृता विद्यादिगुणा-भावान्नास्ति, तद्द्वारा तु पुत्रिकापुत्रस्यापि न ज्येष्ठताऽस्तीत्यर्थः ।। १३४ ।।

(३) **कुल्लूकः**। कृतायां पुत्रिकायां यदि तत्कर्तुः पुत्रोऽनन्तरं जायते तदा तयो-र्विभागकाले समो विभागो भवेत्, नोद्धारः पुत्रिकायै देयः; यस्माज्ज्येष्ठाया अपि तस्या उद्धारविषये ज्येष्ठता नादरणीया ।। १३४ ।।

(४) **राघवानन्दः**। कृतपुत्रिकोत्तरकालोत्पन्नपुत्रस्यापि तत्समविभागं वदन् तस्या ज्येष्ठत्वनिषेधेनोद्धाराभावमाह **पुत्रिकायामिति**। तस्या मातुर्ज्येष्ठत्वाभावेन तदौपाधिक-पुत्रज्येष्ठत्वाभावादुद्धाराभावः ।। १३४ ।।

(५) **नन्दनः**। अनुजायते पुत्रिकाकरणात्पश्चाज्जायते स्त्रीग्रहणात्तदपत्यस्याप्युप-लक्षणम् ।। १३४ ।।

(७) **मणिरामः**। पुत्रोऽनुजायते पुत्रिकापुत्रानंतरं स्वस्त्रियां पुत्रो जायते। तत्र पुत्रिकापुत्रस्वपुत्रयोश्च समः विभागः, नतु ज्येष्ठनिबंधनः सोद्धारः कार्यः ।। १३४ ।।

**अपुत्रायां मृतायां तु पुत्रिकायां कथंचन ॥**
**धनं तत्पुत्रिकाभर्ता हरेतैवाविचारयन् ॥ १३५ ॥**

(१) **मेधातिथिः** । अस्वामिन्यास्तु पुत्रिकाया भर्तुरप्राप्तधनसंबन्ध उच्यते । अथ किं पुत्रिका विवाहेन संस्क्रियते उताहो न किंचन ? यदि संस्क्रियते, भार्यैवासौ भवति । भार्याकरणो हि विवाहः । ततश्च तद्धनं.... न संस्तूयते । कन्यागमनं प्राप्नोति 'स्वदारनिरतः सदा' इति नियमातिक्रमश्च । यथेच्छसि तथास्तु ।...

ननु चास्मिन्पक्षे श्लोकोऽयमनर्थकः । नैष दोषः । अपरिपूर्णत्वायार्थवत्त्वस्य । यथैतदयमपत्यं न भर्तुस्तेन वेत्याशङ्कानिवृत्त्यर्थो युक्त एव श्लोकारम्भः । बहवश्चार्थवादिनो मानवाः श्लोकाः ।

अथवा पुत्ररस्तु न संस्क्रियत इति । न तु चास्मिन्पक्षे कन्यागमनं प्राप्नोति । किं कृतम् ? तथाविधायां जातो मातामहस्य पुत्र इतःसाध्यं गंतुर्विध्यर्थातिक्रमनिरूपणेन प्राकरणिकम् । न च तानि नामानि न पतनीयानि ।...

किं पुनर्भवां कन्याशब्दार्थं मत्वा चोदयति कन्यागमनं प्राप्नोतीति । त्रिधा हि कन्या—एका तावदप्रवृत्तपुंप्रयोगा । तथा...देवहिता प्रथमे वयसि वर्तमाना च । तत्र यदि तावत्पुंसाऽसंप्रयुक्ता रूढाया अपि प्राथमिकात्संप्रयोगादनपगतमेवानुषज्येत । प्रायेण ह्यत्र शास्त्रे कन्याशब्दः पुंसाऽसंप्रयोगमाचष्टे ।

अथ संस्कारहीनेति—तदपि न; यतः प्रथममेव वचनमेवं स्मरणाभिप्रायेण तत्र संभवि । प्रमाणान्तरवशाल्लक्षणया 'हिता' इत्यत्र प्रतीयते । यथोक्तं—"पाणिग्रहणिका मन्त्राः कन्यास्वेव प्रतिष्ठिताः । नाकन्यासु क्वचिन्नृणां लुप्तधर्मक्रिया हि ताः ॥" (मनु. ८।२२६) इति । अत्र धर्मलोपवचनलिङ्गात्पुरुषोपभुक्ताऽकन्येत्युच्यते । तद्विपर्ययेणानुपभुक्ता कन्येति सर्वत्रैव मुख्यार्थमनुरुध्य क्रियमाणा धर्मा लक्ष्यन्ते । ते च न सर्वे । किं तर्हि ? यावतां प्रमाणमस्ति । तथा हि कानीन इति पितुः स्वता, संस्काराभावश्च प्रतीयते । केवले हि संस्काराभावे चोढास्वैरिणीपुत्राः कानीनाः । केवलायां च पितृस्वतालक्षणायां पुत्रिकापुत्रोऽपि कानीन इति व्यपदिश्यते ।

यच्चोक्तं "स्वदारतस्तु नियमातिक्रमः प्राप्नोती"ति । न ह्यस्यायमर्थः 'स्वदारेभ्योऽन्या गन्तव्येति । परस्त्रियं च न कामयते न चापरां दाराम्' । तथा सत्यनेनैव गतत्वात्परदारप्रतिषेधोऽनर्थकः स्यात् । किं तर्हि ? स्वदारेषु रतिर्धारयितव्या; रतिभावनयाऽभ्यासात्प्रीत्यतिशयोत्पत्तेः । 'स्त्रियं च न कामयते न चापरान्दारांस्तथा सति धर्मेभ्यो न हीयत' इत्यनुवादोऽयम् । अथवा स्वदारनिरतोऽपि पर्ववर्जनमेनां व्रजेयुः । असौ सुषुप्त्यैवमपत्यशेष एव । परदाराप्रतिषेधोऽपि नास्ति । अनूढत्वात्कैनचिद्दारव्यपदेशाभावात् ।

किं पुनरपुत्रयुक्तम् ? **अविवाह्येति** । अष्टौ हि विवाहाः । ते च स्वीकारभेदेन ब्राह्मादिव्यपदेशभेदं प्रतिपद्यन्ते । न चास्याः स्वकरणं भर्तुरस्ति । पितुरेव स्वत्वानतिवृत्तेः ।

अभ्रातृकायां च विवाहप्रतिषेधः पुत्रिकामविवाह्यां दर्शयति। यथा 'नाभ्रातृकामुपयच्छेत तोकं ह्यस्य तद्भवतीति'। प्राकरणिकश्चायं प्रतिषेधस्तदतिक्रमे विवाहस्य संस्कारतैव, नास्ति शूद्राद्याधानस्येवाहवनीयाद्यर्हता? रनिगिन्यादिप्रतिषेधेषूपलभ्यमानमूलत्वात्प्रकराधीनोऽपि न संस्कारत्वमपनुदति। तथा च शिष्टां दर्शनीयकन्याभावे कपिलादिरूपामुपयच्छन्ति। तया च सहधर्मानुष्ठानमाचरन्ति। [क्षतयोन्यन्यपूर्वाभागोऽत्र]। समानप्रवरादिकयोढयापि कथंचिन्न पत्नीकार्यं कुर्वन्ति। एतदर्थमेव कैश्चित् 'नोद्वहेत्कपिलाम्' (३।८) इत्यत्र दृष्टदोषोपवर्णनं, प्राकरणिकत्वेऽपि सपिण्डादिप्रतिषेधस्य चैकरूप्यं मा विज्ञायीति।

"कथं पुनः स्मृष्टिप्रतिषेधो भ्रातृकामुपयच्छते तस्मिन्नोद्वाहशङ्का?"।

उच्यते। अस्य प्रतिषेधस्य वाक्यशेषः। श्रूयते 'अपत्यं ह्यस्य तद्भवती'ति अनेन। ततश्चापत्योत्पत्तावेव पुत्रिका न भार्या; धर्मार्थमर्थकामयोस्त्वस्त्वेव सहाधिकार इति।

भवत्वयं, परिहारस्तु स्वकरणाभावादविवाहः।

ननु तस्मिन्पक्षे कानीन एव पुत्रिकापुत्रः स्यात्। न ह्यसौ पितुः 'स्वं' स्यादसंस्कृतयोश्चापत्यमिति। संस्कारपक्षे तु पितृस्वतासंस्कारभावोभयलक्षणवान् प्रत्यक्षादन्यतरधर्माभावे तु कानीनाद्भिद्यत इति युक्तम्।

अत्रोच्यते– न वयं पुत्रिकापुत्रस्य कानीनस्य लक्षणं तदस्य नास्तीति ब्रूमः। इदं हि तस्य लक्षणम्–"पितृवेश्मनि कन्या तु यं पुत्रं जनयेद्रहः। तं कानीनं वदन्नाम्ना वोढुः कन्यासमुद्भवम्।"(मनु. ९।१७२) इति। अस्य चार्थः– य एवंलक्षणः स इह शास्त्रे कानीनग्रहणेषु ग्रहीतव्यः। स च कस्यापत्यमित्यपेक्षायां 'वोढुः कन्यासमुद्भवम्' इति द्वितीयं वाक्यम्। अथवा नेह पदार्थो लक्ष्यते। किं तर्हि? संबन्धिता नियम्यते। य एवंविधः कानीनस्तं वोढुः संबन्धिनं वदेदित्येकवाक्यतैव। संबन्धिता च पदार्थभेदे चाप्युपाधिभेदाद्भिद्यत एव। रहः प्रकाशभेदेन। (चैव मातामहस्य। अन्ये चाहुरिति पदार्थस्तु) तदा कानीनशब्दस्य शब्दार्थसंबंधोऽबाधित एवावगन्तव्यः। तेन चापत्यमात्रो कानीनो भवति। भवतु पैतृके कानीने व्यवहारः।

अन्ये तु स्मृतिमेव विशेषनिष्ठामाहुः। न हि कन्यापत्यमात्रे सर्वत्र कानीनशब्दः प्रयुज्यते। किं तर्हि? मानवस्मृतिलक्षिते।

एतदप्यनुमन्यामहे (निश्चिते प्रयोगाभावेऽवशेषस्मरणेऽपि पुण्यसिद्ध्यादितद्विशेषावगतिः प्रयोगतो न्याय्यैव) ॥ १३५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। धनं तया जीवतो मृतस्य वा स्वपितुः प्राप्तम् ॥ १३५ ॥

(३) **कुल्लूकः**। अपुत्रायां पुत्रिकायां कथंचन मृतायां तदीयधनं तद्भर्तैवाविचारयन्गृह्णीयात्। पुत्रिकायाः पुत्रसमत्वेनानपत्यस्य पत्नीरहितस्य मृतपुत्रस्य पितुर्धनग्रहणप्रसक्तौ तन्निवारणार्थमिदं वचनम् ॥ १३५ ॥

(४) **राघवानन्दः**। अजातपुत्रा पुत्रिका म्रियेत चेद्धनं तद्भर्तुरेवेत्याह **अपुत्रायामिति**। अविचारयन् पुत्रिकापुत्रस्य मातामहसंबन्धित्ववत्तद्धनं तंस्येत्यनभिशङ्कः। पुत्रस्यैवान्यार्थत्वं नतु पत्न्याः, अतोऽस्य तद्धनस्वत्वमिति भावः॥ १३५॥

(५) **नन्दनः**। अपुत्रिकं भर्तैवाहरेन्न पुत्रिकापितृव्यादयः॥ १३५॥

(७) **मणिरामः**। इदानीं यथाऽनपत्यस्य पत्नीरहितस्य पुत्रस्य धनं पिता गृह्णाति तथाऽपुत्राया मृतायाः पुत्रिकाया अपि धनं पितुः स्यादिति शङ्कां निवारयति **अपुत्रायामिति**॥ १३५॥

**अकृता वा कृता वाऽपि यं विंदेत् सदृशात्सुतम्॥**
**पौत्री मातामहस्तेन दद्यात्पिण्डं हरेद्धनम्॥ १३६॥**

(१) **मेधातिथिः**। अधस्तनोपरितनवाक्यपर्यालोचनया पुत्रिकापुत्रविषय एवायमतिशयोक्त्या प्रतीयते। अकृताया अपि दुहितुः पुत्रो मातामहधनभागित्युक्तम्। किं पुनः कृताया इत्येवम्। अन्यशेषत्वात्पुत्रिकाया विधिष्वानर्थक्यप्रसङ्गान्न दौहित्रस्य रिक्थप्राप्त्यर्थः।

ननु च स्मृत्यन्तरे दौहित्रमात्रस्य पिंडदानाधिकारः श्रूयते "मातामहानामप्येवमिति" (याज्ञ० १।२२८)। इहापि प्रकरणं हित्वा श्रुतिवाक्यसामर्थ्येन दौहित्रमात्रविषयतैव प्रतिपत्तुं न्याय्या। **दद्यात्पिण्डं हरेद्धनमिति**। तथापरमुक्तं "दौहित्रो ह्यखिलं रिक्थम्" (मनु. ९।१३२) इत्यादि।

अत्रोच्यते– 'यदुक्तं' मातामहानामिति तद्बहुवचनं किं व्यक्त्यपेक्ष्यमुत लक्षणया प्रमातामहाद्यभिप्रायेण? व्यक्तिपक्ष एकस्यैव मातामहस्य पिण्डदानं प्राप्नोति श्राद्धादिवत्। तच्च सपिण्डीकरणे कृते विरुद्धम्। एवं ह्याहुः 'अत ऊर्ध्वं त्रिभ्यो दद्यात्' इति। अथापि "पितुरन्यस्य सपिण्डीकरणमेव न करिष्यत" इत्युच्यते,–तदपि न; निषेधाभावात्। लक्षणायाः सन्निकर्षो विशेषाभावाल्लक्षणविशेषपरिज्ञानेऽनवगमत्वमेव श्रुत्यादिबलेन च प्रकरणत्यागस्येति विरोधप्रसङ्गस्तं निवेशो हि पदार्थः प्रकरणादुत्कृष्यते। द्वादशोपसदो हीनस्येतिवत्। **अकृता वेत्यस्य** चान्यपरत्वमुक्तम्। तस्मात्पौत्रिकेयविषयमेतत्॥ १३६॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अकृता पुत्रिकात्वेनापरिभाषिता। सदृशात् नोत्तमादधमाद्वा। कृतापुत्रो दद्यात्प्रथमं पिण्डं सर्वदा स एव धनं हरेत्सदैव। अकृतापुत्रस्य पुत्रपत्नीदुहित्रभाव एव॥ १३६॥

(३) **कुल्लूकः**। **अकृता वा कृता वेति** पुत्रिकाया एव द्वैविध्यं, तत्र 'यदपत्यं भवेदस्यां तन्मम स्यात्स्वधाकर' (९।१२७) मित्यभिधाय कन्यादानकाले वरानुमत्या या क्रियते सा कृताभिसन्धिमात्रकृता वाग्व्यवहारेण न कृता। तथा **गौतमः** (२९।५) 'अभिसन्धिमात्रात्पुत्रिकामेकेषा'मिति। अत एव 'पुत्रिकाधर्मशङ्कये'ति (३।११) प्रागविवाह्यत्वमुक्तम्। पुत्रिकैव कृताऽकृता वा पुत्रं समानजातीयाद्बोढुरुत्पादयेत्तेन दौहित्रेण पौत्रकार्यकरणात्पौत्रिकेयवान्मातामहः पौत्री। तथा चासौ तस्मै पिण्डं दद्यात्। **गोविन्दराजस्तु** 'अकृता वे'त्यपुत्रिकैव

दुहिता तत्पुत्रोऽपि मातामहधने पौत्रिकेय इव मातामह्यादिसत्त्वेऽप्यधिकारीत्याह – तन्न; पुत्रिकायाः पुत्रतुल्यत्वादपुत्रिकातत्पुत्रयोरतुल्यत्वेन तत्पुत्रयोस्तुल्यत्वायोग्यत्वादिति ।।१३६।।

(४) **राघवानन्दः**। दौहित्रस्य धनहरणादौ पुत्रिकाकरणमुपलक्षणमित्याह **अकृतेति**। सदृशात् सजातीयात् भर्तुः सुतं विन्देदुत्पादयेत्; तेन मातामहः पौत्री, स्वपुत्राभावे इति शेषः ।। १३६ ।।

(५) **नन्दनः**। पुत्रिकात्वेनाकृताया दुहिता तेन पौत्री स्यादिति शेषः। पुत्रः सन्तान-हीनाय मातामहाय पिण्डं दद्यात्तस्य धनं हरेत् ।। १३६ ।।

(७) **मणिरामः**। 'यदपत्यं भवेदस्यां तन्मम स्यात्स्वधाकर'मिति वाक्यमुच्चार्य या दीयते सा कृता। वागुच्चारणं विना मनसैव या एवं चिंतिता साऽप्रकृता। सदृशात् समान-जातीयात् वोढुः। तेन दौहित्रेण ।। १३६ ।।

## पुत्रेण लोकाञ्जयति पौत्रेणानन्त्यमश्नुते ।।
## अथ पुत्रस्य पौत्रेण ब्रध्नस्याप्नोति विष्टपम् ।। १३७ ।।

(१) **मेधातिथिः**। **पुत्रेण** जातेन तत्कृतेनोपकारेण **लोकान्स्वर्गादीन्दश** विशोकान् **जयति** प्राप्नोति, तत्रोत्पद्यत इति यावत्। एवं **पौत्रेणानन्त्यं** तेष्वेव चिरन्तनकालमवस्थानं लभते। पौत्रस्य पुत्रेण **ब्रध्नस्य विष्टपमादित्यलोकं प्राप्नोति**। प्राकाश्यमश्नुते, न केनचित्त-मसाऽऽव्रियते ।। १३७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। लोकान् स्वर्गम्। आनन्त्यं तदेव चिरस्थितम्। ब्रध्नस्य हिरण्यगर्भात्मनः सूर्यस्य। विष्टपं लोकम् ।। १३७ ।।

(३) **कुल्लूकः**। पुत्रेण जातेन स्वर्गादिलोकान्प्राप्नोतीति। पौत्रेण तेष्वेव **चिरकाल-मवतिष्ठते**, तदनन्तरं पुत्रस्य पौत्रेणादित्यलोकं प्राप्नोति। अस्य च दायभागप्रकरणेऽभिधानं पितुर्धने पत्न्यादिसद्भावेऽपि पुत्रस्य तदभावे पौत्रस्येत्येवं पुत्रसंतानाधिकारबोधनार्थम् ।। १३७ ।।

(४) **राघवानन्दः**। पुत्रादीनां त्रयाणां जन्ममात्रतः फलभेदमाह **पुत्रेणेति**। 'पुत्रेणायं लोक'इति श्रुतेः। आनन्त्यं पुत्रतः प्राप्तलोकेष्वेव चिरकालावस्थानम्। तत एव ब्रध्नस्य रवेः विष्टपं लोकं प्रपौत्रेणाप्नोतीत्यन्वयः ।। १३७ ।।

(५) **नन्दनः**। अकृतायाः पुत्रस्य मातामहरिक्थहरणेन पौत्रस्य तुल्यतामुपपादयि-ष्यन्निदं तावच्छृणुतेत्याह **पुत्रेणेति**। आनन्त्यं नाशरहितत्वम् ।। १३७ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। ब्रध्नस्य सूर्यस्य विष्टपं लोकं आप्नोति। 'भास्कराहस्करब्रध्ने'-त्यमरः ।। १३७ ।।

(७) **मणिरामः**। आनंत्यमश्नुते पुत्रोत्पत्त्या जितलोकेषु चिरकालं तिष्ठते। ब्रध्नस्य विष्टपं सूर्यलोकं ।। १३७ ।।

**पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्त्रायते पितरं सुतः ॥**
**तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा ॥ १३८ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। अपत्योत्पादनविधिशेषोऽयमर्थवादः। **पुंनामनरकं** चतुर्विधभूतोत्पत्तिः पृथिव्यां व्यपदिश्यते। ततस्**त्रायते** पुत्रो जातः, देवयोनौ जायत इत्यर्थः। **तस्माद्धेतोः पुत्र इति** व्यपदिश्यते ॥ १३८ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। पुंनाम्नो यत्रापुत्रैर्गन्तव्यम् ॥ १३८ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यस्मात्पुन्नामधेयनरकात्सुतः पितरं त्रायते तस्मात्त्राणादात्मनैव ब्रह्मणा पुत्र इति प्रोक्तः। तस्मान्महोपकारकत्वात्पुत्रस्य युक्तं तदीयपुंसन्तानस्य दायभागित्वमिति पूर्वदाढर्थ्यमिदम् ॥ १३८ ॥

(४) **राघवानन्दः**। पुत्रपदस्यान्वर्थफलमाह **पुमिति**। स्वतः पुत्रपौत्रानपेक्षया। स च कार्यविशेषः पुत्रस्यैव प्रोक्तः स्वयंभुवेति तद्वचनमेवात्र प्रमाणमिति भावः ॥ १३८ ॥

(५) **नन्दनः**। नरको दुःखं तस्य पुदिति नाम्नस्तस्मात्पितरं त्रायत इति पुत्र इति ॥ १३८ ॥

(७) **मणिरामः**। पुत्रशब्दस्य निरुक्तिमाह **पुन्नाम्नेति** ॥ १३८ ॥

**पौत्रदौहित्रयोर्लोके विशेषो नोपपद्यते ॥**
**दौहित्रोऽपि ह्यमुत्रैनं संतारयति पौत्रवत् ॥ १३९ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। अत्रापि दौहित्रः पुत्रिकापुत्र एव विज्ञेयः। **दौहित्रोऽपि ह्यमुत्रैनं संतारयति पौत्रवत्**। अथमप्यर्थवाद एव। विहितत्वादर्थस्य। एतयोर्विशेषो नास्ति। एकस्य माताऽन्यकुलीनाऽपरस्य पिता। तस्माद्**दौहित्रोऽप्यमुत्र** लोक **एनं** प्रेतं सन्तं सततं **संतारयति** नरकात्पूर्वस्मात् ॥ १३९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। नन्वेवं दौहित्रेण पुन्नामनरकत्राणं न स्यादित्यत आह **पौत्रेति**। पौत्रवत् लोकानन्त्यहेतुतया ॥ १३९ ॥

(३) **कुल्लूकः**। दौहित्रः पुत्रिकापुत्रः, पुत्रदौहित्रयोर्लोके कश्चिद्विशेषो न संभाव्यते; यस्माद्दौहित्रोऽपि मातामहं परलोके पौत्रवन्निस्तारयति। एतच्च पौत्रिकेयस्य पौत्रेण साम्यप्रतिपादनार्थं पुत्रिकाकरणानन्तरजातपुत्रेण सह धने तुल्यभागबोधनार्थम् ॥ १३९ ॥

(४) **राघवानन्दः**। 'पुत्रदौहित्रयोर्लोक' इत्यत्रापूर्तिं पूरयति **पौत्रेति**। संतारयतीति पूर्तिः। पौत्रेण पितामहान्तेभ्यो दीयते पिण्डादि तथाऽयमपि ददातीति भावः ॥ १३९ ॥

(५) **नन्दनः**। यथा पुत्रादिभिः पितुरभ्युदयस्तथा दौहित्रेणापीत्याह **पौत्रदौहित्रयोरिति**। यत एवमतोऽस्य मातामहरिक्थहारित्वमुपपन्नमिति प्रासङ्गिकम् ॥ १३९ ॥

(७) **मणिरामः**। दौहित्रः पुत्रिकापुत्रः ॥ १३९ ॥

**मातुः प्रथमतः पिण्डं निर्वपेत्पुत्रिकासुतः ॥**
**द्वितीयं तु पितुस्तस्यास्तृतीयं तत्पितुः पितुः ॥ १४० ॥**

(१) **मेधातिथिः**। 'स एव दद्याद्द्वौ पिण्डौ पित्रे मातामहाय च' (मनु. ९।१३२) इत्यत्र पुत्रिकापुत्रपिण्डदानं मातामहप्रक्रममुक्तम्। तस्मादयमपरः क्रमः पुत्रिकापुत्रपिण्डदानस्य। **मातुः प्रथमतः पिण्डं निर्वपेदित्येवमादि**। **द्वितीयं तु तस्या** एव पितुरित्यनुमन्तव्यम्।

ये तु पठन्ति 'पितुस्तस्येति' तत्प्रथमं पुत्रिकायै निरूप्य जनकाय निर्वपन्ति। **तत्पितुः पितुरिति** च जनकस्यैव पित्रे तृतीयम्। अस्मिंस्तु पक्षे मातामहाय पिण्डदानं स्यात् ॥ १४० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। तत्र श्राद्धक्रममाह **मातुरिति**। मातुः प्रथमपिण्डस्ततो मातुः पितामहस्येति। एवं कृते यदि पितुरपि पुत्रान्तरं नास्ति तदा पितृपितामहतत्पितॄणां दद्यादिति प्रागेवोक्तम् ॥ १४० ॥

(३) **कुल्लूकः**। पौत्रिकेयः प्रथमं मात्रे पिण्डं, द्वितीयं मातुः पित्रे, तृतीयं मातुः पितामहाय दद्यात्। पित्रादीनान्तु 'पित्रे मातामहाय चे'(९।१३२)त्युक्तत्वात्पितृक्रमेणैव पिण्डदानम् ॥ १४० ॥

(४) **राघवानन्दः**। पुत्रिकासुतस्यापूर्वं पिंडदानक्रममाह **मातुरिति**। तस्या मातुरित्युभयत्रान्वयः। तेन तस्याः पितुः पितुः पितुः प्रमातामहस्य मातृतः पितामहेभ्यः पिण्डत्रयं दद्यादिति। पुत्रिकाकरणपक्षे मातामहस्य मातामहादित्रिभ्यो दद्यादन्वष्टकायामपि तथैवेति विशेषः ॥ १४० ॥

(५) **नन्दनः**। 'अकृता वा कृता वे'(९।१३६)ति दुहितृपुत्रस्य दायं परिसमाप्य प्रकृतस्य पुत्रिका-पुत्रस्य कर्तव्यमाह **मातुः प्रथमत इति**। प्रथमतः प्रथमं पितुः तस्या इत्येव, मातुः पितामहस्येति यावत् ॥ १४० ॥

(७) **मणिरामः**। पुत्रिकापुत्रस्य पिंडदानक्रममाह **मातुरिति**। तस्याः स्वमातुः। तत्पितुः पितुः मातुः पितामहादयः ॥ १४० ॥

**उपपन्नो गुणैः सर्वैः पुत्रो यस्य तु दत्त्रिमः ॥**
**स हरेतैव तद्रिक्थं संप्राप्तोऽप्यन्यगोत्रतः ॥१४१॥**

(१) **मेधातिथिः**। "न भ्रातरो न पितरः पुत्रा रिक्थहराः पितुः" (मनु. ९।१८५) इति सर्वपुत्राणां रिक्थहरत्वमुक्तम् (वक्ष्यति?)। सति त्वौरसे प्रजीवनमात्रभाक्त्वं क्षेत्रजादीनाम्।

"एक एवौरसः पुत्रः पित्र्यस्य वसुनः प्रभुः। शेषाणामानृशंस्यार्थं प्रदद्यात्तु प्रजीवनमिति"॥ (मनु. ९।१६३)। अतोऽस्ति सिद्धमेव दत्त्रिमस्य रिक्थहरत्वम्। इदं तु वचनं सत्येवौरसे प्राप्त्यर्थमन्यथा न किंचिदनन क्रियते। कियांस्तु तस्य भाग इति विशेषादेशाभावात्समं औरसेनेति केचित्।

तदयुक्तम्; साम्ये ह्यभिधीयमाने यथैव पुत्रिकाप्रकरणे पठितमेवमत्राप्यपठिष्यत् "समस्तत्र विभागः स्यात्" (मनु. ९।१३४) इति। तस्मात्क्षेत्रजवत्षष्ठपंचमादिभागकल्पना कार्येत्युच्यते।

अत्राप्यस्ति वक्तव्यम्; यथैव भागविशेष उक्तः क्षेत्रजस्य "षष्ठं तु क्षेत्रजस्यांशम्" (मनु. ९।१६४) इति तथैव दत्तिमे वक्ष्यति। तस्मात्पुनर्वचने प्रयोजनं चिन्त्यम्।

**उपाध्याय**स्त्वाह—पुनर्वचनाद्विशेषनिर्देशाभावाच्च क्षेत्रजान्यूना कल्पना युक्ता, न त्वभागता, नापि समभागता, न क्षेत्रजतुल्यतेति ॥ १४१ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। दत्तिमो मातापितृदत्तः। यदि सर्वपुत्रगुणयुक्तस्तदा गोत्रान्तरे। तदृक्थं पितृधनभागमन्यथासर्वमृक्थं गृह्णीयात्। तेनामुख्यपुत्रोऽप्यतिशयितगुणवत्तायां मुख्यपुत्रवत् भागहर इत्युक्तम् ॥ १४१ ॥

(३) **कुल्लूकः**। 'पुत्रा रिक्थहराः पितुः' (९।१८५) इति द्वादशपुत्राणामेव ऋक्थहरत्वं वक्ष्यति। 'दशापरे तु क्रमशः' (९।१६५) इति औरसक्षेत्रजाभावे दत्तकस्य पितृ रिक्थहरत्वं प्राप्तमेव; अतः सत्यप्यौरसपुत्रे दत्तकस्य सर्वगुणोपपन्नस्य पितृरिक्थभागप्राप्त्यर्थमिदं वचनं। यस्य दत्तकः पुत्रोऽध्ययनादिसर्वगुणोपपन्नो भवति सोऽन्यगोत्रादागतोऽपि सत्यप्यौरसे पितृरिक्थभागं गृह्णीयात्। अत्र 'एक एवौरसः पुत्रः पित्र्यस्य वसुनः प्रभुः' (९।१६३) इत्यौरसस्य सर्वोत्कर्षाभिधानात्तेन नास्य समभागित्वं किन्तु क्षेत्रजोक्तषष्ठभागित्वमेवास्य न्याय्यम्। **गोविन्दराज**स्त्वौरसक्षेत्रजाभावे सर्वगुणोपपन्नस्यैव दत्तकस्य पितृरिक्थभागित्वार्थमिदं वचनमित्यवोचत्—तन्न, कृत्रिमादीनां निर्गुणानां पितृरिक्थभागित्वं, दत्तकस्य तु तत्पूर्वपठितस्यापि सर्वगुणोपपन्नस्यैवेत्यन्याय्यत्वात् ॥ १४१ ॥

(४) **राघवानन्दः**। 'पुत्रा रिक्थहराः पितुः' इति द्वादशसुतानां वक्ष्यमाणानामिव रिक्थहरत्वानुवदन्दत्तिमस्य तदाह **उपपन्न इति**। 'अप्यन्यगोत्रत' इत्यत्रापिशब्दात्स्वगोत्रतश्च। गुणैः विद्याविनयपितृश्रद्धादिपुत्रगुणैः। वक्ष्यमाणो दत्तिमश्चौरसक्षेत्रजाभावे रिक्थं संहरेत् ॥ १४१ ॥

(५) **नन्दनः**। अथ दत्तपुत्रस्य दायमाह **उपपन्न इति** ॥ १४१ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। 'उपपन्न' इति श्लोकद्वयस्य तात्पर्यम्। यस्मै दत्तो येन दत्तस्तयोरपि गोत्ररिक्थे हरेत्पुत्रोऽन्यगोत्रजोऽपि जनयितुः गोत्ररिक्थानपहारित्वे अन्यगोत्रऋक्थानुगः पिण्डो जनयितुर्ददतः स्वधा व्यपैति उभयपितुः श्राद्धं दूरीकरोति। 'उभावेकस्मिन्पित्रभेद' इति **साङ्ख्यायन**सूत्रेण प्रतिग्रहीतृजनयित्रोः पिण्डयोर्विधानात् ततश्चोभयोर्गोत्ररिक्थहरणपूर्वकं पिण्डद्वयं देयमित्यर्थः ॥ १४१ – १४२ ॥

(७) **मणिरामः**। औरसपुत्रे, विद्यमानेऽपि दत्तपुत्रस्यांशहरत्वमाह **उपपन्न इति**। उपपन्नः युक्तः ॥ १४१ ॥

**गोत्ररिक्थे जनयितुर्न हरेद्दत्त्रिमः क्वचित् ।।**
**गोत्ररिक्थानुगः पिण्डो व्यपैति ददतः स्वधा ।। १४२ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। इतश्च भागहरत्वं दत्त्रिमस्य तूक्तम्। यतो जनयितुः सकाशाद्गोत्रं धनं च न हरति, वंशादपेतत्वात्। गोत्ररिक्थग्रहणाभावे च पिण्डमपि जनयित्रे न ददाति। **गोत्ररिक्थानुगो** हि **पिण्डो** गोत्ररिक्थेऽनुगच्छति। यदीये गोत्ररिक्थे गृह्येते तस्मै पिण्डोदकदानाद्यौर्ध्वदेहिकं क्रियते।

**व्यपैति** तस्मान्निवर्तते। स्वधारकसाधनं पिण्डश्राद्धादि लक्ष्यते। तदेतत् योऽन्यस्मै स्वपुत्रं ददाति तस्मान्निवर्तते, न तस्य कर्तव्यमित्यर्थः। एष एव न्यायः कृत्रिमादीनां सहोढापविद्धद्व्यामुष्यायणानामुभयोपकारकत्वम्।

अन्ये तु **न हरेन्न** हारयेदित्यन्तर्भावितण्यर्थं व्याचक्षते। तेनोभयस्यापि द्व्यामुष्यायणवदुपकर्तव्यमित्याहुः।

उत्तरस्तूपकारोपक्रमः। तमेवं गमयन्ति। यदि गोत्ररिक्थे न हरेत्पुत्रस्तदा तु व्याख्येयम्। न चैतद्युक्तम्; न ह्यर्थान्तरभावे प्रमाणं वक्तव्यम्।। १४२ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अत्र दत्त्रिमस्य बीजिधनसंबन्धो न कथंचिदित्याह **गोत्रेति**। अत एव नासौ द्व्यामुष्यायणः, प्रतिग्रहीतृगोत्रत्वात्। किंतु देवरजपुत्रिकासुतावेव द्विपितृकत्वात्। गोत्ररिक्थानुगो गोत्रैकत्वे रिक्थहरणे च पिण्डदानमित्यर्थः। पुत्रं ददतस्तेन पुत्रेण कार्या स्वधा श्राद्धमपैति।। १४२ ।।

(३) **कुल्लूकः**। गोत्रधने जनकसंबन्धिनी दत्तको न कदाचित्प्राप्नुयात्। पिण्डश्च गोत्ररिक्थानुगामी यस्य गोत्ररिक्थे भजते तस्यैव स पिण्डो दीयते; तस्मात्पुत्रं ददतो जनकस्य स्वधा पिण्डश्राद्धादि तत्पुत्रकर्तृकं निवर्तते।। १४२ ।।

(४) **राघवानन्दः**। दत्त्रिमः किं जनयितुर्गोत्रधनपिण्डसंबन्धी न वेति संशये सत्याह **गोत्रेति**। 'गोत्ररिक्थे वसुनि रिक्थमृक्थधनं वस्वि'त्यमरः (?)। ते न प्राप्नोत्यतस्तद्दत्तपिण्डोऽपि पितरं न गच्छति। तत्र हेतुः—गोत्ररिक्थानुगः पिण्डो गोत्ररिक्थनिमित्तः। ददतो जनयितुः स्वधा व्यपैति। स्वधेत्युपलक्षणं, त्रिष्वप्यनधिकारीति भावः। औरसक्षेत्रजाभावे दशपुत्राः प्रकीर्तिता'इत्युक्तेस्तयोरभावे दत्त्रिमो 'धनभागि'ति **गोविन्दः**। तयोः सत्वेऽपि धनभाग्दत्त्रिमः। अन्यथा उपपन्न इत्यादि व्यर्थं विशेषणम्। अत आह **मेधातिथि**रिदं तु वचनं सत्यौरसे प्राप्त्यर्थमन्यथा न किंचिदनेन क्रियत इति।। १४२ ।।

(५) **नन्दनः**। **दत्त्रिमो जनयितुरिति**। दत्त्रिमो जनयितुर्गोत्ररिक्थे न भजेन्न स्वीकुर्यात् किन्तु स्वयं यस्मै दत्तस्तस्य गोत्ररिक्थे हरेत्। अत्र हेतुरपरार्धेनोच्यते गोत्ररिक्थेऽनुगच्छतीति गोत्ररिक्थानुगः स गोत्ररिक्थहारी च पिण्डदो नान्य इत्यर्थः; अतो ददतो जनयितुः स्वधा पिण्डप्रदानादिकं व्यपैति।। १४२ ।।

(७) **मणिरामः**। दत्तपुत्रः उत्पादकपितुर्धनं न प्राप्नोतीत्याह **गोत्रेति**। गोत्ररिक्थे गोत्रधने जनयितुः जनकसंबंधिनी। यस्मात् पिंडः गोत्ररिक्थानुगः यस्य गोत्रधनं गृह्णाति तस्मै पिंडं ददाति। तस्मात् ददतः पुत्रं ददतो जनकस्य स्वधा पिंडः श्राद्धादि व्यपैति निवर्तते। तथा च यस्मै पुत्रो दत्तस्तस्यैव धनं गृह्णाति पिंडं च तस्मै ददाति, जनकस्य तु न रिक्थभागी न वापि उद इत्यर्थः॥ १४२॥

**अनियुक्तासुतश्चैव पुत्रिण्याप्तश्च देवरात्॥**
**उभौ तौ नार्हतो भागं जारजातककामजौ॥ १४३॥**

(१) **मेधातिथिः**। अपुत्रे भर्तरि मृते पुत्रोत्पादने स्त्रिया गुरुनियोगोऽपेक्षितव्य इत्युक्तम् तस्यैवायमनुवादः। यः गुरुभिरनियुक्ता पुत्रार्थिनी पुत्रमुत्पादयेत्—'क्षेत्रं किलाहं भर्तुः, क्षेत्रजश्च पुत्रस्तदर्थहर' इत्यनया भ्रान्त्या—स तस्यां समुत्पन्नो न रिक्थहरः। यतः क्षेत्रजादिविशिष्टेन विधिनोत्पन्नस्य शास्त्रे क्षेत्रजव्यपदेशात्। तेनैव चास्य क्षेत्रजस्य रिक्थहरत्वमत्र वार्यते; पिण्डदानं तु न निषिध्यते। यद्यपि पतितोत्पन्नो भवति।

**नारदस्तु** विशेषं स्मरति—"जाता ये त्वनियुक्तायामेकेन बहुभिस्तथा। अरिक्थभाजस्ते सर्वे बीजिनामेव ते सुताः॥ "दद्युस्ते बीजिने पिण्डं माता चेच्छुल्कतो हृता। अशुल्कोपनतायां तु पिण्डदा वोढुरेव ते" (अ० १३ श्लो० १९–२०) इति सुतवचनात्कृत्रिमादिवदुत्पत्तिविध्यभावात्पुत्रमध्ये चापरिगणितत्वात् त्रैवर्णिकानां च बीजजाः प्रजीवनमात्रभागाः, न रिक्थहराः। यतोऽविशेषेण सर्वपुत्राणां भर्तरि प्रेते स्मर्यते–'ऊर्ध्वमपि पितुः' पुत्रोपकर्तव्यशिष्टस्य धनस्य विभाज्यत्वाल्लभेरन्नेव प्रजीवनम्। एवमेवौरसादिपुत्रस्य सपिण्डबीजकाः प्रजीवनमात्रभागाः कर्तव्याः। रिक्थहरत्वं तु नास्ति। परिगणितपुत्रविशेषोद्देशेन रिक्थहरत्वस्य श्रवणात्। उक्तं चैतत् उक्तानां "यद्येकरिक्थिनौ स्याताम्" (मनु० ९।१६२) इति।

अत्रानेन च दर्शनेनानियुक्तासुतादय इतरत्रानंशत्वाद्बीजिनो रिक्थं लभेरन्निति। रिक्थं प्रजीवनपर्याप्तमेतद्विज्ञेयम्। उक्तत्वादस्या भागार्थ एव दासीव भण्यते। या "सप्तैते दासयोनय" (मनु० ८।४१५) इति निरूपिता यासां प्रयोगार्थमवगन्तव्यं क्रियते। तस्यां जातो न दासः सुतव्यपदेशाभावः शूद्रस्यापि तज्जा ब्राह्मणादिवत्प्रजीवनभाजः।

अन्यस्त्वाह—नियतकर्मकरा अपि दासा भवन्ति। यथा स्नापकः प्रसाधकः पाचकः इति। एवं कामतोऽप्यवरुद्धा भक्ताच्छादनेन पोष्यमाणा दास्यो भवन्ति। एवं **पुत्रिण्या**-विद्यमाने पुत्रे **आप्तो देवरान्नियुक्तयाऽपि**। कथं **पुनः** पुत्रवत्या नियोगः? देवर एव कामार्थं नियुक्तः, पुत्रोत्पादनव्यपदेशेनेत्यभिप्रायः।

'**जारजातकत्व**'मुभयोः, '**कामजत्वं**' तु पुत्रवत्यां जातस्य। आद्यार्थायां पुत्रार्थैव प्रवृत्तिर्न कामतो लोभेन॥ १४३॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। नियोगापदोर्मिलितस्य देवरजस्य पुत्रत्वे निमित्तमाह **अनियुक्तेति**। असत्यपि पुत्रे नियोगादेव गुर्वादीनां प्रवर्तितव्यम्। एवं नियोगे सत्यपि स्वभर्तृजे सुतेऽसत्येव सैव चापदित्युच्यते। जारजातजकामजौ इत्युभयत्र। कामजः काममात्रोत्पादितः॥ १४३॥

(३) **कुल्लूकः**। यो गुर्वादिनियोगं' विना जातो यश्च सपुत्राया नियोगेनापि देवरादेः कामादुत्पादितस्तावुभौ क्रमेण जारोत्पन्नकामाभिलाषजौ धनभागं नार्हतः॥ १४३॥

(४) **राघवानन्दः**। निषेधप्रसंगेनान्यावपि भागित्वेन निषेधति **अनियुक्तेति**। अनियुक्ता अपुत्रा सती नियुक्ता वा पुत्रवती। तत्र हेतुः **जारेति**। जारादुपपतेर्जातं जन्म यस्य स जारजातकः। कामाज्जातः कामजः, पुत्रवत्या मातुः कामाज्जातः॥ १४३॥

(५) **नन्दनः**। अथ क्षेत्रजानपि कांश्चिद्दायानर्हान् श्लोकत्रयेणाह **अनियुक्तासुत इति**। गुरुभिरनियुक्तायां देवराज्जातः सुतः, नियुक्तया तु पुत्रिण्या देवरादाप्तश्च यथासंख्यं जारजातकामजातौ भागं नार्हतः॥ १४३॥

(७) **मणिरामः**। अनियुक्तासुतः गुर्वादिनियोगं विना जातः। पुत्रिकायाऽप्रश्चदेवरात्सपुत्राया नियोगेनापि देवरादेः कामादुत्पादितः॥ १४३॥

**नियुक्तायामपि पुमान्नार्यां जातोऽविधानतः॥**
**नैवार्हः पैतृकं रिक्थं पतितोत्पादितो हि सः॥ १४४॥**

(१) **मेधातिथिः**। **अविधानतः** शुक्लवस्त्रादिनियमत्यागो 'विधानाभावः'। स नार्हति रिक्थं, नासौ क्षेत्रज इत्यर्थः। नियमत्यागेन देवरभ्रातृजाययोः पुत्रोत्पादने प्रवर्तमानयोर्युक्तं पतितत्वम्। शास्त्रेण नियमितयोर्गमनानुज्ञानात्॥ १४४॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। एवं घृताभ्यङ्गादिनियमं विना पैतृकं क्षेत्रिणो बीजिनो वा धनम्॥ १४४॥

(३) **कुल्लूकः**। नियुक्तायामपि स्त्रियां घृताभ्यक्तत्वादिनियोगेतिकर्तव्यतां विना पुत्रो जातः स क्षेत्रिकस्य पितुर्धनं लब्धुं नार्हति; यस्मादसौ पतितेनोत्पादितो 'नियुक्तौ यौ विधिं हित्वे'(९।६३)त्यनेन पतितस्योक्तत्वात्॥ १४४॥

(४) **राघवानन्दः**। घृताभ्यक्तेतिकर्तव्यताशून्येन विनियुक्तोत्पन्नोऽपि रिक्थानर्हं इत्याह **नियुक्तायामपीति**। नार्यां स्त्रियाम्। अविधानत इति च्छेदः। पतितोत्पादितः विध्यतिक्रमेण पतितेन देवरेणोत्पन्नः॥ १४४॥

(५) **नन्दनः**। अविधानतः घृताभ्यक्तत्वादिविधिराहित्येन॥ १४४॥

(६) **रामचन्द्रः**। पैतृकं क्षेत्रिकपितृसंबन्धि। स नार्यां विधानतः घृताभ्यक्तजातः॥ १४४॥

(७) **मणिरामः**। अविधानतः घृताभ्यक्तत्वाद्युक्तेतिकर्तव्यतां विना॥ १४४॥

**हरेत्तत्र नियुक्तायां जातः पुत्रो यथौरसः।**
**क्षेत्रिकस्य तु तद्बीजं धर्मतः प्रसवश्च सः ॥ १४५ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। यथौरस इत्येतदत्र विधीयते ज्येष्ठांशप्राप्त्यर्थमन्यदा नोच्यते। अनेन विधानेन ज्येष्ठांश उद्धारः क्षेत्रजस्य प्राप्यते ज्येष्ठभार्याजातस्य। अतश्च यत्पुत्रसमांशभाक्त्वं 'उपसर्जनं प्रधानस्ये'त्यनेन तस्यायमपवादः। उभयस्य च प्रामाण्यात् विकल्पितस्य च गुणापेक्षया व्यवस्था। न ह्यन्यदस्य श्लोकस्य प्रयोजनमस्ति, प्रागुक्तत्वात् सर्वस्य।

**क्षेत्रिकस्य** क्षेत्रस्वामि**नस्तद्बीजं** तत्कार्यकरत्वात् प्रशंसयैवमुच्यते। अत एवाह **धर्मतः** धर्मेण शास्त्रीयया व्यवस्थया। तत्र प्रमाणांतरं दृश्येन रूपेण **प्रसवः** अपत्यम्। अर्थवादः श्लोकः ॥ १४५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। यदा तु यथोक्तविधिना जनितः क्षेत्रजस्तदाह—हरेद्धनम्। **यथौरस** इति समभागसिद्धचर्थम्। तच्च क्षेत्रिकस्यैव यतो भ्रातृबीजमपि तस्यैव तद्बीजं विनियोगादत एव तस्यैव प्रसवोऽपीत्यर्थः ॥ १४५ ॥

(३) **कुल्लूकः**। तत्र नियुक्तायां यो जातः क्षेत्रजः पुत्र औरस इव धनं हरेत्; यस्मात्तत्तस्य कारणभूतं बीजं तत्क्षेत्रस्वामिन एव, तत्कार्यकरणत्वात्। अपत्यमपि च धर्मतस्तदीयं तत् 'यवीयान् ज्येष्ठभार्यायां पुत्रमुत्पादयेद्यदि' (९।१२०) इत्यनेन क्षेत्रजस्य पितामहधने पितृव्येन सह समभागस्य प्रोक्तत्वात्। गुणवतः क्षेत्रजस्यौरसवत्स्वोद्धारभागप्राप्त्यर्थमिदमौरसतुल्यत्वाभिधानम् ॥ १४५ ॥

(४) **राघवानन्दः**। विधितः क्षेत्रजस्य धनहारित्वं सदृष्टान्तमाह **हरेदिति**। धर्मतो न्यायतः भूम्यादौ तथा निर्णीतत्वात्। क्षेत्रिकस्य तद्बीजं क्षेत्रान्तर्गतत्वात्। अतः प्रसवः पुत्रश्च ॥ १४५ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। नियुक्तायां विधिपूर्वकमुत्पन्नः ॥ १४५ ॥

(७) **मणिरामः**। नियुक्तायां जातः विधिना यः क्षेत्रजः। यथा औरसः औरस इव धनं हरेत् ॥ १४५ ॥

**धनं यो बिभृयाद्भ्रातुर्मृतस्य स्त्रियमेव च ॥**
**सोऽपत्यं भ्रातुरुत्पाद्य दद्यात्तस्यैव तद्धनम् ॥ १४६ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। विभक्तधनस्य भ्रातुरभावे विधिरयमुच्यते। पूर्वस्तु सह वसतः एतावान्पूर्वोत्तरयोर्विध्योर्विशेषः।

**सोऽपत्यं भ्रातुरुत्पाद्य** नियोगधर्मेणेति व्याख्येयम्। **दद्यात्तस्यैव** न पुनस्तदीयायै च मात्रे। अनेनैव च दर्शनेन स्त्रियो भरणार्हाः। न तु पतिधनैश्वर्य इति; अन्यथैव रक्ष्यमाणत्वात्। **तस्य तद्धनम्**। 'तस्य' विभक्तधनस्य 'धनं' दद्यादिति ॥ १४६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। बिभृयात् रक्षेत्। उत्पाद्योक्तविधिना दद्यात्तस्यैव नतु स्वयमप्यंशहरः ॥ १४६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यो मृतस्य भ्रातुः स्थावरजङ्गमं धनं पत्न्या रक्षणाक्षमया समर्पितं रक्षेत्तां च पुष्णीयात् स नियोगधर्मेण तस्यामुत्पादितस्य भ्रातुरपत्यस्य दद्यात्। एतच्च 'धनं यो बिभृयाद्भ्रातु' (९।१४६) रित्यभिधानाद्विभक्तभ्रातृविषयं 'यवीयाञ्ज्येष्ठभार्यायां'- (९।१२०) मिति समभागाभिधानात् ॥ १४६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। अपत्यार्थे विनियुक्तविधवापत्यस्य धनहारित्वमाह **धनमिति**। चेति धनापेक्षया समुच्चये। तद्धनं विभक्तभ्रातुर्धनम्। अपत्याभावे तु सा भर्तव्या नतु धनभाक्। 'ऋक्थं हरेते'त्यत्र श्लोके सह वसतोर्भ्रातुर्धनमौरसवत्क्षेत्रजोऽपि प्राप्नुयादिति भावः ॥ १४६ ॥

(५) **नन्दनः**। तद्धनं तस्य मृतस्य भ्रातुर्धनम् ॥ १४६ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। यः मृतस्य भ्रातुः स्त्रियं धनं बिभृयात् स भ्रातुः क्षेत्रे अपत्यमुत्पाद्य तस्यैव पुत्रस्य तद्धनं भ्रातृसंबन्धि धनं दद्यात् ॥ १४६ ॥

(७) **मणिरामः**। मृतस्य भ्रातुः धनं स्त्रियं च रक्षणपोषणार्थं यो गृह्णीयात्। सः पुत्रमुत्पाद्य नियोगधर्मेण तस्यामेव तस्यैव उतादितः पुत्रस्यैव ॥ १४६ ॥

**या नियुक्ताऽन्यतः पुत्रं देवराद्वाप्यवाप्नुयात् ॥**
**तं कामजमरिक्थीयं वृथोत्पन्नं प्रचक्षते ॥१४७॥**

(१) **मेधातिथिः**। अनियुक्तेति प्रश्लेषो द्रष्टव्यः। पूर्वोक्तेन च विरोधी यतः तथा सत्यनर्थक इति चेदुक्तः पौनरुक्त्यपरिहारः तत्र तत्र। पूर्वे तु न तमिच्छन्ति। ततश्चेयं व्याख्या। नियुक्तायामपि जातः पैतृकं रिक्थं नार्हति। **कामजमिति**।

यत्तु उत्तर उच्यते। यद्यपि नियोगात्प्रवर्तते न कामात्तथापि तत्र कामोऽवश्यभावी अत उच्यते **तं कामजमिति**। **मिथ्योत्पन्नं** यदर्थमुत्पादितस्तत्कार्यानर्हत्वादेवमुच्यते। एवं च पूर्वोक्तस्य भागार्हत्वस्य प्रतिषेधोऽयमतश्च विकल्पितम्। अनियुक्तेति पाठे पुनः पाठान्न संगच्छेतेतरामित्युपाध्यायः ॥ १४७ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। या अनियुक्तेति विभाव्यभावोपलक्षणम्। यथान्यतो जातो जारजस्तथा देवरादपि जात इति विशेषाभिधानार्थं पुनर्वचनम्। तेन देवरजन्यत्वमात्रेण विशेषो न शङ्कनीय इति तात्पर्यम्। मिथ्योत्पन्नं व्यर्थं जातं, धर्मानधिकारिणमित्यर्थः ॥ १४७ ॥

(३) **कुल्लूकः**। या स्त्री गुर्वादिभिरनुज्ञाता देवराद्वाऽन्यतो वा सपिंडात्पुत्रमुत्पादयेत्स यदि कामजो भवति तदा तमरिक्थभाजं मन्वादयो वदन्ति। अकामज एव रिक्थभागी। सच व्याहृतो **नारदेन** 'मुखान्मुखं परिहरन्गात्रैर्गात्राण्यसंस्पृशन्। कुले तदवशेषे च संतानार्थं न कामत'इति ॥ १४७ ॥

(४) **राघवानन्दः**। अनियुक्तासुत इत्यस्योक्तदोषोऽयं **येति**। अनियुक्तेति छेदः। अरिक्थीयं रिक्थिसंबन्धिभिन्नम्। अकामजस्तु **नारद**वचनात् ज्ञेयः। तथाहि 'मुखान्मुखं परिहरन् गात्रैर्गात्राण्यसंस्पृशन्। कुले तदवशेषे च संतानार्थं न कामत'इति। तल्लक्षणानाक्रान्तः कामज इति ध्येयम्॥ १४७॥

(५) **नन्दनः**। गुरुभिर्**नियुक्ता** देवरादन्यतोऽदेवराद्वा हरेत्। **तन्त्विति**। तन्त्वरिक्थं नियुक्तायां देवरे सपिण्डे वा॥ १४७॥

(६) **रामचन्द्रः**। या अनियुक्ता अरिक्थीयमभागार्हं उत्पन्नं यथाजातम्॥ १४७॥

(७) **मणिरामः**। नियोगेऽपि कामजं **नारदो**क्तविधिना नोत्पादितं। यथा 'मुखान्मुखं परिहरन् गात्रैर्गात्राण्यसंस्पृशन्' इति, किंतु सुखसंभोगेनोत्पादितं॥ १४७॥

**एतद्विधानं विज्ञेयं विभागस्यैकयोनिषु॥**
**बह्वीषु चैकजातानां नानास्त्रीषु निबोधत॥ १४८॥**

(१) **मेधातिथिः**। **एकयोनिषु** एकजातीयजानां सर्वहरत्वमेव। **नानास्त्रीषु** नानाजातीयास्विदानीं व्याचक्षते। **बह्वीष्वित्यनुवादः**। अन्ये तु विवक्षितं मन्यन्ते। नानाजातीयासु बह्वीषु जातानां वक्ष्यमाणा 'चतुरोंऽशान् हरेत्' (मनु. ९।१५३) इत्यादिभागव्यवस्था। एकस्यां तु विजातीयायां कदापि न प्रयुज्यते तस्येहासम्भवादग्रहणम्॥ १४८॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। एकयोनिषु सर्ववर्णस्त्रीमात्रजनितेषु। एकजातानां एकेन जनितानां नानास्त्रीषु भर्तृभिन्नवर्णस्त्रीषु जातानाम्। बह्वीष्वित्युपलक्षणम्, द्वयोरपि – यथा ब्राह्मणस्य ब्राह्मणीक्षत्रिययोः पुत्रेष्विति॥ १४८॥

(३) **कुल्लूकः**। समानजातीयासु भार्यास्वेकेन भर्त्रा जातानामेष विभागविधिर्बोद्धव्यः। इदानीं नानाजातीयासु स्त्रीषु बह्वीषूत्पन्नानां पुत्राणां विभागं शृणुत॥ १४८॥

(४) **राघवानन्दः**। एकजातीयस्त्रीजातानां विभागमुपसंहरन्विजातीयस्त्रीजातानां विभागं प्रतिजानीते **एतदिति**। एकयोनिषु समानजातीयासु। एकजातानामेकपितृकाणाम्। नानास्त्रीषु विजातीयास्वित्यनुषज्यते॥ १४८॥

(५) **नन्दनः**। एकयोनिष्वेकवर्णेषु एकजातानामेकेन पित्रा जातानां नानास्त्रीषु नानावर्णस्त्रीषु॥ १४८॥

(६) **रामचन्द्रः**। एकयोनिषु सवर्णासु। बह्वीषु भिन्नवर्णासु एकजातानां एकेन जातानाम्॥ १४८॥

(७) **मणिरामः**। एकयोनिषु समानजातीयासु भार्यासु एकेन भर्त्रा जातानां। वियोगस्य एतद्विधानं एष विभागविधिर्ज्ञेयः। नानास्त्रीषु नानाजातीयासु बह्वीषु एकजातानां एकेनोत्पन्नानां विभागं शृणुत॥ १४८॥

**ब्राह्मणस्यानुपूर्व्येण चतस्रस्तु यदि स्त्रियः ।।**
**तासां पुत्रेषु जातेषु विभागेऽयं विधिः स्मृतः ।। १४९ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । अनुपूर्वग्रहणं तृतीये दर्शितस्य क्रमस्यानुवादः । अयमपि वक्ष्यमाण-संक्षेपप्रतिज्ञानार्थः ।। १४९ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । आनुपूर्व्येण वर्णक्रमेण ।। १४९ ।।

(३) **कुल्लूकः** । ब्राह्मणस्य यदि क्रमेण ब्राह्मण्याद्याश्चतस्रो भार्या भवेयुस्तदा तासां पुत्रेषूत्पन्नेष्वयं वक्ष्यमाणो विभागविधिर्मन्वादिभिरुक्तः ।। १४९ ।।

(४) **राघवानन्दः** । तत्रादौ ब्राह्मणविषयकमाह **ब्राह्मणस्येति** । शूद्रायामननुमतिं सूचयति **यदीति** । विभागे कर्तव्ये, अयं वक्ष्यमाणः ।। १४९ ।।

(५) **नन्दनः** । अयं वक्ष्यमाणः ।। १४९ ।।

(७) **मणिरामः** । अयं वक्ष्यमाणः ।। १४९ ।।

**कीनाशो गोवृषो यानमलङ्कारश्च वेश्म च ।।**
**विप्रस्यौद्धारिकं देयमेकांशश्च प्रधानतः ।। १५० ।।**

(१) **मेधातिथिः** । कीनाशो वाहः । तथा च मन्त्रः "इन्द्र आसीत्सीरपतिः, कीनाशा आसन्मरुतः, यथा सुतं कीनाशा अभियंतु वाहैरिति" । **यानं** गन्त्र्यादिः । **अलङ्कारः** पितृधृता-ङ्गुलीयकादिः । **वेश्म** प्रधानम् । **एकांशश्च** यावन्तोंऽशास्तत एकः प्रधानभूतस्तस्य दातव्यः । ज्येष्ठस्य एतन्मध्यकादुद्धृत्य शिष्टं वक्ष्यमाणकल्पनया विभजनीयम् ।। १५० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । कीनाशः कर्षकः । गोवृषो गोषु रेतःसेकयोग्य उक्तः । यानमेकं किंचिद्रथादि । अलंकारः पितुस्तस्यैव । वेश्म च । विप्रस्य विप्रपुत्रस्य । औद्धारिकमुद्धारः । तथा एकांशो यावानस्य विभज्यभागस्य 'त्र्यंशं' (९।१५१) इत्यादिना वक्ष्यमाणस्य तृतीयांशस्तावानेक उद्धारभागः । प्रधानतो मुख्यधनादुत्कृष्टादित्यर्थः ।। १५० ।।

(३) **कुल्लूकः** । कीनाशः कर्षको गवां सेक्ता वृषो यानमश्वाद्यलङ्काराङ्गुलीयकादि, वेश्म गृहं च प्रधानं, यावन्तश्चांशास्तेष्वेकः प्रधानभूतोंऽश इत्येतद् ब्राह्मणीपुत्रस्योद्धारार्थं देयम्, अवशिष्टं वक्ष्यमाणरीत्या विभजनीयम् ।। १५० ।।

(४) **राघवानन्दः** । तत्रादौ सर्वद्रव्येभ्यः श्रेठ एकोंऽशो ब्राह्मण्यपत्याय देय इत्याह **कीनाश इति** । कीनाशः हालिकः । गोवृषः गोषु सेक्ता, उक्षेति यावत् । यानमश्वादि । वेश्म प्रधानम्, प्रधानतस्तस्यैव सर्वधर्मेषु प्राधान्यात् । औद्धारिकमुद्धारेण जयति संभवद्विषयम् ।। १५० ।।

(५) **नन्दनः** । कीनाशः कर्षकः एकांशश्च प्रधानद्रव्याणां संख्यासमं विभज्य तेष्वेकांशश्च विभज्य विप्रस्यौद्धारिकं देयम् ।। १५० ।।

(६) **रामचन्द्रः**। कीनाशः कर्षकः। गोवृषः गवां सेक्ता। अलंकारः पितुः। औद्धारिकः उद्धारः। विप्रस्य विप्रासुतस्य सर्वद्रव्यादुध्दृत्यैकांशः प्रधानतो देयः॥ १५०॥

(७) **मणिरामः**। कीनाशः कर्षकः। गोवृषः गवां भोक्ता। वेश्म च प्रधानं विप्रस्य ब्राह्मणं पुत्रस्य औद्धारिकं उदर-उद्धारत्वं। अवशिष्टं। वक्ष्यमाणरीत्या विभजनीयं॥ १५०॥

**त्र्यंशं दायाद्धरेद्विप्रो द्वावंशौ क्षत्रियासुतः॥**
**वैश्याजः सार्धमेवांशमंशं शूद्रासुतो हरेत्॥ १५१॥**

(१) **मेधातिथिः**। सत्यप्येकत्वश्रवणो द्विबहुष्वपि समांशेष्वेषैव कल्पना दर्शिता। विषमसंख्येषु तु कल्पना॥ १५१॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। इतरत्सर्वं सार्धसप्तभागान्कृत्वाऽनया व्यवस्थया विभज्यमित्यर्थः। अध्यर्धमेकमर्धाधिकम्। एतच्च यद्येकैक एव ब्राह्मण्यादिषु पुत्रस्तदा॥ १५१॥

(३) **कुल्लूकः**। त्रीनंशान्ब्राह्मणो धनाद् गृह्णीयात्, द्वौ क्षत्रियापुत्रः, सार्धं वैश्यापुत्रः, अंशं शूद्रासुतः। एवं च यत्र ब्राह्मणीक्षत्रियापुत्रौ द्वावेव विद्येते तत्र पञ्चधा कृते धने त्रयो भागा ब्राह्मणस्य, द्वौ क्षत्रियापुत्रस्य; अनयैव दिशा ब्राह्मणीवैश्यापुत्रादौ द्विबहुपुत्रादौ च कल्पना कार्या॥ १५१॥

(४) **राघवानन्दः**। तदनन्तरं सर्वद्रव्यं विभजनीयमित्यत्र प्रकारमाह **त्र्यंशमिति**। **दायाद्विभजनीयद्रव्यात्**। **अध्यर्धं** अर्धाधिकमंशम्॥ १५१॥

(५) **नन्दनः**। एवमुद्धारे च दत्ते परिशिष्टस्य विभागमाह **त्र्यंशं दायाद्धरेदिति**॥ १५१॥

(६) **रामचन्द्रः**। **विप्रः** विप्रासुतः॥ १५१॥

(७) **मणिरामः**। कृतोद्धारस्य विभागप्रकारमाह **त्र्यंशमित्यादि**। संपूर्णद्रव्यस्य सार्धसप्तभागं कृत्वा त्र्यंशादिब्राह्मण्यादिपुत्रेभ्यो देयं॥ १५१॥

(९) **भारुचिः**। वैश्या(जः सार्ध)मेवांशं शूद्रापुत्रोऽर्धमेव तु। निगदव्याख्यातांशप्रकृतिः। द्विर्बहुष्वपि समेष्वेवं विभज्य पश्चात् सजातयो विभजेरन्। पूर्ववद्विषमसंख्येषु तु शास्त्रं लिङ्गादुत्प्रेक्ष्यांशकल्पनाः॥ १५१॥

**सर्वं वा रिक्थजातं तद्दशधा परिकल्प्य च॥**
**धर्म्यं विभागं कुर्वीत विधिनाऽनेन धर्मवित्॥ १५२॥**

(१) **मेधातिथिः**। **रिक्थजातं** धनरूपम्। **धर्मप्रवचनाद्धर्म्यम्**। पूर्वोक्तं नानुमन्यते, वक्ष्यमाणप्रतिज्ञाश्लोकात्॥ १५२॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। यदा तु सर्वासामनेके सुतास्तदाह **सर्वं वेति**। अल्पपक्षे नोद्धारः। एतच्च समानेकपुत्रतायाम्॥ १५२॥

(३) **कुल्लूकः**। यद्वा सर्वं रिक्थप्रकारमनुद्धृतोद्धारं दशधा कृत्वा विभागधर्मज्ञो धर्मादनपेतं विभागमनेन वक्ष्यमाणविधिना कुर्वीत ॥ १५२॥

(४) **राघवानन्दः**। तत्रैव विकल्पमाह **सर्वं चेति** द्वाभ्याम्। धर्म्यं धर्मादनपेतम् ॥१५२॥

(५) **नन्दनः**। पक्षान्तरमाह **सर्वं वा रिक्थजातमिति**। अनेन वक्ष्यमाणेन धर्मविदिति विशेषणेनास्य पक्षस्य मुख्यता सूचिता ॥ १५२ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। अनेन विधिना वक्ष्यमाणलक्षणेन ॥१५२॥

(७) **मणिरामः**। उद्धारमदत्वा प्रकारांतरमाह **सर्वमिति**। सर्वं अनुद्धृतोद्धारं। अनेन वक्ष्यमाणविधिना ॥ १५२ ॥

(९) **भारुचिः**। धर्मवचनादत्र सर्वेषु यथोक्तकारिष्वयं विभागः ॥ १५२॥

**चतुरोंऽशान् हरेद्विप्रस्त्रीनंशान् क्षत्रियासुतः ॥**
**वैश्यापुत्रो हरेद् द्वयंशमंशं शूद्रासुतो हरेत् ॥ १५३ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। इह विशेषेणापि क्षत्रियादिपुत्राणां भागश्रवणे स्मृत्यन्तरे विशिष्टयोरागमयोरन्यो भागविशेषः श्रूयते—"न प्रतिग्रहभूर्येषा क्षत्रियायाः सुताय वै। यद्यप्येषां पिता दद्यान्मृते विप्रासुतो हरेत्" (बृह० स्मृ०) इति। प्रतिग्रहोपात्ता 'प्रतिग्रहभूः'। क्रयाद्युपात्ताया न निषेधः। तथाऽन्यत्र पठ्यते—"शूद्रायां तु द्विजाज्जातो न भूमेर्भागमर्हति" इति भूमिमात्रस्य शूद्रापुत्रे निषेधः।

एतच्च यत्रान्यद्धनमस्ति तद्विषयं द्रष्टव्यम्। अन्यथा दशमांशवचनमुपतिष्ठेत। धनान्तराभावे च जीविकैव न स्यात्। अहं तु ब्रुवे भागदानं तु निषिध्यते, प्रजीवनार्थत्वं चोपकल्पनमनिवारितमेव। को विशेष इति चेत्—भागपक्षे सर्वेण सर्वत्र स्वतोत्पत्तौ दानविक्रयादिष्वपि युज्यते। इतरत्र तूपजीवनं तदुत्पन्नस्य। व्रीह्योदनं च प्रजीवनं ब्राह्मणीपुत्रादेव शूद्रो लभते, किं भूमिभागकल्पनया; तथा चोक्तम्—"लभते तद्वृत्तिमूलमंतेवासिविधिना" (गौ० २८-३९) इति।

सत्यम्। पितृधननिमित्तं तु तस्य प्रजीवनं कल्पयितव्यम्। भागकाले च यदि न कल्प्येत, तदा द्विजातयो भ्रातरः कदाचिदसद्वृत्तयो निमित्तान्तरतो वा दानविक्रयादिनाऽपहरेयुः। उच्छिद्येत तदाऽस्य जीवनम्। विकल्पिते तु तदीयामनुज्ञामन्तरेण न लभन्तेऽन्यत्र नियोक्तुम् ॥ १५३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। चतसृणां विषमानेकपुत्रत्वे विप्रापुत्रलभ्यभागात्पादहीनः प्रत्येकः क्षत्रियासुतानामेवं वैश्यासुतानामर्धं शूद्रासुतानां पाद इति यथाविधि भागः पतति तथा विभजनीयमित्यर्थाल्लभ्यते। यदा तु ब्राह्मणीक्षत्रिययोरेवापत्यानि तदा सप्तांशता कृत्वा चतुरोंऽशानित्यादि। यदा तु ब्रह्मविजातीयभार्यात्रयपुत्रास्तदा नवांशान्कल्पयित्वा। एवं ब्राह्मणीवैश्याशूद्रापुत्रेषु सत्सु सप्तांशान्। विप्राशूद्रापुत्रेषु सत्सु पञ्चेत्याद्यूह्यम्। एवं क्षत्रियस्य

क्षत्रविट्शूद्रजातिभार्यात्रयपुत्रेषु सत्सु त्रयो द्वावेकांश इति षडंशा इत्यादिव्यवस्थोहनीया ॥१५३॥

(३) **कुल्लूकः**। चतुरो भागान्ब्राह्मणो गृह्णीयात्, त्रीन्क्षत्रियापुत्रो, द्वौ वैश्यापुत्रः, एकं शूद्राजः। अत्रापि ब्राह्मणीक्षत्रियापुत्रसद्भावे सप्तधा धने कृते—चत्वारो भागा ब्राह्मणस्य, त्रयः क्षत्रियापुत्रस्य, एवं ब्राह्मणीवैश्यापुत्रादौ द्विबहुपुत्रेषु च कल्पना कार्या ॥ १५३ ॥

(४) **राघवानन्दः**। विधिमेवाह **चतुर इति**। एवं चतुर्णां विभागे जाते तत्र यस्य सजातीया बहवो द्विजा वा भ्रातरः सतेभ्यः समतया विभजेदिति भावः (विकल्पस्याष्टदोषत्वाद्गुणवद्ब्राह्मणीपुत्रभेदेनैव वा व्यवस्थेति)' ॥ १५३ ॥

(७) **मणिरामः**। विधिमाह **चतुर इति** ॥ १५३ ॥

(९) **भारुचिः**। सोऽयमुच्यते—ऋज्वर्थांशकल्पनाः। अत्रापि पूर्ववत् समविषमसंख्येषु विभागो विज्ञेयः ॥ १५३ ॥

**यद्यपि स्यात्तु सत्पुत्रोऽप्यसत्पुत्रोऽपि वा भवेत् ॥**
**नाधिकं दशमाद्द्याच्छूद्रापुत्राय धर्मतः ॥ १५४ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **सत्पुत्रो** विद्यमानपुत्रः। ब्राह्मणीपुत्र एव वा विद्यमानो विवक्षितो, न द्विजातिपुत्रमात्रम्। अतश्चासति ब्राह्मणपुत्रे क्षत्रियवैश्ययोः सतोरप्यष्टमांशं लभते, केवले च वैश्यपुत्रे तृतीयम्। अन्ये त्वविशेषेण द्विजातिपुत्राभावोऽपुत्रपदेनोक्त इत्याहुः। अस्मिन्पक्षे सपिण्डगामि दशमांशशेषधनं शूद्रो लभते। इयं त्वदुष्टा व्यवस्था। यदा बहुधनं क्षेमे तदा दशमांशं हरेच्छौद्रः। अथ कतिपयजनजीवनपर्याप्तं तदा शूद्रपुत्रस्यैव।

क्षत्रियादीनां समानासमानजातीयास्त्रीजातानां स्मृत्यन्तरे (याज्ञ० २। १२५) विधिर्दर्शितः—"क्षत्रजास्त्रिद्व्येकभागा विड्जाः स्युर्द्व्येकभागिनः"। क्षत्रियाजाताः स्वजातीयविजातीयासु शूद्रपर्यन्तासु वर्णक्रमेण त्र्यादिभागहराः। तदा तेन स्वधनं क्षत्रियस्य शूद्राः षष्ठमंशं लभन्ते, विशश्च तृतीयम्।

अन्ये त्वस्य श्लोकस्य सामर्थ्यमाहुः। शूद्रपुत्राय यदा ददाति तदाऽनेन धनं सङ्कलय्य दशोंऽशो दातव्यो न तदधिकः सत्यपि स्वातन्त्र्ये। यथा वक्ष्यति (९। १५५)—"यदेवास्य पिता दद्यात्" इति।

अस्मिन्पक्षे 'स पुत्रो दद्यादि'ति समानाधिकरणे पदे उपपन्नतरे। इतरथा 'यस्य सदसत्पुत्रः पिता स दद्यादि'ति संबन्धो दुःश्लिष्टः स्यात्। सत्पुत्रपदेनास्य पुत्रादेरभिधानं, 'दद्यादि'ति जीवतः पुत्रसंपिंडादेः।

ततश्च यदि क्षत्रियवैश्यापुत्रौ न स्तः केवलौ ब्राह्मणशूद्रौ, तदा न शूद्रस्य दशम एवांशः, किं तर्हि? अत्यल्पं, नाधिकतरं, धनं लभते। यत्र दश गावः सन्ति तत्र चतस्रो ब्राह्मणस्य, एका शूद्रस्य, पञ्च क्षत्रियवैश्ययोः। यदा तौ न स्तः तदा पञ्च गावस्तयैव कल्पनया

ब्राह्मणशूद्राभ्यां विभजनीयाः। यदि सर्वा ब्राह्मण आदद्यान्न चांशहरः स्यान्न चतुरंशहरः। तस्मात् 'चतुरोंऽशान्हरेत्' (९। १५३) इति चतुर्षु भ्रातृषु सत्सु कल्पना। शूद्रस्यापि दशमोंऽशहरत्वं चतुर्ष्वेव। द्वयोस्त्रिषु चतुर्षूभयोर्भागाधिक्यम्॥ १५४॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। सत्पुत्र इत्युत्तमस्त्रीजातपुत्रवान् पिता अपुत्र इतरवर्णपुत्ररहितः। नाधिक इति शूद्रापुत्राय दशमं भागं दत्वा शेषं पत्न्यादिभिर्ग्राह्यमितरपुत्राभावेऽपीत्यर्थः॥ १५४॥

(३) **कुल्लूकः**। यदि ब्राह्मणो द्विजातिस्त्रीषु सर्वासु विद्यमानपुत्रः स्यादविद्यमानपुत्रो वा तथापि शूद्रापुत्रायानन्तराधिकारो यस्तेषु दशमभागादधिकं धर्मतो न दद्यात्। एवं च शूद्रापुत्रविषये निषेधादविद्यमानसजातिपुत्रस्य क्षत्रियावैश्यापुत्रौ सर्वरिक्थहरौ स्याताम्॥ १५४॥

(४) **राघवानन्दः**। पितुरिच्छया विभागेऽपि शूद्रापत्याय दशमो भागो देय इति नियमयति **यद्यपीति**। सत्पुत्रः विद्यमानपुत्रः ब्राह्मण्यादिचतसृष्वपि यस्य स सत्पुत्रः। तास्वेवाविद्यमानः पुत्रो यस्य सोऽपुत्र इति। धर्ममनुरुध्य दशमांशादधिकं न दद्यादिति नियमः। अत एव **याज्ञवल्क्यः** (व्य० १२५) 'चतुस्त्रिद्व्येकभागाः स्युर्वर्णशो ब्राह्मणात्मजाः। क्षत्रजास्त्रिद्व्येकभागा विड्जास्तु द्व्येकभागिन' इति॥ अत्र ब्राह्मणात्मजा ब्राह्मणाद्ब्राह्मण्यादिचतसृषु जाताः, एवं क्षत्रजादिष्वित्यन्वयः॥ १५४॥

(५) **नन्दनः**। सत्पुत्रः विद्यमानपुत्रः यद्यपि स्यात्। सपुत्रस्त्विति सम्यक्पाठः। नाधिकमंशं दशमादंशाच्छूद्रापुत्राय दद्यात्॥ १५४॥

(६) **रामचन्द्रः**। सत्पुत्रः विद्यमानब्राह्मणपुत्रः॥ १५४॥

(७) **मणिरामः**। सत्पुत्रः द्विजातिस्त्रीषु विद्यमानपुत्रः, एतादृशोऽपि ब्राह्मणः शूद्रापुत्राय एकांशमेव दद्यात् नाधिकं। क्षत्रियावैश्यापुत्रौ तु अविद्यमानब्राह्मणीपुत्रस्य स्वपितुः सर्वमेव धनं गृह्णीतः॥ १५४॥

(९) **भारुचिः**। सन्तः पुत्रा...यो यस्य सोऽयं सत्पुत्रः। यद्यपुत्रोऽपि वा भवेत्। तदभावे केवलः शूद्रापुत्रः। एवमपि नाधिकं दशभाक् तस्मै देयम्। असत्पिण्डा हरेयुः। तदभावे तद्धनस्य .... स्यायमुपदेशः, एतस्मादेव लिङ्गात् क्षत्रियवैश्यौ केवलावपि सन्तौ ब्राह्मणस्यासर्वरिक्थहरौ स्याताम्। इतरथा हि शूद्रप्रतिषेधोऽनर्थकः स्यात्॥ १५४॥

**ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्रापुत्रो न रिक्थभाक्॥**
**यदेवास्य पिता दद्यात्तदेवास्य धनं भवेत्॥ १५५॥**

(१) **मेधातिथिः**। **न रिक्थभाग्** द्विजातीनां **शूद्रापुत्रः**। किं सदा? नेत्याह—**यदेवास्य पिता दद्यात्** दायस्य। पित्रा दशमांशकल्पना कृता **तदेव** तत्तस्य, तदधिकं पैत्रिकं नान्यल्लभते।

तत्रापि **शङ्खेनोक्तं**—"न शूद्रपुत्रोऽर्थभागी। यदेवास्य पिता दद्यात्स एव तस्य भागो, गोमिथुनं त्वपरं दद्युर्विभागकाले भ्रातर" इति वाक्यशेषः।

अन्ये त्वनूढायाः शूद्रायाः पुत्रस्येमं विधिमिच्छन्ति। न ह्यत्र विवाहलिङ्गं किंचिदस्तीति ब्रुवन्तः। जातिविशेषवचनः शूद्राशब्दः। अतो यदेवास्य पिता दद्यात्, अतो यदस्य प्रजीवनं पित्रा दत्तं, तदेव दातव्यम्। अथ तेन काचित् विभागकल्पना कृता, यावज्जीवं जीवनाय, तदा तदेवास्य धनं न भ्रातृभिः किंचिद्दातव्यम्। यथा **गौतमः** (२८-३९) शूद्रापुत्रप्रकरण एवाह—"अपरिग्रहीतास्वपि शुश्रूषुश्चेल्लभेत वृत्तिमूलमन्तेवासिविधिना" इति।

तेषां मते क्षत्रियवैश्ययोरनूढयोर्जाता रिक्थहराः प्राप्नुवन्ति। तत्र च कियानंश इति न ज्ञायते। "यावानंश ऊढयो"रिति चेत्तत्रापि नोढाग्रहणं न लिङ्गं वचनं वास्ति।

'कथं नास्ति?' "एक एवौरसः पुत्रः" इति धर्मपत्नीष्वौरसो न चानूढयोर्जातानामौरसलक्षणमस्ति। उक्तं च 'अनियुक्तासुतश्चैवे'त्यादि"।

अथ "भ्रातृजायाविषयमेतत्। तत्र किल नियोगे विहितेऽनियुक्तासुत इति प्रतिषेधेऽपि तद्विषया बुद्धिरुपजायते"।

अत्राप्यस्ति तर्हि **जातमात्रेष्विति**। तस्मात्परस्त्रीषु नियोगेन विना 'अनियुक्तासुताः' सर्वेषां च तेषां प्रजीवनमुक्तम्॥ १५५॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। पितृदत्तं त्वधिकमपि लभ्यत एवेत्याह **ब्राह्मणेति**। न रिक्थभागदशमांशाधिकरिक्थभाक्। तदेव धनमधिकं लभ्यम्॥ १५५॥

(३) **कुल्लूकः**। ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानां शूद्रापुत्रो धनभाक् न भवति, किन्तु यदेव धनमस्मै पिता दद्यात्तदेव तस्य भवेत्। एवं च पूर्वोक्तविभागनिषेधाद्विकल्पः, सच गुणवदगुणापेक्षः। अथवाऽनूढशूद्रापुत्रविषयोऽयं दशमभागनिषेधः॥ १५५॥

(४) **राघवानन्दः**। पुत्रकर्तृकविभागे तु गुणहीनः शूद्रापुत्रो न दायभागित्याह **ब्राह्मणेति**। पितृतः प्राप्तधनस्य तस्य नांशोऽन्यथैकांश इत्युक्तम्। वस्तुतस्तु 'ज्येष्ठस्य विंश उद्धार'इत्याद्युक्तगुणवद्विषयम्॥ १५५॥

(५) **नन्दनः**। किमयं दशमोंऽशः शूद्रापुत्राय देयो नेत्याह **ब्राह्मणक्षत्रियविशामिति**॥ १५५॥

(६) **रामचन्द्रः**। **ब्राह्मणेति**। अंशभाग्ब्राह्मणः पुत्रः निर्गुणः॥ १५५॥

(७) **मणिरामः**। अनूढशूद्रापुत्रविषयमाह **ब्राह्मणेति**॥ १५५॥

(९) **भारुचिः**। पित्रधीनोऽस्यांश इत्ययमपरः कल्पो गुणसम्बन्धापेक्षः पूर्वविधेः। एवं च इति पूर्वोत्तरयोर्विरोधादनयोर्विकल्पो गुण...त्वापेक्षः। अथवा अनूढाशूद्रापुत्रस्यायं विधिज्ञयः। पूर्वस्तूढापुत्रस्य। तथा च **गौतमः** शूद्रप्रकरण आह—'अपरिगृहीतास्वपि शुश्रूषुश्चेल्लभेत तद्वृत्तिमूलान्तेवासिविधिना'॥

**समवर्णासु ये जाताः सर्वे पुत्रा द्विजन्मनाम् ।।**
**उद्धारं ज्यायसे दत्वा भजेरन्नितरे समम् ।। १५६ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **वा**शब्दो द्वितीयं विकल्पमन्तरेणानुपपद्यमानः प्रकृतमपेक्ष्य निराकाङ्क्षो भवति। समवर्णास्वसमवर्णासु वा शूद्रस्यैव सर्वधनहरत्वनिषेधाद् द्विजातिविषयमेव विज्ञायते। तेन ब्राह्मणस्यासति ब्राह्मणीपुत्रे क्षत्रियादिजाताः सर्वधनहरा भवन्तीत्युक्तं भवति। एवं क्षत्रियस्य वैश्यापुत्रः।

न त्वयमर्थः '**उद्धारं ज्यायसे दत्वा** सर्वेऽ**सवर्णा जाताः समं** सवर्णापुत्रै**र्भजेरन्**, प्रागुक्तैकांशापचयविरोधात्।

यद्यप्युक्तं 'निर्गुणेषु सवर्णापुत्रेषु गुणवत्स्वितरेषु युक्तमेव साम्यम्'। तथा चोक्तं 'सवर्णापुत्रो अन्यायवृत्तो न लभेत केषामिति' (गौ० २८/४०),—तदेतदसत्; जातेरत्यन्तभान्यत्वात्। "उत्पन्नो वाऽर्थस्वाम्यमित्याचार्या" इति। तेनेयमत्र व्याख्या— असत्सु सवर्णेष्वसवर्णास्वपि ये जातास्तेऽपि ज्यायोंऽशमुद्धारेण सवर्णाद्विभजेरन् ।। १५६ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **समेति**। समवर्णमात्रपुत्रत्वे उद्धारोद्धरणं 'ज्येष्ठस्य विंश उद्धार' (९।११२) इत्यादि नान्यथेत्यर्थः ।। १५६ ।।

(३) **कुल्लूकः**। द्विजातीनां समानजातिभार्यासु ये पुत्रा जातास्ते सर्वे ज्येष्ठायोद्धारं दत्वाऽवशिष्टं समभागं कृत्वा ज्येष्ठेन सहान्ये विभजेरन् ।। १५६ ।।

(४) **राघवानन्दः**। अयं त्वगुणवद्विषय इत्याह **समेति**। उद्धारं किंचिच्छ्रेष्ठद्रव्यम् ।। १५६ ।।

(५) **नन्दनः**। अथ पितृतोऽसवर्णानां मातृसवर्णानां विभागमाह **समवर्णास्विति** ।।१५६।।

(६) **रामचन्द्रः**। द्विजन्मनां ब्राह्मणक्षत्रियविशां सर्वद्रव्यात् वरं ज्यायसे वर्णश्रेष्ठाय उद्धारमुद्धृत्य दत्वा पश्चादितरे भ्रातरः समं विभजेरन् ।। १५६ ।।

(७) **मणिरामः**। ज्यायसे ज्येष्ठाय ।। १५६ ।।

(९) **भारुचिः**। 'समवर्णासु वा जाता ज्यायसे मानवर्धनम्' यत्किञ्चिद्दत्वा भजेरन्नितरे समम्। हीनजातिगुणवत्तरेष्वयं विधिः सामर्थ्याद्विज्ञेयः ।। १५६ ।।

**शूद्रस्य तु सवर्णैव नान्या भार्या विधीयते ।।**
**तस्यां जाताः समांशाः स्युर्यदि पुत्रशतं भवेत् ।। १५७ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। प्रतिलोमविवाहः शूद्रस्य नेष्यते। उक्तानुवादोऽयम्। **तस्यां जाताः समांशाः स्यु**रिति। पञ्चमस्य जात्यन्तरस्याभावादेवमुक्तम्। सवर्णैव तस्य भार्या, नान्याऽस्तीति ।। १५७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। समांशाः स्युर्न तूद्धार इत्यर्थः ।। १५७ ।।

(३) **कुल्लूकः**। शूद्रस्य पुनः समानजातीयैव भार्योपदिश्यते, नोत्कृष्टाऽवकृष्टा वा, तस्यां च ये जातास्ते यदि पुत्रशतमपि तदा समभागा एव भवेयुः। तेनोद्धारः कस्यचिन्न देयः ॥ १५७ ॥

(४) **राघवानन्दः**। शूद्रस्यासवर्णाभावमनुवदंस्तत्पुत्राणां सम एव विभाग इत्याह **शूद्रस्येति**। पुत्रशतं भवेदिति कैमुत्यम् ॥ १५७ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। समांशाः स्युः सममंशं गृह्णीयुः ॥ १५७ ॥

(७) **मणिरामः**। शूद्रस्य पुत्रेषु विभागमाह **शूद्रस्य त्विति** ॥ १५७ ॥

(९) **भारुचिः**। शूद्रायां शुद्धायामिदमुच्यते । अन्यासूत्कृष्टापकृष्टासु धर्माधर्मापेक्षया विभागः कल्पयितव्यः ॥ १५७ ॥

**पुत्रान्द्वादश यानाह नृणां स्वायंभुवो मनुः ॥**
**तेषां षड्बन्धुदायादाः षडदायादबान्धवाः ॥ १५८ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। वक्ष्यमाणसूत्रस्थानमेतत्। **बन्धुशब्दो** बान्धवपर्यायः। गोत्रहरा दायहराश्च षट्, इतरे विपरीताः। यदत्र तत्त्वं तदुपरिष्टान्निदर्शयिष्यते ॥ १५८ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। बन्धुदायादाः बन्धूनां पितृव्यादीनां पुत्रपत्नीदुहित्राद्यभावे दायस्य तद्धनस्यादातारः। उत्तरे तु न दायादा दायग्राहकाः पितृव्यादीनां किंतु पुत्रपत्न्यादिविरहेऽपि तेषां गोत्रजादय एव धनहरानमी बन्धवस्तूदकदानाद्यधिकारिणो भवन्ति। अदायादा अबान्धवा एवेत्यस्यार्थः ॥ १५८ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यान्द्वादश पुत्रान्हैरण्यगर्भो मनुराह तेषां मध्यादाद्याः षड् बान्धवाः गोत्रदायादाश्च, तस्माद्बान्धवत्वेन सपिण्डसमानोदकानां पिण्डोदकदानादि कुर्वन्त्यनन्तराभावे च गोत्रदायं गृह्णन्ति। पितृरिक्थभाक्त्वस्य 'पुत्रा रिक्थहराः पितु'रिति (९।१८५) द्वादशविधपुत्राणामेव वक्ष्यमाणत्वात्, उत्तरे षट् न गोत्रधनहरा भवन्ति। बान्धवास्तु भवन्ति, ततश्च बन्धुकार्यमुदकक्रियादि कुर्वन्ति। **मेधातिथिस्तु**'षडदायादबान्धवा' इत्याद्युत्तरषट्कस्यादायादत्वमबान्धवत्वं चाह–तन्न; **बौधायनेन** बन्धुत्वस्याभिहितत्वात्। तदाह (बौ. स्मृ. २।२।३७) 'कानीनं च सहोढं च क्रीतं पौनर्भवं तथा। स्वयंदत्तं निषादं च गोत्रभाजः प्रचक्षते' ॥ १५८ ॥

(४) **राघवानन्दः**। ते पुत्राः कतिविधा इत्यपेक्षायां पूरयन् तेषु दायभाजमाह **पुत्रानिति**। बन्धुदायादाः गोत्रपिण्डोदकदानधनग्रहणप्रयोजनाः। अदायादबान्धवाः दायमंशं न लभन्तेऽथ च बन्धुवदुदकदाननेनोपकुर्वन्ति, उदकमात्रप्रयोजना इति भावः ॥ १५८ ॥

(५) **नन्दनः**। एवमौरसानां सवर्णानां समवाये विभाग उक्तः, इदानीमौरसानां क्षेत्रजादीनाञ्च समवाये विभागं विवक्षन्पुत्राणां द्वैविध्यं तावदाह **पुत्रान् द्वादश यानिति**।

बन्धवो दायादाश्च बन्धुदायादाः पिण्डप्रदाः सगोत्रबान्धवाः। 'अदायादबान्धवा' इत्यत्र दायादत्वं बन्धुत्वञ्च निषिध्यते, न ज्ञातिर्निषिध्यते। दायादत्वमेवेति केचित् ॥ १५८ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। तेषां षड्बन्धुदायादाः बन्धुकृत्योदकदानादिकारिणः बन्धुदायादाः। षड् दायादबान्धवाः ॥ १५८ ॥

(९) **भारुचिः**। दायविभागप्रकरणापेक्षः पुत्राणामप्युपदेशोऽत्र तस्य सूत्रस्थानीयस्येदं भाष्यम् तत्स्वरूपनिर्देशार्थं भवति ॥ १५८ ॥

**औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिम एव च ॥**
**गूढोत्पन्नोऽपविद्धश्च दायादा बान्धवाश्च षट् ॥ १५९ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। श्लोकद्वयेन संख्यानिर्देशो वर्गद्वयप्रदर्शनार्थः ॥ १५९-१६० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। 'औरस–कानीन' इति श्लोकावेतौ द्विभागार्थौ। अत्र पुत्रिकापुत्रस्यौरसतुल्यतया पृथगभिधानम् ॥ १५९-१६० ॥

(३) **कुल्लूकः**। औरसादयो वक्ष्यमाणाः षट् रिक्थभाजो बान्धवाश्च भवन्ति ॥ १५९ ॥

(४) **राघवानन्दः**। पुत्राणां द्वादशत्वं विभजन्दायादानाह **औरस** इति द्वाभ्याम्। एषां लक्षणानि वक्ष्यमाणानि। अत्रापि पूर्वषट्काभावे उत्तरोत्तरो गोत्ररिक्थभाक्। तथा च **बौधायनः** 'कानीनं च सहोढं च क्रीतं पौनर्भवं तथा। स्वयंदत्तं निषादं च गोत्रभाजः प्रचक्षत' इति ॥ अत्र गोत्रपदं रिक्थाद्युपलक्षणम्, गोत्ररिक्थहराः पितुरित्येकवाक्यनिर्दिष्टत्वात् ॥ १५९-१६० ॥

(५) **नन्दनः**। पुत्रिकापुत्रस्य पौत्रतुल्यतया पुत्रेष्वनुपादानं क्षेत्रजशब्देन संगृहीतत्वाच्चेति ॥ १५९ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। द्वाभ्यामाह **औरस इति**। औरसः १ क्षेत्रजः २ दत्तः ३ कृत्रिमः ४ गूढोत्पन्नः ५ अपविद्धः ६ ॥ १५९ ॥

(७) **मणिरामः**। षड् दायादानाह **औरस इति** ॥ १५९ ॥

(९) **भारुचिः**। कार्यार्थोऽयं वर्गप्रविभागः पुत्राणाम्। तच्च वक्ष्यति ॥ १५९ ॥

**कानीनश्च सहोढश्च क्रीतः पौनर्भवस्तथा ॥**
**स्वयंदत्तश्च शौद्रश्च षडदायादबान्धवाः ॥ १६० ॥**

(३) **कुल्लूकः**। कानीनादयो वक्ष्यमाणलक्षणाः षड् गोत्ररिक्थहरा न भवन्ति, बान्धवाश्च भवन्तीति व्याख्यातम् ॥ १६० ॥

(६) **रामचन्द्रः**। कानीनः ७ सहोढः ८ क्रीतः ९ पौनर्भवः १० स्वयंदत्तः ११ शूद्रायामुत्पन्नः शौद्रः १२ षडदायादबान्धवाः ॥ १६० ॥

(७) **मणिरामः**। अदायादानाह **कानीन इति** ॥ १६० ॥

**यादृशं फलमाप्नोति कुप्लवैः संतरन् जलम् ॥**
**तादृशं फलमाप्नोति कुपुत्रैः संतरंस्तमः ॥ १६१ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। क्षेत्रजादीनामौरसेन सहोपदेशात्तुल्यत्वाशङ्का। तन्निषेधार्थमिदम्। न तुल्यमौरसेनोपकारं कर्तुं शक्ताः कुपुत्राः क्षेत्रजादयः। असत्यपि विशेषश्रवणे प्रकृतत्वादेवं व्याख्यानयन्ति। अन्ये तु कुपुत्रानन्नियुक्तासुतान्मन्यन्ते।

एतदुक्तं भवति– नैतेषु सत्सु पुत्रवानहमिति कृतिनमात्मानं मन्यन्ते। किं तर्ह्यौरसोत्पादने पुनरपि यत्नवता भवितव्यम्।

**तमः** पारलौकिकं दुष्कृतकर्मजं दुःखं ऋणानपाकरणनिमित्तं "सप्रजया पितृभ्य" इति ॥ १६१ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। कुप्लवैर्दूरप्लवनासमर्थैः प्लवैः गुणं पारगमनरूपं क्लेशेनाप्नोति। कुपुत्रैरमुख्यत्रैः (?) तमो नरकं संतरता। एतेन नात्यन्तफला एवेत्युक्तम् ॥ १६१ ॥

(३) **कुल्लूकः**। औरसेन सह क्षेत्रजादीनां पाठात्तुल्यत्वाशङ्कायां तन्निरासार्थमाह **यादृशमिति**। तृणादिनिर्मितकुत्सितोडुपादिभिरुदकं तरन् यथाविधं फलं प्राप्नोति तथाविधमेव कुपुत्रैः क्षेत्रजादिभिः पारलौकिकं दुःखं दुरुत्तरं प्राप्नोतीति। **अनेन** क्षेत्रजादीनां मुख्यौरसपुत्रवत्संपूर्णकरणक्षमत्वं न भवतीति दर्शितम् ॥ १६१ ॥

(४) **राघवानन्दः**। सत्पुत्रेष्वेव यतितव्यमित्यर्थवादेन दृढयति **यादृशमिति**। कुप्लवैस्तृणादिनिर्मितैः। फलं शीतादिकं दुःखं प्राप्नुवन्नपि तीर्णो भवत्येवम्। तमः पिण्डोदकाद्यदानकृतनरकम्। कुपुत्रैर्दत्तं मुख्यं न भवतीति भावः ॥ १६१ ॥

(५) **नन्दनः**। कुपुत्राणां पित्रापकारित्वं दायादत्वप्रतिपत्त्यर्थमाह **यादृशं फलमिति**। कुपुत्रैर्निर्गुणैरनियुक्तापुत्रादिभिश्च। तमो नरकम् ॥ १६१ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। कुप्लवैः कुत्सितप्लवैर्जलं संतरन् यादृशं गुणं दुःखमाप्नोति तादृशं गुणं कुपुत्रैः तमः नरकं संतरन् तादृशं गुणं दुःखं आप्नोति। 'उडुपं तु प्लवः कोल' इत्यमरः ॥ १६१ ॥

(७) **मणिरामः**। कुप्लवैः तृणादिनिर्मितैः। कुपुत्रैः क्षेत्रजादिभिः तमः पारलौकिकं दुःखम्। अनेन क्षेत्रजादीनां मुख्यौरसपुत्रवत् संपूर्य कार्यकरणक्षमत्वं न भवतीति दर्शितम् ॥ १६१ ॥

(९) **भारुचिः**। सहोपदेशादौरसेन साम्यं मा भूत् क्षेत्रजादीनामित्यत इदमुच्यते। अनेकलिङ्गेन सर्वे क्षेत्रजादयोऽपुत्रस्य पुत्रकार्याणि कुर्युः, सर्वे च दायं गृह्णीयुः। कानीनादीनामदायदत्तमुक्तमपाक्षिकं तदिति व्याख्यातम् ॥ १६१ ॥

**यद्येकरिक्थिनौ स्यातामौरसक्षेत्रजौ सुतौ ।।**
**यस्य यत्पैतृकं रिक्थं स तद्गृह्णीत नेतरः ।। १६२ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । क्लीबस्य प्रागुपात्ते क्षेत्रजे 'यस्तल्पजः प्रमीतस्य व्याधितस्य वे'ति, पश्चादौषधे कथंचित् क्लीबत्वनिवृत्तौ संभवति, तदीयमेवासौ रिक्थं लभेतेति ।

जनयितुर्यदि नाम पितृव्यपदेशः स्यादपि जननहेतुकः, तस्मादपि पुत्रः सुतोऽयमुपचारात्क्षेत्रज इत्युक्तः । तत्रौरसेन पितृधने गृहीते । कथंचित् जनयितुः अन्यदपत्यन्योत्पादितं भवतीति । न च 'परा'यत्तमेव प्रीत्यादिना धनं कृतं न चास्य सपिण्डाः सन्ति । अस्यामवस्थायां यद्यस्य पित्र्यमुपपद्यते एतदेव लिङ्गम् । अनियुक्तासुतादयोऽसत्सु सपिण्डेषु जनयितू रिक्थहरा भवंतीति ।

अन्ये तु व्याचक्षते—सति दायादे समुत्पन्नः क्षेत्रजः स जनयितुर्लभते रिक्थं, न क्षेत्रिकात्, सत्यौरसे । उक्तश्च तस्य सत्यौरसे भागः "औरसक्षेत्रजौ पुत्रौ पितू रिक्थस्य भागिनौ" इति । तथा "षष्ठं तु क्षेत्रजस्यांशम्" इति । एकरिक्थिनौ एकहस्तस्थधनौ यथा च तौ भवतस्तथा दर्शयति ।। १६२ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । अविभक्ते भ्रातरि मृते तद्धनं गृहीत्वा तत्पत्न्यां देवरेण पुत्र उत्पादिते तस्यापि सपुत्रत्वे पश्चात्तस्मिन्मृते विभागे क्रियमाणे क्षेत्रजस्य क्षेत्राधिपस्य पितुर्भागमात्रं नतु बीजिधनादपि भागोऽस्तीत्यर्थः ।। १६२ ।।

(३) **कुल्लूकः** । 'अपुत्रेण परक्षेत्रे नियोगोत्पादितः सुतः । उभयोरप्यसौ रिक्थी पिण्डदाता च धर्मत'इति **याज्ञवल्क्यो**(व्यव. ८।१२७)क्तविषये । यदा क्षेत्रिकस्य पितुः क्षेत्रजानन्तरमौरसः पुत्रो भवति तदा तावौरसक्षेत्रजावेकरिक्थिनौ एकस्य पितुर्यद्यपि रिक्थार्हौ भवतस्तथापि यद्यस्य जनकसंबन्धि तदेव स गृह्णीयान्न क्षेत्रजः क्षेत्रिकपितुः । यत्तु वक्ष्यति (९।१६४) 'षष्ठे तु क्षेत्रजस्यांशं प्रदद्यात्पैतृकाद्धनात् । औरसो विभजन्दायमि'ति, तत्पुत्रबहुलस्य । यत्तु **याज्ञवल्क्येनो**भयसंबन्धिरिक्थहरत्वमुक्तं तत्क्षेत्रिकपितुरौरसपुत्राभावे बोद्धव्यम् । **मेधातिथि-गोविन्दराजौ** तु औरसमनियुक्तापुत्रं च विषयीकृत्येमं श्लोकं व्याचक्षाते—तन्न; अनियुक्तापुत्रस्याक्षेत्रजत्वात् 'अनियुक्तासुतश्चे'(९।१४३)त्यनेन तस्य रिक्थग्रहणनिषेधात् 'यद्येकरिक्थि'(९।१४३) इत्यनन्वयाच्च ।। १६२ ।।

(४) **राघवानन्दः** । तत्र यस्य विधितः क्षेत्रजादूर्ध्वमौरसो जातस्तस्य धनमौरस एव प्राप्नोतीत्याह **यदीति** । एकरिक्थिनावेकस्य पितुः नेतरः क्षेत्रजः । यस्तु 'अपुत्रेण परक्षेत्रे नियोगोत्पादितः सुतः । उभयोरप्यसौ रिक्थी पिण्डदाता च धर्मत'इति **याज्ञवल्क्य**(व्यव. १२७)-वचनात्तदौरसाभावविषयम् । भावे तु क्षेत्रिणः स्वमौरसो हरेत् । बीजिनः 'स्वं क्षेत्रज'इति आह **यस्य यदीति** । यदि बीजिनो धनमस्ति न चेदौरसनियुक्तापुत्रयोर्नियुक्तापुत्रस्य षष्ठांशस्य वक्ष्यमाणत्वादिति **गोविन्दराजमेधातिथी** ।। १६२ ।।

(५) **नन्दनः**। एकरिक्थिनावविभक्तधनौ यत्र कुले भ्रात्रोरेकस्यौरसः पुत्रोऽपरस्य क्षेत्रजस्तौ च भ्रातरौ विभक्तधनौ मृतौ विभक्तधनयोरपि मृतयोः पश्चात्पितामहो मृतस्तद्विषयमेतद्वचनम् ॥ १६२ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। एकस्य रिक्थिनौ सुतौ स्यातां औरसक्षेत्रजयोः यस्यौरसस्य यत्पैतृकं रिक्थं अंशः तत्स गृह्णीयात् नेतरः, इतरः क्षेत्रजो न गृह्णीयात् ॥ १६२ ॥

(७) **मणिरामः**। 'अपुत्रेण परक्षेत्रे नियोगोत्पादितः सुतः। उभयोरप्यसौ रिक्थी पिंडदाता च धर्मत' इति **याज्ञवल्क्यो**क्तविषये आह **यदीति**। यदि क्षेत्रिकस्य पितुः क्षेत्रजे पुत्रोत्पत्त्यनंतरं औरसः पुत्रो भवति तदा तौ औरसक्षेत्रजौ एकरिक्थिनौ एकस्य पितुः यद्यपि रिक्थार्हौ तथापि तत् रिक्थं यस्य। यज्जनकसंबंधी सपदेव गृह्णीयात्। न क्षेत्रजाः क्षेत्रिकपितुः। तथा च यद्यौरसः पुत्रो नास्ति तदा क्षेत्रज उभयोर्धनं गृह्णीयादित्यर्थः ॥ १६२ ॥

(९) **भारुचिः**। .....औरसे सति क्षेत्रजो भवतीति सामर्थ्यं वक्तव्यम्। क्षेत्रजे वा सत्यौरस इति, एवं च सत्यनियुक्तासुत एवायं विज्ञेयो गुणतस्तथा हि ता एव कति-.....द्धनस्य तयोरयं विभागः। 'यद्यस्य पित्र्यमि'ति, एतेन अनियुक्तासुतादय इतरत्रानंशार्हत्वाद् बीजिनोंऽशं लभन्ते। अन्यस्त्वाह—यदि जातापत्यार्थवर्णपक्षक्रियया पुनः सर्वं कृत्वा पुत्रानुत्पादयेत्, तयोश्च बीजिक्षेत्रिणोर्धनं स्त्रीनतं स्यात् तयोरेष विभागः ॥ १६२ ॥

**एक एवौरसः पुत्रः पित्र्यस्य वसुनः प्रभुः ॥**
**शेषाणामानृशंस्यार्थं प्रदद्यात्तु प्रजीवनम् ॥ १६३ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। सत्यौरसे क्षेत्रजादयः सर्वेऽदायादाः **प्रजीवनमौरसाल्लभेरन्**। **आनृशंस्यमपापम्**। अददत्पापमाप्नोति ॥ १६३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। एक एवेति इदमनेकविधपुत्रसद्भावे ॥ १६३ ॥

(३) **कुल्लूकः**। व्याध्यादिना प्रथमौरसपुत्राभावे क्षेत्रजादिषु कृतेषु पश्चादौषधादिना विगतव्याधिरौरस उत्पन्ने सतीदमुच्यते औरस एवैकः पुत्रः पितृधनस्वामी शेषाणां क्षेत्रजव्यतिरिक्तानां तस्य षष्ठांशादेर्वक्ष्यमाणत्वात्। पापसंबन्धपरिहारार्थं ग्रासाच्छादनं दद्यात् ॥ १६३ ॥

(४) **राघवानन्दः**। एतदेव दृढयन्नेव येषामपि क्षेत्रजं विना दत्तादीनां ग्रासाच्छादनमात्रमाह **एक इति**। वसुनो धनस्य पित्र्यस्य पितृसंबन्धिनः। प्रजीवनं ग्रासाच्छादनादि ॥ १६३ ॥

(५) **नन्दनः**। एवं तावत्पितृभेदे क्षेत्रजस्यापि दायप्राप्तिरुक्ता, तदभेदे त्वौरसस्यैव दायप्राप्तिर्नान्येषामित्याह **एक एवौरसः पुत्र इति**। जीवनमेव प्रजीवनं अन्यतो लब्धवृत्तिना जीवनाप्रदानेन दोष इति सूचितम् ॥ १६३ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। एक एवौरसः पित्र्यस्य वसुनो द्रव्यस्य प्रभुः। शेषाणां क्षेत्रजादीनामानृशंस्यार्थं पापयोगपरिहारार्थं प्रदद्यात् ॥ १६३ ॥

(७) **मणिरामः**। व्याध्यादिना प्रथमौरसपुत्राभावे क्षेत्रजादीनामुत्पत्तिः कृता पश्चादौषधादिना व्याध्याद्युपशमे औरसोत्पत्ताविदमाह **एक एवेति**। शेषाणां क्षेत्रजव्यतिरिक्तानां। तस्य षष्ठांशादेर्वक्ष्यमाणत्वात्। आनृशंस्यार्थः पापसंबंधपरिहारार्थं। प्रजीवनं भोजनाच्छादनं ॥ १६३ ॥

(९) **भारुचिः**। एवं क्षेत्रजादीनामौरसे सति पश्चादुत्पन्नेऽनंशत्वे प्राप्ते विधिरयं विकल्पार्थमुच्यते। इतरेभ्यः क्षेत्रजादिभ्यः प्रजीवनमात्रं देयमिति ॥ १६३ ॥

**षष्ठं तु क्षेत्रजस्यांशं प्रदद्यात्पैतृकाद्धनात् ॥**
**औरसो विभजन्दायं पित्र्यं पञ्चममेव वा ॥ १६४ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। क्रीतादिपुत्रवत्प्रजीवनमात्रे प्राप्ते क्षेत्रजस्य भागविकल्पोऽयमुच्यते। स च गुणापेक्षः ॥ १६४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। यदा त्वेकस्यां भार्यायामज्ञातगर्भायां भर्ता मृतः, अन्या च पत्नी पुत्रार्थं देवरे नियुक्ता पुत्रमलभत, पूर्वस्यां चौरसः पुत्रो जातस्तदा विभागमाह **षष्ठं त्विति**। षष्ठनिर्गुणवत्त्वे, गुणवत्त्वे तु पञ्चममिति ॥ १६४ ॥

(३) **कुल्लूकः**। औरसः पुत्रः पितृसंबन्धि दायं विभजन्क्षेत्रजस्य षष्ठमंशं पञ्चमं वा दद्यात्। निर्गुणसगुणापेक्षश्चायं विकल्पः ॥ १६४ ॥

(४) **राघवानन्दः**। औरसानां परस्परं विभागे कर्तव्ये क्षेत्रजस्याप्यंशमाह **षष्ठं त्विति**। गुणवदगुणवद्भेदेन विकल्पः। एतत्तु बीजिधनाप्राप्तौ, तत्प्राप्तौ तु नांशभागित्युक्तं 'यद्यस्य पैतृक'मित्यत्र ॥ १६४ ॥

(५) **नन्दनः**। आनृशंस्यार्थमिति सत्यौरसे योऽयं शेषाणामभाग उक्तस्तस्य क्षेत्रजविषयेऽपवादमाह **षष्ठं तु क्षेत्रजस्यांशमिति**। विकल्पो गुणापेक्षः, एवं क्षेत्रजस्य देयोंश उक्तः ॥ १६४ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। औरसः पित्र्यं दायं विभजन्क्षेत्रजस्य षष्ठं वा पञ्चममेव वा ॥ १६४ ॥

(७) **मणिरामः**। क्षेत्रजस्य विभागमाह **षष्ठमिति**। सगुणस्य पंचमांशं, निर्गुणस्य षष्ठांशमित्यर्थः ॥ १६४ ॥

(९) **भारुचिः**। क्षेत्रजस्य तृतीयोऽयं विकल्पो (ऽनि)युक्तासुतस्य मुख्यत्वात् षष्ठपञ्चमभागविकल्पश्च गुणापेक्षः ॥ १६४ ॥

**औरसक्षेत्रजौ पुत्रौ पितृरिक्थस्य भागिनौ ।।**
**दशापरे तु क्रमशो गोत्ररिक्थांशभागिनः ।। १६५ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । आद्योऽयं श्लोकः पूर्वोक्तविध्यनुवाद एव, न पुनर्विध्यन्तरम् । औरसेन साम्यं क्षेत्रजस्य नेष्यते । **गोत्र**भागिनो **रिक्थांशभागिन**श्च । रिक्थांशः प्रजीवनसंमित इत्युक्तः । दत्तके च क्षेत्रजवत् । स्मृत्यन्तरमुदाहरन्ति । **क्रमशः** औरसक्षेत्रजौ युगपद्भागहरावन्येषां तु पूर्वाभाव उत्तरस्य भागहरत्वम् । "यद्येषां षड् दायादाः षडदायादा इति, वर्गद्वयप्रतिभागेन दायादादायादयोरनयो रिक्थवचनमनुपपन्नम् ।"

**सत्यौरसेऽदायादा इति** । आद्याः षण्महोपकारा इतरे षट् न्यूना इति । आद्य औरसादन्ये समानफलाः । एवमुत्तरे षट् ततो न्यूनाः । अवान्तरापेक्षया तुल्या एव । न पूर्वोत्तरपठितानां भेदोऽस्ति ।। १६५ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । पितृऋक्थस्य पित्रार्जितधनस्य । अत्रौरसत्वेन पुत्रिकापुत्रोऽपि गृहीतः । **दशापर इति** । गोत्ररिक्थं पितामहाद्युपात्तं ततोंऽशभागिनः नतु पित्रा स्वयमर्जितादंशादंशहारिणः । **केचित्तु** पितृऋक्थस्य कृत्स्नस्य गोत्रभागिनः पितृगोत्रऋक्थांशभागिनः स्वजीवमात्रोचितपितृऋक्थांशभागिन इत्यर्थमाहुः ।। १६५ ।।

(३) **कुल्लूकः** । औरसक्षेत्रजौ पुत्रावुक्तप्रकारेण पितृधनहराः स्यातामन्ये पुनर्दश दत्तकादयः पुत्रा गोत्रभाजो भवन्ति । 'पूर्वाभावे परः पर' (य ज्ञ. व्य. ८।१३२) इत्येवं क्रमेण धनांशहराश्च ।। १६५ ।।

(४) **राघवानन्दः** । तयोरुक्तप्रकारेण धनभाक्त्वमनुवदन् तयोरभावेऽन्येष्वपि दशसु पूर्वपूर्वाभावे उत्तरोत्तरो धनभागित्याह **औरसेति** । क्रमशः **पूर्वाभावे परः पर इतिः** ।। १६५ ।।

(५) **नन्दनः** । अथ दत्तकृत्रिमादीनामंशमाह **औरसक्षेत्रजौ पुत्राविति** । पुत्राविति दशापरे दत्तकृत्रिमादयो गोत्ररिक्थांशभागिनः गोत्रभागिनो रिक्थभागिनश्च रिक्थांशो जीवनमात्रं अन्ये त्वाहुः- पूर्वार्धेन क्षेत्रजस्यौरसतुल्यत्वं प्रतिपादितांशप्राप्त्यर्थं प्रतिपादितं, उत्तरार्धेन दत्तादीनां रिक्थैकदेशभाक्त्वमिति ।। १६५ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । अपरे दशपुत्रा दत्तकादयः क्रमशः गोत्ररिक्थांशभागिनः पूर्वपूर्वाभावे परः परो रिक्थभागी स्यात् ।। १६५ ।।

(७) **मणिरामः** । भागिनौ उक्तप्रकारेण पितृधनहरौ स्यातां । अपरे दश दत्तकादयः गोत्ररिक्थांशभागिनः 'पूर्वाभावे परः पर' इत्येवं क्रमेण धनांशहरा ।। १६५ ।।

(९) **भारुचिः** । एवं च पूर्वस्मिन् पूर्वस्मिन् सत्युत्तरोत्तरः प्रजीवनमात्रेणांशेन युज्यते, एतस्माच्च यस्मात् पूर्वस्य पूर्वस्य ज्यायस्त्वं गोत्रभाक्त्वं च ज्ञातिकार्यं च कानीनादिभिरपि कार्यम् ।। १६५ ।।

**स्वक्षेत्रे संस्कृतायां तु स्वयमुत्पादयेद्धि यम् ॥**
**तमौरसं विजानीयात्पुत्रं प्रथमकल्पितम् ॥ १६६ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। आत्मीयवचनः स्वशब्दो न समानजातीयतामाह। एतेन स्वयं **संस्कृतायां** जात औरसः, इतरथाऽसंस्कृतायां निवृत्तिपरः संस्कृतशब्दः संभाव्यते। ततश्चान्येन संस्कृतायामन्य औरसः स्यात्। उक्तार्थे च स्वशब्दे क्षत्रियादिपुत्रा अप्यौरसा भवन्ति। न हि तेषामन्यत्पुत्रलक्षणमस्ति।

अन्ये तु **प्राथमकल्पिक**मौरसविशेषणं मन्वानाः क्षत्रियापुत्रानौरसानसंपूर्णलक्षणान्मन्यन्ते।

एवं तु व्याख्याने यथा **स्वक्षेत्रे संस्कृतायाम**संपूर्णलक्षण औरसस्तच्च स्वेऽसंस्कृतायां प्राप्नोति। किं पुनः क्षत्रियादीनामौरसत्वेन। पुत्रास्तावद्भवन्ति परिमितांशभाजश्च।

अथोच्यते "असत्यौरसक्षेत्रजादिलक्षणे द्वादशसंख्यानियमात्कथं पुत्रत्वमिति ?"

अत्रोच्यते–किं लक्षणेन ? लोकतो व्यवहारप्रसिद्धेः। तथा हि यो यतो जातः स तस्य पुत्र इति लौकिका व्यवहरन्ति। तथा चाजनके कश्चित्पितृव्यव्यवहारं कुर्वन्नन्येनेति बोध्यते। नैष ते पिता, न हि त्वमनेन जात इति। अन्वयव्यतिरेकाभ्यां जनकः पिता जन्यश्च पुत्र इत्येतदवगम्यते।

विशेषव्यपदेशार्थस्तु लक्षणारम्भः। यत्तु क्षेत्रजादेरजनके वा पुत्रत्वमिति, तत्कार्यनिबन्धनमपुत्रस्यापि कार्यविधानात्पुत्रत्वम्। पुत्रत्वस्य तन्निषेधान्न जातत्वमिति। तथा चैते प्रतिनिधय उच्यन्ते। तैरत्रायम्। जन्मनिबन्धे हि पुत्रत्वे औरसपुनर्भवनियुक्तासुतानां विशेषो न स्यात्; जन्मनस्तुल्यत्वात्। किंच पुत्रकार्यकारणान्नैव कश्चिदपुत्रः स्यात्। यस्तु लौकिको व्यवहारः, असौ जनकेऽपि पितृव्यवहारदर्शनाद्व्यभिचारी।

तेन सत्यपि प्रयोगे इन्द्रादिशब्दवल्लोकतोऽर्थातिशयाच्छास्त्रे चोत्पत्तिविधानाद्भार्यादिव्यवहारवत् पुत्रव्यवहारोऽवगन्तव्यः।

"तत्र च यदौरसस्य प्राथमकल्पिकत्ववचनं तत्र व्यवहारोऽवगन्तव्यः। न व्यवहारे किं तर्ह्युपकारेऽपि। पितुरुपकारेण दृष्टं यथौरसो भूयांसं शक्नोत्युपकर्तुमिति **प्राथमकल्पिकमिति** पदं ज्ञापयति। उपकारापचयाभिप्रायाच्च प्रतिनिधिव्यवहारः। न ह्येषां प्रतिनिधितासंभवति; प्रारब्धस्य कर्मणोऽङ्गोपचारप्रतिनिधेः। न च पुत्रः कर्मांगं, अपत्योत्पादनकर्मणो गुणकर्मत्वात्। तेन सत्येव क्षेत्रजादीनां पुत्रत्वे प्रतिनिधित्ववचनमौरसत्वप्रशंसार्थम्। यथा 'अपशवो वाऽन्ये गोऽश्वेभ्यः पशवो गोऽश्वा' इति पशूनामपशुत्ववचनं गवाश्वानां प्रशंसितुम्।

यथा च यो यदीयाद्बीजाज्जातः स तस्य न पुत्र इति, तथा च दर्शितं **महाभारते**। द्वैपायनाज्जाताः पाण्डुधृतराष्ट्रविदुरादयो नैते व्यासपुत्रा इति व्यपदिश्यन्ते।

यथा च सप्रयोजनं क्षत्रियादिपुत्राणामौरसत्वं तथोपपादितम्। पुत्रिकापुत्रस्य पुत्रत्वे द्वादशसंख्यातिरेक आप्नोति।

भवतु, को दोषः? त्रयोदशोऽयं पुत्रोऽस्तु। औरसेन तुल्यफलत्वात् तदग्रहणम्। तत्सम्-म्याच्च। तथा च स्मृत्यन्तरं "तत्समः पुत्रिकासुतः" इति (याज्ञ. व्य० १२८) ॥ १६६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। उक्तपुत्राणां लक्षणान्याह **स्वक्षेत्र इति**। स्वक्षेत्रे स्वसवर्णक्षेत्रे संस्कृतायां स्वयं परिणीतायाम्। प्राथमकल्पिकं मुख्यम् ॥ १६६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। स्वभार्यायां कन्यावस्थायामेव कृतविवाहसंस्कारायां यं स्वयमुत्पादयेत्तं पुत्रमौरसं मुख्यं विद्यात् 'सवर्णायां संस्कृतायामुत्पादितमौरसपुत्रं विद्यादि'ति **बौधायन**-दर्शनात्सजातीयायामेव स्वयमुत्पादित औरसो ज्ञेयः ॥ १६६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। उक्तौरसादीनां लक्षणमाह **स्वक्षेत्र इति** चतुर्दशभिः। स्वयमुद्वाहितायामुरःसंश्लेषणजातत्वादौरसः। क्षेत्रजे तद्भावो **नारदेनो**क्तो 'गात्रैर्गात्राण्यसंस्पृशन्नि'त्यादिना। सवर्णायां संस्कृतायां स्वयमुत्पादितमौरसं जानीयादिति **बौधायन**दर्शनात्सजातीयोत्पन्नः औरसः। अत्र सवर्णापदं द्विजत्वादिजातिपरं, अन्यथा क्षत्रियावैश्याशूद्रासु जातानां विप्रादित्रयपितृकाणामौरसत्वाभावेनापुत्रत्वापत्तिरिति। तत्र परं सजातीये मुख्यमौरसत्वमन्येषां गौणमिति भावः। **स्वक्षेत्र इति**। क्षेत्रशब्दस्याजहल्लिङ्गता। प्राथमकल्पिकं उत्सर्गतः सर्वत्राधिकारिणम् ॥ १६६ ॥

(५) **नन्दनः**। अथौरसादीनां लक्षणमाह **स्वक्षेत्रे संस्कृतायान्त्विति**। प्रथमकल्पितं प्रधानत्वेन कल्पितम् ॥ १६६ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। औरसादीनां द्वादशानामुत्पत्तिमाह **स्वेति**। स्वक्षेत्रे संस्कृतायामूढायां स्वयमुत्पादयेत् द्विजं तं औरसं पुत्रं प्रथमकल्पितं पुत्रं मुख्यं विजानीयात् ॥ १६६ ॥

(७) **मणिरामः**। औरसलक्षणमाह **स्व इति** ॥ १६६ ॥

(९) **भारुचिः**। एषामिदानीं लक्षणमुच्यते—या यस्य सवर्णा सा तस्य क्षेत्रम्। तस्यामुत्पन्नः प्रथमकल्पित औरसो विज्ञेयः। क्षत्रियवैश्ययोस्तु जाता न सम्पूर्णलक्षणा औरसाः सुताः। अतस्तेषाम.....क्तो अग्रे न्यायाविरोधेन कल्पयितव्यः। अपरे तु क्षत्रियवैश्यावेवौरसौ क्षेत्रजादिभ्यो ज्यायांसौ मन्यन्ते ॥ १६६ ॥

**यस्तल्पजः प्रमीतस्य क्लीबस्य व्याधितस्य वा ॥**
**स्वधर्मेण नियुक्तायां स पुत्रः क्षेत्रजः स्मृतः ॥ १६७ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **व्याधितस्या**प्रतीकाररराजयक्ष्मादिव्याधितस्य। अवशिष्टं स्पष्टम् ॥ १६७ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। तल्पं भार्यां तस्यां सवर्णाद्वा देवराद्वा सपिण्डाद्वा जातः। स्वधर्मेण क्षेत्रजोत्पत्तिधर्मेण घृताभ्यङ्गादिना स्वपुत्रः क्षेत्रजः ॥ १६७ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यो मृतस्य नपुंसकस्य प्रसवविरोधिव्याध्युपेतस्य वा भार्यायां घृताक्तवस्त्वादिनियोगधर्मेण गुरुनियुक्तायां जातः स क्षेत्रजः पुत्रो मन्वादिभिः स्मृतः ॥ १६७ ॥

(४) **राघवानन्दः**। क्षेत्रजं लक्षयति **य इति**। प्रमीतस्येति पतिताद्युपलक्षणम्, क्लीबस्येत्यपत्यजनकत्वाभावपरं, तेन पाण्डवाः संगताः। अत्र तु प्रयाजादिवत्पाठक्रमो विवक्षितस्तेन पूर्वपूर्वाभावे उत्तरोत्तरस्यैवाधिकारिता। **क्षेत्रजः** क्षेत्रमत्र पत्नी, तत्र जातः॥ १६७॥

(५) **नन्दनः**। तत्पजस्तत्पेषु दारेषु जातः नियुक्तायामित्युक्तत्वादन्येन देवरेण सपिण्डेन वा जनितः॥ १६७॥

(६) **रामचन्द्रः**। यः तत्पजः भार्यायां जातः स्वधर्मेण घृताभ्यक्तेन नियुक्तायां स पुत्रः क्षेत्रजः स्मृतः॥ १६७॥

(७) **मणिरामः**। क्षेत्रजलक्षणमाह **य इति**। मृतनपुंसकादेः स्वधर्मे नियुक्तायां घृताभ्यक्तत्वादिनियोगधर्मेण गुर्वादिनियुक्तायां तत्पजः शयनादुत्पन्नः॥ १६७॥

(९) **भारुचिः**। निगदव्याख्यातश्लोकः॥ १६७॥

**माता पिता वा दद्यातां यमद्भिः पुत्रमापदि॥**
**सदृशं प्रीतिसंयुक्तं स ज्ञेयो दत्त्रिमः सुतः॥ १६८॥**

(१) **मेधातिथिः**। 'च'शब्दः पठितुं युक्तो "माता पिता चेति"। न ह्युभयोरपत्यमन्यतरानिच्छायां दातुं युक्तम्। अथापि वाशब्दः पठ्यते। तथा चोक्तम् "माता पिता वा दद्यात्, तयोरपि पिता श्रेयान्" इति कार्यान्तरविनियोगविषयमेतत्।

ननु सत्वापत्तौ सानुमापीदृशं दशान्तु पितरि पुत्रं प्रति दातृत्वं नास्ति। सत्यपि तूत्तरवचने अभावो बीजिनो नास्ति, वियोगे विशेषविषयत्वात्सदृशेत्युक्तम्। आह च **वसिष्ठः** (अ० १५ सू० १)—"न स्त्री पुत्रं दद्यात्प्रतिगृह्णीयाच्च" इति।

**सदृशं न** जातितः। किं तर्हि? कुलानुरूपैर्गुणैः। क्षत्रियादिरिपि ब्राह्मणस्य दत्तको युज्यते। **प्रीति**ग्रहणं लोभादिना प्रतिषेधार्थम्॥ १६८॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। माता पितर्यसति। अद्भिरुदकपूर्वम्। आपदि स्वतस्तस्य रक्षणाशक्तौ॥ १६८॥

(३) **कुल्लूकः**। 'शुक्रशोणितसंभवः पुरुषो मातापितृनिमित्तकस्तस्य प्रदानविक्रयपरित्यागेषु मातापितरौ प्रभवतः' इति **वसिष्ठ**(१५।१)स्मरणात्। माता पिता वा परस्परानुज्ञया यं पुत्रं परिग्रहीतुः समानजातीयं तस्यैव पुत्राभावनिमित्तायामापदि प्रीतियुक्तं नतु भयादिनोदकपूर्वं दद्यात्स दत्त्रिमाख्यः पुत्रो विज्ञेयः॥ १६८॥

(४) **राघवानन्दः**। दत्त्रिमस्य कृत्रिमस्य च लक्षणमाह **मातेति** द्वाभ्याम्। अद्भिरित्यवश्यम्। आपदीति ग्रहीतुः संतानक्षयपरं, दुर्भिक्ष्यादिपरं वा दातुः। सदृशं जात्या प्रीतिसंयुक्तं न बलोपाधिकृतम्॥ १६८॥

(५) **नन्दनः**। सदृशं सवर्णं आपदीति विशेषणादनापदि दत्तस्य न्यूनत्वं प्रीतिसंयुक्तमिति विशेषणाद्भयादिना दत्तस्य न्यूनता ग्राह्या। आपदत्र सन्तानपरिक्षयः प्रतिग्रहीतुः॥१६८॥

(७) **मणिरामः**। दत्तकपुत्रलक्षणमाह **मातेति**। सदृशं परिग्रहीतुः समानजातीयं आपदि परिग्रहीतुः पुत्राऽभावनिमित्तायां। प्रीतिसंयुक्तं नतु भयादिना। अद्भिः उदकपूर्वकं संकल्पं कृत्वेति यावत्॥ १६८॥

(९) **भारुचिः**। ये तु माता पिता वा दद्यातामिति पठन्ति.... च्यते समस्ताभ्यां दाननियमान्तरा....पायैर्दत्तको न ग्राह्यः मातापितो वचत्यस्मिस्तु (?) विकल्पपक्षे समस्तयो-र्दाननियमो नास्ति। सदृशं सवर्णं .... न लोभादभयाद्वरः॥ १६८॥

**सदृशं तु प्रकुर्याद्यं गुणदोषविचक्षणम्॥**
**पुत्रं पुत्रगुणैर्युक्तं स विज्ञेयश्च कृत्रिमः॥ १६९॥**

(१) **मेधातिथिः**। अत्रापि **सदृशो** गुणत एव विज्ञेयः। ये तु 'सदृशं' सवर्णं व्याचक्षते, तेषां 'सजातीय' इति **एष** पाठो युक्तो यद्ययमर्थोऽभिप्रेतः। न तु जात्या सादृश्यमपि तूक्तमेव। **गुणदोषविचक्षणम्**। केचिदाहु :—'तावन्न क्रियते यावन्न प्राप्तव्यवहारः। न ह्यसौ गुणदोषान् जानाति। तदा त्वेवं जानाति येनाहं जातो येन च संप्रति पुत्रतया भरणं मे क्रियते तस्याप्यहं पुत्र'इत्यभ्युपगतपुत्राभावात्तथैव ग्रहीतव्योऽपि त्वन्यतरत्वे विशेषो नास्ति॥ १६९॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। सदृशं सवर्णं गुणदोषविचक्षणं नतु बालं कुर्यात्, त्वं मम पुत्र इति नियम्य। पुत्रगुणैर्वयोलपत्वादिभिः। गुणदोषविचक्षण इति क्वचित्पाठः। तत्र कर्तुर्गुणदोष-ज्ञानोत्पत्त्या पतितादित्वेन ज्ञात्वा यदि पुत्रं कुरुते तदा नासौ पुत्र इति विवक्षितम्॥ १६९॥

(३) **कुल्लूकः**। यं पुनः समानजातीयं पित्रोः पारलौकिकश्राद्धादिकरणाकरणाभ्यां गुणदोषौ भवत इत्येवमादिज्ञं पुत्रगुणैश्च मातापित्रोराराधनादियुक्तं पुत्रं कुर्यात्स कृत्रिमाख्यः पुत्रो वाच्यः॥ १६९॥

(४) **राघवानन्दः**। गुणदोषविचक्षणं अस्यैवाह इति गुणदोषो जनैः कथं पातितेति। पुत्र-गुणैर्विद्याविनयश्राद्धश्रद्धाद्यैः॥ १६९॥

(६) **रामचन्द्रः**। यं गुणदोषविचारक्षमं पुत्रं पुत्रगुणैः पित्रादिशुश्रूषादिकैर्युक्तां योगी कृत्रिमः स्यात्स्वयंकृत इति॥ १६९॥

(७) **मणिरामः**। कृत्रिमलक्षणमाह **सदृशमिति**। सदृशं समानजातीयं। गुण-दोषविचक्षणं पित्रोः पारलौकिकश्राद्धादिकरणाऽकरणाभ्यां गुणदोषौ संभवतः इति ज्ञातारं। पुत्रगुणैर्युक्तं मातापित्रोराराधनादिभिर्युक्तम्॥ १६९॥

(९) **भारुचिः**। कृत्रिमोऽपि सवर्ण एव पितृमातृविहीनश्च॥ १६९॥

**उत्पद्यते गृहे यस्तु नच ज्ञायेत कस्य सः॥**
**स गृहे गूढ उत्पन्नस्तस्य स्याद्यस्य तल्पजः॥ १७०॥**

(१) **मेधातिथिः**। **न च ज्ञायेत** माता यद्युद्भ्रान्ता बहुशो गता वा तदा न ज्ञायते का पुनस्तस्य जातिर्यतः पूर्वैरुक्तं 'अविज्ञातबीजिनो मातृतः'।

एतच्च यत्र हीनजातीयपुरुषशङ्का नास्ति। तदाशङ्कायां हि प्रतिलोमसंभवः। प्रतिलोमत्वान्न क्वचित्पुत्रकार्याधिकारिणः ।। १७० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । गृहे पाणिग्राहस्य सवर्णैरनेकैर्ऋतुकाले संसर्गो निश्चितोऽपि व्यक्तिविशेषानिश्चयात्कस्यायं गर्भ इत्यनिश्चयः। न त्वधमवर्णगमनसंदेहेऽपि । यस्य तल्पजो भार्यायां जातः ।। १७० ।।

(३) **कुल्लूकः**। यस्य गृहेऽवस्थितायां भार्यायां पुत्र उत्पद्यते, सजातीयोऽयं भवतीति ज्ञानेऽपि कस्मात्पुरुषविशेषाज्जातोऽसाविति न ज्ञायते स गृहेऽप्रकाशमुत्पन्नस्तस्य पुत्रः स्याद्यदीयायां भार्यायां जातः ।। १७० ।।

(४) **राघवानन्दः**। गूढोत्पन्नं लक्षयति **उदिति**। तस्मिञ्जीवति गोलक इति बहुकालवशाद्व्यभिचारिण्यां पत्न्यामाकृत्यादिलिङ्गकोऽन्योत्पन्नः, अयं त्वव्यक्तलिङ्गको गूढोत्पन्न इति भेदः। गृहे भार्यायां स्वपत्न्याम्। स बालः गृहे गूढं रहस्युत्पन्नः यस्य तल्पजस्तस्यैव सः (तल्पोऽन्न पतिः) . ।। १७० ।।

(५) **नन्दनः**। कस्यचिदन्नेतिकरणं द्रष्टव्यम् ।। १७० ।।

(६) **रामचन्द्रः**। यस्य तल्पजः भार्यायां जातः स तस्य स्यात् । योगी गृहे प्रच्छन्न उत्पन्नो गूढजः सुतः स्मृतः ।। १७० ।।

(७) **मणिरामः**। गूढोत्पन्नलक्षणमाह **उत्पद्यत इति**। यस्य गृहे अवस्थितायां भार्यायां पुत्र उत्पद्यते सजातीयोऽयं भवतीति ज्ञातेऽपि कस्य स इति न च ज्ञायते स गृहे गूढ उत्पन्नः तस्य स्यात् यस्य तल्पजः यदीयायां भार्यायां जातः ।। १७० ।।

(९) **भारुचिः**। अविज्ञानाद् बीजिनो मातृजातीयस्य यो गूढोत्पन्नो विज्ञेयः ।।१७०।।

**मातापितृभ्यामुत्सृष्टं तयोरन्यतरेण वा ।।**
**यं पुत्रं परिगृह्णीयादपविद्धः स उच्यते ।।१७१ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। बहुप्रजातया भरणासमर्थेनात्यन्तदुर्गत्या केनचिद्वा दोषयोगेन मातापितृभक्तिहीनत्वादिना। न पुनः प्रत्यक्षत्वेन, तस्य न क्वचिदेव पुत्रकार्येऽधिकार इति दर्शितं अन्यत्र । तथैवमप्यन्यतरेणोत्सर्गः। 'परिग्रहः' पुत्रबुद्धया, न तु तज्जीवितेच्छया च ।। १७१ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। उत्सृष्टमन्यस्मा अदत्वा त्वरादिना परित्यक्तं तत्काले च तस्याः परिग्रहे रक्षणं न संभवत्येवेति निश्चित्य गृह्णीयात्। अयमपि सवर्ण एव ।। १७१ ।।

(३) **कुल्लूकः**। मातापितृभ्यां त्यक्तं, तयोरन्यतरमरणेनान्यतरेण वा त्यक्तं पुत्रं स्वीकुर्यात्, सोऽपविद्धाख्यः पुत्र उच्यते ।। १७१ ।।

(४) **राघवानन्दः**। अपविद्धं लक्षयति **मातेति**। ताभ्यामुत्सृष्टत्वादपविद्धत्वम् ॥ १७१ ॥

(५) **नन्दनः**। अयमपि सर्व एव ॥ १७१ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। अन्यतरेणापि पुंसा तयोर्मातापित्रोः सकाशात् उत्सृष्टं यं पुत्रं परिगृह्णीयात्स पुत्रोऽपविद्ध उच्यते। योगी उत्सृष्टो गृह्यते यस्तु सोऽपविद्धो भवेत्सुतः ॥ १७१ ॥

(७) **मणिरामः**। अपविद्धाख्यपुत्रलक्षणमाह **मातेति** ॥ १७१ ॥

(९) **भारुचिः**। तथा च **व्यासदर्शनम्**– अन्यतरे प्रमीतेऽन्यतरोत्सर्ग उच्यते। इतरथा हि मातापित्रोर्जीवतोरन्यतरोत्सर्गेऽपविद्धतास्य न बुक्का ॥ १७१ ॥

**पितृवेश्मनि कन्या तु यं पुत्रं जनयेद्रहः ॥**
**तं कानीनं वदेन्नाम्ना वोढुः कन्यासमुद्भवम् ॥ १७२ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। अयं श्लोकः प्राक् व्याख्यातः। स्वयंदत्तकृत्रिमापविद्धेषु अस्य च भागकल्पना प्राक् निरूपिता। प्रतिग्रहभूमिनिषेधश्च सत्यन्यस्मिन्धने न तावत् ॥ १७२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। वोढुः विवाहयितुः पुत्रं तथा मातामहस्याप्यसौ सुतान्तराभावे ऋक्थहरः 'मातामहसुतो मत'इति **याज्ञवल्क्य**(व्य० १२९)वचनात्। एतदपि सवर्णोत्तमवर्णजनितस्य ज्ञाने ॥ १७२ ॥

(३) **कुल्लूकः**। पितृगृहे कन्या यं पुत्रमप्रकाशं जनयेत् तं कन्यापरिणेतुः पुत्रं नाम्ना कानीनं वदेत् ॥ १७२ ॥

(४) **राघवानन्दः**। कानीनमाह **पित्रिति**। वोढुः कन्याकाल एव जनितपुत्रमुद्वाहकस्य। 'कानीनः कन्यकाजातो मातामहसुतो मत' (याज्ञ० व्य० १२९)इति मातामहस्य पुत्राभावे तद्धनाद्यधिकारित्वम्, इत्यन्यभेदं मनुवाक्यं विरुध्यते। यतो 'अक्षता वा क्षता वे'(९।१३६)त्यनेनोद्वाहितासु तस्य धनहारित्वमिति भेदः ॥ १७२ ॥

(५) **नन्दनः**। वोढुस्तं पुत्रं विदुः न कन्यापितुः ॥ १७२ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। तं कन्यासमुद्भवं पुत्रं वोढुः विवाहकर्तुः ज्ञेयं। योगी कानीनः कन्यकाजातः ॥ १७२ ॥

(७) **मणिरामः**। कानीनलक्षणमाह **पित्रेति**। तं पुत्रं नाम्ना कानीनो वोढुः कन्यापरिणेतुः वदेत् जानीयात् ॥ १७२ ॥

(९) **भारुचिः**। सवर्णायां सदृशोत्पन्नः। अपरे तु रह इति वचनात् अ(व्र)बीजिनो विज्ञानात् कानीनं मातृजातीयमेवाहुः ॥ १७२ ॥

**या गर्भिणी संस्क्रियते ज्ञाताऽज्ञातापि वा सती ।।**
**वोढुः स गर्भो भवति सहोढ इति चोच्यते ।। १७३ ।।**

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । ज्ञाता गर्भिणीत्वेन । इदमपि पूर्ववत् ।। १७३ ।।

(३) **कुल्लूकः** । या गर्भवती अज्ञातगर्भा ज्ञातगर्भा वा परिणीयते स गर्भस्तस्यां जातः परिणेतुः पुत्रो भवति 'सहोढ' इति व्यपदिश्यते ।। १७३ ।।

(४) **राघवानन्दः** । सहोढं लक्षयति **येति** । ज्ञाताऽज्ञातो वा गर्भिणीत्वेन संस्क्रियते पाणिग्रहणमन्त्रैः । अतः संस्क्रियमाणया कन्यया सहोढः प्राप्त इति सहोढः ।। १७३ ।।

(५) **नन्दनः** । संस्क्रियते परिणीयते ।। १७३ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । या कन्या गर्भिणी संस्क्रियते विवाहादिसंस्काराः क्रियन्ते ज्ञाताज्ञातापि वा सती स गर्भो वोढुर्भवति 'सहोढ' इत्युच्यते । योगी गर्भे विन्नः सहोढः ।। १७३ ।।

(७) **मणिरामः** । सहोढलक्षणमाह **येति** ।। १७३ ।।

(९) **भारुचिः** । अयमपि सहोढामातृजातीयः ।। १७३ ।।

**क्रीणीयाद्यस्त्वपत्यार्थं मातापित्रोर्यमन्तिकात् ।।**
**स क्रीतकः सुतस्तस्य सदृशोऽसदृशोऽपि वा ।। १७४ ।।**

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । सदृशोऽसदृशः सवर्णोऽधमवर्णो वेत्यर्थः ।। १७४ ।।

(३) **कुल्लूकः** । यः पुत्रार्थं मातापित्रोः सकाशाद्यं क्रीणीयात्स क्रीतकस्तस्य पुत्रो भवति । क्रेतुर्गुणैस्तुल्यो हीनो भवेन्न तत्र जातितः सादृश्यवैसादृश्ये 'सजातीयेष्वयं प्रोक्तस्तनयेषु मया विधि'रिति **याज्ञवल्क्येन** (व्यव०१३३) । सर्वेषामेव पुत्राणां 'सजातीयत्वाभिधानत्वेन मानवेऽपि क्रीतव्यतिरिक्ताः सर्वे पुत्राः सजातीया बोद्धव्याः ।। १७४ ।।

(४) **राघवानन्दः** । क्रीतं लक्षयति **क्रीणीयादिति** । यद्यस्मात् सदृशोऽसदृश इति गुणवानगुणवान्वा नतु विजातीयः । 'सजातीयेष्वयं प्रोक्तस्तनयेषु विधिर्मये'ति **याज्ञवल्क्योक्तेः** ।। १७४ ।।

(५) **नन्दनः** । अन्तिकात्सकाशात् ।। १७४ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । स क्रीतकः सुतस्तस्य मूल्यदातुः पुत्रः । सदृशः गुणैः सदृशोऽसदृशोऽपि वा क्रीतश्च ताभ्यां विक्रीतः ।। १७४ ।।

(७) **मणिरामः** । क्रीतकलक्षणमाह **क्रीणीयेति** । अन्तिकात् निकटात् । सदृशोऽसदृशोऽपि वा समानजातीयो विजातीयो वा । तथा च क्रीतकव्यतिरिक्ताः सर्वे समानजातीया बोध्याः ।। १७४ ।।

(९) **भारुचिः** । अपरे त्वाहुः क्रीतः—सदृशोऽसदृशो वेति गुणतः कल्प्यते । वर्णतो हि कल्पनायामसमसवर्णग्रहणे न्यायविरोधः ।। १७४ ।।

**या पत्या वा परित्यक्ता विधवा वा स्वयेच्छया ॥**
**उत्पादयेत्पुनर्भूत्वा स पौनर्भव उच्यते ॥ १७५ ॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। पुनर्भूत्वाऽस्य भार्या भूत्वा ॥ १७५ ॥

(३) **कुल्लूकः**। या भर्त्रा परित्यक्ता मृतभर्तृका वा स्वेच्छयाऽन्यस्य पुनर्भार्या भूत्वा यमुत्पादयेत्स उत्पादकस्य पौनर्भवः पुत्र उच्यते ॥ १७५ ॥

(४) **राघवानन्दः**। पौनर्भवं लक्षयति **येति**। स्वेच्छया पुनरन्यस्य भार्या भूत्वा पुनर्वोढुर्भूत्वा विधवा भूत्वा यं पुत्रमुत्पादयेत्स पौनर्भवः, उत्पादकस्येति शेषः ॥ १७५ ॥

(५) **नन्दनः**। पुनर्भूत्वा पुनः कस्यचिद्भार्या भूत्वा ॥ १७५ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। पुनर्भूत्वा अन्यस्य सवर्णस्य भार्या भूत्वा पुत्रमुत्पादयेत्स पौनर्भव उच्यते। योगी अक्षतायां क्षतायां वा जातः पौनर्भवः सुतः ॥ १७५ ॥

(७) **मणिरामः**। पौनर्भवलक्षणमाह **येति**। पुनर्भूत्वा अन्यस्य भार्या भूत्वा ॥ १७५ ॥

(९) **भारुचिः**। अन्यस्तु ब्राह्मणविषयमेव न्यायविरोधमाह—सवर्णः पौनर्भवोऽसवर्णोऽपि वा। असवर्णस्तु गुणतः ॥ १७५ ॥

**सा चेदक्षतयोनिः स्याद्गतप्रत्यागतापि वा ॥**
**पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनःसंस्कारमर्हति ॥ १७६ ॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। पुनर्भूसंस्कारमाह **सा चेदिति**। अक्षतयोनिः पत्या संस्कारमात्रं कृत्वा परित्यक्ता प्राप्तवैधव्या वा। गतप्रत्यागता तु पित्राऽन्यस्मा अङ्गीकृता स्वेच्छया परिणयार्थमन्यं प्रति गत्वा तेन परिणीता पुनः पित्राभिमतं वरं प्रत्यागता अक्षतयोनिरेव। पौनर्भवेन यं गत्वा विश्रान्ता तेन पुनर्विवाहहोमादिसंस्कारं सार्हति। एतेन या क्षतयोनिः पुनर्भूर्न संस्कारार्हेत्युक्तम्। पुनर्भूत्वं तु उभयथापि। एतासूत्पन्नः पौनर्भवो बीजिनः सुतः ॥ १७६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। सा स्त्री यद्यक्षतयोनिः सत्यन्यमाश्रयेत्तदा तेन पौनर्भवेन भर्त्रा पुनर्विवाहाख्यं संस्कारमर्हति। यद्वा कौमारं पतिमुत्सृज्यान्यमाश्रित्य पुनस्तमेव प्रत्यागता भवति तदा तेन कौमारेण भर्त्रा पुनर्विवाहाख्यं संस्कारमर्हति ॥ १७६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। प्रासंगिकमाह **सा चेदिति**। यं बालं विहाय गता पुनर्यौवने तमेव प्रत्यागताऽपि वा यं प्रति गता वोभयोरपि पुनर्भवभर्तृत्वाद्द्वाभ्यामपि संस्कारमर्हति विवाहोचितम्। वाशब्दात्क्षतयोनिरपि क्षता क्षतजयुक्ता योनिर्यस्याः। ऋतुमती 'अक्षता च क्षता चैव पुनर्भूः संस्कृता पुनः। स्वैरिणी या पतिं हित्वा सवर्णं कामतः श्रयेदि'ति (आचार० ६७) **याज्ञवल्क्योक्तेः**। ज्ञातिधनगर्वात्स्वपतित्यागे स्वभक्षणं (?) नतु कामतस्त्यागे कामस्य स्वाभाविकत्वादनेन पूर्वापराविरोधः ॥ १७६ ॥

(५) **नन्दनः**। अक्षतयोन्याः पुनःसंस्कारानर्हत्वं प्रसङ्गेनाह **सा चेदक्षतयोनिः स्यादिति**। भर्तृगृहाद्गतप्रत्यागता सत्यप्यक्षतयोनिश्चेत्पौनर्भवेन पुनर्भूपुत्रेण केनचिद्भरेण ।। १७६ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। सा पुनर्भूः। अक्षतयोनिः स्यात् गतप्रत्यागतापि वा परिणेतृगृहे गता तेनाक्षतयोनिः वा सा पौनर्भवेन भर्त्रा पुनःसंस्कारमर्हति ।। १७६ ।।

(७) **मणिरामः**। सा पूर्वोक्ता स्त्री चेत् अक्षतयोनिः सती अन्यं आश्रयेत् गतप्रत्यागतापि वा कौमारं पतिमुत्सृज्य अन्यमाश्रित्य पुनः कौमारपतिमेव प्रत्यागता भवति तदा पौनर्भवेन भर्त्रा पुनःसंस्कारं विवाहाख्यं संस्कारं अर्हति ।। १७६ ।।

(९) **भारुचिः**। पाणिग्रहणमात्रेण दूषिता यद्यपि भर्तृगृहात् गतप्रत्यागता भवेत् अक्षतयोनिः ..... ।। १७६ ।।

**मातापितृविहीनो यस्त्यक्तो वा स्यादकारणात् ।।**
**आत्मानं स्पर्शयेद्यस्मै स्वयंदत्तस्तु स स्मृतः ।। १७७ ।।**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अकारणात्पातित्यादित्यागकारणेषु सत्सु। स्पर्शयेद्द्यात् तच्चोदकपूर्वमत्र। कृत्रिमे तु तेन परिग्रहमात्रमस्य सान्तत्येनेति विशेषः ।। १७७ ।।

(३) **कुल्लूकः**। यो मृतमातापितृकं त्यागोचितकारणं विना द्वेषादिना ताभ्यां त्यक्तो वाऽऽत्मानं यस्मै ददाति स स्वयंदत्ताख्यस्तस्य पुत्रो मन्वादिभिः स्मृतः ।। १७७ ।।

(४) **राघवानन्दः**। स्वयंदत्तं लक्षयति **मातेति**। अकारणात् पातित्याद्यहेतोः। स्पर्शयद्द्यात्, त्यक्तः पितृभ्यामिति शेषः। यस्मा आत्मानं स्पर्शयेत्तस्यैव पुत्रः स इति स्मृतः ।।१७७।।

(५) **नन्दनः**। स्पर्शयेद्द्यात् ।। १७७ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। मातापितृविहीनः यः अकारणात् त्यक्तः यस्मै आत्मानं स्पर्शयेद्द्यात्स स्वयंदत्तः स्मृतः ।। १७७ ।।

(७) **मणिरामः**। स्वयंदत्तलक्षणमाह **मातेति**। मातापितृविहीनः मृतमातृपितृकः। त्यक्तः ताभ्यामेव। स्पर्शयेत् ददाति ।। १७७ ।।

(९) **भारुचिः**। सवर्ण एव स्यात्, न तथेतरः ।। १७७ ।।

**यं ब्राह्मणस्तु शूद्रायां कामादुत्पादयेत्सुतम् ।।**
**स पारयन्नेव शवस्तस्मात्पारशवः स्मृतः ।।१७८ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **कामादित्यनुवादः** "कामतस्तु प्रवृत्तानाम्" इत्यस्य। **पारयन्** पिण्डदानादिना उपकुर्वन्नपि शवतुल्यः अनुपकारकः। असंपूर्णोपकारकत्वात् ।। १७३-१७८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। कामादिति शूद्राभिगमस्य काममात्रपरत्वादुक्तम्। ब्राह्मण इति क्षत्रियस्याप्युपलक्षणम्। वैश्यस्य शूद्रापुत्रोऽपि ब्राह्मणस्येव क्षत्रियापुत्रः स्ववर्णसदृश एव। पारयन्नेव कर्मणे शक्त एव सन् शवोऽनधिकारी। एतेन ज्ञात्यन्तरासत्त्वेऽपि तस्य न पित्र्यधनहारित्वं किंतु संबन्धिनोऽपि ब्राह्मणस्यैवेत्युक्तम्॥ १७८॥

(३) **कुल्लूकः**। 'विन्नास्वेष विधिः स्मृत' इति **याज्ञवल्क्य**(आचा. ४।९२)दर्शनात्परिणीतायामेव शूद्रायां ब्राह्मणः कामार्थं पुत्रं जनयेत्स जीवन्नेव शवतुल्य इति पारशवः स्मृतः। यद्यप्ययं पित्रुपकारार्थं श्राद्धादि करोत्येव तथाप्यसंपूर्णोपकारकत्वाच्छवव्यपदेशः॥ १७८॥

(४) **राघवानन्दः**। शौद्रं लक्षयति **यमिति**। शूद्रायां यथाविध्यूढायां। स पारयन् जीवन्नेव शवतुल्यत्वात्पारशवः। शूद्रापत्यस्य निन्दितत्वं सूचयति **कामादिति**। असंपूर्णोपकारकत्वाद्वा॥ १७८॥

(५) **नन्दनः**। पारयञ्जीवयन् शवो मृतप्रायः पारशवो नाम निर्वचनमेतत् बीजगुणस्य; श्रैष्ठ्येऽपि क्षेत्रदोषात्स जीवन्मृतकल्प इत्यर्थः, कर्मानधिकारात्॥ १७८॥

(६) **रामचन्द्रः**। यं सुतं शूद्रायां उत्पादयेत्कामतः स पारयन्नेव कर्मसु शव एव शवः शवकल्पः तस्मात्पारशवः स्मृतः॥ १७८॥

(७) **मणिरामः**। पारशवलक्षणमाह **यमिति**। शूद्रायां परिणीतायां कामात् कामार्थं स यस्मात् पारयन्नेव शवः जीवन्नेव शवः तस्मात्पारशवः स्मृतः। यद्यप्ययं पित्र्युपकारार्थं श्राद्धादि करोत्येव तथाप्यसंपूर्णोपकारकत्वात् शवव्यपदेशः॥ १७८॥

(९) **भारुचिः**। 'यः शौद्र' इति प्रागभिहितः। यं ब्राह्म(णं) क्षत्रियवैश्ययोरपि प्रदर्शनार्थम्। तथा च पारशवग्रहणवत् स पारयन्नपि जीवन्नेव शवः। पुरुषार्थं प्रयोजनविशिष्टकर्मणानभिसम्बन्धित्वात् तस्य पारशवः स्मृतः॥ १७८॥

**दास्यां वा दासदास्यां वा यः शूद्रस्य सुतो भवेत्॥**
**सोऽनुज्ञातो हरेदंशमिति धर्मो व्यवस्थितः॥ १७९॥**

(१) **मेधातिथिः**। शूद्रस्यानूढायामनियुक्तायामपि जातः **सुत** एव। एवं यद्यपि दासस्य दासीत्यर्थेऽपि वचनात्तस्यां जातो न दासस्य दासस्वामिनः।

**सोऽनुज्ञातः** पित्रा। सममंशमौरसेन **हरेत्**। जीवितभागे क्रियमाणे, अन्यथा वा यदि ब्रूयादेष वः समांश इति।

यदा तु पिता नानुजानाति, तत्स्मृत्यन्तरे पठितं–"जातोऽपि दास्यां शूद्रेण कामतोंऽशहरो भवेत्" (याज्ञ० व्य० १३३)। 'कामतो' यावन्तमंशं पिताऽनुजानाति। "मृते पितरि कुर्युस्तं भ्रातरस्त्वर्धभागिकम्" (याज्ञ० व्य० १३४)। तं कुर्युः स्वांशापेक्षया, आत्मनो द्वौ द्वौ परिगृह्णीयुर्भागौ तस्यैकं दद्युः। "अभ्रातृको हरेत्सर्वं दुहितॄणां सुतादृते" (याज्ञ०

व्यव. १३४) । असत्स्वौरसेषु सर्वं रिक्थं स एव हरेद्यदि दौहित्रो न स्यात् । सति तस्मिन्नौरसवत्कल्पना दौहित्रस्य, अन्यस्याश्रुतत्वात्, तस्य च प्रकृतत्वेन बुद्धौ सन्निवेशात् ।

ब्राह्मणादीनां तु दासीसुताः प्रजीवनमात्रभाजो न रिक्थभाज इति स्थितिः ।। १७९ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । दास्यां शूद्रस्यानूढायां तथा शूद्रस्य यो दासस्तस्य दास्यां प्रधानशूद्रेणोत्पादितोऽस्यापि शूद्रे भागो देय इति । तेन पित्राऽनुज्ञातो हरेदंशं न त्वननुज्ञातस्तु जीवनमात्रं हरेदिति । एतेन शूद्रस्य शूद्रायामपरिणीतायामप्युत्पन्नस्तस्यां यथाकथंचित्स्वाम्ये सति पुत्रो भवति ननु परपरिग्रहेऽपीति दर्शितं भवति । अत एव 'दास्यां वा दासदास्यां वे'(९।१७९)त्युक्तम् ।। १७९ ।।

(३) **कुल्लूकः** । ध्वजाहृताद्युक्तलक्षणायां दास्यां दाससंबन्धिन्यां वा दास्यां शूद्रस्य यः पुत्रो जायते स 'पित्राऽनुज्ञातपरिणीतापुत्रैः समांशभागो भवान्भवतु' इत्यनुज्ञातस्तुल्यभागं लभत इति शास्त्रव्यवस्था नियता ।। १७९ ।।

(४) **राघवानन्दः** । दास्यां ध्वजाहृताद्युक्तलक्षणाया तथाविधदासस्य भार्यायां वा दासदास्या अनुज्ञातः जीवता पित्रा परिणीताशूद्रापुत्रैः स ममांशं हरेदिति धर्मो व्यवस्थितः । 'न्यूनाधिकविभागानां धर्म्यः पितृकृतः स्मृत' इति (व्य० ११६) **याज्ञवल्क्योक्तेः** । पितरि ब्राह्मणे मृते तु 'शूद्रापुत्रो न रिक्थभागि'त्युक्तेः । जीवत्यपि 'नाधिकं दशमाद्द्यात् शूद्रापुत्राय धर्मत' इति मनूक्तेः । दशमोंऽश एव दौहित्रान्तरस्याभावे 'मातृको हरेत्सर्व'मित्युक्तेः ।।१७९।।

(५) **नन्दनः** । अनुज्ञातः पित्रा, अनुज्ञात इति विशेषणादननुज्ञातो न हरेत् ।। १७९ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । दास्यां शूद्रायामूढायां वा दासदास्यां वा शूद्रस्य यो दासस्तस्य या दासी तस्यां स पुत्रो अनुज्ञातः अंशं हरेत् ।। १७९ ।।

(७) **मणिरामः** । दास्यां ध्वजाकृतायुक्तलक्षणायां । अनुज्ञातः परिणीतापुत्रैः समांशभागो भवान् भवत्विति पित्रानुज्ञातः अंशं हरेत् तुल्यभागं लभते इति धर्मो व्यवस्थितः शास्त्रव्यवस्था नियता ।। १७९ ।।

(९) **भारुचिः** । शूद्रं प्रति पितुरनुज्ञावचनात् ब्राह्मणानां स्नेहाद्रागत्वादयं प्रत्यनुज्ञानं नास्ति ।। १७९ ।।

**क्षेत्रजादीन्सुतानेतानेकादश यथोदितान् ।।**
**पुत्रप्रतिनिधीनाहुः क्रियालोपान्मनीषिणः ।। १८० ।।**

(१) **मेधातिथिः** । मुख्याभावे 'प्रतिनिधिः' । अतोऽसत्यौरस एते कर्तव्या इत्युक्तं भवति ।

एतेषां स्मृत्यन्तरेऽन्यादृशः क्रम उक्तः । यथा गूढोत्पन्नः कैश्चित्पंचमोऽपरैः षष्ठ इति । तत्र पाठक्रमो नाद्राङ्गमत एवानियमपाठात् । प्रयोजनं चोत्तरत्राङ्गत्वे दर्शयिष्यामः ।

क्रियालोपाद्धेतोः क्रियते 'अपत्यमुत्पादयितव्यमि'त्यस्य विधिलोपो मा भूदिति। नित्यो ह्ययं विधिः। स यथाकथंचिद्गृहस्थेन संपाद्यः। तत्र मुख्यः कल्प औरसः। तदसंपत्तावेतेऽनुकल्पा आश्रयितव्याः॥ १८०॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। क्षेत्रजादीन्नतु पुत्रिकापुत्रमपि। क्रियालोपादौर्ध्वदेहिकक्रियालोपो मा भूदिति बुद्धचेत्यर्थः॥ १८०॥

(३) **कुल्लूकः**। एतान्क्षेत्रजादीनेकादश पुत्रान्पुत्रोत्पादनविधिलोपः पुत्रकर्तव्यश्राद्धादिलोपश्च माभूदित्येवमर्थं पुत्रप्रतिच्छन्दकान्मुनय आहुः॥ १८०॥

(४) **राघवानन्दः**। सर्वं हरेदिति खले वालीन्यायेनौरसातिरिक्तपुत्राणां प्रतिनिधित्वमाह **क्षेत्रजादीनिति**। 'पुंसि मेढिः खले वाली न्यस्तं यत्पशुबन्धन' इति स यथा अष्टाश्रीकरणरहितः पशुबन्धने नियुज्यत एवं पारशवादीनां पुत्रकार्यनियोगोऽपि नोपनयनादिरिति न्यायार्थः॥ १८०॥

(५) **नन्दनः**। अथौरसस्य श्रैष्ठ्यं श्लोकद्वयेनाह **क्षेत्रजादीन्सुतानिति**। पुत्रप्रतिनिधीनाहुर्न मुख्यान् क्रियालोपादुत्पादकक्रियाया अभावात् मुख्ये संभवत्यौरसे तत्प्रतिनिधिभिस्तत्कार्यं न कर्तव्यमित्यभिप्रायः॥ १८०॥

(६) **रामचन्द्रः**। येऽतिप्रसङ्गात् औरसपुत्रप्रसङ्गात् एते पुत्रा अन्यबीजजा अभिहिताः ते पुत्रा यस्य बीजिनो भवन्ति तु पुनः इतरस्य ते सुताः क्षेत्रजादिवत् पुत्रा भवन्ति॥१८०॥

(७) **मणिरामः**। पुत्रप्रतिनिधीन् औरससुपुत्रस्य प्रतिनिधीन्॥ १८०॥

(९) **भारुचिः**। एकादशानां विशेषणप्रतिनिधिवचनात् कानीनादयोऽपि पूर्वैरवशिष्टाः प्रतीयन्ते। अतो यदेषामादायादबान्धवत्वमु(क्तम्)। प्रजीवनाविषये पाक्षिकदानार्थं तत्स्यादिति व्याख्यातम्। किमयं प्रधानेन विशिष्टकार्यप्रतिविधिः। अतो मीमांसका आहुरिति। नेत्युच्यते विषमसमीकरणस्यायुक्तत्वात्। यथा चोक्तम्–'तादृशं गुणमाप्नोति कुपुत्रैस्त्वन्तरन्तम' इति। एवमादि॥ १८०॥

**य एतेऽभिहिताः पुत्राः प्रसङ्गादन्यबीजजाः॥**
**यस्य ते बीजतो जातास्तस्य ते नेतरस्य तु॥ १८१॥**

(१) **मेधातिथिः**। पूर्वोक्तस्याभावे विधिप्रतिषेधोऽयमिति व्याचक्षते। **य एते** औरसाभावे प्रतिनिधयः कर्तव्यतया उक्तास्ते न कर्तव्याः। यतस्तेऽन्यबीजजातास्तस्यैव ते पुत्रा **नेतरस्य**। येन क्रियन्ते तस्य ते न भवन्तीत्यर्थः।

अतश्च पूर्वेण विधिः, अनेन प्रतिषेध इति विकल्पः। स च व्यवस्थितो रिक्थग्रहणे। कानीनसहोढपुनर्भवगूढोत्पन्ना न रिक्थभाजः। दत्तकादयस्तु रिक्थभाजः असत्यौरसे। कानीनादयश्चासत्यप्यौरसे न पितृधनहराः, ग्रासाच्छादनभाजः केवलं सत्यसति चौरसे।

यत उक्तं— "सर्वेषामपि च न्याय्यं दातुं शक्त्या मनीषिणा । ग्रासाच्छादनमत्यन्तं पतितो ह्याददद्भवेत्" (९ । २०२) ॥ १८१ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । एते क्षेत्रजादय प्रसंगादौरसपुत्रप्रसंगादुक्ताः, यस्य बीजतो जातास्तस्य ते न भवन्ति । किंत्वितरस्य यस्य क्षेत्रं येन वा क्रयणादिकृतं तस्यैव भवन्तीत्यर्थः । केचित्तु य एते दत्त्रिमादय उक्तास्ते यदि दात्रादीनां क्षेत्रे तेभ्योऽन्यस्माज्जातास्तदा दात्रादिभिर्दत्ता अपि न प्रतिग्रहीत्रादीनां पुत्राः किंतु बीजिन एवेत्यस्यार्थ इत्याहुः ॥ १८१ ॥

(३) **कुल्लूकः** । य एते क्षेत्रजादयोऽन्यबीजोत्पन्नाः पुत्रा औरसपुत्रप्रसङ्गेनोक्तास्ते यद्बीजोत्पन्नास्तस्यैव पुत्रा भवन्ति, न क्षेत्रिकादेरिति सत्यौरसे पुत्रे पुत्रिकायां च सत्यां न ते कर्तव्या इत्येवंपरम्, इदम् 'अन्यबीजजा' इत्येकादशपुत्रोपलक्षणार्थं, स्वबीजजातावपि पौनर्भवशौद्रौ न कर्तव्यौ । अत एव **बृद्धबृहस्पतिः** 'आज्यं विना यथा तैलं सद्भिः प्रतिनिधिः स्मृतः । तथैकादश पुत्रास्तु पुत्रिकौरसयोर्विना' ॥ १८१ ॥

(४) **राघवानन्दः** । ननु तेऽपि पुत्रा इति कथं प्रतिनिधित्वं तत्राह **य इति** । अशास्त्रीयस्य प्रतिनिधित्वाभावं द्योतयितुं तेषां पुत्रोक्तिर्नतु ते वस्तुतः पुत्रा भवन्ति । कार्यातिदेशं विनान्यस्यान्यभावानुपपत्तेरिति भावः । अत एवाह 'यस्य त' इत्यनेन । जनकानां पुत्राभावे त एव श्राद्धादिकर्तारः । पौनर्भवशूद्रापत्ययोः स्वजातत्वेऽपि मुख्यत्वम् । तथा च **बृहस्पतिः** 'आज्यं विना यथा तैलं सद्भिः प्रतिनिधीकृतम् । तथैकादश पुत्राः स्युः पुत्रिकौरसयोर्विने'ति । एकादशत्वं तु पुत्रिकापुत्रमादाय पुत्रिकापुत्रोऽपि समयबन्धान्मातृद्वारौरसोऽन्यबीजजश्च । अत एवानयोरभावे उक्तदशपुत्रा अर्थाकारिण इति **कुल्लूकः** । **याज्ञवल्क्यस्तु** 'पिण्डदोंऽशहरश्चैषां पूर्वाभावे परः पर' इत्युपक्रम्य पत्न्यादिकमाह तेन गौणमुख्यपुत्राभावे पत्न्यादीनामधिकार इति सुष्ठु ॥ १८१ ॥

(५) **नन्दनः** । उत्पादकत्वं प्रतिपुत्रत्वं मुख्यमित्यत आह **य एत इति** ॥ १८१ ॥

(६) **रामचन्द्रः** । एकजातानां एकैनैकस्यां जनितानाम् ॥ १८२ ॥

(७) **मणिरामः** । औरसे पुत्रे सति पुत्रिकायां च सत्यां क्षेत्रजादयो न कर्तव्या इत्याह **य इति** । न इतरस्य औरसपुत्रवतः, पुत्रिका पुत्रवतश्च न भवंतीत्यर्थः ॥ १८१–१८२ ॥

(९) **भारुचिः** । तथा चेदमाह–एषां निन्दावचनं समानबलत्वप्रतिषेधार्थं प्रधानेन–पौनर्भवशौद्रा द्वौ परित्यज्य नव पुत्रा अन्यबीजजा उच्यन्ते । तेषामौरसे निरस्तानां बीजिनां सति सम्भवे भागित्वमुक्तम् । . . . येषां तु बीजिन ज्ञाय(?) तथा गूढो (त्पन्न) का (नी)-नसहोढानां तेषामुभयत्र भागित्वे केवलं प्रजोत्पादनमात्रेभ्यो दीयते । तच्चानृशंसावचनम् । सर्वेषां . . . . ज्ञातम् । औरसप्रशंसार्थोऽयं श्लोक इत्यपरे । येन किञ्चिदपो विधीयते प्रतिषिध्यते वा । अथवा प्रतिनिधानेनासमानकार्यत्वप्रदर्शनार्थोऽयं श्लोकः ॥ १८१ ॥

**भ्रातॄणामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रवान्भवेत् ॥**
**सर्वांस्तांस्तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत् ॥ १८२ ॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । **एकजातानामिति** । एकेन जनितानां सापत्नानामपि । एवं च यदि भ्रातुरपत्योत्पादनशक्तिरस्ति तदा तत्पुत्रेणैवेतरस्य पुत्रवत्त्वाद्देवरगमनेन क्षेत्रजपुत्रकरणमयुक्तमनापदीति निषेधाद्युक्तं भवति ॥ १८२ ॥

(३) **कुल्लूकः** । भ्रातॄणामेकमातापितृकाणां मध्ये यद्येकः पुत्रवान्स्यादन्ये च पुत्ररहितास्तदा तेनैकपुत्रेण सर्वान्भ्रातॄन्सपुत्रान्मनुराह । ततश्च तस्मिन्सत्यन्ये पुत्रप्रतिनिधयो न कर्तव्याः । स एव पिण्डदोंऽशहरश्च भवतीत्यनेनोक्तम् । एतच्च 'पत्नी दुहितरश्चैव पितरौ भ्रातरस्तथा । तत्सुता'इति **याज्ञवल्क्य**(व्यव. ८।१३५)वचनाद्भ्रातृपर्यन्ताभावे बोद्धव्यम् ॥ १८२ ॥

(४) **राघवानन्दः** । भ्रातृपुत्रसत्त्वे क्षेत्रजादयः प्रतिनिधयो न कार्या इत्याह **भ्रातॄणामिति** । एकजातानामेकपितृजातानाम् । 'पत्नी दुहितरश्चैव पितरौ भ्रातरस्तथा । तत्सुताश्चे'ति **याज्ञवल्क्योक्तेः** । भ्रातृपुत्रपर्यन्ताभावे कर्तुं योग्य इति भावः ॥ १८२ ॥

(५) **नन्दनः** । अथ द्वयेन पुत्रमतिदिशति **भ्रातॄणामिति** । एकजातानामेकपितृमातृकाणां पुत्रवानौरसवान्सति भ्रातृपुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत् ॥ १८२ ॥

(९) **भारुचिः** । सति भ्रातृपुत्र एते प्रतिनिधयः कर्तव्या इत्येवंपरमेतत् । अथवा... स्य प्रथमं दत्तकादिन्यायेन प्रतिनिधित्वमनेन श्लोकेन विज्ञायते । अलभ्यमाने त्वसति वा भ्रातृपुत्रेऽन्ये कल्पा आश्रयणीया इति ॥ १८२ ॥

**सर्वासामेकपत्नीनामेका चेत्पुत्रिणी भवेत् ॥**
**सर्वास्तास्तेन पुत्रेण प्राह पुत्रवतीर्मनुः ॥ १८३ ॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । एवमेकस्यां सपत्न्यां पुत्रवत्यामन्यस्यामनपत्यायामपि नियोगो न कार्य इत्याह **सर्वासामिति** ॥ १८३ ॥

(३) **कुल्लूकः** । एकपतिकानां सर्वासां स्त्रीणां मध्ये यद्येका पुत्रवती स्यात्तदा तेन पुत्रेण सर्वास्ताः पुत्रयुक्ता मनुराह । ततश्च सपत्नीपुत्रे सति स्त्रिया न दत्तकादिपुत्राः कर्तव्या इत्येतदर्थमिदम् ॥ १८३ ॥

(४) **राघवानन्दः** । एवमेकपतिकानां मध्ये कस्याश्चित्पुत्रवत्त्वे दत्तकादि नान्यतमया कर्तव्यमिति नियमयितुमाह **सर्वासामिति** । पुत्रवती पुत्रकार्यवती ॥ १८३ ॥

(५) **नन्दनः** । पुत्रिणी औरसपुत्रिणी पुत्रत्वातिदेशस्य प्रयोजनं सत्स्वपि सोदरादिषु पूर्वोपदिष्टैरेव पुत्रैः सकलपुत्रकार्यलाभः ॥ १८३ ॥

(६) **रामचन्द्रः** । सर्वासां एकपत्नीनां एकस्य भार्याणां मध्ये एका चेत्पुत्रिणी भवेत् ॥ १८३ ॥

(७) **मणिरामः**। एकपत्नीनां एकपतिकानां ॥ १८३ ॥

(९) **भारुचिः**। इयं नियोक्तव्येत्येतस्माद् गम्यते। न चैतयैकाकिन्या दत्तकादिपुत्रग्रहणं कार्यम् ॥ १८३ ॥

**श्रेयसः श्रेयसोऽलाभे पापीयान्रिक्थमर्हति ॥**
**बहवश्चेत्तु सदृशाः सर्वे रिक्थस्य भागिनः ॥ १८४ ॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। श्रेयानुत्तमः। पापीयानपकृत्तमः। तन्निषेधश्च औरसपुत्रिकाजक्षेत्रजगूढकानीनपौनर्भवदत्तक्रीतकृत्रिमस्वयंदत्तसहजोढजापविद्धानुक्रमेण परिगणय्य **याज्ञवल्क्येन** (व्यव. १३५) 'पिण्डदोंऽशहरश्चैषां पूर्वाभावे परः पर'इति विशेषतो विधानात्तद्वचनानुसारेण कर्तव्यः। अत्र तु क्रमपाठो न पूर्वपूर्वोत्कर्ष इति आपादनार्थः, क्रमपाठोऽत्र स्वबन्धुदायादबान्धवविवेकपरत्वादिति। सदृशा औरसा एव दत्तिम इत्यादि ॥ १८४ ॥

(३) **कुल्लूकः**। औरसादीनां सर्वेषां पुत्राणां प्रकृतत्वादौरसादीनुपक्रम्य तेषां पूर्वः पूर्वः श्रेयान्स एव दायहरः, 'स चान्यान्बिभृयादि'ति **विष्णु**वचनात्। औरसादीनां पुत्राणां पूर्वपूर्वाभावे परः परः रिक्थमर्हति, पूर्वसद्भावे परसंवर्धनं स एव कुर्यात्। एवं च सिद्धे शूद्रापुत्रस्य द्वादशपुत्रमध्ये पाठः क्षेत्रजादिसद्भावे धनानर्हत्वज्ञापनार्थत्वेन सार्थकः; अन्यथा तु क्षत्रियावैश्यापुत्रवदौरसत्वात्क्षेत्रजादिसद्भावेऽपि धनं लभेत्; पूर्वस्य परसंवर्धनमात्रं चापवादेतरविषये द्रष्टव्यं। क्षेत्रजगुणवद्दत्तकपुत्रयोः पञ्चमं षष्ठं वा भागमौरसो दद्यादिति विहितत्वात्। यदि तु समानरूपाः पौनर्भवादयो बहवः पुत्रास्तदा सर्व एव विभज्य रिक्थं गृह्णीयुः ॥ १८४ ॥

(४) **राघवानन्दः**। औरसानां मध्ये पूर्वः पूर्वः श्रेयस्तया ज्ञेय इत्याह **श्रेयस इति**। स्वजात्यपेक्षया श्रेयस औरसादेः तदलाभे तदभावे। पापीयान् क्षेत्रजादिः। 'पिण्डदोंऽशहरश्चैषां पूर्वाभावे परः पर'इति **याज्ञवल्क्योक्तेः**। अतो **विष्णु**रप्याह 'औरसादीनां पुत्राणां पूर्वपूर्वाभावे परः परो रिक्थमर्हति। पूर्वसद्भावे परस्य संवर्धनं स एव कुर्यादि'ति। संवर्धनं पोषणम्। बहवश्चेत्सदृशा ब्राह्मणत्वादिजात्या रिक्थस्य भागिनः पिण्डदाश्च। यदेकादशपुत्रेषु शूद्रापुत्रस्यौरसत्वेऽपि गणना जीवत्पितृदत्तदशमांशातिरिक्तांशाभावार्था 'यदेवास्य पिता दद्यात्तदेवास्य धनं भवेदि'ति दशमांशोपलक्षणम्। तथा च 'ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्रापुत्रो न रिक्थभागि'त्युक्तिः संगता; अन्यथा विप्रजक्षत्रियावैश्यापुत्रयोस्तेषु गणनाप्रसक्तिः स्यात्। धनाहारित्वसत्त्वाविशेषात्। अत एव शूद्रापत्यस्यांशहारित्वं क्षेत्रजगुणवद्दत्तकयोरपि मुख्येन षष्ठांशादिदानमपि संगच्छते वचनादेव, नात्र तर्क इति श्रेयस इत्यादावेकवचनमविवक्षितम्। तेषां पौनर्भवादीनां बहुत्वेऽपि भागहारित्वन्यायस्य तुल्यत्वमित्याह **बहवश्चेदिति** ॥ १८४ ॥

(५) **नन्दनः**। इदानीं पुत्राणामुक्तसंख्यानां दायप्राप्तिक्रममाह **श्रेयसः श्रेयसोऽलाभ** इति। श्रेयसो मुख्यस्य पापीयान्गौणपुत्रः ॥ १८४ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। ज्येष्ठस्य श्रेयसोऽलाभः पापीयान् गुणादिनिकृष्टः रिक्थं भागं अर्हति। बहवश्चेत्सदृशाः समानवर्णाः ॥ १८४ ॥

(९) **भारुचिः**। सर्वस्मिन् रिक्थविभागे बीजभूतोऽयं श्लोकः। एवं सत्यस्यानुरोधेन रिक्थविभागेन आगन्तुरतिक्रान्तश्च वर्णनीयः ॥ १८४ ॥

**न भ्रातरो न पितरः पुत्रा रिक्थहराः पितुः ॥**
**पिता हरेदपुत्रस्य रिक्थं भ्रातर एव च ॥ १८५ ॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। पुत्रा औरसादयो द्विजातिजनितशूद्रापुत्रादन्ये। पिता हरेदविभक्तस्य। भ्रातर एव वा पित्रनुमत्या। विभक्तत्वे तु पत्न्यैव; तदभावे तु दुहित्रादेर्याज्ञवल्क्योक्तेः ॥ १८५ ॥

(३) **कुल्लूकः**। न सोदरभ्रातरो न पितरः किन्त्वौरसाभावे क्षेत्रजादयो गौणपुत्राः पितृरिक्थहरा भवन्तीत्यनेनोच्यते; औरसस्य तु 'एक एवौरसः पुत्र' (९।१६३) इत्यनेनैव सिद्धत्वात् अविद्यमानमुख्यपुत्रस्य पत्नीदुहितृरहितस्य च पिता धनं गृह्णीयात्तेषां मातुश्चाभावे भ्रातरो धनं गृह्णीयुः। एतच्चानन्तरं प्रपञ्चयिष्यामः ॥ १८५ ॥

(४) **राघवानन्दः**। औरसपुत्रिकापुत्रादीनामेव धनहारित्वं व्यतिरेकेण दृढयति **नेति**। उक्तपुत्रा एव रिक्थहराः स्मृताः न भ्रातरो न पितर इत्यन्वयः। पुत्राभावे पितेत्याह **पितेति**। पितृपदं पत्न्याद्युपलक्षणम्; 'पुत्रा' इति श्रुतेः। 'प्रमीतस्य पितुः पुत्रैः क्रिया कार्या प्रयत्नत' इति **शूलपाण्युक्तेः**। 'अस्वर्ग्या ह्याहुतिः सा स्याच्छूद्रसंसर्गदूषिता। विप्राद्यभावे शूद्राजोऽप्यधिकारी'ति। अत एव **याज्ञवल्क्यः** पत्नी दुहितरश्चैव पितरौ भ्रातरस्तथा। तत्सुता गोत्रजा बन्धुः शिष्यः सब्रह्मचारिणः ॥ एषामभावे पूर्वस्य धनभागुत्तरोत्तर' इति। अत्र च पाठ एव क्रमः प्रयाजवद्विवक्षितः। येषां पत्न्यादीनां मध्ये पूर्वस्य पत्नीरूपस्याभावे परो दुहितेत्येवमन्वयः। बन्धुपदमाचार्योपलक्षकम्। यत्तु 'न पत्न्या धनहारित्वं' 'स्त्रीणां तु जीवनं दद्यादि'ति,–तत्तु दुःशीलाधार्मिकासत्विकायौवनस्थाविषयम्। अन्यथा 'अपुत्राशयनं भर्तुः पालयन्ती व्रते स्थिता। पत्न्यैव दद्यात्तत्पिण्डं कृत्स्नमंशं लभेत चे'ति **बृहन्मनु**वचनविरोधः। यतिवानप्रस्थयोर्धनं तु 'वानप्रस्थयतिब्रह्मचारिणामृक्थभागिनः। क्रमेणाचार्यसच्छिष्यधर्मभ्रात्रेकतीर्थिन' इत्यत्र प्रतिलोमेनान्वयः ॥ १८५ ॥

(५) **नन्दनः**। दिष्टेषु च पुत्रेषु सत्सु न भ्रातरो न पितरो रिक्थहराः पुत्रा एव पितृरिक्थहराः 'पिता हरेदपुत्रस्ये'ति अपुत्रस्योपदिष्टपुत्ररहितस्य भ्रातरः सोदराः; 'एव'-शब्देनापुत्रस्य रिक्थहरणे भ्रातृणां पितृतो विशिष्टत्वं सूचितम् ॥ १८५ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। पिता हरेत् अपुत्रस्य रिक्थं ॥ १८५ ॥

(७) **मणिरामः**। औरसपुत्राभावे रिक्थहरानाह **न भ्रातर** इति। भ्रातरः सोदराः। पितरः औरससुपुत्राभावे न रिक्थहराः, किंतु पुत्राः क्षेत्रजादयो गौणपुत्राः पितृ रिक्थहरा

इत्यर्थः। अपुत्रस्य अविद्यमानमुख्यपुत्रस्य। स्वपुत्रस्य पिता धनं हरेत्, तस्याप्यभावे भ्रातरो धनं गृह्णीयुः ॥ १८५ ॥

(९) **भारुचिः**। एते औरसादयः पुत्राः प्रकृतास्त्व एव रिक्थहराः स्युः। क्षेत्रजादयोप्यौरसासम्भवे। कुत एतत्? प्रकरणसामर्थ्यात्, सत्यपि सन्निकृष्टतरत्वे पितुर्भ्रातुश्च नैव रिक्थभाजः स्युः। अपुत्रस्य पिता हरेत्, तदभावे भ्रातरः; एवं चौरसस्य पितृधनप्राप्तौ सिद्धायां क्षेत्रजादिसुतप्राप्त्यर्थोऽयमारम्भः ॥ १८५ ॥

**त्रयाणामुदकं कार्यं त्रिषु पिण्डः प्रवर्तते ॥**
**चतुर्थः संप्रदातैषां पञ्चमो नोपपद्यते ॥ १८६ ॥**

**(असुतास्तु पितुः पुत्र्यः समानांशाः प्रकीर्तिताः।**
**पितामह्यश्च ताः सर्वा मातृकल्पाः प्रकीर्तिताः ॥)**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। त्रयाणामिति पितृतत्पितृतत्पितॄणां उदकं कार्यं नियमेन तथा पिण्डः पिण्डदानम्। 'पञ्चमो नोपपद्यत' इत्यवश्यमुदकं पिण्डं च दाप्यम् ॥ १८६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। इदानीं क्षेत्रजानामप्यपुत्रपितामहादिधनेऽप्यधिकारं दर्शयितुमाह **त्रयाणामिति**। त्रयाणां पित्रादीनामुदकदानं कार्यं त्रिभ्य एव च तेभ्यः पिण्डो देयः; चतुर्थश्च पिण्डोदकयोर्दाता पञ्चमस्यात्र संबन्धो नास्ति। तस्माद्युक्तोऽपुत्रपितामहादिधने गौणपौत्राणामधिकारः औरसपुत्रयोश्च 'पुत्रेण लोकान् जयती'(९।१३७)त्यनेनैवात्र पितामहादिधनभागित्वमुक्तम् ॥ १८६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। पितामहधनेऽप्येवमित्याह **त्रयाणामिति**। पितृपितामहप्रपितामहास्त्रयः। कार्यं दशविधैः पुत्रैः त्रिषु पितृषु देयत्वेन पिण्डः प्रवर्तते। चतुर्थः पुत्रादिः संप्रदाता पिण्डोदकयोः। पञ्चमस्य पिण्डादिदातृत्वेन शास्त्राबोधितत्वान्नास्ति पञ्चमो नापि तस्य धनहारितेति। अनेन पितामहप्रपितामहयोरपि धनहारित्वं गौणपुत्राणामभावे इत्यसूचि ॥ १८६ ॥

(५) **नन्दनः**। न केवलमसति पुत्रे भ्रात्रादीनां रिक्थहरत्वं, किन्तु सतोश्च पौत्रप्रपौत्रयोः पुत्रतुल्यकर्मकर्तव्यत्वात्तयोरित्यभिप्रायेणाह **त्रयाणामुदकमिति**। त्रयाणां पितृपितामह-प्रपितामहानामुदकं कर्तव्यं न ततोऽधिकानां त्रिषु पिण्डश्च प्रवर्तते विधीयते नाधिकेषु। एषां त्रयाणां पिण्डोदकयोः संप्रदाता चतुर्थः। पुत्रपौत्रप्रपौत्रलक्षणं प्रपितामहादारभ्य तस्य चतुर्थत्वं, पञ्चमः संप्रदाता नोपपद्यते न शास्त्रेषु विधीयते। प्रेतस्य धनिनः पुत्रः पौत्रप्रपौत्रज्ञात्यन्तरेष्वप्युपकारकतमः, तेन तेष्वसत्स्वेव भ्रात्रादयो रिक्थहरा नतु सत्सु ॥ १८६ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। त्रयाणां पितृपितामहप्रपितामहानां उदकं तर्पणं कार्यम्, त्रिषु पितामहप्रपितामहादिषु पिण्डः प्रवर्तते। चतुर्थः संप्रदाता। एषां मध्य पञ्चमो नोपपद्यते। लेपभाजश्चतुर्थाद्याः ॥ १८६ ॥

(७) **मणिरामः**। इदानीं क्षेत्रजादीनामप्यपुत्रपितामहादिधनहारित्वं दर्शयति **त्रयाणामिति**। त्रयाणां पितृ-पितामह-प्रपितामहानां। त्रिषु पित्रादिषु। संप्रदाता पिंडोदकयोर्दाता चतुर्थः। पंचमो नोपपद्यते। पंचमस्यात्र संबंधो नास्ति। तस्मादपुत्रपितामहादिधने गौणपुत्राधिकार इति ज्ञेयं॥ १८६॥

(९) **भारुचिः**। प्रकृतस्य सन्निकर्षस्य विभावनार्थोऽयं श्लोकः॥ १८६॥

**अनन्तरः सपिण्डाद्यस्तस्य तस्य धनं भवेत्॥**
**अत ऊर्ध्वं सकुल्यः स्यादाचार्यः शिष्य एव वा॥ १८७॥**

**(हरेरन्नृत्विजो वापि न्यायवृत्ताश्च याः स्त्रियः॥)***

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। एषां मध्ये सपिण्डानां मतो योऽनन्तरो यथा पुत्रस्य पिता तस्य तत्पितेत्यादि। तस्य तु तद्धनम्। असति तु पितरि पितामहस्य, तदभावे तत्पितुरपि। अत्र च पितामहापेक्षया भ्रातुर्भ्रातृपुत्रस्य च संनिकृष्टत्वात्पित्रभावे भ्राता, तदभावे तत्सुतस्तदभावे पितामहादिर्यो यः सन्निकृष्टस्तदभावे च समानोदकः सगोत्रो मातुलादिबन्धुरिति क्रमात्पूर्वपूर्वाभावे। एवं पितामहे वृत्ते तद्धनं पुत्रस्यैव धनं न पौत्रस्याधिकारः। यत्तु 'तत्र स्यात्सदृशं स्वाम्य'मिति तत्पुत्रेच्छया विभजनीयं तदित्येतत्परम्। सकुल्यो मातुलादिर्बन्धुः। तदभावे चाचार्योऽपि शिष्यो वा यस्तदा प्रत्यासन्न इत्यर्थः॥ १८७॥

(३) **कुल्लूकः**। अस्य सामान्यवचनस्योक्तौरसादिसपिण्डमात्रविषयत्वे वैयर्थ्यात्तत्रचानुक्तपत्न्यादिदायप्राप्त्यर्थमिदम्। सपिण्डमध्यात्सन्निकृष्टतरो यः सपिण्डः पुमान् स्त्री वा तस्य मृतधनं भवति। तत्र 'एक एवौरसः पुत्र'(९।१६३)इत्युक्तत्वात्स एव मृतधने स्वाधिकारी। क्षेत्रजगुणवदुक्तकयोस्तु यथोक्तं पञ्चमं षष्ठं वा भागं दद्यात्। कृत्रिमादिपुत्राणां संवर्धनमात्रं कुर्यात्। औरसाभावे पुत्रिका तत्पुत्रश्च 'दौहित्र एव च हरेदपुत्रस्याखिलं धन'(९।१३७)मित्युक्तत्वादौरसपुत्ररहित एव तत्रापुत्रो विवक्षितः। तदभावे क्षेत्रजादय एकादश पुत्राः क्रमेण पितृधनाधिकारिणः। परिणीतशूद्रापुत्रस्तु दशमभागमात्राधिकारी, 'नाधिकं दशमाद्द्याच्छूद्रापुत्राय' (९।१५४) इत्याद्युक्तत्वाद्दशमभागावशिष्टं धनं सन्निकृष्टसपिण्डो गृह्णीयात् त्रयोदशविधपुत्राभावे पत्नी सर्वभर्तृधनभागिनी। यदाह **याज्ञवल्क्यः** (व्यव. ८।१३५) 'पत्नी दुहितरश्चैव पितरौ भ्रातरस्तथा। तत्सुतो गोत्रजो बन्धुः शिष्यस्सब्रह्मचारिणः॥ एषामभावे पूर्वस्य धनभागुत्तरोत्तरः॥ स्वर्यातस्य ह्यपुत्रस्य सर्ववर्णेष्वयं विधिः॥' **बृहस्पति**रप्याह 'आम्नाये स्मृतितन्त्रे च लोकाचारे च सूरिभिः। शरीरार्धं स्मृता जाया पुण्यापुण्यफले समा॥ यस्य नोपरता भार्या देहार्धं तस्य जीवति। जीवत्यर्धशरीरे तु कथमन्यः स्वमाप्नुयात्॥ सकुल्यैर्विद्यमानैस्तु पितृमातृसनाभिभिः। अपुत्रस्य प्रमीतस्य पत्नी तद्भागहारिणी॥ पूर्वप्रमीताग्निहोत्रं मृते भर्तरि तद्धनम्। विन्देत्पतिव्रता नारी धर्म एष सनातनः॥ जङ्गमं स्थावरं हेम कुप्यं धान्यमथांबरम्। आदाय दापयेच्छ्राद्धं मासषाण्मासिकादिकम्॥ पितृव्यगुरुदौहित्रान्भर्तृस्वस्रीयमातुलान्॥ पूजयेत्कव्यपूर्ताभ्यां वृद्धानप्यतिथींस्त्रियः॥ तत्सपिण्डा बान्धवा वा ये तस्याः परिपन्थिनः। हिंस्युर्धनानि तान् राजा चौरदण्डेन

शासयेत् ।।' **वृद्धमनुः** 'अपुत्राशयनं भर्तुः पालयन्ती व्रते स्थिता। पत येव दद्यात्तत्पिण्डं कृत्स्नमर्थं लभेत च ।।' यदुक्तम् 'स्त्रीणान्तु जीवनं दद्यादि'ति संवर्धनमात्रवचनं, तद्दुःशीलाधार्मिकसविकारयौवनस्थपत्नीविषयं। अतो यन्**मेधातिथिना** पत्नीनामंशभागित्वं निषिद्धमुक्तं–तदसंबद्धम्; पत्नीनामंशभागित्वं **बृहस्पत्या**दिसंमतम्। **मेधातिथिनि**राकुर्वन्न प्रीणाति सतां मनः। पत्न्यभावेऽप्यपुत्रिका 'दुहिता, तदभावे पिता माता च, तयोरभावे सोदर्यभ्राता, तदभावे तत्सुतः। 'मातर्यपि च वृत्तायां पितुर्माता हरेद्धन'मिति (९।२१७) वक्ष्यमाणत्वात्। पितृमाता तदभावेऽन्योऽपि सन्निकृष्टसपिण्डो मृतधनं गृह्णीयात्। तद्यथा – पितामहसंतानेऽविद्यमाने प्रपितामहसंतान एव; तदप्युक्तम्। अत ऊर्ध्वं सपिण्डसन्तानाभावे समानोदक आचार्यः शिष्यश्च क्रमेण धनं गृह्णीयात् ।। १८७ ।।

(४) **राघवानन्दः**। उक्तमुपसंहरन् सकुल्यादेर्धनहारित्वमाह **अनन्तरेति**। सपिण्डाद्या औरसदुहितृजादनन्तराः पत्नीप्रभृतयः पञ्च। तत्रापि 'सकुल्यैर्विद्यमानैस्तु पितृमातृसनाभिभिः। अपुत्रस्य प्रमीतस्य पत्नी तद्भागहारिणी ।। पूर्वप्रमीताऽग्निहोत्रं मृते भर्तरि तद्धनम्। विन्देत्पतिव्रता नारी धर्म एव सनातन'इति **बृहस्पत्यु**क्तेः। प्रथमतः पत्नीति। सकुल्यपदं बन्धोरप्युपलक्षणम्। शिष्यपदं तु तीर्थानाम्। सकुल्योऽर्हतीत्यध्याहार्यमेवमुत्तरत्रापि ।। १८७ ।।

(५) **नन्दनः**। नच पुत्र-पौत्र-प्रपौत्राणां सत्यपि तुल्ये प्रेतोपकरणत्वे तुल्यवद्दायत्वं संभवेन्नापि तेषामभावे सपिण्डान्तराणां किन्तु पिण्डप्रत्यासत्तिक्रमेणैवेत्याह **अनन्तरः सपिण्डा**दिति। प्रेतवचनोऽयं पिण्डशब्दस्तयोरभेदोपचारात् पिण्डादनन्तरः प्रत्यासन्नो यः सपिण्डस्तस्य धनं देयं भवेत्। द्विर्वचनं क्रमप्राप्त्यर्थं, अत ऊर्ध्वमेभ्यः सपिण्डेभ्य ऊर्ध्वं सपिण्डाभाव इति यावत्। सकुल्यः समानोदको रिक्थहर इत्यनुकर्षः, तेषामभाव आचार्यः, तस्याभावे शिष्यो रिक्थहरः स्यात् ।। १८७ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। सपिण्डात् अनन्तरः संनिकृष्टः तस्य तस्य धनं भवेत् ।। १८७ ।।

(७) **मणिरामः**। अयुक्तपत्न्यादिदायप्राप्त्यर्थमाह **अनंतरमिति**। सपिंडात् सपिंडमध्यात् अनंतरः सन्निकृष्टतरो यः सपिंडः पुमान् स्त्री वा तस्य सपिंडस्य तस्य धनं मृतस्य धनं भवेत्। तत्र औरसे विद्यमाने स एव सर्वधनाधिकारी। औरसाभावे पुत्रिका तत्पुत्रश्च। तदभावे क्षेत्रजादय एकादश क्रमेण पूर्वपूर्वाभावे उत्तरोत्तराः पुत्रा अधिकारिणः। प्रणीतशूद्रापुत्रो दशमभागमात्राधिकारी। दशमभागं दत्वाऽवशिष्टं धनं सन्निकृष्टः सपिंडो गृण्हीयात्। त्रयोदश पुत्राभावे पत्नी सर्वाऽधिकारिणी। पत्न्यभावे अपुत्रिका दुहिता। तदभावे पिता माता च। तयोरभावे सोदर्यभ्राता। तदभावे तत्सुतः। तदभावे पितुर्माता। तदभावे पितामहादिसंतान इति क्रमो ज्ञेयः। अत ऊर्ध्वं पितामहादिसंतानाभावे सकुल्यः समानोदकः। आचार्यः शिष्यो वा अधिकारी। तथाह **याज्ञवल्क्यः** (व्यव० १३५) 'पत्नी दुहितरश्चैव पितरौ भ्रातरस्तथा। तत्सुतो गोत्रजो बंधुः शिष्यसब्रह्मचारिणः। एषामभावे पूर्वस्य धनभागुत्तरोत्तरः। स्वर्यातस्य ह्यपुत्रस्य सर्ववर्णेष्वयं विधिः' ।। १८७ ।।

(९) **भारुचिः**। सकुल्यग्रहणेन समानोदका गृह्यन्ते। आचार्यः शिष्यो वा तदभावे ।। १८७ ।।

**सर्वेषामप्यभावे तु ब्राह्मणा रिक्थभागिनः ।।**
**त्रैविद्याः शुचयो दान्तास्तथा धर्मो न हीयते ।।१८८।।**

(२) **सर्वज्ञनारायणः ।** ब्राह्मणास्तद्ग्रामवासिनः । त्रैविद्यास्त्रयीवेदिनः । शुचयः वाचाराः । दान्ताः नियतेन्द्रियाः । एतच्च ब्राह्मणधनविषयम्, इतरधनं राजगामि ।।१८८।।

(३) **कुल्लूकः ।** एषामभाव इति वक्तव्ये सर्वेषामभाव इति यदुक्तं तत्सब्रह्मचार्यादेरपि धनहारित्वार्थं । सर्वेषामभावे ब्राह्मणा वेदत्रयाध्यायिनो बाह्यान्तरशौचयुक्ता जितेन्द्रिया धनहारिणो भवन्ति, त एव च पिण्डदाः तथासति धनिनो मृतस्य श्राद्धादिधर्महानिर्न भवति ।। १८८ ।।

(४) **राघवानन्दः ।** उक्तानामभावेऽप्याह **सर्वेषामिति ।** ब्राह्मणान्विशिनष्टि **त्रैविद्या** इति । धर्मो न हीयते तैर्विप्रैः श्रद्धादिनिर्वाहात् । विधिप्रसंगतुल्यत्वादनुवादोऽयं ब्राह्मणधनहारित्वं नृपतेस्तदन्यधनहारित्वमार्थं; अयमप्यनुवादस्तेनैव गतत्वादिति ।।१८८।।

(५) **नन्दनः ।** सर्वेषां पुंसां स्त्रीणाञ्च यथाकथञ्चित्संबन्धवताम् ।। १८८ ।।

(६) **रामचन्द्रः ।** **त्रैविद्येति ।** तथा राज्ञां धर्मो न हीयते ।। १८८ ।।

(७) **मणिरामः ।** सर्वेषां पूर्वोक्तानां । तथा धर्मो न हीयते तथा सति धनिनो मृतस्य श्राद्धादिधर्महानिर्न भवति ।। १८८ ।।

(९) **भारुचिः ।** सर्वेषामप्यभाव इत्येतस्माद् गम्यते; तु स्त्रीणामप्यभावे यथोक्तगुणसम्बन्धः .....सति– ।। १८८ ।।

**अहार्यं ब्राह्मणद्रव्यं राज्ञा नित्यमिति स्थितिः ।।**
**इतरेषां तु वर्णानां सर्वभावे हरेन्नृपः ।। १८९ ।।**

(२) **सर्वज्ञनारायणः ।** तदेतदाह **अहार्यमिति ।** सर्वाभावे शिष्यपर्यन्ताभावे ।। १८९।।

(३) **कुल्लूकः ।** ब्राह्मणसंबन्धि धनं न राज्ञा कदाचिद्ग्राह्यमिति शास्त्रमर्यादा । किन्तूक्तलक्षणब्राह्मणाभावे ब्राह्मणमात्रेभ्योऽपि देयं । क्षत्रियादिधनं पुनः पूर्वोक्तरिक्थहराभावे राजा गृह्णीयात् ।। १८९ ।।

(४) **राघवानन्दः ।** ब्राह्मणधनं ब्राह्मणब्रुवेऽपि देयमित्याह **अहार्यमिति ।** ब्राह्मणे धर्मतोऽधर्मतो वा साम्यस्वरसात् ।। १८९ ।।

(६) **रामचन्द्रः ।** सार्धेनाह **इतरेति ।** इतरेषां तु वर्णानां क्षत्रियादीनाम् ।। १८९ ।।

(७) **मणिरामः ।** अहार्यं अग्राह्यं ।। १८९ ।।

(९) **भारुचिः ।** रिक्थश्लोकः ।। १८९ ।।

**संस्थितस्यानपत्यस्य सगोत्रात्पुत्रमाहरेत् ।।**
**तत्र यद्रिक्थजातं स्यात्तत्तस्मिन्प्रतिपादयेत् ।। १९० ।।**

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । सगोत्राद्यदि तन्तुसन्तानमाहरेदनियुक्तापि स्त्री तदा गोलकत्वेऽपि तस्य ज्ञात्यन्तराभावे क्षेत्रपतिधनहारित्वमित्यर्थः । एतच्च शूद्रां प्रत्येवोच्यत इति केचित् । अत एव तन्मते गूढजकानीनसहोढजा अपि शूद्रस्यैव पुत्रा भवन्ति, नतु विप्रादीनामिति ।। १९० ।।

(३) **कुल्लूकः** । अनपत्यस्य मृतस्य भार्या समानगोत्रात्पुंसो गुरुनियुक्ता सती नियोगधर्मेण पुत्रमुत्पादयेत्, तस्मिन्मृतविषये यद्धनजातं भवेत्तत्तस्मिन्पुत्रे समर्पयेत्, 'देवराद्वा सपिंडाद्वा' (९।५९) इत्युक्तत्वात् । सगोत्रान्नियोगप्राप्त्यर्थं तज्जस्य च ऋक्थभागित्वार्थमिदम् ।।१९०।।

(४) **राघवानन्दः** । 'देवराद्वा सपिण्डाद्वे'त्युक्तमनुवदन्विधवाधनमुत्तरकालीनायापत्याय दापयन्नाह **संस्थितस्येति** । आहरेद्विधवा भूत्वा जनयेत् । तत्र अनपत्ये पतौ धनं यो बिभृयादित्यस्यैवानुवादोऽयं, न्यायस्य तुल्यत्वात् । तत्र जनको दद्यादत्र जननी दद्यादिति वा भेदः ।। १९०।।

(५) **नन्दनः** । एवमनपत्यधनस्य भ्रातृगामित्वमुक्तम्, अधुना पक्षान्तरमाह **संस्थितस्यानपत्यस्येति** । अनपत्यस्य संस्थितस्य मृतस्य सगोत्राद्देवरादेस्तं पुत्रमाहरेत्पुत्रमुत्पादयेत्, पत्नीगुरुयोगादिति शेषः ।। १९० ।।

(६) **रामचन्द्रः** । अनपत्यस्य संस्थितस्य मृतस्य सगोत्रात् तद्रिक्थं आहरेत् । तत्र यत् रिक्थजातं स्यात् तत्तस्मै ।। १९० ।।

(७) **मणिरामः** । अनपत्यस्य संस्थितस्य मृतस्य भर्तुः भार्या सगोत्रात् समानगोत्रात् पुंसः गुरुनियुक्ता सती सुतं आहरेत् उत्पादयेत् । सगोत्रादपि पुत्रोत्पत्त्यर्थमसावारंभः, पूर्वं तु सपिंडात्पुत्रोत्पादनमुक्तमित्यपौनरुक्तिः ।। १९० ।।

(९) **भारुचिः** । क्षेत्रजस्य देवरसपिण्डाभ्यामुक्तत्वादिह सगोत्रग्रहणं तदुत्पन्नस्यापि धनांशप्राप्त्यर्थम् । इतरथा हि 'देवराद्वा सपिण्डाद्वे'ति वचनाददेवरसपिण्डात् सगोत्रादुत्पन्नस्य क्षेत्रजस्यानंशार्हता स्यात् । क्लीबस्य दत्तकस्य.....त्तकः स्वयं दत्ताः स्युः ।। १९० ।।

**द्वौ तु यौ विवदेयातां द्वाभ्यां जातौ स्त्रिया धने ।**
**तयोर्यद्यस्य पित्र्यं स्यात्तत्स गृह्णीत नेतरः ।। १९१ ।।**

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । एकः स्वभर्तृजोऽन्यो गोलकः पौनर्भवो वा उभयोश्च पत्योर्धनं मातरि स्थितं तदा स्वबीजिधनव्यवस्थया ग्राह्यमित्यर्थः । स्त्रिया जातौ धने पित्र्ये विवदेयातामित्यर्थः । नेतरत् स्वमातृपत्यन्तरधनम् ।। १९१ ।।

(३) **कुल्लूकः** । 'यद्येकरिक्थिनौ स्याता' (९।१६२) मित्यौरसक्षेत्रजयोरुक्तम्, इदं त्वौरसपौनर्भवविषयं । यदोत्पन्नौरसभर्तुर्मृतत्वात् बालापत्यतया स्वामिधनं स्वीकृत्य पौनर्भवभर्तुः

सकाशात्पुत्रान्तरं जनयेत् तस्यापि च पौनर्भवस्य भर्तुर्मृतत्वाद्रिक्थहरान्तराभावाद्धनं गृहीतवती, पश्चात्तौ द्वाभ्यां जातौ यदि विवदेयातां स्त्रीहस्तगतधने तदा तयोर्यस्य यज्जनकस्य धनं स तदेव गृह्णीयान्नत्वन्यपितृजोऽन्यजनकस्य ।। १९१ ।।

(४) **राघवानन्दः**। किंच यदि वा सापत्या मृतभर्तृका धनमादाय पौनर्भवेन पुत्रान्तरं जनयित्वा यद्युभयोर्धनमादाय तिष्ठेत्तदा कस्य किं धनमित्यपेक्षायामाह **द्वाविति**। द्वावौरस-पौनर्भवौ विवदेयातां धनमावाभ्यां ग्राह्यं पोषणं ते कार्यमिति। नेतरः अन्यपैतृकमन्यो न गृह्णी-यादिति भावः। अथवा अध्यावहनिकादिस्त्रीधनमात्रविषयम्, अत एव स्त्रिया धनमिति समाख्या संगच्छते ।। १९१ ।।

(५) **नन्दनः**। द्वाभ्यां पुरुषाभ्यां या सपुत्रा सधना भूत्वा पश्चात्पुनर्भूय परस्मादपि पुत्रं जनयति तस्याः पुत्रयोरयं विभागः ।। १९१ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। द्विपितृकस्य व्यवहारमाह **द्वाविति**। स्त्रिया धने स्त्रीधननिमित्ते यौ विवदेयातां। कीदृशौ? द्वौ द्वाभ्यां पितृभ्यां जातौ, तयोः मातापित्रोः यत्पित्र्यं तत्तस्य विद्यमानपितुः पुत्रः गृह्णीत इतरः पूर्वभर्तृजन्यः न गृह्णीत ।। १९१ ।।

(७) **मणिरामः**। पूर्वभर्तुरुत्पन्नबालपुत्रतया मृतस्वामिधनमादाय पौनर्भर्तुः सकाशा-त्पुत्रांतरमुत्पादयेत् तस्यापि मृतस्य धनं गृह्णीतवती, पश्चादुभयोः पुत्रयोर्विवादे निर्णयमाह **द्वाविति**। तत्र यस्माद्यो जातस्तस्य धनं तेन ग्राह्यमित्यर्थः ।। १९१ ।।

(९) **भारुचिः**। 'द्वौ तु यौ विवदेयातां द्वाभ्यां जातौ स्त्रिया धनं। तयोर्यच्चस्य पित्र्यं स्यात्तत्स गृह्णीत नेतरः ।।' या पुनर्भूः सापत्या साधना च परस्मिन् पुरुषे पुनर्भवति तत्रायं विभागः। इदं च पुनर्भूपुत्रस्यांशहरत्वे दर्शनम् ।। १९१ ।।

**जनन्यां संस्थितायान्तु समं सर्वे सहोदराः ।।**
**भजेरन्मातृकं रिक्थं भगिन्यश्च सनाभयः ।। १९२ ।।**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। समं न ज्येष्ठोद्धारेण। मातृकं मातुः स्त्रीधनव्यतिरिक्तधनम्; भगिन्योऽपुत्राः। सनाभयः सोदराः। केचित्तु स्त्रीधनेऽपि भ्रातृविभागमिच्छन्ति। 'स्त्रीधनं स्यादपत्यानां दुहिता च तदंशिनी। अप्रत्ता चेत्समूढा तु लाभसंमानमात्रक' मिति **बृहस्पति**-वचनात्। एवं चाप्रत्ताया भ्रातृभिः सह तुल्यविभागः। इतरस्यास्तु संमानमात्रं देयमिति। एतत्परमेव च स्त्रीधनं दुहितृगामीत्यादि ।। १९२ ।।

(३) **कुल्लूकः**। मातरि मृतायां सोदर्यभ्रातरो भगिन्यश्च सोदर्या अनूढा मातृधनं समं कृत्वा गृह्णीयुः। ऊढास्तु धनानुरूपं संमानं लभन्ते। तदाह **बृहस्पतिः** 'स्त्रीधनं स्यादपत्यानां दुहिता च तदंशिनी। अप्रत्ता चेत्समूढा तु लभते मानमात्रकम्।' ततश्चानूढानां पितृधन इवोढानां मातृधनं भ्रात्रा स्वादंशाच्चतुर्थभागो देयः ।।१९२।।

(४) **राघवानन्दः**। मातृसत्त्वे व्यवस्थोक्ता, दैवादविभक्तदशायां सा मृता चेत्तदा कथं व्यवस्था तत्राह **जनन्यामिति**। संस्थितायां मृतायाम्। सनाभयः नाभिरत्र कुक्षिः एकनाभिजाः। अनूढाभ्यस्तु स्वांशेत्यत्र पितृसंबन्धिभ्रातृधने तुरीयांशभागित्वमनूढानां, मातृधने तु समांशभाक्त्वमिति भेदः। अत एव **बृहस्पतिः** 'स्त्रीधनं स्यादपत्यानां दुहिता च तदंशिनी। अपुत्रा चेत्समूढा तु लभते मानमात्रकम्' ॥ १९२ ॥

(५) **नन्दनः**। एवं पैतृकस्य धनस्य विभाग उक्तः, इदानीं मातृकस्य धनस्याह **जनन्यां संस्थितायामिति**। सनाभयः सोदर्याः। भजेरन्संविभजेरन्। उद्धारो विषमविभागः स्यात् ॥ १९२ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। भगिन्यश्च सनाभयः साक्षात्स्वमातृदुहितरः ॥ १९२ ॥

(७) **मणिरामः**। सनाभयः सहोदरा भगिन्यः। तत्र अनूढाः। मातृधनं समं गृह्णीयुः। ऊढास्तु धनानुरूपं मानं लभंते। भ्रातृभागाच्चतुर्थांशं जनसमभागं। तदाह **बृहस्पतिः** 'स्त्रीधनं स्यादपत्यानां दुहिता च तदंशिनी। अपुत्रा चेत्समूढा तु लभते मानमात्रक'मिति ॥ १९२ ॥

(९) **भारुचिः**। समवचनान्नास्त्यत्र ज्येष्ठांशः। भगिन्यश्च सनाभय ऊढा अनूढाश्च गृह्यन्ते। अनूढा एवेति क्वचित् ॥ १९२ ॥

**यास्तासां स्युर्दुहितरस्तासामपि यथार्हतः ॥**
**मातामह्या धनात्किंचित्प्रदेयं प्रीतिपूर्वकम् ॥१९३॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। प्रत्तासु तु मृतासु ताभ्यः संमानार्थं यद्देयं तत्तद्दुहितृभ्यः स्वेच्छया मातुलैर्देयमित्याह **यास्तासामिति**। प्रीतिपूर्वकं स्वेच्छया ॥ १९३ ॥

(३) **कुल्लूकः**। तासां दुहितृणां या अनूढा दुहितरस्ताभ्योऽपि मातामहीधनाद्यथा तासां पूजा भवति तथा प्रीत्या किंचिद्दातव्यम् ॥ १९३ ॥

(४) **राघवानन्दः**। तासां दुहितृभ्योऽपि किंचिद्देयमित्याह **या इति**। प्रीतिपूर्वकं प्रीत्यर्थं न बलादिति ॥ १९३ ॥

(५) **नन्दनः**। तासां भगिनीनां किंचित्प्रदेयम्, 'प्रीतिपूर्वक'मिति वचनादवश्यदेयमिति सूचितम् ॥ १९३ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। तासां दुहितरः स्युः तासां दौहित्रीणां यथार्हतो भागः ॥ १९३ ॥

(७) **मणिरामः**। तासां दुहितृणां दुहितरः यथार्हतः यथा पूजा भवति तथा ॥ १९३ ॥

(९) **भारुचिः**। भगिन्यभावे तु—ऊढानामनूढानां चेति कृतविचारमेतत्। 'प्रीतिपूर्वक' मिति वचनात् न नियमतो दानमिदं ज्ञायते ॥ १९३ ॥

**अध्यग्न्यध्यावाहनिकं दत्तं च प्रीतिकर्मणि ।।**
**भ्रातृमातृपितृप्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम् ।।१९४ ।।**

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । अध्यग्नि होमविवाहकाले लब्धं यतःकुतश्चित् । तथा व्यवहारिकं पतिगृहनयनसमये लब्धम् । प्रीतिकर्मणि रतिकाले पत्या दत्तम् । तत् स्त्रीधनमित्युक्तम् । भ्रात्रादिभिस्तु यदाकदापि दत्तं स्त्रीधनम् ।। १९४ ।।

(३) **कुल्लूकः** । अध्यग्नीति 'अव्ययं विभक्तिसमीप–' (पा. २।१।६) इत्यादिना सूत्रेण समीपार्थेऽव्ययीभावः, विवाहकालेऽग्निसन्निधौ यत्पित्रादिदत्तं तदध्यग्नि स्त्रीधनं । तदाह **कात्यायनः** 'विवाहकाले यत्स्त्रीभ्यो दीयते ह्यग्निसन्निधौ । तदध्यग्निकृतं सद्भिः स्त्रीधनं परिकीर्तितम् ।।' यत्तु पितृगृहाद्भर्तुर्गृहं नीयमानया लब्धं तदध्यावाहनिकं । तथा च **कात्यायनः** 'यत्पुनर्लभते नारी नीयमाना तु पैतृकात् । अध्यावाहनिकं नाम तत्स्त्रीधनमुदाहृतम् ।' यत्तु प्रीतिहेतुकर्मणि भर्त्रादिदत्तं तथा भ्रात्रा पित्रा च समयान्तरे यद्दत्तं एवं षट्प्रकारकं स्त्रीधनं स्मृतम् ।। १९४ ।।

(४) **राघवानन्दः** । ननु स्त्रीधनविभागोऽनुपपन्नस्तस्यान्यायोपात्तधनाभावादिति तत्राह **अध्यग्नीति** । अध्यग्नि विवाहकालेऽग्निसमीपे पित्रा यद्दत्तं तत् । तथा च **कात्यायनः** 'विवाहकाले यत्स्त्रीभ्यो दीयते ह्यग्निसन्निधौ । तदध्यग्निकृतं सद्भिः स्त्रीधनं परिकीर्तितम् ।। तेनैवोक्तम् 'यत्पुनर्लभते नारी नीयमाना हि पैतृकात् । अध्यावाहनिकं नाम स्त्रीधनं परिकीर्तितम् ।।' दत्तं भर्त्रा प्रीतिकर्मणि रत्युत्सवादौ ।। १९४ ।।

(५) **नन्दनः** । अथ स्त्रीधनलक्षणमाह **अध्यग्न्यध्यावाहनिकमिति** । अध्यग्नि विवाहाग्निसमीपे यद्धनं स्त्रिया कुतश्चिल्लभ्यते तदध्यग्नि आवाहनं पितृकुलाद्भर्तृकुलप्राप्तिः । आवाहनसमयोपलब्धमध्यावाहनिकं विभक्त्यर्थावधिशब्दौ प्रीतिकर्मणि नमस्कारादौ श्वशुराभ्यां दत्तं । तथाच **कात्यायनः** । 'विवाहकाले यत्स्त्रीभ्यो दीयते ह्यग्निसन्निधौ । तदध्यग्निकृतं सम्यक्स्त्रीधनं परिकीर्तितम् । यत्पुनर्लभते नारी नीयमानापि पैतृकात् ।। तन्नाम्नाध्यावाहनिकं स्त्रीधनं समुदाहृतम् ।। प्रीतिदत्तं हि यत्किञ्चिच्छ्वश्वा वा श्वशुरेण वा ।। पादवन्दनिकं यत्तल्लावण्यार्जितमुच्यते ।।' इति षड्विधात्स्त्रीधनादन्यस्त्रिया यल्लब्धं भर्तृधनमेव, नतु स्त्रीधनमित्यभिप्रायः ।। १९४ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । अग्निमधि अध्यग्नि, विवाहहोमकाले लब्धं यत्किंचित् अध्यावाहनिकं प्रतिग्रहाय समये यलब्धं च पुनः प्रीतिकर्मणि रतिकाले पत्या दत्तं । 'भ्रातृमातृपितृप्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम्' ।। १९४ ।।

(७) **मणिरामः** । षड्विधस्त्रीधनमाह **अध्येति** । अध्यग्नि विवाहकाले अग्निसन्निधौ यत्पित्रादिदत्तं । अध्यावाहनिकं पितृगृहाद्भर्तृगृहगमनसमये प्राप्तं । प्रीतिकर्मणि दत्तं भर्त्रा । तथा समयांतरे भ्रात्रादितः प्राप्तं । एवं षट्प्रकारादागतं ।। १९४ ।।

(९) **भारुचिः** । षड्विधस्य नियमात् मैत्रलब्धस्य स्त्रीधनत्वं नास्ति । अध्यग्नि यमग्निसमीप ऊह्यमानायै दत्तः । अध्यावाहनिकं पत्या स्वगृहमानीयमानायै दीयते ।। १९४ ।।

**अन्वाधेयं च यद्दत्तं पत्या प्रीतेन चैव यत् ।।**
**पत्या जीवति वृत्तायाः प्रजायास्तद्धनं भवेत् ।। १९५ ।।**

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । अन्वाधेयं विवाहादुपरि भर्तृबन्धुभिर्दत्तम् । पत्या प्रीतेन रतिकालादन्यदा तदुभयं स्त्रीधनत्वाभावेऽपि पत्यौ जीवति मृतायां अपत्यस्यैव । विशेषस्तु स्त्रीधनास्त्रीधनयोः स्त्रीधने दानादिस्वाम्यं स्त्रिया न त्वन्यत्रेति ।। १९५ ।।

(३) **कुल्लूकः** । अन्वाधेयं व्याख्यातं **कात्यायनेन** 'विवाहात्परतो यत्तु लब्धं भर्तृकुले स्त्रिया । अन्वाधेयं तदुक्तं तु सर्वं बन्धुकुले तथा ।।' विवाहादूर्ध्वं भर्तृकुले पितृकुले वा यत्स्त्रिया लब्धं भर्त्रा च प्रीतेन दत्तं अध्यग्न्यादि पूर्वश्लोक उक्तं तद्भर्तरि जीवति मृतायाः स्त्रियाः सर्वं धनं तदपत्यानां भवति ।। १९५ ।।

(४) **राघवानन्दः** । तर्हि स्त्रीधनापहारोऽपत्यानां प्राप्त इति चेन्न; अपत्यानां स्त्रीधनस्य वाचनिकत्वादित्याह **अन्वाधेयमिति** । अन्वाधेयं 'विवाहात्परतो यत्तु लब्धं भर्तृकुले स्त्रिया । अन्वाधेयं तदुक्तं तु सर्वं बन्धुकुले तथे'ति **कात्यायनो**क्तम् । पत्यौ सति वृत्तायां मातरीति शेषः । प्रजायाः पुत्रादेः ।। १९५ ।।

(५) **नन्दनः** । विवाहादनन्तरं भर्तृकुलाद्बन्धुकुलाद्वा आधीयते आदीयते तदन्वाधेयं । रूपसौन्दर्यादिप्रीतेन च भर्त्रा यद्दत्तं धनं जीवति पत्यौ वृत्तायां मृतायां प्रजायाः पुत्रस्य दुहितुर्वा भवेत् । अत्र **कात्यायनः** 'विवाहात्परतो यत्तु लब्धं भर्तृकुलात्स्त्रिया । अन्वाधेयन्तदुक्तन्तु लब्धं बन्धुकुलात्तथे'ति ।। १९५ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । अन्वाधेयं भर्तृकुले पुनर्लब्धं च पुनः भर्त्रा प्रीतेन यत् यस्मात्कारणात् यद्वस्तु दत्तं रतिकालादन्यत्र प्रीतेन पत्या दत्तं वृत्ताया मृताया मातुः प्रजाया दुहितॄणां तद्धनं भवेत् ।। १९५ ।।

(७) **मणिरामः** । अन्वाधेयं विवाहानंतरं भर्तृकुलात्प्राप्तं । इदं पूर्वोक्तं च षड्विधं पत्यौ जीवति वृत्तायाः मृतायाः सर्वं धनं प्रजायाः पुत्रस्य भवेत्, न भर्तुरित्यर्थः ।। १९५ ।।

(९) **भारुचिः** । ऋज्वर्थः श्लोकः ।। १९५ ।।

**ब्राह्मदैवार्षगान्धर्वप्राजापत्येषु यद्वसु ।।**
**अप्रजायामतीतायां भर्तुरेव तदिष्यते ।। १९६ ।।**

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । ब्राह्मादिविवाहेनोढाया यद्धनं स्त्रीधनास्त्रीधनरूपं अप्रजायामनपत्यायां वृत्तायां भर्तुरेव, प्रजायां तु सत्यां प्रजाया एव ।। १९६ ।।

(३) **कुल्लूकः** । ब्राह्मादिषु पञ्चसु विवाहेषूक्तलक्षणेषु यत्स्त्रियः षड्विधं धनं तदनपत्यायां मृतायां भर्तुरेव मन्वादिभिरिष्यते ।। १९६ ।।

(४) **राघवानन्दः**। अनपत्यायास्तु धनं भर्तुरेवेत्याह **ब्राह्म इति**। उक्तब्राह्मविवाहादिपञ्चसु पित्रादिभ्यो लब्धं भर्तृगामि ॥ १९६ ॥

(५) **नन्दनः**। ब्राह्मादिषु पञ्चसु विवाहेषु यद्धनं स्त्रियै दत्तमिति शेषः ॥ १९६ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। ब्राह्म (२) दैव (३) गान्धर्व (४) प्राजापत्येषु यद्धनं लब्धं अतीतायां मृतायां तद्धनं भर्तुरेवेष्यते ॥ १९६ ॥

(७) **मणिरामः**। अतीतायां मृतायां ॥ १९६ ॥

(९) **भारुचिः**। एतेषु पञ्च भर्तुर्धनमभ्यनुज्ञायते ॥ १९६ ॥

**यत्त्वस्याः स्याद्धनं दत्तं विवाहेष्वासुरादिषु ॥**
**अप्रजायामतीतायां मातापित्रोस्तदिष्यते ॥ १९७ ॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। मातापित्रोर्न भर्तुः ॥ १९७ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यत्पुनः स्त्रियासुरराक्षसपैशाचेषूक्तलक्षणेषु विवाहेषु यत्स्त्रियाः षड्विधं धनमपि तदनपत्यायां मृतायां मातापित्रोरिष्यते ॥ १९७ ॥

(४) **राघवानन्दः**। तथा आसुरादिविवाहसंबन्धि धनं तु तत्पित्रोरेवेत्याह **यदिति**। अतीतायां मृतायामपि। एषु वचनस्य नातिभार इति न्यायः ॥ १९७ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। यत् आसुरादिषु विवाहेषु लब्धं तत्कन्यायाः मातापित्रोरिष्यते ॥ १९७ ॥

(७) **मणिरामः**। आसुरराक्षसपैशाचेषु ॥ १९७ ॥

(९) **भारुचिः**। एतेष्वासुरादिषु कन्या ..... "प्रत्यर्पयितव्यं धनम्" ॥ १९७ ॥

**स्त्रियान्तु यद्भवेद्वित्तं पित्रा दत्तं कथंचन ॥**
**ब्राह्मणी तद्धरेत्कन्या तदपत्यस्य वा भवेत् ॥ १९८ ॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। पित्रा दत्तं स्त्रियाः पित्रा तद्ब्राह्मणी कन्या हरेन्नतु भ्रातृणां विभागः। तदभावे तस्याः स्त्रिया अपत्यस्य। कन्येति दुहितृमात्रपरम्। एवं च ब्राह्मणपरिणीतक्षत्रियाधनमपि तत्पितृदत्तं ब्राह्मणकन्याया एवेत्युक्तं भवति ॥ १९८ ॥

(३) **कुल्लूकः**। ब्राह्मणस्य नानाजातीयासु स्त्रीषु क्षत्रियादिस्त्रियामनपत्यपतिकायां मृतायां, तस्याः पितृदत्तं धनं सजातिविजातिसापत्न्यकन्यापुत्रसद्भावेऽपि ब्राह्मणी सापत्नेयी कन्या गृह्णीयात्, तदभावे तदपत्यस्य तद्धनं भवेत् ॥ १९८ ॥

(४) **राघवानन्दः**। ब्राह्मणपरिगृहीतानां क्षत्रियादितिसृणामनपत्यपितृकानां मृतानां ब्राह्मणी सापत्नेयी कन्यैव गृह्णीयात्; तदभावे तदपत्यं, तदभावे ब्राह्मणमात्रं न्यायस्य

तुल्यत्वादित्याह **स्त्रियान्त्विति** । स्त्रीपदं विपरिणताविजातीयापरं, सजातीयानां व्यवस्थोक्तेः । **तदपत्यस्य** ब्राह्मणीकन्यापुत्रस्येत्यर्थः ।। १९८ ।।

(५) **नन्दनः** । कथञ्चन येन केनचित्प्रकारेण ब्राह्मणी हरेन्न क्षत्रियादिः ।। १९८ ।।

(६) **रामचन्द्रः । स्त्रियामिति** । सापत्नपुत्रः हीनजातिस्तं प्रत्याह । स्त्रियाः क्षत्रियादि-स्त्रियाः यद्वित्तं कथंचन विवाहे पित्रा दत्तं तद्धनं ब्राह्मणकन्या या पूर्वं ब्राह्मणी विवाहिता हरेत् गृह्णीयात् । वा पक्षान्तरम् । तस्या अपत्यस्य तद्धनं भवेत् ।। १९८ ।।

(७) **मणिरामः** । ब्राह्मणस्य नानाजातीयाः स्त्रिय उक्ताः, तासां मध्यात् क्षत्रियादि-स्त्रियां भर्तृपुत्ररहितायां मृतायां तु तस्याः पितृदत्तं यद्धनं तत्सा जातिविजातिसापत्नकन्यापुत्र-सद्भावेऽपि ब्राह्मणा सापत्नकन्या हरेत्, न तु सर्वैर्ग्राह्यं । तदभावे ब्राह्मणीकन्याभावे तदपत्यस्य ब्राह्मणीकन्यायाः अपत्यस्य भवेत् ।। १९८ ।।

(९) **भारुचिः** । षड्विधस्या .... धनस्यापुत्रायां मृतायां ..... एवं च सति पित्रा दत्तमित्ये-तदत्र निदर्शनार्थं, सर्वस्त्रीधनानां विज्ञेयम् । सपुत्रायाश्च विभागं वक्ष्यति– 'ब्राह्मणी तद्धरेत् कन्ये' (१९८) ति नियमात् क्षत्रियादिकन्यानां ना ... त्रियमः । एतद्ब्राह्मणादीनाम् । ब्राह्मणी-क्षत्रियावैश्यासूढासु असवर्णस्त्रीपरमे... ब्राह्मणादिकन्याभ्यो धनदानं विज्ञेयम् ।। १९८ ।।

**न निर्हारं स्त्रियः कुर्युः कुटुंबाद्बहुमध्यगात् ।।**
**स्वकादपि च वित्ताद्धि स्वस्य भर्तुरनाज्ञया ।। १९९ ।।**

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । निर्हारं स्वयमाकृष्यव्ययम् । कुटुम्बात् कुटुम्बपोषणार्थात् । बहुमध्यगात् बहुसाधारणधनात् । स्वकात् स्वस्यासाधारणधनादपि स्त्रीधनव्यतिरिक्तात् पत्यनुमतिं विना न कुर्युः ।। १९९ ।।

(३) **कुल्लूकः** । भ्रात्रादिबहुसाधारणात्कुटुंबधनाद्भार्यादिभिः स्त्रीभी रत्नालङ्काराद्यर्थं धनसंचयं न कर्तव्यं, नापि च भर्तुराज्ञां विना भर्तृधनादपि कार्यं; ततश्च नेदं स्त्रीधनम् ।। १९९ ।।

(४) **राघवानन्दः** । वाचनिकातिरिक्तधनं स्त्रियो नेति वक्तुं साधारणधनेषु स्वाच्छन्द्यं निषेधति **नेति** । निर्हारं अलंकाराद्यर्थं संचयम् । बहुमध्यगात् देवरादिसाधारणात् स्वभर्तुर-नुज्ञां विना स्वकाद्भर्तृसंबन्धिधनादपि न संचिनुयादिति, नैतादृशं स्त्रीधनमिति भावः ।। १९९ ।।

(५) **नन्दनः** । अथ स्त्रीधनकृत्यमाह **न निर्हारं स्त्रिय इति** । पूर्वार्धोपन्यासो दृष्टा-न्तार्थः । बहुमध्यगाद्बहुजनभोग्यात्कुटुम्बात् कुटुम्बशब्देन कुटुम्बार्थं भर्तृधनमभिप्रेतं निर्हारं व्ययं यथा भर्तुरनाज्ञयाऽऽज्ञया विना न कुर्युः, स्वकादपि च वित्तादिति ।। १९९ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । कुटुम्बात् मध्यगात् एकत्राविभक्तकुटुम्बात् स्त्रियः निर्हारं व्ययं भर्तुः अननुज्ञया न कुर्युः ।। १९९ ।।

(७) **मणिरामः**। कुटुंबाद्बहुमध्यगात् भ्रात्रादिबहुसाधारणात् कुटुंबधनात्। निर्हारं रत्नालंकाराद्यर्थं धनसंचयं स्त्रियः न कुर्युः। स्वकादपि स्वभर्तृधनादपि ।। १९९ ।।

(९) **भारुचिः**। निर्हारप्रतिषेधाच्च विज्ञाच्च विज्ञायते यदि काचिदीशत्वात्तद्धनं न निर्हरेत् ततस्तत्पुनरादाय भ्रातृभिर्विभाज्यमेव ।। १९९ ।।

**पत्यौ जीवति यः स्त्रीभिरलङ्कारो धृतो भवेत् ।।**
**न तं भजेरन्दायादा भजमानाः पतन्ति ते ।। २०० ।।**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। पत्यौ जीवति धृतपत्या तासां भूषणमात्रार्थं दत्तो वा अदत्तस्तमपि तस्यां जीवन्त्यां न पुत्रा भजेरन्, मृतायां तु भजेरन्नेव ।। २०० ।।

(३) **कुल्लूकः**। भर्तरि जीवति तत्संमताभिर्योऽलङ्कारः स्त्रीभिर्धृतस्तस्मिन्मृते विभागकाले तं पुत्रादयो न भजेरन्, भजमानाः पापिनो भवन्ति ।। २०० ।।

(४) **राघवानन्दः**। अलंकारार्थं पत्या दत्तं तन्मृतौ देवरादयो विभजन्तः पापिनः स्युरित्याह **पत्याविति**। तमपि किंचिन्न्यूनाधिकनिमित्तं न गृह्णीयुरिति भावः ।। २०० ।।

(५) **नन्दनः**। अलङ्कारस्य स्त्रीधनेष्वनुपदिष्टत्वाद्भर्तृधनत्वेन भर्तृभावे दायादानां प्राप्त्यपवादार्थोऽयमारंभः ।। २०० ।।

(६) **रामचन्द्रः**। स्त्रीभिः दायादाः पुत्राः। तं अलंकारम्। ते पुत्राः ।। २०० ।।

(९) **भारुचिः**। दायादानामयं प्रतिषेधः। आत्मीयानां त्वौरसपुत्राणामनुज्ञातो विभागः ।। २०० ।।

**अनंशौ क्लीबपतितौ जात्यन्धबधिरौ तथा ।।**
**उन्मत्तजडमूकाश्च ये च केचिन्निरिन्द्रियाः ।। २०१ ।।**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अचिकित्स्यः क्लीबः। पतितो महापातकी प्रायश्चित्तात्पूर्वम्। बधिरोऽपि जात्या। उन्मत्तादयोऽचिकित्स्याः। जडोऽवशकर्मेन्द्रियः। निरिन्द्रियाः स्पर्शग्रहणादिरहिताः कुणिप्रभृतयश्च ।। २०१ ।।

(३) **कुल्लूकः**। नपुंसकपतितजात्यन्धश्रोत्रविकलोन्मत्तजडमूकाश्च ये च कुणिपङ्ग्वादयो विकलेन्द्रियास्ते पित्रादिधनहरा न भवन्ति, किन्तु ग्रासाच्छादनभागिनः ।। २०१ ।।

(४) **राघवानन्दः**। ननु 'दद्यात्पिण्डं हरेद्धन'मित्यादिषु पिण्डदातृत्वेन धनहारित्वस्य सामानाधिकरण्यश्रवणादन्धादेः का गतिरिति चेत्तत्राह **अनंशाविति** द्वाभ्याम्। जडो धर्मापेतो निरुत्साहः। निरिन्द्रिया हस्तादिरहिताः ।। २०१ ।।

(५) **नन्दनः**। निरिन्द्रियाः कर्मेन्द्रियरहिताः पङ्ग्वादयो निर्वीर्याश्च ।। २०१ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। अनंशाविति अभाज्यानाह अनंशाविति। अनंशौ अंशानामनर्हौ जात्यन्धबधिरौ। उन्मत्तः वातपित्तश्लेष्मसंनिपातकैर्ग्रहादेशलक्षणैः कम्पाद्यैरभिभूतः। जडः विकलान्तःकरणो हितावधारणाक्षमः। च पुनः ये केचिन्निरिन्द्रियाः। व्याध्यादिना निर्गतं इन्द्रियं येषां ते ॥ २०१ ॥

(७) **मणिरामः**। इदानीं ये ऋक्थभाजिनो न भवंति तानाह **अनंशाविति**। निरिंद्रियाः पंग्वादिदयो विकलेंद्रियाः ॥ २०१ ॥

(९) **भारुचिः**। इत्यनेन पीठसर्पिपङ्ग्वादयोऽपि गृह्यन्तेऽसामर्थ्यात् ॥ २०१ ॥

**सर्वेषामपि तु न्याय्यं दातुं शक्त्या मनीषिणा ॥**
**ग्रासाच्छादनमत्यन्तं पतितो ह्यददद्भवेत् ॥ २०२ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **सर्वेषामपि** क्लीबादीनां च प्रकृतत्वेन दर्शितमिति। **अत्यन्तं** यावज्जीवमित्यर्थः। शरीरधारणार्थत्वाद्ग्रासाच्छादनस्य, भृत्यादेस्तदुपयोगिनः परिचारकस्यापि वेतनदानं विज्ञेयम्। न ह्यन्धादेः परिचारकमन्तरेण जीवनसंभवः। येषां दारकरणमतं तेषां सभार्याणां भरणं दातव्यम्। **शक्त्येति**। धनानुरूपेण भोजनवस्त्रादि देयम्। **पतित** इत्यर्थवादः ॥ २०२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अत्यन्तमददत्सर्वथाऽददत्पतितो भवेदित्यन्वयः ॥ २०२ ॥

(३) **कुल्लूकः**। तदेवाह **सर्वेषामिति**। सर्वेषामेषां क्लीबादीनां शास्त्रज्ञेन ऋक्थहारिणा यावज्जीवं स्वशक्त्या ग्रासाच्छादनं देयं, अददत्पापी स्यात् ॥ २०२ ॥

(४) **राघवानन्दः**। एतेऽष्टौ भर्तव्याः। विपक्षे त्वाह **अददत्पतितो भवेदिति**। **याज्ञवल्क्यो**ऽप्याह (व्यव. १४०) 'क्लीबोऽथ पतितस्तज्जः पङ्गुरुन्मत्तको जडः। अन्धोऽचिकित्स्यरोगाद्या भर्तव्याः स्युर्निरंशका'इत्यादि ॥ २०२ ॥

(५) **नन्दनः**। सर्वेषां क्लीबादीनाम् ॥ २०२ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। सर्वेषां क्लीबादीनां ग्रासाच्छादनमत्यन्तमददत्पतितो भवेत् ॥२०२॥

(७) **मणिरामः**। सर्वेषां पूर्वोक्तक्लीबादीनां ॥ २०२ ॥

**यद्यर्थिता तु दारैः स्यात्क्लीबादीनां कथंचन ॥**
**तेषामुत्पन्नतन्तूनामपत्यं दायमर्हति ॥ २०३ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **अर्थिता** संप्रयोगेच्छा रतिनिमित्तम्। तस्यां सत्यां विवहेत्। तत्रोत्पन्नसंतानो **नामापत्यं** पुत्रो दुहिता वा **दायं** रिक्थविभागम**र्हति**। दुहितुर्यावान्भागः प्रागुक्तः। "वान्त(त)रेतास्तु यः क्लीबस्तस्य भवत्येव मैथुनेच्छा। कुतः पुनस्तस्य तंतूत्पत्तिः?" उक्तं च तस्य "यस्तल्पजः प्रमीतस्य क्लीबस्य व्याधितस्य" (९। १६७) इति।

रागप्रयुक्तता वानेन श्लोकेन विवाहस्य दर्शिता। धर्मप्रयुक्तत्वे ह्यनधिकृतानां कर्मसु कुतस्तेषां विवाहः ? उपनेयता च जात्यन्धपङ्गूनां वातरेतसः क्लीबस्य दर्शिता। उन्मत्तादयस्तूपनेयाः कुतस्तेषां विवाहः ?

**आदि**ग्रहणं चोक्तविषये चरितार्थम्। यदि हि आदिग्रहणसामर्थ्यात्सर्व एव गृह्णेरन् पतितोऽपि गृह्णेत। तच्च स्मृतिविरोधान्नेष्टम्।

अथवा कृताध्ययनानां कृतविवाहानामुन्मत्तादिरूपे समुपजाते विधिरेष विज्ञेयः। "ननु च कृतविवाहानां 'यद्यर्थिता तु दारै'रिति नोपपद्यते"। नैतदेवम्; कृतविवाहानां जायार्थितायाः संभवात्। पूर्वैस्तु धर्म्येऽपि विवाहेऽस्य प्रयोजनं दृष्टम्। ततश्च क्लीबस्य स्मार्तेष्वधिकारात्तदर्थो विवाहोऽसत्यामप्यर्थितायां युक्त एव। श्रौतेषु तु जातपुत्रस्याधानात्क्लीबस्य नाधिकारः। यस्य च प्रयोजकत्वं युक्तं तद्दर्शितम् ॥ २०३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अर्थितेच्छा तेन दारसंबन्धं लक्षयति **क्लीबादीनामिति**। अतद्गुणसंविज्ञानो बहुव्रीहिः। पतितस्यापि दारकर्मणामनर्हत्वादग्रहणं, तेन जात्यन्धादीनां ग्रहणम्। तेषामुत्पन्नजन्तूनां उत्पन्नापत्यानाम्। तेन पूर्वविभक्तैरपि भ्रातृभिः स्वभागादाकृष्य तत्पितृभागो देयः। क्लीबपतितयोः पूर्वपरिगृहीतदारत्वे तत्र च क्षेत्रजपुत्रोत्पत्तौ तस्य विभागप्राप्तिरिति तु प्रागेव सिद्धम् ॥ २०३ ॥

(३) **कुल्लूकः**। 'कथंचने'त्यभिधानात्क्लीबादयो विवाहानर्हा इति सूचितं; यदि कथंचिदेषां विवाहेच्छा भवेत्तदा क्लीबस्य क्षेत्रज उत्पन्नेऽन्येषामुत्पन्नापत्यानामपत्यं धनभाग्भवति ॥ २०३ ॥

(४) **राघवानन्दः**। क्लीबादेरपत्योत्पत्तौ का गतिस्तत्राह **यदीति**। दारैः कृत्वा अर्थिता पुत्रादौ तदर्थं दारसंग्रहः। उत्पन्नतंतूनां प्राणधारणार्थं केवलमुत्पन्नानाम्। उत्पन्नजन्तूनामिति पाठे नियुक्तक्षेत्रादिना जनितपुत्राणाम्। एषां क्षेत्रजाद्यपत्यं दायमर्हतीत्यन्वयः ॥ २०३ ॥

(५) **नन्दनः**। उत्पन्नानां स्वयं क्लीबानामपि क्षेत्रोत्पन्नापत्यानाम् ॥ २०३ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। तद्गुणसंविज्ञानो बहुव्रीहिः। क्लीब आदिर्येषां तेषां क्लीबादीनां दारैः स्त्रीभिर्यदि कथंचनार्थिता चेत् यदि तेषां क्लीबादीनामुत्पन्नतन्तूनां पुत्रपुत्राणाम्। क्लीबस्य क्षेत्रजः संभवत्येव अन्येषां औरसा अपि ॥ २०३ ॥

(७) **मणिरामः**। कथंचनेत्यनेन क्लीबादीनां विवाहानर्हत्वं सूचितं। दारैः अर्थिता विवाहेच्छा। तत्र क्लीबस्य क्षेत्रज उत्पन्ने अन्येषामुत्पन्नाऽपत्यानां यदपत्यं स दायं प्रपितामहधनं अर्हति ॥ २०३ ॥

(९) **भारुचिः**। क्लीबादीनामिति चात्र सामर्थ्यान्न बहुव्रीहौ तद्गुणविज्ञानं भवति। एवं च क्लीबादपरे तु गृह्यन्ते। येन धर्मप्रजार्थं दाराणां सङ्ग्रहः। य(दत)स्तदभ(भा)वात् क्लीबस्य नास्ति सङ्ग्रहः, अपुत्रस्यानधिकारादाधानंन। अथ स्मार्तकर्मापेक्षो दारसङ्ग्रहः। ततः क्लीबस्याप्यत्र ग्रहणं युक्तम्। तद्गुणसंविद्ज्ञानं बहुव्रीहिणा ॥ २०३ ॥

**यत्किंचित्पितरि प्रेते धनं ज्येष्ठोऽधिगच्छति ।।**
**भागो यवीयसां तत्र यदि विद्यानुपालिनाम् ।। २०४ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । पितृक्रमागतान्मित्राद्राजामात्यपुरोहितादेर्वा क्षेत्राद्वा कयाचिद्युक्त्याऽधिकोत्पत्तिं जनयेत्तत्सर्वेषां साधारणम् । नैवं मन्तव्यं 'मयैतद्बुद्धया पित्रा प्रागनुपार्जितं मयैतल्लब्धं ममैवैतदिति' । **विद्यानुपालिन** इति वचनाद्विद्याजीविनां शिल्पिकारुकप्रभृतीनामेष विधिर्वैद्यनटगायनादीनाम् ।। २०४ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । ज्येष्ठो विभक्तः स्वयं विद्याप्रकर्षेणापि लब्धे धने ज्येष्ठो भागं दद्यात् । विद्यानुपालिनस्तद्विद्यानुकुलकुटुम्बवच्चर्चाकारिणः । ज्येष्ठ इति वचनात् कनिष्ठार्जितेऽप्येवंभूतेषु न ज्येष्ठस्याधिकार इति दर्शितम् ।। २०४ ।।

(३) **कुल्लूकः** । पितरि मृते सति भ्रातृभिः सहाविभक्तज्येष्ठः किंचित्स्वेन पौरुषेण धनं लभते । ततो धनाद्विद्याभ्यासवतां कनिष्ठभ्रातृणां भागो भवति नेतरेषाम् ।। २०४ ।।

(४) **राघवानन्दः** । मृते पितरि स्वपौरुषेणाविभक्तो ज्येष्ठो यदा म्रियात्तत्रापि कनीयसो भागिन इत्याह **यदिति** । ते यदि विद्यानुपालिनः विद्याभ्यासिनः । **विद्यानुपालिनामिति** क्वचित्पाठः ।। २०४ ।।

(५) **नन्दनः** । धनस्य विद्यार्जितस्याविभाज्यत्वं वक्ष्यन् तस्य पुरस्तादपवादमाह **यत्किंचिदिति** । धनमत्र विद्यार्जितं विवक्षितं यदि विद्यानुपालिन इति लिङ्गादुत्तरश्लोकानुगुण्याच्च कनिष्ठाविद्याधिगते विद्याधने विद्यानुपालिनामपि ज्येष्ठानां न भागः । 'ज्येष्ठग्रहणाद्यवीयसा'मिति वचनाच्च ।। २०४ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । पितरि प्रेते यत्किंचिद्धनं ज्येष्ठः अधिगच्छति अविभक्तः सन् प्राप्नोति यदि विद्यानुपालितः ।। २०४ ।।

(७) **मणिरामः** । अधिगच्छति स्वेन पौरुषेण धनं लभते तस्मात् धनात् विद्याऽनुपालिनः(नां) विद्याभ्यासवतां यवीयसां कनिष्ठानां भागो भवति, नाऽन्येषां, कनिष्ठानामित्यर्थः ।। २०४ ।।

(९) **भारुचिः** । ज्येष्ठलब्धस्य वैद्या(?)स्सन्तो भागिनो यवीयांसः । न तु कनिष्ठलब्धस्य । ज्यायानित्येतदर्थालम्भ... ।। २०४ ।।

**अविद्यानां तु सर्वेषामीहातश्चेद्धनं भवेत् ।।**
**समस्तत्र विभागः स्यादपित्र्य इति धारणा ।। २०५ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । **अविद्या** 'कृषिवाणिज्यराजोपसेवादि' । तत्र ईषन्न्यूनाधिकभावो न गणयितव्यः । तत्रापि यदि केनचिदपि वर्ज्यजितं तदाऽस्त्येवाऽविभागता । ज्येष्ठस्य तु ज्येष्ठांशनिषेधार्थं वचनम् । **ईषदा**धिक्ये तु सर्वेषां समांशकल्पना । **अपित्र्य इति** हेतुवचनादनपत्यधनस्याप्येष एव विधिः ।। २०५ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। यदि सर्व एव निर्विद्याः ईहात इतस्ततो गमनेन पितृधनक्षतिं विना धनमर्जितवन्तः। **अविद्यानामिति**। यदि सर्व एव निर्विद्याः यदि तु पितृधनेन वाणिज्यादिनार्जितं धनं तदा ज्येष्ठोद्धारोऽदेय इत्याह **अपित्र्य इति** ॥ २०५ ॥

(३) **कुल्लूकः**। सर्वेषां भ्रातॄणां कृषिवाणिज्यादिचेष्टया यदि धनं स्यात्तदा पित्र्यवर्जिते तस्मिन्धने स्वार्जिते समो विभागः स्यान्न तूद्धारः, अपित्र्य इति निश्चयः ॥ २०५ ॥

(४) **राघवानन्दः**। तद्रहितानामपि धनाद्यर्थमीहमानानां समो भाग इत्याह **अविद्यानां चेति**। अपित्र्ये पितृधनातिरिक्ते तस्मिंस्तु सोद्धारादिविषमविभाग उक्त इति। धारणा शास्त्रमर्यादा। तेन विद्यानभ्यासिनामनीहमानानां च न तादृग्धने विभाग इति भावः ॥ २०५ ॥

(५) **नन्दनः**। ईहातः कृष्यादिचेष्टातः सर्वेऽपि यथासामर्थ्यं हरन्ति चेत्सर्वो हि विभागः स्यान्नान्यथेति अपित्र्येऽपितृकृते, पितृकृतस्य तु विभागवैषम्यमभ्यनुज्ञातमेव अत्र ईशनस्य(?) धनस्य समविभागवचनात्पूर्वस्मिन् श्लोके यवीयसां विद्याधनेषु समन्वयमात्रमभिहितं न स्वाम्यमित्यवगन्तव्यम् ॥ २०५ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। अविद्यानां सर्वेषां ईहातो वाणिज्यादिना चेद्धनं भवेत् समस्तत्र विभागः स्यात् अपित्र्य इति धारणा ॥ २०५ ॥

(७) **मणिरामः**। ईहातः कृषिवाणिज्यादिचेष्टया चेज्ज्येष्ठः कनिष्ठो वा धनमुत्पादयति तदा अविद्यानामपि सर्वेषां अपित्र्ये स्वार्जिते तस्मिन् धने समविभागः स्यात्; नतूद्धार इत्यर्थः ॥ २०५ ॥

(९) **भारुचिः**। ईहातश्चेष्टातः कृष्यादित इत्यर्थः। सर्वे चेच्चेष्टन्ते समस्तत्र विभागः स्यान्न तु गुणापेक्षः कश्चिद्विभागकल्प आश्रयितव्यः ॥ २०५ ॥

**विद्याधनं तु यद्यस्य तत्तस्यैव धनं भवेत् ॥**
**मैत्र्यमौद्वाहिकं चैव माधुपर्किकमेव च ॥ २०६ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। विद्यया अध्यापनादिना शिल्पकौशलेन वा। तथा मित्रात् अर्जितम्। **औद्वाहिकं चैव माधुपर्किक**मार्त्विज्येन। यद्यप्येतदपि विद्याधनं भवति तथापि याजनेन निमित्तेनोपादीयमानत्वाद्भेदेन व्यपदिश्यते। श्वशुरगृहलब्ध**मौद्वाहिकम्**। अपरे उद्वाहनिमित्तेन यद्धनं लभ्यते ॥ २०६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। विद्याधनं विद्याया धनं, एतच्च भ्रातॄणां तद्विद्यानुपालिनः तद्विद्यानुकूलपालित्वेऽपि ज्येष्ठस्य कनिष्ठेन विद्यया लब्धे। मैत्रं मित्रात्प्राप्तम्। औद्वाहिकं भार्याबन्धुभ्यो लब्धम्। माधुपर्किकं स्नातकत्वादिनार्हणार्थं दत्तान्मधुपर्कात्लब्धम् ॥ २०६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। विद्यामैत्रीविवाहार्जितं माधुपर्किकं मधुपर्कदानकाले पूज्यतया यल्लब्धं तस्यैव तत्स्यात्। 'यत्किंचित्पितरी' (९।२०४)त्युक्त्वायमपवादः। विद्याधनं च व्याहृतं **कात्यायनेन** 'परभक्तप्रदानेन प्राप्ता विद्या यदान्यतः। तया प्राप्तं च विधिना विद्याप्राप्तं

तदुच्यते। उपन्यस्ते च यल्लब्धं विद्यया पणपूर्वकम्। विद्याधनन्तु तद्विद्याद्विभागे न विभज्यते॥ शिष्यादार्त्विज्यतः प्रश्नात्संदिग्धप्रश्ननिर्णयात्। स्वज्ञानशंसनाद्वादाल्लब्धं प्राध्ययनाच्च यत्॥ विद्याधनन्तु तत्प्राहुर्विभागे न विभज्यते॥' अतो **यन्मेधातिथि-गोविन्दराजाभ्यां** माधुपर्किकमार्त्विज्यधनं व्याख्यातं—तदयुक्तम्; विद्याधनत्वात्॥ २०६॥

(४) **राघवानन्दः**। अविभक्तैरपि विद्याद्युपार्जितं धनं न विभजनीयमित्याह **विद्याधन-**मिति। 'शिष्यादार्त्विज्यतः प्रश्नात्संदिग्धप्रश्ननिर्णयात्। अज्ञातशंसनाद्वादाल्लब्धं प्राध्यय-नाच्च यत्। विद्याधनं तु तद्विद्याद्विभागे न विभज्यते' इति **कात्यायनो**क्तेः। विद्याधनं सप्तधा आर्त्विज्यतः आर्त्विज्यं कृत्वा। प्रश्नात् प्रश्नेन परितोष्य। स्वज्ञानशंसनात् खण्डनादज्ञानस्य। प्राध्ययनाद्विद्यार्जितगुणविशेषादित्यर्थः, मैत्रम् मित्रतो लब्धम्। माधुपर्किकं तत्संबन्धि राजत-पात्रादि। तथा च **याज्ञवल्क्यः** (व्य. ११८) 'पितृद्रव्याविरोधेन यदन्यत्स्वयमर्जितम्॥ मैत्रमौद्वाहिकं चापि दायादानां न तद्भवेत्॥' पितृद्रव्याविरोधेनेत्यस्यायमर्थः,—पित्रा शरीरमात्रोद्धरितः सन्यद्धनं संचिनोति तत्कस्मैचिन्न देयं। ननु पितृद्रव्यमुपजीव्य यदर्जित-मिति॥ २०६॥

(५) **नन्दनः**। विद्याधनं प्रवचनशिल्पार्जितं। मैत्र्यं मित्रतो लब्धं। औद्वाहिकं विवाहकाले लब्धं। माधुपर्किकं मधुपर्ककाले लब्धम्॥ २०६॥

(६) **रामचन्द्रः**। मैत्र्यं मित्रात् प्राप्तम्, औद्वाहिकं पारिबर्हम्। माधुपर्किकं मधुपर्ककाले प्राप्तम्॥ २०६॥

(७) **मणिरामः**। माधुपर्किकं मधुपर्कदानकाले पूज्यतया यल्लब्धं॥ २०६॥

(९) **भारुचिः**। औद्वाहिकग्रहणेन सर्वं श्वशुरगृहाल्लब्धं गृह्यते॥ २०६॥

**भ्रातॄणां यस्तु नेहेत धनं शक्तः स्वकर्मणा॥**
**स निर्भाज्यः स्वकादंशात्किंचिद्दत्वोपजीवनम्॥ २०७॥**

(१) **मेधातिथिः**। ये भ्रातरः सह वसन्ति विद्यमानपितृधनाश्च कृष्यादिना व्यवहरन्ति तेषां यद्येको न व्यवहरेत्तस्येयं निर्भाज्यता पठ्यते, **स निर्भाज्यः स्वकादंशादिति**। भागान्नेतव्यो-ऽपसारयितव्यः। **स्वकादंशाद्या**वदधिकं तदीयाद्धनाद्व्यवहारेणोत्पन्नं तत्तस्य न दातव्यं, न तु मूलधनस्य पैतृकस्य निषेधः। तत्रापि न सर्वेण सर्वं निर्भाज्यं, किंचिदन्योपजीवनं क्लेशफल-मात्मनो गृहीत्वा शिष्टमस्मै दातव्यम्। अथवा **निर्भाज्यः** पृथक्कार्यः सह वस्तुं न देयम्। कदाचिदुत्तरकालशक्तिसाधारण्येन धनेनार्जितत्वात्समांशता। तत्र भागकल्पना **नारदेन** दर्शिता। तत्र वचनेनोद्गतस्य निर्गतस्य भूयान्भागो गृह्यतेऽनुक्तस्य स्वल्प इति॥ २०७॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। भ्रातॄणां मध्ये यो नेहेत नेच्छेत दत्तं पित्र्यधनादंश उपजीवनं धनं किंचिद्दत्वा निर्भाज्यो विभक्तः कर्तव्यो भ्रातृभिः स्वधनात्॥ २०७॥

(३) **कुल्लूकः**। राजानुगमनादिकर्मणा यो धनमर्जितुं शक्तो भ्रातॄणां साधारणं धनं नेच्छति स स्वीयादंशात्किंचिदुपजीवनं दत्वा भ्रातृभिः पृथक्कार्यः। तेन तत्पुत्रास्तत्र धने कालान्तरे न विवदन्ते॥ २०७॥

(४) **राघवानन्दः**। यस्तु प्रकारान्तरेण जीवितुं शक्तो यदि नेहेत नांशमिच्छेत्तस्मै किंचिद्दत्वा विभजेदित्याह **भ्रातृणामिति**। निर्भाज्यः [ निर्गतभागः उपजीवनं तदपेक्षितम् ।]* दानं तु तत्पुत्रादिदायनिवृत्त्यर्थमिति भावः ॥ २०७ ॥

(५) **नन्दनः**। निर्भाज्योऽभागः ॥ २०७ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **भ्रातृणामिति**। योऽत्र स्वाधिकारी अलोभान्न जिघृक्षति तं प्रत्याह। **भ्रातृणां** सकाशात् यः भ्राता धनं न ईहेत न स्वीकुर्यात् सः स्वकादंशात् निर्भाज्यः नितान्तं भाज्यः दापनीयः किंचिद्दत्वोपजीवनं किंचित् असारं तस्मै दत्वा सः विभक्तः कर्तव्यः। कीदृशः ? यः स्वकर्मणा उद्यमोपार्जितद्रव्येण शक्तः पूर्णः ॥ २०७ ॥

(७) **मणिरामः**। स्वकर्मणा राजसेवादिना यः धनं अर्जितुं शक्तः सन् धनं भ्रातृणां साधारणधनं नेहेत नेच्छति स स्वकादंशात् किंचित् उपजीवनं दत्वा निर्भाज्यः भ्रातृभिः पृथक्कार्यः। तेन तत्पुत्रास्तत्र धने कालांतरे न विवदंते ॥ २०७ ॥

(९) **भारुचिः**। अददतामर्पितुं नैव विरोधोऽस्ति ॥ २०७ ॥

**अनुपघ्नन्पितृद्रव्यं श्रमेण यदुपार्जितम् ॥**
**स्वयमीहितलब्धं तन्नाकामो दातुमर्हति ॥२०८॥**

(१) **मेधातिथिः**। विद्यानिमित्तस्य स्वयमर्जितस्यादानमुक्तम्। अनेन व्यतिरिक्तस्य कृष्यादिलब्धस्यादातव्यतोच्यते। "ननु चायमेव श्लोको वक्तव्यः–**'स्वयमीहितेन** स्वयं चेष्टया यल्लब्धं तन्नाकामो दातुमर्हतीति' किं विद्याधनादिश्लोकेन ?" उच्यते –मैत्रे विवाहादौ न सर्वस्य स्वयमीहोपपत्तिरिति भेदेन व्यपदेशः ॥ २०८॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। श्रमेणातिश्रमजन्यकर्मणा स्वयमीहितेन स्वमात्रोद्यमेन लब्धं नाकामो दातुमर्हति यावदिच्छति तावत्किंचिद्दद्यान्नतु समभागनियमः, श्रमेणेत्युक्तत्वात्। अश्रमार्जिते प्रागुक्तः समभागः ॥ २०९ ॥

(३) **कुल्लूकः**। पितृधनानुपघातेन यत्कृष्यादिक्लेशादर्जयेत्तत्स्वचेष्टाप्राप्तमनिच्छन्भ्रातृभ्यो दातुं नार्हति ॥ २०८ ॥

(४) **राघवानन्दः**। तन्न दद्युरित्याह **अनुपघ्नन्निति**। अनुपघ्नन् अनुपजीवन्। ईहितं लब्धं। विद्यया प्राप्तं। तत्तु व्याख्यातं पूर्वयाज्ञवल्क्यव्याख्याकाले ॥ २०८ ॥

(५) **नन्दनः**। अनुपघ्नन्हिंसननपाश्रयन्निति(?) वा श्रमेण कृष्यादिकर्मणा पूर्वत्र सर्वेषु यथासामर्थ्यमीहमानेषु भ्रातृषु समविभाग उक्त इत्यत्राविरोधोऽनुसन्धेयः ॥ २०८ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। पितृद्रव्यं अनुपघ्नन् अव्ययं कुर्वन् स्वयमीहितलब्धं स्वव्यापारेण लब्धं यत् तत् अकामः सन् दातुं नार्हति ॥ २०८ ॥

(७) **मणिरामः**। पितृद्रव्यं अनुपघ्नन् पितृधनाऽनुपघातेन यत् श्रमेण कृष्यादिक्लेशात् उपार्जितं तत् स्वोद्यमेन प्राप्तं अकामः अनिच्छन् भ्रातृभ्यो दातुं न अर्हति, तत्रान्येषां सत्ताभावादित्यर्थः ॥ २०८ ॥

**पैतृकं तु पिता द्रव्यमनवाप्तं यदाप्नुयात् ।।**
**न तत्पुत्रैर्भजेत्सार्धमकामः स्वयमर्जितम् ।।२०९।।**

(१) **मेधातिथिः**। ग्रहणादन्यदर्थंयन्पित्रा **स्वयमर्जितं** तदाकामो न विभजनीयोऽधिकारप्राप्तैरपि पुत्रैः। "कः पुनर्जीवति पितरि पुत्राणां विभागकालः?"। उच्यते–यदा तावत्स्वयं पिता पुत्रान्विभजते। तदुक्तम्—"निवृत्ते रजसि मातुर्जीवति वेच्छतीति" (गौ० २८। २) तथा "मातुर्निवृत्ते रजसि प्रत्तासु भगिनीषु च। निवृत्ते चापि रमणे पितर्युपरतस्पृहे" (नारद० १३।३) इति।

अन्यथा तु यदैव प्राप्ताः पुत्रा भवन्ति तदैव ते पितामहधनस्येशते। तथा चोक्तं—"भूर्या पितामहोपात्ता निबन्धो द्रव्यमेव वा। तत्र स्यात्सदृशं स्वाम्यं पितुः पुत्रस्य चोभयोः" (या० स्मृ० व्य० १२१) इति।।

सत्यपि च पुत्रस्य स्वाम्ये यावदप्राप्तास्तावत् सर्वथा विशेषाभावात्सर्वे पितामहधनभाजः स्वत्वपूर्वकत्वाद्विभागस्य। बन्धक्रयादिक्रियासु पितृधनं जातपुत्रेण न नियोक्तव्यम्। योगक्षेमकुटुंबभरणादौ तु विनियोगो दर्शितः। आचारेण सत्यपि चास्यामवस्थायां पुत्राणां स्वाम्ये 'पित्रा चाकामेन विभक्तानिति' निन्दादर्शनाद्बलाद्विभाजयन्तः पापा इत्यनुमीयते। यथाऽसकृत्प्रतिग्रहेण भवति स्वाम्यं दोषस्तु पुरुषस्य। तेनान्वयागतमितीदृशमशुद्धमेव। अतः संभवत्युपायान्तरे न पिताऽर्थनीयः। अधर्मो हि तथा स्यात्।

स्वयमर्जितमपि धनमधिकारप्राप्तान्गुणवतः पुत्रान् ज्ञात्वा विभक्तव्यमेव। उक्तं च—"वयसि स्थितः पिता पुत्रान्विभजेत् ज्येष्ठं श्रेष्ठांशेनेतरान्समैरंशैः' इति। न चैतत्पितामहधनविषयम्। न हि तत्र पिता ज्येष्ठस्याधिकांशदानाय प्रभवति। तुल्यत्वादुभयोः स्वाम्यस्य।

यत्त्विदं "न्यूनाधिकविभक्तानां धर्म्यः पितृकृतः स्मृतः" (याज्ञ० व्य० ११६) इति तत्पितामहेऽपि स्वल्पया मात्रयेच्छन्ति। यत्र न परिपूर्णं भागद्वयं गृहीतं स्वयमर्जितविषये ह्यपवाद एव स्यात्।। २०९।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। पैतृकं स्वपितृसंबन्धि अनवाप्तं स्वोद्यमेनापि स्वपित्रा प्राप्नुयायात् महता यत्नेन। अकामो न विभजेन्न विभजेत। एवं च स्वयमतिप्रयत्नाऽनुपार्जितं पितृद्रव्यं पुत्राणामिच्छयापि विभजेदित्युक्तम्। ततः परं च 'तत्र स्यात्सदृशं स्वाम्य'-(व्यव. १२१) मिति **याज्ञवल्क्य**वचनम् ।। २०९।।

(३) **कुल्लूकः**। यत्पुनः पितृसंबन्धि धनं तेनासामर्थ्येनोपेक्षितत्वादनवाप्तं **पुत्रः** स्वशक्त्या प्राप्नुयात्तत् स्वयमर्जितमनिच्छन्पुत्रैः सह न विभजेत्।। २०९।।

(४) **राघवानन्दः**। यद्धनं पितृपितामहादिसंबन्धि अथ केनापि बलवता न लब्धं पश्चात्पित्रा लब्धं स्वयमर्जितं तदेव तदकामः पिता न पुत्रेभ्यो विभजेदित्याह **पैतृकमिति**।

**याज्ञवल्क्योऽप्याह**। क्रमादभ्यागतं द्रव्यं हृतमप्युद्धरेत्तु यः। दायादेभ्यो न तद्दद्याद्विद्यया लब्धमेव च।' एतत्पुत्राणां समुत्थानकृतविभागे। स्वयंकृतविभागे तु 'विभागं चेत्पिता कुर्यादिच्छया विभजेत्सुतानि'ति। दायादेभ्यः स्वपुत्रेभ्यः॥ २०९॥

(५) **नन्दनः**। अनवाप्तमन्यैरपहृतत्वात्स्वयं पित्रा पूर्वप्रत्युत्पन्नं स्वयमाप्नुयात्प्रत्यापद्य भजेत् स्वयमर्जितत्वादित्यर्थः। एवं वदता पितामहादिधनस्य विभागकाले पित्रा पुत्रैः सह सममेवावश्यं विभाज्यमित्यर्थादुक्तं भवति॥ २०९॥

(६) **रामचन्द्रः**। पैतृकं द्रव्यं पिता यत् अनवाप्तं स्वपित्र्यं स्वपुत्रादिभिः अनवाप्तं यत् आप्नुयात् स्वयमर्जितं अकामः सन् तत् पुत्रैः सार्धं न भजेत्॥ २०९॥

(७) **मणिरामः**। यत्पुनः पैतृकं पिता द्रव्यं पितृसंबंधि धनं। अनवाप्तं असामर्थ्यात् पित्रा न प्राप्तं। पुत्रः स्वसामर्थ्येन प्राप्नुयात् तत्स्वयमर्जितं पितृधनं अकामः अनिच्छन् पुत्रैः सह न विभजेत्॥ २०९॥

(९) **भारुचिः**। पितामहधनस्येतरेऽपीशत इत्यनया शङ्कया प्रतिषेधः। अनेन च दर्शनेन सत्यां विभागप्रतिपत्तौ वित्तं विभजनीयं॥ २०९॥

**विभक्ताः सह जीवन्तो विभजेरन्पुनर्यदि।**
**समस्तत्र विभागः स्याज्ज्यैष्ठ्यं तत्र न विद्यते॥२१०॥**

(१) **मेधातिथिः**। स्पष्टार्थः श्लोकः। विभागधर्मे विभागस्योद्धारप्रत्याशङ्कानिवृत्त्यर्थं, "अपित्र्य इति धारणे"ति (९।२०५) वचनात्। पित्र्यस्य सर्वधनस्योद्धारः। इह तु भूतपूर्वगत्या पित्र्यं नास्तीत्याशङ्क्या वचनम्॥ २१०॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। विभक्ताः पूर्वं पुनर्धनं संगृह्य जीवन्तो यदि पुनर्विभागं कुर्युः। समो नतु ज्येष्ठोद्धारदानम्। ज्यैष्ठ्यं ज्येष्ठलभ्य उद्धारः॥ २१०॥

(३) **कुल्लूकः**। पूर्वं सोद्धारं निरुद्धारं वा विभक्ता भ्रातरः पश्चादेकीकृत्य धनं सह जीवन्तो यदि पुनर्विभागं कुर्वन्ति तदा तत्र समो विभागः कार्यः, ज्येष्ठस्योद्धारो न देयः॥२१०॥

(४) **राघवानन्दः**। प्रथमं पितृकृतविभागांस्तदुत्तरमेकीभूतान् संसृष्टिनः पुनरपि भागेच्छून्प्रत्याह **विभक्ता इति**। ज्यैष्ठ्याभावतात्पर्यकमिति॥ २१०॥

(५) **नन्दनः**। अथ संसृष्टीनां विभागे विशेषमाह **विभक्ताः सह जीवन्त इति**। विभजेरन्संसृष्टिभिः पुनर्अर्जितद्रव्यं ज्यैष्ठ्यं ज्येष्ठेन दत्तो विभागातिशयः एवं वदता प्रथमविभागे ज्येष्ठस्य भागातिशयपक्ष एवादरणीय इति॥ २१०॥

(६) **रामचन्द्रः**। पूर्वं विभक्ताः पश्चात्सह मिलित्वा जीवन्तो यदि पुनर्विभजेरन्॥ २१०॥

(७) **मणिरामः**। विभक्ताः पूर्वं सोद्धारं निरुद्धारं वा कृतविभागा भ्रातरः पश्चादेकीकृत्य सह जीवंतः॥ २१०॥

(९) **भारुचिः**। पित्रा पुत्रविभागस्यैतद्दर्शनं जीवत्पितृकाणामस्ति विभाग इत्येतद्दर्शयति संसृष्टानां यो ज्येष्ठः नासौ ज्येष्ठं गृह्णीयात्। यत्र तु ज्येष्ठस्सह ज्येष्ठांशेन सम्पूज्यते तत्र पुनरस्य ज्येष्ठांश उद्धियते ।। २१० ।।

**येषां ज्येष्ठः कनिष्ठो वा हीयेतांशप्रदानतः ।।**
**म्रियेतान्यतरो वापि तस्य भागो न लुप्यते ।। २११ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **येषां** भ्रातॄणां **ज्येष्ठः कनिष्ठो वा** भ्रातांशप्रदानाद्धीयते। 'अंश-प्रदानं' विभागकालः। 'हीयते' पातित्याद्यविभागार्थं च हेतुमासादयेत्। **म्रियेत** वा। **तस्य भागो न लुप्यते**। तस्येयं प्रतिपत्तिः ।। २११ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। हीयेत विभागानन्तरोत्पन्नक्लीबत्वादिना म्रियेतान्यतरो विभागानन्तरं तस्य भागो यः पूर्वं व्यवस्थितः स न लुप्यते न सर्वैर्विभज्य लोप्यः ।। २२१ ।।

(३) **कुल्लूकः**। येषां भ्रातॄणां मध्ये कश्चिद्विभागकाले प्रव्रज्यादिना स्वांशाद्धीयेन्मृतो वा भवेत्तस्य भागो न लुप्येत् ।। २११ ।।

(४) **राघवानन्दः**। तथाविधेषु यदि कश्चित्प्रव्रजेन्म्रियेत वा तदंशं सर्वे **सहोदरा** विभज्य गृह्णीयुरित्याह **येषामिति** द्वाभ्याम्। न लुप्यते किंतु यथायोगं विभज्यत इत्याह **सोदर्या** इति। अनूढभगिन्याः अस्य तात्पर्यमाह **याज्ञवल्क्यः** (व्यव० १३८) 'संसृष्टिनस्तु संसृष्टी सोदरस्य तु सोदरः। दद्यादपहरेच्चांशं जातस्य च मृतस्य च' ।। तत्रापि 'अन्योदर्यस्तु संसृष्टी नान्योदर्यो धनं हरे'दिति ।। संसृष्टी तु विभक्तोऽत्र पुत्रपितृभ्रात्रैकत्र संस्थितः ।। पितृव्येनाथवा प्रीत्या स्तु संसृष्ट उच्यत'इत्युक्तः। भगिन्योऽनूढाश्चेत्तस्य पुत्रपत्नीदुहितृपितृमात्रभावे ।। २११–२१२ ।।

(५) **नन्दनः**। अंशप्रदानतो वा हीयेत दूरं प्रोषितत्वात् पतितो वा स्यात् ।। २११ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। येषां भ्रातॄणां मध्ये ज्येष्ठः कनिष्ठो वा अंशः प्रदानतः हीयेत सन्यस्य यतित्वादिना स्वयं भागं नाप्नोति शुद्धो वा अन्यतरः मध्यमः म्रियेत वा तस्य भागो न लुप्यते ।। २११ ।।

(७) **मणिरामः**। अंश–प्रदानतः हीयेत-विभागकाले प्रव्रज्यादिना स्वांशात् हीयेत मृतो वा भवेत् न तस्य भागो लुप्यते ।। २११ ।।

(९) **भारुचिः**। प्रोषितस्य मृतस्य वा भागमुद्धृत्य ।। २११ ।।

**सोदर्या विभजेरंस्तं समेत्य सहिताः समम् ।।**
**भ्रातरो ये च संसृष्टा भगिन्यश्च सनाभयः ।। २१२ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **सोदर्या भ्रातरो** येषां संसृष्टार्थे, ते गृह्णीयुः। **भगिन्यश्च सनाभयः**। सोदर्या अप्रत्तास्ता हि सनाभिव्यपदेश्याः। प्रत्ताः पुनः पतिगोत्रभावमनुभवन्तीति न भ्रातॄणां 'सनाभयः'। **ये च संसृष्टा इति**। **च**शब्दो भगिनीं समुच्चिनोति। न त्वियमाशङ्का

कर्तव्या–"सोदर्या गृह्णीयुर्ये च भ्रातरः संसृष्टा" इति । तथा सत्यसोदर्याणामपि संसृष्टानां भागः प्रसज्येत । सन्त्येव सोदर्या असंसृष्टाः संसृष्टाश्च । संसृष्टा असंसृष्टाश्च सोदर्या यत्र सन्ति, तत्रोभयोरपि विभागेन विभागं गृह्णीयुः । न चेदं विरुध्येत । "अन्योदर्यस्तु संसृष्टी नान्योदर्यो धनं हरेत् । असंसृष्टोऽपि वा दद्यात्सोदर्यो नान्यमात्रिकः" (याज्ञ० २।१३९) ।। अस्यायमर्थः –सापत्नो भ्राता सत्यपि संसृष्टित्वे न गृह्णाति । यदा सोदर्योऽसंसृष्टोऽपि विद्यते सोदर्याणां मध्याद्येन संसृष्टः स एव नान्यः, सत्यपि सोदर्यत्वे । तदुक्तं—"संसृष्टिनस्तु संसृष्टी सोदर्यस्य तु सोदरः" (याज्ञ० २।१३४) इति । यदा तु सोदरा नैव सन्ति तदा यैरेव सापत्नैः संसृष्टस्त एव गृह्णीयुर्न त्वितरे । सोदर्यविभक्तानां सह वसतां महानिकटभावसत्यपि सान्निध्यं विशेषकार्यं सामान्योत्थं विभक्तानामपि विज्ञायत इत्याहुः । तेन विभक्तानामप्यन्यतरप्रमेये सोदर्य एव गृह्णीयान्नास्य भागः परिलुप्यते । न चैतच्चोदनीयं "नैवास्य तदानीं भाग उत्थितः परलोको वा चिन्त्यते ।" यत उक्तम्—"समुत्पन्नो वाच्यः स्वामीति" । "अनीशास्ते हि जीवतोः" (९।१०४) इति तत्र पितुरूर्ध्वं समनन्तरमेव पुत्राणां स्वाम्यं दर्शयति ।। २१२ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । यत्कार्यं तदाह **सोदर्या इति** । संसृष्टिनः सोदराः सापत्ना वा । सनाभयः सोदराः । तत्र च संसृष्टिसोदरसद्भावे तस्यैव तत् । तद*भावे सापत्नस्यापि संसृष्टिनः तदभावे भगिनीनां सोदर्याणां तदभावे तद्भ्रातृभ्रातृपुत्राणां तदभावे त्वसोदरादेरपि । एतच्च सर्वं पुत्रपत्नीदुहितृमातृपितृभावे, तत्सद्भावे तु तेषामेव । केचित्तु वचनद्वयमेतत्प्राप्तविभागस्य क्षीरादेर्विभागाद्वा प्रागेव मृतस्य विभागकाले भागमाकृष्य सोदरादिभिर्ग्राह्यमित्येतत्पदं व्याचक्षते । अपरे तु विभक्ता एव यदि पुनः संसृष्टास्तन्मध्ये एकस्य भ्रातुर्मरणे तद्भागव्यवस्था श्लोकद्वयेन दर्शितेत्याहुः ।। २१२ ।।

(३) **कुल्लूकः** । किन्तु सोदर्या भ्रातरः समागम्य सहिता भगिन्यश्च सोदर्यास्तमंशं समं कृत्वा विभजेरन्सोदर्याणां सापत्न्यानामपि मध्यात् ये मिश्रीकृतधनत्वेनैकयोगक्षेमास्ते विभजेयुः समं सर्वे सोदर्या सपत्न्या वा । एतच्च पुत्रपत्नीपितृमात्रभावे द्रष्टव्यम् ।। २१२ ।।

(५) **नन्दनः** । सोदर्या भ्रातरो विभागकाले सहिता भूत्वा समेत्यैकमत्यमुपागम्य तं प्रोषितप्रव्राजितादिभ्रातृभागं संविभजेरन् सोदराभावे संसृष्टास्तदभावे सनाभयो भगिन्यः समविभागविषयत्वादेवास्य संसृष्टिविभागोऽनन्तरमुक्तः । न पुनः संसृष्टिविषयत्वेन अपुत्रभ्रातृविभागविषयं चैतत्स्मृत्यन्तरानुगुण्यात् ।। २१२ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । सोदर्याः सहिताः समेत्य समं भजेरन् ये च सापत्नभ्रातरः संसृष्टाः च पुनः भगिन्यश्च सनाभयः सहोदरभगिन्यः समम् ।। २१२ ।।

(७) **मणिरामः** । तर्हि किं स्यादत आह **सोदर्या इति** । सोदर्या भ्रातरो भगिन्यश्च सोदर्या ये च संसृष्टाः सापत्नानामपि मध्यादेकीकृतधनाः ते तं अंशं पृथक्कृत्य समं विभजेयुः, नत्वन्येषां तत्र संबंध इत्यर्थः । इदं च तस्य पुत्राद्यभावविषयं बोध्यं ।। २१२ ।।

(९) **भारुचिः**। भागं ते विभजेरन्, न सापत्नाः। सति तु संसारे ये संसृष्टास्ते विभजेरन्, न सोदर्या अप्यसंसृष्टाः ।। २१२ ।।

**यो ज्येष्ठो विनिकुर्वीत लोभाद्भ्रातॄन्यवीयसः ।।**
**सोऽज्येष्ठः स्यादभागश्च नियंतव्यश्च राजभिः ।। २१३ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **विनिकारो** राजपूजादिष्ववज्ञा परे धनेन वचनम्। **अज्येष्ठो** बन्धुवत्पूज्य इत्युक्तम्। न सर्वेण सर्वे ज्येष्ठवृत्तिनिषेधः। **अभागकत्वं** च ज्येष्ठांशानर्हत्वम्। **नियन्तव्यम्,** अविशेषोपदेशात्। वाग्दण्डधिग्दण्डाभ्यां धनं चार्थानुरूपेऽपराधे ।।२१३।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। विनिकुर्वीत लुप्तभागानल्पभागान्वा कर्तुं यतेत। अज्येष्ठो ज्येष्ठो चिताभिवादनाद्यनर्हः। एवं च ज्येष्ठ इत्यभिधानान्न कनिष्ठानां लुब्धत्वकरणेऽभागत्वमिति ग्राह्यम् ।। २१३ ।।

(३) **कुल्लूकः**। यो ज्येष्ठो भ्राता लोभात्कनीयसो भ्रातॄन्वंचयेत् स ज्येष्ठभ्रातृपूजाशून्यः सोद्धारभागरहितश्च राजदण्ड्यश्च स्यात् ।। २१३ ।।

(४) **राघवानन्दः**। लोभादिना ज्येष्ठस्य कनीयस्त्यागे राजदण्डमाह **य इति**। विनिकुर्वीत निःसारयेत्। अज्येष्ठः ज्येष्ठत्वेन या पूजा तच्छून्यः। अभागः पितृधनाद्यपात्रम् ।। २१३ ।।

(५) **नन्दनः**। एवं ज्येष्ठस्य संसर्गादिविषये समविभागत्वमुक्त्वेदानीं तस्य क्वचिद्विषयेऽभागत्वमाह **यो ज्येष्ठो विनिकुर्वीतेति**। विनिकुर्वीत निराकुर्वीतेति ।। २१३ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। यो ज्येष्ठो लोभाद्यवीयसो भ्रातॄन् विनिकुर्वीत परिभवेत् सोऽज्येष्ठो ज्येष्ठवत्पूजार्हो न भवति। च पुनः अभागः अधिकांशहरो न ।। २१३ ।।

(७) **मणिरामः**। यवीयसः विनिकुर्वीत लोभात्कनीयसो भ्रातॄन् वंचयेत् ।। २१३।।

(९) **भारुचिः**। विनिकरणमन्यायेन यवीयसा न्यक्करणम्। धनोपयोगश्च तानतिसन्धाय। अर्थाच्च कनिष्ठोऽपि नियन्तव्य इत्यापद्यते ।। २१३ ।।

**सर्व एव विकर्मस्था नार्हन्ति भ्रातरो धनम् ।।**
**न चादत्वा कनिष्ठेभ्यो ज्येष्ठः कुर्वीत यौतकम् ।। २१४ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **विकर्मस्थाः** प्रतिषिद्धाचरणाः। कुटुंबार्थे चानुतिष्ठमानानां तेषामन्येषां भ्रातॄणां संबन्ध्युपविष्टं स्थापयेत् यदा ते वक्ष्यन्ते 'कुतस्तद्धनमिति तदा मूलं दर्शयिष्यामीति' तादृशं वृद्धिसहितमपि सर्वेषामपि दापयेत्। यदि तु तस्मिन्नेव काले भ्रातॄणां दर्शयेत् 'इदमधिकं दृश्यते तद्यथांशं गृहणीताहमपि स्वतस्तत्पृथक्कृत्य वृद्धिं नेष्यामीति' तदा नास्ति तेषां भागः। तस्यैव तद्यौतकम् ।। २१४ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। विकर्मस्था ब्राह्मणाः सन्तो गोरक्षणशूद्रसेवादिकुवृत्तिपराः। **नचेति**। यौतकं पित्र्यर्थादन्यत्कृतं पृथग्भूतं स्वार्थव्ययं पितृधनात्कनिष्ठेभ्यस्तावददत्वा न कुर्वीत। **ज्येष्ठ इति**। तत्कुटुम्बव्ययचिन्ताकारिपरम् ॥ २१४ ॥

(३) **कुल्लूकः**। अपतिता अपि ये भ्रातरो द्यूतवेश्यासेवादिविकर्मासक्तास्ते रिक्थं नार्हन्ति। नच कनिष्ठेभ्योऽननुकल्प्य ज्येष्ठः साधारणधनादात्मार्थमसाधारणधनं कुर्यात् ॥ २१४ ॥

(४) **राघवानन्दः**। विकर्मस्थानां जीवनमात्रं नांश इत्याह **सर्व इति**। **विकर्मस्थाः** द्यूतपानाद्यासक्ताः [ द्यूते संबन्धिने कथनमस्येति यौतकं सर्वसाधारणधनादात्मार्थमसाधारणकरणमिति ] ॥ २१४।

(५) **नन्दनः**। विकर्मस्था विप्रतिषिद्धकर्मप्रधानाः कनिष्ठेभ्यो भागं दत्वा ज्येष्ठः स्वदुहितुः स्त्रीधनं न कुर्वीत। न दद्यादशेषपितृधनग्राहिणा कनिष्ठेन समविभक्तेन ज्येष्ठेन भ्रातृसाधारणाद्धनात् दुहितृयौतकं देयं विभज्यत्वादंशादेवमिति भावः ॥ २१४ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। भ्रातरो धनविभागं नार्हन्ति। ज्येष्ठो यौतकं पित्र्यर्थात्पृथग्भूतं कनिष्ठेभ्योऽदत्वा न कुर्वीत ॥ २१४ ॥

(७) **मणिरामः**। विकर्मस्थाः द्यूतादिव्यसनासक्ता अदत्त्वा साधारणधनात्तेषामंशं तेभ्य अदत्त्वा। यौतकं साधारणधनादात्मार्थमसाधारणधनं न च कुर्यात्। तथा चैकीभूतधनात्स्वसंबंधि कार्यं न कुर्यात्। सर्वसंबंधि कार्यं कुर्यादित्यर्थः ॥ २१४ ॥

**भ्रातॄणामविभक्तानां यद्युत्थानं भवेत्सह ॥**
**न पुत्रभागं विषमं पिता दद्यात्कथंचन ॥२१५॥**

(१) **मेधातिथिः**। यदुक्तं–"न्यूनाधिकविभक्तानां धर्म्यः पितृकृतः स्मृतः" (याज्ञ० व्य० ११६) इति तस्यास्मिन्विषये प्रतिषेधः।

**सहोत्थानं** सर्व एव धनमर्जयन्तीत्यर्थः। कश्चित्कृष्यादिना कश्चित्प्रतिग्रहेण कश्चित्सेवया कश्चिद्यथाहृतं परिरक्षति यथोपयोगमसन्निहितेषु विनियुंक्ते। तत्सर्वमेकीकृत्य समं विभजनीयम्। न स्नेहादिना कस्मैचित्पित्राऽधिकं देयम् ॥ २१५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। सहोत्थानं संभूय वाणिज्यादिना वित्ताद्यर्जनम्। पिता अधिकायासादिकं कस्यचिदेकस्य दृष्ट्वाऽधिकं न दद्यात् ॥ २१५ ॥

(३) **कुल्लूकः**। भ्रातॄणां पित्रा सहावस्थितानामविभक्तानां यदि सहधनार्जनार्थमुत्थानं भवेत्तदा विभागकाले न कस्यचित्पुत्रस्याधिकं पिता कदाचिद्दद्यात् ॥ २१५ ॥

(४) **राघवानन्दः**। 'न्यूनाधिकविभक्तानां धर्म्यः पितृकृतः स्मृत' (व्यव.११६) इति अस्यापवादकमाह **भ्रातॄणामिति**। उत्थानं धनादानं प्रतीच्छा। पितृकृत इति स्वयं यदा पुत्रान्विभजेत्तदा न्यूनाधिक्यमिति भावः ॥ २१५ ॥

(५) **नन्दनः**। सहोत्थानं संभूयार्जनं विषमं ज्येष्ठानामधिभागप्रदानेन विषमम् ।।२१५।।

(६) **रामचन्द्रः**। यदि उत्थानं सह मिलित्वा धनार्जनं भवेत् पिता विषमं पुत्रभागं कथंचन न दद्यात् ।। २१५ ।।

(७) **मणिरामः**। यद्युत्थानं भवेत्सह यदि सह धनार्जनार्थमुद्यमो भवेत् तदा विभागकाले कस्यापि पुत्रस्य विषमं न्यूनाधिकं पिता न दद्यात् ।। २१५ ।।

(९) **भारुचिः**। येऽन्योन्योपार्जितधनाः पित्रा स्नेहेन गुणापेक्षया वा तेषां विषमो विभागो न कर्तव्यः। इदं च दर्शनं पितुरभिप्रायेण विभागस्य सत्यपितुः पित्रभिप्रायेण विभागे वैकल्पिकं ग्रहणं सदभिप्रायेण स्यात्, नान्यथा ।। २१५ ।।

**ऊर्ध्वं विभागाज्जातस्तु पित्र्यमेव हरेद्धनम् ।।**
**संसृष्टास्तेन वा ये स्युर्विभजेत स तैः सह ।। २१६ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। विभागोत्तरकालं पित्रा यद्विभागे भागद्वयं गृहीतं "द्वावंशौ प्रतिपद्येते" इति तदेव सत्यां पितुरिच्छायां ग्रहीतव्यम्। पितुरूर्ध्वं वा। न तत्र भ्रातृभिर्वाच्यं 'किमित्ययं द्वावंशौ गृह्णातीति'। अथ च नास्ति पितुरिच्छा, तदा समं च स्वसमोऽस्य भाग उद्धर्तव्यः।

यं पितुरूर्ध्वं संसृष्टास्तेषामेव स पैतृकोंऽशः तदुत्थं दद्यात्। अपरेषां स्वांशं "जातस्य च मृतस्य च" इति। जातस्य संसृष्टिन एव दद्युः। पितुरूर्ध्वं तदीयमंशं च तत एव। 'विभक्ताः सह' (९।२१०) इत्यनया बुद्ध्या। "भगिन्या आ प्र वान्नैव विभागोऽस्ति' इति **वसिष्ठेन** दर्शितम् ।। २१६ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। पित्र्यमेव पितृभागमेव। एतेन विभागकाले पितुरपि भागो दर्शितः। यदि तु विभागादूर्ध्वमनेकेषां जन्म तदापि स एव भागो विभज्य तैर्ग्राह्यः। **संसृष्टा** इति। यदि पुनः संसृष्टास्तेन सह क्वचिद्भ्रातरः स्युस्तदा तद्भागान्तर्भावेन पितृधनं संसृष्टैः सह विभज्य ग्राह्यमित्यर्थः ।। २१६ ।।

(३) **कुल्लूकः**। यदा जीवतैव पित्रा पुत्राणामिच्छया विभागः कृतस्तदा विभागादूर्ध्वं जातः पुत्रः पितरि मृते पितृधनं कथमेव गृह्णीयात्। ये कृतविभागाः पित्रा सह पुनर्मिश्रीकृतधनास्तैः सहासौ पितरि मृते विभजेत् ।। २१६ ।।

(४) **राघवानन्दः**। सर्वेषां पितृकृतविभागे तदुत्तरकालीनापत्यान्तरोत्पत्तौ का गतिस्तत्राह **ऊर्ध्वमिति**। मृते पितरि पित्र्यं विभजनकाले यत्पितृभागं जीवति तु इच्छाया अनियतत्वेन ये तेन पित्रा सह संसृष्टास्तैः सह सङ्गतं स पिता विभजेतेत्यन्वयः। तत्र च स्पष्टगर्भायां मातरि पितृभागाभावे मृते पितरि विभक्तैरप्यंशो देयः। अस्पष्टगर्भायां तु प्रसूतिपर्यन्तं विभागाभावः। एवं पितामहधनं अपौत्रे प्रतिषिद्धं अपितु स्वातन्त्र्यादिति ध्येयं **बृहस्पतिनोक्तेः** ।। २१६ ।।

(५) **नन्दनः**। पित्र्यमेव हरेत् पुनर्विभक्तं भ्रातृधनमंशसाम्याय विभज्य हरेत्। अस्यापवाद उत्तरार्धेनोच्यते तेन पित्रा यैर्विभक्ताः संसृष्टास्तैः समं वा विभजेत् ॥ २१६ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। तेन पित्रा सह ये संसृष्टाः स्युः भवेयुः तैः संसृष्टैः सह स पिता विभजेत् ॥ २१६ ॥

(७) **मणिरामः**। जीवतैव पिता पुत्राणां विभागः कृतः तदुत्तरमन्यपुत्रोत्पत्तौ पितरि मृते च किं स्यात्तत्राह **ऊर्ध्वमिति**। तेन पित्रा। संसृष्टा एकत्रावस्थिताः ॥ २१६ ॥

**अनपत्यस्य पुत्रस्य माता दायमवाप्नुयात् ॥**
**मातर्यपि च वृत्तायां पितुर्माता हरेद्धनम् ॥ २१७ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। व्याख्यातोऽयं श्लोकः ॥ २१७ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। पत्नीदुहित्रभावे पुत्रस्य धनं पितृगामीति प्राक्सूचितं, तत्र विशेषमाह **अनपत्यस्येति**। मातर्यपि वृत्तायां पश्चात्पितरि तद्ग्रहीतरि वृत्ते भ्रातृतत्सुतेष्वसत्सु तस्य वित्तान्तरोपार्जनासंभवे चायमनुग्रह उक्तः ॥ २१७ ॥

(३) **कुल्लूकः**। अनपत्यस्य पुत्रस्य धनं माता गृह्णीयात्; पूर्वं 'पिता हरेदपुत्रस्य ऋक्थ'(९।१८५)मित्युक्तत्वात्। इह माता हरेदित्यादि **याज्ञवल्क्येन** 'पितरौ' (याज्ञ. व्य. ८।१३५) इत्येकशेषकरणात्। **विष्णुना** च 'अपुत्रस्य धनं पत्न्यभिगामि, तदभावे दुहितृगामि, तदभावे पितृगामी'त्येकशेषस्यैव कृतत्वान्मातापितरौ विभज्य गृह्णीयाताम्। मातरि मृतायां पत्नीपितृभ्रातृभ्रातृजाभावे पितुर्माता धनं गृह्णीयात् ॥ २१७ ॥

(४) **राघवानन्दः**। अनपत्यस्य सूनोर्मृतस्य मातुर्धनमित्याह **अनपत्यस्येति**। माता हरेदिति गर्भधारणपोषाभ्यां 'तेभ्यो माता गरीयसी'ति न्यायात्। मातरि मृतायां तु पितामही हरेत् 'पिता रिक्थं हरे'दिति **याज्ञवल्क्योक्तेः**। मातापितामह्यौ गृह्णीयातामित्युक्तं मनुना विष्णुना च। अपुत्रस्य धनं पत्न्यभिगामि तदभावे मातृगामि तदभावे पितृगामीति वचनजातविरोधाद्विभज्य पितरौ गृह्णीयातामिति **कुल्लूकः**। मातापित्रोरयोगव्यवच्छेदमात्रं पत्नीगामित्वेऽपि संगतं त्रयाणां सत्त्वे त्रितयमधिकारीति। अन्याभावसहकृतविकल्पस्याभावादिति तु तत्त्वम्। वृत्तायां मृतायाम् ॥ २१७ ॥

(५) **नन्दनः**। अनपत्यस्येत्युपलक्षणं, पुत्रपौत्रप्रपौत्रभार्यादुहितृरहितस्येत्यर्थः ॥ २१७ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। अनपत्यस्य पुत्रस्य पत्नी दुहिता वा माता पितरि सत्यपि दायमाप्नुयात्। मातर्यपि च वृत्तायां पितुर्माता धनं हरेत् ॥ २१७ ॥

(७) **मणिरामः**। अनपत्यस्य पुत्रस्य पिता धनं हरेदिति पूर्वमुक्तम्, इदानीं मातुरपि तत्राधिकारमाह **अनपत्यस्येति**। पत्नीपितृभ्रातृभ्रातृपुत्राभावेऽपि पितुर्माता धनं गृह्णीयात् ॥ २१७ ॥

(९) **भारुचिः**। जीवत्यां मातरि पितामह्यां च न सोदरा ईशन्तेऽनपत्यस्य स्वधनस्य। नापि तत्पिता, असोदर्या न भ्रातरः ॥ २१७ ॥

**ऋणे धने च सर्वस्मिन्प्रविभक्ते यथाविधि ॥**
**पश्चाद् दृश्येत यत्किञ्चित्तत्सर्वं समतां नयेत् ॥ २१८॥**

(१) **मेधातिथिः**। अविज्ञानान्न्यूनमधिकं वा विभक्तं परतो ज्ञातं समांशकौ कर्तव्यम्। किंच विभागोत्तरकालं लब्धे नास्ति ज्येष्ठस्योद्धार इति ॥ २१८ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। पश्चाद्दृश्येत पूर्वनिह्नुतं यत्किंचिदृणं वा तत्सर्वं समं विभाज्यं नतु निह्नवकर्तुरपराधाद्भागाभावः। ऋण इत्यभिधानेन च ऋणमप्यर्थविभागकाले अर्थाभावे वा ऋणमात्रमपि विभजनीयम्। तत्र च ज्येष्ठत्वादिना विशेषो नास्तीत्यर्थात्कथितम् ॥ २१८ ॥

(३) **कुल्लूकः**। ऋणे पित्रादिधार्यमाणे धने च तदीये सर्वस्मिन्यथाशास्त्रं विभक्ते सति पश्चाद्यत्किंचित्पैतृकमृणं धनं वा विभागकालेऽज्ञातमुपलभ्येत तत्सर्वं समं कृत्वा विभजनीयं नतु शोध्यं ग्राह्यं, न वा ज्येष्ठस्योद्धारो देयः ॥ २१८ ॥

(४) **राघवानन्दः**। यदि पित्रादिकृतमादेयं देयव(मृण)र्णमस्ति तदा कथं विभागस्तत्राह **ऋण** इति। अज्ञाते ऋणे देये वा सति सर्वस्मिन्धने च विभक्ते यदि पश्चादृणं परिज्ञातं तत्सर्वं समतामुपशमतां नयेच्छोधयेत्। सर्वमधमर्णेभ्यः प्राप्तमृणं समं कृत्वा नयेदिति। दुहितरि धनान्वयत्वेऽपि न ऋणायान्वयः। अत एव **याज्ञवल्क्यः** (व्य० ११७) 'विभजेरन्सुताः पित्रोरूर्ध्वमृक्थमृणं समम्। मातुर्दुहितरः शेषमृणात्ताभ्य ऋतेऽन्वय'इति। मातुर्धनं तु दुहितर ऋणादृते भजेरन्नित्यर्थः ॥ २१८ ॥

(५) **नन्दनः**। यत्किञ्चित्कुत्रचित् ॥ २१८ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। तत्सर्वं समतां समानतां नयेत् प्रापयेत् ॥ २१८ ॥

(७) **मणिरामः**। पश्चाद्दृश्येत विभागकाले अज्ञातमुत्पन्नं लभ्येत ॥ २१८ ॥

(९) **भारुचिः**। द्रष्ट्रा न तद् ग्राह्यमित्येवमर्थं पुनरुपदेशः। ज्येष्ठांशप्रतिषेधार्थो वा पूर्वज इत्येवमुक्तं ज्येष्ठस्य तदत्र न स्यात् ॥ २१८ ॥

**वस्त्रं पत्रमलंकारं कृतान्नमुदकं स्त्रियः ॥**
**योगक्षेमं प्रचारं च न विभाज्यं प्रचक्षते ॥ २१९ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। वस्त्रपत्रालङ्कारकृतान्नोदकानामेकत्वं विवक्षितम्। **पत्रं** वाहनं गन्त्रीशकटादि। **अलङ्कारोऽङ्गुलीयकादि**। **वस्त्रं** सममूल्यं, न तु महार्घम्। **उदकं** कूपवाप्यादि। **स्त्रियो** दास्यः। **योगक्षेमं** यतो योगे क्षेमो भवति, मन्त्रिपुरोहितामात्यवृद्धा वास्तु च। चौरादिभ्यस्ततो रक्षा भवति। स्मृत्यन्तरे च पठ्यते–'वास्तुनि विभागो न विद्यते'। **प्रचारं** यत्र गावश्चरन्ति। प्रवेत्रे (?) त्याह। तेन यत्पैतृकेनोक्तं 'न ह्यत्र धर्मातिक्रमः कश्चिदस्तीति' तदनुपपन्नं दर्शयति। अदृष्टासु हि ते प्रतिषेधाः। तदतिक्रमादधर्मो न स्यात् ॥ २१९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। वस्त्रं तेन तेन परिहितमधिकत्वेनापि दृश्यमानम्। पत्रं वाहनं अश्वादि तेन तेन परिगृहीतम्। एवमलंकारोऽङ्गुलीयादिः। कृतान्नं तत्तदुद्देशेन यत्सिद्धमन्नं विषयमपि। उदकं कूपादि। स्त्रियो भार्या एकस्यैका, अन्यस्य द्वे एवं वैषम्येऽपि। योगक्षेमं योगो राजादिलभ्यो निबन्धनादिः, स्वयमुपात्तः क्षेमः रक्षोपायः प्राकारेष्टकादिः। प्रचारो वर्त्म। यत्तु 'कृतान्नं च कृतान्नेन परिवर्त्य विभज्यत'इत्याद्युक्तं **बृहस्पतिना** तदतिप्रचुरकृतान्नादेऽपि तन्मात्रधनैर्विभागः कार्य इत्येतत्॥ २१९॥

(३) **कुल्लूकः**। वस्त्रं वाहनमाभरणमविभागकाले यद्येनोपभुक्तं तत्तस्यैव न विभाज्यं। एतच्च नातिन्यूनाधिकमूल्यविषयं। यत्तु बहुमूल्यमाभरणादिकं तद्विभाज्यमेव। तद्विषयमेव। 'विक्रीय वस्त्राभरण'मिति **बृहस्पतेर**विभागवचनं कृतान्नमोदनसक्त्वादि तन्न विभजनीयं तत्रातिप्रचुरतरमूल्यं सक्त्वादि तावन्मात्रमूल्यधनेन। 'कृतान्नं चाकृतान्नेन परिवर्त्य विभज्यत' इति **बृहस्पति**वचनाद्विभजनीयमेव। उदकं कूपादिगतं सर्वैरुपभोग्यमविभजनीयम्। स्त्रियो दास्याद्या यास्तुल्यभागा न भवन्ति ता न विभाज्याः किन्तु तुल्यं कर्म कारयितव्याः। योगक्षेमं मन्त्रिपुरोहितादि योगक्षेमहेतुत्वात्। प्रचारो गवादीनां प्रचारमार्गः। एतत्सर्वं मन्वादयोऽविभाज्यमाहुः॥ २१९॥

(४) **राघवानन्दः**। न्यूनाधिकमूल्याभावे तु पित्रादिदत्तं यद्येन भुज्यते तत्तस्यैवेति दृष्टार्थतयाह **वस्त्रमिति**। पत्रमश्वादि। कृतान्नं अविभागकाले यद्येन भुक्तम्। उदकं कूपतडागादिस्थम्। स्त्रियो दास्यः। योगोऽलब्धलाभः, लब्धस्य परिरक्षणं क्षेमः, तयोः प्रचारं प्रचर्यते निर्वाह्यते येनेति तद्धेतुमन्त्रिपुरोहितादिः। एतान्यपि दत्तानि न विभजनीयानि, अत्यन्तमूल्ये विभजनीयानि, 'विक्रीय वस्त्राभरण'मिति **बृहस्पत्युक्तेः**। दासदास्यस्तु समं कर्म कार्या इति भावः॥ २१९॥

(५) **नन्दनः**। अथाविभाज्यमाह **वस्त्रं पात्रमलङ्कारमिति**। पात्रं उदपात्रं वस्त्रादीनि चत्वार्यभागवेलायां येन परिगृहीतानि विभागवेलायामुद्धारं तानि तस्मै देयानि द्रव्यान्तरे चेद्विभज्यानि। उदकं कूपादिस्थं दायादैः सर्वैरुपभोज्यं न विभाज्यं। स्त्रियो भार्यात्वेन परिगृहीता दास्यादयस्तासां स्वत्वेन विभागप्रसक्तावप्यविभाज्यत्वमुच्यते। ऋणं वा धनं वा विभागात्पश्चात्कुत्रचित् दृश्येतोभयमपि सर्वे विभक्ताः संविभजेरन्नित्यर्थः। **योगक्षेम इति**। अप्राप्तप्रापणं योगः, प्राप्तस्य रक्षणं क्षेमः, अत्र योगक्षेमशब्देन योगक्षेमहेतवो विवक्षिताः। योगहेतवो याज्याः, शिष्यादयः क्षेमहेतवो द्वारग्रामपालादयः उभयहेतवौ ग्रामपत्तनाधिपादयस्तेऽपि पूर्ववदेव स्थापनीया न विभाज्याः। प्रचारः क्षेत्रारामादिप्रवेशयोग्यो मार्गः, सोऽपि सर्वैः प्रचरितव्योऽनुभावयितव्यो न विभाज्यः॥ २१९॥

(६) **रामचन्द्रः**। अविभाज्यमाह **वस्त्रमिति**। वस्त्रं पत्रं वाहनं अलंकारं मातुः कृतान्नं पक्वान्नं, उदकं कूपादि, स्त्रियः दास्यः, योगक्षेमौ अलब्धलाभो योगः, लब्धस्य परिपालनं क्षेमः, प्रचारं मार्गं जलवाहादि विभाज्यं न प्रचक्षते॥ २१९॥

(७) **मणिरामः**। पत्रं वाहनं वस्त्रादिकं न्यूनमूल्यं बहुमूल्यं तु विभाज्यमेव। कृतान्नं मोदकादि पक्वान्नं जलं कूपादिगतं स्त्रियो दास्यादयः। योगक्षेमं मंत्रिपुरोहितादि। प्रचारं गवादीनां प्रचुरमार्गः। एतत्सर्वं अविभाज्यं आहुः, सर्वैर्भोक्तव्यमित्यर्थः॥ २१९॥

(९) **भारुचिः**। एता (अपी)च्छया विभजेरन्। 'नाकामो दातुमर्हती'त्येतदनुवादोऽयं द्रष्टव्यः। सर्वत्र (वे)च्छातो दानमयुक्तं प्रतिषे(द्धुम्) सर्वत्र धनविभागे प्राप्ते वस्त्रं पतत्यनेनेत्यश्वादिः। अलङ्कारसामर्थ्यात् पितरि जीवति यद्येनम् अपरिगृहीतं, कृतान्नं तण्डुलादि, उदकं तदाधारकूपादि; स्त्रिय उपभोगदास्यः प्रतिनियता योगक्षेमं प्रचारं च येन द्रव्येण योगक्षेमार्थं प्रचरन्ति योगोऽनुपात्तपरिलाभः, क्षेममुपालब्धपरिपालनं, योगक्षेमं वा तदर्थं रा(ज्ञा) दीयमानं द्रष्टव्यम्, प्रचारं च प्रचरणभूमिजमिन्धनादि न विभाज्यं प्रचक्षते॥ २१९॥

**अयमुक्तो विभागो वः पुत्राणां च क्रियाविधिः॥**
**क्रमशः क्षेत्रजादीनां द्यूतधर्मं निबोधत॥ २२०॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। द्यूतं वक्तुमुपक्रमते **अयमिति**। पुत्राणां क्षेत्रजादीनां क्रियाविधिः पुत्रत्वोत्पादनविधिः क्रमेण। द्यूतधर्मं निबोधतेत्यन्वयः॥ २२०॥

(३) **कुल्लूकः**। एष दायभागः पुत्राणां क्षेत्रजादीनां क्रमेण विभागकरणप्रकारो युष्माकमुक्तः। इदानीं द्यूतव्यवस्थां शृणुत॥ २२०॥

(४) **राघवानन्दः**। विभागप्रकरणमुपसंहरन् द्यूतं प्रतिजानीते **अयमिति**। पुत्राणामौरसादीनाम्। क्रियाविधिः पिण्डदानं च॥ २२०॥

(६) **रामचन्द्रः**। विभागानन्तरं द्यूतधर्मान् निबोधत शृणुत॥ २२०॥

(७) **मणिरामः**। पुत्राणां क्षेत्रजादीनां क्रियाविधिः क्रमेण विभागकरणप्रकार उक्तः। इदानीं द्यूतव्यवस्थां शृणुत॥ २२०॥

(९) **भारुचिः**। उपसंहारोपन्यासार्थः श्लोकः॥ २२०॥

**द्यूतं समाह्वयं चैव राजा राष्ट्रान्निवारयेत्॥**
**राज्यान्तकरणावेतौ द्वौ दोषौ पृथिवीक्षिताम्॥ २२१॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अत्र च तुल्यविषयत्वात्समाह्वयमप्येकीकृत्य दर्शयति **द्यूतमिति**॥ २२१॥

(३) **कुल्लूकः**। द्यूतसमाह्वयौ वक्ष्यमाणलक्षणौ। राजा स्वराष्ट्रान्निवर्तयेत् यस्मादेतौ द्वौ दोषौ राज्ञो राज्यविनाशकारिणौ॥ २२१॥

(४) **राघवानन्दः**। द्यूतमेव सप्रतियोगि सदोषमाह **द्यूतमिति** द्वाभ्याम्। राज्यान्तकरणौ राज्यनाशकौ॥ २२१॥

(५) **नन्दनः**। अत्र तावद्राज्ञः कर्तव्यमाह **द्यूतं समाह्वयञ्चैवेति**। द्यूतं प्राणिद्यूतं कुक्कुटमेषादि ॥ २२१ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। द्यूतं, समाह्वयं प्राणिद्यूतं राजा राष्ट्रात् निवारयेत् ॥ २२१ ॥

(७) **मणिरामः**। द्रव्यैः कृतं द्यूतं, प्राणिभिः कृतं समाह्वय इति वक्ष्यमाणलक्षणं ॥ २२१ ॥

(९) **भारुचिः**। द्यूतसमाह्वयभेदप्रदर्शनार्थमिदमधुनोच्यते ॥ २२१ ॥

**प्रकाशमेतत्तास्कर्यं यद्देवनसमाह्वयौ ॥**
**तयोर्नित्यं प्रतीघाते नृपतिर्यत्नवान्भवेत् ॥ २२२ ॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। प्रत्यक्षमनिह्नुतम् ॥ २२२ ॥

(३) **कुल्लूकः**। प्रकटमेतच्चौर्यं यत् द्यूतसमाह्वयौ तस्मात्तन्निवारणे राजा नित्यं यत्नयुक्तः स्यात् ॥ २२२ ॥

(४) **राघवानन्दः**। राज्ञाऽत्र प्रयत्नवता भाव्यमिति विवक्षन्दृष्टार्थवादमाह **प्रकाशमिति**। प्रकाशं द्यूतसमाह्वयद्रष्टृसर्वजनसमक्षं तास्कर्यं चौर्यम्। अतस्तयोस्तत्कर्त्रोः प्रतीघाते नाशे ॥ २२२ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। तास्कर्यं चौर्यम्। यद्देवनसमाह्वयौ नृपतिः तयोः प्रतीघाते नाशाय यत्नवान्भवेत् ॥ २२२ ॥

**अप्राणिभिर्यत्क्रियते तल्लोके द्यूतमुच्यते ॥**
**प्राणिभिः क्रियते यस्तु स विज्ञेयः समाह्वयः ॥ २२३ ॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। द्यूतं अप्राणिभिरक्षशलाकादिभिर्यत्क्रियते पणेन क्रीडनम्। प्राणिभिर्मेषादिभिर्युद्धकरणेन पणपूर्वकं यत्नेन नियम्य क्रीडनं तत्समाह्वयः ॥ २२३ ॥

(३) **कुल्लूकः**। अक्षशलाकादिभिरप्राणैर्यत्क्रियते तल्लोके द्यूतं कथ्यते। यः पुनः प्राणिभिर्मेषकुक्कुटादिभिः पणपूर्वः स समाह्वयो ज्ञेयः। लोकप्रसिद्धयोरनयोर्लक्षणकथनं परिहारार्थम् ॥ २२३ ॥

(४) **राघवानन्दः**। तयोर्लक्षणमाह **अप्राणिभिरिति**। अप्राणिभिरक्षशलाकादिभिर्यत् क्रियते तत् द्यूतम्। प्राणिभिर्मेषकुक्कुटादिभिः यत्कर्म पणपुरःसरमिति शेषः ॥ २२३ ॥

(५) **नन्दनः**। द्यूतसमाह्वययोः करणत एव भेदो न स्वरूपत इत्यभिप्रायेणाह **अप्राणिभिर्यदिति**। अप्राणिभिर्दान्तशार्ङ्गदारवमार्तिकैरक्षैः प्राणिभिः कृकवाकुमेषमहिषवर्त्यादिभिः ॥ २२३ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। अप्राणिभिः अक्षशलाकादिभिः श्रू(क्रि)यते तल्लोके द्यूतमुच्यते। प्राणिभिर्यस्तु क्रियते स द्यूतसमाह्वयः ॥ २२३ ॥

**द्यूतं समाह्वयं चैव यः कुर्यात्कारयेत वा ।।**
**तान्सर्वान् घातयेद्राजा शूद्रांश्च द्विजलिङ्गिनः ।। २२४ ।।**

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । घातयेत्ताडनादिना द्विजलिङ्गिनो द्विजलिङ्गोपवीतधराम् ।। २२४ ।।

(३) **कुल्लूकः** । द्यूतसमाह्वयौ यः कुर्याद्यो वा सभिकः कारयेत्तेषामपराधापेक्षया राजा हस्तच्छेदादिवध कुर्यात् । यज्ञोपवीतादिद्विजचिह्नधारिणः शूद्रान् हन्यात् ।।२२४।।

(४) **राघवानन्दः** । निमित्तमनुवदन्नैमित्तिकमाह **द्यूतमिति** । कारयेत्सभिकः । घातयत् । अपराधानुरूपेण हस्तच्छेदादिना । तत्रैव ब्राह्मणत्वेन प्रतीयमना अपि ये शूद्रास्तान्प्रत्याह **द्विर्जलिगिन इति** । एतेऽवश्यमनपेक्ष्यतया ।।२२४।।

(६) **रामचन्द्रः** । द्विजलिङ्गिनः शूद्रान् राजा घातयेत् ।। २२४ ।।

(७) **मणिरामः** । द्विर्जलिगिनः यज्ञोपवीतादिद्विजचिह्नधारिणः शूद्रान् ।। २२४ ।।

(९) **भारुचिः** । सभिका अधिकारवन्तो द्यूतं ताडयितव्याः । न केवलं कर्तारः प्रतिषेधपरत्वाच्च वधोपदेशस्यान्येनाप्युपायेन तेषां प्रतिषेधः कर्तव्यः, राजतन्त्रविरोधिनां । येन नह्यत्र धर्मातिक्रमः कश्चिदस्ति, एवं च सत्यत्र वधिस्ताडनार्थ एव विज्ञेयः । धर्मव्यवस्थाभेदिनस्तु शूद्रान्द्विजलिङ्गिनो घातयेदेव । द्विजलिङ्गिनश्च शूद्रा यज्ञोपवीतातपत्रधारिणो भोगशब्दवादिनः । परिव्राजकादिवेषधारिणश्च व्याकरणाध्ययनमपि च द्विजलिङ्गमिति शक्यं वक्तुम् ।। २२४ ।।

**कितवान्कुशीलवान्केरान्पाषण्डस्थांश्च मानवान् ।।**
**विकर्मस्थान् शौण्डिकांश्च क्षिप्रं निर्वासयेत्पुरात् ।। २२५ ।।**

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । कितवान् द्यूतसमाह्वयकर्तॄन् । कुशीलवान् नटान् । क्रूरानतिवक्रचेष्टितान् । पाषण्डान् बौद्धादीन् । विकर्मस्थानधर्महेतुकर्मकर्तॄन् । पतितानन्त्यजादीन् । शौण्डिकान् मद्यविक्रेतॄन् । निर्वासयेत् बहिरेव वासयेत् ।। २२५ ।।

(३) **कुल्लूकः** । द्यूतादिसेविनो नर्तकगायकान्वेदविद्विषः श्रुतिस्मृतिबाह्यव्रतधारिणः अनापदि परकर्मजीविनः शौण्डिकान्मद्यकरान्मनुष्यान्क्षिप्रं राजा राष्ट्रान्निर्वासयेदिति कितवप्रसङ्गेनान्येषामप्यभिधानम् ।। २२५ ।।

(४) **राघवानन्दः** । कितवान्दृष्टान्तीकृत्य प्रसंगेनान्यानपि संकलयति **कितवानिति** । कुशीलवान् नृत्यजीविनः । केरान्गायकान् । पाषण्डान् पाषण्डलिङ्गतद्रूपान् वेदविद्विषः विकर्मस्थान् । अनापद्यपि परधर्मरतान् । शौण्डिकान् ते हि मद्यस्त्रीप्रदानेन धर्मप्रणाशात् सर्वानर्थकारिणः । **मानवानिति** । तादृशानन्यानपि यद्वा कुशीलवादिदोषो मनुष्येष्वेव न गन्धर्वादिष्विति द्योतितम् ।। २२५ ।।

(५) **नन्दनः** । कितवान्द्यूतवृत्तीन् । कुशीलवान्गायनवृत्तीन् । केलान्केलिशीलान् । शौंडिकान्मद्यपान् । पुरशब्दो राष्ट्रस्याप्युपलक्षणार्थः । कितवसधर्मत्वात् कुशीलवादीनामुपन्यासः प्रासङ्गिकः ।। २२५ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। कितवान् द्यूतसेविनः। कुशीलवान् विषयशीलान्। चौरान् वक्रचेष्टान्। विकर्मस्थान् अधर्मस्थान्। हेतुकर्तॄन् पानासक्तान्। एतान्कितवादीन् पुरात् क्षिप्रं निर्वासयेत् ॥ २२५ ॥

(७) **मणिरामः**। कितवान् द्यूतादिसेविनः। कुशीलवान् नर्तकगायकान्। केरान् वेदद्वेषिनः। पाखंडान् श्रुतिस्मृतिवाह्यव्रतधारिणः। विकर्मस्थान् अनापदि परकर्मजीविनः। शौंडिकान् मद्यपान् ॥ २२५ ॥

**एते राष्ट्रे वर्तमाना राज्ञः प्रच्छन्नतस्कराः ॥**
**विकर्मक्रियया नित्यं बाधन्ते भद्रिकाः प्रजाः ॥ २२६ ॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **एते** कितवादयः तथा **प्रच्छन्नतस्करा** वेषान्तरधराश्चौरा विकर्मक्रियया सज्जनेष्वपि द्यूतादिक्रियाप्रवर्तनेन **बाधन्ते** बाधां कुर्वन्ति। **भद्रिकाः** सद्वृत्ताः। अत्र कितवप्रसंगादप्युक्तम् ॥ २२६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। अत्र हेतुमाह **एत इति**। एते कितवादयो गूढचौरा राज्ञो राष्ट्रे वसन्तो नित्यं वंचनात्मकक्रियया सज्जनान्पीडयन्ति ॥ २२६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। अत एषां निरासे यत्नाधिक्यं सूचयति **एत इति**। वर्तमानाः स्वस्वकर्मणा **विकर्मक्रियया** विकर्मणा चौर्यादिना या क्रिया देहधारणादि तया **बाधन्ते साधुभिः** संगमय्य स्वदोषैस्तान्दूषयन्तीति भावः। **भद्रिका** भद्रेण साधुना धनपुत्रादिसूचककर्मणा जीवन्तीः ॥ २२६ ॥

(५) **नन्दनः**। **भद्रिकाः** सुशीलाः **बाधन्ते** दुःशीलाः कुर्वन्ति ॥ २२६ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **भद्रिकाः** सद्वृत्ताः प्रजाः विकर्मक्रियया वंचनादिक्रियया **एते बाधन्ते** ॥ २२६ ॥

(७) **मणिरामः**। अत्र हेतुमाह **एत इति**। भद्रिकाः सज्जनान् ॥२२६-२२७ ॥

(९) **भारुचिः**। क्रूरा भिन्नदृष्टयोर्वर्णलोपेन गुणवृत्त्योच्यन्ते। केलानित्यपरः पाठः। ते चातिकामुकाः केलीजीव...तानित्यपरे पठन्ति। सङ्केतकारिणः पाषण्डस्थांश्च मानवान् श्रुतिस्मृतिबाह्येष्वात्मलिङ्गेषु व्यवस्थितानधिकारविरोधेन कर्मस्थशब्दः स्वतन्त्रः। शौण्डिकविशेषण....सर्वानेतान्निर्वासयेत् पुरात्। प्रवासनकार्यस्य चाविशेषाद्राष्ट्रादप्येतेऽर्थतो निर्वास्याः। अत्र च कितवप्रसंगेन कुशीलवा(दी)नामपि प्रतिषेधः क्रियते ॥ २२६ ॥

**द्यूतमेतत्पुराकल्पे दृष्टं वैरकरं महत् ॥**
**तस्माद् द्यूतं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान् ॥ २२७ ॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **पुराकल्पे** पुराणकथासु ॥ २२७ ॥

(३) **कुल्लूकः**। नेदानीमेव परं किन्तु पूर्वस्मिन्नपि **कल्पे** द्यूतमेतदतिशयेन **वैरकरं** दृष्टमतः प्राज्ञः परिहासार्थ**मपि तन्न सेवेत** ॥ २२७ ॥

(४) **राघवानन्दः**। द्यूतस्यानर्थावहत्वमैतिह्येनाह **द्यूतमिति**। **पुराकल्पे** संसारानादितया बलभद्रदन्तवक्त्रयुधिष्ठिरदुर्योधनादिकाले। हास्यार्थं कुतूहलार्थमपि। द्यूतपदं समाहूवयोपलक्षकम् धनकारित्ववैरकरत्वहेतोरुभयसाधारण्यात् ।। २२७ ।।

(५) **नन्दनः**। द्यूतस्य दोषमाह स्वयमपि राज्ञा द्यूतं न कार्यमिति चाह **द्यूतमेतत्पुराकल्पे दृष्टमिति**। **पुराकल्पे** पूर्वस्मिन्काले **वैरकरं दृष्टं** नलयुधिष्ठिरादिषु ।। २२७ ।।

(९) **भारुचिः**। युधिष्ठिरादयोऽपरकालाः। देवासुरदृष्टं तु द्यूतं चिरवृत्तत्वादलोदाह्रियते 'ते देवा एक' इति श्रुतेः। एवं कृत्ये चायं द्यूतनिन्दार्थवादो विज्ञेयः। यतश्चैतदेवमतः ।। २२७ ।।

**प्रच्छन्नं वा प्रकाशं वा तन्निषेवेत यो नरः ।।**
**तस्य दण्डविकल्पः स्याद्यथेष्टं नृपतेस्तथा ।। २२८ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। विविधः कल्पो **विकल्पः**। सम एव राज्ञोच्यते। 'द्यूतधर्मं निबोधत' (९।२२०) इति तत आरभ्य द्विस्राः श्लोका विधायकाः। सर्वोऽप्यर्थवादः ।। २२०-२२८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। प्रकाशं कर्तव्यवृत्त्युत्पादनेन। यथेष्टं यस्य यथेच्छति नृपस्तस्य तथा कार्यो दण्डभेदः, नत्वत्र शास्त्रे दण्डो नियम्यत इत्यर्थः ।। २२८ ।।

(३) **कुल्लूकः**। **यो** मनुष्यस्तत् द्यूतं **गूढं प्रकटं वा** कृत्वा सेवेत तस्य यथा नृपतेरिच्छा भवति तथाविधो **दण्डो** भवति ।। २२८ ।।

(४) **राघवानन्दः**। तस्मात्तत्कारी दण्डार्ह इत्याह **प्रच्छन्नमिति**। तत् द्यूतसमाह्वयं प्रच्छन्नं। यथा स्यात्प्रकाशं यथा स्यादिति। नृपतेरिच्छया दण्डो वधो वेत्यन्वयः। यद्वा पणे सहस्रं नृपतेरित्युक्तम् ।। २२८ ।।

(५) **नन्दनः**। दण्डविकल्पः दण्डभेदोऽर्थहरणादिलक्षणः ।। २२८ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। तत् द्यूतं यः निषेवेत तस्य दण्डविकल्पः शतदण्डः स्यात् यथेष्टं नृपतेः तथा वा दण्डः ।। २२८ ।।

(७) **मणिरामः**। नृपतेः यथेष्टं दंडविकल्पः यथा नृपतेरिच्छावशतया वधो दंडः ।। २२८ ।।

(९) **भारुचिः**। 'प्रच्छन्नं वा प्रकाशं वा तन्निषेवेत यो नरः। तस्य दण्डविकल्पः स्याद्यथेष्टं नृपतेस्तथा' ।। २२८ ।।

**क्षत्रविट्शूद्रयोनिस्तु दण्डं दातुमशक्नुवन् ।।**
**आनृण्यं कर्मणा गच्छेद्विप्रो दद्याच्छनैः शनैः ।। २२९ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। क्षत्रियादयो निर्धना न बन्धनेनावसादयितव्याः। किं तर्हि ? **कर्मणा** यद्यस्योचितं कर्म राजोपयोगि तेन दण्डधनं संशोधयितव्याः।

**ब्राह्मणस्तु** कुटुंबानामविरोधेन **शनैर्दाप्यः**। बन्धताडनकर्मणी तस्य निषिध्येते। धनिकविषयः प्रागुक्तः श्लोकः। दण्डविषयोऽयम्। अपौनरुक्त्यम् ॥ २२९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। आनृण्यं दण्डापक्रियाम्। कर्मणा गृहादिकर्मकरणेन ॥ २२९ ॥

(३) **कुल्लूकः**। इदानीं पराजितानां धनाभावे सतीदमाह **क्षत्रेति**। क्षत्रवैश्यशूद्र-जातीयो निर्धनत्वेन दण्डं दातुमसमर्थस्तदुचितकर्मकरणेन दण्डशोधनं कुर्यात्। ब्राह्मणः पुनः यथालाभं क्रमेण दद्यान्न कर्म कारयितव्यः ॥ २२९ ॥

(४) **राघवानन्दः**। दण्डं संकलयति **क्षत्रेति षड्भिः**। ऋणदानासमर्थस्यैव दण्डस्य **आनृण्यं** शोधनं **कर्मणा** चेतनादिना गच्छेत्कुर्यात्। विप्रस्तु दद्यादेव तच्चापि **शनैः** ॥ २२९ ॥

(५) **नन्दनः**। विप्रः शनैरर्थं दद्यान्न तु **दण्डानृण्यं कर्मणा गच्छेत्** ॥ २२९ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। अनृणस्य भावं आनृण्यं, **कर्मणा** कर्मकरणेन **विप्रः शनैर्दद्यात्** ॥ २२९ ॥

(७) **मणिरामः**। इदानीं व्यवहारे पराजितानां धनाभावे सतीदमाह **क्षत्रेति**। कर्मणा तदुचितकर्मकरणेन आनृण्यं दंडशोधनं ॥ २२९-२३० ॥

(९) **भारुचिः**। यथोक्तं दण्डप्रकारमशक्नुवन्तो निर्धनत्वात् क्षत्रियादयो दण्डानुरूपाणि कर्माणि कुर्युः। ब्राह्मणेन तु स्वधर्मानुरोधेन शनैः शनैर्दण्डनीयः। तदेतदुक्तमप्यधुना पुनरुच्यते दण्डविषयार्थम्, पूर्वं तु कुसीदप्रकरणे तद्गतम् ॥ २२९ ॥

**स्त्रीबालोन्मत्तवृद्धानां दरिद्राणां च रोगिणाम् ॥**
**शिफाविदलरज्ज्वाद्यैर्विदध्यान्नृपतिर्दमम् ॥ २३० ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **दमम्**। कर्मकरणेऽप्यसमर्था दरिद्रा एव गृह्यन्ते। महापातकिनां साम्यात्तच्छिफादिभिस्ताडनम्। **शिफा** लता। **विदलं** वृक्षत्वक् ॥ २३० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अनाथो दरिद्रः, सततधनवत्संबन्धिशून्यः। शिफा वृक्षजटा, विदलो वेत्राद्यर्धम्, रज्जुश्चर्मादिकृता, एतैस्ताडनेन ॥ २३० ॥

(३) **कुल्लूकः**। स्त्रीबालादीनां पुनः शिफावेणुदलप्रहाररज्जुबन्धनादिभिर्दमनं राजा कुर्यात् ॥ २३० ॥

(४) **राघवानन्दः**। अदाने दण्डार्थमये दण्डप्रकारः स्त्र्यादीनामित्याह **स्त्रीति**। शिफा अङ्गुलीपञ्चकसाधनकः प्रहारो वटारोहो वा। **विदलो** वेणुशलाका ॥ २३० ॥

(५) **नन्दनः**। शिफा न्यग्रोधादिप्ररोहः **विदलो** वेणुदलम् ॥ २३० ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **शिफा** कशा **विदलं** वेण्वादिविकारः **विदलः** तरुत्वक्**रज्ज्वाद्यैः** रज्जुकरणादिभिः **नृपतिः एतैर्दमं दद्यात्**। ॥ २३० ॥

(९) **भारुचिः**। विकर्मस्थानामेतदपराधानुरूपतः शिफादिभिस्ताडनम्। न पातकिनामपि चापलता विज्ञेया। एवं च सति येन येन दण्डप्रकारेण द्यूतनिवृत्तिः स्यात् तं तं दण्डप्रकारं कल्पयेदात्मेच्छया ॥ २३० ॥

**ये नियुक्तास्तु कार्येषु हन्युः कार्याणि कार्यिणाम् ॥**
**धनोष्मणा पच्यमानास्तान्निःस्वान्कारयेन्नृपः ॥ २३१ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **ये कार्यिणामर्थिप्रत्यर्थिनां कार्येषु** व्यवहारदर्शितादिषु **नियुक्ता** अधिकृता राजस्थानीयप्रभृतयस्ते **धनोष्मणा पच्यमाना** अन्यतरस्माद्धनं गृहीत्वा **कार्याणि** नाशयेयुस्तान्**निःस्वान् कारयेत्** तत्सर्वस्वहरणं तेषां कार्यम्। सत्यानामभ्यासेन वर्तमानानां सत्यपि वक्ष्यमाणदण्डान्तरविधावेष एव दण्डो न्याय्यः।

येऽप्यन्ये सेनापतिप्रभृतयः कस्यचित्साहाय्यके नियुज्यन्ते ततश्चार्थं गृहीत्वा शयन्ति तेऽप्येवमेव दण्ड्याः। अन्ये तु 'येऽनियुक्ता' इत्यकारप्रश्लेषः' पठन्ति। ये राजवल्लेख्याद्बलातिशयाद्वाऽन्यस्य साहाय्यं कुर्वन्ति, कार्यनाशनार्थं द्वितीयस्य, तेषामयं दण्डः। **धनोष्मणेत्य**विवक्षितम्। अनियुक्ता इत्येतदेव प्रधानम् ॥ २३१ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **ये नियुक्ताः** प्राड्विवाकाद्याः हन्युरुत्कोचग्रहणजितमप्यजितं कुर्वन्तः। **धनोष्मणा** पाकः किं नो भवति राजा चेज्जानीयाद्दण्डमात्रं ग्रहीष्यतीत्यतिधनतया निर्भयता। निःस्वानपहृतसर्वस्वान् ॥ २३१ ॥

(३) **कुल्लूकः**। ये व्यवहारावेक्षणादिषु कार्येषु राज्ञा **नियुक्ता** उत्कोचधनतेजसा विकारं भजन्तः स्वाम्यादीनां कार्यं नाशयेयुस्तान्गृहीतसर्वस्वान् राजा कारयेत् ॥ २३१ ॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच **य इति**। **कार्यिणामर्थिनाम्**। **धनोष्मणा पच्यमानान्** धनगर्वतेजसापन्नविकारान् ॥ २३१ ॥

(५) **नन्दनः**। अथान्यानपि दण्डान्प्रसङ्गादाह **ये नियुक्तास्त्विति**। **कार्येषु** व्यवहारेषु। धनोष्मणा धनलिप्साजनितेन सन्तापेन पच्यमानान्विक्रीयमाणान् ॥ २३१ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **ये कार्येषु नियुक्ताः कार्यिणां** कार्यार्थिनां **कार्याणि हन्युः** धनस्य ऊष्मणा ये पच्यमानाः धनस्य अभिमानेन नश्यत्प्राणभृत्यांस्तान्भृत्यान्नृपतिर्**निःस्वान्** कारयेत् निःस्वान् नृपतिः **कारयेत्** ॥ २३१ ॥

(७) **मणिरामः**। धनोष्मणा पच्यमानाः उत्कोचधनतेजसाधिकारं लभंते ॥ २३१ ॥

(९) **भारुचिः**। धनोष्मणा कस्यचिद् व्यवहारतः साहाय्यं कुर्वन्ति, ते निःस्वाः कार्याः अथवा अधिकृतास्सन्तो धनं गृहीत्वा यऽन्यथा कार्याणि कुर्युः ते निःस्वाः कार्या इति ॥ २३१ ॥

**कूटशासनकर्तॄंश्च प्रकृतीनां च दूषकान् ॥**
**स्त्रीबालब्राह्मणघ्नांश्च हन्याद्द्विट्सेविनस्तथा ॥ २३२ ॥**

(१) **मेधातिथिः** । **कूटशासनस्य कर्तारो** यत्रैव राज्ञादिष्टं तद्राजकृतमिति वदन्ति । **शासनं** राजादेशः । 'एतस्य गृहे न भोक्तव्यम्', 'अस्य चायं प्रसाद आज्ञात', 'इयं वा स्थिती राज्ञा कृतेति' पत्रकं राजाधिकृतलेखकलिखितमिति 'शासनं' राजादेशसंबन्धेन शासनम् । **तत्कूटं** कुर्वन्ति पालयन्ति । **प्रकृतीनां** क्रुद्धलुब्धानां **दूषका** भेदकाः । **स्त्रीबालयोर्ब्राह्मणस्यापि** हन्तारः । **द्विट्सेविनो** राजशत्रुसेविनः प्रच्छन्नं गतागतिकान् ॥ २३२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । कूटशासनं मिथ्या राजाज्ञालेखनम् । **दूषकान्** अन्योन्यभेदकान् । **हन्यात्** घातयेत् । **द्विट्सेविनः** स्वयंपुष्टानपि स्वशत्रुसेविनः ॥ २३२ ॥

(३) **कुल्लूकः** । कूटराजाज्ञालेखकानमात्यानां च भेदकान् स्त्रीबालब्राह्मणघातिनः शत्रुसेविनश्च राजा हन्यात् ॥ २३२ ॥

(४) **राघवानन्दः** । **कूटशासनकर्तॄंश्च** राजाज्ञां विनापि लेख्यादिना शास्तारो ये तान् । **प्रकृतीनाम**मात्यानां दूषकान्भेदकान् । द्विट्सेविनः स्वपक्षमनुकुर्वन्त एव शत्रुसेविनो ये तानपि ॥ २३२ ॥

(५) **नन्दनः** । **प्रकृतीनां दूषकान**मात्यादीनां भेदकान् ॥ २३२ ॥

(६) **रामचन्द्रः** । शासनं राजलेखनम् । **कूटकर्तॄन्** राज्ञां लिखनमन्यथाकारिणः **प्रकृतीनां** अमात्यानां **दूषकान्** । भेदकान् तथा **द्विट्सेविनः** उपायान्तरेण रक्षणाशक्तौ हन्यात् ॥ २३२ ॥

(७) **मणिरामः** । कूटशासनकर्तॄन् राजाज्ञां विना मिथः राजाज्ञालेखकान् । प्रकृतीनां अमात्यानां दूषकान् भेदकान् ॥ २३२ ॥

(९) **भारुचिः** । . .तेषां राज्यतन्त्रविरोधे वर्तमानानां नियमतो वधः द्विट्सेविनश्चागतिकाः ॥ २३२ ॥

**तीरितं चानुशिष्टं च यत्र क्वचन यद्ब्रूवेत् ॥**
**कृतं तद्धर्मतो विद्यान्न तद्ब्रूयो निवर्तयेत् ॥ २३३ ॥**
**[तीरितं चानुशिष्टं च यो मन्येत विकर्मणा ।**
**द्विगुणं दण्डमास्थाय तत्कार्यं पुनरुद्धरेत् ॥]**

(१) **मेधातिथिः** । यत्र क्वचन राजाधिकरणे व्यवहारपदं **तीरितम्** । 'पार तीर कर्मसमाप्तौ' । निश्चितम् । असौ यत्र प्रयुञ्जीतेति न केवलं वाचा सत्यैरुक्तं यावदनुशब्दं दण्डप्रणयनं कृतम् । तद्राजा कृतमेव विद्यान्न पुनर्निवर्तयेदन्तरेण द्विगुणं दण्डं यथाष्टं द्विगुण दण्डमास्थायैतत्कार्यं पुनरुद्धरेदिति । धनग्रहणसंबन्धेन पूर्वं निःस्वीकरणं, अयं तु निमित्तान्तरेणाजातादिना ॥ २३३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। यत्र व्यवहारविषये यत्तीरितं शास्त्रविषये निर्धारितं अनुशिष्टं धृतदण्डं च कार्यं तद्यदि धर्मतः कृतं पूर्वेण राज्ञा केनचित् तदा कृतमेव विद्वान्न पुनस्तदनुसंदध्यात् ।। २३३ ।।

(३) **कुल्लूकः**। यत्र क्वचिदृणादानादिव्यवहारे यत्कार्यं धर्मतस्तीरितं। 'पार तीर कर्मसमाप्तौ' इति चुरादौ पठ्यते। शास्त्रव्यवस्थानिर्णीतं, अनुशिष्टं दण्डपर्यन्ततां च नीतं स्यात्तत्कृतमङ्गीकुर्यान्न पुर्ननिवर्तयेदेतच्चाकारणात्। अतः कारणकृतं निवर्तयेदेव ।। २३३ ।।

(४) **राघवानन्दः**। आपद्यपि अन्यायवर्ती नृपो न स्यादित्याह **तीरितमिति**। तीरं पारं इतं नीतं, समापितमिति यावत्। **तीरितं** गङ्गादेस्तत्संबन्धि पणादि वा पणो देय इत्यादि यन्निर्णीतं अनुशिष्टं यत्र क्वचिन्नृणां दिव्यव्यवहारे शास्त्रप्रमाणेन यद्दण्डादि समर्पितं तन्न निवर्तयेत्। लोभादिना न पुनः कारयेत्। धर्मतः करणादिति भावः ।। २३३ ।।

(५) **नन्दनः**। तीरितानुशिष्टशब्दौ **कात्यायनेन** व्याख्यातौ–असत्सदिति यः पक्षः सद्भर्त्तारिवावधार्यते। तीरितः सोऽनुशिष्टस्तु साक्षिभिर्यः प्रकीर्तित' इति। यत्र क्वचन राजसभायां अन्यत्रापि तीरितं चानुशिष्टं च व्यवहारपददण्डदशबन्धाद्यर्थं न निवर्तयेदित्यर्थः ।। २३३ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। निर्णीतं शास्त्रविषये निर्धारितं धर्मतो निर्णीतं च पुनः **अनुशिष्टं** कृतदण्डं च कार्यं दण्डपर्यन्तं नीतं यत्र क्वचन यद्भवेत्तत्कृतं धर्मतो विद्यात् भूयस्तन्निर्णीतं न **निवर्तयेत् न** प्रवर्तयेत् ।। २३३ ।।

(७) **मणिरामः**। यत्र ऋणदानादिव्यवहारे। यत्कार्यं धर्मतः तीरितं संपूर्णतां नीतं। 'पार तीर कर्मसमाप्ता'विति चुरादौ पाठात्। अनुशिष्टं दंडपर्यंततां नीतं च भवेत् तत् भूयः न निवर्तयेत्। अधर्मतः कृतं तु व्यवहारं निवर्तयेदेवेति विद्यात् जानीयादित्यर्थः ।। २३३ ।।

(९) **भारुचिः**। एवं च सति मैत्र्या कारुण्येन वाऽन्येन कारणान्तरेण न निवर्तयेत् अर्थादशास्त्रकृतं निवर्तयेत् तथा च सति ।। २३३ ।।

**अमात्याः प्राड्विवाको वा यत्कुर्युः कार्यमन्यथा ।।**
**तत्स्वयं नृपतिः कुर्यात्तान् सहस्रं च दण्डयेत् ।। २३४ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। धनग्रहणसंबन्धेन पूर्वं निःस्वीकरणम्। अयं तु निमित्तान्तरेण अज्ञानादिना। **अमात्यो** राजस्थानीयादिः। **तं सहस्रं च दण्डयेत्**। गर्गशतदण्डनवत्समुदायेन वाक्यपरिसमाप्तिः ।। २३४ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **अमात्याः** सेनापत्यादिः। **अन्यथा कुर्युरु**त्कोचादिना। **कुर्याद्**व्यवस्थापयेत्। सहस्रमित्यल्पविषये सहस्रपणविवादे। अधिके त्वधिकम् ।। २३४ ।।

(३) **कुल्लूकः**। राजा**मात्याः प्राड्विवाको** वा व्यवहारेक्षणे नियुक्तो यदसम्यग्व्यवहारनिर्णयं कुर्युस्तत् स्वयं राजा कुर्यात्, पणसहस्रं च तान्दण्डयेत्। इदं चोत्कोचधनग्रहणेतरविषयं, उत्कोचग्रहणे 'ये नियुक्तास्त्वि'(९।२३१)त्युक्तत्वात् ।। २३४ ।।

(४) **राघवानन्दः**। स्वकृतमनिवर्तयन्परकृतं निवर्तयेदेवेत्याह **अमात्य इति**। अन्यथा प्रमादमोहादिना। राज्ञा नियुक्ताः अमात्यः प्राड्विवाको वा। प्रत्येकं पणसहस्रम्। दण्डः उत्कोचादिग्रहणनिमित्तः ॥ २३४ ॥

(५) **नन्दनः**। **कुर्या**न्निरूपयेत्सहस्रं पणानाम् ॥ २३४ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **प्राड्विवाकः** 'विवादानुगतं पृच्छेत् सभ्यांस्तान् प्रति वर्तते। विचारयति येनासौ प्राड्विवाकस्तु स स्मृतः ॥' अन्यथा कार्यं यः **कुर्यात्तमन्यथा**-कारिणम् ॥ २३४ ॥

(७) **मणिरामः**। अन्यथा असम्यक् कृतान् प्राड्विवाकसहितान् अमात्यान् ॥ २३४ ॥

(९) **भारुचिः**। अमात्यो राज्ञा नियुक्तो ब्राह्म(?णः) व्यवहाररक्षणे। तथा चोक्तं 'तदा नियुञ्ज्याद्विद्वांसं ब्राह्मणं कार्यदर्शने' इति। प्राड्विवाकास्तु पृथग्वेदशास्त्रज्ञास्त्रयः। तथा चोक्तं 'यस्मिन् देशे निषीदन्ति विप्रा वेदविदस्त्रयः' इति। एते यत्कुर्युः कार्यमन्यथा रागादिभिः कारणादिभिः कारणैरसन्निहिते राजनि ॥ २३४ ॥

**ब्रह्महा च सुरापश्च तस्करो गुरुतल्पगः ॥**
**एते सर्वे पृथग् ज्ञेया महापातकिनो नराः ॥ २३५ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **सुरापो** ब्राह्मण एव महापातकी। **तस्करो** ब्राह्मणसुवर्णापहारी। **नराः** कथिताः। उक्तार्थकथनमुत्तरार्थम् ॥ २३५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **सुरापः** पैष्टीपाता क्षत्रियो वैश्यश्च विप्रो गौडीपैष्टीमाध्वी-पाता। तस्करो ब्राह्मणस्वर्णहर्ता। पृथगेकैकशः ॥ २३५ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यो मनुष्यो ब्राह्मणं हतवान्स **ब्रह्महा**। **सुरापो** द्विजातिः पैष्टचाः पाता ब्राह्मणश्च पैष्टी-माध्वी-गौडीनां। तस्करो ब्राह्मणसुवर्णहारी मनुष्यः। यश्च कश्चिद् गुरुपत्नीगामीत्येते सर्वे प्रत्येकं महापातकिनो बोद्धव्याः ॥ २३५ ॥

(४) **राघवानन्दः**। द्वादशवार्षिकप्रायश्चित्तनिमित्ताधिकारिणो देहादिदण्डार्थ-मनुवदति **ब्रह्महेति**। ब्राह्मणजात्यवच्छिन्नस्य हन्ता। सुरापः [गौडीमाध्वी]पैष्टीनां पाता विप्रः। तस्करोऽत्र ब्राह्मणसुवर्णहारी साहचर्यात्। **गुरुतल्पगः** गुरोस्तल्पवदधस्तन-त्वात्पत्नी तां गन्तुं शीलः। मनुष्याधिकारकं शास्त्रमित्याह—एते यदि नरास्तदा महापातकिनः नान्यः। अत एव देवादीनां पापं तत्प्रायश्चित्तभूतभाव्यर्थवादत्वेन, नयेन तु देवत्वतिर्यक्त्व-दशायां ते स्त इति भावः ॥ २३५ ॥

(५) **नन्दनः**। अथ महापातकिनो दण्डविवक्षयाह **ब्रह्महा चेति**। **नरो** ब्राह्मण-स्वर्णचोरः ॥ २३५ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **स्तेयी** विप्रसुवर्णस्तेयी ॥ २३५ ॥

(७) **मणिरामः**। सुरापः द्विजातिः पैष्टचाः पाता ब्राह्मणश्च पैष्टीमाध्वीगौडीनां पाता ॥ २३५ ॥

(९) **भारुचिः**। अपरः पाठोऽत्र श्लोके

ब्राह्मणघ्नं सुरापं च तस्करं गुरुतल्पगम्।
एतान् विद्यात् पृथक् सर्वान् महापातकिनो...॥

अत्र पातकसम्बन्धात् सुवर्णस्तेयकृत्तस्करो गृह्यते, ब्रह्महत्यायां सर्वेषां व्यतिक्रमः। सुरायाम-सुरामद्यपाने च विशेषं वर्णाश्रयं वक्ष्यामः। चौर्या (?) च सर्ववर्णाधिकारः। स गुरुतल्पगे ॥ २३५ ॥

**चतुर्णामपि चैतेषां प्रायश्चित्तमकुर्वताम् ॥**
**शारीरं धनसंयुक्तं दण्डं धर्म्यं प्रकल्पयेत् ॥ २३६ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। "ननु च सुरापो ब्राह्मण एव पातकी। तस्य च शरीरसंयुक्तो दण्डो नास्ति 'न शारीरो ब्राह्मणो दण्ड' इति तत्र **चतुर्णा**मपीति कथं" केचिदाहुः। पतितः संप्रयुक्तो गृह्यते पूर्वमनुपात्तोऽपि। चतुःसंख्यासामर्थ्यात्। अन्ये त्वंकनं शरीरसंयुक्त-मित्याहुः। तच्च ब्राह्मणस्याप्यस्ति। अन्ये तु 'अपि'शब्दात्पञ्चानामयं दण्ड इत्याहुः। **चतुर्णामपि**। अपिशब्दात्पञ्चमस्यापि तत्संसर्गिणः। ब्राह्मणस्य वधे पूर्वं शरीरदण्ड उक्त एव, "स्त्रीबालब्राह्मणघ्नांश्च हन्यादि"ति। अनेनान्तःशरीरयुक्तमङ्कनमेवोच्यते। **धर्म्यमि**त्यपराधानुरूपेण गुरुतरलाघवं कार्यमित्यर्थः॥ २३६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। शरीरयुक्तमङ्कनादि। धनसंयुक्तं सर्वस्वादानादि। 'नाङ्क्या राज्ञा ललाटे' (९।२४०) इति ललाटे प्राप्ताङ्कननिषेधात्तत्रैवाङ्कनम् ॥ २३६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। चतुर्णामप्येतेषां महापातकिनां **प्रायश्चित्तमकुर्वतां** शारीरं धनग्रहणेन च धनसंबन्धमपराधानुसारेण धर्मादनपेतं वक्ष्यमाणं दण्डं कुर्यात् ॥ २३६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। **चतुर्णामेतेषामपि** प्रत्येकं संसर्गात्पातकी, पञ्चम इति शेषः; नैमित्तिकमाह **शारीरमिति** ॥ २३६ ॥

(५) **नन्दनः**। संसर्गिणः पञ्चमस्य तत्तुल्यदण्डत्वाच्चतुर्णामित्युक्तम् ॥ २३६ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। एतेषां चतुर्णां प्रायश्चित्तं अकुर्वतां शरीरधनसंयुक्तं धर्मं समानरूपं दण्डं प्रकल्पयेत् ॥ २३६ ॥

(७) **मणिरामः**। एतेषां ब्रह्महादीनां महापातकिनां शारीरं धनसंयुक्तं प्रायश्चित्त-मकुर्वतां धर्म्यं दंडं अपराधानुसारेण वक्ष्यमाणं कुर्यात् ॥ २३६ ॥

(९) **भारुचिः**। 'चतुर्णामपी'ति वचनात् तत्सम्बन्धी पञ्चमो गृह्यते, स्त्रीबालब्राह्मणवधे ...धदण्ड उक्तः 'चतुर्णामपि चैतेषा'मित्यत्र श्लोकेनेन्धनं दण्डश्च। तदेतत् पातकानुरूपं कार्यम्; शूद्रस्य तु ब्रह्महत्याप्रायश्चित्तमकुर्वतो दण्डद्वयम्। 'पणानाम्'(१३८) इत्युक्तपरि-भाषमेतत्। समुदाये चैषां दण्डचोदना विज्ञेया। यथा 'गार्ग्यशतं दण्डयन्ता'मिति ॥ २३६ ॥

**गुरुतल्पे भगः कार्यः सुरापाने सुराध्वजः ॥**
**स्तेये च श्वपदं कार्यं ब्रह्महण्यशिराः पुमान् ॥ २३७ ॥**

(१) **मेधातिथिः** । ललाटाङ्कनम् प्रतिषेधविधौ "नाङ्क्या राज्ञा ललाटे स्युः" (९।२४०) इति तच्छ्रवणात् ॥ २३७ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । भगो भगाकृतिः । सुराध्वजः सुराचिह्नस्सूतशौण्डिकगृहध्वजाकृतिः । अब्रह्मण्ये ब्रह्महत्यायां अशिराः कबन्धः । ब्रह्महण्यशिरा इति क्वचित्पाठः ॥ २३७ ॥

(३) **कुल्लूकः** । 'नाङ्क्या राज्ञा ललाटे स्युः' (इति वक्ष्यमाणत्वाल्ललाटमेवाङ्कनस्थानमवगम्यते) तत्र गुरुपत्नीगमने यावज्जीवस्थायितप्तलोहेन ललाटे भगाकृतिं गुरुपत्नीगमनचिह्नं कार्यं । एवं सुरापाने कृते पातुर्दीर्घं सुराध्वजाकारं । सुवर्णापहारे सत्यपहर्तुः कुक्कुरपादरूपं कार्यं । ब्रह्महणि कबन्धः पुमान्कर्तव्यः ॥ २३७ ॥

(४) **राघवानन्दः** । तत्रादौ शारीरं दण्डमाह **गुरुतल्पे भग इति** । **भगः** गुरुतल्पगस्य ललाटे भगाकृतिचिह्नं यावज्जीवं स्थायि कुर्यात्तप्तेन लोहेन । एवमुत्तरत्र । सुराध्वजः तप्ता तु दीर्घा ध्वजाकारा रेखा **श्वपदं** शुनः पदाकारं । **अशिराः** कबन्धः तदाकाररेखा ॥ २३७ ॥

(५) **नन्दनः** । अत्र भगादय एकरूपा विज्ञेयाः । **सुराध्वजः** सुराकलशः **अशिराः पुमान्कबन्धः** ॥ २३७ ॥

(६) **रामचन्द्रः** । भगो भगाकारः । सुराध्वजः सुराध्वजरूपः । **स्तेये श्वपदं** पदसदृशम् । ब्रह्महणि अशिराः पुमान् शिरःशून्यः पुमान्कार्यः ॥ २३७ ॥

(७) **मणिरामः** । भगः ललाटे यावज्जीवस्थायितप्तलोहेन भगाकृतिचिह्नं कार्यं । सुराध्वजः पातुर्ललाटे सुराध्वजाकारं चिह्नं स्तेये सुवर्णापहारे । श्वपदं कुक्कुरपादरूपं चिह्नं । अशिराः शिरकर्तनेन कबंधः पुमान् कर्तव्यः ॥ २३७-२३८ ॥

(९) **भारुचिः** । ललाटेऽङ्कनप्रतिषेधविधौ ललाटग्रहणात् ॥ २३७ ॥

**असंभोज्या ह्यसंयाज्या असंपाठ्याऽविवाहिनः ॥**
**चरेयुः पृथिवीं दीनाः सर्वधर्मबहिष्कृताः ॥ २३८ ॥**

(१) **मेधातिथिः** । सर्वधर्मग्रहणादेवासंभोजनादीनां सिद्धे प्रतिषेधे दोषगुरुत्वख्यापनार्थमेषामुपादानम् । **संभोग** एकत्र ग्रसनं गीतादिश्रवणं च । **संयाजनं** तेषामेव याजनं तैः सह याजनं वा । एवं **संपाठोऽपि** द्रष्टव्यः । **असंपाठ्याविगर्हिता** इति । असंपाठ्याश्च विगर्हिताश्चेति द्वन्द्वः । **दीना** इति । सत्यपि स्वरत्वे तत्संबन्धिनिषेधभिक्षादिभोजनेन परयाऽवज्ञया च वस्त्रखण्डादिवर्जनम् ॥ २३८ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । असंभोज्या एकपङ्क्तिभोजनानर्हाः असंयाज्या अयाज्याः । असंपाठ्या अध्यापनसंबन्धानर्हा अविवाहिनो विवाहसंबन्धानर्हाः चरेयुर्नैकत्र वसेयुः ॥२३८॥

(३) **कुल्लूकः**। अन्नादिकं नैते भोजयितव्याः, नचैते याजनीयाः, नाप्येतेऽध्यापनीयाः, नाप्येतैः कन्यादानसंबन्धः कर्तव्यः। एते च निर्धनत्वाद्याचनादिदैन्ययुक्ताः सर्वश्रौतादिकर्मवर्जिताः पृथिवीं पर्यटेयुः ॥ २३८ ॥

(४) **राघवानन्दः**। न केवलमेवमन्यदपीत्याह **असंभोज्या** इति द्वाभ्याम्। **असंभोज्याः** सहभोजनाय नार्हन्त्येते। एवं **असंयाज्या** याजनायानर्हा एते। एवं **असंपाठ्याः** पाठनाय नार्हन्ति। अविवाहिनः विवाहो वैवाहिको योनसंबन्धस्तद्रहिताः। सर्वधर्मबहिष्कृताः स्वस्वाश्रमधर्मरहिताः ॥ २३८ ॥

(५) **नन्दनः**। असंभोज्या भोजनानर्हाः, असंयाज्याः स्थानासनशयनादिषु सामीप्यानर्हाः, असंपाठ्याः सहाध्ययनानर्हाः, विवादिनः सहभाषणानर्हाः ॥ २३८ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। गुरुतल्पगादयः सर्वधर्मबहिष्कृताः पृथिवीं चरेयुः। असंपंक्त्याः पङ्क्त्यनर्हाः, असंयाज्याः यष्टुं अर्हा न ॥ २३८ ॥

(९) **भारुचिः**। नैते राज्ञा धृतदण्डा इति कृत्वा ज्ञातिसम्बन्धिभिः परिग्राह्याः। एवं च सति व्याध्यादियोगेऽप्येषां दया न कर्तव्या, ज्येष्ठादिगुणयोगे च नैते नमस्कार्याः प्रत्युत्थानाभिवादादिभिः। एष एव चात्र वचनसामर्थ्याद्धर्मो विज्ञेयः। न तु स्वातन्त्र्येण दया विनयो वा पूर्वोपदिष्ट इति ॥ २३८ ॥

**ज्ञातिसंबन्धिभिस्त्वेते त्यक्तव्याः कृतलक्षणाः ॥**
**निर्दया निर्नमस्कारास्तन्मनोरनुशासनम् ॥ २३९ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **कृतलक्षणा** इति। निश्चिते कार्यकारणत्व इत्यर्थः। व्याध्यादियोगेऽप्येषु दया न कर्तव्या। ज्यैष्ठ्यादिगुणयोगेऽपि च नैते नमस्कार्याः प्रत्युत्थानादिभिः। एष एव वचनसामर्थ्याद्धर्मो विज्ञेयः ॥ २३९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **कृतलक्षणाः** कृताङ्कनाः। **निर्दयाः** दयाया अविषयाः। **निर्नमस्कारा** अनमस्काराः ॥ २३९ ॥

(३) **कुल्लूकः**। **ज्ञातिभिः** संबन्धिभिर्मातुलाद्यैरेते कृताङ्कास्त्यजनीयाः, नचैषां दया कार्या, नाप्येते नमस्कार्या, इतीयं मनोराज्ञा ॥ २३९ ॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच **ज्ञातीति**। कृतलक्षणाः (भगादिचिह्नाः निर्दया अहो ब्रह्मघ्न इति कृत्वा) ॥ २३९ ॥

(५) **नन्दनः**। निर्दया निर्नमस्काराः दयानमस्कारयोरविषयभूताः ॥ २३९ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। एते ज्ञातिसंबन्धिभिः **कृतलक्षणाः कृतचिह्नाः त्यक्तव्याः निर्दयाः** निर्गता दया येषां ते। **निर्नमस्काराः** निर्गता नमस्कारा येषां ते ॥ २३९ ॥

(७) **मणिरामः**। एते महापातकिनः॥ २३९ ॥

**प्रायश्चित्तं तु कुर्वाणाः पूर्वे वर्णा यथोदितम् ।।**
**नाङ्क्या राज्ञा ललाटे स्युर्दाप्यास्तूत्तमसाहसम् ।। २४० ।।**

(१) **मेधातिथिः**। शूद्रादन्ये **पूर्वे वर्णाः** तेषां प्रायश्चित्तं कुर्वतामङ्कनं नास्ति। दण्डस्तूत्तमसाहसं पणसहस्रं दाप्यते ।। २४० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **पूर्वे** प्रागुक्ताः क्षत्रादिवर्णास्त्रयः। **दाप्या उत्तमसाहसं** प्रायश्चित्ते कृतेऽपि ।। २४० ।।

(३) **कुल्लूकः**। शास्त्रविहितं **प्रायश्चित्तं** पुनः **कुर्वाणा** ब्राह्मणादयस्त्रयो वर्णा राज्ञा ललाटेऽङ्कनीया न भवेयुः, उत्तमसाहसं पुनर्दण्डनीयाः ।। २४० ।।

(४) **राघवानन्दः**। ('प्रायश्चित्तमकुर्वता'मित्युक्तं तत्करणे तु न चिह्नादिकं कार्यमित्याह **प्रायश्चित्तमिति**। यथोदितमत्र वक्ष्यमाणत्वेन वेदोक्तं यथा) भवत्येव वेदमूलत्वात्स्मृतेः। धनसंयुक्तमित्युक्तं तदाह **उत्तमसाहसमिति**। दण्डोऽत्र पुनः प्रसक्तिवारणाय ।।२४०।।

(५) **नन्दनः**। **पूर्वे** वर्णास्त्रैवर्णिकाः, अनेन ज्ञायते **ललाटेषु** कर्तव्यमङ्कनमिति ।।२४०।।

(६) **रामचन्द्रः**। पूर्वे वर्णाश्चत्वारो गुरुतल्पगादयः यथोदितं कुर्वाणा **राज्ञा ललाटे नांक्याः स्युः** न कृतचिह्ना भवेयुः। क्षत्रियादिविषयं ।। २४० ।।

(७) **मणिरामः**। पूर्वे वर्णाः ब्राह्मणादयस्त्रयः ।। २४० ।।

(९) **भारुचिः**। पूर्वे वर्णा ब्राह्मणादयः प्रमा वधे च पञ्चशतो दण्ड इत्येतदर्थाद् गम्यते ।। २४०.।।

**आगस्सु ब्राह्मणस्यैव कार्यो मध्यमसाहसः ।।**
**विवास्यो वा भवेद्राष्ट्रात्सद्रव्यः सपरिच्छदः ।। २४१ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। 'प्रायश्चित्तं तु कुर्वाणा' इत्येतदत्र नापेक्षते। एतेषु ब्रह्महत्यादिष्वपराधेषु ब्राह्मणो मध्यमसाहसं दण्ड्यः। **अकामत** इत्युत्तरश्लोकादपकृष्यते। दण्डयित्वा प्रायश्चित्तं कारयितव्यः। **सपरिच्छदः** गुणवतो ब्राह्मणस्यानुग्रहस्यैतत्। अकामं वाऽनिर्वास्यः ।। २४१।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। महापातकिनो मध्यमसाहसः कृतप्रायश्चित्तस्य ब्राह्मणस्य। अकृतप्रायश्चित्तस्तु निर्वास्यः। द्रव्यं धनं, परिच्छदो रथादिः ।। २४१ ।।

(३) **कुल्लूकः**। 'इतरे कृतवन्तस्त्वि'त्युत्तरश्लोके श्रूयमाणम्'अकामत' इति चात्रापि योजनीयम्। तेन'अकामत' इत्येतेष्वपराधेषु गुणवतो ब्राह्मणस्य मध्यमसाहसो दण्डः कार्यः। पूर्वोक्तस्तूत्तमसाहसो निर्गुणस्य द्रष्टव्यः, कामतस्तेष्वपराधेषु धनधान्यादिपरिच्छदसहितो ब्राह्मणो देशान्निर्वास्यः ।। २४१ ।।

(४) **राघवानन्दः**। विगुणेषु चतुर्थोत्तमसाहसमुक्त्वा गुणवत्स्वच्छानिच्छाभ्यां व्यवस्थापयन्नादौ ब्राह्मणस्य तदाह **आगस्स्विति**। आगःसु पापेषु। मध्यमसाहसोऽकामतस्तदितरतो निर्वास्यः। तस्य तृणमात्रं न ग्राह्यमित्याह **सपरिच्छद इति**॥ २४१॥

(५) **नन्दनः**। अथ महापातकिनामकृतप्रायश्चित्तानामङ्कितानामेव निमित्तविशेषं श्लोकद्वयेनाह **आगःसु ब्राह्मणस्यैव कार्य** इति। **आगःसु** पापेषु। अकामकृतविषयो मध्यमसाहसः, कामकृतविषयं विवासनमिति व्याख्यातमुत्तरश्लोकानुगुण्यात्॥ २४१॥

(६) **रामचन्द्रः**। **एषु आगस्सु** गुरुतल्पगाद्यपराधेषु **ब्राह्मणस्य मध्यमसाहसः दण्डः कार्यः**। **वा राष्ट्राद्वा विवास्यः** निष्कास्यः **सद्रव्यः सपरिच्छदः**॥ २४१॥

(७) **मणिरामः**। (पापम्) आगः दंडः उत्तमसाहसस्तु पूर्वोक्तो निर्गुणविषयः। अथ वा सद्रव्यो देशान्निष्कासनीयः। 'सकामनिष्कामत' इत्युत्तरश्लोके श्रूयमाणमत्राप्यन्वेति। तदपेक्षया विकल्पः॥ २४१॥

(८) **भारुचिः**। 'अकामत' इत्युत्तरश्लोके वक्ष्यति, तदिहापि विज्ञेयम्, एवं च सत्येतेष्वागस्सु ब्राह्मणो मध्यमसाहसं दण्ड्यः। कामं निर्वास्यो राष्ट्रात्। एवं निग्रहद्वयं विकल्पेनास्य स्यात्, वृत्तस्वाध्यायापेक्षया॥ २४१॥

**इतरे कृतवन्तस्तु पापान्येतान्यकामतः॥**
**सर्वस्वहारमर्हन्ति कामतस्तु प्रवासनम्॥ २४२॥**

(१) **मेधातिथिः**। **इतरे** क्षत्रियादयो वर्णा **एतानि पापानि** महापातकान्य**कामतो**ऽनिच्छया **कृतवन्तः** सर्वस्वहरणाः कार्याः। केचित्प्रायश्चित्तमपि कुर्वतामेतद्दण्डं पूर्वेण वैकल्पिकमिच्छन्ति। **कामत**स्तेषां वध उक्तः। शूद्रस्याकामतोऽङ्कनसर्वस्वहरणे। कामतो वधः॥ २४२॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **इतरे** क्षत्रादयः **अकामतः कृतवन्तः** प्रायश्चित्ताकरणे सर्वस्वहरणमात्रम्। **कामतः** कृते तूक्तप्रकारं **प्रवासन**मङ्कनादिसहितम्। एतच्चास्यारम्भविषयं, आरम्भमहत्त्वे तु हन्यादित्युक्तम्॥ २४२॥

(३) **कुल्लूकः**। ब्राह्मणादन्ये पुनः क्षत्रियादय एतानि **पापान्य**निच्छन्तः **कृतवन्तः सर्वस्वहरणमर्हन्ति**। इदं च सर्वस्वहरणं पूर्वोक्तेनोत्तमसाहसेन वृत्तापेक्षया व्यवस्थापनीयं, इच्छया पुनरेषामेतेष्वपराधेषु प्रवासनं वधोऽर्हति। **प्रवासनं** 'परासनं निषूदनं हिंसन'मिति वधपर्यायं 'प्रवासन'शब्दं पठन्त्याभिधानिकाः॥ २४२॥

(४) **राघवानन्दः**। क्षत्रियादीनान्त्वाह **इतर इति**। **एतानि** ब्रह्महत्यादीनि। **कृतवतां** सर्वस्वापहारं सर्वस्वहरणमिदमुत्तमसाहसेन सह विकल्पः। प्रवासनं परासनं निषूदनं निर्हिंसनमिति वधपर्याय इति केचित्—तन्न, राजकृतदण्डचिह्नस्यापि द्वादशवार्षिकादिव्रतोपदेशान्मरणे तदसंभवादेवंविधे धनहारः **प्रवासनं चेति**॥ २४२॥

(५) **नन्दनः**। **इतरे** क्षत्रियादयः ॥ २४२ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **इतरे** क्षत्रियादयः, **एतानि** पापानि **अकामतः** कृतवन्तः सर्वस्वहारं अर्हन्ति। **तु** पुनः **कामतः** प्रवासनं प्रवासनमेव मारणं **अर्हन्ति** ॥ २४२ ॥

(७) **मणिरामः**। इतरे क्षत्रियादयः ॥ २४२ ॥

(८) **भारुचिः**। अत्र प्रतिपत्तिविधौ कारणं वक्ति। यस्मात्–एतान्येव महापातकानि कृतवन्तः क्षत्रियादयोऽकामतः सर्वस्वहरणं कार्याः, पूर्वोक्तं चोत्तमसाहसं दण्ड्याः। एवं ब्राह्मणस्य प्रायश्चित्तमकुर्वतः अकामतो मध्यमसाहसो विकल्पः ॥ २४२ ॥

**नाददीत नृपः साधुर्महापातकिनो धनम् ॥**
**आददानस्तु तल्लोभात्तेन दोषेण लिप्यते ॥ २४३ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। "ननु धनेन दण्डनं राज्ञा वृत्तिरिति स्थापितम्। कथमिह तद्धनस्याग्रहणम्।" उक्तम्–'राजनिर्धूतदण्डा' (८।३१८) इत्यत्रान्तरे ॥ २४३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **धनं** दण्डरूपमपि ॥ २४३ ॥

(३) **कुल्लूकः**। धार्मिको राजा **महापातक**संबन्धिधनं दण्डरूपं न गृह्णीयात्। **लोभात्**पुनस्तद्गृह्णन्महापातक**दोषेण** संयुज्यते ॥ २४३ ॥

(४) **राघवानन्दः**। **साधू** राजा दण्डधनमेषां नात्मसात्कुर्यादित्याह **नेति**। **दोषेण** तत्तुल्यप्रायश्चित्तेन परलोकनाशेन वा लिप्यते संबध्यते। पापेनेति क्वचित्पाठः ॥ २४३ ॥

(५) **नन्दनः**। **धनं** दण्डरूपेण प्राप्तं **नाददीत** न स्वीकुर्यात् ॥ २४३ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। एवं विद्वान् अनुशासन्। **नेति**। **नृपः साधुर्यथा महापातकिनः** सकाशाद्धनं दण्डधनं **न आददीत** कोशे न प्रवेशयेत्। **तद्दण्डधनं लोभात् आददानः** ॥ २४३ ॥

(७) **मणिरामः**। **साधुः** धार्मिकः ॥ २४३ ॥

(८) **भारुचिः**। तस्मात्तद्धनं राज्ञा न ग्राह्यम्। किञ्चान्यत् ॥ २४३ ॥

**अप्सु प्रवेश्य तं दण्डं वरुणायोपपादयेत् ॥**
**श्रुतवृत्तोपपन्ने वा ब्राह्मणे प्रतिपादयेत् ॥ २४४ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। 'वरुणायेदम्'इति मनसा ध्यायन्**अप्सु** दद्यादप्सु निक्षिपेत्। **ब्राह्मणाय** वा विद्याशीलसंपन्नाय दद्यात् ॥ २४४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। उपपादयेत् दद्यात्। वृत्तमाचारः ॥ २४४ ॥

(३) **कुल्लूकः**। का तर्हि दत्तधनस्य प्रतिपत्तिरित्येतदर्थमाह **अप्स्विति**। तद्दण्डधनं नद्यादिजले **प्रक्षिपेद्वरुणाय दद्याच्छ्रुतवृत्तसंपन्नब्राह्मणाय** वा दद्यात् ॥ २४४ ॥

(४) **राघवानन्दः**। तर्हि तत्किं कार्यमित्याह **अप्स्विति** ॥ २४४ ॥

(५) **नन्दनः**। **तं दण्डं** दण्डधनम् ॥ २४४ ॥

(७) **मणिरामः**। तर्हि ततो गृहीतं दंडं किं कुर्यादत आह **अप्स्विति** ॥ २४४ ॥

**ईशो दण्डस्य वरुणो राज्ञां दण्डधरो हि सः ॥**
**ईशः सर्वस्य जगतो ब्राह्मणो वेदपारगः ॥ २४५ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। पूर्वस्य प्रतिपत्तिविधेरर्थवादोऽयम्। महापातकिनो दण्डस्य वरुण ईष्टे। यतो **राज्ञां स दण्डधरो** नेता, ईशितेति यावत्। एवं ब्राह्मणोऽपि तद्धनस्येशोऽनेन ग्राह्यः ॥ २४५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **राज्ञामपि दण्डधरः** शास्ता यतः ॥ २४५ ॥

(३) **कुल्लूकः**। महापातकिदण्डधनस्य **वरुणः** स्वामी यस्माद्राज्ञामपि दण्डधारित्वात्प्रभुः, तथा **ब्राह्मणः समस्तवेदाध्यायी सर्वस्य जगतः प्रभुः**। अतः प्रभुत्वात्तौ दण्डधनमर्हतः ॥ २४५ ॥

(४) **राघवानन्दः**। तद्धनस्य ब्राह्मणार्पणे व्रीहियववद्विकल्पद्योतकार्थवादमाह **ईश इति**। वस्तुतस्तु वरुणाय संकल्प्य विप्रायोपपादयेत्, अत एव तद्धनं स्वीकर्तुर्विप्रस्य प्रायश्चित्तमाह **याज्ञवल्क्यः** (प्राय० २५०) 'आदातुश्च विशुद्ध्यर्थमिष्टिर्वैश्वानरी स्मृते'ति ॥ २४५ ॥

(५) **नन्दनः**। अत्र कारणमाह **ईशो दण्डस्य वरुणो राज्ञामिति**, दण्डधरं इत्येतद्ब्राह्मणेऽपि योजनीयं, तस्मात्तद्धनं राज्ञा न स्वीकार्यं, तयोरन्यतरस्मै तद्देयमिति ॥ २४५ ॥

(७) **मणिरामः**। तत्र हेतुमाह **ईश इति** ॥ २४५ ॥

**यत्र वर्जयते राजा पापकृद्भ्यो धनागमम् ॥**
**तत्र कालेन जायन्ते मानवा दीर्घजीविनः ॥ २४६ ॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **कालेन** संपूर्णे गर्भे ॥ २४६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। **यत्र** देशे प्रकृतं महापातकिधनं राजा न गृह्णाति तत्र परिपूर्णेन **कालेन** मनुष्या उत्पद्यन्ते दीर्घायुषश्च भवन्ति। वैश्यानां च यथैव धान्यादिसस्यान्युप्तानि तथैव पृथक् पृथक् जायन्ते। अकाले न बाला म्रियन्ते। **दीर्घजीविन** इत्युक्तेऽप्यादरार्थं बालानां पुनर्वचनं व्यङ्ग्यं च न किंचिद्भूतमुत्पद्यते ॥ २४६-२४७ ॥

(४) **राघवानन्दः**। पापिनां धनस्य राज्ञामनात्मसात्करणे हेतुतयाऽर्थवादमाह **यत्रेति द्वाभ्याम्**। वर्जयते न गृह्णीयात्। **दीर्घजीविनः** शतोर्ध्वजीविनः ॥ २४६ ॥

(५) **नन्दनः**। दण्डधनवर्जने राज्ञः फलं श्लोकद्वयेनाह **यत्र वर्जयते राजेति**। **धनागमो** दण्डधनस्वीकारः ॥ २४६ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **पापकृद्भ्यः** सकाशात् **धनागमम्** यत् राजानं न वर्जयते ।। २४६ ।।

(७) **मणिरामः**। **पापकृद्भ्यः** महापातकिभ्यः। **कालेन** परिपूर्णेन **कालेन** दशमास-रूपेण ।। २४६ ।।

**निष्पद्यन्ते च सस्यानि यथोप्तानि विशां पृथक् ।।**
**बालाश्च न प्रमीयन्ते विकृतं न च जायते ।। २४७ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। प्रसिद्धाविमावप्यर्थवादश्लोकौ। **कालेन जायन्त** इति वर्तमान-जन्म विवक्षितम्। जातं जनिष्यमाणं च। **विकृतं** करचरणाक्षिविहीनम् ।। २४७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **बाला न (प्र)मीयन्त** इति दीर्घजीवित्वस्य सार्वत्रिकत्वमुक्तम्। बालपदं गर्भपरमित्यन्ये। विकृतं अन्धत्वपङ्गुत्वादि ।। २४७ ।।

(४) **राघवानन्दः**। **निष्पद्यन्ते** उत्पद्यन्ते। **विशां** वैश्यानाम्। **न प्रमीयन्ते** न म्रियन्ते। **विकृतं** 'अतिवृष्टिरनावृष्टिः शलभा मूषिकाः खगाः। प्रत्यासन्नाश्च राजानः षडेते ईतयः स्मृता' इति। ईतयो दुर्भिक्षादि वा ।। २४७ ।।

(५) **नन्दनः**। निष्पद्यन्ते फलन्ति ।। २४७ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **निरिति**। **तत्र** राज्ञे देशे **निष्पद्यन्ते** ।। २४७ ।।

(७) **मणिरामः**। तत्र दृष्टांतमाह **निष्पद्यंते इति**। वैश्यानां च यथा धान्या-न्युप्तानि काले भवंति तथा मानवा अपीति पूर्वत्र दृष्टांतः। तथा बालाश्च न प्रमीयंते, अकाले इत्यर्थः। तथा व्यंगं च न किंचित् भूतमुत्पद्यते ।। २४७ ।।

**ब्राह्मणान्बाधमानं तु कामादवरवर्णजम् ।।**
**हन्याच्चित्रैर्वधोपायैरुद्वेजनकरैर्नृपः ।। २४८ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **अवरवर्णजः** शूद्रः। **बाधमानं** धनाद्याहरणं शरीरोपपीडनं च। **चित्रा** विविधोपायाः शूलारोपणं, शिरश्छेदः, अंककल्पनं, खड्गप्रहारकर्तिका इत्याद्याः। **उद्वेजनकरैर्दीर्घकालपीडाकरैः** ।। २४८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **बाधमान**मत्यन्तदुःखोत्पादनेन। **अवरवर्णजं** शूद्रम्। **चित्रैर्नानाविधैर्हस्तपादच्छेदादिभिः** ।। २४८ ।।

(३) **कुल्लूकः**। शरीरपीडाधनग्रहणादिना शूद्रमिच्छातो ब्राह्मणान्बाधमानं छेदादिभि-रुद्वेगकरैर्वधोपायैर्नृपो हन्यात् ।। २४८ ।।

(४) **राघवानन्दः**। 'ईशः सर्वस्य जगत' (९।२४५) इत्यनेन ब्राह्मणानां श्रैष्ठ्यमुक्तम्। ते यैः शरीरधनादिभिः पीड्यन्ते ते हन्तव्या इत्याह **ब्राह्मणानिति**। **चित्रैर्वधोपायैः** तिलशो हस्तच्छेदादिभिः ।। २४८ ।।

(५) **नन्दनः**। दण्ड्यान्तरमाह **ब्राह्मणान्बाधमानन्त्विति**। अवरवर्णजं शूद्रम् ।। २४८ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। ब्राह्मणान् बाधमानं बाध्यमानं नृप उद्वेजनकरैः वधोपायैः मुण्डनादिभिः उपायैः हन्यात् ताडयेत् 'हन हिंसागत्यो'रित्यस्य धातो रूपं। अवरवर्णजं क्षत्रियादिवर्णजं चित्रैः विविधोपायैर्हन्यात् करचरणच्छेदनादिभिः उपायैः नृपः हन्यात् ॥ २४८ ॥

(७) **मणिरामः**। अवरवर्णजं शूद्रं। चित्रैः छेदनादिभिः ॥ २४८ ॥

(९) **भारुचिः**। दण्डविनियोगस्तुतिश्लोकौ ॥ २४८ ॥

**यावानवध्यस्य वधे तावान्वध्यस्य मोक्षणे ॥**
**अधर्मो नृपतेर्दृष्टो धर्मस्तु विनियच्छतः ॥ २४९ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **अवध्यवधे** यो दोषस्तत्तुल्यो **वध्यमोक्षणे** राज्ञ उपर्युक्तेषु। अर्थभागहरस्य धर्मानकुर्वतः प्रत्यवायेन [illegible] भवितव्यम्। कुर्वतस्तु न कदाचिददृष्टसिद्धिः। यस्त्वयं **धर्मस्तु विनियच्छत** इति एवमादिधर्मप्रवादः, सर्वोऽसौ स्वकर्मानुष्ठानानुशंसार्थोऽर्थवादः। निग्रहोपसंहारार्थस्त्वयं वधोपदेशः। अतो यथाश्रुति चित्रवधोपायैः कर्तव्यः। दृष्टार्थेषु राज्यतन्त्रसिद्धचर्थमुपदेशेषु प्रवचनं, यथा दृप्तं योधांश्च हन्यादित्युक्तम्। तत्र दृष्टप्रयोजनत्वादुपदेशस्य, न नियतो वधः। एवं च सत्युपायांतरेणापि बन्धनादिना 'विनियच्छतो' न दोषः ॥ २४९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **विनियच्छतो** दण्डयतो दण्डचम् ॥ २४९ ॥

(३) **कुल्लूकः**। **अवध्यस्य वधे यावानधर्मो नृपतेः** शास्त्रेण ज्ञातस्तावानेव **वध्यस्य** त्यागेऽपि, यथाशास्त्रं दण्डं तु कुर्वतो **धर्मः** स्यात्तस्मात्तं कुर्यात् ॥ २४९ ॥

(४) **राघवानन्दः**। वध्यस्यावधे दोषं सदृष्टान्तं कथयंस्तत्र यत्नमाधत्ते **यावानिति। यावान्** दृष्टादृष्टरूपः। **दृष्टः** श्रुत्यादिभिः **प्रमीतो वध्यस्य** वधार्हस्य **रक्षणे। विनियच्छतः** यथाशास्त्रं दण्डयतः धर्मस्तावान् दृष्ट इत्यन्वयः ॥ २४९ ॥

(५) **नन्दनः**। दण्डस्योपेक्षणे दोषगौरवमाह **यावानवध्यस्य वध इति। अवध्यस्य** ब्राह्मणस्य यावा(न) धर्मः। **विनियच्छतो** दण्डयतः ॥ २४९ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **नृपतेः** यावानवध्यस्य वधेऽधर्मो **दृष्टस्तावान्वध्यस्य** वधार्हस्य **मोक्षणे अधर्मो दृष्टः**। तु पुनः **विनियच्छतः** विनयं कुर्वतः ॥ २४९ ॥

(७) **मणिरामः**। विनियच्छतः यथाशास्त्रं दंडं कुर्वतः धर्मः स्यात् तस्माद्दण्डं कुर्यात् ॥ २४९ ॥

(९) **भारुचिः**। युक्तश्च तद्रक्षणादधिकृतस्य राज्ञो वध्यमोक्षणे प्रत्यवायः। विशेषेण तु बलिषड्भागहारिणः शास्त्रप्रत्यवायाद्दोषनिर्हरणस्य यथाश्रुतैरेवोपायैर्दोषनिर्हरणं युक्तं प्रायश्चित्तवत्। तथा च शास्त्रलक्षणैव धर्माधर्मव्यवस्थेत्युक्तम्, एवं च तदुत्पत्तिप्रामाण्यवत् पापक्षयेऽस्य प्रामाण्यं स्यात्। अदृष्टार्थेषु तावदेवं, दृष्टार्थेषु तु राज्यतन्त्रसिद्धचर्थं उपदेशे यद्वधश्रवणं, यथा द्विट्सेविनश्च हन्यादित्युक्तं तत्रा... योजनार्थत्वादुपदेशस्य न नियतो वधः। एवं च सत्युपायान्तरेणापि बन्धनादिना नियच्छतो न दोषः ॥ २४९ ॥

**उदितोऽयं विस्तरशो मिथो विवदमानयोः ॥**
**अष्टादशसु मार्गेषु व्यवहारस्य निर्णयः ॥ २५० ॥**

(१) **मेधातिथिः** । सर्वव्यवहारोपसंहारार्थः श्लोकः ॥ २५० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । विवादमुपसंहरति **उदित इति** ॥ २५० ॥

(३) **कुल्लूकः** । अष्टादशऋणादानादिषु व्यवहारपदेषु परस्परं विवदमानयोरर्थि-प्रत्यर्थिनोः कार्यनिर्णयोऽयं विस्तरेणोक्तः ॥ २५० ॥

(४) **राघवानन्दः** । अष्टादशव्यवहारानुपसंहरन् राजधर्मस्य परिशिष्टानाह **उदित इति** । उदितोऽष्टमाध्यायमारभ्य **विनियच्छत** इत्यन्तैः । विवदमानयोरित्युपलक्षणव्यवहार-मात्रस्य द्विन्निसाध्यत्वात् मार्गेषु अतो वान्वेषणीयविषयेषु ॥ २५० ॥

(५) **नन्दनः** । **उदितोऽयं विस्तरश इति** ॥ २५० ॥

(६) **रामचन्द्रः** । **विस्तरशः** विस्तरः ॥ २५० ॥

(७) **मणिरामः** । **अष्टादशसु मार्गेषु** ऋणादानादिषु व्यवहारपदेषु ॥ २५० ॥

(९) **भारुचिः** । सर्वव्यवहारोपसंहारार्थः श्लोकः ॥ २५० ॥

**एवं धर्म्याणि कार्याणि सम्यक्कुर्वन्महीपतिः ॥**
**देशानलब्धाँल्लिप्सेत लब्धांश्च परिपालयेत् ॥२५१॥**

(१) **मेधातिथिः** । **अलब्धाँल्लिप्सेतेति** । संतोषपरेण न भवितव्यमित्यर्थः ॥ २५१ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । राजकृत्यशेषमाह **एवमिति** ॥ २५१ ॥

(३) **कुल्लूकः** । अनेनोक्तप्रकारेण धर्मादनपेतान्व्यवहारान्निर्णयन् राजा जनानुरागाद-**लब्धान् देशांल्लब्धुमिच्छेत्, लब्धांश्च** सम्यक्**पालयेदेवं** सम्यग्व्यवहारदर्शनस्यालब्धप्रदेशप्राप्त्य-र्थत्वमुक्तम् ॥ २५१ ॥

(४) **राघवानन्दः** । महीपतित्वं द्योतयति **देशानिति** ॥ २५१ ॥

(५) **नन्दनः** । **कुर्वल्लिप्सेत** नाकुर्वन् ॥ २५१ ॥

(६) **रामचन्द्रः** । **अलब्धान्** अमात्यान् **लिप्सेत** ॥ २५१ ॥

(७) **मणिरामः** । अलब्धान् देशान् लिप्सेत लब्धुं इच्छेत् ॥ २५१ ॥

(९) **भारुचिः** । येन चोपायेन ..... राज्ञो भवति स इदानीमुच्यते । एवमर्थश्च पूर्व उपसंहारो विज्ञेयः ॥ २५१ ॥

**सम्यङ्निविष्टदेशस्तु कृतदुर्गश्च शास्त्रतः ।**
**कण्टकोद्धरणे नित्यमातिष्ठेद्यत्नमुत्तमम् ।। २५२ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । देशनिवेशो दुर्गकरणं यत्सप्तमाध्याये उक्तं तत्कृत्वा **कण्टकोद्धरणम्** । तेनापि राष्ट्ररक्षा क्रियते । कण्टकशब्दः पीडाहेतुसामान्यात्तस्करादिषु प्रयुक्तः ।। २५२ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । **निविष्टदेशो** जनाध्युषितदेशः । **शास्त्रतः** शास्त्रोक्तविधिना **कण्टकानां** क्षुद्रशत्रूणां तस्करादीनामुद्धरणे ।। २५२ ।।

(३) **कुल्लूकः** । 'जाङ्गलं सस्यसंपन्न' (७-६९) मित्युक्तरीत्या सम्यगाश्रितदेशस्तत्र सप्तमाध्यायोक्तप्रकारेण कृतदुर्गश्चौरसाहसिकादिकण्टकनिराकरणे प्रकृष्टयत्नः सदा **कुर्यात्** ।। २५२ ।।

(४) **राघवानन्दः** । 'जाङ्गलं सस्यसंपन्न'मित्याद्युक्तरीत्या सम्यङ्निविष्टदेशः 'धन्वदुर्ग'मित्यादिशास्त्रतः शास्त्रानुसारेण कृतदुर्गश्च कण्टकद्यूतसुवर्णकारादयस्तेषामुद्धरणमुन्मूलनं तत्र यत्नमातिष्ठेदित्यन्वयः ।। २५२ ।।

(५) **नन्दनः** । अथ कण्टकशोधनमाह **सम्यङ्निविष्टदेशस्त्विति** । सतां बाधकाः **कण्टकाः** । **उद्धरणं** निराकरणम् ।। २५२ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । सम्यक्प्रकारेण निविष्टदेशस्तु स्वस्य देशः कण्टकस्य उद्धरणे नित्यमुत्तमं यत्नं आतिष्ठेत् ।। २५२ ।।

(७) **मणिरामः** । कंटकोद्धरणे चौरसाहसिकादिनिराकरणे ।। २५२–२५३ ।।

(९) **भारुचिः** । अस्य प्रशंसार्थवादः फलविधिरूपः ।। २५२ ।।

**रक्षणादार्यवृत्तानां कण्टकानां च शोधनात् ।।**
**नरेन्द्रास्त्रिदिवं यान्ति प्रजापालनतत्पराः ।। २५३ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । एतदेव दर्शयति—**आर्य**शास्त्रेणोदितं कर्तव्यमितरानुष्ठाननिषेधः; **तद्वृत्तं** येषामित्युत्तरपदलोपी समासः । तेन दीनानाथश्रोत्रिया अकरशुल्कदा गृह्यन्ते । तद्रक्षणाद्धि त्रिदिवगमनं युक्तम् । अन्येषां तु वृत्तिपरिक्रीतत्वादकरणे प्रत्यवायः, यथोत्तरत्र (९।२५४) वक्ष्यते "स्वर्गाच्च परिहीयत" इति । रक्षानुवृत्तिनिष्क्रयणेन प्रत्यवायाभावमात्रं न तु स्वर्गः । अथवा वृत्तिनियमापेक्षं त्रिदिवप्राप्तिवचनं यथोक्तं प्राक् । अन्येषां तु वृत्तिपरिक्रीतत्वादर्शनम् । अर्थवादमात्रं राज्ञः स्वर्गवचनम् । अवृत्तिदपरिपालनमपि वृत्तिप्रयुक्तं स्वराज्यभागस्थानीयस्य तद्राज्ञः । यथैव च 'शिल्पजीविनः शिल्पिनो मासि मास्येकैकं काम्यं कुर्यु'रिति वृत्त्यर्थे शिल्पं कुर्वाणा राज्ञा कर्म कार्यन्ते करग्रहणाय, एवं राजापि वृत्तियुक्तः प्रजापालनप्रवृत्तो नित्यकर्मवदार्यपरिपालनं कार्यते शास्त्रेण । यथैव हि कामश्रुतितोऽन्याहितो नित्याननुतिष्ठति, न स्वर्गादिलाभाय, न तानि फलार्थतया नोदितानि, अथ च क्रियन्ते; तद्वदेतद्द्रष्टव्यम् । अतो यावती काचित्फलश्रुतिः सा सर्वाऽर्थवाद इति **कोवरविष्णुस्वामी** । यदत्र तत्त्वं तद्दर्शितमधस्तात् ।। २५३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **शोधनादनुसंधानात्** ॥ २५३ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यस्मात्साध्वाचाराणां रक्षणाच्चोरादीनां च शासनात्प्रजापालनोद्युक्ता राजानः स्वर्गं गच्छन्ति, तस्मात्कण्टकोद्धरणे यत्नं कुर्यात् ॥ २५३ ॥

(४) **राघवानन्दः**। तेन किं तत्राह **रक्षणादिति**। **आर्यवृत्तानां** सदनुष्ठिताचाराणां **रक्षणाद्व्रत**भूमिदानादिना। **कण्टकादीनां** चोरादीनां **शोधनान्निरसनात्ताभ्यां** यः पुण्यराशिस्तेन **दिवं स्वर्गं यान्ति** ॥ २५३ ॥

(५) **नन्दनः**। अत्र फलमाह **रक्षणादार्यवृत्तानामिति** ॥ २५३ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **आर्यवृत्तानां** साधूनाम् ॥ २५३ ॥

(९) **भारुचिः**। तत्परा उभयानुग्रहाद्युक्तं राज्ञां त्रिदिवगमनं रक्षतः, अतः संरक्षणनियमधर्मापेक्षमपि चैतद्युक्तमेवं च वक्तुं रक्षणीया वृत्तिसंरक्षणाच्च। न चासति फलसम्बन्धे इयती स्तुतिरुपपद्यते शास्त्रलक्षणत्वाच्च धर्माधर्मयोः उत्पत्तिवत्फलारम्भोऽपि फला(च्छो)च्छूद्रधनीयः। यतश्चैतदेवमतः ॥ २५३–२५४ ॥

**अशासंस्तस्करान्यस्तु बलिं गृह्णाति पार्थिवः ॥**
**तस्य प्रक्षुभ्यते राष्ट्रं स्वर्गाच्च परिहीयते ॥ २५४ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। 'शासनं' यथाशास्त्रं वधादिदण्डमन्तरेण तस्कराणां निग्रहं रक्षा न शक्यते। अतो वृत्तिं गृहीत्वा यस्तस्करवधाज्जुगुप्सते तस्योभयो दोषः। इह राष्ट्रकृतोऽमुत्र स्वर्गपरिहानिः। युक्ता च बलिपरिगृहीतस्य तन्निष्कृतिमकुर्वतो दोषवत्ता ॥ २५४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **प्रक्षुभ्यते** द्वेषवद्भवति ॥ २५४ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यथा पुनर्नृपतिश्चौरादीननिराकुर्वन्षड्भागाद्युक्तं करं गृह्णाति तस्मै राष्ट्रवासिनो जनाः कुप्यन्ति। कर्मान्तरार्जिताप्यस्य स्वर्गप्राप्तिरनेन दुष्कृतेन प्रतिबध्यते ॥ २५४ ॥

(४) **राघवानन्दः**। अन्येषां प्रजानां पालनेन सतः उक्ताकरेण दोषमाह **अशेति**। **अशासन्** निगृह्णन्। बलिकरशुल्कादि। परिहीयते नृपतिः पापप्रतिबन्धात् ॥ २५४ ॥

(५) **नन्दनः**। विपर्यये दोषमाह **अशासंस्तस्करान्यस्त्विति** ॥ २५४ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **अशासन्** अरक्षन् ॥ २५४ ॥

(७) **मणिरामः**। अशासन् अनिशं कुर्वन् ॥ २५४ ॥

**निर्भयं तु भवेद्यस्य राष्ट्रं बाहुबलाश्रितम् ॥**
**तस्य तद्वर्धते नित्यं सिच्यमान इव द्रुमः ॥ २५५ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। प्रसिद्धमेवैतच्छ्लोके तस्करधर्मविशेषतयाऽनूद्यते ॥ २५५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **निर्भयं** कण्टकभयशून्यम् ॥ २५५ ॥

(३) **कुल्लूकः**। **यस्य** राज्ञो बाहुवीर्याश्रयेण **राष्ट्रं** चौरादि**भय**रहितं भवति तस्य नित्यं तद्वृद्धिं गच्छति उदकसेकेनेव वृक्षः ॥ २५५ ॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच, **निरिति**। राष्ट्रं राष्ट्रस्थाः प्रजाः **यस्य बाहुबलाश्रितं** सदित्यन्वयः ॥ २५५ ॥

(५) **नन्दनः**। कण्टकशोधने दृष्टफलं भूयिष्ठमित्याह **निर्भयं यस्य वसतीति**। **वसति** जीवति ॥ २५५ ॥

(७) **मणिरामः**। तत् राष्ट्रं ॥ २५५–२५६ ॥

**द्विविधांस्तस्करान्विद्यात्परद्रव्यापहारकान् ॥**
**प्रकाशांश्चाप्रकाशांश्च चारचक्षुर्महीपतिः ॥ २५६ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। चाराः प्रच्छन्ना राष्ट्रे राजकृत्यज्ञानिनः। ते चक्षुषी इव यस्य स **चारचक्षुः**। प्रकाशस्तस्कराणां नातितस्करव्यवहारो यथा लोकेऽन्येषामटवीरात्रिचराणाम्। आप्तस्तैः सामान्योपादानं तद्वन्निग्रहार्थे क्रियते ॥ २५६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **परद्रव्यापहारिणस्तस्करांस्तस्करसंज्ञान्** ॥ २५६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। **चार** एव चोरज्ञानहेतुत्वा**च्चक्षुरिव** यस्यासौ राजा चारैरेव प्रकटतया गूढतया द्विप्रकारान्न्यायेन परधनग्राहिणो जानीयात् ॥ २५६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। पालनेन जलस्थानीयेन सिच्यमानमिव **प्रकाशवंचकाः**। समक्षं द्रव्यान्तरं मिश्रीकृत्य दुग्धघृततैलादिव्यवहारिणः। **अप्रकाशान्** इत्यस्य व्याख्या ॥ २५६ ॥

(५) **नन्दनः**। के पुनः कण्टकास्तानाह **द्विविधांस्तस्करानिति**। **चारचक्षुषा** जानीयात् ॥ २५६ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। तद्विधान् प्रकाशान् वणिक्प्रभृतीन् राजा विद्यात् ॥ २५६ ॥

**प्रकाशवंचकास्तेषां नानापण्योपजीविनः ॥**
**प्रच्छन्नवञ्चकास्त्वेते ये स्तेनाटविकादयः ॥ २५७ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। तत्र ये क्रेयार्थं मानतुलाविशेषेण मुष्णन्ति द्रव्याणामागमस्थान-निर्गमनापेक्षार्थं कुर्वन्ति ते **प्रकाशवंचका** वाणिजकाः।

**प्रच्छन्नास्तु** ये रात्रेरनुहरन्ति ते। **स्तेना आटविका** विजने प्रदेशे वसन्ति। अपरे तु प्रसह्य हारिणो न केवलमेत एव, किं तर्हीमे चान्ये यानू(नित ऊ ?) र्ध्वं वक्ष्यामः ॥ २५७ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। नानापण्योपजीविनो मूल्यादिवञ्चनेन वञ्चका हेमकारादयः। तथोत्कोचिकादयो वक्ष्यमाणस्तेनाः संध्यादिकर्तारः। अटव्या आटविकाः अटव्यां गहनादौ द्रव्यापहर्तारः ॥ २५७ ॥

(३) **कुल्लूकः**। तेषां पुनश्चौरादीनां मध्याद्ये तुलाप्रतिमानोपचयापचयादिना हिरण्यादिपण्यविक्रयिणः। परधनमनुचितेन गृह्णन्ति ते प्रकाशवंचकाः स्तेनाश्चौराः सद्भिच्छेदादिना गुप्ताऽटव्याश्रयाश्च परधनं गृह्णन्ति ते प्रच्छन्नवंचकाः ॥ २५७ ॥

(४) **राघवानन्दः**। **प्रच्छन्नवञ्चका इति। स्तेना आटविकादय इति।** स्तेनाः चोराः। अटव्यां चरतीत्याटविको दस्युस्तदादयः। सन्धिरार्षः। क्वचित् स्तेना आटविकादय इति पाठः ॥ २५७ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। ये स्तेना आटविकादयः अटवीं भ्रमन्तीत्यर्थः ॥ २५७ ॥

(७) **मणिरामः**। तस्करादीनां द्वैविध्यलक्षणमाह **प्रकाशेति**। तेषां चौरादीनां मध्यात् ये नानापण्योपजीविनः हिरण्यादिपण्यविक्रयिणः परधनमनुचितेन गृह्णंति ते प्रकाशवंचकाः स्तेनाः। ये स्तेनाऽऽटविकाः गुप्ताऽटव्याश्रयाः संतः परधनं गृह्णंति ते प्रच्छन्नवंचकाः ॥ २५७ ॥

(९) **भारुचिः**। जनास्तत्र ये क्रये विक्रये मानतुलादिविशेषणं, मुष्णन्ति, द्रव्याणामागमस्थाननिर्गमाननवेक्ष्य ते प्रकाशवञ्चकाः। प्रच्छन्नास्तु रात्रिसन्नास्तस्करा इत्यर्थः। न च केवलमेत एव। किं तर्हि? इमे चान्ये यानित ऊर्ध्वं वक्ष्यामः आदरार्थं चायमुपदेशः आदावेषां विज्ञेयम् ॥ २५७ ॥

**उत्कोचकाश्चौपधिका वञ्चकाः कितवास्तथा ॥**
**मङ्गलादेशवृत्ताश्च भद्राश्चेक्षणिकैः सह ॥ २५८ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **उत्कोचका** ये कस्यचित्कार्येण कस्यचिद्राजामात्यादेः प्रवृत्ता ग्रहणातिकार्यसिद्धौ प्रवर्तन्ते। **औपधिकाः** छद्मव्यवहारिणः। अन्यद्ब्रुवन्त्यन्यदाचरन्ति। प्रत्यक्षं प्रीतिं दर्शयित्वा हठोपकारे वर्तन्ते। विनाप्यर्थग्रहणेन निमित्तान्तरतः अन्यतोऽपरस्य कार्यसिद्धिमवश्यं विज्ञाय 'मया तवैतत्क्रियत' इति परं गृह्णन्ति। भीषिकाप्रदर्शनं वा 'उपधिः'। **कितवा** धनग्रहणवञ्चका विप्रलम्भकाः। 'इदं कार्यं वयमेव करिष्यामस्तव नान्यत्रोद्यथा' इत्युक्त्वा न कुर्वते। उपेत्य नानाकारिणो नानाविधैरुपायैर्ग्रामीणान्मुष्णन्ति। शिवमाधवादयः शिवमादित्यं जीवन्ति। **मङ्गलादेशवृत्ता** ये ह्युपदेशिका ज्योतिषिकादयः। अथवा 'एतां देवतां त्वदर्थेनाहं प्रीणयामि दुर्गां मार्तण्डं चेति' तथाऽऽढ्यानां धनमुपजीवन्ति। अथवा मङ्गलं 'तथाऽस्त्विति' वादिनः, **'मङ्गलादेशवृत्ताः**। सर्वस्य करवर्धने **भद्रप्रेक्षणिकाः** प्रशंसिपुरुषलक्षणाः ॥ २५८ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **उत्कोचका** उत्कोचग्राहिणः। **औपधिकाः** स्तुत्यादिकृतेनोपधेन छलेन गृह्णन्तः। वञ्चकवेषान्तरेण भ्रममुत्पाद्य दातारः। **कितवा** द्यूतकृतः। **मङ्गलादेशो** मङ्गलस्तुतिपाठः **वृत्तं** चरितं येषाम्। **भद्रा** स्वरूपतामात्मनो विधाय स्त्र्यादिव्यामोहकाः। ईक्षणिकाः प्रेक्षणीयकर्तारो नटादयः ॥ २५८ ॥

(३) **कुल्लूकः**। किंच, **उत्कोचका इति**। **असम्यगिति**। **उत्कोचका ये** कार्यिभ्यो धनं गृहीत्वा कार्यमयुक्तं कुर्वन्ति। औपधिका भयदर्शनाद्ये धनमुपजीवन्ति। वञ्चका ये सुवर्णादि द्रव्यं गृहीत्वा अपद्रव्यप्रक्षेपेण वञ्चयन्ति। कितवा द्यूतसमाह्वयदेविनः। धनपुत्रलाभादिमङ्गलमादिश्य ये वर्तन्ते ते मङ्गलादेशवृत्ताः भद्राः कल्याणाकार-प्रच्छन्नपापा ये धनग्राहिणः। ईक्षणिका हस्तरेखाद्यवलोकनेन शुभाशुभफलकथनजीविनः **महामात्रा** हस्तिशिक्षाजीविनः। **चिकित्सकाः** चिकित्साजीविनः, **असम्यक्कारिण इति** महामात्रचिकित्सकविशेषणं, शिल्पोपचारयुक्ताश्चित्रलेखाद्युपायजीविनस्तेऽप्यनुपजीव्यमान-शिल्पोपायप्रोत्साहनेन धनं गृह्णन्ति। **पण्यस्त्रियश्च** परवशीकरणकुशला इत्येवमादीन्प्रकाशं **लोकवंचकान् चारैर्जानीयात्**। **अन्यानपि प्रच्छन्नचारिणः** शूद्रादीन्ब्राह्मणादिवेषधारिणो धनग्राहिणो जानीयात् ॥ २५८ – २६० ॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच **एतेऽतिप्रकाशवञ्चका** इत्याह **उदिति** द्वाभ्याम्। **उत्कोचकाः** कार्यिभ्यो धनं गृहीत्वाऽयुक्तकारिणः। औपधिका उपधिर्भयादिप्रदर्शनं तेनोपजीविनः। वञ्चकाः रसविद्धताम्रादि रजतादिरूपेण दर्शयित्वा सुवर्णादिकं ये गृह्णन्ति ते। **कितवाः** ये द्यूतसमाह्वयदेविनः। **मङ्गलादेशवृत्ताः** धनपुत्रादिलाभं सूचयन्तो धनग्राहिणः। **भद्राः** धनार्थं कल्याणाचरणेन **प्रच्छन्नपापाः**। **ईक्षणिका** हस्तादिरेखाद्यवलोकनेन शुभाशुभफल-शंसिनः ॥ २५८ ॥

(५) **नन्दनः**। **उत्कोचका** उत्कोचकजीविनः। **औपधिकाः** कूटतुलामानजीविनः। **वञ्चकाः** मायिनः। मङ्गलादेशवृत्तयो मङ्गलोपदेशपराः भद्रा भद्रवेषधारिणः शुभाशुभत्वेक्षणेन ये जीवन्ति त ऐक्षणिकाः ॥ २५८ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **उत्कोचकाः** भयादिप्रदर्शनेन धनोपजीवकाः। **आकरे** (?) ग्राहकाः **औपधिकाः तुलादिकृतेनोपधिना** छलेन गृह्णन्तः। **वंचकाः** भ्रममुत्पाद्य गृह्णन्तः। **कितवा** द्यूतदेविनः **मङ्गलादेशवृत्ताश्च** मङ्गलोपदेशकाः। **भद्राः कल्याणाकाराः**। **प्रच्छन्नपापाः**। **प्रेक्षणिकैः** हस्तादिप्रेक्षकैः ॥ २५८ ॥

(७) **मणिरामः**। किंच उत्कोचकाः मिथ्यावादिभ्यो धनं गृहीत्वा अन्यथाकार्य-करास्ते। औपधिकाः भयमुत्पाद्य धनग्राहकाः। वंचकाः उत्तमसुवर्णादि गृहीत्वा निकृष्ट-प्रक्षेपेण वंचयंति ते। कितवाः द्यूतसमाह्वयदेविनः। मंगलादेशवृत्ताः धनपुत्रलाभादिमंगल-मादिश्य ये धनं गृह्णंति ते भद्राः कल्याणाऽऽकारा भूत्वा प्रच्छन्नपापैर्ये धनग्राहिणः ते ईक्षणिकाः हस्तरेखाद्यवलोकनेन शुभाशुभफलकथनजीविनः ॥ २५८ ॥

**असम्यक्कारिणश्चैव महामात्राश्चिकित्सकाः ॥**
**शिल्पोपचारयुक्ताश्च निपुणाः पण्ययोषितः ॥ २५९ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **महामात्रा** मन्त्रिपुरोहितादयो राजनिकटिकाः। ते **चेदसम्यक्का-रिणः**। **चिकित्सका** वैद्याः। **शिल्पोपचारयुक्ताः** चित्रपत्रच्छेदरूपकारादयः। 'उपचार'

उपायनमनुपयुज्यमानं स्वशिल्पकौशलं दर्शयित्वाऽनुष्ठाय धनं नयन्ति। एवं **पण्ययोषितो निपुणाश्चोपचारेणासत्प्रीतिदर्शनेन। असम्यक्कारिण** इति सर्वत्रानुयुज्यते ॥ २५९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। महामात्राः** अमात्याः राज्ञः तथा **चिकित्सकाः** भिषजः। **असम्यक्कारिणोऽनुक्तकारिणः। शिल्पे युक्ताश्चित्रकारादयः। उपचारयुक्ताः** केशादिसंस्कर्तारः। **निपुणाः** स्वस्ववृत्तिकुशलाः। **पण्ययोषितो** वेश्याः ॥ २५९ ॥

(४) **राघवानन्दः। महामात्रा** हस्तिशिक्षाजीविनः। महामात्र**चिकित्सकयोर्विशेषणमसम्यक्कारिण इति।** ते हि गजादे रोगादिमन्त्रादिना संपाद्याऽसाध्यमित्याख्याप्य पुनः साधयन्ति। शिल्पोपचारयुक्ताः विचित्रपत्रच्छेदादिनिपुणास्तेनैव बालान्प्रोत्साहयन्तो धनं गृह्णन्ति। पण्ययोषितः स्तनजघनादिचालनेन काममुद्भाव्य पुंवशीकरणकुशलाः दूत्यो वेश्या वा ॥ २५९ ॥

(५) **नन्दनः। असम्यक्कारिण इति महामात्राणां चिकित्सकानां** च विशेषणं। **शिल्पोपचारयुक्ताः** छत्रतालवृन्ताद्युपचारकारिणः ॥ २५९ ॥

(६) **रामचन्द्रः। महामात्राः** हस्तिशिक्षकाः। **वैद्याः। निपुणाः** परपुरुषवशीकरणकुशलाः। **पण्ययोषितः** पण्यस्त्रीगृहं ॥ २५९ ॥

(७) **मणिरामः।** महामात्राः हस्तिशिक्षाजीविनः। असम्यक्कारिणः। चिकित्सकाः वैद्याः। शिल्पयुक्ताः उपचारयुक्ताश्च चित्रछेदाद्युपजीविनः ॥ २५९ ॥

**एवमाद्यान्विजानीयात्प्रकाशांल्लोककण्टकान् ॥**
**निगूढचारिणश्चान्यानना र्यानार्यलिङ्गिनः ॥ २६० ॥**

(१) **मेधातिथिः। एवमाद्यान्** न शक्यन्ते धूर्तानां परद्रव्यापहाराणां प्रकारान्संख्यातुमित्याद्यग्रहणम्। तथा ह्यशक्यां कथयन्ति अवधारयन्तीमनुरागिणीम्। तथाऽभृत्यो भृत्यवदात्मानं दर्शयित्वा नयति। हिरण्यमृजुप्रकृतेः न चार्थभूतस्त्वं ब्रह्मा त्वं बृहस्पतिरित्युक्त्वा मूर्खाढ्यान्नयन्ति' 'देहि प्रसादेन कतिपयैर्वाऽहोभिः प्रत्यर्पयामीति' सिद्धे प्रयोजने तनुतरो भवति प्रियवाद्यप्रियवादी संपद्यते ॥ २६० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। विजानीयात्** किमन्याय्यं कुर्वन्तीति। प्रकाशान् धनिनः। समक्षं ग्रहीतॄन्। **निगूढकारिणो** निह्नवेनाहर्तॄन्। **आर्यलिङ्गिनो** ब्रह्मचर्यादिवेषान् ॥ २६० ॥

(४) **राघवानन्दः। लोककण्टकान्** कण्टकवद्दुःखहेतून्। **आर्यलिङ्गिनः** संन्यासादिवेषधारिणः ॥ २६० ॥

(६) **रामचन्द्रः। अनार्यान्** आर्यलिङ्गिनः **विजानीयात्** ॥ २६० ॥

(७) **मणिरामः।** एवमादीन् प्रकाशलोककंटकान् वंचकान् चौरैर्जानीयात्। अन्यानपि निगूढचारिणः शूद्रादीन् अनार्यलिंगिनः ब्राह्मणादिवेषधारिणः धनग्राहिणो जानीयात् ॥ २६० ॥

**तान्विदित्वा सुचरितैर्गूढैस्तत्कर्मकारिभिः ॥**
**चारैश्चानेकसंस्थानैः प्रोत्साह्य वशमानयेत् ॥ २६१ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **निगूढचारिणः तुल्यकर्मकारिभि**र्विद्यात्। पूर्वं ये तत्कर्म कृतवन्तः। अथवा संप्रत्येव तत्कर्म कार्यन्ते अन्तर्भावसिद्धार्थं लब्धान्तरा आगत्य कथयिष्यन्ति तथाद्यैरपि **चारैस्तत्कर्मकारिभिरनेकसंस्थानैः** ॥ २६१ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। सुचरितैः सम्यक्चरद्भिः **तत्कर्मकारिभि**श्चोरत्वेन तेष्वात्मानं प्रकाशयद्भिः **गूढैश्चारैरनेकसंस्थानै**रनेकवेशैः **प्रोत्साह्य** चौर्यादिकरणे प्रवर्त्य **वशमानयेत्** गृह्णीयात् ॥ २६१ ॥

(३) **कुल्लूकः**। तानुक्तान्वञ्चकान्सभ्यैः प्रच्छन्नैस्तत्कर्मकारिभिर्वणिजांस्तेये वणिग्भिरित्येवमादिभिः पुरुषैरेतद्व्यतिरिक्तैः सप्तमाध्यायोपदिष्टकापटिकादिभिश्चारैरनेकस्थानस्थैर्ज्ञात्वा प्रोत्साह्य स्ववशान्कुर्यात् ॥ २६१ ॥

(४) **राघवानन्दः**। **अनेकसंस्थानैः** सप्तमाध्यायोक्तकापटिकादिभिः। प्रोत्साह्य उत्साहं जनयित्वा। एषा वृत्तिस्त्याज्या, कृषिवाणिज्यादिना धनोपार्जनं कुरुध्वमिति धनलोभेन सद्वृत्तिं **नये**दिति भावः ॥ २६१ ॥

(५) **नन्दनः**। **अनेकसंस्थानै**र्नानावेषैः ॥ २६१ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **तानिति**। **अनेकसंस्थानैः** नामरूपैः ॥ २६१ ॥

(७) **मणिरामः**। तान् उक्तान्वंचकान् गूढैः सत्कर्मकारिभिः वणिगादीन् वणिगादिभ्य एव अनेकसंस्थानैः चारैश्च सप्तमाध्यायोक्तकापटिकादिभिः। अनेकसंस्थानस्थैर्गत्वा प्रोत्साह्य स्ववशमानयेत् ॥ २६१ ॥

(९) **भारुचिः**। चारचक्षुभिः पार्थिवैः परद्रव्यान्निवृत्तं तस्कर्यं विज्ञेयम् ॥ २६१ ॥

**तेषां दोषानभिख्याप्य स्वे स्वे कर्मणि तत्त्वतः ॥**
**कुर्वीत शासनं राजा सम्यक् सारापराधतः ॥ २६२ ॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **दोषान्** स्तेयादीन**भिख्याप्य लोके** लोकानुद्वेगार्थम्। **स्वे स्वे** कर्मणि वित्तग्रहणघातनादौ कृते। सारापराधत इति मुषितवस्तुनः **सारतां** ज्ञात्वा सादृश्यात् चौरा**पराधं** ज्ञात्वेत्यर्थः ॥ २६२ ॥

(३) **कुल्लूकः**। **तेषां** प्रकाशाप्रकाशतस्कराणां **स्वकर्मणि** चौर्यादौ ये **पारमार्थिका** दोषाः संधिच्छेदादयस्तान् लोके प्रख्याप्य तद्गतधनशरीरादिसामर्थ्यापेक्षयापराधापेक्षया च राजा दण्डं कुर्यात् ॥ २६२ ॥

(४) **राघवानन्दः**। **स्वे स्वे कर्मणि** ये दोषास्तान् लोके प्रचारं कृत्वाऽनुशासनं कुर्यादित्याह **तेषामिति**। **सारापराधतः** अपराधस्य सारः उत्कटता कर्तृगतधनादिसामर्थ्यं वा तदनुरूपं कुर्वीतित्यन्वयः ॥ २६२ ॥

(५) **नन्दनः**। **सारापराधतः** सारतश्चापराधतश्च ॥ २६२ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **तेषामिति**। **सारापराधतः** ज्ञात्वा ज्ञातापराधतः अपराधानुसारेण ॥ २६२ ॥

(७) **मणिरामः**। तेषां प्रकाशाऽप्रकाशतस्कराणां स्वे कर्मणि चौर्यादौ। दोषान् संधिच्छेदादीन् तत्त्वतः अभिख्याप्य लोके प्रख्याप्य। सारापराधतः धनशरीरादि-सामर्थ्यानुसारेण राजा शासनं दंडं कुर्वीत ॥ २६२ ॥

(९) **भारुचिः**। कस्य पुनर्हेतोस्तत्र दण्डानुष्ठानं राज्ञश्शिष्यते येन ॥ २६२ ॥

**न हि दण्डादृते शक्यः कर्तुं पापविनिग्रहः ॥**
**स्तेनानां पापबुद्धीनां निभृतं चरतां क्षितौ ॥ २६३ ॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **पापविनिग्रहः** पापान्निवृत्तिः **स्तेनानाम्** ॥ २६३ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यस्माच्चौराणां पापाचरणबुद्धीनां विनीतवेषेण पृथिव्यां चरतां दण्डव्यतिरेकेण पापक्रियायां नियमं कर्तुमशक्यमत एषां दण्डं कुर्यात् ॥ २६३ ॥

(४) **राघवानन्दः**। नन्वेषां किमिति दण्डोपदेशः ? उपदेशेनैव विशिष्टत्वं स्यात्तत्राह **न हीति**। **पापविनिग्रहः** पापिनां विनिग्रहः। तत्र हेतुः—पापबुद्धीनां पापरुचीनां अत एव **निभृतं** निह्नुत्य **चरतां** तत्तत्कारिणाम् ॥ २६३ ॥

(५) **नन्दनः**। **पापविनिग्रहः** पापात्कर्मणः प्रतिषेधः ॥ २६३ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **न हीति**। **दण्डात् ऋते पापविनिग्रहः** कर्तुं **न हि शक्यः क्षितौ निभृत** गूढचरितं ॥ २६३ ॥

(७) **मणिरामः**। निभृतं विनीतवेषेण ॥ २६३ ॥

(९) **भारुचिः**। जनपदकण्टकानामेतल्लक्षणमुक्तम्। तन्निग्रहार्थं कण्टकाः स्तुत्यौपमिक एषामेष शब्दो विज्ञेयः। तद्ग्रहणोपाय इदानीमुच्यते ॥ २६३ ॥

**सभाप्रपापूपशालावेशमद्यान्नविक्रयाः ॥**
**चतुष्पथाश्चैत्यवृक्षाः समाजाः प्रेक्षणानि च ॥ २६४ ॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **सभा** मण्डपः। **प्रपा** जलशालाः। **अपूपशालाः** पूपविक्रयशालाः। **वेशो** वेश्याश्रमः, **मद्यान्नविक्रयाः** मद्यान्नविक्रयस्थानानि। **चैत्यवृक्षा** ग्रामादिप्रधानवृक्षाः। **समाजो** लोकमेलकः। **प्रेक्ष्या** रङ्गः ॥ २६४ ॥

(३) **कुल्लूकः**। सभा ग्रामनगरादौ नियतं जनसमूहस्थानं, प्रपा जलदानगृहम्, अपूपविक्रयवेश्म, पण्यस्त्रीगृहं, मद्यान्नविक्रयस्थानानि, **चतुष्पथाः** प्रख्यातवृक्षमूलानि जनसमूहस्थानानि जीर्णवाटिकाः, अटव्यः शिल्पगृहाणि शून्यगृहाणि, आम्रादिवनानि, कृत्रिमोद्यानानि। एवंप्रकारान्देशान्सैन्यैः पदातिसमूहैः स्थावरजङ्गमैः एकस्थानस्थितैः प्रचारिभिश्चान्यैश्चारै-

स्तस्करनिवारणार्थं चारयेत्। प्रायेणैवंविधे देशेऽन्नपानस्त्रीसंभोगस्वप्रहर्त्राद्यन्वेषणार्थं तस्करा अवतिष्ठन्ते ।। २६४–२६६ ।।

(४) **राघवानन्दः**। ते तर्हि क्व चरन्तीत्यपेक्षायामाह **सभेति द्वाभ्याम्**। (**प्रपा** बहुप्राण्युद्दिश्य प्रचुरतरजलस्थलं।) **अपूपशाला तद्वेश्म**। **वेशः** पण्यस्त्रीगृहम्। **चैत्यवृक्षाः** प्रख्यातवृक्षमूलानि। **समाजाः** जनसमूहस्थलानि। **प्रेक्षणं** नृत्यगीतस्थानानि ।। २६४ ।।

(५) **नन्दनः**। अथाप्रकाशतस्करपरिक्षोपायं प्रपञ्चयति **सभाप्रपाऽपूपशालेति**। **अपूपशाला** अपूपविक्रयशाला। मद्यं यत्र प्रदेशे विक्रीयते स मद्यविक्रयः, एवमन्नविक्रयः प्रेक्षणानि वृत्तस्थानानि ।। २६४ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। त्रिभिराह **सभेति**। वेशः पण्यस्त्रीगृहम्। **मद्यान्नविक्रयाः चैत्यवृक्षाः** ग्रामे प्रख्यातवृक्षाः मूलप्रेक्षणादि ।। २६४ ।।

(७) **मणिरामः**। अपूपशालाः अपूपविक्रयशालाः। वेश्म पण्यस्त्रीगृहं। चैत्यवृक्षाः प्रख्यातवृक्षमूलानि ।। २६४ ।।

**जीर्णोद्यानान्यरण्यानीकारुकावेशनानि च ।।**
**शून्यानि चाप्यगाराणि वनान्युपवनानि च ।। २६५ ।।**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **अरण्यानि** महाटव्यः। **कारुकावेशनानि** चित्रकारगृहाणि। **वनं** क्षुद्रारण्यम्। **उपवनं** गृहोद्यानम् ।। २६५ ।।

(४) **राघवानन्दः**। जीर्णत्वान्नोपसर्पन्ति केचन कारुकावेशनानि च **कारुकानां** पण्यस्थानानि तत्र स्थित्वा धनादिछिद्रानुसारिणश्चोराः स्युरिति भावः। **अगाराणि** गृहाणि। वनानि जलाहरणस्थलानि। **उपवनानि** कृत्रिमवनानि ।। २६५ ।।

(५) **नन्दनः**। **अरण्यानी** महारण्यं। **कारुकावेशनानि** कर्मकरशिल्पकरणशालाः 'आवेशनं शिल्पशाले'त्यमरः ।। २६५ ।।

(७) **मणिरामः**। कारुकावेशनानि शिल्पगृहाणि ।। २६५ ।।

**एवंविधान्नृपो देशान्गुल्मैः स्थावरजङ्गमैः ।।**
**तस्करप्रतिषेधार्थं चारैश्चाप्यनुचारयेत् ।। २६६ ।।**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। गुल्मैर्निरोधेन रक्षकैः। स्थावरैः खातादिभिः। अनुचारयेत् लक्षयेत् ।। २६६ ।।

(४) **राघवानन्दः**। ते कथमन्वेषणीयास्तत्राह **एवमिति**। गुल्मैः पत्तिभिः स्थावरैः स्थिरतरैः जङ्गमैः सर्वदा चरद्भिः चारैः कापटिकादिभिः अनुचारयेदहर्निशं चरेत् ।। २६६ ।।

(५) **नन्दनः**। **गुल्मैः** व्यूहैः सैन्यकैः ।। २६६ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **नृपः** एवंविधान्देशान्। गुल्मैः पत्तिसमूहैः **स्थावरजंगमैः** नियतदेशस्थैर्भ्रमणशीलैः तस्करप्रतिषेधार्थं एवंविधैः चारैः **अनुचारयेत्** ॥ २६६ ॥

(७) **मणिरामः**। गुल्मैः सैन्यैः पदातिसमूहैः ॥ २६६ ॥

**तत्सहायैरनुगतैर्नानाकर्मप्रवेदिभिः ॥**
**विद्यादुत्सादयेच्चैव निपुणैः पूर्वतस्करैः ॥ २६७ ॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। तत्सहायैस्तेषामेव तस्कराणां सहायतां गतैः। सम्यक्तेषामनुगतैः। **नानाकर्मप्रवेदिभिः** तत्कर्मप्रवेदिभिः। 'नानाकर्मप्रचारिभि'रिति क्वचित्पाठः। उत्साहयेच्चौर्यं कुर्मो इत्युक्त्वा उद्यमं कारयेत्। **पूर्वतस्करैः** अन्यराष्ट्रे कृतचौर्यैः ॥ २६७ ॥

(३) **कुल्लूकः**। **तेषां** साहाय्यं प्रतिपद्यमानैस्तच्चरितानुवृत्तिभिः संधिच्छेदादिकर्मानुष्ठानवेदिभिः पूर्वचौरैश्चाररूपैश्चौरमायानिपुणैस्तस्कराञ्जानीया**दुत्सादयेच्च** ॥ २६७ ॥

(४) **राघवानन्दः**। ते कथं ज्ञेयास्तत्राह **तत्सहायैरिति**। **तत्सहायैः** तेषां साहाय्यं गतैः समक्षं कदाचित्परद्रव्यहरणरूपैस्तैस्तैः साहसैर्वा नानाकर्मप्रवेदिभिः एवं भित्तिच्छेदः एवंप्रकारकच्छेद इत्येतदुपदेष्टृभिः **पूर्वतस्करैः** पूर्वतस्करा भूत्वा राज्ञश्चाररूपेण व्यवहरन्ति तैः विद्यात्तस्करानुत्साहयित्वा चोरत्वेन जानीयादिति भावः ॥ २६७ ॥

(५) **नन्दनः**। स्वानुगतैः आत्मवशैः पूर्वतस्करैः पूर्वस्मिन्काले वृत्तिकर्शिकत्वादिति स्युस्ततो मुष्णन्तो जीवन्तः कदाचिदारक्षपुरुषैर्गृहीतार्थवादिनः सामर्थ्यातिशयदर्शनेन राज्ञा कल्पितवेतनाश्चारकर्मणि नियुक्ता युक्तकारिणः प्राप्तविश्वासाः पुरुषाः पूर्वतस्करास्तैस्तान्गूढतस्करान्विद्यात्। 'अहिरेवाहेः पदान्वेत्ती'ति न्यायेन उत्साहयेत्समवेतान्कर्तुम् ॥ २६७ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। विद्यात् एतैः लक्षणैः जानीयात् ॥ २६७ ॥

(७) **मणिरामः**। **पूर्वतस्करैः** चाररूपैश्चौरमायानिपुणैः ॥ २६७ ॥

(९) **भारुचिः**। तच्छीलिनां बलातिशयव्यवहारिणाम्। एवं च सति ॥ २६७ ॥

**भक्ष्यभोज्यापदेशैश्च ब्राह्मणानां च दर्शनैः ॥**
**शौर्यकर्मापदेशैश्च कुर्युस्तेषां समागमम् ॥ २६८ ॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। चौराविधाराप्रस्थापननयनोपायमाह (?) **भक्ष्येति**। अत्र गत्वा भक्षयाम इत्यादिछलैः। ब्राह्मणानां दर्शनैः ब्राह्मणं दर्शयामीति व्याजेनारण्याद्ग्रामनयनेन। शौर्यं ममेदृशं युद्धकौशलं कर्म चेदृशं नाट्यादि करिष्यामि ग्रामं गत्वा तदागच्छेत्येतादृशैर्व्यपदेशैः समागमं कुर्यात्। ग्रामादौ तत्र च गृह्णीयात् ॥ २६८ ॥

(३) **कुल्लूकः**। ते पूर्वचौराश्चारभूता 'आगच्छतास्मद्गृहङ्गच्छामस्तत्र मोदकपायसादीन्यश्नीम' इत्येवं भक्ष्यभोज्यव्याजेन,'अस्माकं देशे ब्राह्मणोऽस्ति' सोऽभिलषितार्थसिद्धिं जानाति तं पश्याम'इत्येवं ब्राह्मणानां दर्शनैः **'कश्चिदेक एव बहुभिः सह यौत्स्यते तं पश्याम'** इत्येवं **शौर्यकर्मव्याजेन तेषां** चौराणां राज्ञो दण्डधारकपुरुषाः समागमं कुर्युः ग्राहयेयुश्च ॥ २६८ ॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच, **भक्ष्येति**। भक्ष्यभोज्यापदेशैः। भक्ष्यं मोदकादि, भोज्यं लेह्यं पेयं चोष्यं च तेषां अनायासेन प्राप्तिव्यपदेशै'रस्मद्गृहमागच्छत एतान्यश्नीम' इत्येवंव्यपदेशैः ब्राह्मणानां च दर्शनैरमुकस्मिन्देशे सर्वज्ञादिगुणसंपन्नो द्विजोऽस्ति तं दर्शयामीति **शौर्यकर्मापदेशैश्च** एको भूत्वा बहुभिर्योत्स्येऽहमित्येवमादिव्यपदेशैश्च समागतानां तेषां दण्डधारकराजपुरुषैः समागमं कुर्युः संगृह्णीयुः॥ २६८॥

(५) **नन्दनः**। तान्पुनः केनोपायेन समवेतान्कुर्युरित्यत्राह **भक्ष्यभोज्यापदेशैश्चेति**। दर्शनैर्दर्शनापदेशैः कुर्युः पूर्वतस्कराः तेषां गूढतस्कराणां समागमे राजपुरुषैर्ग्रहणयोग्यदेशे ये॥ २६८॥

(६) **रामचन्द्रः**। **ब्राह्मणानां** सर्वोपायज्ञानां दर्शनैः ग्रामं गत्वा गच्छेदृशैर्व्याजैः **समागमं कुर्युः**॥ २६८॥

(७) **मणिरामः**। भक्ष्यभोज्यापदेशैः आगच्छताऽस्मद्गृहं गच्छामः तत्र सोदकपायसादीन्यश्नीमः। एवं भक्ष्यभोज्यापदेशैः। अस्माकं देशे अभिलषितार्थदातारो ब्राह्मणाः संति, तान्पश्याम इत्येवं ब्राह्मणानां दर्शनैः। इत्यादिमिषेण तेषां समागमं चाराः कुर्युः॥ २६८॥

(९) **भारुचिः**। विद्यात् गतागतयोगज्ञानं यद्बलात् सुकरं महाफलं चौर्यं भवति यथेष्टम्॥ २६८॥

**ये तत्र नोपसर्पेयुर्मूलप्रणिहिताश्च ये॥**
**तान्प्रसह्य नृपो हन्यात्समित्रज्ञातिबान्धवान्॥ २६९॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **नोपसर्पेयु**र्जातशङ्काः। **मूलप्रणिहिताः** स्वराष्ट्रस्थितप्रकृत्यादिप्रेषिताः। **प्रसह्य** तत्र गत्वा बलात्॥ २६९॥

(३) **कुल्लूकः**। **ये** चौरास्तत्र भक्ष्यभोज्यादौ निग्रहणशङ्कया **नोपसर्पन्ति**, ये च मूले राजनियुक्तपुराणचौरवर्गे **प्रणिहिताः** सावधानभूताः तैः सह सङ्गतिं भजन्ते, तांश्चौरांस्तेभ्य एव ज्ञात्वा तदेकतापन्नमित्रपित्रादिज्ञातिस्वजनसहितान्बलादाक्रम्य **राजा हन्यात्**॥ २६९॥

(४) **राघवानन्दः**। **ये तत्र नोपसर्पेयुः** भक्ष्यभोज्यलोभेनापि। **मूलप्रणिहिताः** राजनियुक्तचौरेषु सावधानाः मूलतः कृतविमतयः॥ २६९॥

(५) **नन्दनः**। **तत्र** समागमे **ये** यदृच्छया नोपसर्पेयुरिति प्रणिहिता प्रणिहितमूलाः ज्ञातकारणाः, अभक्ष्यभोज्यापदेशेनात्मवधं जानन्त इति यावत्॥ २६९॥

(६) **रामचन्द्रः**। **ये तत्र समागमे नोपसर्पेयुः** ये मूलप्रणिहिता राजनियुक्ताः पुराणचौरवर्ग**प्रणिहिताः** त्रिभिराह स्वमित्रादीन् एतादृशान् **नृपः प्रसह्य हन्यात्**॥ २६९॥

(७) **मणिरामः**। मूलप्रणिहिताः मूले राजनियुक्तपुराणचौरबद्धे प्रणिहिताः सावधानाः संतः न संगतिं भजंते तांश्चौरांस्तेभ्य एव चारेभ्यो ज्ञात्वा प्रसह्येत्यादि कुर्यात्॥ २६९॥

(९) **भारुचिः**। तस्करप्रतारणे (न) नोपगच्छन्ति राजशासनात् ये च मूलप्रणिहितास्तस्करा नोपगच्छन्ति चण्डिका..दिषु तांश्च तेभ्य एवा (?) मस्य हन्यात्। एवमपि च वर्तमानश्चोरं निग्रहेत् ॥ २६९ ॥

**न होढेन विना चौरं घातयेद्धार्मिको नृपः ॥**
**सहोढं सोपकरणं घातयेदविचारयन् ॥ २७० ॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। सहोढेन चोरितद्रव्येण दृष्टेन विनेत्यर्थः। एतेन चौर्यादिव्यभिचारिलिङ्गदर्शनमुपलभ्यते। न घातयेत् ग्रहमात्रेण। सहोढं चोरितद्रव्यवत्तया दृष्टम्। उपकरणं चौर्यसाहसादेः छुरिकादि। अविचारयन् अविलम्बेन ॥ २७० ॥

(३) **कुल्लूकः**। **धार्मिको राजा** हृतद्रव्यसंधिच्छेदोपकरणव्यतिरेकेणानिश्चितचौरभावं न घातयेत्किन्तु हृतद्रव्येण चौर्योपकरणेन च निश्चित**चौर**भाव**मविचारयन्घातयेत्** ॥ २७० ॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच, **नेति**। होढेनापहृतद्रव्येण विशिष्टं सहोढं, तत्संयुक्तमिति यावत्। **सोपकरणं** चौर्योपकरणयुक्तम्। **अविचारयन्न**विलम्बमानः तत्क्षणादेवेति ॥ २७० ॥

(५) **नन्दनः**। होढेनापहृतद्रव्येण सोपकरणं चौर्योपकरणयुक्तम् ॥ २७० ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **होढेन** चौर्यचिह्नेन विना **चौरं न हन्यात्**। **सहोढं** सोपकरणं संधिच्छेदशस्त्रसहितम् ॥ २७० ॥

(७) **मणिरामः**। होढेन विना हृतद्रव्यसंधिच्छेदादिनिर्णयं विना ॥ २७० ॥

(९) **भारुचिः**। होढो दर्शने ग्रस्तः स्यात् नान्यथा यदि ताव (ल्लोप्त्रं) दर्शनविचार्यमाणं प्रमाणतः शुद्धं भवति एवमुपकरणवि(द्व?)र्तनादि विज्ञेयम् ॥ २७० ॥

**ग्रामेष्वपि च ये केचिच्चौराणां भक्तदायकाः ॥**
**भाण्डावकाशदाश्चैव सर्वांस्तानपि घातयेत् ॥ २७१ ॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। भाण्डं मूलधनं शस्त्रादिक्रयणार्थम्। अवकाशः शयनादिस्थानम्। एतच्च चौरताज्ञाने सति ॥ २७१ ॥

(३) **कुल्लूकः**। ग्रामादिष्वपि ये केचिच्चौराणां चौरत्वं ज्ञात्वा भक्तदाः चौर्योपयुक्तभाण्डादिगृहावस्थानं ये ददति तानपि नैरन्तर्याद्यपराधगोचरापेक्षया घातयेत् ॥ २७१ ॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच **ग्रामेष्विति**। भक्तदायकाः चोरा इति ज्ञात्वापि। भाण्डावकाशदाः **चौरैः** परधनहरणार्थं भाण्डमपहृतद्रव्यस्थलं तद्दायिनः। तानप्यविलम्बेन घातयेत् ॥ २७१ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। भक्तदायकाः भाण्डावकाशदाः एतान् सर्वान् घातयेत् ॥ २७१ ॥

(७) **मणिरामः**। भक्तदायकाः चौरोऽयमिति ज्ञात्वा भोजनदातारः। भांडावकाशदाः चौर्योपयुक्तभांडादीनां स्वगृहे स्थापकाः ॥ २७१ ॥

(९) **भारुचिः**। विचार्य प्रत्यक्षागमानुमानैः प्रमाणैः येनाविज्ञानादपि एतत्सर्वं भवति। ब्राह्मणाद्धर्मजीविनः स ह्यनुपकृत्य जीवति यतस्तस्यापि स्वधर्मस्थापनार्थं दण्डोऽपराधानुरूपः प्रणेयः ॥ २७१ ॥

**राष्ट्रेषु रक्षाधिकृतान्सामन्तांश्चैव चोदितान् ॥**
**अभ्याघातेषु मध्यस्थान् शिष्याच्चौरानिव द्रुतम् ॥ २७२ ॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। कृतौ सामन्तान् समीपवासिनः। **चोदितानाहूतान्**। अभ्याघातेषु चोरैः क्रियमाणेषु घातेषु मध्यस्थानुदासीनतया स्थितान् ॥ २७२ ॥

(३) **कुल्लूकः**। ये **राष्ट्रेषु** रक्षानियुक्ता ये च सीमान्तवासिनः क्रूराः सन्तः चौर्योपदेशे मध्यस्था भवन्ति तान् चौरवत्क्षिप्रं दण्डयेत् ॥ २७२ ॥

(४) **राघवानन्दः**। 'रक्षको यत्र भक्षक' इति न्यायमाश्रित्याह **राष्ट्रेष्विति**। यथोदितान् सामन्तानपि चोराणां भाण्डावकाशदायिनः अभ्याघातेषु चोरादपहृतद्रव्येषु **चोरघातकेषु** वा **मध्यस्थान्** चोरोऽपि न चोरोऽयमिति वादिनः द्रुतं शीघ्रं **शिष्यात्** दण्डादिना ॥ २७२ ॥

(५) **नन्दनः**। **अभ्याघातेषु** चोराटविकादिहिंसासु मध्यस्थानुपेक्षकान् ॥ २७२ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। त्रिभिराह **राष्ट्रेष्विति**। **उदितान**समृद्धान् समन्ताद्भवाः सामंताः। संत्यक्तकास्तु सामन्तास्तत्संसक्तास्तथोत्तराः। **आघातेषु** आक्रोशेषु ॥ २७२ ॥

(७) **मणिरामः**। **अभ्याघातेषु** चौरनिग्रहेषु ॥ २७२ ॥

(९) **भारुचिः**। आत्ययिकेष्वेताननुधावतांश्चोरसंवादेन प्रमादाद्वा चोरवच्छिष्यात् निमित्तभेदाच्चानुशासनभेदो विज्ञेयः ॥ २७२ ॥

**यश्चापि धर्मसमयात्प्रच्युतो धर्मजीवनः ॥**
**दण्डेनैव तमप्योषेत् स्वकाद्धर्माद्धि विच्युतम् ॥ २७३ ॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। धर्मजीवनो ब्राह्मणो धर्मसमयात् च्युतः स्वकर्तव्यभ्रष्टः दण्डेनैव तमप्योषेत् दण्डेन विवासनादिना तमप्योषेत्, दहेदित्यर्थः ॥ २७३ ॥

(३) **कुल्लूकः**। याजनप्रतिग्रहादिना परस्य यागदानादिधर्ममुत्पाद्य **यो जीवति स धर्मजीवनो** ब्राह्मणः। सोऽपि यो **धर्ममर्यादायाश्च्युतो भवति** तमपि स्वधर्मात्परिभ्रष्टं दण्डेनोपतापयेत् ॥ २७३ ॥

(४) **राघवानन्दः**। स्वयं धर्माचरणहीनः धर्मजीवनः याजनादिना परस्य यागदानादिधर्ममुत्पाद्य यो जीवति तं स्वधर्मात्परिच्युतं चोषेत् शोषयेत् धनहान्यादिनापि ॥ २७३ ॥

(५) **नन्दनः**। धर्मसमयाद्धर्माधिकारात् धर्माधिकत्वख्यापनेन यो जीवति स धर्मजीवनः। ओषेच्छिष्यात् तस्य दण्डत्वे हेतुरुक्तः **स्वकाद्धर्माद्धि विच्युतमिति**। धर्मात्प्रच्युतो धार्मिकत्वख्यापनेन जीवंश्चोरतुल्य इत्यभिप्रायः ॥ २७३ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। धर्मसमयात् यः प्रच्युतः धर्मजीवनः यः प्रतिग्रहादिना परस्य धर्ममुत्पादयति **दण्डेनैव तमपि ओषेत्** दहेत्। 'उष दाहे'॥ २७३॥

(७) **मणिरामः**। **धर्मजीवितः** परस्य यागदानादिना धर्ममुत्पाद्य यो जीवति सः। धर्मसमयात् धर्ममर्यादातः। **ओषेत्** दंडेनोपतापयेत्॥ २७३॥

**ग्रामघाते हिताभङ्गे पथि मोषाभिदर्शने॥**
**शक्तितो नाभिधावन्तो निर्वास्याः सपरिच्छदाः॥ २७४॥**

(१) **मेधातिथिः**। शक्तौ सत्यामालस्यादिना। ते **निर्वास्याः**। ये तु चौरैः कृतसंकेतास्तेषां पूर्वत्र वध उक्तो 'घातयेदि'ति। **परिच्छदो** गवाश्वादिः। तदपि निर्वास्य नापहर्तव्यम्। नासत्परिच्छदः कर्तव्यो धनं तु हर्तव्यम्॥ २७४॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। तटाभङ्गे सेत्वादिभङ्गे। 'हिताभङ्ग' इति क्वचित्पाठः। **हिता** नदीमध्यसेतुः। **पथि** मोषादि चौर्यसाहसादि तेषां मर्षणे सहनं॥ २७४॥

(३) **कुल्लूकः**। **ग्राम**लुण्ठने तस्करादिभिः क्रियमाणे, **हिताभङ्गे** जलसेतुभङ्गे जाते, 'क्षेत्रोत्पन्नसस्यनाशने वृत्तिभङ्गे चे'ति **मेधातिथिः**। पथि चौरदर्शने तन्निकटवर्तिनो यथाशक्तितो ये रक्षां न कुर्वन्ति ते शय्यागवाश्वादिपरिच्छदसहिता देशान्निर्वासनीयाः॥ २७४॥

(४) **राघवानन्दः**। किंचैतान्ग्रामान्निःसारयेदित्याह **ग्रामेति**। **ग्रामघाते** ग्रामस्य लुण्ठने तस्करादिक्रियमाणे हिताभङ्गे जलसेतुभङ्गे सपरिच्छदाः गवाश्वादिपरिच्छदसहिताः। तेषामनिरासे तान्दृष्ट्वाऽन्येषां तथाभूतत्वान (?) लोकस्य सर्वनाशः स्यादिति भावः॥ २७४॥

(५) **नन्दनः**। शय्याग्रामघातसेतुभङ्गादिपरिहारेऽनभिधावत्कृत्वाहाः अनभिधावन्तः॥ २७४॥

(६) **रामचन्द्रः**। ग्रामघाते लुण्ठने। **हिताभंगे** उदकसेतुभङ्गे **वृत्ति**भङ्गे वा। पथि मोषाभिमर्शने मार्गे चौर्याभिमर्शने चौर्यस्वहरणे॥ २७४॥

(७) **मणिरामः**। हिताभंगे कृतसेतुभंगे। **पथि दोषाभिदर्शने** पथि चौरदर्शने। एतादृशे कार्ये ये निकटवर्तिनो भूत्वा शक्तितो न धावंति ते॥ २७४॥

(९) **भारुचिः**। आलस्येनानभिधावन्तो **निर्वास्याः**। ये तु चोरोपक्षेपान्नानुधावन्ति ते **चोरवधेन** वध्याः॥ २७४॥

**राज्ञः कोशापहर्तॄंश्च प्रतिकूलेषु च स्थितान्॥**
**घातयेद्विविधैर्दण्डैररीणां चोपजापकान्॥ २७५॥**

(१) **मेधातिथिः**। **कोशो** राज्ञां धनसंचयस्थानं तत्रापहर्तारो द्रव्यजातिपरिमाणानपेक्षमेव वध्याः। ये च **प्रातिकूल्येन** वर्तन्ते। यद्राज्ञां देशान्तरादानेतुमभिप्रेतं तद्देशदुर्लभमांजने-

याश्वादिप्राच्यानाम् । उदीच्यानां कलिङ्गदेशोद्भवहस्त्यादि । तदानयनप्रतिबन्धे ये वर्तन्ते । तथा यानि मित्राणि तानि शत्रून्कुर्वते । कृत्वा शत्रुभिः संयोजयन्ति । **अरीणामुपजापकाः** प्रोत्साहकाः । तान् **घातयेत्** । स्वतन्त्रप्रयोजनत्वान्नावश्यं घातनमित्युक्तम् ।। २७५ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । **प्रतिकूलेषु** कर्मसु स्थितान् उद्युक्तान् । अरीणां संबन्धिन **उपजापकान्** स्वप्रकृतिभेदकान् ।। २७५ ।।

(३) **कुल्लूकः** । राज्ञो धनगृहाद्धनापहारिणस्तथा तदाज्ञाव्याघातकारिणः शत्रूणां च राज्ञा सह वैरिवृद्धिकारिणोऽपराधापेक्षया करचरणजिव्हाच्छेदनादिभिर्नानाप्रकारदण्डैर्घातयेत् ।। २७५ ।।

(४) **राघवानन्दः** । किंचैतान्घातयेदेवेत्याह **राज्ञ इति** । कोशापहर्तॄन् धनगृहाद्धनापहारिणः । प्रतिकूलेष्ववस्थितान्, राज्ञ इति शेषः । उपजापकान् मत्पक्षपातिनो भूत्वा राज्ञश्छिद्रप्रकटकान् ।। २७५ ।।

(५) **नन्दनः** । अरीणामुपजप्तॄन्मित्राण्यरयो यथा भवेयुस्तथा भेदकानित्यर्थः, कृतसन्धीनामरीणामुपजापकानिति वा ।। २७५ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । उपजापकान् शत्रूणाम् ।। २७५ ।।

(७) **मणिरामः** । अरीणां चो**पजापकान्** शत्रुणा राज्ञा सह मिलित्वा वैरवृद्धिकारकान् ।। २७५–२७६ ।।

(९) **भारुचिः** । अपराधानुरूपतः स्वतन्त्रपीडापेक्षया एषां निग्रहः स्यात् ।। २७५ ।।

**सन्धिं भित्त्वा तु ये चौर्यं रात्रौ कुर्वन्ति तस्कराः ।।**
**तेषां छित्त्वा नृपो हस्तौ तीक्ष्णे शूले निवेशयेत् ।। २७६ ।।**

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । **संधिः** गृहवास्तुगर्भः ।। २७६ ।।

(३) **कुल्लूकः** । **ये रात्रौ संधिच्छेदं कृत्वा परधनं तस्करा** मुष्णन्ति **तेषां** राजा **हस्तद्वयं छित्त्वा तीक्ष्णे शूले** तानारोपयेत् ।। २७६ ।।

(४) **राघवानन्दः** । एषां शूलार्पणमेवेत्याह **सन्धिमिति** । **सन्धिं** भित्तिच्छेदम् । **निवेशयेदा**रोपयेत् ।। २७६ ।।

(५) **नन्दनः** । **सन्धिः** कपाटयन्त्रादिकम् ।। २७६ ।।

(९) **भारुचिः** । चौर्योपलक्षणार्थं च सन्धिग्रहणं च एवं चास्कन्द्य वारेण वा प्रविश्य चौर्यं कुर्वतोऽयमेव निग्रहः स्यात् । हस्तयोश्छेदनं शूले वा निवेशनमेके तस्यैवेत्यपरे । एतच्च वर्णविशेषापेक्षयोद्भवम(त्वा)स्य प्रयोजनानुबन्धापेक्षया कल्प्यम् । न यथाश्रुतम् । तथा च दर्शयति ।। २७६ ।।

**अङ्गुलीर्ग्रन्थिभेदस्य छेदयेत्प्रथमे ग्रहे ।।**
**द्वितीये हस्तचरणौ तृतीये वधमर्हति ।। २७७ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । ग्रन्थिं भिनत्तीति **ग्रन्थिभेदः** । 'भेदनं' मोक्षो ग्रन्थेर्वस्त्रप्रान्तादौ ग्रन्थिः । यद्वा यद्द्रव्यं गृहीतं तत्केनचिच्छलेन ग्रन्थिमवमोच्य ये निनीषन्ति ते **ग्रन्थिभेदाः** । तेषां प्रथमायां प्रवृत्तावङ्गुलीनां छेदः, द्वितीयस्यां प्रवृत्तौ हस्तचरणयोः, तृतीयस्यां मारणम् ।। २७७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । **अङ्गुली** अङ्गुष्ठतर्जन्यौ **ग्रन्थिभेदस्य** ग्रन्थि विस्रस्य सुवर्णादि हरतः **प्रथमे ग्रहे** प्रथमवारे । एवं **द्वितीय** इत्यादौ । एतेनान्यत्रापि पुनःपुनःकरणे दण्डाधिक्यं द्रष्टव्यम् ।। २७७ ।।

(३) **कुल्लूकः** । पटप्रान्तादिस्थितं सुवर्णादिकं ग्रन्थिमोक्षणेन यश्चोरयति स ग्रंथिभेदस्तस्य प्रथमे द्रव्यग्रहणेऽङ्गुलीश्छेदयेत्, ते चाऽङ्गुष्ठतर्जन्यौ, 'उत्क्षेपकग्रन्थिभेदौ करसंदंशहीना'विति **याज्ञवल्क्य** (व्यव. २७४) वचनात् । **द्वितीये ग्रहणे हस्तपादौ छेदयेत्, तृतीये** ग्रहणे **वधार्हो भवति** ।। २७७ ।।

(४) **राघवानन्दः** । किंच, **अङ्गुलीति** । **अङ्गुली** अङ्गुष्ठतर्जन्यौ, 'उत्क्षेपकग्रन्थिभेदौ करसंदंशहीनौ' इति **याज्ञवल्क्योक्तेः** । ग्रन्थिभेदस्य पटप्रान्तादिस्थितं सुवर्णादिद्रव्यं ग्रन्थिमोक्षणेन हरतः । प्रथमे ग्रहे एकवारद्रव्यग्रहणे व्यवस्थितविकल्पः ।। २७७ ।।

(५) **नन्दनः** । अङ्गुली तर्जनीमध्यमे । **ग्रन्थिभेदस्य** सन्धिच्छेदकस्य । **ग्रहे** चौर्ये इति यावत् । तृतीयादिषु कर्तव्यं पूर्वोक्तं शूलारोपणं कर्तव्यमित्यभिप्रायः ।। २७७ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । ग्रन्थिभेदस्य ग्रन्थिच्छेदस्य प्रथमेऽपराधे अङ्गुली छेदयेत् ।। २७७ ।।

(७) **मणिरामः** । ग्रंथिभेदस्य ग्रंथिमोक्षकस्य । प्रथमे ग्रहे प्रथमे द्रव्यग्रहे ।। २७७ ।।

(९) **भारुचिः** । कृतनिग्रहस्यापि निग्रहोपदेशः, छिन्नहस्तचरणोऽपि पुनः केनचिदुपायान्तरेण चौर्यमासेवतः ।। २७७ ।।

**अग्निदान्भक्तदांश्चैव तथा शस्त्रावकाशदान् ।।**
**सन्निधातॄंश्च मोषस्य हन्याच्चौरमिवेश्वरः ।। २७८ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । **अग्निदाः** शीतापनोदनाद्यर्थं येऽग्निं ददति । **शस्त्रं** कर्तरिकादि । **मोषस्य** सन्निधातारः कर्तारः । सर्वे चौरवत् ज्ञेयाः । **शस्त्रावकाशदग्रहणं** प्रागुक्तमप्युपसंहारार्थमुच्यते ।। २७८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । अग्निदानं गृहदाहाद्यर्थं ततः करिष्यतीति ज्ञात्वापि । संनिधातॄन् मोषस्थानसमीपनेतॄन् । मोषस्य चोरस्य ।। २७८ ।।

(३) **कुल्लूकः** । ग्रन्थिभेदादिकारिणो विज्ञायाग्निभक्तशस्त्रावस्थानप्रदान्मुष्यत इति मोषश्चौरधनं तस्यावस्थापकान् चौरवद्राजा निगृह्णीयात् ।। २७८ ।।

(४) **राघवानन्दः**। किंच, **अग्निदानिति**। **भक्तं** भक्तसंयुक्तं गरदादिदातॄन्। **शस्त्रावकाशदान्** शस्त्रैः शरीरस्यावकाशदातॄन् तच्छेदकान्। **संनिधातॄन् मोषस्य** मुष्टस्य ज्ञात्वापि क्रयादिकारिणो वा भक्तदायकादीनामुक्तत्वात्। **ईश्वर** इत्यनेन समर्थः। सामन्ता अपि तथा कुर्युरिति ध्वनितम्॥ २७८॥

(५) **नन्दनः**। **मोषस्य** मोषितद्रव्यस्य समोषसाधनस्य वा॥ २७८॥

(६) **रामचन्द्रः**। **मोषस्य** मुषितस्य वस्तुनः **सन्निधातॄन्** समीपवर्तिनः **ईश्वरः** चौरानिव **शिष्यान्** क्षिपेत्॥ २७८॥

(७) **मणिरामः**। भक्तदान् चौरपोषकान्। चौराय शस्त्रदान्। अवकाशदान् चौरस्य वासदान्। मोषस्य चौरहृतधनस्य स्थापकान्॥ २७८॥

(९) **भारुचिः**। विज्ञाय चोरांस्तत्साहाय्येनैतानि कुर्वतां चोरवच्छिष्टिस्थानबन्धनपरिभाषणादिरूपा न तु वरांगच्छेदतोदार्थदण्डनं वा शिष्टिः प्रथममेवानुक्तापि चौर्यं वर्णानां चोरव(च्छिष्टि)रल्पापराधेषु चोरस्यापि स्यात्॥ २७८॥

**तडागभेदकं हन्यादप्सु शुद्धवधेन वा॥**
**यद्वाऽपि प्रतिसंस्कुर्याद्वाप्यस्तूत्तमसाहसम्॥ २७९॥**

(१) **मेधातिथिः**। **तडागग्रहणमुपलक्षणार्थम्**। नद्युदकहरणेऽप्ययं दोष इति केचित्। तदयुक्तम्; महान्हि तडागभेदनेऽपराधः। स्वल्पो नदीभेदने। तडागस्य हि वप्रभेदनेनोदकेऽप्ययमेव विधिः॥ २७९॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। तडागभेदकं तडागजलस्य बहिर्निःसारकं **अप्सु** मज्जयित्वा **हन्यात्**। **शुद्धवधेन** शिरश्छेदेन। यस्त्वङ्गुलीकरच्छेदादिको वधः सोऽतिदुःखहेतुत्वादशुद्धवधः। एतत्कामतः। अकामे त्वाह **तच्चापीति**। तत्तडागादिविगुणीकृतं सम्यक्कृत्वोत्तमसाहसदण्डं दद्यात्॥ २७९॥

(३) **कुल्लूकः**। यः स्नानदानादिना जनोपकारकं तडागं सेतुभेदादिना विनाशयति **तमप्सु** मज्जनेन प्रकारान्तरेण वा हन्यात्। यद्वा यदि **तडागं** पुनः संस्कुर्यात्तदोत्तमसाहसं **दंड्यः**॥ २७९॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच, **तडागेति**। **अप्सु** निमज्जनेन मारणम्। **शुद्धवधः** शिरश्छेदः। तदाद्यपेक्षया वाशब्दः। अनेककोटिजीवनाशकत्वाद्वधार्हः। प्रतिसंस्कुर्यात् पुनः संपादयेत्। **यदि** वा **प्रतिसंस्कुर्यात्** विषादिना द्रव्येण दूषयेत्तदा संस्कुर्यादिति। पणानां सहस्रमुत्तमो दण्डः॥ २७९॥

(५) **नन्दनः**। **शुद्धवधेन** शस्त्रवधेन वधशब्देन नात्राङ्गच्छेदो विवक्षितस्तद्भिन्नस्थानं प्रतिसंस्कुर्यात्प्रतिसमादध्यात् तडागभेदकदोषतारतम्यापेक्षया विकल्पः॥ २७९॥

(६) **रामचन्द्रः**। तच्चापि तत्तडागमपि **प्रतिसंस्कुर्यात्** संस्कारं तडागबन्धनरूपं कुर्यात्॥ २७९॥

(७) **मणिरामः**। अप्सु हन्यात् मज्जयेत् शुद्धवधेन वा शस्त्रादिना वा हन्यात्। तत् तडागं। संस्कुर्यात् भेदं कृत्वा पुनः संस्कुर्यात् तदा उत्तमसाहसं दंड्यः॥ २७९–२८०॥

(९) **भारुचिः**। वप्रतडागस्य भित्त्वोदकं हरतो वधोऽप्स्वन्यत्र वा स्थले अशक्तस्य प्रतिसंस्कारेऽशक्तस्यापि धनम् पुण्यानुबन्ध एवोभयोरप्यनुग्रहः कल्पितो भवति तडागस्वामिनस्तटाकभेदकस्य च संस्कारापक्षे चास्य दण्डं उत्तमसाहसः पणसहस्रम्॥ २७९–८०॥

**कोष्ठागारायुधागारदेवतागारभेदकान्॥**
**हस्त्यश्वरथहर्तॄंश्च हन्यादेवाविचारयन्॥ २८०॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **कोष्ठागारं** राजगृहम्॥ २८०॥

(३) **कुल्लूकः**। राजसंबन्धिधान्यादिषु धनागारायुधगृहयोर्देवप्रतिमागृहस्य च बहुधनव्ययसाध्यस्य विनाशकान्हस्त्यश्वरथस्य चापहर्तॄन् शीघ्रमेव हन्यात्। यत्तु संक्रमध्वजयोष्ट-**देवताप्रतिमाभेदिनः** पञ्चशतदण्डं वक्ष्यति **सोऽस्मादेव देवतागारभेदकस्य** वधविधानान्मृन्मयपूजितोज्झितदेवताप्रतिमाविषयोऽत्र द्रष्टव्यः॥ २८०॥

(४) **राघवानन्दः**। किंचैतेऽवश्यं हन्तव्या इत्याह **कोष्ठेति**। **कोष्ठागारं** धनगृहं भेदकान्केनापि प्रकारेण नाशकान्। **अविचारयन्नित्यनेन** सदस्यपि प्रश्नो न कार्यः॥ २८०॥

(६) **रामचन्द्रः**। **कोष्ठागारायुधागारदेवतागारभेदकान्**॥ २८०॥

(९) **भारुचिः**। देवतागारभेदकादृते इतरेषां स्वतन्त्ररक्षणप्रयोजनत्वाद् वधोपदेशस्य न नियमेन वधः क्रियते। प्रतिप्रसवभावाच्च निवृत्तावपि नाभ्युदयः। देवतागारभेदकस्यापि प्रतिकर्तुं दण्डं च दातुमशक्तस्य वधः स्यात्। तथा चोक्तं पूर्वश्लोके। एवं चाधिकारादुत्तमसाहसो दण्डः। 'संक्रमध्वजयष्टीना' (२८५) मित्यस्मिन् वक्ष्यमाणश्लोके देवताप्रतिमाभेदकस्यापि दण्डं वक्ष्यति। वधरहितमेवं च सति यदि देवतागारभेदकस्य नियोगतो वध उच्यते। ततो न्यायविरोध्ययुक्तरूप उपदेशो गम्यते। देवतागारभेदने वधः। देवताप्रतिमाभेदने धनं दण्ड इत्युक्तम्। अतः सत्यप्यविशेषेण देवतागारभेदकस्य वधश्रवणे शास्त्रन्यायविरोधेन पाक्षिको वधो विज्ञेयः॥ २८०॥

**यस्तु पूर्वनिविष्टस्य तडागस्योदकं हरेत्॥**
**आगमं वाप्यपां भिद्यात्स दाप्यः पूर्वसाहसम्॥ २८१॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। हरेत् स्वसमीपतडागं प्रति नयेत्। आगमं तडागे जलागमं रुन्ध्यात्। आगमं वाप्यपां भिद्यादिति क्वचित्पाठः। स दाप्यः तत्समम्यक्करणपूर्वम्॥ २८१॥

(३) **कुल्लूकः**। यः पुनः प्रजार्थं पूर्वं केनचित्कृतस्य तडागस्योदकमेव गृह्णाति कृत्स्नतडागोदकनाशने वधदण्डः प्रागुक्तस्तथोदकगमनमार्गसेतुबन्धादिना यो नाशयति स प्रथमसाहसं दण्ड्यः॥ २८१॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच **यस्त्विति**। पूर्वं निविष्टस्य सर्वप्राणिसाधारणस्य। कृतमुदकं स्वधान्याद्यर्थं हरेत्। आगममागम्यतेऽनेनोदकमिति जलपूरणनिःसारणयोर्मार्गं भिन्द्याद्रोधयेद्वा। पूर्वसाहसं सार्धपणशतद्वयम्॥ २८१॥

(५) **नन्दनः**। पूर्वनिविष्टस्य स्नापनार्थं पूर्वस्मिन्काले कल्पितस्य उदकं हरेत्॥२८१॥

(६) **रामचन्द्रः**। अपां जलानां आगमं स्वीकारं स्वकीयत्वं पारंपर्यागतं यः भिन्द्यात् क्षेत्रादिसिञ्चनार्थं स पूर्वसाहसं प्रतिसंस्कारानन्तरं दाप्यः॥ २८१॥

(७) **मणिरामः**। पूर्वसाहसं प्रथमसाहसं पंचशतपणात्मकं॥ २८१–२८२॥

(९) **भारुचिः**। देवताघातकत्वात् पूर्वनिवेश उच्यते इतरथा वा। तत्र यदुक्तं स(स्यं·····र्थं यो हरेत् एवोदकस्यान्यमार्गदानेनागमं वा भिन्द्यात् स दण्ड्यः पूर्वसाहसम्। एवं च सति यदुक्तं दण्डं दातुमशक्ताः क्षत्रियादयः आनृण्यः कर्मणा कर्म गच्छेयुरिति तत्कार्यसामान्यादत्र सर्वत्र प्रत्येतव्यम्॥ २८१॥

**समुत्सृजेद्राजमार्गे यस्त्वमेध्यमनापदि॥**
**स द्वौ कार्षापणौ दद्यादमेध्यं चाशु शोधयेत्॥ २८२॥**

(१) **मेधातिथिः**। **राजमार्गे** ग्रामनगरे रथ्यायाममेध्यं मूत्रपुरीषं **समुत्सृजेदन्यतो** वाऽऽनीय चण्डालादिभिर्निक्षिपेत्। **अनापदि** आपद्वेगेनात्यर्थमुक्तं भवति। चण्डालादेर्मूल्यं दत्वाऽपसारयेत्स्वयं वाऽन्यासंभवे॥ २८२॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **अनापदि** व्याध्याद्यभावे॥ २८२॥

(३) **कुल्लूकः**। अनार्तः **सन् यो** राजपथेषु पुरीषं कुर्यात्स कार्षापणद्वयं दण्डं दद्यात्स चामेध्यं शीघ्रमेवापसारयेत्॥ २८२॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच, **समुत्सृजेदिति**। **अनापदि** व्याघ्रादिभयानुपस्थितौ आरोग्ये वा। **कार्षापणौ** ताम्रिष्कपणद्वयम्॥ २८२॥

(९) **भारुचिः**। कार्षापणपरिमाणं व्याख्यातम्॥ २८२॥

**आपद्गतोऽथ वा वृद्धा गर्भिणी बाल एव वा॥**
**परिभाषणमर्हन्ति तच्च शोध्यमिति स्थितिः॥ २८३॥**

(१) **मेधातिथिः**। **आपद्गतः** पूर्वोक्तः। वृद्धादयो ये बहिर्ग्रामं निर्गन्तुमशक्ताः ते गृह्यन्ते। शोणितमपि कर्तुमित्याशङ्क्य तेऽमेध्यमपि व्यपदेष्टुम्। 'न पुनरेवं कर्तव्यम्'। 'पुनः करणे राजतो महान्प्रत्यवायो भवति' क्रोधगर्भमीदृशवचनं **परिभाषणम्**। **तच्च शोध्यमिति** राज्ञ उपदेशः। यद्युत्सृष्टारो न ज्ञायन्ते। **तथा** च रथ्या चण्डालादिभिरपासनीया॥ २८३॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **परिभाषणं** भर्त्सनम्। तच्च मेध्यं शोध्यमपनेयम्॥ २८३॥

(३) **कुल्लूकः**। व्याधितवृद्धगर्भिणीबाला **न दण्डनीयाः**। किंतु ते पुनः किं कृतमिति परिभाषणीयाः, **तच्चामेध्यं शोधनीया** इति शास्त्रमर्यादा ॥ २८३ ॥

(४) **राघवानन्दः**। एते तु भर्त्स्या इत्याह **आपदिति**। **परिभाषणं** पुनर्मा कुर्विति। **तच्चामेध्यम्** ॥ २८३ ॥

(५) **नन्दनः**। **परिभाषणं** गर्हणं न द्वौ कार्षापणाविति ॥ २८३ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **एते** वृद्धादयः। **परिभाषणं** पुनः न कार्यं इति ॥ २८३ ॥

(७) **मणिरामः**। आपद्गतादयः न दंड्याः किंतु परिभाषणं अर्हंति किं कृतमिति वक्तव्यतामात्रं लभन्ते ॥ २८३ ॥

(९) **भारुचिः**। आप ..... न सहोपदेशादत्यन्तवृद्धो गर्भिणी बालो वेदितव्याः ॥ २८३ ॥

**चिकित्सकानां सर्वेषां मिथ्याप्रचरतां दमः ॥**
**अमानुषेषु प्रथमो मानुषेषु तु मध्यमः ॥ २८४ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **चिकित्सका** भिषजः। तेषां **मिथ्याप्रचाराणा**मौषधदानमुभयथा संभवति। यदि वाऽविज्ञातशास्त्रप्रयोगतया, शास्त्रे परिचितेऽपि वाऽतत्परतयाऽर्थलिप्सया। **अमानुषेषु** गवाश्व-हस्त्यादिषु। **प्रथमः** साहसशब्दोऽनुषक्तव्यः। एवं **मानुषेषु तु मध्यम** इति। तथा प्रचारेण यद्याश्वेव विपद्येत तदा महान्दण्डः कल्पनीयः ॥ २८४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **मिथ्याप्रचरता**मज्ञात्वोपचरताम्। **अमानुषे**(षु) गवादिषु। एतच्च तन्मरणाभावे तत्र दण्डाधिक्यात् ॥ २८४ ॥

(३) **कुल्लूकः**। सर्वेषां कायशल्यादिभिषजां दुश्चिकित्सां कुर्वतां दण्डः कर्तव्यस्तत्र गवाश्वादिविषये दुश्चिकित्सायां प्रथमसाहसदण्डः, मानुषविषये **पुनर्मध्यमसाहसः** ॥ २८४ ॥

(४) **राघवानन्दः**। चिकित्सकानां कायशल्यरसायनादिभिर्दुर्भिषजाम् **मिथ्याप्रचरतां** क्षणप्रतीकारं कुर्वताम्। अमानुषेषु गवाश्वादिषु प्रथमः साहसः पणानां सार्धशतद्वयम्। मध्यमः पञ्चशतानि ॥ २८४ ॥

(५) **नन्दनः**। **दमो**ऽमानुषे श्वादिषु **प्रथमः** प्रथमसाहसः ॥ २८४ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **मिथ्या उपचरतां अमानुषे**(षु) **प्रथमः** पूर्वसाहसः दण्डः कार्यः। ॥ २८४ ॥

(७) **मणिरामः**। अमानुषेषु गवाश्वादिविषयेषु प्रथमः प्रथमसाहसः। मध्यमः मध्यमसाहसः ॥ २८४ ॥

(९) **भारुचिः**। प्रथममध्यमौ साहसोत्तरपदावेतौ द्रष्टव्यौ। विना शास्त्रेण श्रुतार्थौ वा सति शास्त्राध्ययने मिथ्या ये चिकित्सायां वर्तन्ते मानुषामानुषेषु तेषामेष दमः ॥ २८४ ॥

**संक्रमध्वजयष्टीनां प्रतिमानां च भेदकः ॥**
**प्रतिकुर्याच्च तत्सर्वं पञ्च दद्याच्छतानि च ॥२८५॥**

(१) **मेधातिथिः**। **संक्रमः**। येन संक्रामन्ति मार्गेणावतरन्ति जलोपस्पर्शादिना निमित्तेन। शुभ्रं वासः। **ध्वजः** चिन्हं राजामात्यादीनाम्। देवायतनेषु च **यष्टिः**। ईदृशं च **प्रतिमानामिति** व्याख्यातम्। **प्रतिकुर्यात्स**मदधीत प्रत्यापत्ति नयेत्॥ २८५॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **ध्वजो** देवकुलादिध्वजः। **यष्टिः** ग्रामादिपताकायष्टिः। **प्रतिमानां** मनुष्यप्रतिकृतीनां। देवप्रतिमासु तु वधस्तदायतनभेद एव वधोक्तेः॥ २८५॥

(३) **कुल्लूकः**। **संक्रमो** जलोपरिगमनार्थं काष्ठशिलादिरूपो **ध्वजः** चिन्हं राजद्वारादौ **यष्टिः** पुष्करिण्यादौ **प्रतिमाश्च** क्षुद्रा मृन्मय्यादयस्तासां विनाशकः पञ्चशतपणान्दद्यात् तच्च विनाशितं सर्वं पुनर्नवं कुर्यात्॥ २८५॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच, **संक्रमेति**। **संक्रमः** जलोपरिगमनार्थं काष्ठशिलादिभिर्निर्मितं वर्त्म प्रतिमानां मृन्मयादिक्षुद्राणां स्थिरप्रतिमाभङ्गे वधस्योक्तत्वात्। **ध्वजश्चिन्हं** नृपद्वारादौ स्थितम्। **यष्टिः** पुष्करिण्यादौ स्थापिता काष्ठादिमयी। प्रतिकुर्यात् तच्चतुष्टयं नवं कुर्यात्॥ २८५॥

(६) **रामचन्द्रः**। **संक्रमः** सोपानादिमार्गः। **ध्वजयष्टीनां ध्वजः** देवस्य राज्ञो वा चिन्हं **यष्टिः** इन्द्रदण्डयष्टिः तेषां भेदकः च पुनः प्रतिमानां पूजारहितानां भेदकः। च पुनः तत्सर्वं पूर्ववत्प्रतिकुर्यात् च पञ्च शतानि दद्यात्॥ २८५॥

(७) **मणिरामः**। संक्रमः जलोपरिगमनार्थं काष्ठशिलादिरूपः। ध्वजः ध्वजचिन्हं राजद्वारादौ, यष्टिः तडागादौ। तत् नाशितं सर्वं प्रतिकुर्यात् पुनर्नवं कुर्यात्॥ २८५॥

(९) **भारुचिः**। नदीगर्तादिषु ये सङ्क्रामन्ति ते सङ्क्रमाः। ध्वजो राज्ञां देवतायतनेषु वा यष्टि(र्ना)गायतने बलियष्टिर्वा ग्रामेषु। अयं च विचारितोऽर्थः पूर्वश्लोके विकल्पार्थं वा दण्डस्य केचिदत्रानुबन्धादिना (का)रणेन प्रतिमाभेदकस्येहोपदेशः॥ २८५॥

**अदूषितानां द्रव्याणां दूषणे भेदने तथा॥**
**मणीनामपवेधे च दण्डः प्रथमसाहसः॥ २८६॥**

(१) **मेधातिथिः**। यानि स्वयमदुष्टानि द्रव्याणि लाभार्थी दूषयति। तथा धान्यविक्रयी क्षेत्रे निर्दोषं धान्यमुत्तमं तृणबुसैर्योजयति। कुंकुमादेश्च अकुंकुमादिना द्रव्यान्तरेणैकीकरणम्। **मणयो** मुक्तास्तेषां **भेदनं** द्विधाकरणम्। अवेधितव्यप्रदेशेन विध्यत इति अपवेधः। अनेकार्थत्वाद्धातूनां विध्यते रूपमेतत्। मणयो हीनमध्यमोत्कृष्टतमा भवन्ति। तत्र दण्डकल्पना कर्तव्या। मध्यमेषु मध्यम उत्तमेषूत्तमः॥ २८६॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **अदूषितानां** कुङ्कुमादीनां दूषणे औषधादिना नाशने **भेदने**। रत्नादेः असम्यग्वेधनेन नाशने ।। २८६ ।।

(३) **कुल्लूकः**। अदुष्टद्रव्याणामपद्रव्यप्रक्षेपेण दूषणे मणीनां च माणिक्यादीनामभेद्यानां विदारणे वेध्यानामपि मुक्तादीनामनवस्थानवेधने प्रथमसाहसो दण्डः कार्यः। सर्वत्र परकीयद्रव्यनाशे द्रव्यान्तरदानादिना स्वामितुष्टिः कार्या ।। २८६ ।।

(४) **राघवानन्दः**। किंच एतेषु त्रिषु प्रत्येकं सार्धशतद्वयं दण्ड इत्याह **अदूषितानामिति**। **दूषणे** अपद्रव्यप्रक्षेपणे। **भेदने** अभिन्नानां विदारणे। मणीनां मुक्तादीनां **अपवेधे** अस्थाने रन्ध्रकरणे ।। २८६ ।।

(५) **नन्दनः**। **अदूषितानां** कांस्यादीनां चण्डालभोजनादिना **दूषणे अपवेधेऽस्थानवेधे** ।। २८६ ।।

(७) **मणिरामः**। वेध्यानामपि मुक्तादीनां अपवेधे अस्थानभेदे ।। २८६ ।।

(९) **भारुचिः**। कुङ्कुमादिद्रव्याणां तत्सदृशेन मायाकुसुम्भादिना दूषणं भेदनं तु मणिभिः सम्बध्यते। मणीनां भेदने विनाशे अवेधे अस्थानवेधे च मणीनामेव सारानुरूपो दण्डः, एवं च सति (प्र)थमसाहसग्रहणं प्रदर्शनार्थं विज्ञेयम्; येन मणयो हि काकणिकमूल्या अपि सन्त्यनेकसहस्राश्च। अतो नाविशेषेण युक्तोऽत्र दण्ड इति। एतस्मात् कारणात् प्रथमसाहसग्रहणस्य प्रदर्शनार्थता कल्प्यते ।। २८६ ।।

**समैर्हि विषमं यस्तु चरेद्वै मूल्यतोऽपि वा ।।**
**समाप्नुयाद्दमं पूर्वं नरो मध्यममेव वा ।। २८७ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। येषां द्रव्याणां समत्वेन विनिमय उक्तो यथा "तिला धान्येन तत्समा" इति, तत्र यदि **विषम**माचरति व्यवहारार्थं तिलं दत्वा बहुधान्यं व्रीह्यादि गृह्णीयात्। असति वा विनिमये मूल्यतः क्रयव्यवहारेण व्रीह्यादिधान्येभ्योऽधिकेन मूल्येन तिलान् क्रीणाति। अथवा कस्यचिदुत्तरीयमुपबर्हणमस्ति विक्रेतव्यं कस्यचिदन्तरे शाटकाः। तत्र यस्योपबर्हणमस्ति तस्यान्तर उपयुज्यन्ते। उपबर्हणेन च ते सममूलाः। तत्र तदीयां कार्यवत्तां ज्ञात्वा समत्वेन न ददात्यधिकमूल्यं गृह्णाति। स उच्यते 'समैर्विषमं चरति मूल्येन'। तयोः क्रेतुविक्रेतुश्च तौ दण्डौ। 'चरति मूल्यत' इत्येकार्थस्तथैव। वाशब्दोऽस्मिन्पक्षे पादपूरण एव। प्रथममध्यमोक्तौ क्रयविक्रयौ विकल्पितौ द्रव्यसारापेक्षया ।। २८७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **समैर्ऋजुशीलैः विषमं** वक्रं **विचरेत्** व्यवहारं कुर्यात्। **मूल्यतो** विषमं **चरेत्** अधिकं गृह्णीयात्। व्यवहारमात्रे पूर्वदमम्। **मूल्यतो** मध्यमम् ।। २८७ ।।

(३) **कुल्लूकः**। **समैः** सममूल्यदातृभिः सहोत्कृष्टापकृष्टद्रव्यदानेन यो **विषमं** व्यवहरति सममूल्यं द्रव्यं दत्वा यः कस्यचिद्बहु मूल्यं कस्यचिदल्पमूल्यमिति विषमं मूल्यं गृह्णाति **सोऽनुबन्धविशेषापेक्षया** प्रथमसाहसं **मध्यमसाहसं** वा **दण्डं प्राप्नुयात्** ।। २८७ ।।

(४) **राघवानन्दः**। किंच **समैरिति**। **समैः** सममूल्यदातृभिः **विषमं** न्यूनपरिमाणं दद्यात् मूल्यतो वाल्पं द्रव्यं प्रति बहुमूल्यं गृह्णाति बहुमूल्यं वा स्वल्पमूल्येन गृह्णाति, गृहीत्वा बहुमूल्येन तदेव विक्रीणीते तदा प्रथमं साहसं, न्यूनमूल्येन क्रयणे तु मध्यमं विकल्पः द्रव्यस्य सारासारापेक्षया वा ।। २८७ ।।

(५) **नन्दनः**। **समपण्ये** मानतुलादिना यो **विषमं चरेत्** यो वा **मूल्यतो विषमं चरेत्** **पूर्वं दमं** प्रथमं साहसम् ।। २८७ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **समैः** ऋजुभिः **विषमं** कुर्यात् वै निश्चयेन **मूल्यतोऽपि** वा **विषमं** अन्यथा मूल्यं कुर्यात् ।। २८७ ।।

(७) **मणिरामः**। समैः सममूल्यदातृभिः सहोत्कृष्टापकृष्टद्रव्यदानेन विषमं यस्तु चरेत् व्यवहरेत् सममूल्यं दत्त्वा कस्यचिद्बहुमूल्यं गृह्णाति स नरः पूर्वं प्रथमसाहसं मध्यमं मध्यमसाहसं वा दंडं प्राप्नुयात् ।। २८७ ।।

(९) **भारुचिः**। अपरिच्छिन्नार्घानां द्रव्याणां अज्ञाततया च कार्यवत्तां वापेक्ष्य न क्रेतुर्योऽन्यथा विक्रीणीते भावदोषेण तस्य हेतुद्रव्यापेक्षया प्रथममध्य(मौ) कल्प्यौ । अथवा क्रेतरि प्रथमः कार्यः विक्रेतुर्मध्यमः ।। २८७ ।।

**बन्धनानि च सर्वाणि राजमार्गे निवेशयेत् ।।**
**दुःखिता यत्र दृश्येरन्विकृताः पापकारिणः ।।२८८।।**

(१) **मेधातिथिः**। प्रसिद्धे राजरथ्याप्रदेशे बन्धगृहाणि सन्निवेशयेत्कुर्यात् । **दुःखिता** **यत्र दृश्येरन्नित्यन्यत्रापि** संनिवेशनं तत्प्रदेशभ्रमणं दर्शयति। एतेनान्या अपि बन्धसंस्थानां पीडाः कर्तव्या इत्याह। शरीरात्यन्तकार्शाद्यवस्थांतरापत्त्या **विकृताः** अभोजनेनेषद्भोजनादिना। **शेषं स्पष्टम्** ।। २८८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **बन्धनानि** बन्धनस्थानानि ।। २८८ ।।

(३) **कुल्लूकः**। बन्धनगृहाणि सर्वजनदृश्ये राजमार्गे कुर्यात् यत्र निगडबन्धनाद्युपेताः क्षुत्तृष्णाभिभूता दीर्घकेशनखश्मश्रवः कृशाः पापकारिणोऽन्यैरकार्यकारिभिरकार्यं निवृत्त्यर्थं दृश्येरन् राजा गृहपुरादिसंबन्धिनः प्राकारस्य भेदकं तदीयानामेव परिखाणां पूरयितारं तद्गतानां द्वाराणां भञ्जकं शीघ्रमेव देशान्निर्वासयेत् ।। २८८-२८९ ।।

(४) **राघवानन्दः**। किंचैवं राज्ञा कार्यमित्याह **बन्धनानीति**। **बन्धनानि** निगडादीनि असत्कार्यिणां भयप्रदर्शनार्थम् । यत्र येषु । दुःखिताः क्षुधाद्यार्ताः विकृताः हस्तादिच्छेददीर्घकेशलोमनखश्मश्रवः दृश्येरन् साधुचरितैरपि ।। २८८ ।।

(५) **नन्दनः**। पापकर्मणां पापनिवृत्त्युपायकारणमाह **बन्धनानि च सर्वाणीति**। बन्धनानि शृंखलादीनि यत्र बन्धनादिषु निमित्तेषु विकृताः ।। २८८ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। बन्धनानि बन्धनगृहाणि। यत्र राजमार्गे दुःखिताः दृश्येरन् विकृताकाराः ।। २८८ ।।

(७) **मणिरामः**। बंधनानि बंधनगृहाणि राजमार्गे सर्वजनदृश्यस्थाने निवेशयेत् कुर्यात्—यत्र स्थिताः पापकारिणः दुःखिताः विकृताश्च लोका दृश्येरन् । तेषां तादृशदुःखदर्शनादन्ये तथा न कुर्युरिति तात्पर्यं ॥ २८८ ॥

(९) **भारुचिः**। पृथग्जन्यस्य पापनिवृत्त्युपायोपदेशः ॥ २८८ ॥

**प्राकारस्य च भेत्तारं परिखाणां च पूरकम् ॥**
**द्वाराणां चैव भङ्क्तारं क्षिप्रमेव प्रवासयेत् ॥ २८९ ॥**

**[ एतेनैव तु कर्माणि श्रान्तः श्रान्तः पुनः पुनः। कर्माण्यारक्षमाणान्तु पुरुषं स्त्री निषेवते ॥ ]**

(१) **मेधातिथिः**। दुर्गगतानां प्राकारादीनां विनाशने प्रवासनं दण्डः। **परिखा** भूभागाः खाताः ॥ २८९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। द्वाराणां द्वारार्गलादीनाम् ॥ २८९ ॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच **प्राकारस्येति**। परिखाः परितः सजलखाताः। ते चेत्स्थास्यन्ति पुनः करिष्यन्तीति कृत्वा क्षिप्रं प्रवासनमिति ॥ २८९ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। द्वाराणां प्राकारादीनां ॥ २८९ ॥

(७) **मणिरामः**। प्राकारादयो राज्ञः ॥ २८९ ॥

(९) **भारुचिः**। पुरस्य राजकुलस्य दुर्गस्य वा प्रवासनमत्रोभयथा राजकार्यविरोधापेक्षया विज्ञेयम्। एवं च सत्यत्र राज्ञं स्वतन्त्रसंरक्षणत्वात् उपदेशस्य न नियोगेन व्यतिक्रमकारिणां वध उपदिश्यते ॥ २८९ ॥

**अभिचारेषु सर्वेषु कर्तव्यो द्विशतो दमः ॥**
**मूलकर्मणि चानाप्तैः कृत्यासु विविधासु च ॥ २९० ॥**

(१) **मेधातिथिः**। अदृष्टेनोपायेन मन्त्रादिशक्त्या मारणमभिचारः। तत्र प्रवृत्तानाममृतेऽभिचारणीये दण्डोऽयम्। अनभिचारणीयाभिचारेषु नैतावता मुच्यते तत्र। मनुष्यमारणदण्डः स विज्ञेयः। **सर्वग्रहणं** लौकिकवैदिकयोरविशेषेण दण्डार्थम्। वैदिकाः श्येनादयः। लौकिकाः पादपांशुग्रहणसूचीभेदनादयः। **मूलकर्म** वशीकरणादि। **आप्ताः** पौत्रभार्यादयस्ततोऽन्येऽनाप्ताः। **कृत्या** अभिचारप्रकारा एव मन्त्रादिशक्तयः, उच्चाटनं सुहृद्बन्धुकुलाद्धि विचित्तीकरणादिहेतवो भूतविद्याः प्रसिद्धाः ॥ २९० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अभिचारेषु विद्वेषोच्चाटनादिषु। अनाप्ते असंबन्धिनि विषये मूलकर्मणि सूनादिप्रयोगरूपवशीकरणकर्मणि। भर्त्रादौ तु संबन्धिनि वशीकरणे कृते न दोषः। अनाप्तैरिति पाठेऽसंबन्धिभिरित्यर्थः। कृत्यासु रोगाद्युत्पत्तिमातृग्रहाद्युत्थापने ॥ २९० ॥

(३) **कुल्लूकः**। अभिचारहोमादिषु शास्त्रीयेषु मारणोपायेषु लौकिकेषु च मूलनिखननपदपांशुग्रहणादिषु कृतेष्वनुत्पन्नमरणफलेषु द्विशतपणग्रहणरूपो दण्डः कर्तव्यः।

मरणे तु मानुषमारणदण्डः । एवं मातृपितृभार्यादिव्यतिरिक्तैरसत्यैर्व्यामोह्य धनग्रहणाद्यर्थं वशीकरणे। तथा कृत्यासूच्चाटनापाटवादिहेतुषु। क्रियमाणासु नानाप्रकारासु द्विशतपणदण्ड एव कर्तव्यः ।। २९० ।।

(४) **राघवानन्दः**। अभिचारेषु अभिचारहोमेषु श्येनसंदंशनादिषु। मूलकर्मणि वशीकरणाख्ये। अनाप्तैरनिपुणैः कृतेषु फलानुदये तत्कर्तृणां दण्ड इति वाक्यार्थः। कृत्यासूच्चाटनादिषु ।। २९० ।।

(५) **नन्दनः**। अनाप्तेऽनाप्तविषये वशीकरणे कृत्यासु उच्चारादिप्रक्रियासु ।। २९० ।।

(६) **रामचन्द्रः**। दमः मरणात् प्राक् मूलकर्मणि वशीकरणे सूनादिप्रयोगरूपवशीकर्मणि। अनाप्तैः मातापितृभार्याव्यतिरिक्तैः ।। २९० ।।

(७) **मणिरामः**। अभिचारेषु मारणोपायेषु कृते ह्यनुत्पन्नमरणेषु द्विशतो दमः कर्तव्यः। मरणे जाते तु मनुष्यमारणदंड एव कर्तव्यः। तथा अनाप्तैः पितृमातृभार्याव्यतिरिक्तैः मोहादित्वा धनग्रहणार्थं मूलकर्मणि वशीकरणरूपं कर्मणि वा तथा कृत्यासु नानाविधासु उच्चाटनादिषु च द्विशतो दम इत्यर्थः ।। २९० ।।

(९) **भारुचिः**। श्रुतिस्मृतिबाह्येष्वभिचारेषु खादिरसूचिनिखनपदपांसुग्रहणादिष्विदमुच्यते। अत्राभिचारार्हस्या(यं) दण्डो न विद्यते। तथायं प्रायश्चित्तं वक्ष्यति अनभिचरणीयस्याभिचारे–'अभिचारमहीनं च त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपोहतीति' मूलकर्मणि चानाप्तैः क्रियमाणेन मातृभगिन्यादिभिः अधिकारासाङ्गत्यासु च वेतालाद्यासु च भूतन्त्रविहितासु असंबन्धकृतास्वेव। अपरे तु सर्वग्रहणसामर्थ्यात् सर्वाभिचारेष्वेतद्दण्डमाहुः ।। २९० ।।

**अबीजविक्रयी चैव बीजोत्कृष्टा तथैव च ।।**
**मर्यादाभेदकश्चैव विकृतं प्राप्नुयाद्वधम् ।। २९१ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **अबीजं** बीजमित्युक्त्वा विक्रीणीते स्वरूपलोपेन। धान्यशाकादीनां बीजानि चिरप्रोषितानि क्षेत्रे प्ररोहन्ति न च तानि शक्यन्ते वन्ध्यानीति। क्षेत्रात्तु बीजमुत्कर्षति शोभनं यद्बीजं क्षिप्रं प्ररोहति तदुत्कृष्य तदाभासं प्रतिधान्यादि क्षिप्त्वा विक्रीणीते। अथवा न्युप्तं बीजं क्षेत्रादेवोद्धृत्य नयन्ति। **मर्यादा** शास्त्रदेशाचारनिरूढा स्थितिः। **विकृतं** कर्णनासादिकर्तनम् ।। २९१ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अबीजविक्रयी बीजमेतदित्युक्त्वा। बीजस्योत्कृष्टा बीजकाले महर्घताकामो त्वमर्यादाया ग्रामादिसमयस्य भेदकः। विकृतं कुत्सितं नासाच्छेदादि ।। २९१ ।।

(३) **कुल्लूकः**। अबीजं बीजप्ररोहासमर्थं व्रीह्यादि प्ररोहसमर्थमिति कृत्वा यो विक्रीणीते तथापकृष्टमेव कतिपयोत्कृष्टप्रक्षेपेण तत्सर्वमिदं सोत्कर्षमिति कृत्वा यो विक्रीणीते यश्च ग्रामनगरादिसीमां विनाशयति स विकृतनासाकरचरणकर्णादिरूपं वधं प्राप्नुयात् ।। २९१ ।।

(४) **राघवानन्दः**। अपि चैते वधार्हा इत्याह **अबीजेति** द्वाभ्याम्। अबीजविक्रयी मूषिकाघ्रातादिना दूषितान्यपि बीजानि प्रशस्तानीति विख्याप्य विक्रयी। बीजोत्कृष्टा

अपकृष्टं कतिचित्तत उत्कृष्टे प्रक्षिप्य विक्रयी। मर्यादाभेदकः मर्यादा ग्रामचतुष्टयावच्छेदिका सीमा तन्नाशकः। विकृतं नासाच्छेदादि ॥ २९१ ॥

(५) **नन्दनः**। अबीजविक्रयी बीजाभासविक्रयी बीजोत्कृष्टोप्तानां बीजानामुद्धर्ता ॥ २९१ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। बीजमेतदित्युक्त्वाऽबीजविक्रयी। तथैव बीजोत्कृष्टा अन्यद्रव्यमेलकः बीजमहार्घकर्ता ॥ २९१ ॥

(७) **मणिरामः**। अबीजं क्षेत्रे वप्तुमयोग्यं व्रीह्यादियोग्यमिति कृत्वा यो विक्रीणाति स अबीजविक्रयी तथा निकृष्टबीजे कतिचिदुत्कृष्टबीजप्रक्षेपेण सर्वमिदमुत्कृष्टमिति कृत्वा यो विक्रीणीते सः बीजोत्कृष्टा। तथा ग्रामनगरादिसीमां यो नाशयति स मर्यादाभेदकः। विकृतं करचरणनासाकर्णादिकर्तनरूपं वधं प्राप्नुयात् ॥ २९१ ॥

(९) **भारुचिः**। बीजमिति कृत्वा बीजं यो विक्रीणीतेऽर्थिनश्च क्रेतॄन् दृष्ट्वा यो बीजमूल्यतः उत्कर्षं नयति। मर्यादाश्च क्षेत्रकेदारगताः यो भिनत्ति, न ग्रामदेशसङ्गमर्यादाः बीजक्रयविक्रयादिसाहचर्यात् स कर्णनासाच्छेदनाख्यं विकृतत्वकरणमर्हति। अपराधसमुच्चयेन सानुबन्धेन च मारणम्, येन नहि दृष्टयोजन इयान्निग्रह उपपद्यते, अयमपि दण्डो न नियमः स्यादेतेष्वेवापराधेषु दृष्टार्थत्वादस्य निग्रहो निग्रहोपदेशस्य ॥ २९१ ॥

**सर्वकण्टकपापिष्ठं हेमकारं तु पार्थिवः ॥**
**प्रवर्तमानमन्याये छेदयेत्खण्डशः क्षुरैः ॥ २९२ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। यावन्तः केचन कण्टकाः पूर्वमुक्तास्तेषां पापतमः सुवर्णकारः। यदि निर्धारणे षष्ठी। कथं न "न निर्धारण" इति समासाभावः ? तस्य च पापतमत्वं स्वल्पेनैवापहरणेन महत एनसोत्पत्तिर्ब्राह्मणस्वर्णापहरणे च महापातकम्। अत**स्तमन्याये प्रवर्तमानं छेदयेत्खण्डशः**। परिवर्तनतुलान्तरतापच्छेदादिभिः अपहरन्ति गृह्णते। न चात्र ह्रियमाणद्रव्यपरिमाणापेक्षा, न स्वामिजात्यपेक्षा। अभ्यासस्त्वपेक्ष्यत इति, महत्त्वाद्दण्डस्य। आद्यायां तु प्रवृत्तौ धनदण्डेन क्षुरमांसलवच्छेदो विनिमातव्यः। शारीरनिग्रहे निगृह्यमाणानां पापमपैतीति प्रतिपादितम् ॥ २९२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। सर्वेभ्यः कण्टकेभ्यः क्षुद्रशत्रुभ्यः पापिष्ठम् ॥ २९२ ॥

(३) **कुल्लूकः**। सर्वकण्टकानां मध्येऽतिशयेन **पापतमं सुवर्णकारं** तुलाच्छन्नकषपरिवर्तापद्रव्यप्रक्षेपादिना हेमादिचौर्ये प्रवर्तमानमनुबन्धापेक्षयाङ्गाविशेषेण सर्वदेहं वा **खण्डशश्छेदयेत्** ॥ २९२ ॥

(४) **राघवानन्दः**। सर्वकंटकानां मध्ये अतिशयेन पापतमं हेमकारं हेम्ना व्यवहर्तुं शीलमस्य। अन्याये चौर्यापद्रव्यादिमिश्रणे। लवशो लवं लवं कृत्वा ॥ २९२ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **सर्वकण्टकपापिष्ठं हेम्नः** तुलार्थं लोहस्य कण्टकं तस्मिन्कण्टके माषकण्टके माषकृष्णलमन्यथाकारीति पापिष्ठं हेमकारं स्वर्णकारं एवं अन्याये वर्तमानं लवशः **खण्डशः क्षुरैः छेदयेत्** ॥ २९२ ॥

(७) **मणिरामः**। सर्वकंटकपापिष्ठं सर्ववंचकानां मध्ये अतिशयेन पापतमं। हेमकारं स्वर्णकारं। अन्याये प्रवर्तमानम् ॥ २९२ ॥

(९) **भारुचिः**। सर्ववर्णेऽप्यसुवर्णापहारप्रवृत्ते ब्राह्मणसुवर्णापहरणे वा महापातकाभ्यासशीलस्येदमुच्यते। तं निघर्षपरिवर्तनं तु वा सञ्चरणादिन्यायेषु प्रवृत्तं 'येन येन यदङ्गेने'(८।३३४) त्यनया परिभाषया जिव्हाहस्तपादशिरश्चक्षुरादीनां सुवर्णगुप्तिं कुर्वन्तं लवशो घातयेत्। अपराधाभ्यासानुबन्धेन। अपरे त्वाहु :—सर्ववर्णसुवर्णापहरण एतदुच्यते—हेमकर्तुः बहुत्वाल्पत्वापेक्षयाऽयं छेदनोपदेशः प्रदर्शनार्थः, अपरे तु सुवर्णकारस्यापीदं न शोधनमित्युपदिशन्ति। रक्षितापहरणेऽपि सुराप्रायश्चित्तवत् ॥ २९२ ॥

**सीताद्रव्यापहरणे शस्त्राणामौषधस्य च ॥**
**कालमासाद्य कार्यं च राजा दण्डं प्रकल्पयेत् ॥ २९३ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। कृष्यमाणा भूमिः **सीता**। तद्द्रव्याणि लाङ्गलकुद्दालकादीनि। तदपहरणे दण्डः प्रकल्प्यः। किं इच्छयैव ? नेत्याह **कालमासाद्य कार्यं च**। कर्षणकाले प्रत्यासन्ने महान् दण्डः। अकृष्टे च यदा तस्मिन्महतः फलस्य नाशस्तदा भूयानेव। **आसाद्यासन्नं** ज्ञात्वेत्यर्थः, अन्यदा तु द्रव्ये जात्यनुरूपः। एवं **शस्त्राणां** च खड्गादीनां युद्धकाले। **औषधस्य** भेषजार्थमुपयोगकाले। तेन चौषधेन हृतेनानुपयुक्तेन यद्यातुरस्य महती पीडा जायते, अन्यच्च तस्मिन्काले न लभ्यते, तल्लभ्यमपि बाधकादिसंस्कारापेक्षया चिरेणोपयोगार्थम्, एवमाद्यपेक्षा राजदण्डप्रकल्पनायै प्रभवेत्। **शस्त्राणां** राजोपकरणानाम् अन्यथापि जनपदस्य भ्रातृव्यतस्कराशङ्कनः। तदा महान्दण्डः। स्वल्पे स्वल्पः ॥ २९३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **सीताद्रव्यं** हलादि। **शस्त्राणां** औषधिद्रव्याणाम्, शस्त्राणामिति क्वचित् (पाठः)। कालं कृषिसमयादिं **कार्यं** दुर्भिक्षादिना बहुप्रयोजनतां ज्ञात्वा दण्डतारतम्यं कुर्यात् ॥ २९३ ॥

(३) **कुल्लूकः**। कृष्यमाणभूमिद्रव्याणां हलकुद्दालादीनामपहरणे खड्गादीनां च शस्त्राणामौषधस्य च कल्याणघृतादेः चौर्ये सत्युपयोगकालेतरकालापेक्षया प्रयोजनापेक्षया च **राजा दण्डं कुर्यात्** ॥ २९३ ॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच केषुचिद्द्रव्येषु दण्डमात्रमित्याह **सीतेति**। सीताद्रव्यापहरणे लाङ्गलादीनां हरणे। औषधस्य कल्याणघृतादेः। कालं अपहृतद्रव्याप्राप्तिकाले सुभिक्षादौ दुर्भिक्षादौ न दण्ड इति भावः ॥ २९३ ॥

(५) **नन्दनः**। सीताद्रव्याणि हलयुगयोग्यफालादीनि आसाद्य बुद्धता कार्यं च गुर्विदमिति ॥ २९३ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। सीताद्रव्यापहरणे हलादिद्रव्यापहारे शस्त्राणां **औषधस्य** अपहरणे **कालं** वर्षाकालं **आसाद्य** प्राप्य च पुनः **कार्यं औषधस्य आसाद्य** शस्त्रस्य कार्यं **आसाद्य राजा दण्डयेत्** ॥ २९३ ॥

(७) **मणिरामः**। सीताद्रव्यापहरणे कृष्यमाणभूमिद्रवाणां हलकुद्दालादीनां अपहरणे ॥ २९३ ॥

(९) **भारुचिः**। राजा यथेष्टं कुर्यात्। तदपराधनिवृत्तिहेतु**मन्येषामिति** ॥ २९३ ॥

**स्वाम्यमात्यौ पुरं राष्ट्रं कोशदण्डौ सुहृत्तथा ॥**
**सप्त प्रकृतयो ह्येताः सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते ॥ २९४ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। समाप्तायां कण्टकशुद्धौ केवलं राज्यतन्त्रोपयोगी राजधर्म उच्यते। यथैतस्मिन्ननुष्ठीयमाने राज्यनाशः, एवं व्यवहारदर्शने कण्टकशुद्धौ वा क्रियमाणायां तुल्यो राज्यानाशः। किं च महिषीकुमारराजवल्लभसेनाध्यक्षाश्रिताः प्रायेण भवन्ति कण्टकाः, तान् कदाचिदनया बुद्धचा नोद्धरेत् 'प्रकृतक्षोभशङ्कायां महत्तमं प्रयोजनं सेनाध्यक्षेण सामन्तेन च,—किमनेन निगृहीतेन राष्ट्रापराधिना?'—तदर्थमुच्यते। तुल्यं राष्ट्रं स्वाम्यादिनेति राज्यप्रकृतित्वेन गुरुलघुभावश्च। प्रकृतीनामेवार्थमुच्यते। यदि महान् क्षोभोऽमात्यादिति राज्यप्रकृतित्वेन तत्परिहर्तव्यम्। राष्ट्रं ततो दुर्बलं केनचिदुपायेन वा बोधयित्वा कण्टकशुद्धिं करिष्यामीति न सहसा प्रवर्तितव्यम्। अतः सप्तमाध्यायोपदेशतोऽप्युत्कृष्यास्मिन्नवधा बुध्यते। **स्वामी** राजैव। **अमात्यो** मन्त्री पुरोहितः सेनानी। **पुरं** निवासनगरम्। **राष्ट्रं** जनपदाः। **कोशो** रूप्यसुवर्णरूपकादिधनसंचयः। हस्त्यश्वरथपादातं **दण्डः** धर्मदंडादिव। **सुहृत्समान**कार्यः। यथोक्तं "मित्रं तस्मादनन्तरमिति"। **एता** राज्यस्य **प्रकृतयः** कारणम्, अवयवा यथा घटस्य कपालानि। स्वभाववचनो वा प्रकृतिशब्दः। एवं तदात्मकमेव राज्यं समस्तं क्षिप्तम्। अस्यैव भेदो विस्तारो द्वासप्ततिस्तत्रापि यो भेदः स उक्त एव ॥ २९४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **स्वामी** राजा। **अमात्या** मन्त्र्यादयः। **पुरं** दुर्गीभूतमात्मनः शिबिरम्। **राष्ट्रं** जानपदाजनः। **कोषो** धनं। **दण्डो** दण्डप्रणयनजं तेजः। **सन्मित्रं**। प्रकृतयोऽवयवतया तत्समुदायरूपस्य राज्यस्योत्पादनादिसमस्तं मिलितं अवयविस्थानीयं **राज्यमुच्यते** ॥ २९४ ॥

(३) **कुल्लूकः**। **स्वामी** राजा। **अमात्यो** मन्त्र्यादिः। पुरं राज्ञः कृतदुर्गनिवासनगरं। **राष्ट्रं** देशः। **कोशो** वित्तनिचयः। दण्डो हस्त्यश्वरथपादातं। मित्रं त्रिविधं सप्तमाध्यायोक्तमित्येताः सप्त प्रकृतयो अङ्गानि सप्ताङ्गमिदं राज्यमित्युच्यते ॥ २९४ ॥

(४) **राघवानन्दः**। प्रकृतिसंपन्न इत्यादौ कति प्रकृतय इत्यपेक्षां पूरयन्नह **स्वामीति**। **स्वामी राजा**। **अमात्याः** प्रकृतयः। **पुरं** राजाधिवसतिः। **राष्ट्रं** देशः। **कोशो** धनम्। दण्डो हस्त्यश्वरथपादातमिति। अथवोत्तमसा हसादिहस्त्यादीनां राजन्यन्तर्गतत्वात् तं विना राजत्वानुपपत्तेः। **सुहृत्सप्तमाध्यायोक्तस्त्रिविधः**। दूतो वा ॥ २९४ ॥

(५) **नन्दनः**। एवं कण्टकशोधनमुक्तं । अथ राजधर्मानुक्तशिष्टान्वक्तुमुपक्रमते **स्वाम्यमात्याविति** ।। २९४ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **स्वामी** महोत्साह इत्युक्तलक्षणो महीपतिः, अमात्या मन्त्रिपुरोहितादयः **पुरं** समृद्धं **राष्ट्रं**, दुर्गं धन्वदुर्गादि, **कोशः** सुवर्णादिद्रव्यराशिः, **दण्डः** हस्त्यश्वरथपत्तिलक्षणं चतुरङ्गबलं **सुहृन्मित्राणि एताः सप्त प्रकृतयो** राज्यस्य अथवा समस्तं **राज्यमुच्यते** ।। २९४ ।।

(७) **मणिरामः**। **दण्डः** हस्त्यश्वरथपादातरूपं बलं ।। २९४ ।।

**सप्तानां प्रकृतीनां तु राज्यस्यासां यथाक्रमम् ।।**
**पूर्वं पूर्वं गुरुतरं जानीयाद्व्यसनं महत् ।। २९५ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। मित्रव्यसनात्स्वव्यसनं गरीयः। स्वबलसंपन्नो हि शक्नोति मित्रमनुग्रहीतुम् । एवं दण्डकोशयोः। कोशनाशे हि दण्डोऽपि नश्यत्येव। एवं कोशराष्ट्रयोः राष्ट्रनाशे हि कुतः कोशोत्पत्तिः। पुनः राष्ट्रविनाशंकार्या पुरं यत्ततो रक्षितव्यम् । तत्र हि सर्वावयवसाधनादि संभवति । पुरादमात्यः प्रधानम् । प्रधानामात्यनाशे सर्वनाशः तथा च दृष्टान्तः। ।।२९५ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **ससप्तानां प्रकृतीनां** द्वयोस्तिसृणां वा व्यसने पूर्वं पूर्वं (प्रथमतश्चिकित्स्यं गुरुत्वादित्यर्थः)' ।। २९५ ।।

(३) **कुल्लूकः**। ततः किमित्याह **सप्तेति**। आसां राज्यप्रकृतीनां सप्तानां क्रमोक्तानामुत्तरस्याविनाशमपेक्ष्य पूर्वस्याः पूर्वस्या विनाशविषये **गरीयो व्यसनं जानीयात्**। तथा हि मित्रव्यसनात्स्वबलव्यसनं गरीयः; संपन्नबलस्यैव मित्रानुग्रहे सामर्थ्यात् । एवं बलात्कोशो गरीयान्, कोशनाशे बलस्यापि नाशात्कोशाद्राष्ट्रं गरीयो, राष्ट्रनाशे कुतः कोशोत्पत्तिः? एवं राष्ट्राद्दुर्गनाशोऽपि, दुर्गादेव यवसेन्धनादिसंपन्नाद्राज्यरक्षासिद्धिः, दुर्गादमात्यो गरीयान्प्रधानामात्यनाशे सर्वाङ्गवैकल्यात्, अमात्यादप्यात्मा, सर्वस्यात्मार्थत्वात्तस्मादुत्तरापेक्षया पूर्वं यत्नतो रक्षेत् ।।२९५।।

(४) **राघवानन्दः**। भवतु राज्यं, ततः किं तत्राह **सप्तेति**। आसां प्रकृतीनां मध्ये सुहृद्व्यसनाद्दण्डव्यसनं गरीय इत्येवं पूर्वं पूर्वं स्वाम्यन्तं बोद्धव्यम् ।। २९५ ।।

(५) **नन्दनः**। **व्यसनं** वैकल्यं **पूर्वं पूर्वं** गुरुतरं सुहृद्व्यसनाद्दण्डव्यसनं गुरुतरमित्यादि ।। २९५ ।।

(७) **मणिरामः**। आसां राज्यप्रकृतीनां सप्तानां यथाक्रमं पूर्वं पूर्वं व्यसनं गुरुतरं जानीयात्। यथा मित्रव्यसनात् बलव्यसनं गरीयः। मित्रनाशेऽपि बलसत्वे विजयादिसामर्थ्यसत्वात् । एवं बलात् कोषो गरीयान् । कोषनाशे सेनाया अपि नाशात् । एवमग्रेऽपि बोध्यं ।। २९५ ।।

(९) **भारुचिः**। अस्योपदेशप्रयोजनं स्वाम्यादीनां पूर्वस्मिन् पूर्वस्मिन् व्यसनं गुरुतरं राज्यतन्त्रविनाशकरणं परिज्ञाय परिहरेत् नृप इति ।।२९५।।

**सप्ताङ्गस्येह राज्यस्य विष्टब्धस्य त्रिदण्डवत् ॥**
**अन्योन्यगुणवैशेष्यान्न किंचिदतिरिच्यते ॥ २९६ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **विष्टब्धस्य त्रिदण्डवदिति**। विष्टब्धस्यान्योन्यस्याधारभावेन। एतदेवाह **अन्योन्यगुणवैशेष्यात्** परस्परस्योपकार्योपकारकाभावेनैकैकस्य न विनाशोत्पत्तेः भूमिबीजोदकसामग्र्या इव अंकुरजनने। तस्मात्सर्वेषां पूज्यताऽत्रोच्यते। अस्त्येवात्र गुरुलघुभावः। यत्तु **न किंचिदतिरिच्यत** इति तन्महतादरेण **मित्रादिरक्षायां** वर्तितव्यमित्येवंपरमेतत्। मित्रनाशेऽचिरेण राज्यनाशो यदा बलवतोपरोधो न तु तदानीमेवेत्यालंबनं लघीयस्तायाः ॥ २९६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। (नचैवं तत्तदुत्तरप्रकृतिव्यसने न प्रतिकर्तव्यमेव, स्वकार्ये सर्वप्राधान्यादित्याह **सप्ताङ्गस्येति**। विष्टब्ध)स्यान्योन्याधारतया। त्रिदण्डवदन्योन्याष्टम्भगृहादिदण्डत्रयवत्। अन्योन्यगुणवैशिष्ट्यात् स्वस्वगुणेन सर्वासां वैशिष्ट्यात् **न किंचिद्व्यसनमतिरिच्यते** अतितुच्छताजातिचारानर्हत्वं भवतीत्यर्थः ॥ २९६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। उक्तसप्ताङ्गवतो लोके राष्ट्रस्य त्रिदण्डवदन्योन्यसंबन्धस्य परस्परविलक्षणोपकारणान्न किंचिदङ्गमधिकं भवति, यद्यपि पूर्वश्लोके पूर्वपूर्वाङ्गस्याधिक्यमुक्तं तथाप्येषामङ्गानां मध्यादन्यस्याङ्गसंबन्धिनमपकारमन्यदङ्गं कर्तुं न शक्नोति, तस्मादुत्तरोत्तराङ्गमप्यपेक्षणीयमित्येवंपरोऽयमाधिक्यनिषेधः अत्र। प्रसिद्धं यतित्रिदण्डमेव दृष्टान्तः तद्धि चतुरङ्गुलगोवालवेष्टनादन्योन्यसंबन्धं। नच तन्मध्ये त्रिदण्डधारणशास्त्रार्थे कश्चिद्दण्डोऽधिको भवति ॥ २९६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच **सप्तेति**। सप्तस्वाम्यादयोऽङ्गं परस्परसहकारि यस्य तस्य सप्ताङ्गस्य विष्टब्धस्य विष्टम्भनरूपस्य अन्योन्यगुणवैशेष्यात्। अन्योन्येन गुणानां स्वाम्यादीनां परस्परोपकारितालक्षणगुणवैशेष्यात् राज्यं स्यात् स्वातन्त्र्ये तु न किंचित्सिध्येत्। यद्यप्यत्र पूर्वं पूर्वं गुरुतरमित्युक्तं तथापि राज्यलक्षणकार्येन कस्यापि प्राधान्यमिति। अत एव दृष्टान्तः **त्रिदण्डवत्** ते हि भ्रम्यादौ स्वतन्त्रा अपि घटधारणादौ न कस्यापि स्वातन्त्र्यमिति भावः ॥ २९६ ॥

(५) **नन्दनः**। त्रिदण्डवद्विष्टब्धस्य दण्डत्रयवदन्योन्यापाश्रयेण स्थितस्य न किंचिदङ्गमतिरिच्यते, सर्वाण्यङ्गानि तुल्यगुणानीत्यर्थः ॥ २९६ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। विष्टब्धस्य अन्योन्यसापेक्षस्य त्रिदण्डवत् अन्योन्याधारभूतदण्डत्रयवत् राज्यस्य सप्तानां प्रकृतीनां यथाक्रमं अन्योन्यगुणवैशिष्ट्यान्न किंचिदतिरिच्यते ॥ २९६ ॥

(७) **मणिरामः**। सप्तांगस्य उक्तसप्तांगवतो राष्ट्रस्य। इह लोके। त्रिदंडवत् संन्यासित्रिदंडवत्। विशिष्टस्य मिलितस्य। अन्योन्यगुणवैशेष्यात् परस्परविलक्षणोपकारकरणात्। न किंचिदतिरिच्यते न किंचिदंगमधिकं भवति। यथा त्रिदंडधारणशास्त्रार्थे गोवालवेष्टिनां परस्परमिलितानां त्रिदंडानां मध्ये कस्यापि दंडस्य नाधिक्यता भवति, तथा

सप्तप्रकृतीनामप्युत्तरोत्तरसापेक्षत्वात्सर्वासां समानतो। तस्मादुत्तरोत्तरा ऽभावे पूर्वं पूर्वं व्यर्थमिति ज्ञेयं ।। २९६ ।।

(९) **भारुचिः**। स्वविषयनियमादिन्द्रियवत् एवं च सति ।। २९६ ।।

**तेषु तेषु तु कृत्येषु तत्तदङ्गं विशिष्यते ।।**
**येन यत्साध्यते कार्यं तत्तस्मिन् श्रेष्ठमुच्यते ।। २९७ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। नास्ति तद्वस्तु यद्राज्ञो नोपयुज्यते। भवति हि तत्कार्यं यन्निकृष्टेन साध्यते न महता। तस्मात्सर्वाः प्रकृतयो यत्नतः पालनीयाः, असद्दण्डादिना न राष्ट्रं कर्शनीयम्, चौराद्युपद्रवेभ्यश्च यत्नतो रक्ष्यमिति तात्पर्यार्थः। अतः कण्टकशुद्धिशेषोऽयम् ।। २९७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। तदेवाह **तेषु तेष्विति**। तत्तन्मात्रसंपाद्येष्वित्यर्थः। येन यदिति पूर्वार्धार्थस्यैव स्फुटार्थप्रपञ्चनम् ।। २९७ ।।

(३) **कुल्लूकः**। यस्मात्तेषु **तेषु** संपाद्येषु कार्येषु तत्तदङ्गस्यातिशयो भवति तत्कार्यमन्येन कर्तुमशक्तेः। एवं च येनाङ्गेन यत्कार्यं संपाद्यते तस्मिन्कार्ये तदेव प्रधानमुच्यते। ततश्चान्योन्यगुणविशेषादि यदुक्तं तदेवानेन स्फुटीकृतम् ।। २९७ ।।

(४) **राघवानन्दः**। तत्रैव क्षितिसलिलबीजन्यायमाह **तेषु तेष्विति**। **कृत्येषु** साध्येषु विशिष्यते, प्रधानतयेति शेषः। साधनायत्तत्वात्साध्यस्य तद्यथा अङ्कुरस्य बीजावयवं तूपादानमेवं राजा सर्वत्र प्रधानम्। यथा क्षितिरङ्कुरधारणे एवं पुरम्। सलिलं यथा तदुच्छूनतयायमेव दण्डो रक्षाहेतुः। यथा पवनः परिणामहेतुतया वृद्धेर्हेतुरेवं कोशः। यथा तत्र तेजः परिपाकहेतुरेवमेवामात्यः, एवमन्यत् ।। २९७ ।।

(५) **नन्दनः**। अत्र हेतुमाह **तेषु तेषु चेति** तदङ्गं तस्मिन्कार्ये ।। २९७ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। येनाङ्गेन यत्कार्यं साध्यते तदङ्गं तस्मिन्कार्ये श्रेष्ठमुच्यते ।। २९७ ।।

(७) **मणिरामः**। इदानीं पूर्वश्लोकद्वयोक्तस्य विशेषसिद्धांतमाह **तेषु** इति। तथा च येनांऽगेन यत्कार्यं क्रियते तस्मिन्कार्ये तदेव प्रधानमिति सिद्धं ।। २९७ ।।

(९) **भारुचिः**। भवति हि तत्कार्यं राज्ञो यत्र लघीयानपि प्रकृतिपदार्थो गरीयान् भवति। तस्मात् सर्व एवैते सर्वदा समीक्षितव्याः तत्पुरुषाश्च। एवमर्थश्चायं पुनरिहोपदेशो राजप्रकृतीनाम्। यस्मात् प्रायेण हि राज्यकण्टका अमात्यादिप्रकृतिसंश्रिया ।। २९७ ।।

**चारेणोत्साहयोगेन क्रिययैव च कर्मणाम् ।।**
**स्वशक्तिं परशक्तिं च नित्यं विद्यात् परात्मनोः ।। २९८ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **परस्यात्मनश्च नित्यं शक्तिं विद्यात्**। 'किमयं प्रारिप्सते, किंच मयि कर्तुं शक्तं, किं चाहमस्मिन्निति'—एतन्नित्यं वेदितव्यम्। कथं चैतच्छक्यते वेदितुम् च **चारेण** सप्तमाध्यायोक्तेन। **उत्साहयोगेन** दानादिपरितोषिता उत्साहेन युज्यन्ते संपन्न-

कृष्यादिफलाश्च। **क्रियायैव च कर्मणाम्**। 'कर्माणि' निवेशादीनि, तदारंभेन शक्तिमान् रिपुरवगम्यते। तानि ह्यर्थसंपत्कराणि। ततः सामर्थ्योत्पत्तेः ।। २९८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **परात्मनोः** शत्रोः स्वस्य च स्वशक्तिं स्वामिगतां शक्तिं प्रभावोत्साहमन्त्रजां परशक्तिममात्यादिषडङ्गशक्तिं गताम्। **चारेण** चरेण। उत्साहयोगेनोद्यमदर्शनेन। कर्मणां कार्याणां क्रियया निष्पादनेन कर्मणां फलान्तरदर्शनरूपेण च विद्यात् अहमशक्तोऽन्यो वेति ।। २९८ ।।

(३) **कुल्लूकः**। सप्तमाध्यायोक्तकापटिकादिना बलस्योत्साहयोगेन कर्मणां च हस्तिबन्धवणिक्पथादीनामनुष्ठानेन जातां शत्रोरात्मनश्च शक्तिं राजा सदा जानीयात् ।। २९८ ।।

(४) **राघवानन्दः**। संप्रति चारस्य कृत्यमाह **चारेणेति**। **चारेणोत्साहयोगेन** चाराणां कृतकार्याणां वस्त्रालंकारादिप्रसादेनोत्साहः तेषामेव च कार्यार्थं पुनःसंयोगश्च तेन **परशक्तिं** जानीयात्, स्वशक्तिं तु कर्मणां हस्तिबन्धशत्रुवशीकारादीनां क्रिययाऽनुष्ठानेन ।। २९८ ।।

(५) **नन्दनः**। **परात्मनोः** शत्रोरात्मनश्च **स्वशक्तिं** स्वपरिकरशक्तिं **परस्यान्यस्य मित्रादेः शक्तिं** च चारेणोत्साहयोगेन अतन्द्रितत्वेन **कर्मणा** क्रियया **विद्यात्** चारेणेत्याप्तवचनमत्र विवक्षितं, **उत्साहयोगेनेति**। प्रत्यक्षकर्मणां क्रिययेत्यनुमानम् ।। २९८ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। **चारेण** चारस्य प्रेषणेन **उत्साहयोगेन** उद्यमदर्शनेन पदातीनां **क्रिययैव च पुनः** कर्मणां वणिक्पथादीनां स्वशक्तिं **पूर्वं पूर्वं अस्य** राज्यस्य **सप्तानां प्रकृतीनां अवयवानां** यथाक्रमं एवं परात्मनः परः शत्रुः तस्य **आत्मनः शक्तिं नित्यं विद्यात्** ।। २९८ ।।

(७) **मणिरामः**। **चारेण** पूर्वोक्तकापटिकादिना। उत्साहयोगादिकसैनिकादीनां ।। २९८–२९९ ।।

**पीडनानि च सर्वाणि व्यसनानि तथैव च ।।**
**आरभेत ततः कार्यं संचिन्त्य गुरुलाघवम् ।। २९९ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **पीडनानि** नरकदुर्भिक्षपातादीनि। तथाऽवर्षादिवर्षपर्जन्यमूषिकशलभाशनिप्रभृतयः। **व्यसनानि** कामक्रोधसमुत्थानि स्वपुत्रसंप्राप्तदैवविघटनयोपन्यासेन वा। तथापि न नित्यमुत्साहेन भवितव्यम्। अथवा न संतोषिणा भवितव्यम्। अथ तावत्षाड्गुण्यचिन्ता, अन्वाहिकौ चायव्ययौ, कयाचिन्मात्रया गतौ च राष्ट्रवृत्तं प्रकृतिसमीहितं चारमुखादवधृतम्। नृत्यगीतादिसुखानुभवव्यापारान्तरेण वा पुनः कर्माणि वेदितव्यानि ।। २९९ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। पीडनानि परपुरोपरोधनादीनि व्यसनानि राष्ट्रभङ्गामात्योपजापादीनि परस्य विद्यात्। गुरुलाघवं गुरुत्वलघुत्वे संचिन्त्य कार्यमारभेत ।। २९९ ।।

(३) **कुल्लूकः**। पीडनानि मारकादीनि कामक्रोधोद्भवानि दुःखानि च स्वपरचक्रगतानि तेषां च गुरुलघुभावं पर्यालोच्य सन्धिविग्रहादिकार्यमारभेत ।। २९९ ।।

(४) **राघवानन्दः**। किंच **पीडनानीति**। पीडनानि परराष्ट्रे दुर्भिक्षमारणानि। व्यसनानि प्रकृतिक्रोधजादीनि। कार्यं सन्धिविग्रहादिबलवति शत्रौ सन्धिर्गुरुरप्यनुष्ठेयः, स्वरक्षाहेतुत्वात्। क्षीणे तस्मिन्नानुष्ठेयः आपन्नकालत्वात् ॥ २९९ ॥

(५) **नन्दनः**। पीडनान्यात्मनः परकृतानि व्यसनानि द्यूतादीनि विद्यादित्यनुकृष्यते। गुरुलाघवतः गौरवेण लाघवेन च विविच्य कर्तव्यं कुर्यात् ॥ २९९ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। पुरोपरोधादीनि सर्वाणि व्यसनानि राष्ट्रभङ्गामात्योपायादीनि तथैव जानीयात्। ततः कार्यं संधिविग्रहादिगुरुलाघवं संचिन्त्य आरभेत ॥ २९९ ॥

(९) **भारुचिः**। पीडनानि जगताम् अशनिपातदुर्भिक्षादीनि स्वकृतानि व्यसनानि (त्रीणि) देहदैवात्मगतानि क्षयहेतूनि ज्ञात्वा लोकस्य गुरुलाघवतः। ततो दण्डगुरुमलघुत्वं समाचरेत् नृपतिर्नाविशेषेण, एवं च राजधर्मेषु वर्तमानो यावज्जीवम् ॥ २९९ ॥

**आरभेतैव कर्माणि श्रान्तः श्रान्तः पुनः पुनः ॥**
**कर्माण्यारभमाणं हि पुरुषं श्रीर्निषेवते ॥ ३०० ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **पुरुषग्रहणं** 'तिष्ठतु तावद्राजा' अन्योऽपि जानपद उद्योगश्रियोपचीयते। एतदुक्तम् "आमृत्योः श्रियमन्विच्छेत्" इति ॥ ३०० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। कर्माणि राज्यरक्षादीनि ॥ ३०० ॥

(३) **कुल्लूकः**। राजा स्वराज्यवृद्धिपरापचयनिमित्तानि कार्याणि कथंचिदिदं संजातमिति छलान्यप्यारभ्यात्मना खिन्नः पुनः पुनस्तान्यारभेतैव, यस्मात्कर्माणि सृज्यमानं पुरुषं श्रीर्नितरां सेवते, तथा नाऽऽह्मणे नानाश्रये श्रीरस्तीति प्ररोहितापि शोषमेति। न च युगानुरूपेण कर्माणि फलन्तीति राज्ञोदासितव्यम् ॥ ३०० ॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच नृपो न कृतार्थमन्यः स्यादित्याह **आरभेतेति**। श्रान्तः संजातफलोऽपि श्रान्तः खिन्नः असंपूर्णमिवात्मानं मन्यमानः। एवंविधं नृपतिं श्रीर्लक्ष्मीः निषेवते नितरां सेवते। 'उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी'रिति न्यायात् ॥ ३०० ॥

(६) **रामचन्द्रः**। श्रान्तः कर्मकरणेन ॥ ३०० ॥

(७) **मणिरामः**। कर्माणि स्वराज्यवृद्धि-पराऽपचयकर्माणि ॥ ३०० ॥

**कृतं त्रेतायुगं चैव द्वापरं कलिरेव च ॥**
**राज्ञो वृत्तानि सर्वाणि राजा हि युगमुच्यते ॥ ३०१ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। इतश्च कर्मारंभपरेण भवितव्यम्। अनारंभी कलिः स्यात्। स च महान्दोषः। न चैवं मन्तव्यं राज्ञा 'कलिर्नाम कालविशेष इतिहासप्रसिद्धः, कथमहं स्यामिति' यतो **राज्ञो वृत्तानि** युगादि। तदुत्तरेण निर्दिश्यते ॥ ३०१ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। राज्ञो वृत्तानि राजचरितान्येवैतानि ॥ ३०१ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यतः **कृतमिति**। कृतत्रेताद्वापरकलयो राज्ञ एव चेष्टितविशेषास्तैरेव सत्यादिविशेषप्रवृत्तैः। तस्माद्राजैव कृतादियुगमभिधीयते ॥ ३०१ ॥

(४) **राघवानन्दः**। राजा हि कृतादिचतुष्टयस्य धर्मप्रवर्तकत्वेन तद्रूपमित्याह **कृतमिति** ॥ ३०१ ॥

(५) **नन्दनः**। राज्ञः कर्मणामारंभविशेषेण युगविशेषोऽपीत्याह **कृतं त्रेतायुगं चैवेति**। राज्ञो वृत्तानि राज्ञः संबन्धीनि वृत्तानि ॥ ३०१ ॥

(७) **मणिरामः**। राज्ञो वृत्तानि राजचेष्टितानि ॥ ३०१ ॥

**कलिः प्रसुप्तो भवति सजाग्रद्द्वापरं युगम् ॥**
**कर्मस्वभ्युद्यतस्त्रेता विचरंस्तु कृतं युगम् ॥ ३०२ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। अनुत्थानशीलः **प्रसुप्तः कलि**र्भवति। जानानश्चोत्कर्षाभ्युपायाननुत्तिष्ठन्**सजाग्रद्द्वापरं** भवति। व्यक्तिकर्मप्रयोगस्**त्रेता**युगं भवति। विश्वस्य सर्वरूपाणि यथाशास्त्रं कर्मफलसंपदा **कृतयुगं** भवति ॥ ३०२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। कथं तदित्यत आह **कलि**रिति। प्रसुप्तोऽनवेक्षितराज्यः तदा कलिदोषप्रवृत्तेः। जाग्रत् प्रतिसंधानमात्रं कुर्वत्। अभ्युद्यत उद्यतः। विचरन्निष्पादनार्थं कर्मणाम्। प्रस्वापादीनां कल्यादियुगतुल्यत्वात्प्रसुप्तादेस्तत्त्वमुक्तं ॥ ३०२ ॥

(३) **कुल्लूकः**। कीदृक्चेष्टितः कृतादियुगमित्यत आह **कलिरिति**। अज्ञानालस्यादिना यदा निरुद्यमो राजा भवति तदा कलिः स्यात्, यदा जानन्नपि नानुतिष्ठति तदा द्वापरम्, यदा कर्मानुष्ठानेऽवस्थितस्तदा त्रेता, यथाशास्त्रं पुनः कर्माण्यनुतिष्ठन्विचरति तदा कृतयुगं, तस्माद्राज्ञा कर्मानुष्ठानपरेण भाव्यमिति। अत्र तात्पर्यं नतु वास्तवकृतयुगाद्यपलापे ॥ ३०२ ॥

(४) **राघवानन्दः**। तदेव विवृणोति **कलिरिति**। प्रसुप्तः स्वापं गतः राजनि सुप्ते दुष्टानां भयात्कर्माद्यनुपस्थितिः। तस्मिञ्जाग्रति साधूनामभयदानादिपुण्योपस्थितिः तद्द्वापरम्। कर्म कर्तव्यम्। स्वाभिमुख्येनोद्यमी तदा यज्ञादिप्रवृत्तेस्त्रेता। विचरन् स्वराज्ये कण्टकाघातातनाय पर्यटन् कृतं सत्यं ध्यानास्पदं सर्वत्र निर्भयाद्ध्यानं कृत इत्युक्तेः ॥ ३०२ ॥

(५) **नन्दनः**। प्रसुप्तो निष्कर्मा राजा लोकस्य कलिर्भवति, जाग्रत्कर्मण्यारब्धव्यानीत्यवगच्छन्कर्मस्वभ्युद्यतः कर्मसूद्युक्तः व्यवसित इति यावत्। विचरन्कर्माणि कुर्वन् ॥ ३०२ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। प्रसुप्तः अनपेक्षितराज्यः कलिर्भवति। सजाग्रत् प्रतिसन्धिमात्रपरः द्वापरं भवति। कर्मसु अभ्युद्यतं उद्यमयुक्तं त्रेतायुगं भवति। विचरन व्यवहारं पश्यन् कृतयुगं भवति ॥ ३०२ ॥

(७) **मणिरामः**। प्रसुप्तः यदा आज्ञाकरणाद्यालस्ययुक्तः, निरुद्यम इति यावत्; तदा कलिः अधर्मो भवति। यदा जायते जानन्नपि नानुतिष्ठति तदा द्वापरो भवति। कर्मस्वभ्यु-

यतः कर्मानुष्ठाने प्रवृत्तः विचरन् यथाशास्त्रं पुनः कर्माण्यनुतिष्ठन् । तस्माद्राज्ञा कर्मानुष्ठानं कर्तव्यमिति तात्पर्यं ।। ३०२ ।।

**इन्द्रस्यार्कस्य वायोश्च यमस्य वरुणस्य च ।।**
**चन्द्रस्याग्नेः पृथिव्याश्च तेजोवृत्तं नृपश्चरेत् ।। ३०३ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । **तेजः** शुक्रं कार्यं सामर्थ्यमित्यर्थः ।। ३०३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । इन्द्रादीनां प्रत्येकं वृत्तानुवृत्ति प्रागुक्तमपि विवरीतुमनुवदति **इन्द्रस्येति** । **तेजोवृत्तमिति** । तेजोबलं यथावृत्तं चरितम् ।। ३०३ ।।

(३) **कुल्लूकः** । इंद्रादिसंबन्धिनो वीर्यस्यानुरूपं चरितं राजानुतिष्ठेत्तथा च राजा कण्टकोद्धारेण प्रतापानुरागाभ्यां संयुक्तः स्यात् ।। ३०३ ।।

(४) **राघवानन्दः** । न केवलमेवं किंतु **इन्द्रस्येति** । तेजोवृत्तं तत्तदीयां प्रागल्भ्येन चेष्टाम् ।। ३०३ ।।

(५) **नन्दनः** । तेजः प्रभावस्तदर्थं वृत्तं तेजोवृत्तम् ।। ३०३ ।।

(७) **मणिरामः** । तेजोवृत्तं इंद्रादिवीर्याऽनुरूपचरितं ।। ३०३ ।।

(९) **भारुचिः** । एवंवृत्तो हि राजा कण्टकोद्धारणेन प्रतापानुरागादात्मन्युत्पादयन् सकलमहीमण्डलाधिपत्येनान्त्येन युज्यते तद्दामिति (?) इन्द्रादिलोकपालवत्ततां राज्ञः केनचित् सामान्येन प्रदर्श्यते ।। ३०३ ।।

**वार्षिकांश्चतुरो मासान्यथेन्द्रोऽभिप्रवर्षति ।।**
**तथाभिवर्षेत्स्वं राष्ट्रं कामैरिन्द्रव्रतं चरन् ।। ३०४ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । नात्र प्रकरणे मासनियमोऽभिप्रेतः । केवलं चतुर्षु मासेषु सन्तत-वर्षी पर्जन्यो भवति । अतः सन्ततं सर्वकालं **स्वं राष्ट्रं कामैः** पूरयेदित्युक्तं भवति । तथा कर्तव्यं यथा स्वराष्ट्रिया अनुरक्ता भवन्ति ।। ३०४ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । कामैरपेक्षितदानैः ।। ३०४ ।।

(३) **कुल्लूकः** । कथमिन्द्रादिचरितमनुतिष्ठेदित्याह **वार्षिकेति** । ऋतुसंवत्सरपक्षा-श्रयणेनेदमुच्यते यथा श्रावणादींश्चतुरो मासानिन्द्रः सस्यादिसिद्धये वर्षत्येवमिन्द्रचरित-मनुतिष्ठन्राजा स्वदेशायातसाधूनभिलषितार्थैः पूरयेत् ।। ३०४ ।।

(४) **राघवानन्दः** । तदेवाह **वार्षिकानित्यष्टभिः** । कामैर्दानमानाद्यैः ।। ३०४ ।।

(५) **नन्दनः** । कामैरपेक्षितभोगैः इंद्रव्रतं चरन्निन्द्रव्रतमेतदित्यर्थः ।। ३०४ ।।

(७) **मणिरामः** । कामैः लोकाऽभिलषितार्थैः राष्ट्रं स्वदेशीयान् । अभिवर्षेत् पूरयेत् ।। ३०४ ।।

(९) **भारुचिः**। अनुत्थानशीलं प्रसुप्तो भवति, जानानश्चोत्कर्षोपायनमनुतिष्ठेत्, स जाग्रद् भवति व्यवसितकर्मप्रयोगस्त्रेतायुगं भवति, अनुत्तिष्ठंश्च सर्वकर्माणि यथाशास्त्रं कर्मफलसम्पदा कृतयुगं भवति; एवं च राजनिमित्तत्वात् सर्वारम्भाणां युक्ता तद्वत्तत्स्तुतिः ॥ ३०४ ॥

**अष्टौ मासान्यथादित्यस्तोयं हरति रश्मिभिः ॥**
**तथा हरेत्करं राष्ट्रान्नित्यमर्कव्रतं हि तत् ॥ ३०५ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **तोयं** स्तोकमपि रसमीषत्तापेनादत्ते यथाऽऽदित्यस्तथा करमादद्यादित्येष उपमार्थः ॥ ३०५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। तथा हरेत्करं क्रमेण ॥ ३०५ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यथा सूर्यो मार्गशीर्षाद्यष्टमासान् रश्मिभिः स्तोकं स्तोकं रसमीषत्तापेनादत्ते तथा राजा शास्त्रीयकरानपीडया सदा राष्ट्राद्गृह्णीयात् यस्मादेतदस्यार्कव्रतम् ॥३०५॥

(४) **राघवानन्दः**। रश्मिस्थानीयैः करग्राहकचराद्यैः हरेत् गृह्णीयात् ॥ ३०५ ॥

(५) **नन्दनः**। अष्टौ मासाः कार्तिकादयः ॥ ३०५ ॥

(७) **मणिरामः**। अष्टौ मासान् मार्गशीर्षादीन् ॥ ३०५ ॥

**प्रविश्य सर्वभूतानि यथा चरति मारुतः ॥**
**तथा चारैः प्रवेष्टव्यं व्रतमेतद्धि मारुतम् ॥ ३०६ ॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। चारैश्चरद्वारा प्रवेष्टव्यं परराष्ट्रे ॥ ३०६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यथा प्राणाख्यो वायुः सर्वजन्तुष्वन्तः प्रविश्य विचरत्येवं चारद्वारेण स्वपरमण्डलजालेषु चिकीर्षितार्थज्ञानार्थमन्तः प्रवेष्टव्यम्; यस्मादेतन्मारुतं चरितम् ॥३०६॥

(४) **राघवानन्दः**। चारैः उक्तकापटिकादिपञ्चविधैः। प्रवेष्टव्यं भद्राभद्रं ज्ञातव्यम् ॥ ३०६ ॥

(७) **मणिरामः**। मारुतः प्राणवायुः ॥ ३०६ ॥

**यथा यमः प्रियद्वेष्यौ प्राप्ते काले नियच्छति ॥**
**तथा राज्ञा नियन्तव्याः प्रजास्तद्धि यमव्रतम् ॥ ३०७ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। अपराधे **प्रियद्वेष्ययो**र्निग्रहसमत्वेन वर्तितव्यम् ॥ ३०७ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। नियन्तव्याः प्राप्ते काले ॥ ३०७ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यद्यपि यमस्य शत्रुमित्रे न स्तस्तथापि तन्निन्दकार्चकयोः शत्रुमित्रयोर्यथा यमः शत्रुमित्रमरणकाले तुल्यवन्नियमयत्येवं राज्ञाऽपराधकाले रागद्वेषपरिहारेण प्रजाः प्रमापणीयाः, यस्मादेतदस्य याम्यं व्रतम् ॥ ३०७ ॥

(४) **राघवानन्दः**। यथा यमः प्रियद्वेष्यौ हित्वा प्रजाकृतानुरूपेण नियच्छति दण्डादि करोत्येवमसौ ।। ३०७ ।।

(५) **नन्दनः**। सर्वे प्रियद्वेष्याः ।। ३०७ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। प्राप्ते काले मरणकाले। नियच्छति नियमयति ।। ३०७ ।।

(७) **मणिरामः**। प्राप्ते काले मरणकाले। नियच्छति नियमयति। प्रियद्वेष्यौ यम-पूजकनिंदकौ ।। ३०७ ।।

**वरुणेन यथा पाशैर्बद्ध एवाभिदृश्यते ।।**
**तथा पापान्निगृह्णीयाद् व्रतमेतद्धि वारुणम् ।। ३०८ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। अविशेषिता एव अकार्यकारिणो निग्रहीतव्याः यथा न पलायन्ते ।। ३०८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। बद्ध एव दृश्यते नतु बन्धनप्राप्तिकाले ज्ञायते ।। ३०८ ।।

(३) **कुल्लूकः**। यो वरुणस्य रज्जुभिर्बन्धयितुमिष्टः स यथा तेनाविशङ्कितः पाशैर्बद्ध एव लक्ष्यते तथा पापकारिणोऽविशङ्कितानेव यावन्न पारयन्ते तावच्छासयेत्, यस्मादेतदस्य वारुणं व्रतम् ।। ३०८ ।।

(४) **राघवानन्दः**। यथा वारुणैः पाशैर्बद्धो नरकस्थः एवं साहसिकादिर्निगडैर्बद्धो दृश्येतेति ।। ३०८ ।।

(५) **नन्दनः**। निगृह्णीयान्निबध्नीयात् ।। ३०८ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। यथा पापं पापकारणं। निगृह्णीयात् गृह्णीयात् ।। ३०८ ।।

(७) **मणिरामः**। निगृह्णीयात् शासयेत् ।। ३०८ ।।

**परिपूर्णं यथा चन्द्रं दृष्ट्वा हृष्यन्ति मानवाः ।।**
**तथा प्रकृतयो यस्मिन्स चान्द्रव्रतिको नृपः ।। ३०९ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। अक्रोधनेन प्रसाधनालङ्कारवता प्रहृष्टवदनेन प्रजादर्शनकाले भवितव्यम्। निर्वातपरितापा भवन्तीत्यर्थः ।। ३०९ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। प्रकृतयो यस्मिन्परिपूर्णे हृष्यन्त इत्यनुषङ्गः ।। ३०९ ।।

(३) **कुल्लूकः**। यथा पूर्णेन्दुदर्शनेन मनुष्यो हर्षमुत्पादयत्येवममात्यादयो यस्मिन्दृष्टे तुष्टिमुपगच्छन्ति स चन्द्राचारचारी नरेन्द्रः ।। ३०९ ।।

(४) **राघवानन्दः**। यस्मिन् राजनि हृष्टे प्रकृतयो हृष्यन्ति स राजा चान्द्रव्रतिकः ।। ३०९ ।।

(५) **नन्दनः**। प्रकृतय इत्यमात्यादयः ।। ३०९ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। परिपूर्णं यथा चन्द्रं दृष्ट्वा तथा सप्ताङ्गेन पूर्णं राजानं दृष्ट्वा प्रकृतयो हृष्यन्ति ॥ ३०९ ॥

(७) **मणिरामः**। प्रकृतय अमात्यादयः ॥ ३०९ ॥

**प्रतापयुक्तस्तेजस्वी नित्यं स्यात्पापकर्मसु ॥**
**दुष्टसामन्तहिंस्रश्च तदाग्नेयं व्रतं स्मृतम् ॥ ३१० ॥**

(१) **मेधातिथिः**। भृशमुद्वेजनीयो दुष्ट इत्याग्नेयव्रतम्। **सामन्ता** अमात्या एव साधनयुक्ताः ॥ ३१० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **प्रतापयुक्तः** तापकारी । **तेजस्वी** अधृष्यः। यथा दुष्ट-दिव्येऽग्निर्हिनस्ति तथा दुष्टानां सामन्तानां राज्यसमीपवर्तिनां हिंस्रः ॥ ३१० ॥

(३) **कुल्लूकः**। पापकारिषु सदा दण्डपातेन प्रचण्डोऽसहनः स्यात्तथा प्रतिकूलामात्य-हिंसनशीलो भवेत् तदस्याग्निसंबन्धि व्रतं स्मृतम् ॥ ३१० ॥

(४) **राघवानन्दः**। पापकर्मसु प्रतापयुक्तः स्यात् तेजस्वी च घृतकाङ्चनपरीक्षादौ दाहस्तद्वत् दुष्टसामन्तेषु हिंस्रोऽपि ॥ ३१० ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **दुष्टसामन्ताः**। संसक्तकास्तु सामन्ताः ॥ ३१० ॥

**यथा सर्वाणि भूतानि धरा धारयते समम् ॥**
**तथा सर्वाणि भूतानि बिभ्रतः पार्थिवं व्रतम् ॥ ३११ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। धरा पृथ्वी। तद्वद्दीनानाथाश्च वंशाश्च भरणीयाः ॥ ३११ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। समं धारयेत् नत्वेकं परित्यज्यैकमेव बिभ्रतः पुष्णतः ॥ ३११ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यथा पृथिवी सर्वाण्युच्चावचानि स्थावरजङ्गमान्युत्कृष्टापकृष्टानि समं कृत्वा धारयते तद्वद्विद्वद्धनिकगुणवद्भूतानि तदितराणि च दीनानाथादिसर्वभूतानि रक्षणधनदानादिना सामान्येन धारयतः पृथिवीसंबन्धि व्रतं भवति ॥ ३११ ॥

(४) **राघवानन्दः**। समं भूतानि प्रजाः बिभ्रतः पुष्णतो राज्ञः पार्थिवं व्रतं ज्ञेयम् ॥३११॥

(६) **रामचन्द्रः**। यथा सर्वाणि भूतानि प्रदानादिना बिभ्रतः पुष्णतः ॥ ३११ ॥

(७) **मणिरामः**। सर्वाणि भूतानि स्थावरजंगमानि। बिभ्रतः रक्षणधनदानादिना धारयतः ॥ ३११ ॥

**एतैरुपायैरन्यैश्च युक्तो नित्यमतन्द्रितः ॥**
**स्तेनान् राजा निगृह्णीयात्स्वराष्ट्रे पर एव च ॥ ३१२ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। उपसंहारश्लोकः। एतैर्दैवव्रतैरन्यैर्लोकतोऽवगम्यैः ॥ ३१२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। एतैः प्राग्व्यवधानेनोक्तैः। स्वराष्ट्रे स्वराष्ट्रस्थितान्। पर एव च पररष्ट्रादागतान् ॥ ३१२ ॥

(३) **कुल्लूकः**। एतैरुक्तोपायैरन्यैश्चानुक्तैरपि स्वबुद्धिप्रयुक्तो राजाऽनलसः सन्स्वराष्ट्रे ये चौरा वसन्ति, ये च परराष्ट्रे वसन्तस्तद्देशमागत्य मुष्णन्ति, तानुभयप्रकारान्निगृह्णीयात्। 'सोऽग्निर्भवति वायुश्चे'(७।७)त्यादिना पूर्वसिद्धवदुक्तमग्न्यादिरूपत्वं, इह तद्गुणत्यागेन स्फुटीकृतमित्यपुनरुक्तिः ॥ ३१२ ॥

(४) **राघवानन्दः**। उपसंहरति **एतैरिति**। परे परराष्ट्रे जयादिनात्मसात्कृते तत्रत्यानपि स्तेनान्निगृह्णीयादित्यन्वयः ॥ ३१२ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। स्तेनान् चौरान् स्वराष्ट्रे स्थितान् पर एव वा परराष्ट्रस्थितान् परराष्ट्रे स्थितान् गत्वा ॥ ३१२ ॥

(७) **मणिरामः**। अतंद्रितः अनलसः एतैः पूर्वोक्तैः। अन्यैश्च अनुक्तैरपि स्वबुद्धिप्रभवैः ॥ ३१२ ॥

(९) **भारुचिः**। अष्टभिः श्लोकैरुक्तमपि राजवृत्तम् अर्थं निर्मलत्वाय पुनरुक्तम्। दण्डचेषु दण्डपातनं (यथा)पराधं कुर्वन् लोकपालवत् समः प्रजासु यथा स्यादिति (चोक्तं) दण्डप्रकरणे पुनरादरार्थमुच्यत इति ॥३१२॥

**परामप्यापदं प्राप्तो ब्राह्मणान्न प्रकोपयेत् ॥**
**ते ह्येनं कुपिता हन्युः सद्यः सबलवाहनम् ॥ ३१३ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। यः क्षीणकोशो बलीयसा च राज्ञा दण्ड्यते, तथापि न ब्राह्मणधनमप्यापदि ग्रहीतव्यम्। न चावज्ञानादिना प्रकोपनीयाः ॥ ३१३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। न प्रकोपयेदर्थग्रहणादिना ॥ ३१३ ॥

(३) **कुल्लूकः**। कोशक्षयादिना प्रकृष्टामप्यापदं प्राप्तो राजा ब्राह्मणान्न प्रकोपयेत् यस्मात्ते रुष्टाः सबलवाहनमेनं शापाभिचाराभ्यां हन्युः ॥ ३१३ ॥

(४) **राघवानन्दः**। एवंविधस्यापि नृपतेर्ब्राह्मणाधीनत्वं वक्तुं ब्राह्मणस्य निग्रहानुग्रहसामर्थ्यमाह **परामित्यादिना** ॥ ३१३ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। हि निश्चयेन। ते ब्राह्मणाः एनं राजानम् ॥ ३१३ ॥

(७) **मणिरामः**। परामपि कोषक्षयादिना प्रकृष्टामपि ॥ ३१३ ॥

(९) **भारुचिः**। अभिचारपिशाचाभ्याम्। तथा च तत्प्रभावं दर्शयति ॥३१३-३१४॥

**यैः कृतः सर्वभक्ष्योऽग्निरपेयश्च महोदधिः ॥**
**क्षयी चाप्यायितः सोमः को न नश्येत्प्रकोप्य तान् ॥ ३१४ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। प्रागुक्तार्थसिद्धये ब्राह्मणमाहात्म्यं इतिहासं लोकप्रसिद्धमनुवदति। एष्वर्थेष्वाख्यानानि महाभारतादवगमयितव्यानि ॥ ३१४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। सर्वभक्ष्योऽग्निर्भृगुणा कृतः। वडवामुखो नामर्षिस्तेन मेरौ तपः कुर्वता समुद्र आहूतो नागतस्तेन क्रोधादात्मगात्रोष्मणा समुद्रः स्तिमितजलः कृतः प्रस्वेदप्रस्यन्द-

सदृशश्चास्य लवणभावो जनित उक्तश्चापेयो भविष्यसीति भारते मोक्षधर्मेषूक्तम्। क्षयी कृत्वा पश्चादाप्यायनेनोपायकथनेनाप्यायितश्चन्द्रो दक्षेण ।। ३१४ ।।

(३) **कुल्लूकः**। तथा हि **यैरिति**। यैर्ब्राह्मणैरभिशापेन सर्वभक्ष्योऽग्निः कृतः समुद्रश्चापेयजलश्चंद्रश्च क्षययुक्तः पश्चात्पूरितस्तान्कोपयित्वा को न नश्येत् ।। ३१४ ।।

(४) **राघवानन्दः**। भृगोः पत्नीयमित्युक्तेऽग्निनाऽसुरस्तां जहार तत्कृत्वा भृगुणा शप्तोऽग्निः सर्वभक्षो भवेति। तथा मोक्षधर्मे नारायणीये कृष्णार्जुनसंवादे। नारायणो लोकहितार्थं वडवामुखो नामर्षिः पुरा बभूव तस्य मेरौ तपस्तप्यतः समुद्र आहूतो नागतस्तेनामर्षितेनात्म गात्रोष्मणा समुद्रः स्तिमितजलः कृतः स्वेदस्यन्दनसदृशश्चास्य लवणभावो जनित उक्तश्चापेयो भविष्यस्येवं त्वत्तोयं वडवामुखे योऽग्निस्तेन पीयमानं मधुरं भविष्यतीत्यपेयो महोदधिः समुद्रः। क्षयी यक्ष्मणा युक्तः। आप्यायितः पूरितः ।। ३१४ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। यैर्ब्राह्मणैः सोमः क्षयी आप्यायितः पूर्णतां प्रापितः तान् ब्राह्मणान् प्रकोप्य को न नश्येत् ? ।। ३१४ ।।

(७) **मणिरामः**। यैः ब्राह्मणैः। आपदगतेन। तान् ब्राह्मणान् प्रकोप्य कः न नश्येत् ? ।। ३१४ ।।

**लोकानन्यान्सृजेयुर्ये लोकपालांश्च कोपिताः ।।**
**देवान्कुर्युरदेवांश्च कः क्षिण्वंस्तान्समृध्नुयात् ।। ३१५ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। क्षिणोति छादयति तदविशेषात्स्मृतीनां क्षिण्वन्हि संक्षेपोऽप्युत्तमानामेवेति युधिष्ठिरेण गाण्डीवे विक्षिप्ते व्यासमुनिना दर्शितम् ।। ३१५ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **लोकानन्यानिति** विश्वामित्रचरितम्। **लोकपालानिति** इन्द्रांतरसृष्ट्याद्युद्यमेन गरुडं सृजतां वालखिल्यानां चरितम्। **देवानदेवानिति**। वाय्वादीनां वृत्तम्। क्षिण्वन् दुःखजननादेव ।। ३१५ ।।

(३) **कुल्लूकः**। किंच **लोकानामिति**। ये स्वर्गादिलोकान्परानन्यांश्च लोकपालान्सृजन्तीति संभाव्यते। देवांश्च शापेन मानुषादीन्कुर्वन्ति तान्पीडयन्कः समृद्धिं प्राप्नुयात् ।।३१५।।

(४) **राघवानन्दः**। किंच **लोकेति**। सृजेयुः विश्वामित्रादयः एवं देवानित्यपि माण्डव्यशापेन यमोऽपि विदुरतां गतः। क्षिण्वन् पीडयन्। समृध्नुयात् समृद्धिं गच्छेत् ।। ३१५ ।।

(५) **नन्दनः**। एतत्पद्यत्रयं राज्ञां वर्ज्यतमत्वकथनं। **लोकानन्यान्सृजेयुर्य** इति। क्षिण्वन्बाधमानः समृध्नुयात्समृद्धिं लभेत् ।। ३१५ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। ये ब्राह्मणाः देवान् अदेवान् देवकार्यरहितान् कुर्युः। क्षिण्वन् पीडयन् ।। ३१५ ।।

(७) **मणिरामः**। तान् क्षिण्वन् पीडयन्। समृध्नुयात् समृद्धिं प्राप्नुयात् ।। ३१५ ।।

**यानुपाश्रित्य तिष्ठन्ति लोका देवाश्च सर्वदा ।।**
**ब्रह्म चैव धनं येषां को हिंस्यात्ताञ्जिजीविषुः ।। ३१६ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । लोकाः त्रयः पृथिव्यादयः । देवा आहुतिद्वारेण ब्राह्मणोपाश्रिताः । अध्यापनाधिक्येन कर्मबहुत्वेन ब्राह्मणो देवानामाश्रयो न तथा क्षत्रियवैश्यौ ।। ३१६ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । यान्समाश्रित्य यत्साध्यान्यज्ञानाश्रित्य । ब्रह्म वेदः ।। ३१६ ।।

(३) **कुल्लूकः** । अपि च **यानित्यादि** । यान्ब्राह्मणान्यजनयाजनकर्तृकानाश्रित्य 'अग्नौ प्रास्ताहुति' ३।७६ रिति न्यायेन पृथिव्यादिलोका देवाश्च स्थितिं लभन्ते वेद एव च येषामभ्युदयसाधनतया याजनाध्यापनादिना धनोपायत्वाच्च तान्जीवितुमिच्छन्को हिंस्यात् ।। ३१६ ।।

(४) **राघवानन्दः** । किंच **यानिति** । याजनाध्यापनकुशलान्ब्राह्मणानाश्रित्यैवापूर्व-द्वारा लोकांश्चतुर्दशभुवनानि देवा इन्द्रादयश्च स्युरिति भावः ।। ३१६ ।।

(५) **नन्दनः** । ब्रह्म वेदः ।। ३१६ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । यान् ब्राह्मणान् । येषां ब्राह्मणानाम् । ब्रह्म वेदः धनं ।। ३१६ ।।

(७) **मणिरामः** । यान् ब्राह्मणान् ।। ३१६ ।।

(९) **भारुचिः** । न चाविद्वानिति परिभवनीयोऽसौ । यस्मात् ।।३१६।।

**अविद्वांश्चैव विद्वांश्च ब्राह्मणो दैवतं महत् ।।**
**प्रणीतश्चाप्रणीतश्च यथाग्निर्दैवतं महत् ।। ३१७ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । जातिमात्राश्रयाणामनवज्ञानं, न विद्वत्तामपेक्षेत । दानादिक्रिया-स्विव । यथा 'चैतन्न पादतः कुर्या'दित्यग्नौ ।। ३१७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । अविद्वानपि नतु विद्वानेव । प्रणीतोऽग्निः होमार्थमुद्धतः ।।३१७।।

(३) **कुल्लूकः** । एवं तर्हि विद्वांसं ब्राह्मणं सेवेतेत्यत आह **अविद्वानिति** । यथाहितोऽना-हितोवाग्निर्महती देवतैवं मूर्खोऽविद्वांश्च प्रकृष्टा देवतेति ।। ३१७ ।।

(४) **राघवानन्दः** । अहो किं वक्तव्यमित्याह **अविद्वानिति** । दैवतं देवतावृन्दम् । प्रणीतः आहितः तद्भिन्नोऽप्रणीतः ।। ३१७ ।।

(५) **नन्दनः** । वृत्तहीनोऽपि ब्राह्मणो न गर्हणीय इति श्लोकद्वयेनाह **अविद्वांश्चैव विद्वांश्चेति** ।। ३१७ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । प्रणीतः होमार्थमुद्धतः समृद्धः कृतः । अप्रणीतः लौकिकः अनाहितः ।। ३१७ ।।

(७) **मणिरामः** । प्रणीतः होमाद्यर्थं आहवनीयादौ नीतः, अप्रणीतः स्थान-स्थितः ।। ३१७–३१९ ।।

(९) **भारुचिः**। दशभिः श्लोकैः दण्डचनिग्रहप्रकरणे ब्राह्मणाः प्रशस्यन्ते। सत्यपि शास्त्रे तदपेक्षयैषां क्षान्तिमाश्रित्य मृदूपक्रमो निग्रहो यथा स्यात् स्ववृत्तस्थापनार्थमित्येवमर्थमिदम्। आनन्तर्यार्थो विशेषार्थश्चायमुपदेशः। अस्यार्थवादः ॥३१७॥

**श्मशानेष्वपि तेजस्वी पावको नैव दुष्यति ॥**
**हूयमानश्च यज्ञेषु भूय एवाभिवर्धते ॥ ३१८ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। गतार्थोऽयम्। दुराचारोऽप्यनवज्ञेय इत्यर्थः॥ ३१८॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। श्मशानेष्वपि न दुष्यति न पापे युज्यते यतः तज्जातीययज्ञे हूयमानो वर्धते, नह्यग्निस्ततो न्यस्तस्ततोऽन्यत्र एकत्वाद्देवतायाः॥ ३१८॥

(३) **कुल्लूकः**। यथाग्निर्महातेजाः श्मशाने शवं दहन्कार्येऽपि नैव दुष्टो भवति किन्तु पुनरपि यज्ञेषु हूयमानोऽभिवर्धते॥ ३१८॥

(४) **राघवानन्दः**। नैव 'दुष्यति क्रव्यादमग्नि' मित्यादिमन्त्रलिङ्गकाद्दृष्टदोषेऽपि दृष्टदोषाभावान्नहि तदग्निर्दाहप्रकाशहीनः। हूयमानः होमेन संस्क्रियमाणोऽदृष्टदोषं परिहृत्य फलजनकतया वर्धत इति भावः॥ ३१८॥

(६) **रामचन्द्रः**। श्मशानेष्वपि वर्धते आहुतिभिः॥ ३१८॥

**एवं यद्यप्यनिष्टेषु वर्तन्ते सर्वकर्मसु ॥**
**सर्वथा ब्राह्मणाः पूज्याः परमं दैवतं हि तत् ॥ ३१९ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। अनिष्टेषु प्रतिषिद्धेषु वर्तमाना मृदूपक्रमैर्यथाशास्त्रं दण्डचा न सहसाऽऽक्रम्य, वर्णान्तरवत्॥ ३१९॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अनिष्टेषु लोकविद्विष्टेषु॥ ३१९॥

(३) **कुल्लूकः**। एवं कुत्सितकर्मस्वपि सर्वेषु यद्यपि ब्राह्मणाः प्रवर्तन्ते तथापि सर्वप्रकारेण पूज्याः यस्मात्प्रकृष्टं तद्दैवतं; स्तुत्यर्थत्वाच्चास्य न यथाश्रुतार्थविरोधः शङ्कनीयः॥ ३१९॥

(४) **राघवानन्दः**। किंचान्यत्, अनिष्टेषु कुत्सितकर्मसु देववृन्दादपि परमं दृष्टशापानुग्रहहेतुत्वात् धनमानादिना॥ ३१९॥

(५) **नन्दनः**। अनिष्टेषु सतामसंमतेषु सर्वकर्मस्वितरजनकर्मसु॥ ३१९॥

(६) **रामचन्द्रः**। तद् द्विजाः परमं दैवतम्॥ ३१९॥

**क्षत्रस्यातिप्रवृद्धस्य ब्राह्मणान्प्रति सर्वशः ॥**
**ब्रह्मैव सन्नियंतृ स्यात्क्षत्रं हि ब्रह्मसंभवम् ॥ ३२० ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **क्षत्रियस्य ब्राह्मणान्प्रतिबाधितुं** प्रवृत्तस्य ब्राह्मणा एव **संनियन्तारः**। श्रीमदावलिप्ताः व्यवस्थाभङ्गेन वर्तमानाः क्षत्रियाः, जपहोमादिशापादिना ब्राह्मणैर्मार्गे

व्यवस्थाप्यन्ते। अत्र हेतुः–**क्षत्रं ब्रह्मसंभवम्**। ब्राह्मणजातेः सकाशात्क्षत्रियाणां संभवः। अत्रार्थवाद एवायम् ।। ३२० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। ब्राह्मणान्प्रतिप्रवृद्धस्यात्मनाभिभवितुं विप्रमिच्छतः ।। ३२० ।।

(३) **कुल्लूकः**। क्षत्रियस्य ब्राह्मणान्प्रति सर्वथा पीडानुवृत्तस्य ब्राह्मणा एव शापाभिचारादिना सम्यङ्नियन्तारः यस्मात्क्षत्रियो ब्राह्मणात्संभूतः ब्राह्मणबाहुप्रसूतत्वात् ।।३२०।।

(४) **राघवानन्दः**। ब्राह्मणान्प्रति अतिवृद्धस्य क्षत्रियस्यापि ब्रह्मैव नियन्तृ इत्यन्वयः। तत्र हेतुः 'ब्रह्म ब्राह्मणत्वजात्यवच्छिन्नो जीवः ततः संभवं सैषा क्षत्रस्य योनिर्यद्ब्रह्मे'ति श्रुतेः। तदुत्तरभावित्वाद्वा क्षत्रियस्य ।। ३२० ।।

(५) **नन्दनः**। इतरैश्च ब्राह्मणो नातिक्रमणीय इत्याह **क्षत्रस्येति**। अतिप्रवृत्तस्य लङ्घितशास्त्रमर्यादस्य सन्नियन्तृ स्यान्नियन्तुं शक्नुयात्। कुतः? क्षत्रं हि ब्रह्मसंभवम् ।।३२०।।

(६) **रामचन्द्रः**। ब्रह्मैव ब्राह्मणः संनियन्तृ स्यात् क्षत्रस्य संनियन्ता स्यात्। क्षत्रं ब्रह्मसंभवं ब्राह्मणात् संभवो यस्य तत् ब्रह्मसंभवम् ।। ३२० ।।

(७) **मणिरामः**। ननु यो यस्योत्पत्तिहेतुर्नासौ तस्य नाशकः। नैवम्, ब्राह्मणान् प्रति सर्वशः सर्वथा। अपवृद्धस्य पीडानुवृत्तस्य क्षत्रियस्य। ब्रह्मैव ब्राह्मणा एव नियंतृस्थानं नियंतारो भवंति। तत्र हेतुमाह **क्षत्रमिति**। हि यस्मात् ब्राह्मणो बाहुसंभूतत्वात् क्षत्रं ब्रह्मसंभूतं तस्मात् ।। ३२० ।।

**अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम् ।।**
**तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति ।। ३२१ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **अद्भ्य** ओषधिवनस्पतिभ्य एव जायत इत्येवमग्निरद्भ्य एव उत्पन्नः। तस्य **सर्वगं तेजः** सर्वदाह्यं दहति। तेजसाऽभिभवति। अपः प्राप्य तदस्य तेजः **शाम्यति**। **अश्मनो** लोहं खड्गादि। तेन सर्वं विदार्यते अश्मसंपातात्स्फुटति। एवं क्षत्रियाः सर्वत्र जिगीषवो विजयन्ते, ब्राह्मणेषु चेदौद्धत्येन वर्तन्ते तदा विनश्यन्ति ।। ३२१ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अद्भ्योऽग्निरप्पर्यन्तत्वात्। ब्रह्मतः क्षत्रं, क्षत्रक्षयानन्तरं ब्राह्मणैः सह संभूय क्षत्रियाभिः पुत्राणां जननात्। अश्मन आकरस्थपाषाणकणेभ्यः। शाम्यति भाः प्राप्य संघर्षणे नश्यति ।। ३२१ ।।

(३) **कुल्लूकः**। तथा च **अद्भ्य इति**। जलब्राह्मणपाषाणेभ्योऽग्निक्षत्रियशस्त्राणि जातानि तेषां संबन्धि तेजः सर्वत्र दहनाभिभवच्छेदनार्थकं कार्यं करोति स्वकारणेषु जलब्राह्मणपाषाणाख्येषु दहनाभिभवच्छेदनात्मकं कार्यं न करोति ।। ३२१ ।।

(४) **राघवानन्दः**। अत एवाह **अद्भ्य** इति। अयमर्थः–अग्न्यर्थमिन्धनं हि मथ्यमानं रसक्षयेऽग्निमभिव्यनक्ति। 'अथार्णवस्य क्षुब्धस्य तस्मिन्नंभसि मंथिते कृष्णवर्त्मा समभवत् विभुर्वैश्वानरोऽविमान् ।।' इत्यब्जोऽग्निः पौष्करे श्रुतः। विद्युद्भवाग्नेः प्रत्यक्षजलजत्वम्।

पाषाणो लोहबीजगर्भो ध्मायमानो लोहं व्यनक्ति तत्रासत्वे न ततः स्यादतोऽभिव्यक्त्यपेक्षयाश्मजत्वम्। क्षत्रिये त्वानन्तर्यापेक्षया 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृत' इति श्रुतेश्च। ततः किं तत्राह **एषामिति**। सर्वत्रगं सर्वद्रव्येषु दाहच्छेददण्डादिकर्तृत्वेन वर्तमानं तेजोऽग्नेर्दग्धृत्वं, लोहस्य तैक्ष्ण्यं, राज्ञो दण्डनं च स्वासु योनिषु जलहीरकविप्रेषु न विकरोति किंतु शाम्यति 'ब्राह्मस्त्वक्षतो व्रजेदि'त्युक्तेः॥ ३२१॥

(५) **नन्दनः**। एतदेवोपपादयति **अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमिति**। अद्भ्योऽग्निरिति च पौराणिकाः, ब्रह्मतो ब्राह्मणतः, ब्राह्मणा हि दक्षमरीच्यादयः स्रष्टारः तेषां मन्वादीनां सर्वत्र, गन्तुं शक्तं तेजः शक्तिः स्वासु योनिषु शाम्यति क्षरते। एतदुक्तं भवति—अग्निः सर्वं दग्धुमीष्टे नापः, क्षत्रियः सन्नियन्तुमीष्टे न ब्राह्मणं, लोहं लोहं सर्वं च्छेत्तुमीष्टे अग्निलोहयोरुपन्यासो दृष्टान्तार्थः॥ ३२१॥

(६) **रामचन्द्रः**। अद्भ्यो जलेभ्यः अग्निर्भवति। ब्रह्मतः क्षत्रं जातम्, अश्मनः लोहम्। तेषां ब्रह्मादीनां॥ ३२१॥

(७) **मणिरामः**। तथा च **अद्भ्य इति**। तेषां अग्न्यादीनां। सर्वगतं तेजः दहनाभिधं च छेदनार्थकं कार्यं। स्वासु योनिषु स्वोत्पत्तिस्थानेषु, जलब्राह्मणपाषाणेषु। उपशाम्यति दहनादिकार्यं न करोतीत्यर्थः॥ ३२१॥

**नाब्रह्म क्षत्रमृध्नोति नाक्षत्रं ब्रह्म वर्धते॥**
**ब्रह्म क्षत्रं च संपृक्तमिह चामुत्र वर्धते॥ ३२२॥**

(१) **मेधातिथिः**। यत्क्षत्रं यद्ब्राह्मणरहितं राज्यं, मन्त्रिपुरोहितादयो यत्र न ब्राह्मणास्तत्र कुतः समृद्धिः? एवं ब्राह्मणा अपि राजोपाश्रिताः कुतः संपत्तिं **लभन्ते**? उभौ युक्तौ जगज्जयतः। ब्रह्मक्षत्रशब्दौ ब्राह्मणक्षत्रियजातिवचनौ॥ ३२२॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। संपृक्ते परस्पराविरुद्धे वर्धते अवश्ययोद्धव्यरणोपस्थितौ॥३२२॥

(३) **कुल्लूकः**। ब्राह्मणरहितक्षत्रियो वृद्धिं न याति; शान्तिकपौष्टिकव्यवहारेक्षणादिधर्मविरहात्। एवं क्षत्रियरहितोऽपि ब्राह्मणो न वर्धते रक्षां विना यागादिकर्मानिष्पत्तेः। किंतु ब्राह्मणः क्षत्रियश्च परस्परसंबद्ध एवेह लोके परलोके च धर्मार्थकाममोक्षावाप्त्या वृद्धिमेति। दण्डप्रकरणे चेयं ब्राह्मणस्तुतिः ब्राह्मणानामपराधिनामपि लघुदण्डप्रयोगनियमार्था॥ ३२२॥

(४) **राघवानन्दः**। इतश्च ब्राह्मणः श्रेष्ठ इत्याह **नेति**। याजनाद्याशंसाकर्तृतयाऽविद्यमानं ब्राह्मणजात्यवच्छिन्नं यस्य क्षत्रियस्य तत् न ऋध्नोति वृद्धिं न गच्छति। नाक्षत्रं न विद्यते क्षत्रं याज्यपालकादितया यस्य तत्। संपृक्तं परस्पराकांक्षया संयुक्तम्॥ ३२२॥

(६) **रामचन्द्रः**। अब्रह्म क्षत्रं न ऋध्नोति न वृद्धिं याति। अक्षत्रं ब्रह्म न वर्धते। तस्माद्ब्रह्म क्षत्रं संप्रयुक्तं इहलोके अमुत्र परलोके॥ ३२२॥

(७) **मणिरामः**। नाऽब्रह्मक्षत्रमृध्नोति ब्राह्मणरहितः क्षत्रियो वृद्धिं न प्राप्नोति। तथा नाऽक्षत्रं ब्रह्म वर्धते। संपृक्तं एकीभूतं॥ ३२२॥

**दत्वा धनन्तु विप्रेभ्यः सर्वदण्डसमुत्थितम् ॥**
**पुत्रे राज्यं समासृज्य कुर्वीत प्रायणं रणे ॥ ३२३ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। यदा तु जरसाऽभिभूयेत कृतकृत्यः स्यात्तदा वसुनि धने सति सर्वं दण्डसमुद्भूतं ब्राह्मणेभ्यो दद्यात्। महापातकिधनस्य वरुणाय प्रतिपादनमुक्तम्। न राज्ञा तद्ग्रहीतव्यम्। अन्यत्तु दण्डधनं राज्ञा दृष्टकार्यार्थवादाद्बहु धनमस्ति प्रयाणकालश्च, तदा सर्वस्यायं विनियोगः। अन्ये तु दण्डग्रहणं करशुल्कादीनामपि प्रदर्शनार्थं व्याचक्षते। तथा सति सर्वस्वं दद्यादित्युक्तं भवति। वाहनायुधभूमिपुरुषवर्जं सर्वं दातव्यम्। एवं तु व्याख्याने **'पुत्रे राज्यं समासाद्य'** इति न घटते। न हि तस्याकोशस्य राजकरणसंभवः। **कुर्वीत प्रायणं रणे**। आत्मत्यागे संग्रामं कुर्यात्। यदि कथंचिदन्त्यावस्थायां रणं नोपलभेत तदाग्न्युदकादिना शरीरं जह्यात्। फलातिशयसंपत्तिस्तु रणे समासं जनमारोपणम् ॥ ३२३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। रणे प्रायणमन्यथा तु दैवकृतैरेव रोगादिभिरुभयथापि दत्वा धनमित्यादि तुल्यम्, प्रायणमात्रधर्मत्वात् ॥ ३२३ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यदा तु विशिष्टदर्शनेनाचिकित्स्यव्याधिना वाऽऽसन्नमृत्युर्भवति तदा दत्वेति। महापातकिधनव्यतिरिक्तविनियुक्तावशिष्टसर्वदण्डनं ब्राह्मणेभ्यो दत्वा पुत्रे राज्यं समर्प्यासन्नमृत्युः फलातिशयप्राप्तये संग्रामे प्राणत्यागं कुर्यात्, संग्रामासंभवे त्वनशनादिनापि ॥ ३२३ ॥

(४) **राघवानन्दः**। क्षत्रियस्य वीतरागस्य नृपतेः कार्यान्तरं विधत्ते **दत्वेति**। प्रायणं प्राणत्यागं रणे कुर्यादिति। वने इति क्वचित्पाठस्तदा वनवासं कुर्यादिति ॥ ३२३ ॥

(५) **नन्दनः**। अथ चरमे वयसि राज्ञः कर्तव्यमाह **दत्वा धनन्तु विप्रेभ्य इति**। प्रायणं मरणम् ॥ ३२३ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। धनं महापातकादिव्यतिरिक्तं सर्वदण्डसमन्वितं व्युत्थितं प्रायणं प्रयाणम् ॥ ३२३ ॥

(७) **मणिरामः**। यदा तु वैद्यादिना आसन्नमरणज्ञानं भवति तदा राज्ञः कर्माह **दत्वेति**। प्रायणं प्राणत्यागं ॥ ३२३–३२५ ॥

**एवं चरन्सदा युक्तो राजधर्मेषु पार्थिवः ॥**
**हितेषु चैव लोकेभ्यः सर्वान्भृत्यान्नियोजयेत् ॥ ३२४ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **एवं चरन्विहरन्राजधर्मेषु** यथाशास्त्रोपदिष्टेषु। **सदा युक्तस्तत्परः**। **लोकेभ्यः** स्वराष्ट्रीयेभ्यो हितेषुः। **सर्वान्भृत्यान्नियोजयेत्** ॥ ३२४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। राजधर्मेषु व्यवहारदर्शनादिषु ॥ ३२४ ॥

(३) **कुल्लूकः**। एवमध्यायत्रयोक्तराजधर्मेषु व्यवहार्यमाणो राजा सर्वदा यत्नवान्प्रजाहितेषु सर्वान्भृत्यान्नियोजयेत् ॥ ३२४ ॥

(४) **राघवानन्दः**। तत्रासमर्थस्य वृत्त्यन्तरं प्रदर्शयन्वैश्यशूद्रयोः कर्माह **एवमिति** द्वाभ्याम्। भृत्यानमात्यान्। पार्थिव इति जात्यन्तरं चेत्पृथिवीपालकः। उक्तधर्मानुष्ठानमावश्यकं तस्यापि ॥ ३२४ ॥

**एषोऽखिलः कर्मविधिरुक्तो राज्ञः सनातनः ॥**
**इमं कर्मविधिं विद्यात्क्रमशो वैश्यशूद्रयोः ॥ ३२५ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। आद्येनानेन कण्टकशुद्धिपर्यन्तो राजधर्म उपसंह्रियते। द्वितीयेन 'वैश्यशूद्रोपचारं' चेत्युक्तमनुस्मारयति ॥ ३२५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। राजधर्मानुपसंहृत्य वैश्यशूद्रयोर्धर्मावसाधारणौ क्रमप्राप्तावतारयति **एष इति**। इमं वक्ष्यमाणम् ॥ ३२५ ॥

(३) **कुल्लूकः**। एतद्राज्ञः कर्मानुष्ठानं पारंपर्यागततया नित्यं समग्रमुक्तं, इदानीं वैश्यशूद्रयोः क्रमेण वक्ष्यमाणमिदं कर्मानुष्ठानं जानीयात् ॥ ३२५ ॥

(५) **नन्दनः**। इमं वक्ष्यमाणम् ॥ ३२५ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। इमं वक्ष्यमाणलक्षणम् ॥ ३२५ ॥

(७) **मणिरामः**। इमं वक्ष्यमाणं ॥ ३२५ ॥

**वैश्यस्तु कृतसंस्कारः कृत्वा दारपरिग्रहम् ॥**
**वार्तायां नित्ययुक्तः स्यात्पशूनां चैव रक्षणे ॥ ३२६ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **कृतसंस्कार** उपनीतः कृतविवाहश्च। **वार्तायां** वक्ष्यमाणकालसमुदायो 'वार्ता'। तत्र **नित्ययुक्तः** स्यात्। यथा बार्हस्पत्ये वार्ता समुपदिष्टा ॥ ३२६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **वार्तायां** कृषौ ॥ ३२६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। **वैश्यः कृतो**पनयनपर्यन्तसंस्कारो विवाहादिकं **कृत्वा** जीविकायां वक्ष्यमाणायां कृष्यादिकार्यार्थं पशुपालने च सदा समायुक्तः स्यात् पशुरक्षणस्य वार्तात्वेऽपि प्राधान्यख्यापनार्थं पृथग्विधानं तथा चोत्तरश्लोकाभ्यां प्राधान्यं दर्शयति ॥ ३२६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। तत्रादौ वैश्यवृत्तीराह **वैश्यस्त्विति** ॥ ३२६ ॥

(५) **नन्दनः**। **संस्कारा** जातकर्मादयो गोदानव्रतान्ताः **वार्तायां** कृषिगोरक्षवाणिज्यवार्धुष्येषु ॥ ३२६ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **वैश्यस्तु वार्तायां** कृष्यादौ **नित्ययुक्तः** स्यात् ॥ ३२६ ॥

(७) **भारुचिः**। वार्तायां जीविकायां ॥ ३२६ ॥

**प्रजापतिर्हि वैश्याय सृष्ट्वा परिददे पशून् ॥**
**ब्राह्मणाय च राज्ञे च सर्वाः परिददे प्रजाः ॥ ३२७॥**

(१) **मेधातिथिः**। पशुरक्षणं वैश्यस्य न केवलं जीविकायैं, यावद्धर्मायापीति दर्शयत्यर्थवादेन। "कथं पुनर्दृष्टे सत्यदृष्टमुक्तम् ?" प्रजापालनवन्नियमात्परिपालनीयं त्वयेति नियोगपरिदानम्। क्षत्रियस्य प्रजापालनेऽधिकारो निरूपितः। ब्राह्मणस्य प्रायश्चित्तोपदेशादिना जपहोमादिना च "आदित्याज्जायते वृष्टिः" इति सर्वाधिकारः। दृष्टान्तार्थं चैतत्। तथैव धर्म एवं वैश्यस्य पशुरक्षणादिः॥ ३२७॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **परिददौ** रक्षणाय ददौ। ब्राह्मणाय पारलौकिकसिद्धयर्थम्। ॥ ३२७॥

(३) **कुल्लूकः**। यस्माद्ब्रह्मा पशून्सृष्ट्वा रक्षणार्थं वैश्याय दत्तवानतो वैश्येन रक्षणीयाः पशव इति पूर्वानुवादः प्रजाश्च सर्वाः सृष्ट्वा ब्राह्मणाय राज्ञे च रक्षणार्थं दत्तवानिति प्रसङ्गादेतदुक्तम्॥ ३२७॥

(४) **राघवानन्दः**। पशुरक्षणे हेतुः **प्रजापतिरिति**। **ब्राह्मणायेत्यादिनियतरक्षणे** दृष्टान्तार्थं; ब्राह्मणक्षत्रिययोर्धर्मस्योक्तत्वात्॥ ३२७॥

(५) **नन्दनः**। वैश्येनावश्यं रक्षणीयाः पशव इत्याह **प्रजापतिर्हि वैश्यायेति**। परिदानं निक्षेपः, उत्तरार्धोपन्यासो दृष्टान्तार्थः॥ ३२७॥

(६) **रामचन्द्रः**। वैश्यान् पशून् रक्षणाय **ददे** दत्तवान्। **ब्राह्मणाय** उपदेशार्थम्। राज्ञे क्षत्रियाय **सर्वाः प्रजा** रक्षार्थं **ददे**॥ ३२७॥

(७) **मणिरामः**। तथा च ब्रह्मणा यस्मै यद्दत्तं तेन तद् रक्षणोपयोगार्थमित्यर्थः॥३२७-३२८॥

**न च वैश्यस्य कामः स्यान्न रक्षेयं पशूनिति ॥**
**वैश्ये चेच्छति नान्येन रक्षितव्याः कथंचन ॥ ३२८॥**

(१) **मेधातिथिः**। "ननु को जीवितार्थं **कामः** यदुक्तं यद्यप्यदृष्टं तदा दृष्टाश्रितमेव भोजने प्राङ्मुखतायामेव। तत्र कथंचिदिदमुच्यते **न च वैश्यस्य कामः स्यादिति**। न ह्यबुभुक्षमाणः प्रत्यवैति।" सत्यमेवं 'कृष्टाविकृष्टं पाशुपाल्यमिति' ज्ञापयितुम्। कश्चिन्मन्यते सर्वाण्येतानि नियमार्थानि तुल्यफलानीति। तत्र तुल्यफलत्वे च पक्षेऽकामोऽपि स्यात्कर्मान्तरं कामयमानस्य। यदा त्वन्येभ्यो गुणवत्तरः तदा तु तेनाजीवेन्न कर्मान्तरे प्रवृत्तिः। अत एव तदालंबनो जीवेत्॥ ३२८॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **कामः** स्यादीदृगुद्यमः स्यात्। **वैश्ये चेच्छत्युद्यमं** कुर्वति **नान्येन** वर्णेन रक्ष्यास्तदभावे न शूद्रेण रक्ष्य इत्यर्थः॥ ३२८॥

(३) **कुल्लूकः**। पशुरक्षणं न करोमीति वैश्येनेच्छा न कार्या, अतः कृष्यादिवृत्तिसंभवेऽपि वैश्येन पशुरक्षणमवश्यं करणीयम्। वैश्ये पशुरक्षणं कुर्वत्यन्यः पशुरक्षणं न कारयितव्यः ॥ ३२८ ॥

(४) **राघवानन्दः**। वैश्यस्यावश्यकत्वमनुवदन् अनापद्धर्ममाह **न चेति** ॥ ३२८ ॥

**मणिमुक्ताप्रवालानां लोहानां तांतवस्य च ॥**
**गन्धानां च रसानां च विद्यादर्घबलाबलम् ॥ ३२९ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **लोहशब्देन** ताम्रायस्कांस्यान्याह **अर्घबलाबलं** न्यूनताऽर्घस्य न्यूनताधिक्ये देशकालापेक्षे। कस्मिन्देश इदं महार्घम्, कस्मिन्वाऽपचितार्घम्। एवं कालेऽपि ॥ ३२९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। मणिरश्ममणिर्माणिक्यादिः। **लोहानां** हिरण्यादीनाम्। **तान्तवस्य** कौशेयादेः। **अर्घबलाबलं** मूल्योत्कर्षापकर्षौ ॥ ३२९ ॥

(३) **कुल्लूकः**। किंच **मणीति**। **मणिमुक्ताविद्रुमलोहवस्त्राणां गन्धानां** कर्पूरादीनां **रसानां** लवणादीनां उत्तममध्यमानां देशकालापेक्षया मूल्योत्कर्षापकर्षं **वैश्यः जानीयात्** ॥ ३२९ ॥

(४) **राघवानन्दः**। न केवलं पशुसंरक्षणमेव वैश्यस्यान्यदपीत्याह **मणीति**। **मणिमुक्तादीनाम् लोहानां** सुवर्णरजतादीनाम्। **तान्तवस्य** वस्त्रादेः। **गन्धानां** चन्दनकुङ्कुमादीनाम्। **रसानां** तैलादीनाम्। **अर्घबलाबलं** देशकालाद्यपेक्ष्य न्यूनाधिकमूल्यम् ॥ ३२९ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। तान्तवस्य वस्त्रस्य ॥ ३२९ ॥

(७) **मणिरामः**। वैश्यस्य जीविकामाह **मणीति**। तांतवस्य वस्त्रस्य। अर्घबलाबलं मूल्योत्कर्षापकर्षौ ॥ ३२९ ॥

**बीजानामुप्तिविच्च स्यात्क्षेत्रदोषगुणस्य च ॥**
**मानयोगं च जानीयात्तुलायोगांश्च सर्वशः ॥ ३३० ॥**

(१) **मेधातिथिः**। इदं बीजं विस्तृतमुप्यत इदं संहतमुप्यत इत्येनामुप्तिं विद्यात्। इदं बीजमस्मिन् क्षेत्रे प्ररोहतीदं न। इदं च बलवत्फलति। एवमादयो गुणदोषाः। द्रोणशूर्पाढकादयो **मान**विशेषास्तेषां **योगा** ये हस्तेन मीयन्ते ॥ ३३० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। उप्तिविच्च स्यात् वापनकलादिवित्स्यात्। क्षेत्रदोषगुणज्ञ वेदिता। मानयोगान् द्रोणादीन्। तुलायोगान् पलादीनि। योगपदेन यत्र यादृशमासनं बन्धस्तद्विद्यादित्युक्तम् ॥ ३३० ॥

(३) **कुल्लूकः**। बीजानां सर्वेषां वपनविधिज्ञः स्यात्—इदं बीजमस्मिन्काले तत्र संहतं चोप्तं प्ररोहत्यस्मिन्नेत्येवं तथेदमूषरमिदं सस्यप्रदमित्यादिक्षेत्रदोषगुणज्ञश्च स्यात्। मानो-

पायांश्च प्रस्थद्रोणादीन् तुलोपायांश्च सर्वान् तत्त्वतो जानीयात् यथान्यो न वञ्चयति। ॥ ३३० ॥

(४) **राघवानन्दः**। अन्यदपि तत्कृत्यमाह **बीजानामिति चतुर्भिः**। **उप्तिविद्वपन**-कालवित् इदं बीजमिदानीं प्ररोहति, नेदमिदानीमिति ऊषरानूषरादिक्षेत्रदोषगुणयोर्ज्ञाति-ति शेषः। **मानयोगांश्च** प्रस्थद्रोणाढकादीनि मानानि यैः परिमाणप्रकारैर्युज्यन्ते संभवति तान्मानोपायान्। तदुक्तं 'सप्तमेऽष्टमुष्टि'रित्यादि। **तुलायोगान्** त्रसरेण्वादिपलान्तान् ॥ ३३० ॥

(५) **नन्दनः**। क्षेत्रबीजगुणस्य वेत्ता स्यादिति विपरिणामः ॥ ३३० ॥

(६) **रामचन्द्रः**। बीजानां उप्तिवित्स्यात् वपनवित् **मानयोगांश्च** जानीयात् प्रस्थादींश्च **प्रस्थाढकादयः** ॥ ३३० ॥

(७) **मणिरामः**। उप्तिवित् वपनविधिज्ञः अस्मिन् काले इदं बीजं वप्तव्यमिदं नेति। दोषगुणं ऊषरमिदं सस्यप्रदमितीदमिति। मानयोगात् मानोपायान् द्रोणादीन् तुलायोगान्। तुलोपायान् सर्वशः तत्त्वतः। एतत्सर्वं जानीयात् यथाऽन्यो न वंचयेत् ॥ ३३० ॥

**सारासारं च भाण्डानां देशानां च गुणागुणान् ॥**
**लाभालाभं च पण्यानां पशूनां परिवर्धनम् ॥ ३३१ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **भाण्ड**शब्देन विक्रेयवस्त्राजिनान्युच्यन्ते। तत्र **सारासारता,** यत्कालान्तरे स्थितं चेत् नश्यति तत् 'सारम्', तदितरमसारम्। अस्मिन्देशे व्रीहयो भूयांसोऽस्मिन्काले यवा अस्मिन्नीदृश आचार ईदृशो जानपदानां स्वभाव एवमादयो **देश गुणागुणाः**। अनेन च यवसेनेदृशेन च लवणेनास्मिन्काले प्रयुक्तेन पशवो वर्धन्त इति ॥ ३३१ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **भाण्डानां** विक्रयद्रव्याणाम्। **देशानां** देशान्तराणाम् **गुणा-गुणं** लाभालाभहेतुत्वम्। **लाभालाभं** कालान्तरेण ॥ ३३१ ॥

(३) **कुल्लूकः**। इदमुत्कृष्टमेतदपकृष्टमित्येकजातीनामपि द्रव्याणां विशेषं जानीयात् तथा **देशानां** प्राक्पश्चिमादीनां क्व किमल्पमूल्यं किं बहुमूल्यं चेत्यादिदेशगुणदोषौ बुद्धचेत। विक्रेयद्रव्याणां चेयता कालेनेयानपचयो उपचयो वेति विद्यात्तथाऽस्मिन्देशे कालेऽनेन च तृणोदकयवादिना पशवो वर्धन्तेऽनेन क्षीयन्त इत्येतदपि जानीयात् ॥ ३३१ ॥

(४) **राघवानन्दः**। सारेऽतिपक्वनिबिडादितारतम्येन स्थायित्वास्थायित्वे भाण्डानां मृन्मयादीनां एकजातीयानामपि। गुणागुणं लवणादिरसोत्पत्तिनिम्नोन्नतादिसत्त्वेन गौडा-दिदेशानाम्। पशूनां विवर्धनं वटकण्टकमाषतृणादिभक्षणीयद्रव्यम् ॥ ३३१ ॥

(५) **नन्दनः**। **भाण्डानां** द्रव्याणां **देशानां** क्षेत्रादीनाम् ॥ ३३१ ॥

(७) **मणिरामः**। **भाण्डानां** द्रव्याणां सारासारं उत्कृष्टाऽपकृष्टं गुणागुणं क्वचिद् बहुमूल्यं क्वचिदल्पमूल्यं चेत्यादिगुणदोषं लाभाऽलाभं इयता कालेनैतावानुपचय एतावानपचयश्चेतिरूपं परिवर्धनं तस्मिन् देशे अनेन कालेन तृणोदकयवादिना पशवो वर्धंते अनेन क्षीयंते इति च जानीयात् ॥ ३३१ ॥

**भृत्यानां च भृतिं विद्याद्भाषाश्च विविधा नृणाम् ॥**
**द्रव्याणां स्थानयोगांश्च क्रयविक्रयमेव च ॥ ३३२ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **भृत्या** दासाः प्रेष्यादयः गोपालाजपालमहामात्राद्याः। तेषां च कियती **भृतिरिति विद्यात्**। मालवकमगधद्रविडादिदेशभाषाः एतद्देशा अस्मिन्नर्थं ईदृशमुच्चारयन्ति। इदं द्रव्यमेवं स्थाप्यत एवं संवर्तत एवमाक्रियतेऽनेन योज्यत इयता विक्रीयते ॥ ३३२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **भृत्यानां** भृतिमेतया भृत्यैतत्कर्म मासं कार्यमिति। **भाषा** दाक्षिणात्यादिभाषाभेदान्। **द्रव्याणां** स्थानयोगानत्रैतदुत्पद्यत इति। **क्रयविक्रय**मत्रास्य क्रयविक्रयाविति ॥ ३३२ ॥

(३) **कुल्लूकः**। गोपालमहिषपालादीनामिदमस्य देयमिति देशकालकर्मानुरूपं वेतनं जानीयात्। गौडदाक्षिणात्यादीनां च मनुष्याणां नानाप्रकारा **भाषा** विक्रयाद्यर्थं विद्यात्तथेदं द्रव्यमेवं स्थाप्यतेऽनेन च संयुक्तं चिरं तिष्ठतीति बुध्येत, तथेदं द्रव्यमस्मिन्देशे काले चेयता विक्रीयत इत्येतदपि जानीयात् ॥ ३३२ ॥

(४) **राघवानन्दः**। **भृत्यानां** कर्म कुर्वताम्। **भाषाश्च** क्रयविक्रयार्थं लड(ले)पाभ्यंगतैलादिरूपः। **नृणा**मुत्कलादिस्थानाम्। नृणामिति विशेषणाद्वेदस्मृत्यादावन्येषामप्यधिकार इति। **स्थानयोगांश्च** पूगलवङ्गादीनां स्थापनोचितार्द्रशुष्कादीनि स्थानानि सुवर्णाद्याकरान्वा ॥ ३३२ ॥

(५) **नन्दनः**। **स्थानयोगान्निधानोपायान्** ॥ ३३२ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **भृत्यानां** भृतिं वेतनं विद्यात्। **द्रव्याणां** स्थानयोगांश्च अत्रेदं वस्तूत्पद्यत इति ॥ ३३२ ॥

**श्रीरामचन्द्रभट्टविरचितायां मनुभावार्थदीपिकायां नवमोऽध्यायः समाप्तः ॥**

(७) **मणिरामः**। भृतिं गोपालस्येदं वेतनं क्षेत्ररक्षकस्येदं वेतनमित्यादिस्थानयोगान् इदं द्रव्यं चिरकालं स्थापनीयं अनेन संयुक्तं च चिरकालं तिष्ठति इति च जानीयात् ॥ ३३२ ॥

**धर्मेण च द्रव्यवृद्धावातिष्ठेद्यत्नमुत्तमम् ॥**
**दद्याच्च सर्वभूतानामन्नमेव प्रयत्नतः ॥ ३३३ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। बहु अन्नं दातव्यमित्यर्थः। अन्यथा राज्ञा दण्ड्यः। एवमर्थमत्रोच्यते महाधनस्य चैतत् ॥ ३३३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अन्नमेव दद्यात् दद्यादेवान्नं कृषीवलतया बह्वन्नत्वात् ।।३३३।।

(३) **कुल्लूकः**। धर्मेण विक्रयादिनोक्तप्रकारेण धनवृद्धौ प्रकृष्टं यत्नं कुर्यात् हिरण्यादिदानमपेक्ष्यान्नमेव प्राणिभ्यो विशेषेण दद्यात् ।। ३३३ ।।

(४) **राघवानन्दः**। किंच **धर्मेण** 'अशीतिभागो वृद्धिः स्यादि'त्यनेन **धनवृद्धौ यत्नं कुर्यात्**। **सर्वभूतानां** क्षुधार्तानां कृष्यादिसंचितम**न्नं दद्यात्**। न तेषु क्लिश्यमानेषु अधिकलाभार्थं '(अधमर्णस्य सुवर्णादिकं) स्थापयेदित्यर्थः ।। ३३३ ।।

(५) **नन्दनः**। **सर्वभूतानां** शूद्रादीनां दद्यादेवेत्यन्वयः ।। ३३३ ।।

(७) **मणिरामः**। आतिष्ठेत् कुर्यात् ।। ३३३ ।।

**विप्राणां वेदविदुषां गृहस्थानां यशस्विनाम् ।।**
**शुश्रूषैव तु शूद्रस्य धर्मो नैःश्रेयसः परम् ।। ३३४ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **यशस्विनामिति**। साध्वाचारो लक्ष्यते। **शुश्रूषा** परिचर्यैव। तस्य धर्मः परं श्रेय आवहति ।। ३३४ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। शूद्रधर्मानाह **विप्राणामिति**। गृहस्थानामित्यन्यैर्भरणासंभवादित्युक्तम्। नैःश्रेयसो निःश्रेयसहेतुः ।। ३३४ ।।

(३) **कुल्लूकः**। **शूद्रस्य पुनर्वेद**विदां **गृहस्थानां** स्वधर्मानुष्ठानेन यशोयुक्तानां ब्राह्मणानां या परिचर्या सैव प्रकृष्टस्वर्गादिश्रेयोहेतुर्धर्मः ।। ३३४ ।।

(४) **राघवानन्दः**। उपसंहारव्याजेन शूद्रवृत्तिं कथयति **विप्राणामिति** द्वाभ्याम्। **गृहस्थानामिति** विशेषणादाश्रमान्तरेषु शूद्रापेक्षो निषेधः 'स्वयं दासास्तपरि॰न' (?) इति न्यायात्। तत्रापि न तपस्विनामिति भावः। यशस्विनां यशोर्थिनाम्। कदर्यशुश्रूषा भृत्यदुःखकरी नतु सुखकरी; उदर्केऽपि भक्ष्यलाभद्वेषादिना दुरदृष्टजदुःखरूपफलत्वात् ।। ३३४ ।।

(५) **नन्दनः**। **नैःश्रेयसः** निःश्रेयसहेतुः ।। ३३४ ।।

(७) **मणिरामः**। नैःश्रेयसः स्वर्गादिश्रेये हेतुः ।। ३३४ ।।

**शुचिरुत्कृष्टशुश्रूषुर्मृदुवागनहंकृतः ।।**
**ब्राह्मणाद्याश्रयो नित्यमुत्कृष्टां जातिमश्नुते ।। ३३५ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **शुचिः** मृद्वारिशुद्धेन्द्रियसंयमनेन च। **उत्कृष्टान्** त्रैवर्णिकान् **शुश्रूषुः**। **मृदुवाक्** न तर्कादिशास्त्रगन्धितया परुषभाषी। **उत्कृष्टां** ब्राह्मणादिजातिमाप्नोतीत्यर्थः। स्पष्टमुक्तं प्रयोजनम्। पुनर्**ब्राह्मणापाश्रय**ग्रहणात् अन्यानप्याश्रितस्यान्यशुश्रूषकस्यैतदविरोधेन धर्म एव ।। ३३५ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। शुचिरान्तरबाह्यशौचवान्। **उत्कृष्टस्य** ब्राह्मणस्य **शुश्रूषुः ब्राह्मणापाश्रयः** कंचिदेकं ब्राह्मणमाश्रित्य स्थितः। जातिमुच्छ्रितां जन्मान्तरे वैश्यादिजातिताम्। उत्कर्षं जाति इति क्वचित्पाठः ।। ३३५ ।।

(३) **कुल्लूकः**। बाह्याभ्यन्तरशौचोपेतः स्वजात्यपेक्षयोत्कृष्टद्विजातिपरिचरणशीलोऽपरुषभाषी निरहङ्कारः प्राधान्येन ब्राह्मणाश्रयस्तदभावे क्षत्रियवैश्याश्रयोऽपि स्वजातित **उत्कृष्टां जातिं** प्राप्नोति ॥ ३३५ ॥

(४) **राघवानन्दः**। **उत्कृष्टशुश्रूषुः** उत्कृष्टानां द्विजानां शुश्रूषुः। **उच्छ्रितिं** सच्छूद्रताम् ॥ ३३५ ॥

(५) **नन्दनः**। **उत्कृष्टशुश्रूषा** पूर्वपूर्ववर्णपूजनम् ॥ ३३५ ॥

**एषोऽनापदि वर्णानामुक्तः कर्मविधिः शुभः ॥**
**आपद्यपि हि यस्तेषां क्रमशस्तन्निबोधत ॥ ३३६ ॥**

**इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। स्पष्टमुक्तं प्रयोजनं च ॥ ३३६ ॥

**इति श्रीभट्टवीरस्वामिसूनोर्भट्टमेधातिथिकृतौ मनुभाष्ये नवमोऽध्यायः ॥९॥**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। यस्त्वेषां कर्मक्रमो वृत्तिक्रमश्च क्रमशो निबोधत मध्ये प्रसंगागतं किंचिदुक्ता'अजीवंस्तु यथोक्तेने'त्यादिना। वक्ष्यमाणः ॥ ३३६ ॥

**श्रीनारायणसर्वज्ञोक्तं मन्वर्थनिबन्धनम्। वीक्ष्य धर्मान्विरान्ब्रूत वेद्यं सर्वकृते कृतम् ॥१॥**

**इति श्रीसर्वज्ञनारायणकृतौ मन्वर्थविवृतौ नवमोऽध्यायः ॥९॥**

**समाप्तोऽयं समस्तव्यवहाराणामापदां च निस्तारकृन्नामा नवमोऽध्यायः ॥९॥**

(३) **कुल्लूकः**। एष वर्णानामनापदि चतुर्णामपि कर्मविधिर्धर्म उक्तः, आपद्यपि यस्तेषां धर्मस्तं संकीर्णश्रवणादूर्ध्वं क्रमेण शृणुत ॥ ३३६ ॥

**इति श्रीकुल्लूकभट्टविरचितायां मन्वर्थमुक्तावल्यां नवमोऽध्यायः ॥९॥**

(४) **राघवानन्दः**। वृत्तवर्तिष्यमाणयोरध्याययोः संबन्धार्थमनापद्धर्ममुपसंहरन्नापद्धर्मं प्रतिजानीते **एष इति** ॥ ३३६ ॥

**इति श्रीराघवानन्दसरस्वतीविरचितायां मन्वर्थचन्द्रिकायां नवमोऽध्यायः ॥९॥**

(५) **नन्दनः**। एतदद्वितीयादिभिरष्टाभिरध्यायैरुक्तं पूर्वं यः कश्चिदापद्धर्म उक्तः सोऽल्पक इत्यभिप्रेत्याह **अनापदीति**। शास्त्रानुक्रमाभ्युद्देशेन क्रमशो निबोधत आपद्धर्मतः पश्चाद्वक्ष्यमाणेनेत्यर्थः ॥ ३३६ ॥

**इति मानवधर्मानुशासनव्याख्यानं श्रीनन्दनकृतौ नवमोऽध्यायः ॥९॥**

**॥ नवमोऽध्यायः संपूर्णः ॥**

# म नु स्मृ तौ

# दशमोऽध्यायः

*

**अधीयीरँस्त्रयो वर्णाः स्वकर्मस्था द्विजातयः ॥**
**प्रब्रूयाद्ब्राह्मणस्त्वेषां नेतराविति निश्चयः ॥ १ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। "वेदः कृत्स्नोऽधिगन्तव्यः सरहस्यो द्विजन्मना" इति ग्रहणार्थं त्रैवर्णिकानां स्वाध्यायविधिरुक्तः। गृहीतस्य चाविस्मरणमप्युक्तं सर्वाश्रमिणाम्। 'स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्या'त्तथा 'नित्यं शास्त्राण्यवेक्षेत'। शास्त्रं प्रमुख्यया वृत्त्यैव शासनाद्धि शास्त्रं प्रमाणान्तरानवगतविधिप्रतिपादनाच्च वेद एवेति। तदेव शास्त्रम्। अन्यत्र ग्रन्थसंदर्भसामान्याच्छास्त्रशब्दप्रयोगः। तथा नियतो वेदमभ्यसेत्। ब्रह्मोज्झता वेदनिंदेति। यस्तु ब्रह्मयज्ञः स एकेनापि सूक्तेन साम्नानुवाकेन खण्डेन कण्डिकया वैकयैव यावज्जीवमधीतया सिध्यति। न तेन ब्रह्मस्मरणमाक्षिप्यते। तदेवं निर्विषयत्वादस्य विधेरनुवादार्थतैव। **प्रब्रूयाद्ब्राह्मणस्त्वेषां नेतराविति** क्षत्रियवैश्ययोः प्रवचनं निवर्तयितुम्। "ननु च 'अध्यापनं ब्राह्मणस्य' (१०।७५) इत्यादिना तयोस्तदप्राप्तमेव"। नैष दोषः। वृत्तिकरणस्य श्रुतत्वात्तदर्थैव निवृत्तिः संभाव्यते। धर्मार्थं तु विद्यादानं तयोरप्यस्त्येवेत्याशङ्कां निवर्तयति। अथास्ति सामान्येन निषेधः, एवं तर्हि जातिलक्षणप्रसङ्गजननार्थं सिद्धमेवोच्यते। एवं च कृत्वाऽनुक्रमणीयः संबन्धो न हातव्योऽयमिति भविष्यति। 'वैश्यशूद्रोपचारं च संकीर्णानां च संभव" इति। कश्चिदाह 'अध्यापनं' शब्दोच्चारणशिक्षणम्, 'प्रवचनं' तु तदर्थव्याख्यानमपि। अतो भिन्नत्वान्नाध्यापननिवृत्त्या तदर्थव्याख्याननिवृत्तिर्भवतीत्यतः पुनरुपदेशः। "ननु च नात्र वेदशब्दोऽस्ति, कुतस्तत्कर्मता अध्ययनक्रियायाः? अथवा लौकिकगद्यपद्यविषयमपीदमध्ययनमुच्यते"। उच्यते—तथा सत्यदृष्टार्थो विधिः स्यात्। अतश्चाधिकारकल्पना प्रसज्येत मूलकल्पना च स्यात्। यथा तु व्याख्यातं उपलब्धमूलैवेयं स्मृतिर्भवतीति नादृष्टमूलकल्पनाप्रसङ्गः। **द्विजातय** इति सिद्धे **त्रयो वर्णा** इति पादपूरणम्। एवं **स्वकर्मस्था** इति ॥ १ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। श्रीमहागणपतये नमः। चत्वारो वर्णा उक्तास्तद्धर्माश्च। अथ क्रमप्राप्तं संकीर्णानां स्वरूपं तद्वृत्तयश्च वाच्याः तद्वृत्तिप्रसंगाच्च वर्णानामपि वृत्तिं वक्ष्यते, तत्र संकीर्णानामध्ययननिषेधार्थं वर्णत्रयस्यापि स्थितमध्ययनमाचक्षाणः प्रसंगादध्यापकमपि नियमयति **अधीयीरन्निति**। त्रित्वं शूद्रेण सह मा भूदित्यत उक्तं **द्विजातय इति**। विकर्मस्थानां शौद्रवृत्त्या जीवतां मा भूदित्यत उक्तं **स्वकर्मस्था** इति। आपदि तु क्षत्रवैश्यकर्मापि विप्रस्य स्वकर्मैवेति ग्राह्यम्। अस्य निषेधार्थतां प्रवचननिषेधे दर्शयति **नेतराविति** ॥ १ ॥

(३) **कुल्लूकः**। वैश्यशूद्रधर्मानन्तरं 'संकीर्णानां च संभव'मिति (१।११६) प्रतिज्ञातत्वात् तस्मिन्वाच्ये वर्णेभ्य एव संकीर्णानामुत्पत्तेः वर्णानुवादार्थं त्रैवर्णिकस्य प्रधानधर्ममध्ययनं ब्राह्मणस्य चाध्यापनमनुवदति। ब्राह्मणादयस्त्रयो वर्णा अध्ययनानुभूतस्वकर्मानुष्ठातारो

वेदं पठेयुः। एषां पुनर्मध्ये ब्राह्मण एवाध्यापनं कुर्यान्न क्षत्रियवैश्यावित्ययं निश्चयः। 'प्रब्रूयाद्ब्राह्मणः स्त्वेषा'मित्यनेनैव क्षत्रियवैश्ययोरध्यापननिषेधसिद्धौ 'नेतरा'विति पुनर्निषेधवचनं प्रायश्चित्तगौरवार्थम् ॥ १ ॥

(४) **राघवानन्दः**। तत्रादौ आपद्धर्मं वक्तुमनापद्धर्मान्स्मारयति **अधीयीरन्निति** षड्भिः। स्वकर्मस्था अग्निहोत्राद्यनुष्ठानेच्छव एवाधीयीरन्, तेनाध्ययनाख्यं संस्कारसंस्कृतवेदार्थावबोधोनुष्ठानाङ्गवाध्ययनमात्रमिति भावः। तेषां मध्ये ब्राह्मण एव प्रब्रूयाद्धर्ममिति **न क्षत्रियवैश्यौ** ॥ १ ॥

(५) **नन्दनः**। अथ शास्त्रानुक्रमण्युद्देशक्रमेण संकीर्णानां संभवं वक्ष्यंस्तत्प्रकृतिभूतानां **चतुर्णां** वर्णानामुत्कर्षापकर्षौ तावदाह **अधीयीरन्निति**। निर्णयः अयमभिप्रायः द्विजातित्वाद्विधिविहितधर्मानुष्ठायित्वादध्ययनयोगाच्च त्रयो वर्णाः शूद्रादुत्कृष्टाः, ब्राह्मणस्त्वाचार्यत्वात्क्षत्रियवैश्याभ्यामुत्कृष्ट इति ॥ १ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। त्रयो वर्णाः अधीयीरन्। तेषां वर्णत्रयाणां ब्राह्मणः प्रब्रूयात् न इतरौ नृपवैश्यौ न ॥ १ ॥

(७) **मणिरामः**। इदानीं संकीर्णानामुत्पत्तेर्वक्ष्यमाणत्वात्तेषां तु वर्णेभ्य एवोत्पत्तेर्वर्णाऽनुवादार्थं त्रैवर्णिकस्य प्रधानधर्ममध्ययनं ब्राह्मणस्य चाऽध्यापनमनुवदति **अधीयीरन्निति**। तेषां क्षत्रियादीनां नेतरौ न क्षत्रियवैश्यौ ॥ १ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। ॐ सिद्धिः॥ संकीर्णानां वर्णेभ्य एवोत्पत्तिर्वर्णोत्पत्तिः अभिधानमन्तरेण तदुत्पत्तिकथनस्य अशक्यत्वाद्वर्णोत्पत्त्यभिधानस्य प्रसङ्गेनोत्पादनाय द्वितीयाध्यायसिद्धं त्रैवर्णिकप्रधानधर्मं वेदाध्ययनमनुवदितुमाह **अधीयीरन्निति**। ब्राह्मणादयस्त्रयो वर्णा अध्ययनाङ्गभूतधर्मयमनियमारब्धस्वकर्मानुवर्तिनो वेदं पठेयुः। एषां पुनरध्यापनं ब्राह्मण एव कुर्यान्न क्षत्रियवैश्यावित्ययं निश्चय इत्यध्ययनानुवादप्रसङ्गेन ब्राह्मणस्याध्यापननियममाह 'प्रब्रूयाद् ब्राह्मणस्त्वेषा'मित्यनेनैव क्षत्रियवैश्ययोरध्यापननिवृत्तिसिद्धौ स्वशब्देन निषेधवचनं निषिद्धाचरणेन प्रायश्चित्तविशेषार्थम् ॥ १ ॥

**सर्वेषां ब्राह्मणो विद्याद्वृत्त्युपायान् यथाविधि ॥**
**प्रब्रूयादितरेभ्यश्च स्वयं चैव तथा भवेत् ॥ २ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। 'न चास्योपदिशेद्धर्मम्' इति न कश्चिद्धर्मोपदेशः शूद्रस्य कर्तव्य इत्युक्तम्। वृत्तिधर्मा उपदेष्टव्या इति तस्यापवादः। **वृत्तिः** शरीरकुटुम्बस्थितिस्तदर्थां **उपायास्तान् विद्यात्**। **प्रब्रूयात्सर्वेभ्य इतरेभ्य** इति बहुवचनं शूद्रावरोधार्थम्। **स्वयं च तथा भवेद्य**थोपदिष्टा वृत्तिनियमा अनुष्ठेया इत्यर्थः ॥ २ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **ब्राह्मणो वृत्त्युपायान्** धर्म्यान् जीवनोपायानध्यापनादीन् **विद्यादिति** ब्राह्मणस्य नियम्यते नत्वन्यस्य निषिध्यते। **तथा भवेत्** तथा विहितवृत्त्या जीवेत् ॥ २ ॥

(३) **कुल्लूकः**। किंच **सर्वेति**। सर्वेषां वर्णानां जीवनोपायं यथाशास्त्रं ब्राह्मणो जानीयात्तेभ्यश्चोपदिशेत्स्वयं च यथोक्तवन्नियममनुतिष्ठेत् ।। २ ।।

(४) **राघवानन्दः**। वृत्त्युपायान् जीवनोपायान्, दण्डशुल्ककृषिवाणिज्यादीन्। न केवलमेवमित्याह **स्वयं चेति**। तथा स्वधर्मेण याजनाध्यापनप्रतिग्रहैर्जीवितं स्यादिति ।। २ ।।

(५) **नन्दनः**। इतश्चापि ब्राह्मण उत्कृष्ट इत्याह **सर्वेषां ब्राह्मणो विद्यादिति**। सर्वेषां वर्णानां शास्त्रेषु विहितान्वृत्त्युपायान्ब्राह्मणो विद्यादितरेभ्यश्च प्रब्रूयादुपदिशेत्, तथा स्वयं च शास्त्रोक्तमाचरेन्नेतरः। तेनोत्कृष्ट इति भावः ।। २ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। ब्राह्मणः सर्वेषां वृत्त्युपायान् विद्यात् ब्राह्मणस्वरूपोपादानवैशिष्ट्यात् तथा स्वयं वै भवेत् ।। २ ।।

(७) **मणिरामः**। यतोऽध्यापनमेतस्य तच्च ज्ञानं विना कथं भवेदतः सर्वेषां वृत्त्युपायान् जानीयात्। इतरेभ्यः क्षत्रियादिभ्यः। तथा भवेत् स्ववृत्तिं कुर्यात् ।। २ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। किंच **सर्वेषामिति**। सर्वेषां सङ्करपर्यन्तानां आत्मकुटुम्बस्थित्युपायान् ब्राह्मणो यथाशास्त्रं जानीयात्। तथा तेभ्यश्चोपदिशेद् आत्मना च वृत्तिनियमाननुतिष्ठेत् ।। २ ।।

(९) **भारुचिः**। वृत्तये उपायान् विद्यात्। अथवा वृत्तिश्च विद्याधर्मप्राप्त्युपायांश्च। सर्वग्रहणं चाधिकाराद्वर्णत्रयापेक्षमेव। अथवा शूद्रावरोधार्थमेतत्। अधिकृतत्वाद्वर्णस्य। अस्योभयस्याप्यर्थवादः ।। २ ।।

**वैशेष्यात्प्रकृतिश्रैष्ठ्यान्नियमस्य च धारणात् ।।**
**संस्कारस्य विशेषाच्च वर्णानां ब्राह्मणः प्रभुः ।। ३ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। "किं पुनः कारणं ब्राह्मण एव प्रकृतत्वेनाऽधिक्रियते, न पुनः क्षत्रियादयोऽपि"। यत एतच्छेषतया प्ररोचनं पठति। **वैशेष्या**द्विशिष्टत्वादित्यर्थः, गुणाधिक्यादिति यावत्। तदिदानीमाधिक्यमाह। **प्रकृतिश्रैष्ठ्या**दुत्तमाङ्गोद्भवादिदमुक्तम्। 'प्रकृतिः' कारणम्। नियमस्य च धारणान्मद्यपानप्रतिषेधादयमेव नियमोऽभिप्रेतः, स्नातकव्रतानि वा वैणवधारणादीनि ब्राह्मणस्यैव। **संस्कारस्य** च विशेषो नियमोऽभिप्रेतः स्नातकव्रतानि च 'विशेषो' हृदयङ्गमाभिरित्यादेरुपनयनादेर्वा बालस्यैव विधानात्। क्षत्रियवैश्ययोस्त्वतीतशैशवयोरेकादशद्वादशयोः। अतो हेतोर्**वर्णानां ब्राह्मणः प्रभुः** शासिता ।। ३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। वैशेष्यात् जातिवैशिष्ट्यात् प्रकृतेर्ब्रह्ममुखरूपोपादानस्य श्रैष्ठ्यात्। नियमस्य स्नातकव्रतादेः। संस्कारस्योपनयनादेरतिबाल्यकृतत्वादिना विशेषात् ।।३।।

(३) **कुल्लूकः**। अत्रानुवादः **वैशेष्यादिति**। जात्युत्कर्षात्प्रकृतिः कारणं हिरण्यगर्भोत्तमाङ्गरूपकारणोत्कर्षान्नियम्यतेऽनेनेति नियमो वेदस्तस्याध्ययनाध्यापनव्याख्यानादियुक्तसातिशयवेदधारणात्। अत एव 'ब्रह्मणश्चैव धारणा'दिति (१।९३) सातिशयवेदधारणेनैव ब्राह्मणोत्कर्ष उक्तः। **गोविन्दराजस्तु** स्नातकव्रतानां धारणादिति व्याख्यातवान्—तन्न;

क्षत्रियादिसाधारण्यात् । संस्कारस्योपनयनाख्यस्य क्षत्रियाद्यपेक्षया प्राधान्यविधाने विशेषाद्वर्णानामध्यापनवृत्त्युपदेशयोर्ब्राह्मण एवेश्वरः ।। ३ ।।

(४) **राघवानन्दः** । ब्राह्मणस्यैव धर्मवदने जात्युत्कर्षब्रह्ममुखजत्ववेदाध्यापकत्वसोमपातृत्वानि चत्वारि हेतव इत्याह **वैशेष्यादिति** । वैशेष्यात् ज्यैष्ठ्यात् 'ब्रह्म वा इदमग्र आसीदि'ति श्रुतेः । प्रकृतिश्रैष्ठ्यात् प्रकृतिरुत्पत्तिस्थलम् 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीदिति' श्रुतेः । नियमस्य स्नातकव्रतकलापादेः । संस्कारस्य सोमपारवसंन्यासित्वस्य ।। ३ ।।

(५) **नन्दनः** । अन्यानपि हेतून्ब्राह्मणोत्कर्षसाधकानाह **वैशेष्यादिति** । प्रकृतिश्रैष्ठ्यात् ब्रह्मण उत्तमाङ्गब्राह्मण एव प्रकृतिः । तस्याः क्षत्रियादिप्रकृतिभ्यो बाह्वादिभ्यः श्रैष्ठ्यात् । धारणाद्रक्षणात् चतुर्षु हेतुषु प्रथमेन स्वरूपत उक्तः । कारणतः तृतीयचतुर्थाभ्यां कर्मत इत्यनुसंधातव्यमिति ।। ३ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । वैशेष्यात् प्रकृतिश्रैष्ठ्यात् ब्राह्मणस्वरूपादानवैशिष्ट्यात् नियमस्य व्रतानां वेदस्य धारणात् संस्कारस्य विशेषात् अतिबाल्ये उपनयनादिसंस्कारविशेषात् ब्राह्मणो वर्णानां प्रभुः ।। ३ ।।

(७) **मणिरामः** । जात्युत्कर्षात् । प्रकृतिः कारणं हिरण्यगर्भमुखस्वरूपकारणोत्कर्षात् । नियमस्य च धारणात् नियम्यते अनेनेति नियमो वेदः तस्य धारणात् । अध्यापनरूपसंस्कारस्य विशेषात् ।। ३ ।।

(८) **गोविंदराजः** । अत्रार्थवादः **वैशेष्यादिति** । जात्युत्कर्षान्मुखोद्भवत्वेन च श्रेष्ठकारणजन्यत्वात् स्नातकस्य व्रतानां च करणात् संस्कारस्य चोपनयनाख्यस्य बालस्यैव विधानेन विशेषाद् वर्णानां वृत्तिवेदनतदुपदेशयोर्ब्राह्मण एवेशता ।। ३ ।।

(९) **भारुचिः** । विशिष्टत्वाद् ज्ञातित इतरेभ्यः । अथवा प्रतिज्ञैवेयम् । ततोऽत्र कारणं वक्ति – प्रकृतिश्रैष्ठ्यं तस्य मुखोद्भवत्वमुक्तम् । प्रथमेऽध्याये ब्राह्मणस्तुतावुत्तमाङ्गोद्भवादित्येतत् । नियमस्य च धारणात् । कृत्स्ने वेदाध्ययनधारणाभ्यासलक्षणस्य ब्राह्मणकर्तृकस्यैवोपदेशात् । एवं चातिशयविशेषापेक्षादेतदितराभ्यां विज्ञेयम् । स्नातकधर्माचरणापेक्षं चैतत् पूर्ववद् व्याख्येयम् । संस्कारस्य च श्रौतस्मार्तस्योपनयनादेः श्मशानकरणान्तस्य द्विजातिविषयस्य ब्राह्मणहेतुकत्वात् तस्य विशिष्टत्वम् । अथवाल्पे कर्मण्यग्निहोत्रादावेकशतविधस्याग्नेर्दर्शनेन सम्पादनम् । अश्वमेधादेर्वा वर्णान्तकर्मणो दर्शनेन फलसम्पदपेक्षयेदमुच्यते– ब्राह्मणस्य विशेषोऽयम् । एवमादि ब्राह्मणस्यैव । चशब्दात् ज्येष्ठोपसंग्रहः प्रथमेऽध्याये ब्राह्मणस्तुतिप्रकरणोपदिष्टः समुच्चीयते । यतश्चैवमेव । ब्राह्मणस्य सर्ववर्णप्रभुत्वाद् अध्यापनाद्यधिकृतं कार्यमित्यर्थवादः ।।३।।

**ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः ।।**
**चतुर्थ एकजातिस्तु शूद्रो नास्ति तु पञ्चमः ।। ४ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । के पुनरमी वर्णा नाम मनुष्यजातिवचनो वर्णशब्दो नेत्याह–चत्वारो वर्णा ब्राह्मणाद्याः शूद्रपर्यन्ताः । अन्ये तु बर्बरकैवर्तादयः संकीर्णयोनयो यथा वक्ष्यन्ते । तत्र चतुर्णां **त्रयो द्विजातयः**, उपनयनस्य तेषां विहितत्वात् । **एकजातिः** शूद्रो, न हि तस्यो-

पनयनमस्ति। उपनयनविधौ ब्राह्मणादिवर्णविशेषसंयोगात्। "अष्टमे ब्राह्मणमुपनयीतैकादशे राजन्यं द्वादशे वैश्यम्" इति। न कस्मिंश्चित्काले शूद्रं पठन्ति। "ननु कालविशेषानुपादानादनियतकालं शूद्रोपनयनमस्तु।" भवेद्यद्यसंयुक्ता सामान्येनोपनयनस्योत्पत्तिः स्यात्। एताश्च वर्णकालविशेषयुक्ता निमित्तार्थाः स्तुतयः स्युः। न तु पृथगुत्पत्तिरस्यास्ति। तत्कस्य प्रमाणस्य सामर्थ्येनास्योपनयनमनियतकालं क्रियताम्? "यद्येवं किं तर्ह्यनेन **चतुर्थ एकजातिरिति**?" सत्यम्। आशङ्कामात्रनिवारणार्थम् 'मन्त्रवर्जं तदुच्यत' इति अमन्त्रकस्यानियतकालस्य प्राप्तिराशंक्येत। "ननु च पाकयज्ञविधावेतद्वाक्यं तत्सन्निधौ श्रवणात्तत्र कृतार्थं नान्यत्र भवितुमर्हति"। अत एवाशङ्कामात्रमित्युक्तम्। परमार्थतस्तु व्यवहारनियमार्थपरः श्लोकः॥ ४॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। एते द्विजातयो द्विजातिशब्दवाच्याः सावित्रीतो द्विजातिजन्मलाभात्। तथा चतुर्थो वर्ण एकजातिरेकमेवास्य जन्म मातुः सकाशात्, पञ्चमो वर्णो नास्ति, संकरजानामवर्णत्वात्। एतच्च तेषां वर्णप्राप्तिर्मा भूदित्येतदर्थमुक्तम्॥ ४॥

(३) **कुल्लूकः**। ब्राह्मणादयस्त्रयो वर्णा द्विजास्तेषामुपनयनविधानात् शूद्रः पुनश्चतुर्थो वर्ण एकजातिरुपनयनाभावात्। पंचमः पुनर्वर्णो नास्ति। संकीर्णजातीनां त्वश्वतरवन्मातापितृजातिव्यतिरिक्तजात्यन्तरत्वान्न वर्णत्वं। अयं च जात्यन्तरोपदेशः शास्त्रे संव्यवहरणार्थः॥ ४॥

(४) **राघवानन्दः**। शूद्रस्तु चतुर्थ एकजातिरित्यन्वयः। पञ्चमोऽनुलोमजो नास्तीति॥ ४॥

(५) **नन्दनः**। उक्तमर्थं निगमयति **ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्य इति**। क्रमोपादानं ब्राह्मणाद् द्विजातेरपि क्षत्रियः किंचिदपकृष्टः, क्षत्रियाद्वैश्य इति ज्ञापनार्थं, शूद्रस्यैव जातित्वग्रहणं पृथगुपादानं चापकृष्टतमत्वख्यापनार्थं; पञ्चमो नास्ति, चत्वार एव वर्णा इत्यर्थः॥ ४॥

(६) **रामचन्द्रः**। शूद्रस्तु चतुर्थ एकजातिः, पुनः पंचमः नास्ति॥ ४॥

(७) **मणिरामः**। चतुर्थः शूद्र एकजातिः, उपनयनाभावात्। नास्ति तु पंचमः अर्थात् वर्णः। संकीर्णानां तु पितृमातृव्यतिरिक्तजात्यंतरत्वं न तु वर्णांतरत्वं॥ ४॥

(८) **गोविन्दराजः। ब्राह्मण इति**। ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यास्त्रयो वर्णा द्विजा उपनयनस्य तेषां विहितत्वात्। शूद्रः पुनश्चतुर्थो वर्णः एकवर्ण उपनयनाभावात्। पञ्चमः पुनर्वर्णो नास्ति अन्तरप्रभवानां मातापितृजातिव्यतिरिक्तजात्यन्तरत्वाद् अस्येतरवद् एवं चायमेषां वर्णत्वोपदेशः शास्त्रे व्यवहारार्थः। शूद्रस्योपनयनानुपदेशादेवैकजातित्वसिद्धौ चतुर्थ एकजातिस्तु इति इदं धर्मेण वस्तुधर्मज्ञा इत्यनेनायं मन्त्रः केशवपनादिना संस्कारान्तरवद् उपनयनं नास्तीति सूचनार्थम्॥ ४॥

(९) **भारुचिः**। अधोयोरंस्त्रयो वर्णा इ..दिविशेष एव वर्णशब्द उक्तः। यतस्तद्व्यतिरेकेण शूद्रे न प्राप्त इष्यते च। तस्यापि स्यादित्यतस्तदर्थोऽयं श्लोकारम्भः। व्यवहारार्थो वायं ब्राह्मणादीनां चतुर्णामपि वर्णसंज्ञोपदेशः शास्त्रे। तथा चानया व्यवहार एषां सर्वत्र शास्त्रे दृश्यते। वर्णापसदेषु वा वक्ष्यमाणेषु तदभावज्ञापनार्थं तावद्दर्शयति—'नास्ति तु पञ्चमः' इति।

एवं च सत्येत एव चत्वारो वर्णाः स्वतः सिद्धाः। कथं? रसवत्। यथाष्ट (प्राप्ताः) स्वतः सिद्धाः। यस्तु तेषां परस्परं सम्पर्कादसविशेष उपलभ्यते। नासौ जात्यन्तरस्तेभ्यो भवति। एवं वर्णानामपि परस्परसम्पर्काद्यश्चण्डालादिरुपलभ्यते। शास्त्रे नासौ जात्यन्तरं तेभ्यो भवितुमर्हति। ब्राह्मणशूद्रावेव हि वर्णौ प्रतिलोमतः सम्पृक्तौ यं जनयतः स चण्डालाख्यां लभते। येषामप्युत्पद्यते वर्णद्वयसम्पर्काज्जात्यन्तरमिति पक्षः। तेषामपि स्वतो नास्तीति कृत्वा युक्तो वर्णापसदेषु वर्णसंज्ञाप्रतिषेधः। एतावांस्तु विशेषः– उत्कर्षापकर्षयोस्तेषां कर्मसम्बन्धस्य च स्मृतिनिमित्तत्वाद्यथाशास्त्रमेतद्द्वयं विज्ञायते। ननु च संस्कारानुपदेशादेव शूद्रस्यैकजातित्वं सिद्धमिति। एवं तर्ह्यमन्त्रतोपनयनसंस्कारप्रतिषेधार्थमिदमेकजातिग्रहणं शूद्रस्य। तथा चोक्तम्– 'मन्त्रव(र्ज) न दुष्यन्ति प्रशंसां प्राप्नुवन्ति चे'ति। तथा च सत्यनियतकालादिसाधनोपनयनसंस्कारप्रतिषेधार्थमिदं शूद्रस्यैकजातिग्रहणं युक्तं मा भूत्। पाकयज्ञवदस्यामन्त्रकस्य प्राप्तिरिति उक्तानुवा(दो)ऽयं पादपूरणार्थः। एवं चान्यपरेऽस्मिन्नेकजातिनिर्देशे नास्ति चोद्यावकाशः। अथवोत्तरार्थः –तथा च दर्शयति ॥ ४ ॥

**सर्ववर्णेषु तुल्यासु पत्नीष्वक्षतयोनिषु ॥**
**आनुलोम्येन संभूता जात्या ज्ञेयास्त एव ते ॥ ५ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। के पुनरमी ब्राह्मणादयो नाम? न ह्येषां परस्परो भेदः शक्योऽवसातुम्। व्यक्त्यधीनाधिगमा हि जातयो न च व्यक्तयः, स्वावयवसन्निवेशविशेषावगमशून्याः शक्नुवन्ति तासां भेदमावेदयितुम्। न च ब्राह्मणक्षत्रियादीनां गवाश्वस्येव वाऽऽकारभेदोऽस्ति, येन रूपिसमवायाच्चाक्षुष्याः स्युः। नापि विलीनघृततैलगन्धरसादिभेदेन क्रियान्तरगोचराः। नापि शौचाचारपिङ्गलकेशत्वादिभिर्धर्मैः शक्यभेदावसानाः, तेषां सर्वत्र संकरोपलब्धेः। व्यवहारश्च पुरुषाधीनः, विप्रलंभभूयिष्ठत्वाच्च पुरुषाणां नान्ततो वस्तुसिद्धिः, इत्यतो जातिलक्षणमुच्यते।

**सर्ववर्णेष्वेतल्लक्षणं जातेर्यत्तुल्यासु** समानजातीयासु संभूतासु **पत्नीषू**ढासु जातास्त एव **जात्या ज्ञेयाः**। प्रायेण मातापित्रोर्या जातिः सैवापत्यस्योढायां जातस्य वेदितव्या। संबन्धिशब्दत्वात्पत्नीग्रहणस्यातो वोढा 'पिता' लभ्यते। तेन येनैवोढा तत एव यस्तस्यामेव जातस्तदा तज्जातीयो भवति।

**अक्षतयोनि**ग्रहणं पुनर्विवाहसंस्कारेण पत्नीत्वमाशङ्क्यमानं निवर्तयति। सहोढकानीनमातॄणां च।

"ननु च नैवैतासां विवाहसंस्कारोऽस्ति, "पाणिग्रहणिका मन्त्राः कन्यासु" (८।२२६) इति वचनात्। यदपि "वोढुः स गर्भो भवति" (९।१७३) इति विवाहश्रवणेन शास्त्रीयसंस्कारप्रतिपत्तिः, प्राप्तिमात्रवचनत्वात्तस्य न विहितवचनीयं प्रत्यभिज्ञानमस्ति। तस्मात्स्वीकारमात्रे धातुर्वर्तते स्वीकर्तुरित्यर्थः। पित्रादीन् वंचयित्वा येनैव स्वीकृता तस्यैव सा भवति, ततः पुत्रश्चेति तस्यार्थः। पुनर्भूसंस्काराभावात्। "सा चेदक्षतयोनिः स्यात्" (९।१७६) इति पठ्यते। गतप्रत्यागतायामपि पुनःशब्दप्रत्यभिज्ञानाद्भर्तुरुक्ताः। न च ताभिः

सहाभिः सहाधिकारोऽस्ति, यज्ञसंयोगेऽस्ति पत्नीशब्दः। अतो'अक्षतयोनि'शब्दोऽतिरिच्यते। अत्र पूर्वे पत्नीशब्दपर्यायेण नारीष्विति पठन्ति, तदपि न किंचित्। केवले ह्यक्षतयोनिशब्दे त्वसंस्कृतास्वपि जातास्तज्जातीयाः स्युः। पत्नीशब्दपाठेन शास्त्रीयेण विधिना या संस्कृता भार्यात्वमापादिता सा गृह्यते। यास्तु कुमार्य एवोपगम्यन्ते भवन्ति ता 'अक्षतयोनयो' न तु 'पत्न्यः'। तस्मादक्षतयोनिशब्दस्य प्रयोजनं वाच्यम्"।

उच्यते–यत्तावदुक्तं 'न ताः 'पत्न्यो' यज्ञसंयोगाभावादिति' यदि विवाह्येरन् स एव यज्ञः स्यात्। तत्रापि पूषवरुणार्यम्णामस्त्येव यागः। समानार्थौ च यागयज्ञशब्दौ। तस्मात्स्युरेव पत्न्यः। अकन्यात्वादविवाह्यतयैव न पत्न्य इति युक्तम्।

अतश्चानर्थक्येऽक्षतयोनिशब्दस्य प्रयोजनमुच्यते। दृश्यते लक्षणयाऽसत्यपि यज्ञसंयोगे पत्नीशब्दः प्रयुज्यमानो लोके रजकस्य पत्नी। यथाऽन्यत्रावरुद्धासु स्त्रीषु गृहिणीशब्दः सोऽपि भार्यावचन एव केनचिद्धर्मसाम्येन तत्रापि प्रयुज्यते। यद्यपि सति मुख्ये लक्षणा न न्याय्या, तथापि मन्दधियां सुहृद्भूत्वा आशङ्कामात्रं निवर्तयति। किं नाम नाशङ्क्यते मूढमतिभिः?

**आनुलोम्य**ग्रहणमुत्तरार्थम्। येऽपि 'त एव ते' इति पठन्ति तेषामपि स एवार्थस्तज्जातीया इति।

अत्रोच्यते–"किं प्रमाणमूलमेतत्स्मृतिकाराणां स्मरणम्? अकार्यरूपत्वान्न धर्माधर्मोपदेशतुल्यम्। प्रमाणान्तरञ्च नास्तीत्युक्तम्। स्मृत्यन्तरमूलत्वेऽन्धपरंपराप्रसङ्गः प्रमाणश्लोके दर्शितः"। उच्यते–वृद्धव्यवहार एव मूलं साधुत्वस्मृतिवत्। ननु च सापराधाऽसाविति युक्तम्। अत एव नियामिकाः स्मृतयः फलवत्यः। अभियुक्तस्मरणमन्यथेति न शक्यते वक्तुम्। शास्त्रस्थाः प्रसिद्धाः प्रमाणतराः। संभवति च तेषामनादिव्यवहारो मूलम्। एतत्स्मृतिसंस्कृतानां वावगताभिजनजातीयानां प्रत्यक्षमप्युपपद्यत इति केषांचिद्दर्शनम्। एतत्**स्मृतिविवेके** प्रपंचितम्। ननु च स्मृत्यन्तरे नायं विशेषोऽस्ति "सवर्णेभ्यः सवर्णासु जायन्ते हि सजातयः। अनिन्द्येषु विवाहेषु पुत्राः संतानवर्धनाः।।" (याज्ञ० आचा० ९०) इति। आद्येनार्धेन जातिर्लक्ष्यते। उत्तरेण हि ब्राह्मादिविवाहजातानां संतानवर्धनत्वम्। तत्र 'सवर्णेभ्यः सवर्णास्वि'ति नात्र पत्नीशब्दोऽस्ति। कथं नास्ति? यावता "विन्नास्वेष विधिः स्मृत" (याज्ञ० आचा० ९२) इति। मा वा भूत्। अविशेषस्मृतेर्विशेषस्मृतिर्बलीयसी। अदर्शनाद्दर्शनं बलीयः। यत एकेन विशेषो न दृष्टोऽपरेण दृष्ट इति संभवत्येतत्। अतोऽभियुक्तस्मरणं संभवन्मूलतया प्रमाणम्।

"ननु चाव्याप्तेरलक्षणमेतत्। न हि सहोढकानीनपौनर्भवादीनामनेन ब्राह्मण्यं भवति। 'कुण्डगोलकयोः क्षेत्रजस्य च अनभिप्रेतमेव तत्तेषामिति' चेत् का तर्हि तेषां जातिः? कुण्डगोलकयोश्च असति ब्राह्मण्ये श्राद्धे प्राप्त्यभावादनर्थको निषेधः स्यात्। स्मृत्यन्तरविरोधश्च। "सजातीयेष्वयं प्रोक्तस्तनयेषु मया विधिः" (या० व्यव० १३३) इति। किंच यदेव लक्षणं तदेव लक्ष्यम्। अनिर्ज्ञातं लक्ष्यं भवति। निर्ज्ञातं लक्षणम्। यथा को देवदत्त इति संशयेऽङ्गदी कुण्डली व्यूढोरस्को वृत्तबाहुः। इह तु यथा कश्चित् ब्रूयात्कः काक इत्युक्ते

काकाज्जात इत्युत्तरं तादृगेव 'को ब्राह्मणो' 'यो ब्राह्मणाज्जात' इति। जनकेऽपि हि ब्राह्मण्यमप्रसिद्धमेव। न्यायविरोधश्च। सजातीयात्सजातीयायां जातः स लोके सजातीयो भवति। यथा गोर्गवि गौरश्वाद्वडवायामश्वः।

अत्रोच्यते– यत्तावदुक्तं का तेषां जातिरिति—किमन्यया जात्या? मनुष्यास्तावद्भवन्ति। पुरुषधर्मैश्चाधिक्रियंते अनुपात्तजातिविशेषैः। पुत्रत्वाच्छ्राद्धादिभिश्च। दाने च सर्वेषामधिकारः।

"ननु च विशेषस्योपदेशेन विना व्यवहारो न सिध्यति। सर्वसाधारणत्वान्मनुष्यजातेः"। असदेतत्। सर्वस्यैव स्वसंज्ञाविशेषो विद्यते प्रतिपुरुषं – देवदत्तो यज्ञदत्त इति।

अथापि संबन्धव्यपदेशः कर्तव्य इति "कानीनः सहोढ" इत्येव व्यपदिश्यते। 'सोऽपि चातुर्वर्ण्ये सद्भावात्सामान्यरूप एवेति' चेद्देवदत्तस्य कानीन इत्यादि जनकेन व्यपदेशः करिष्यते। तस्मादसंबद्धमेतद्यदुच्यते व्यपदेशः कथमिति।

एवं तर्हि सर्व एव धर्माश्चातुर्वर्ण्यं प्रतिबोध्यन्ते "अन्तरप्रभवानां च" (मनु० १। २)। तत्र बहुत्वं ब्राह्मणादिजातिचतुष्टयविषयम्। न चैतेषामप्येकजातिः। सर्वजातिष्वेतस्य लक्षणस्य प्रवृत्तेः। यथैव ब्राह्मणाद्ढायां ब्राह्मण्यां जातो ब्राह्मणः, एवं क्षत्रियादयोऽपि समजातीयमातृपितृजाताः। सर्वविशेषाभावे च कुतः सामान्यम्? न हि शिंशपादिसर्वविशेषाभावे वृक्षत्वसंभवः।

अन्तरप्रभवाश्चानुलोमप्रतिलोमाः। तत्रानुलोमा मातृजातीयाः। प्रतिलोमास्तु धर्महीना अन्यत्राहिंसादिभ्यः। ते च सर्वे स्वसंज्ञाभिर्विशेषतो निर्दिष्टाः। न चैषां नामापि तत्रास्ति। "तत्र कतमे ते धर्मा यत्रामी अधिक्रियेरन्। क्व च तद्वचनं यदेतानधिकुर्वीत। न हि कश्चिज्जातिविशेषः स्त्रियो धर्मविधिरस्ति। सर्ववर्णानाम'न्तरभावानां चेति' शास्त्रादधिकृतत्वाच्च"।

उच्यते– यत्तावदहिंसादिषु चातुर्वर्ण्यवचनं तत्रमात्रोपलक्षणार्थमेव। सत्यपि प्रतिलोमाधिकारे मुख्यार्थवृत्तेः। प्रत्युत सहचारिजात्यन्तरपरत्वमेव लक्षयितुं क्षमं नान्तराऽवस्थातुमर्हति। तत्रैव च वक्ष्यामः। इदं चास्ति। "शूद्राणां तु सधर्माणः सर्वेऽपध्वंसजाः स्मृताः" (मनु० १०। ४१) इति। 'अपध्वंसो'ऽसंस्कारः। स चाष्टविधः। 'व्यभिचारेण वर्णानाम्' (मनु० १०। २४) इत्यादिनोक्तः। व्यभिचारः परस्त्रीषु गमनं सजातीयासु। अन्यद्वक्ष्यामः। तस्मादसत्यपि वर्णत्वे वाचनिक एव तेषामधिकारः।

क्षत्रियस्य तु मातृजातीयत्वमेव, लिङ्गदर्शनात्। पुत्रो द्व्यामुष्यायणस्य संविधानादितिकर्तव्यताविशेषः श्रुतः। अन्येष्वपि श्रौतेषु तस्य विधानान्तरं दृश्यते।

तस्मादेष ब्राह्मणादिजातीय एव समभागः स्वपितृव्येण, 'तस्माद्धर्मेण तं भजेत्" इति। न च यथोक्ते विधौ तद्युक्तम्। तदा ह्ययं शूद्रधर्मा। धनस्य यज्ञार्थतायामुक्तायां कुतस्तस्य तावद्भागः?

कुण्डगोलकौ क्षेत्रजावेव। शिष्टसमाचारश्चैवमेव। पाण्डुधृतराष्ट्रविदुराः क्षेत्रजाः सन्तो मातृजातीयाः। अतो युक्तः श्राद्धे प्रतिषेधः। किं च पतितोऽपि तत्र प्रतिषिद्धः, यस्य सर्वधर्मबहिष्कृतत्वात्प्राप्त्याशङ्कैव नास्ति।

यत्तु सजातीयेष्वपि स्मृत्यन्तरं तदुक्तानुवादत्वाद्यथासंभवं व्याख्येयम्। कार्यपुत्रविषयतया वा। यच्च निर्ज्ञातं लक्षणं भवति तत्किं ब्राह्मणार्थो नैव लोकप्रसिद्धः। यत्र ब्राह्मणादिशब्दः प्रयुज्यते तत्रापध्वंसनिवृत्त्यर्थं वचनम्। मातापित्रोरेतदेव जातिलक्षणम्। न चानवस्था, अनादित्वात्संसारस्य।

प्रस्तुतन्यायविरोधस्तु साक्षात् व्यवसायगम्यत्वे आसां जातीनां स्यात्। तास्तु स्मृतिलक्षणाः यथास्मरणं भवितुमर्हन्ति। यथा वा वसिष्ठादयः शब्दा अन्तरेणैवान्वयधर्ममनवच्छिन्नस्मृतिपारंपर्यकैश्च विदितार्थेषु प्रयुज्यन्ते, भवन्ति व्यवहारहेतवो वसिष्ठब्राह्मणा 'वासिष्ठाः' शृण्वंतीति। तद्वदेतद्द्रष्टव्यम्। यथा समाने ब्राह्मणत्वे केचिद्भृगवो वत्सा भारद्वाजा इत्यादिविशेषः स्मृत्येकप्रमाणः तथैव समाने पुरुषत्वेऽमी ब्राह्मणा अमी क्षत्रिया इत्यादिरुपपन्नो व्यवहारः।

यैरपि लिङ्गदर्शनत्वेन जाबालश्रुतिरुक्ता "सत्यकामो जाबालो मातरमपृच्छत्किंगोत्रोऽहमस्मीति। सैवं प्रत्यब्रवीत्, बहूवहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामालभे नाहं तद्वेदेति", स एवमुपश्रुत्य हारिद्रुमतं गौतममियाय। तं होवाच ब्रह्मचर्यं भवतो विवत्स्यामि। स एवमुवाच। किंगोत्रस्त्वमसीति। स प्रत्युवाच। अपृच्छं मातरं सा माता प्रत्यब्रवीत् "यौवने त्वामि"त्यादि। गौतमो न चैतदब्राह्मणो वक्तुमर्हति समिधं सोम्याहर उप त्वा नेष्ये",। अस्यायमर्थः— बहुभिरहं यौवने पुंभिः संगताऽभूवं न जाने केन जातोऽसीति। गौतमस्तु सत्यवचनान्निश्चिकाय ब्राह्मणेनायं जातस्ततस्तमुपनिन्येऽतो मन्यामहे स्वैरिणीष्वप्यनूढासु समानजातीयाज्जातासु तज्जातीया भवन्ति।"

तदेतन्न किंचित्। यतो यौवने त्वामालभे, यौवने किल न स्मृतिर्दृढीभवति। उत्कलिकाबहुलत्वाद्यौवने चेतसः। किंच परिचारिणी परिचारिकाहेतोः क्षुधापीडिता बहु विचरन्ती नैकस्मिंस्थाने, ततो मे न स्मृतिरस्ति भर्तुः किं गोत्रमिति।

अतः स्थितमेतत्समानजातीयेढायां जातास्तज्जातीया इति। गौतमस्यापि न ततो वचनाद्ब्राह्मणोऽयमित्यवगमः। प्रागेवासौ तं ब्राह्मण इति वेद। गोत्रं तु न वेद। गोत्रप्रश्नेन चरणप्रश्नो वेदितव्यः। तत्र उपनयनभेदोऽस्ति। न तु गोत्रभेदेनोपनयने प्रयोजनम्।

ननु यथा केचिदाहुः "जातिप्रश्नोऽयमभिजात्याद्गोत्र एव जातिमवगमिष्यामि साक्षाज्जातिप्रश्ने हि मुखरता स्यात्" ॥ ५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। वर्णेष्वित्युपलक्षणं, संकीर्णेष्वपि तुल्यासु सवर्णासु मूर्धावसिक्तत्वादिजातिसजातीयासु वा पत्नीषु परिणीतासु नत्वेवमेव गृहीतासु। अत एव **याज्ञवल्क्यो** 'विन्नास्वेष विधि'रित्युपसंहारमाह। एतेन कुण्डगोलकयोर्वर्णबाह्यतोक्ता। अत एव **बौधायनः** 'एतानर्थस्य विवाहानाहुरेतैः संस्कृताभिरुत्पन्नास्तज्जातीया भवन्ति नान्य' इति।

**व्यासश्च** ''भार्याजाताः समानाः स्युः संकराः; स्युरतोऽन्यथे'ति। **देवलश्च** 'द्वितीयेन तु यः पित्रा सवर्णायां प्रजायते। अवबाट इति ख्यातः शूद्रजन्मा स जातितः। व्रतहीना असंस्कार्याः सवर्णास्वपि ये सुताः। उत्पादिताः सवर्णेन व्रात्या इति बहिष्कृताः॥' शूद्रजन्मेति त्रैवर्णिप्रवेश्यत्वाभिप्रायेणोक्तम्। शूद्रस्य तु जातोऽपि दास्यांशशूद्रेणांशहर इत्यभिधानादनूढोत्पन्नोऽणीतभार्योत्पन्न मत एव शूद्रः। नच कुण्डगोलकयोरब्राह्मणत्वे तत एव श्राद्धानधिकाराच्छ्राद्धप्रकरणे तद्वैयर्थ्यमेवं स्यात् पंक्तिदूषकतया हि तेषां तत्राभिधानं तच्च ब्राह्मणभ्रमस्य तत्र संभवात्प्रवेशे पंक्तेरेव दूषणाच्छ्राद्धं व्यर्थं भवतीत्येतदर्थमुक्तम्। तुल्यासु अक्षतयोनिषु परिणेतुरन्येनासंस्पृष्टासु। एतेन पौनर्भवस्याप्यब्राह्मण्यमुक्तम्। आनुलोम्येन वयस आनुलोम्येन वरापेक्षयाऽल्पवयसि कन्यायामुत्पन्न इत्यर्थः। तेनाधिकवयसः परिणीतायाः सवर्णाया अपि पुत्रो न ब्राह्मण इत्युक्तम्। अत एव यज्जातीयौ यन्मातापितरौ तज्जातीया एव॥ ५॥

(३) **कुल्लूकः**। ब्राह्मणादिषु वर्णेषु चतुर्ष्वपि, समानजातीयासु यथाशास्त्रं परिणीतास्वक्षतयोनिष्वानुलोम्येन ब्राह्मणेन ब्राह्मण्यां क्षत्रियेण क्षत्रियायामित्यनेनानुक्रमेण ये जातास्ते मातापित्रोर्जात्या युक्तास्तज्जातीया एव ज्ञातव्याः। आनुलोम्यग्रहणं चात्र मन्दोपयुक्तमुत्तरश्लोक उपयोक्ष्यते। गवाश्वादिवदवयवसंनिवेशस्य ब्राह्मणजात्यभिव्यञ्जकाभावादेतद्ब्राह्मणादिलक्षणमुक्तम्। अत्र च 'पत्नी'ग्रहणादन्यपत्नीजनितानां न ब्राह्मणादिजातित्वम्। तथा च **देवलः**– 'द्वितीयेन तु यः पित्रा सवर्णायां प्रजायते। अवबाट इति ख्यातः शूद्रधर्मा स जातितः॥ व्रतहीना न संस्कार्याः स्वतन्त्रास्वपि ये सुताः। उत्पादिताः सवर्णेन व्रात्या इव बहिष्कृताः॥' **व्यासः**– 'ये तु जाताः समानासु संस्कार्याः स्युरतोऽन्यथा'। **याज्ञवल्क्यो**ऽपि (या. स्मृ. आ. ४।९०)–'सवर्णेभ्यः सवर्णासु जायन्ते हि सजातयः' इत्यभिधाय 'विन्नास्वेष विधिः स्मृतः' (या. आ. ४।९२) इति ब्रुवाणः स्वपत्न्युत्पादितस्यैव ब्राह्मणादिजातित्वं निश्चिकाय॥ ५॥

(४) **राघवानन्दः**। अक्षतयोनिष्विति विशेषणात् कानीनादेर्द्विजत्वं गौणम्। आनुलोम्येन ब्राह्मण्यां ब्राह्मणाज्जातः तथैव ब्राह्मणत्वजात्या विशिष्टः। एवं क्षत्रियविट्शूद्रेषु॥ ५॥

(५) **नन्दनः**। अथ वर्णानां लक्षणमाह **सर्ववर्णेषु तुल्यासु पत्नीष्विति**। तुल्यासु अर्हासु सापिण्डचदोषरहितास्वित्यर्थः। अक्षतयोनिष्वनन्यपूर्वासु आनुलोम्यमनिंद्याविवाहास्तेषु संभूता ये वर्णास्ते जात्यन्तरा एव ज्ञेयाः॥ ५॥

(६) **रामचन्द्रः**। अक्षतयोनिषु संभोगान्न क्षता योनयो यासां ता अक्षतयोनयस्तासु आनुलोम्येन संभूताः वयस आनुलोम्येन वरापेक्षया हीनवयसि कन्यायां जाताः ते अनुलोमजाः॥ ५॥

(७) **मणिरामः**। सर्ववर्णेषु ब्राह्मणादिषु चतुर्ष्विति। तुल्यासु समानजातीयासु। पत्नीषु यथाशास्त्रं परिणीतासु। अक्षतयोनिषु शुद्धासु। आनुलोम्येन ब्राह्मणा ब्राह्मण्यां॥५॥

(८) **गोविन्दराजः**। **स(र्व)र्णेष्विति। आनुलोम्येन संभूता जात्या ज्ञेयास्तथैव ते।**

ब्राह्मणादिचतुर्ष्वपि वर्णेषु समानजातीयासु अक्षतयोनिषु यथाशास्त्रसमूढासु आनुलोम्येन ब्राह्मणेन ब्राह्मण्यां क्षत्रियेण क्षत्रियायाम् इत्येवमनुक्रमेण ये जाताः ते पित्रोर्जातितज्जातीया एव बोद्धव्याः। सर्ववर्णेषु इत्युपादानाद् वर्णत्वमात्रेण तुल्यास्तु इत्याशङ्कानिवृत्त्यर्थं आनुलोम्य-ग्रहणम्। इदमेव च सकलमातापितृप्रबन्धस्यापि जातिलक्षणम्, अनादित्वेन पुनः संसारस्या-स्यैव व्यापकत्वात्। सर्वत्र चेह प्रकरणे जातिलक्षणप्रकरणं शास्त्रव्यवहारफलजातिपरिज्ञानार्थं गवाश्वादिवत् ब्राह्मणादीनां जातिभेदावबोधकस्याकारविशेषस्यानुपलब्धेः। एवं च पत्नी-ग्रहणाद् अपत्न्युत्पन्नानां नैव तज्जातीयत्वम्। तथा च **देवलः** 'द्वितीयेन तु यः पित्रा सवर्णायां प्रजायते। अधरेट इति ख्यातः शूद्रधर्मा स जातितः।। व्रतहीना असंस्कार्याः सवर्णास्वपि ये सुताः। उत्पादिताः सवर्णेन व्रात्या इति बहिष्कृताः।।' इत्याह। तथा, 'सवर्णेभ्यः सवर्णासु जायन्ते हि स्वजातयः।' इत्येतदपि **याज्ञवल्क्य**वाक्यं मानवैकवाक्यत्वाद् 'भिन्नास्वेष विधिः स्मृत' इति चोपसंहारात् पत्नीविषयम्। एवं **व्यासः** 'स्वोढाजाताः समानाः स्युः संकराः स्युरतोऽन्यथा' इत्याह। **बौधायनश्च** 'एतान् वक्ष्यान् विवाहानाहुरेतैः संस्कृताभ्यः उत्पन्ना-स्तज्जातीया भवन्ति न त्वन्य' इत्याह। **बृहस्पतिश्च** 'प्रातिलोम्येन संभूता नियोगेन विना च ये। सावित्रीपतिता जातास् त्रयः संकरजातयः'।। इत्याह। अन्ये तु 'सत्यकामो जाबालो जाबालं मातरं आमन्त्रयाञ्चक्रे। भवति, ब्रह्मचर्यं च वत्स्यामि, किंगोत्रोऽहमस्मीति। सा हैनमुवाच, नाहमेतद्वेद यद्गोत्रस्त्वमसि तात, बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामालभे। साहमेतन्न वेद यद्गोत्रस्त्वमसि। जाबाला नु नामा अहमस्मि, सत्यकामो नामस्त्वमसि। स सत्यकाम एव जाबालो ब्रवीथ' इति। स ह हारिद्रुमतं गौतममेत्योवाच, ब्रह्मचर्यं भगवतो वत्स्यामि, उपेयां भगवन्तमिति। तं होवाच किंगोत्रो नु सोम्य असीति। स होवाच नाहमेतद्वेद भो यद्गो-त्रोऽहमस्मि। अपृच्छं मातरं, सा मां प्रत्यब्रवीत् बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामालभे, साहमेतन्न वेद यद्गोत्रस्त्वमसि। जाबाला नु नामाहमस्मि, सत्यकामो नामस्त्वमसि। सोऽहं सत्यकामो जाबालोऽस्मि भो इति तं होवाच। नैतदब्राह्मणो विवक्तुमर्हति। समिधं सोम्य आहर, उत त्वा नेष्य' इति जाबालश्रुतिदर्शनात् कुण्डगोलकयोश्च श्राद्धप्रतिषेधदर्शनाच्च एषां यस्यापि पितृजातीयत्वमिति। तच्चापरेण सह तेनाहमेतद्वेदेति मातुः निश्चयाभावान्नैतद-ब्राह्मणो विवक्तुमर्हति इति पितृतोऽपि तस्योत्पत्तिसंभवात् तदभिप्रायमेतत् स्यात्, यत्तु कुण्डगोलकयोः श्राद्धनिषेधदर्शनं तदुक्तं श्रुतिभ्रमेण ब्राह्मण्याशङ्कायां परिहारार्थं स्यान्नतु स्वभ्रष्टब्राह्मण्यजनकम्।। ५।।

**(९) भारुचिः। सर्ववर्णे(ष्वि)ति।** न द्विजातिष्वेव यथा(स्वी)कृतेषु तुल्यासु नारीषु केन पतिभिः कथं तुल्यासु जातितः अक्षतयोनिष्विति शास्त्रत ऊढास्वित्यर्थः। ननु च पत्नीग्रहणादेवाक्षतयोनित्वं सिद्धम्, येन यज्ञीयाः पत्न्यो भवन्ति ता अक्षतयोनय एव नेतराः। नारीशब्दपाठेन चोद्यमिदम्। पत्नीपाठे पितुर्हेत्वर्थोऽयं अक्षतयोन्युपदेशः पत्नी कस्मात्? अक्षतयोनित्वाद् गुणवतोऽपि च पत्नीशब्दो दृष्टः। यतोऽक्षतयोनिवचनं मुख्यार्थं विज्ञेयम्। 'सर्ववर्णेषु तुल्यास्वि'त्यनेन चानुलोम्यग्रहणमिहानर्थकं सदनन्तरश्लोकार्थं वेदितव्यम्। अत एताभ्यां ये सम्भूता वर्णास्ते जात्या ज्ञेयास्त एव। त एवेत्यनेन पितृवर्णग्रहणमित्येतदुक्ता-

र्थम्। यथा ब्राह्मणजातिभ्यां मातापितृभ्यां सम्भूतो वर्णस्तज्जातिर्भवति। एवं क्षत्रियादिभ्योऽपि सम्भूतास्तज्जातीया विज्ञेयाः गवादिवत्। ननु चैवं सत्यवक्तव्यमेवेदं जातिलक्षणं भवति। वक्तव्यमेव ब्राह्मणत्वस्यान्यकारणनिवृत्त्यर्थम्। तथा चार्थवादास्तत्त्वदृष्टिसर्वा... हेतवः। वृत्तस्थमपि चण्डालं देवा ब्राह्मणं विद्युरित्येवमादाय यतो न संस्काराध्ययनवृत्तादिभिर्ब्राह्मण्यं, किन्तर्हि ? उभयाभिजनतः यथावोचामेति। जातिस्त्वधिकरणकारणं संस्कारादीनां विज्ञेयम्। न च वेलैवोत्कर्षहेतुः। यतश्च न ब्राह्मणादीनां जातिभेदः प्रत्यक्षः अनुमेयो वा। मनुष्यत्वादिशेषेति तद्व्यतिरिक्ते संस्थानविशेषानुपलब्धेः गोमहिषाश्वखण्डरादिवत्। एवं च सति प्रत्यक्षानुमानाभ्यामप्राप्ते शास्त्रमर्थवदिदं बोद्धव्यम्। यथा कुशलाकुशलकर्मणोः पुरुषव्यापाराभिसम्बन्ध इति। एवं च समानप्रसवात्मकत्वमात्रे गवादय उदाहरणत्वेन ज्ञेयाः। तथा चाभ्युपगतमेतत्। भवत्येकवर्णजननसन्नियोगेनायं ब्राह्मणत्वादिजातिसम्बन्ध इति। यद्येकमत्यं जनयितृजातिसदृशं भवतीति मन्यसे जनयित्रोस्तर्हीदं जातिलक्षणम्। एतदेव साधारणत्वाल्लक्षणस्येति। नन्वेवं सत्यनवस्था। भवतु, को दोषः ? अवस्थायामेवैतल्लक्षणं समर्थं भवति, नान्यथा। गवादिवत्। न चैवं सति दृष्टविरोधः शास्त्रविरोधो वा। यतो न किञ्चिदेतदिति ॥ ५ ॥

**स्त्रीष्वनन्तरजातासु द्विजैरुत्पादितान्सुतान् ॥**
**सदृशानेव तानाहुर्मातृदोषविगर्हितान् ॥६॥**

(१) **मेधातिथिः**। **अनन्तरास्वव्यवहितास्वानुलोम्येन** य उत्पन्नाः पुत्रास्ते **सदृशा** ज्ञेयाः, न तु तज्जातीयाः। यथा ब्राह्मणात्क्षत्रियायां क्षत्रियाद्वैश्यायाम्। तेन सदृशाः, न तु त एव। अत्र हेतु–**मातृदोषविगर्हितान्**। तत्सदृशग्रहणान्मातृत उत्कृष्टान्पितृतो निकृष्टान्। **द्विजैरिति** बहुवचननिर्देशान्मातृतश्च ग्रहणादानुलोम्येष्वेतत्संभवति। प्रातिलोम्ये पितृतो ग्रहणेन मातृतः, पितुर्निकृष्टजातीयत्वात्। अत आनुलोम्यग्रहणं पूर्वश्लोके। यदुक्तमुत्तरार्थमिति तदिहानर्थकम्। अतः परेषु श्लोकेषूपदिश्यते ॥ ६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अनन्तरजातासु ब्राह्मणस्य क्षत्रियायां क्षत्रियस्य वैश्यायां वैश्यस्य शूद्रायाम्। द्विजैरित्यनुवादस्तेषामेवानन्तरजसंभवात्। सदृशान् पितुर्मातुश्च नतु स्वजातीयान् क्रमात्स्मृत्यन्तरोक्तमूर्धावसिक्तमाहिष्यकरणसंज्ञान्। पितृमातृसादृश्याभिधानं ब्रह्मक्षत्रियवैश्याजातान् श्रैष्ठ्यार्थम्। मातृदोषेण मातृभिन्नजातीयत्वेन विगर्हितान् वर्णमध्यबहिष्कृतान् ॥ ६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। आनुलोम्येनाव्यवहितवर्णजातीयासु भार्यासु द्विजातिभिर्ये उत्पादिता पुत्राः यथा ब्राह्मणेन क्षत्रियायां क्षत्रियेण वैश्यायां वैश्येन शूद्रायां तान्मातुर्हीनजातीयत्वदोषाद्गर्हितान्पितृसदृशान्नतु पितृसजातीयान्मन्वादय आहुः। पितृसदृशग्रहणान्मातृजातेरुत्कृष्टाः पितृजातितो निकृष्टा ज्ञेयाः। एतेषां च नामानि मूर्धावसिक्तमाहिष्यकरणाख्यानि याज्ञवल्क्यादिभिरुक्तानि। वृत्तयश्चैषा**मुशनसोक्ताः**–हस्त्यश्वरथशिक्षाअस्त्र-

धारणं च मूर्धाभिषिक्तानां, नृत्यगीतनक्षत्रजीवनं सस्यरक्षा च माहिष्याणां, द्विजातिशुश्रूषा-धनधान्याध्यक्षता राजसेवादुर्गांतःपुररक्षा च पारशवोग्रकरणानामिति ।। ६ ।।

(४) **राघवानन्दः** । स्वजातीया व्यवहितजातीयासु ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यैरुत्पादित-त्वान्न ते द्विजातय इत्याह **स्त्रीष्विति** सार्धेन । सदृशान् तद्भिन्नत्वे सति तद्गतभूयोधर्म-शालिनः । अत आह मातृदोषविगर्हितान् मातुर्हीनजातित्वेन जात्यन्तरकर्मान्तरयुक्तत्वेन निन्दितान् मूर्धाभिषिक्तमाहिष्यकरणाख्यानिति शेषः ।। ६ ।।

(५) **नन्दनः** । अथ वर्णसंकरजातानाह **स्त्रीष्वनन्तरजातास्विति** । अनन्तर-जातास्वनन्तरवर्णजातासु द्विजैरुत्पादितान्ब्राह्मणेन, क्षत्रियायां क्षत्रियेण वैश्यायां, वैश्येन शूद्रायाञ्चोत्पादितान्सुतान् सदृशान् । एवकारो जात्यन्तरभ्रमनिवृत्त्यर्थः । भ्रमप्राप्तौ कारण-त्वेनोक्तं मातृदोषविगर्हितानिति विशेषणं तथापि सदृशानित्यर्थः, ऊढासुतविषयमेतन्मातृ-दोषमात्रस्यैवोपन्यासादनुद्वाहस्योभयदोषवत्त्वात् ।। ६ ।।

(७) **मणिरामः** । क्षत्रियात् क्षत्रियायां इत्यादिक्रमेण ये संभूताः उत्पन्नाः ते जात्या त एव पितृजातिरूपा एव ज्ञेयाः । पत्नीग्रहणात् अन्यस्त्रीजनितानां न ब्राह्मणादिजातित्वं । 'द्वितीयेन तु यः पित्रा सवर्णायां प्रजायते । अवावढ इति ख्यातः शूद्रधर्मा स ईरित' इत्यादिदेवलादिवचनात् ।। ६ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **स्त्रीष्विति** । अव्यवहितवर्णजातीयासु भार्यासु द्विजातिभिः ये उत्पादिताः पुत्राः यथा ब्राह्मणेन क्षत्रियायां क्षत्रियेण वैश्यायां वैश्येन शूद्रायां तन्मातुर्हीन-जातीयत्वे गर्हिता, न ते एव पितृसदृशान् तान् मन्वादय आहुः । न तु पितृजातीयनामानि च एषां मूर्धावसिक्तमाहिष्यकरणाख्यानि याज्ञवल्क्यादिभिरुक्तानि । वृत्तयश्च एषां अथ **उशनसा** निर्दिष्टा—हस्त्यश्वरथशिक्षा अस्त्रधारणं च मूर्धावसिक्तानां, गीतनृत्यनक्षत्रैः जीवनं सस्यरक्षा च महिष्याणां, स्वजातिशुश्रूषा धान्याध्यक्षता राजसेवा दुर्गान्तःपुररक्षा च पारशवोग्रकरणानामिति ।। ६ ।।

(९) **भारुचिः** । अनंतरजातासु स्त्रीषु अव्यवहितवर्णजातासु । यथा ब्राह्मणः क्षत्रियायां, क्षत्रियो वैश्यायां, वैश्यः शूद्रायामिति । तान् मातुर्हीनजातीयत्वदोषगर्हितान् पितृसदृशान् जानीयात्...नतु पितृसजातीयान् मन्वादय आहुः । तथा च मातृजातेरुत्कृष्टाः पितृजातितो निकृष्टा ज्ञेयाः । तेषां नामानि मूर्धाभिषिक्तमाहिष्यकरणाख्यानि स्मृत्यंतरोक्तानि ज्ञेयानि ।

किमर्थमिदम् ? अधिकारादनुलोमस्तुत्यर्थं । द्विर्जैर्हि ब्राह्मणादिभिः क्षत्रियाद्यासु स्त्रीष्वनन्तरजातासूत्पादितान् सुतान् सदृशानेव तानाहुः । केन ? पित्रा, न तु तज्जातीयस्त्व-यमेव सादृश्यवचनात् । यथा गोसदृशो गवय इति अत्र कारणं..द्वति यस्मान्मातृदोषविग-र्हितास्ते । उक्तं चास्माभिर्जातिलक्षणम् 'सर्ववर्णेषु तुल्यास्वि'ति तु मातृसदृशानाहुः, तेषामेत-द्विरुध्यते । मातृदोषविगर्हितानिति, यस्मादनुलोमेष्वेवैतत् समर्थं भवति पितृदोषाद्धि... नन्तर्ग्रहणात् प्रतिलोमेषु । एवं च सति किञ्चिद्धीनास्ते पितृभ्य इति गम्यते । मातृतश्चो-

त्कृष्टा तथा च सत्यानुलोम्यवचनं पूर्वश्लोकोक्तमधिकारार्थं वेदितव्यम्। नैतच्छ्लोकार्थं अनन्तराभिधानसामर्थ्याद् बहुवचनाच्चाद्विजैरिति ।। ६ ।।

**अनन्तरासु जातानां विधिरेष सनातनः ।।**
**द्व्येकान्तरासु जातानां धर्म्यं विद्यादिमं विधिम् ।।७।।**

(१) **मेधातिथिः**। आद्येनार्धश्लोकेनोक्तमर्थमनुवदति। द्वितीयेन वक्ष्यमाणसंक्षेपः। द्व्येकान्तरा द्व्यन्तरा ब्राह्मणस्य शूद्रा। एकान्तरा वैश्या। नातीव श्लोकः सप्रयोजनः ।। ७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। द्व्यन्तरासु स्वद्वितीयान्तरितासु स्वस्यानन्तरवर्णव्यतिरिक्तवर्णस्त्रीष्विति यावत्, ब्राह्मणस्य वैश्यायां शूद्रायां च क्षत्रस्य शूद्रायाम्। धर्म्यं धर्मादनपेतं विधिं प्रकारम्। यद्यप्यग्रे संज्ञामात्रमुक्तं तथापि तत्संज्ञानुवादेनान्यत्रोक्तान्धर्मानभिप्रेत्य धर्ममित्युक्तम् ।। ७ ।।

(३) **कुल्लूकः**। एष पारंपर्यागततया नित्यो विधिरनन्तरजातिभार्योत्पन्नानामुक्तः। एकेन द्वाभ्यां च वर्णाभ्यां व्यवहितासूत्पन्नानां। यथा ब्राह्मणेन वैश्यायां क्षत्रियेण शूद्रायां ब्राह्मणेन शूद्रायामिमं वक्ष्यमाणं धर्मादनपेतं विधिं जानीयात् ।। ७ ।।

(४) **राघवानन्दः**। अम्बष्ठादीनामुत्पत्तिमाह **द्वीति**। द्विश्चैका चेति छेदः। ताभ्यामेतासु जातानां विधिमुत्पत्तिं इमं वक्ष्यमाणम्। तेनात्र विप्रस्यैकान्तरा क्षत्रिया तामपेक्ष्य वैश्या द्व्यन्तरा तां चापेक्ष्य शूद्रा त्र्यन्तरा इति तिस्रः। क्षत्रिया तु वैश्या द्व्यन्तरामपेक्ष्यैकान्तरा शूद्रा। एवं द्वे अत एव वक्ष्यति 'विप्रस्य त्रिषु वर्णेष्वि'त्यादि ।। ७ ।।

(५) **नन्दनः**। एष विधिः पूर्वश्लोकाभ्यामुक्तो विधिः। द्व्यन्तरासु स्वानन्तरजातिभ्यां व्यवहितासु ब्राह्मणस्य वैश्यासु क्षत्रियस्य शूद्रास्वित्यर्थः। ब्राह्मणस्य स्त्र्यन्तरायाः शूद्राया अप्युपलक्षणमेतत्, इमं विधिं वक्ष्यमाणं वर्णांतरत्वं द्व्यन्तरस्त्र्यन्तरयोः ।। ७ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। द्व्यन्तरासु ब्राह्मणेन वैश्यायां शूद्रायां च। नृपकन्यायां वैश्ये उत्पन्ने शूद्रे उत्पन्ने सति उभौ अम्बष्ठौ भवतः। 'आत्मा विज्ञायते पुत्र'इति ।। ७ ।।

(८) **गोविंदराजः**। **अनन्तरास्विति**। एष नित्यो विधिः अनन्तरजातिभार्योत्पन्नानां उक्तः, एकेन द्वाभ्यां व्यवहिताः तदुत्पन्नानां यथा ब्राह्मणेन वैश्यायां क्षत्रियेण शूद्रायां ब्राह्मणेन च शूद्रायां इमं वक्ष्यमाणं धर्मादनपेतं नामविधानं जानीयात् ।। ७ ।।

(९) **भारुचिः**। अनंतरासु प्रोक्तासु जातानां एष सनातनः नित्यः विधिः उक्तः। द्व्येकांतरासु एकेन द्वाभ्यां च व्यवहितासु जातानां इमं वक्ष्यमाणं धर्म्यं धर्मादनपेतं विधिं विद्यात् जानीयात्। द्व्येकांतरत्वं तु ब्राह्मणेन वैश्यायां क्षत्रियेण शूद्रायां। ब्राह्मणेन शूद्रायामिति। ब्राह्मणाच्छूद्रकन्यायामुत्पन्नस्य द्वे नामनी निषादः पारशवश्चेति।

अनुलोमाधिकारादयमप्येकान्तरद्व्यन्तरासु पूर्ववद्धर्म्यो विधिर्वचनसामर्थ्याद्विज्ञेयः। सोऽयमेकान्तरा सूच्यते... ।। ७ ।।

**ब्राह्मणाद्वैश्यकन्यायामंबष्ठो नाम जायते ॥**
**निषादः शूद्रकन्यायां यः पारशव उच्यते ॥ ८ ॥**

**[ विप्रान् मूर्धावसिक्तस्तु क्षत्रियायां सुतो भवेत् ।**
**क्षत्रियाद् वैश्यकन्यायां × × × षस्तु सुतः स्मृतः ॥१॥ ]**

(१) **मेधातिथिः**। एकान्तरा ब्राह्मणस्य वैश्या, तत्र जातोऽ**म्बष्ठः**। स्मृत्यन्तरे (गौ. ४।२०) 'भृज्यकण्ठ' इत्युक्तः। द्वयन्तरायां शूद्रकन्यायां **निषादः पारशवश्च**। निषादशब्दः प्रतिलोमजातीयेऽपि वर्तते। **कन्या**ग्रहणं स्त्रीमात्रोपलक्षणार्थमिति व्याचक्षते, वैश्यस्त्रियामित्यर्थः। एवं सर्वत्र द्रष्टव्यम् ॥ ८ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। निषादसंज्ञायां मत्स्यघातकर्मता मा भूदित्यस्य निषादान्तरत्वं द्योतयितुं पारशवसंज्ञानुवादः ॥ ८ ॥

(३) **कुल्लूकः**। कन्याग्रहणादत्रोढायामित्यध्याहार्यं, **विन्नास्वेष विधिः स्मृत इति याज्ञवल्क्येन** स्फुटीकृतत्वाच्च। ब्राह्मणाद्वैश्यकन्यायामूढायामंबष्ठाख्यो जायते। शूद्रकन्यायामूढायां निषाद उत्पद्यते यतः संज्ञान्तरेण पारशवश्चोच्यते ॥ ८ ॥

(४) **राघवानन्दः**। वैश्यशूद्रयोर्नास्त्येव द्वयन्तरजातिरित्याह **ब्राह्मणादिति। य इति** नवमाध्यायोक्तानुवादः ॥ ८ ॥

(५) **नन्दनः**। ब्राह्मणस्य संभूतावाह **ब्राह्मणाद्वैश्यकन्यायामिति**। पारशव उच्यते पारशवनामा चेत्यर्थः ॥ ८ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। शूद्रकन्यायां ब्राह्मणाज्जातो निषादः यः पारशव इति नाम्ना उच्यते ॥ ८ ॥

(८) **गोविन्दराजः। ब्राह्मणादिति**। 'विन्नास्वेष विधिः स्मृतः' इति याज्ञवल्क्यदर्शनात् ब्राह्मणाद् वैश्यकन्यायां ऊढायां अंबष्ठाख्यो जायते। शूद्रकन्यायां ऊढायां निषाद उत्पद्यते। यः पारशव इत्यनेन संज्ञान्तरेणाशास्त्र उच्यते। संज्ञान्तरकथनं मत्स्यघातवृत्तिप्रतिलोमनिषादभ्रान्तिनिराकरणार्थम् ॥ ८ ॥

(९) **भारुचिः**। नामतः न वर्णतः। यः स्मृत्यन्तरे। हुजुकण्ठनामा द्वयन्तरायां तु ब्राह्मणादेव निषादः शूद्रकन्यायाम् ॥ ८ ॥

**क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायां क्रूराचारविहारवान् ॥**
**क्षत्रशूद्रवपुर्जन्तुरुग्रो नाम प्रजायते ॥ ९ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **आचारविहारौ** कायचेष्टावाग्व्यापारश्च। तावस्य क्रूरौ भवतः। स्वभावानुवादोऽयम्। **वपुः**शब्दः स्वभाववचन एव। उभयजातिसंभूतत्वादुभयधर्मा भवति ॥ ९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। क्रूरो हिंस्र आचारो वृत्तं तेन विहारः क्रीडा यस्य ॥ ९ ॥

(३) **कुल्लूकः**। क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायामूढायां क्रूरचेष्टः क्रूरकर्मरतिश्च क्षत्रशूद्रस्वभाव उग्राख्यः पुत्रो जायते ।। ९ ।।

(४) **राघवानन्दः** । क्षत्रियात्तूग्रजातेरुत्पत्तिरित्याह **क्षत्रियादिति**। शूद्रवपुः क्षत्रियः पिता, शूद्रा माता, ताभ्यां वपुर्यस्य सः, विप्रान्मूर्धावसिक्तो हि क्षत्रियायां, विशः स्त्रियाम् जातो, 'अंबष्ठस्तु शूद्रायां निषादः पारशवोऽपि वा। वैश्याशूद्रयोस्तु राजन्यान्माहिष्योग्रौ स्मृतौ सुतौ ।। वैश्यात्तु करणः शूद्रयां विन्नास्वेष विधिः स्मृत'इति **याज्ञवल्क्योक्ते**र्मूर्धाभिषिक्तमाहिष्यकारणानां क्षत्रविट्शूद्रकन्यासु विधिवदूढासु यथाक्रममन्तर्भावो ज्ञेयः ।। ९ ।।

(५) **नन्दनः**। क्षत्रियस्य द्वचन्तरायां जातमाह **क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायामिति**। क्षत्रियोत्पन्ननिमित्तैः क्रूराचारैः विहारः कालक्षेपो यस्यास्ति स क्रूराचारविहारवान् ।। ९ ।।

(७) **मणिरामः**। क्षत्रशूद्रवपुः क्षत्रशूद्रस्वभावः ।। ८ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **क्षत्रियादिति**। क्षत्रियात् शूद्रकन्यायां ऊढायां क्रूरचेष्टावान् पापस्वभावः क्षत्रियशूद्रोत्पन्नदेहः प्राण्युग्राख्यो नरो जायते। वृत्तिश्चास्य पूर्वश्लोके उशनसोक्ता दर्शिता ।। ९ ।।

(९) **भारुचिः**। क्षत्रियनिमित्तस्य क्रूराचारतास्य विधीयते, एवं च सत्यानुलोम्येन सम्भूता इत्येतदधिकारसामर्थ्यान्न केवलमनन्तरजाता एवानुलोमा उत्कृष्टा भवन्ति। 'स्त्रीष्वनन्तरजातास्वि'त्येवमादिवचनात्। किन्तर्हि? एकान्तरद्वचन्तरा अपि तु सदृशा मातृदोषविगर्हणाद् ज्ञेयाः। तथा च दर्शयति ।। ९ ।।

**विप्रस्य त्रिषु वर्णेषु नृपतेर्वर्णयोर्द्वयोः ।।**
**वैश्यस्य वर्णे चैकस्मिन्षडेतेऽपसदाः स्मृताः ।। १० ।।**

(१) **मेधातिथिः**। अत्र त्रिपादी अनुवाद एव । चतुर्थस्तु पादोऽपसदाभिधानार्थः। एते त्रैवर्णिकानामेकान्तरद्वचन्तरस्त्रीजाता **अपसदा** वेदितव्याः। अपसदाः पुत्रार्थफलादवसन्नाः समानजातीयपुत्रापेक्षया निंद्यन्ते ।। १० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। षडेते अनन्तरद्वचन्तरजाः प्रागुक्ताः। अपसदाः सदः सस्यं प्रजारूपं सापकृष्टानेनेत्यपसद इति नाम कृतम् ।। १० ।।

(३) **कुल्लूकः**। ब्राह्मणस्य क्षत्रियादिस्रयस्त्रीषु क्षत्रियस्य वैश्यादिवर्णद्वयोः स्त्रियोः वैश्यस्य च शूद्रायां वर्णत्रयाणामेतेषु षट् पुत्राः सवर्णपुत्रकार्यापेक्षयाऽपसदा अवसन्ना निकृष्टाः स्युः ।। १० ।।

(४) **राघवानन्दः**। अत एवाह **विप्रस्येति**। नृपतेर्द्वयोः वैश्याशूद्रयोः एकस्मिन् शूद्ररूपे शूद्रायां वैश्यात्करणाख्यः। अपसदाः निकृष्टजाः सवर्णापेक्षया ।। १० ।।

(५) **नन्दन :**। अथ तासु तेभ्यश्चौर्यतो जातानाह **विप्रस्य त्रिषु वर्णेष्विति**। त्रिषु

क्षत्रियादिषु। द्वयोर्वैश्यशूद्रयोः। एकस्मिन् शूद्रे। वर्णशब्देन वर्णस्त्रियो विवक्षिताः। सदशब्देन फलमुच्यते, अपगतसदा अपसदाः। सवर्णानन्तरा पुत्रकार्यहीना इत्यर्थः॥ १०॥

(६) **रामचन्द्रः**। विप्रस्य कन्यायां त्रिषु (क्षत्रिय)वैश्यशूद्रेषु जातेषु सत्सु नृपतेः क्षत्रियस्य कन्यायां वर्णयोः वैश्यशूद्रयो. नृपकन्यायां चैवं वैश्ये उत्पन्ने शूद्रे उत्पन्ने सति उभौ अपसदौ 'आत्मा विज्ञायते पुत्र' इति वैश्यस्य यो वर्ण एकस्मिन् शूद्रे उत्पन्ने सति॥ १०॥

(७) **मणिरामः**। त्रिषु वर्णेषु क्षत्रियवैश्यशूद्रेषु द्वयोः वैश्यशूद्रयोः। एकस्मिन् शूद्रे अपसदाः सवर्णपुत्रकार्यापेक्षया निकृष्टाः॥ १०॥

(८) **गोविन्दराजः**। **विप्रस्येति**। ब्राह्मणक्षत्रियादिवर्णत्रयस्त्रीषु क्षत्रियस्य वैश्यादिवर्णद्वयस्त्रियोः वैश्यस्य च शूद्राख्यवर्णस्त्रियाम्। एत उक्तास्ते सवर्णपुत्रकापेक्षयाऽपसदा पुत्रकार्यादवशीर्णा इत्येते अपसदाः तन्निकृष्टाः स्मृताः॥ १०॥

(९) **भारुचिः**। मातृदोषविगर्हणाय...सदा उच्यन्ते अपि मातृजातिभ्योऽन्येभ्यो मनुष्येभ्यः एवं च स(त्या)पेक्षिकोऽयमपशब्दस्तेषु विज्ञेयः। उत्कृष्टेष्वेव स पुनस्त्रिः प्रतिलोमहीनतयाऽपसदाः। अपसदवत्यव(शिष्टा) स्सदा(र्थवान्) पुत्रकार्याधीना इत्यर्थः। सवर्णासु तत्रापेक्ष्योच्यन्ते॥ १०॥

**क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः॥**
**वैश्यान्मागधवैदेहौ राजविप्राङ्गनासुतौ॥११॥**

(१) **मेधातिथिः**। आनुलोम्ये पूर्वो विधिः। प्रातिलोम्ये न त्वयमुच्यते। **कन्या**ग्रहणमुक्तार्थम्। **वैश्यान्मागधवैदेहौ** यथासंख्येन। राजस्त्रियां मागधः ब्राह्मण्यां वैदेहः॥ ११॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अनुलोमजानुक्त्वा प्रतिलोमजानाह **क्षत्रियादिति**। राजाङ्गना क्षत्रस्त्री॥ ११॥

(३) **कुल्लूकः**। एवमनुलोमानुक्त्वा प्रतिलोमानाह **क्षत्रियादिति**। अत्र विवाहासंभवात्कन्याग्रहणं स्त्रीमात्रप्रदर्शनार्थम्। अत्रैव श्लोके 'राजविप्राङ्गनासुता'विति ब्राह्मण्यां क्षत्रियाज्जात्या सूतनामा संजायते। वैश्याद्यथाक्रमं क्षत्रियाब्राह्मण्योर्मागधवैदेहाख्यौ पुत्रौ भवतः। एषां च वृत्तयो **मनु**नैवाभिधास्यन्ते॥ ११॥

(४) **राघवानन्दः**। प्रतिलोमजानाह **क्षत्रियादिति** द्वाभ्याम्। कन्याग्रहणं योषिन्मात्रपरम्। 'ब्राह्मण्यां क्षत्रियात्सूतो वैश्याद्वैदेहकस्तथा। शूद्राज्जातस्तु चाण्डालः सर्वधर्मबहिष्कृतः। क्षत्रिया मागधं वैश्याच्छूद्रात्क्षत्तारमेव च। शूद्रादायोगवं वैश्याज्जनयामास वै सुत'मिति **याज्ञवल्क्य**वचनमेवानयोर्व्याख्यानमिति विरम्यते। अङ्गेन स्वभोगाय नीयत इत्यङ्गना॥ ११॥

(५) **नन्दनः**। एवमनुलोमजा उक्ताः, अथ प्रतिलोमजानाह **क्षत्रियाद्विप्रकन्याया**मिति॥ ११॥

(६) **रामचन्द्रः**। क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां जातः सूतः। वैश्याद्राजकन्यायां मागधः वैतालिको भवति। वैश्याद्विप्रकन्यायां वैदेहो नाम भवति ॥ ११ ॥

(७) **मणिरामः**। प्रतिलोमानाह **क्षत्रियादिति**। वैश्यात् क्षत्रियायां मागधः, वैश्याद्ब्राह्मण्यां वैदेह इत्यर्थः ॥ ११ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। एवमनुलोमानुक्त्वा प्रतिलोमानाह **क्षत्रियादिति**। अस्मिन् श्लोके पूर्वार्धं सुगमम्। उत्तरार्धं व्याख्यातम्। अत्र विवाहासंभवात् कन्याग्रहणं स्त्रीमात्रप्रदर्शनार्थम्। क्षत्रियाब्राह्मण्योः यथाक्रमं मागधवैदेहाख्यौ पुत्रौ भवतः। एषां वृत्तयोऽस्मिन्नेव शास्त्रे निर्दिष्टाः। अनिर्दिष्टवृत्तीनां पुनः शास्त्रान्तरोक्ता अस्माभिर्यथावसरं निर्दिश्यन्ते ॥ ११ ॥

(९) **भारुचिः**। एवमनुलोमानन्तरमधुना प्रतिलोमानाह प्रातिलोम्येन यथाक्रमं क्षत्रियाद् ब्राह्मण्यां सूतः। वैश्यात् क्षत्रियायां मागधः। ब्राह्मण्यां वैदेहकः ॥ ११ ॥

**शूद्रादायोगवः क्षत्ता चण्डालश्चाधमो नृणाम् ॥**
**वैश्यराजन्यविप्रासु जायन्ते वर्णसंकराः ॥१२॥**

(१) **मेधातिथिः**। अत्रापि यथासंख्यमेव। **वैश्यराजन्य** इति निर्देशे जातिपरेऽपि सामर्थ्यात्स्त्रीलिङ्गप्रतिपत्तिः। 'मृगक्षीर' 'कुक्कुटाण्ड' इति यथावृत्तानुरोधात्स्त्रीप्रत्ययो न कृतः ॥ १२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। वैश्यराजन्यविप्रासु तज्जातीयस्त्रीषु क्रमादायोगवादयस्त्रयः, एषां च प्रतिलोमपरिणयनासंभवादपरिणीतास्वेव जन्म ॥ १२ ॥

(३) **कुल्लूकः**। शूद्राद्वैश्याक्षत्रियाब्राह्मणीषु क्रमेणायोगवः क्षत्ता नृणामधमश्चाण्डालश्च वर्णानां संकरो येषु जनयितव्येषु ते वर्णसंकरा जायन्ते ॥ १२ ॥

(४) **राघवानन्दः**। शूद्राद्वैश्यक्षत्रियविप्रकन्यासु यथाक्रममायोगवक्षत्तृचण्डालाः स्युरिति भावः ॥ १२ ॥

(५) **नन्दनः**। राजन्यशब्दे छन्दोनुरोधात् स्त्रीप्रत्ययो नियुक्तः ॥ १२ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। शूद्राद्वैश्यायामायोगवः। शूद्रात्क्षत्रियायां क्षत्ता। शूद्राद्ब्राह्मण्यां जातश्चाण्डालः। सर्वधर्मबहिष्कृता वैश्यराजन्यविप्रास्वेवं वर्णसंकरा जायन्ते। विप्रान्मूर्धाभिषिक्तो हि क्षत्रियायां विशस्त्रियां। शूद्रचां निषादो जातः। पाराशर्योऽपि वायोगी। ब्राह्मण्यां क्षत्रियात्सूतो वैश्याद्वैदेहकः स्मृतः। शूद्राज्जातस्तु चाण्डालः। क्षत्रिया मागधवैश्यात्। 'शूद्रादायोगवं वैश्या जनयामास वै सुतम्। वैश्याशूद्रचोस्तु राजन्यान्माहिष्योग्रौ सुतौ स्मृतौ। वैश्यात्तु करणः शूद्रचां विन्नास्वेष विधिः स्मृतः' ॥ १२ ॥

(७) **मणिरामः**। शूद्राद्वैश्यायां आयोगवः, शूद्रात् क्षत्रियायां क्षत्ता, शूद्राद्ब्राह्मण्यां चांडालः ॥ १२ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **शूद्रादिति**। **वैश्यराजन्यविप्रासु जायन्ते वर्णसङ्कराः**। शूद्रात् द्विजातिवर्णानां मैथुनाख्यसङ्करे सति वैश्यायामायोगवः क्षत्रियायां क्षत्ता ब्राह्मण्यां चाण्डालो मनुष्याधमो जायते ।। १२ ।।

(९) **भारुचिः**। एवं प्रातिलोम्येन शूद्राद्वैश्याथामायोगवः क्षत्रियायां क्षत्ता, ब्राह्मण्यां चण्डाल इति। अत्र तु श्लोके वैश्यराजन्ययोर्वर्णनिर्देशात् स्त्रीलिङ्गमविवक्षितम्। तदविवक्षा च पद्यग्रन्थानुविधानेन। इतरथा हि स्त्रीलिङ्गपाठे श्लोकभङ्गः स्यादिति ।। १२ ।।

**एकान्तरे त्वानुलोम्यादंबष्ठोग्रौ यथा स्मृतौ ।।**
**क्षत्तृवैदेहकौ तद्वत्प्रातिलोम्येऽपि जन्मनि ।।१३।।**

(१) **मेधातिथिः**। **एकांतरे** वर्णे ब्राह्मणवैश्यायामम्बष्ठः, क्षत्रियाच्छूद्रायामुग्रः, एतावानुलोम्येन एवमेकान्तरे प्रातिलोम्येन शूद्रात्क्षत्रियायां **क्षत्ता** वैश्याद्ब्राह्मण्यां **वैदेहः**; **तौ तुल्यौ** भवनादिक्रियासु, न तु यजनादिषु।

चण्डाल एकः प्रतिलोमोऽस्पृश्यः। यथा च दिवाकीर्तिश्लोके तत्स्पर्श एव स्नानं नान्येषु प्रतिलोमेषु। सूतमागधायोगवानामनन्तरजातानां चाण्डालवद्दण्डापूपिकायां सिद्धः स्पर्शादिसंबन्धः ।। १३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। विप्राद्वैश्यायां यथाम्बष्ठो यथा वा क्षत्रियाच्छूद्रायामुग्रः पुत्र आनुलोम्येन जातोप्यनन्तरस्त्रीजातपुत्रापेक्षया निन्दितस्तथा वैश्याद् विप्रायां जातो वैदेहः शूद्रात्क्षत्रियायां जातश्च क्षत्ता। अनन्तरप्रतिलोमजातापेक्षयैकान्तरितजातत्वान्निन्दित इत्यर्थः। यथा स्मृतौ निन्दितावितिं शेषः ।। १३ ।।

(३) **कुल्लूकः**। एकान्तरेऽपि वर्णे ब्राह्मणाद्वैश्यकन्यायामंबष्ठः क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायामुग्रः, एतावानानुलोम्येन यथा स्पर्शाद्यर्हौ तद्वदेकान्तरे प्रतिलोमजननेऽपि शूद्रात्क्षत्रियायां क्षत्ता, वैश्याद्ब्राह्मण्यां वैदेहः। एतावपि स्पर्शादियोग्यौ विज्ञेयौ। एकान्तरोत्पन्नयोः स्पर्शाद्यनुज्ञानादनन्तरोत्पन्नानां सूतमागधायोगवानां स्पर्शादियोग्यत्वं सिद्धं भवति। अतश्चाण्डाल एवैकः प्रतिलोमतः स्पर्शादौ निरस्यते ।। १३ ।।

(४) **राघवानन्दः**। क्षत्तृवैदेहयोः स्पृश्यत्वं सदृष्टान्तमाह **एकान्तर** इति। स्वस्वजातितो भिन्नैका जातिरन्तरा व्यवधानं यस्य जन्मनस्तस्मिन्नेकान्तरे जन्मनि यथानुलोमजावम्बष्ठोग्रौ स्पृश्यावेवं शूद्रात्क्षत्रियाजः क्षत्ता वैश्याद्ब्राह्मणीजो वैदेहश्च तुल्यौ स्पृश्यत्वादिना स्मृतावित्यन्वयः। वर्णसंकराणां मातृजातीयसंस्कारं प्रापयितुं तेषामनुवादः ।। १३ ।।

(५) **नन्दनः**। उक्तमेवार्थं श्लोकत्रयेण प्रपञ्चयति **एकान्तरे त्वानुलोम्यादिभिः**। आनुलोम्यादेकान्तरे जन्मनि यथा ब्राह्मणाद्वैश्यायामंबष्ठः, यथा क्षत्रियाच्छूद्रायामुग्रः, यथा प्रातिलोम्येनैकान्तरे जन्मनि शूद्रात्क्षत्रियायां क्षत्ता तथा वैश्याद्ब्राह्मण्यां वैदेहकः, आयोगवश्च क्षत्ता चण्डालश्चेति प्रातिलोम्येन जायन्ते। शूद्राद्वैश्यायामायोगवः, क्षत्रियायां क्षत्ता, ब्राह्मण्यां चण्डाल इत्यर्थः। वैश्यान्मागधवैदेहौ क्षत्रियाद्ब्राह्मण्यां सूत इत्यर्थः। परेऽन्ये एतेऽप्यपसदा इत्यर्थः ।। १३ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। एकेन अन्तरे आनुलोम्यात् ब्राह्मणाद्वैश्यकन्यायां अम्बष्ठः। यः पुनः शूद्रात् वैश्यायां आयोगवः। शूद्रात्क्षत्रियायां क्षत्ता। शूद्राद्ब्राह्मण्यां अधमः एकेन अन्तरे राजन्यात् शूद्रायां जात उग्रः अम्बष्ठोग्रौ यथा स्मृतौ भाषणस्पर्शयोग्यौ क्षत्तृवैदेहकौ प्रतिलोमेन जन्मनि तद्वत् भाषणस्पर्शयोग्यौ। क्षत्रियायां शूद्रात् क्षत्तारं जनयति, ब्राह्मण्यां वैश्यात् वैदेहकः॥ १३॥

(७) **मणिरामः**। यथा आनुलोम्यात्, एकांतरे ब्राह्मणाद्वैश्यायां क्षत्रियात् शूद्रायां यथा क्रमेणांबष्ठोग्रौ स्पर्शयोग्यौ स्मृतौ तथा प्रातिलोम्येऽपि तद्वत् एकांतरेण शूद्रात् क्षत्रियायां क्षत्ता, वैश्याद्ब्राह्मण्यां वैदेहः। एतावपि स्पर्शादियोग्यौ विज्ञेयौ। तथा प्रतिलोमजश्चाण्डाल एवैकः स्पर्शाद्यनर्हः॥ १३॥

(८) **गोविन्दराजः**। **एकान्तर इति**। एकव्यवहिते वर्णे वर्णानुक्रमेण ब्राह्मणाद् वैश्यायां क्षत्रियात् शूद्रायां उत्पन्नौ अम्बष्ठोग्रौ यथा स्पर्शाद्यर्हौ तद्वत् प्रातिलोम्ये जननेऽपि क्षत्रियवैदेहकौ स्पर्शादियोग्यौ विज्ञेयौ। एकान्तरोत्पन्नयोश्च स्पर्शाद्यभ्यनुज्ञानाद् अर्थान्तरोत्पन्नानामपि सूतमागधायोगवानां स्पर्शादियोग्यत्वं सिद्धं भवति। एवं चण्डाल एवैकोऽत्र पर्युदास्यते॥ १३॥

(९) **भारुचिः**। एवमेतान् प्रतिलोमानुक्त्वा विशेषविवक्षयेदमधुनोच्यते—एकान्तरावनुलोमावम्बष्ठोग्रौ यथा संस्पर्शनादौ व्यवहारे अवर्जनीयौ एवं प्रतिलोमावपि सन्तौ क्ष(त्र)वैदेहकौ तद्वद्विज्ञेयौ स्मृतौ; मागधायोगवानां तु प्रातिलोम्येऽनन्तरत्वाद्दण्डापूपिकया सिद्धः क्षत्तृवैदेहकाभ्यामुत्कर्ष इति। एवं च चण्डालपर्युदासोऽत्र विवक्षितः। तथा चोक्तमेव 'दिवाकीर्त्या चे'त्येवमादि॥ १३॥

**पुत्रा येऽनन्तरस्त्रीजाः क्रमेणोक्ता द्विजन्मनाम्॥**
**तानन्तरनाम्नस्तु मातृदोषात्प्रचक्षते॥१४॥**

(१) **मेधातिथिः**। यथा ब्राह्मणात्क्षत्रियायां वैश्यायां च एवं क्षत्रियाद्उभयोस्तान**नन्तरनाम्ना** प्रचक्षते। **अनन्तराऽनुलोमा जातिः** समाना तेषां, मातृजातीया इत्यर्थः।

अनन्तरग्रहणमविवक्षितमत एवाह **मातृदोषादिति**। पितृजात्युत्कर्षेण नो दूष्यन्ते। अतश्च सत्यपि वर्णसंकरत्वे वचनान्मातृजात्याः स्मृताः संस्कारास्तेषु कर्तव्या इत्युक्तं भवति। न ह्येतद्वचनमन्तरेण क्षत्रियादिसंस्कारास्तेषु लभ्यन्ते; अश्वतरवज्जात्यन्तरत्वात्। वचनेन तु मातृजातावुक्तायामदोषः॥ १४॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अनन्तरस्त्रीजाः विप्रस्य क्षत्रियायां क्षत्रस्य वैश्यायां वैश्यस्य शूद्रायाम्। अनन्तरनाम्नः क्षत्रियादिनाम्नः प्रचक्षते मातृदोषात्। क्षत्रियादिमातृकत्वान्मातृजातिसाधारणो धर्मस्तेषामित्यर्थः। अनन्तरनाम्न इति नामग्रहणान्नाममात्रं न जातिरिति दर्शितम्॥ १४॥

(३) **कुल्लूकः**। मातृदोषादिति हेतूपन्यासात् अनन्तरग्रहणमनन्तरवच्चैकान्तरद्व्यन्तरप्रदर्शनार्थं, ये द्विजातीनामनन्तरैकान्तरद्व्यन्तरजातिस्त्रीष्वानुलोम्येनोत्पन्नाः पूर्वमुक्ताः

पुत्रास्तान्हीनजातिमातृदोषान्मातृजातिव्यपदेश्यानाचक्षते। मातापितृव्यतिरिक्तसंकीर्णजातित्वेऽप्येषां मातृजातिव्यपदेशकथनं मातृजातिसंस्कारादिधर्मप्राप्त्यर्थम् ।। १४ ।।

(४) **राघवानन्दः**। पुनः स्पृश्यत्वार्थमनुलोमजात्यन्तरत्रयमाह **पुत्र इति**। द्विजन्मनामनन्तरासु स्त्रीषु उग्राम्बष्ठायोगवजातीयासु विप्राद्यैः पुत्रा जायन्ते ते अनन्तरनाम्न आवृतादिनामकजातियोगिनः। तत्संज्ञा मातृजातिसंस्कारार्थेति **मेधातिथिः** ।। १४ ।।

(५) **नन्दनः**। पक्षान्तरमाह **पुत्रा येऽनन्तरस्त्रीजा इति**। अनन्तरनाम्नोऽनन्तरवर्णनाम्नः क्रमेण क्षत्रियवैश्यशूद्रनाम्नः मातृजातीयानित्यर्थः ।। १४ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। अनन्तरस्त्रीजा ये पुत्रा अम्बष्ठोग्रक्षत्तृवैदेहकायोगवा एते पुत्रा अनन्तरस्त्रीजाता अनन्तरनाम्नः ।। १४ ।।

(७) **मणिरामः**। अनंतरग्रहणमेकांतरद्व्यंतरोपलक्षणार्थं। ये द्विजातीनां क्रमेण आनुलोम्येन अनंतरस्त्रीजाः अनंतरैकांतरद्व्यंतरस्त्रीषु जाता उक्ताः पूर्वं ये पुत्राः तान् मातृदोषात् हीनजातिरूपात् अनंतरनाम्नः—मातृजातिव्यपदेश्यान्—आचक्षते। एषां संकीर्णजातित्वेऽपि मातृजातिव्यपदेशकथनं मातृजातिसंस्कारादिधर्मप्राप्त्यर्थं ।। १४ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **पुत्रा इति**। ये द्विजातीनां अनन्तरैकान्तरद्व्यन्तरजातिस्त्रीषु उत्पन्नाः क्रमेणोक्ताः पुत्रास्तान् हीनमातृकत्वात् मातृजातिव्यपदेशानाचक्षत इतीदमेवं मातापितृव्यतिरिक्तजातित्वात् धर्मास्ते मातृजातिगतसंस्कारादिधर्मप्राप्त्यर्थं वचनं मातृदोषाद् इति हेतूपादानाद् अनन्तरग्रहणं एकान्तरप्रदर्शनार्थम् ।। १४ ।।

(९) **भारुचिः**। ब्राह्मणादनन्तराः क्षत्रियाः, तस्यां जातो वर्णेनानन्तरनामा भवति। मातृजातिः क्षत्रियशब्देनोच्यते। प्रयोजनं क्षत्रियजाति.....रेष्वस्यापि ग्रहणं यथा स्यादिति कथञ्चन स्यात्। मातृजातितो यस्मादुत्कृष्टा अनुलोमा उक्ताः 'स्त्रीष्वनन्तरजातासु द्विजैरुत्पादितान् सुतान्। सदृशानेव तानाहुर्मातृदोषविगर्हितान्' (१०।६) इति श्लोके। अथोभयवर्णवर्जितानामुभयत्राप्राप्तौ सत्यामिदमाह—एवं क्षत्रियेण वैश्यायां जातो वैश्यनामा भवति। तत्प्रयोजनं चोक्तम्। नन्वेवं सति ब्राह्मणेन वैश्यानामानन्तर्याभावात् तत्रोत्पन्नस्य वैश्यव्यपदेशो न प्राप्नोति। एवं क्षत्रियेण शूद्रायां ब्राह्मणेन वा। नैष दोषः; आनन्तर्यस्याविवक्षितत्वात्। अपरवर्णासु स्त्रीषु जातास्सन्तः स्त्रीजातिनामानस्ते भवन्तीति। एवं च सति ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यां वर्णद्वयजानामनुलोमतां त्रयाणामुपनयनादिसंस्कारप्राप्तमिदं विज्ञेयम्। तथा च सति शूद्रायामुत्पन्ना स्त्रयोऽपि ब्राह्मणादिभ्यस्तु नामानो...मातृदोषाच्छूद्रवदसंस्कार्याः। एवं **गौतमः**— 'प्रतिलोमास्तु धर्महीना' इत्युक्त्वाऽनन्तरमेवाह—'शूद्रायां चानुलोमा अपीति' ।। इदानीं यत्र मातृजातित्वं उत्कृष्टजा(तेरपि ने)च्छति ।। १४ ।।

**ब्राह्मणादुग्रकन्यायामावृतो नाम जायते ।।**
**आभीरोंऽबष्ठकन्यायामायोगव्यां तु धिग्वणः ।।१५।।**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। ब्राह्मणादिति अनुलोमां संकरस्त्रीषूत्तमवर्णजनितमेतत्कुलम् ।। १५ ।।

(३) **कुल्लूकः**। क्षत्रियेण शूद्रायामुत्पन्नोग्रा उग्रा चासौ कन्या चेत्युग्रकन्या तस्यां ब्राह्मणादावृतनामा जायते। ब्राह्मणेन वैश्यायामुत्पन्ना अंबष्ठा, तस्यां ब्राह्मणादाभीराख्यो जायते, शूद्रेण वैश्यायामुत्पन्नाऽऽयोगवी, तस्यां ब्राह्मणाद्धिग्वणो जायते ।। १५ ।।

(४) **राघवानन्दः**। ते एवावृताभीरधिग्वणजातय इत्याह **ब्राह्मणादिति** ।। १५ ।।

(५) **नन्दनः**। अथान्यान्सङ्करजातानाह **ब्राह्मणादुग्रकन्यायामिति** ।। १५ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। आवृतो हस्तिपः। अम्बष्ठकन्यायां विप्रात् आभीरः। ब्राह्मणात् आयोगव्यां धिग्वणः ।। १५ ।।

(७) **मणिरामः**। **ब्राह्मणादिति**। सर्वत्रान्वेति आभीरनामा जातिः। धिग्वण-नामा ।। १५ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **ब्राह्मणादिति** । क्षत्रियेण शूद्रायामुत्पन्ना उग्री, तस्यां ब्राह्मणाद् आवृतो नाम्ना जायते। ब्राह्मणेन वैश्यायां उत्पन्ना अम्बष्ठो, ब्राह्मणादाभीराख्यो जायते। अनयोश्च हस्त्यादिस्वाधिका आवृतानां गोजाविरक्षा आभीराणां इत्यर्थे औशनसे वृत्तिरुक्ता। शूद्रेण वैश्यायामुत्पन्ना आयोगवी, तस्यां ब्राह्मणाद् आभीराख्यो जायते ।। १५ ।।

(९) **भारुचिः**। तत्रेदं प्रतिषेधमारभते जातो–वेदितव्यः। ब्राह्मणादिति वर्तते। अनुलोमस्त्रीषु तावदेवमुत्कृष्टात् यथा चानुलोमः स्त्रीषु। जात्यन्तरमेवं प्रतिलोमं स्त्रीष्वपि दर्शयति **आयोगव्यामिति**। ब्राह्मणजातिरेव न मातृजातिर्भवति। यथा च ब्राह्मणादिभ्यः क्षत्रियाद्यास्वनुलोमजाता मातृनामानो भवन्ति। मातृदोषविगर्हणया (च न त)ज्जातीया भवन्ति ।। १५ ।।

**आयोगवश्च क्षत्ता च चण्डालश्चाधमो नृणाम् ।।**
**प्रातिलोम्येन जायन्ते शूद्रादपसदास्त्रयः ।।१६।।**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **आयोगव** इति प्रागुक्तमातृकर्मणाधमः सर्वसंकरजेभ्योऽप्यधमः। शूद्राज्जाता एत इत्यर्थः। आयोगव्यां जातः कैवर्ताख्यः सोऽत्र निषादजत्वान्निषादः, एवं वैश्यादित्यत्रापि ।। १६ ।।

(३) **कुल्लूकः**। आयोगवः क्षत्ता चण्डालश्च मनुष्याणामधम इत्येते त्रयो व्युत्क्रमेण वैश्याक्षत्रियाब्राह्मणीषु पुत्रकार्यादिपगतास्त्रयः शूद्रा जायन्ते। पुत्रकार्यक्षमत्वप्रतिपादनार्थ-मुक्तानामप्येषां पुनर्वचनं। एवमुत्तरश्लोक उक्तानामपि ।। १६ ।।

(४) **राघवानन्दः**। पुत्रकार्यविच्छेदाय षण्णां प्राप्तमपसदत्वमनुवदति **आयोगवश्चेति** द्वाभ्याम्। अपत्यकार्यात्सीदन्तीत्यपसदाः ।। १६ ।।

(७) **मणिरामः**। अपसदाः पुत्राः ।। १६ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **आयोगव** इति। आयोगवः क्षत्ता चण्डालो मनुष्याधम इत्येते त्रयो व्युत्क्रमेण वैश्याक्षत्रियाब्राह्मणीषु शूद्रादपसदाः पुत्रकार्यादवगताः जायन्ते ।। १६ ।।

(९) **भारुचिः**। किन्तर्हि ? उभयजातिविवक्षिता जात्यन्तरं यतस्तान् दर्शयति **आयोगवश्चेति**। यथा च शूद्रादेते त्रयस्त्रिषु। एवं वैश्यान्मागधवैदेहौ। उत्कृष्टवर्णद्वये यथा(सं)ख्येन प्रतिलोमौ भवतः ।। १६ ।।

**वैश्यान्मागधवैदेहौ क्षत्रियात्सूत एव तु ।।**
**प्रतीपमेते जायन्ते परेऽप्यपसदास्त्रयः ।। १७ ।।**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। त्रयोऽपसदा अत्यन्तापकृष्टा इत्यर्थः ।। १७ ।।

(३) **कुल्लूकः**। क्षत्रियाब्राह्मण्योर्मागधवैदेहौ क्षत्रियाद्ब्राह्मण्यां सूत इत्येवं प्रातिलोम्येनापरेऽपि त्रयः पुत्रकार्यादपसदा जायन्ते ।। १७ ।।

(४) **राघवानन्दः**। प्रतीपं प्रातिकूल्यम्। 'संकरो नरकायैवे'(भ.गी.)त्युक्तेः प्रातिलोम्यमेवात्र हेतुः ।। १७ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। वैश्यात् क्षत्रियायां मागधः। वैश्यात् विप्रकन्यायां वैदेहः। क्षत्रियात् विप्रकन्यायां सूतः भवति। एते प्रतीपं विपरीतं जायन्ते ।। १७ ।।

(७) **मणिरामः**। कार्याऽनर्हाः ।। १७–१९ ।।

**जातो निषादाच्छूद्रायां जात्या भवति पुल्कसः ।।**
**शूद्राज्जातो निषाद्यां तु स वै कुक्कुटकः स्मृतः ।। १८ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। अयं 'निषादो'ऽस्मिँश्लोके न शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातो यः प्रागुक्तः। किं तर्हि ? यः प्रतिलोमो वक्ष्यमाणः, प्रतिलोमाधिकारात्प्रतिलोमा हि पुल्कसा जातिः प्रसिद्धा। एवं शूद्रान्निषाद्यां कुक्कुटकः ।। १८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। निषादात् ब्राह्मणशूद्रापुत्रात्। एवं निषाद्यामित्यपि ।। १८ ।।

(३) **कुल्लूकः**। निषादाच्छूद्रायां जातो जात्या पुल्कसो भवति। निषाद्यां पुनः शूद्राद्यो जातः स कुक्कुटकनामा स्मृतः ।। १८ ।।

(४) **राघवानन्दः**। अन्यानपि तथाविधानाह **जात इति** द्वाभ्याम् ।। १८ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। क्षत्रियायां निषादाज्जातो जात्या पुल्कसः भवति। निषाद्यां शूद्राज्जातः कुक्कुटकः स्मृतः ।। १८ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। वैश्यादिति। **जातो निषादाच्छूद्रायां जात्या भवति पुल्कसः। शूद्राज्जातो निषाद्यां तु स वै कुक्कुटकः स्मृतः ।।**

पुरुषजातेः प्रतिलोमत्वान्न निषादोऽत्र पारशवः, पितुः प्रतिलोमे हि यथा **व्यासः**

**'उग्रा मागधसंयोगाज्जातः कुन्तलकाभिधः। स नापित इति प्रोक्तः क्षुरकर्मविधानकृत् ।। क्षत्रियाज्जायते वैश्यान्मागधो वाक्यजीवनः। शूद्रान्निषादो मत्स्यघ्नः क्षत्रियायां व्यतिक्रमात् ।।'**

इत्येवं य एतस्मान्निषादाच्छूद्रायां जातो जातितः पुल्कसः साक्षाद् भवति। निषाद्यां पुनरेवं विधायां एव यः शूद्राज्जातः स कुक्कुटकनामा स्मृतः, तस्य च कुक्कुटकानां प्रहरकरणं चक्रतोमरभिण्डिमालप्रासासिपरशुलगुडलोहजालिकासत्त्वघ्नानि कर्माणीति शङ्खेन वृत्तिरुक्ता ।। १७-१८ ।।

(९) **भारुचिः**। जातस्यानुलोम्यात् पुल्कसत्वमयुक्तम्। प्रतिलोमत्वात् पुल्कसजातेरिति। एवमेव ।। १८ ।।

**क्षत्तुर्जातस्तथोग्रायां श्वपाक इति कीर्त्यते ।।**
**वैदेहकेन त्वंबष्ठ्यामुत्पन्नो वेण उच्यते ।। १९ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। अनुलोमाः स्त्रियः, प्रतिलोमाः पुमांसः, तयोः संभवे **श्वपाकवेणौ** प्रतिलोमजातीयौ ।। १९ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। क्षत्तृजात इति पितृदोषात् ।। १९ ।।

(३) **कुल्लूकः**। शूद्रेण वैश्यायां जातः क्षत्ता, क्षत्रियेण शूद्रायां जाता उग्रा, तेन तस्यां जातः श्वपाक इत्युच्यते। वैदेहकेनांबष्ठ्यां ब्राह्मणेन वैश्याज्जातायां वेण इति कथ्यते ।। १९ ।।

(४) **राघवानन्दः**। वेणो मवुरुडः ।। १९ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। उग्रायां उग्रजात्यां क्षत्तुः जातः श्वपाकः। अंबष्ठ्यां वैदेहकेन जातः वेन इति उच्यते ।। १९ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **क्षत्तु**रिति। क्षत्तुः शूद्राक्षत्रियजातायामुत्पन्नः श्वपाक इत्युच्यते। वैदेहकेन वैश्यतो ब्राह्मणजातेन अम्बष्ठ्यां ब्राह्मणेन वैश्याजातायामुत्पन्नो वेन इति कथ्यते ।। १९ ।।

(९) **भारुचिः**। उत्कर्षापकर्षौ चैतेषां शास्त्रतः कल्पयितव्यौ। वर्णसङ्करप्रकरणे चाप्रतिलोमा अपि सङ्कीर्णयोनयो व्रात्याज्जाता वक्तव्या इति ।। १९ ।।

**द्विजातयः सवर्णासु जनयंत्यव्रतांस्तु यान् ।।**
**तान्सावित्रीपरिभ्रष्टान्व्रात्यानिति विनिर्दिशेत् ।। २० ।।**

(१) **मेधातिथिः**। नैते प्रतिलोमवर्णसंकराः स्युः। अतोऽस्मिन्विधावुच्यन्ते।

**द्विजातयो यान्सवर्णासु जनयन्ति** तेऽवेदव्रता भवन्ति, अब्रह्मचारिणः **सावित्रीपरिभ्रष्टा** उपनयनहीनाश्च तदा **व्रात्या** इति **तान्निर्दिशेत्**।

**अव्रताञ्जनयन्ती**ति नायं संबन्धः। न हि व्रतिनोऽव्रता वा जन्यन्ते, जातानामुपनयनसंस्कारविधानात्। उक्तव्रात्यलक्षणानुवादः, उत्तरविवक्षया।

यस्त्वयं पाठोऽव्रतायाञ्जनयन्ति तान्व्रात्यान्विनिर्दिशेत्' तदसत्; उक्तव्रात्यलक्षणविरोधात् ।। २० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। सावित्रीपरिभ्रष्टाननुपदेश्यसावित्रीकान्। व्रात्यनाम्नो वर्णबाह्यान्॥ २०॥

(३) **कुल्लूकः**। द्विजातयः सवर्णासु स्त्रीषु यान्पुत्रानुत्पादयन्ते ते चेदुपनयनाख्यव्रतहीना भवन्ति तदा तानकृतोपनयनान्व्रात्येत्यनया संज्ञया व्यपदिशेत्; 'अत ऊर्ध्वं त्रयोऽप्येते' (२।३९) इत्युक्तमपि व्रात्यलक्षणं प्रतिलोमजपुत्रवदस्याप्युपकाराक्षमपुत्रत्वदर्शनार्थमस्मिन्संकीर्णप्रकरणेऽनूदितम्॥ २०॥

(४) **राघवानन्दः**। व्रात्यानामिव तज्जानामपि पुत्रकार्यनिवृत्त्यर्थं व्रात्यत्वमाह **द्विजातय** इति। ते स्वयमव्रताः कालेऽप्राप्तोपनयनाः अनुलोमेनोद्वाहितास्वक्षतयोनिषु सवर्णास्वपि जनयन्ति यान् तान् सावित्रीभ्रष्टत्वेनाव्रतानिति कृत्वा व्रात्यानिर्दिशेदित्यन्वयः॥ २०॥

(५) **नन्दनः**। अथ त्रैवर्णिकानामनुपनीतानां जात्यन्तरत्वमाह **द्विजातयस्सवर्णास्विति**। यान्सुताञ्जनयन्ति तानव्रताननुपनीतान् अत एव सावित्रीपरिभ्रष्टान्॥ २०॥

(६) **रामचन्द्रः**। अव्रतान् अकृतयज्ञोपवीतान् सावित्रीपरिभ्रष्टान् व्रात्यान् इति अभिनिर्दिशेत् कथयेत्॥ २०॥

(७) **मणिरामः**। अव्रतान्-ते च उपनयनाख्यव्रतहीना भवंति-तान् सावित्रीपरिभ्रष्टान् अकृतोपनयनान् व्रात्यान् विनिर्दिशेत्। उक्तमपि व्रात्यलक्षणं प्रतिलोमजपुत्रवत्पुत्रकार्याऽक्षमत्वप्रदर्शनार्थं संकीर्णप्रकरणे उक्तं॥ २०॥

(८) **गोविन्दराजः**। इदानीं व्रात्यजातानामप्रतिलोमानामपि सतां संस्कारत्वप्रतिपादनार्थं अत ऊर्ध्वं 'त्रयोऽप्येत' इत्याद्युक्तं व्रात्यलक्षणं अनुवदितुमाह **द्विजातय** इति। द्विजातिस्त्रीषु यान् पुत्रान् उत्पादयति ते चेत् उपनयनाख्यव्रतहीना भवन्ति, तदा तान् अकृतोपनयनान् व्रात्या इत्यनया संज्ञया व्यपदिशेत्॥ २०॥

(९) **भारुचिः**। यत इदमुच्यते–सावित्रीपतिताद्व्रात्यो जायते; न तु सावित्रीपतितो व्रात्यो भवति। एवं च सति व्रात्यस्तोमप्रायश्चित्तं सावित्रीपतितस्य न भवति। अन्यत्त्वस्य प्रायश्चित्तं कल्प्यम्। इतः प्रभृति चैते व्रात्याज्जाताः पुत्रपौत्रा व्रात्या इति केचित्–तदयुक्तम्। उक्तत्वाद्व्रात्यलक्षणस्योपनयनप्रकरणे– 'अत ऊर्ध्वं त्रयोऽप्येत' इत्यादि। तस्मान्नेदं व्रा(त्य)लक्षणमव्रताद्यो जायते स व्रात्य इति। किं तर्हि? अव्रत एव व्रात्य इत्युक्तं (यतस्ते) नास्य विरोधादनर्थोऽयम्। विप्रतिषिद्धं चैतत्। यदि द्विजातयः कथं व्रताः? अथाव्रताः कथं द्विजातयः? कथं तर्ह्यस्य पा..... द्विजातयः? सवर्णासु जनयन्त्यव्रतांस्तु यान्। तान् सावित्रीपरिभ्रष्टानुपनयनादिसंस्कारहीनान् व्रात्यानित्यभिनिर्दिशेत्। उक्तव्रात्यलक्षणानुवाद उत्तरप्रकरणादिसम्बन्धार्थः। सोय....॥२०॥

**व्रात्यात्तु जायते विप्रात्पापात्मा भूर्जकण्टकः॥**
**आवन्त्यवाटधानौ च पुष्पधः शैख एव च॥२१॥**

(१) **मेधातिथिः।** सवर्णास्विति पूर्वश्लोकादनुवर्त्यते। इह स्त्रीजातेरनुपादानादवश्यंभावाच्च तदपेक्षायाः स्मृत्यन्तरे वैश्यायां ब्राह्मणाज्जातो **भृज्जकण्टकः** स्मर्यते। अतो विशिनष्टि **पापात्मेति।** स ह्यनुलोमत्वान्न **पापात्मा।** अयं चासंस्कृतात्मनो व्रात्याज्जातोऽनधिकारित्वाद्युक्तं यन्निन्द्यते। न च पर्यायशब्दा देशभेदेन प्रसिद्धप्रयोगभेदाः। पूर्वैस्तु व्याख्यातं तत्पुत्रपौत्राणामेता आख्याः। भृज्जकण्टको ब्राह्मण्यां जातः। **आवन्त्य**श्चावन्त्याम्। तस्यामेव **वाटधानः।** वाटधानात्पुष्प**शेखरः** ?। एवमुत्तरेष्वपि ॥ २१ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** व्रात्याद्विप्रात् व्रात्यायामेव विप्रायां। सवर्णास्वित्यनुवृत्तेः तत्र भूर्जकण्टकः सवर्णयोरपत्यम्। भूर्जकण्टकस्त्रियां विप्राद्व्रात्यादावन्त्यः। आवन्त्यां वाट इत्यादिपूर्ववज्जातिस्त्रीषु व्रात्येन विप्रेण जनिता विप्रजाः। ऋणादिष्वपि व्रात्यक्षत्रियादिजनितेषु सुधन्वाचार्यादिषु च व्रात्यवैश्यजनितेषूह्यम्। आद्यस्य तज्जातीयस्त्रियामुत्तरेषां तु पूर्वपूर्वजातिस्त्रियां जन्मेति। पापात्मेति विशेषणं निन्दार्थम् ॥ २१ ॥

(३) **कुल्लूकः।** व्रात्याद्ब्राह्मणात्सवर्णास्वित्यनुवृत्तेर्ब्राह्मण्यां पापस्वभावो भूर्जकण्टको जायते। तथाऽऽवन्त्यवाटधानपुष्पधशैखा जायन्ते। एकस्य चैतानि देशभेदप्रसिद्धानि नामानि ॥ २१ ॥

(४) **राघवानन्दः।** ते तु व्रात्यास्त्रयस्तज्जातानाह **व्रात्यास्त्विति** त्रिभिः। तत्र तथाविधब्राह्मणजाः पञ्च भूर्जकण्टकादयः। झल्लादयः सप्त क्षत्रियजाः। पञ्च वैश्यजाः। पंचेति देशसंज्ञाभिरेते प्रसिद्धा इति **मेधातिथिः**। देशभेदेनैकैकस्य नामानीति **कुल्लूकः**, अन्यथैकजात्या वर्णद्वयानुपपत्तेः ॥ २१–२३ ॥

(५) **नन्दनः।** विप्रादिति विशेषणं व्रात्यत्वेऽप्यस्य विप्रत्वमूलच्छेदो नास्तीति सूचयितुं। असंस्कृतपितृजातः पापतर इत्यभिप्रायेणोक्तं **पापात्मेति।** पञ्चैते सजातिषूढासु स्त्रीषु जाता अपि संस्कारविप्रकर्षादुत्तरोत्तरमपकृष्टावृत्तितो देशतो वा भिन्नसंज्ञा विज्ञेयाः, षष्ठादीनामवचनन्तु जात्यन्तरत्वेनाप्रसिद्धेः ॥ २१ ॥

(६) **रामचन्द्रः।** ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यजातीनां व्रात्यजातिर्भवति, उपनयनाभावात्। व्रात्याद्विप्राद्विप्रकन्यायां भूर्जकण्टको नाम जातिर्जायते। भूर्जकण्टकः स्मृतः कण्टको ज्ञेयः आवन्त्यः ॥ २१ ॥

(७) **मणिरामः।** व्रात्यात्-विप्रात्-सवर्णास्विति पुनरावर्तते ब्राह्मण्यां भूर्जकंटको जायते तस्यैव देशभेदेन आवंत्यः वाटधान-पुष्पध-शैखेति नामानि ज्ञेयानि ॥ २१ ॥

(८) **गोविन्दराजः। व्रात्यात्तु जायते विप्रात् पापात्मा भृज्जकण्टकः** इति। उक्तलक्षणाद् व्रात्यात् सवर्णासु इत्य(ति)पुनरावृत्तेः ब्राह्मण्यां पापवतोत्पन्नत्वात् दुष्टशरीरः भृज्जकण्टकाख्यो जायते। तथा वाटधानपुष्पधशैखाख्या जायन्त इति एकस्यैव देशभेदप्रसिद्धैतानि नामानि। एवं उत्तरत्रापि **गौतमेन** ब्राह्मणाद् वैश्यायां जातो भृज्जकण्टक उक्तः। स च अनुलोमत्वादपाप्मेति विशेषणं। एषां च वृत्तयोऽथ औशनस उक्तः—अभिचारमूलकर्म द्विषतां मन्त्रौषधीश्च अभिमुखीकरणं नाशनं वा भृज्जकण्टकानां आवन्त्यवाटधानैः स्वसैन्यानां विजित्वा चर्या व्रात्याजैरन्यैः परराष्ट्राणां कोशमन्त्रवृत्तज्ञानं मित्रामित्रता च ज्ञेयेति ॥ २१ ॥

(९) **भारुचिः**। व्रात्याद्विप्राद्वर्णायामेव तस्याः पूर्वश्लोकेऽधिकृतत्वादिह वचनात् स्त्री... जायते वर्णः। स भूर्जकण्टकनामा भवति। व्रात्याभिजनः स्मृत्यन्तरे–वैश्यायां ब्राह्मणाज्जातो भूर्जकण्टकः स्मर्यते। स चानुलोमत्वादपापात्मा, यत इदं तदपेक्षं विशेषणमुच्यते–पापात्मत्वमस्य व्रात्यजातत्वाद् असंस्कृतात्मनः। ततोऽपि ब्राह्मण्यामेवा(वन्त्यां) पापतरः। न तु भूर्जकण्टकस्त्रियाम्। तस्यां हि जातो वर्णस्तन्नामा भवति। अत इदं विशेष्यते ब्राह्मण्यामेव। एतेनोत्तरा व्याख्याता। एवमा(व)न्त्याद्वा दधाने पापतमः। तस्मात् पुष्पधकः। ततोऽपि शैव इति। इयद्विकारत्वाद्वायं नाम्ना निर्देशं पञ्चधा ब्राह्मणा व्रात्यजातानां निदर्शनार्थो वा। एवमुत्तरयोरपि बोद्धव्यम्। क्षत्रियव्रात्याज्जाताः क्षत्रियायामधुनोच्यते ।। २१ ।।

**झल्लो मल्लश्च राजन्याद्व्रात्यान्निच्छिविरेव च ।।**
**नटश्च करणश्चैव खसो द्रविड एव च ।।२२।।**

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। और्णायः सप्त राजन्याद्व्रात्यात् ।। २२ ।।

(३) **कुल्लूकः**। क्षत्रियाद्व्रात्यात्सवर्णायां झल्लमल्लनिच्छिविनटकरणखसद्रविडाख्या जायन्ते। एतान्यप्येकस्यैव नामानि ।। २२ ।।

(५) **नन्दनः**। श्लोकद्वयमनेन व्याख्यातम् ।। २२–२३ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। राजन्याद्व्रात्यात्क्षत्रियायां जातः झल्लः निच्छिविः नटः करणः खसः द्रविडः ।। २२ ।।

(७) **मणिरामः**। राजन्यात् व्रात्यात्-क्षत्रियायां झल्लादयः ।। २२ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **झल्लो मल्लश्चेति**। क्षत्रियाद् व्रात्यायां सवर्णायां झल्लमल्लनिच्छिविनटकरणखसद्रविडाख्या जायन्ते। इत्येषां च वृत्तयः अथ उशनस उक्तः, चारवृत्तित्वान्नटकरणानाम् उदकाहरणं प्रपावेश्मदानं च खसद्रविडानां व्रात्यजैः अन्यैः इत्यादिपूर्वश्लोके दर्शितम् ।। २२ ।।

(९) **भारुचिः**। एते च पूर्ववद्वचाकरणीयाः ।।२२।।

**वैश्यात्तु जायते व्रात्यात्सुधन्वाचार्य एव च ।।**
**कारुषश्च विजन्मा च मैत्रः सात्वत एव च ।। २३ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। एताभिः संज्ञाभिः प्रसिद्धा एवंजातीया वेदितव्याः ।। २२–२३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। सुधन्वाचार्यादयः पञ्च वैश्याद्व्रात्यात् ।। २३ ।।

(३) **कुल्लूकः**। वैश्यात्पुनर्व्रात्यात्सवर्णायां सुधन्वाचार्यकारुषविजन्ममैत्रसात्वताख्या जायन्ते। एकस्य चैतान्यपि नामानि ।। २३ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। वैश्याद्व्रात्याद्वैश्यायां जाताः सुधन्वादिसात्वतान्ताः ।। २३ ।।

(७) **मणिरामः**। वैश्यात्तु व्रात्यात् सवर्णायां सुधन्वादयः ।। २३ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **वैश्यादिति**। वैश्यात् पुनः व्रात्यात्सुधन्वाचार्यकारुषविजन्ममैत्र-सात्वताख्या जायन्ते। वृत्तयश्च एषां अपि औशनस उक्ताः आचार्यसात्वतैः देवपूजनं शिष्टानां व्रात्यजैरन्यैरित्यादिदर्शनम्॥ २३॥

(९) **भारुचिः**। वैश्याच्च व्रात्यात् सुधन्वादयः पूर्ववद्विज्ञेयाः। नामनिर्देशे च प्रयोजनम्। य एभिर्नामभिः तम ... र्देश उच्यन्ते वर्णाः त एवंप्रकारादि विज्ञेयाः। अविज्ञातयोस्तयोरपि सन्तः किमर्थं पुनरन्तरप्रभावानामभिधानप्रकरणे व्रात्या जाता उच्यन्त इति॥ २३॥

**व्यभिचारेण वर्णानामवेद्यावेदनेन च॥**
**स्वकर्मणां च त्यागेन जायन्ते वर्णसंकराः॥ २४॥**

(१) **मेधातिथिः**। **व्यभिचारः** परस्त्रीगमनम्। तत्समानजातीयासु परकीयास्व-नुलोमप्रतिलोमासूढास्वनूढासु च स्वयम्। **अवेद्यावेदनम**विवाह्याविवाहः। 'अविवाह्याः' स्वसृनप्त्रादयस्तदयोन्यः। **स्वकर्मणां त्याग** उपनयनवेदग्रहणादीनाम्। क्षात्रवृत्त्यादयोऽपि पुत्रपौत्रान्वयिन एवमुक्त इति केचित्॥ २४॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। यथा ब्राह्मण्यां क्षत्रियस्य व्यभिचारात्सूत इति। अवेद्यावेदने-नाविवाह्यानामसवर्णानां सवर्णानामपि सगोत्रादीनां विवाहे मूर्धावसिक्तचाण्डालाद्याः। स्वकर्मणामुपनयनव्रतानां त्यागात् व्रात्यजाः। वर्णसंकराश्चातुर्वर्ण्यबाह्याः॥ २४॥

(३) **कुल्लूकः**। ब्राह्मणादिवर्णानामन्योन्यस्त्रीगमनेन सगोत्रादिविवाहेनोपनयनरूप-स्वकर्मत्यागेन वर्णसंकरो नाम जायते, अतो युक्तमस्मिन्प्रकरणे व्रात्यानामभिधानम्॥ २४॥

(४) **राघवानन्दः**। प्रकारान्तरेणापि वर्णसंकरो भवतीति संक्षिप्याह **व्यभिचारेणेति**। विहाय विन्नास्वपतिमाभिमुख्येन कामुकम्। चरतीति स्वतन्त्रा या सा स्मृता व्यभिचारिणीति व्यभिचारेण वर्णानामन्योन्यस्त्रीगमनेनेति दृष्टान्तार्थः। व्यतिषङ्गेनेति **मेधातिथिः**। नियुक्ता-तिरिक्तपरस्त्रीगमनेनेत्यर्थः। अवेद्याः सगोत्राः सवर्णा वा तासां विवाहेन। स्वकर्मणां संध्यादीनां त्यागेन स्वकालाप्राप्तोपनयनैर्व्रात्यानां संकरत्वरयोक्तत्वात्॥ २४॥

(५) **नन्दनः**। यदीदं संस्काराभावे जात्यन्तरत्वमुक्तं तदनुपपन्नमित्याशङ्क्य दृष्टान्तेन स्थापयति **व्यभिचारेण वर्णानामिति**। अवेद्या अविवाह्याः पुनर्भवादयस्तासां वेदनेन विवाहेन संकरो मातापित्रोरविद्याजातिप्राप्तिः। 'व्यभिचारेण वर्णाना'मिति प्रसिद्धव्यभिचारो दृष्टा-न्तार्थः॥ २४॥

(६) **रामचन्द्रः**। वर्णानां व्यभिचारेण च पुनः अवेद्यावेदनेन च अविवाह्याविवाहेन स्वकर्मणामुपनयनादीनां त्यागेन वर्णसंकरा जायन्ते॥ २४॥

(७) **मणिरामः**। व्यभिचारेण परस्परस्त्रीगमनेन। अवेद्यावेदनेन च सगोत्राद्य-विवाह्याविवाहेन च॥ २४॥

(८) **गोविन्दराजः**। **व्यभिचारेणेति**। ब्राह्मणादीनां वर्णानां इतरेतरस्त्रीगमने स्वगो-

त्राद्यविवाह्याविवाहेन उपनयनाख्यस्वकर्मत्यागेन वर्णसंकरो नाम इत्युत्पद्यते। अतो युक्तमित्यस्मिन्प्रकरणे व्रात्यजातानामभिधानम् ।। २४ ।।

(९) **भारुचिः**। यस्मात्-व्यभिचारो वर्णानां प्रतिलोमस्त्रीग्रहणेन मुख्यः। अनुलोमेऽपि मुख्यवर्णापेक्षयोच्यते। अवेद्यावेदनं पुनरेतज्जातावे(पि) कामचारी पुन(र्भूवा) दिस्त्रीपरिग्रहेण स्वकर्मणां च त्यागः उपनयनादिसंस्कारहानिरधिक्रुता। एवं च सति सवर्णसंस्कारहेतुप्रदर्शनार्थमिदं युक्ताभिधानं परिहारार्थं चैषाम् ।। २४ ।।

**संकीर्णयोनयो ये तु प्रतिलोमानुलोमजाः ।।**
**अन्योन्यव्यतिषक्ताश्च तान्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ।। २५ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **व्यतिषङ्गः** संबन्धः। इतरेतरमनुलोमानामनुलोमैः प्रतिलोमैश्चैवं प्रतिलोमानामन्यैः प्रतिलोमैरनुलोमैश्च। वक्ष्यमाणसंज्ञायै वचनम् ।। २५ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। य उक्ताः प्रतिलोमानुलोमजास्तेऽपि यदा अन्योन्यं संकीर्णैरेव व्यवतिष्ठन्ते व्यभिचरन्ति। व्यतिषङ्गजत्वाद्व्यतिषक्ता व्रात्याः। तत्र ये जायन्ते तान्वक्ष्यामीत्यर्थः ।। २५ ।।

(३) **कुल्लूकः**। ये संकीर्णयोनयः प्रतिलोमैरनुलोमैश्च परस्परसंबन्धाज्जायन्ते तान्विशेषेण वक्ष्यामि ।। २५ ।।

(४) **राघवानन्दः**। पुनश्च सूतादीनां चण्डालातिरिक्तपञ्चानामनुलोमजत्वाद्यर्थमाह **संकीर्णेति** त्रिभिः। अनुलोमजा इति दृष्टान्तार्थम्। अन्योन्यव्यतिषक्ताः अन्योन्यं परस्त्रीपुंभ्यः कामतो व्यतिषक्तेभ्यो जाताः ।। २५ ।।

(५) **नन्दनः**। एवं संकीर्णपितृमातृकाः प्रायशः प्रतिलोमानुलोमा उक्ताः, इदानीं संकीर्णपितृमातृकान्प्रतिलोमजानुलोमजान्वक्ष्यामीत्याह **संकीर्णयोनय इति**। संकोर्णयोनयः संकीर्णेभ्यो जाता अन्योन्यव्यतिषक्ताः प्रतिलोमानुलोमजैः संबद्धाः ।। २५ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। ये प्रतिलोमानुलोमजाः, प्रतिलोमजानाह सूतवैदेहचाण्डालाः अनुलोमजा अंबष्ठनिषादमाहिष्यो प्रकरणाः षट् अन्योन्यव्यतिषक्ताः प्रतिलोमानुलोमानां परस्परव्यभिचारयुक्ताः तान् ।। २५ ।।

(७) **मणिरामः**। अन्योन्यव्यतिषक्ताः परस्परसंबंधाज्जायमानाः ।। २५–२६ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **संकीर्णयोनय** इति। ये मिश्रयोनयः प्रतिलोमाभ्यः स्त्रीभ्यः प्रतिलोमैरनुलोमैश्च जायन्ते अनुलोमाभ्यश्चानुलोमैः प्रतिलोमैश्च जायन्ते। एवं परस्परसंबद्धान् तान् अशेषेण प्रवक्ष्यामि ।। २५ ।।

(९) **भारुचिः**। अन्योन्यव्यतिषक्तानां प्रतिलोमैरनुलोमैश्चैवमनुलोमा अपि विज्ञेयाः। वक्ष्यमाणार्थोपक्षेपतश्चित्तप्रणिधानार्थं यतस्तदर्थमयं पूर्वश्लोकोक्तानां प्रथमं...लोमानामपवाद उत्तरार्धः ।। २५ ।।

**सूतो वैदेहकश्चैव चण्डालश्च नराधमः ॥**
**मागधः क्षत्तृजातिश्च तथाऽऽयोगव एव च ॥ २६ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। उक्तलक्षणा एते प्रातिलोमा उत्तरार्थं पुनरुपन्यस्यन्ते ॥ २६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। सूतादयः प्रागुक्ताः ॥ २६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। एते षडुक्तलक्षणाः सूतादयः उत्तरार्थमनूद्यन्ते ॥ २६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। प्रतिलोमजादपि नराधमः शूद्रस्य ब्राह्मणीगमने महापातकित्वानूत्तस्या अपि तथात्वात्। चण्डालग्रहणं निवीतं मनुष्याणामिति। वदत्यतिरेकमुखेन स्तुत्यर्थः ॥ २६ ॥

(५) **नन्दनः**। तत्र प्रतिलोमजेभ्यः प्रसूतान्वक्तुं प्रतिलोमजानुक्तांस्तावदनुक्रामति **सूतो वैदेहकश्चैवेति**। सूतो विप्रायां क्षत्रियाज्जातः वैदेहकस्तस्यामेव वैश्यात् चण्डालतस्तस्यामेव शूद्रात् मागधः क्षत्रियायां वैश्यात् क्षत्ताजातिस्तस्यामेव शूद्रात् अयोगवो वैश्यायां शूद्राज्जात इति पूर्वमुक्तं हीत्यर्थः ॥ २६ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **सूत इति** द्वाभ्यामाह। ततः सूतः वैदेहकः चाण्डालाः नराधमा ज्ञेयाः मागधः क्षत्ता अयोगव एते षट् सदृशान्वर्णान् प्रतिलोमानुलोमयोनिषु जनयन्ति। प्रवरासु उत्तमासु चकारात् क्षत्रियपुत्रो मागधो ब्राह्मण्यां अपकृष्टासु योनिषु मातृजात्या मातृसमानजातीयाः ॥ २६–२७ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **सूत** इति। सूतादय उक्तलक्षणा उत्तरार्थमनूद्यम् ॥ २६ ॥

(९) **भारुचिः**। उत्तरविवक्षार्थमेषां पुनर्ग्रहणम्। तदिदमुच्यते ॥ २६ ॥

**एते षट् सदृशान्वर्णाञ्जनयन्ति स्वयोनिषु ॥**
**मातृजात्यां प्रसूयन्ते प्रवरासु च योनिषु ॥२७॥**

(१) **मेधातिथिः**। **एते** सूतादयः प्रतिलोमाः स्वयोनिषु **सदृशान् जनयन्ति**, तज्जातीयानित्यर्थः। तद्यथा–सूतः सूतायां सूतमेव जनयति। एवं चण्डालः चण्डालायाम्।

ये च **मातृजात्याः प्रसूयन्ते**ऽनुलोमा मातृजातीया ये पूर्वमुक्ता'स्ताननन्तरनाम्नः' (१०-१४) इति, तेऽपि **स्वयोनिषु** सदृशानेव जनयन्ति। यथाऽम्बष्ठोऽम्बष्ठायाम्।

तथा वैश्यायामात्मनो हीना वैश्याञ्जनयन्ति। मातृजातित्वस्योक्तत्वात्।

अन्ये पुनः पठन्ति 'मातृजातौ प्रसूयन्ते'। अर्थश्चायम्–स्वयोनिषु अम्बष्ठादौ मातृजातौ च वैश्यायां सदृशानेव जनयन्ति। यद्यपि शुद्धवैश्येभ्य उत्कृष्टा अम्बष्ठादयस्तथापि साम्यमुच्यते, वैश्यधर्म उभयेषामधिकारात्।

अनुलोमग्रहणं मातृजातिपदसामर्थ्याल्लभ्यते सत्यपि प्रकृतिप्रतिलोमप्रत्यवमर्शकत्वे **एत इति**।

प्रवरासु च योनिषु प्रतिलोमा गच्छन्तो जनयन्ति हीनतरमित्येवं ज्ञेयं, वक्ष्यमाण-पर्यालोचनया।

न हि अयोगवादिभिः स्वजातीयासु जनिता अयोगवादिव्यपदेशं लभन्ते। सदृश-ग्रहणं तु प्रातिलोम्यसामान्येन। हीनतरत्वं चावान्तरविशेषमनपेक्ष्य प्रयुक्तम्। तेनायमत्र वाक्यार्थः—'प्रतिलोमेभ्यः समानजातीयासूत्कृष्टजातीयासु च प्रतिलोमा एव भवन्ति' ॥२७॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। स्वयोनिषु सूतादिजातीयासु स्त्रीषु सदृशान् स्वसदृशधर्माणः। तथा मातृजात्यां सूतादिमातृसमजातीयायां ब्राह्मण्यादिरूपायाम्। तथा मातृजातिषु प्रवरा-सूत्तमासु यथा क्षत्रियापुत्रो मागधो ब्राह्मण्यामिति। स्वजातीयस्वमातृजातितदुत्कृष्टजाति-योगात् त्रिविधो व्यभिचारः॥ २७॥

(३) **कुल्लूकः**। एते पूर्वोक्ताः षट् प्रतिलोमजाः स्वयोनिषु सुतोत्पत्तिं कुर्वन्ति। यथा शूद्रेण वैश्यायां जात आयोगवः आयोगव्यामेव मातृजातौ वैश्यायां प्रवरासु क्षत्रिया-ब्राह्मणीयोनिषु चकारादपकृष्टायामपि शूद्रजातौ सर्वत्र सदृशान्वर्णाञ्जनयन्ति, सदृशत्वं च न पित्रपेक्षया किन्तु मातृजात्यादिषु चातुर्वर्ण्यं स्त्रीष्वेव पितृतोऽधिकगर्हितपुत्रोत्पत्तेर्वक्ष्यमाण-त्वात्तत्सदृशान्पितृतोऽधिकगर्हितान्स्वजातावपि जनयन्तीत्येतावदेवाप्राप्तत्वादनेन विधीयते। किन्तु जघन्यवर्णोत्तमवर्णस्त्रीषु जनितत्वात्क्रियादुष्टा आयोगवाद्याः प्रतिलोमजाः क्रिया-दुष्टाभ्यां च मातापितृभ्यां तुल्याभ्यामपि जनिते आयोगवादिपुत्रे ब्रह्महन्त्रनन्तरजनितो ब्रह्महन्तृमातापितृजनितवदधिकदुष्ट एव न्याय्यः शुद्धब्राह्मणादिजातीयेन शुद्धब्राह्मण्यादिसम-जातीयायां जनितः पितृतुल्य एवोचितो नतु क्रियादुष्टोभयजनितोऽपि॥ २७॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच एते षट् सूतादयः स्वयोनिषु ब्राह्मणीक्षत्रियावैश्यासु सदृशान् सजातीयान्। एतदेव निगमव्याजेन हेतून्प्रदर्शयन्नाह **मातृजात्यामिति**। प्रवरासु स्वयोनिषु तत्तन्मातृजात्यवच्छिन्नासु प्रसूयन्ते; यतः अत एव 'प्रतिलोमजास्तु कर्महीना' इति **गौतम**वचनम्। अत एव मातृवद्वर्णसंकर इत्यपि संगच्छते। यथा शूद्रात् वैश्यायामायोगव एवमायोगव्यामेव मातृजातौ वैश्यायां प्रवरायामायोगवः यं सुतं जनयेत्स सुतो वैश्यजात्यु-क्तसंस्कारार्हः। एवं शूद्रात्क्षत्रियाजः क्षत्ता क्षत्रियायां, क्षत्रजातौ यं जनयेत्स क्षत्रियसंस्कारार्हः। वैश्यात्क्षत्रियाजो मागधः, सच क्षत्रियायां यं जनयेत्सोऽपि क्षत्रियसंस्कारार्हः। एवं सूतवैदेह-योरपि। प्रवरास्विति विशेषणाच्चण्डालस्य न संस्कार इति **मेधातिथिः**। पितृतोऽधिक-गर्हितान्स्वजातावपि जनयन्तीत्येतावन्मात्रं विवक्षितमिति **कुल्लूकः**॥ २७॥

(५) **नन्दनः**। ततः किमित्यपेक्षायामाह **एते षडिति**। एते सूतादयः षट् सदृशा-न्सजातीयान्वर्णान् योनिषु सूतीवैदेहिकीचण्डालीप्रभृतिषु जनयन्ति, वर्णशब्दो मनुष्यावान्तर-जातिमात्रवचनः, मातृजात्यां स्वमातृजातिसदृशानेव जनयन्ति, सूतवैदेहकचण्डालानां मातृजातिर्ब्राह्मणजातिः मागधक्षत्तोर्मातृजातिः क्षत्रियजातिः आयोगवस्य मातृजाति-र्वैश्यजातिः तासु जातिषु सदृशानेव जनयन्तीत्यर्थः। किञ्चित्प्रवरासु च योनिष्वात्मनः प्रवरासु मातृजातिव्यतिरिक्तासु चातुर्वर्ण्यस्त्रीषु च सदृशानेव प्रसूयन्ते जनयन्ति। अनेन

श्लोकेनैतदुक्तं भवति–सूतः सूत्यां सूतमेव जनयति नान्यं, एवं मातृजात्यां च ब्राह्मण्यां सूतमेव तदितरासु क्षत्रियवैश्यस्त्रीषु च सूतमेव, एवं वैदेहकादयोऽपीति ।। २७ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। एते सूतादयः स्वयोनिष्वेव सदृशान् जनयन्ति। तद्यथा–आयोगव आयोगव्यामेव सदृशं जनयति नान्यस्याम्। तथेतरे क्षत्तादयः प्रतिलोमास्तावदेवम्। अनुलोमा मातृजातौ मास्तु स्वयोन्यां च सदृशान् जनयन्ति यथाम्बष्ठोऽम्बष्ठ्यां सदृशायामेव, वैश्यायां चैवात्मनो हीनायां वैश्यं जनयति। नान्यस्याम् एव। एवमितरेऽप्यनुलोमाः पारशवादयः यद्यपि चैतेषामम्बष्ठादीनां केवलवैश्यादिभ्यः उत्कर्षतो विशेषोऽस्ति, तथापीदं सादृश्यमुच्यते। येनोभयेषामप्येतेषां वैश्यादिधर्मान् प्रति विशेषो नास्ति। यत इदमुच्यते–स्वयोन्यां मातृजातौ च सदृशान् जनयति इति। तथा चोक्तं 'पुत्रा येऽनन्तरस्त्रीजाः क्रमेणोक्ता द्विजन्मनाम्। तानन्तरनाम्नस्तु मातृदोषान् प्रचक्षते' इति। आयोगवादयः प्रतिलोमजाता मातृजात्यां प्रसूयमा(नान्) प्रवरासु चेति धर्महीनतरान् जनयन्ति एवमानुलोम्या अप्यम्बष्ठादयो वेदितव्याः ।। २७ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **एत** इति। एते षट् सूतादयः प्रतिलोमाः स्वजातीयासु स्त्रीषु सूतान् सूतायां सूतमेव जनयति इत्येवं समानजातीयान् वर्णप्रभवत्वाद् वर्णान् जनयन्ति। अनुलोमाः पुनः मातृजातीयायां स्वजातीयायां च सदृशं जनयन्ति। तद्यथा–अम्बष्ठो वैश्यायां अम्बष्ठायां वा अम्बष्ठमेव जनयति। संकीर्णयोनयो ये तु प्रतिलोमानुलोमजा इत्यनुलोमानामपि प्रस्तुतत्वात् प्रतिलोमेभ्यश्च मातृजातीयायां सदृशजननासंभवात् द्वितीयार्धश्लोकोऽनुलोमविषयतया व्याख्यायते ।। २७ ।।

(९) **भारुचिः**। एते षट् पूर्वोक्ताः सूतादयः स्वयोनिषु सुतोत्पत्तिं कुर्वंति। यथा आयोग.... एवमायोगव मातृजात्यां वैश्यायां प्रवरासु च योनिषु क्षत्रियाब्राह्मणीयोनिषु.... निकृष्टयोनिषु शूद्रासु सर्वत्र सदृशान् वर्णान् जनयति। सदृशत्ववर्णापेक्षया किंतु मातृजात्या चातुर्वर्ण्यस्त्रीष्वेव पितृतोऽधिकनिंदितोत्पत्तेः ।। २७–२८ ।।

**यथा त्रयाणां वर्णानां द्वयोरात्माऽस्य जायते ।।**
**आनन्तर्यात्स्वयोन्यां तु तथा बाह्येष्वपि क्रमात् ।।२८ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **अस्य** ब्राह्मणस्य **त्रयाणां वर्णानामात्मा जायते। द्वयोर्वर्णयोः** क्षत्रियवैश्ययोर्द्विजत्वं जायते, तथा स्वयोनौ। एवं त्रयाणां वर्णानां ब्राह्मणो द्विजान् जनयति।

एवं बाह्येष्वपि प्रातिलोम्येन वैश्यक्षत्रियाभ्यां क्षत्रियब्राह्मणयोरात्मा द्विजत्वं भवति। सति च द्विजत्वे उपनयनं कर्तव्यम्। वक्ष्यति च 'एते षट् द्विजधर्माणः' इति। एतावांस्तु विशेषः–अनुलोमाज्जाता मातृजात्या मातृजातीया। स्तुतिमात्रमिदं वक्ष्यामः ।। २८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। आनन्तर्यादनन्तरवर्णे आत्मजातिसदृशजातिमूर्धावसिक्तादिः। स्वयोन्यां स्ववर्णे चात्मजातीय एव। तथा बाह्येष्वपि। तथा हि मूर्धावसिक्तान्मूर्धा-

वसिक्तायां तज्जातीय एव। तत एवावन्त्यामात्मसदृश इत्यादिः। पारशव्यां तु ततोऽपि हीनजातिरेवमनुलोमजानपेक्ष्य प्रतिलोमजानामतिहीनत्वात्तेषां प्रतिलोमजानां स्वजातीयायामनन्तरायां सदृशव्यवहितायां हीनतरमपत्यमिति ॥ २८ ॥

(३) **कुल्लूकः** । यथा त्रयाणां वर्णानां क्षत्रियवैश्यशूद्राणां मध्यात् द्वयोर्वर्णयोः क्षत्रियवैश्ययोर्गमने ब्राह्मणस्यानुलोम्यात् द्विज उत्पद्यते, सजातीयायां च द्विजो जायते; एवं बाह्येष्वपि क्षत्रियवैश्याभ्यां वैश्यक्षत्रियाभ्यां क्षत्रियाब्राह्मण्योर्जातिषूत्कर्षापक्रमो भवति। शूद्रजातप्रतिलोमापेक्षया द्विजाद्युत्पन्नप्रतिलोमप्राशस्त्यार्थमिदम् । **मेधातिथिस्तु** द्विजत्वप्रतिपादकमेतदेषां वचनमुपनयनार्थमित्याह – तन्न; 'प्रतिलोमजास्तु धर्महीना'इति **गौतमेन** संस्कारनिषेधात् ॥ २८ ॥

(४) **राघवानन्दः**। एतेषामुत्कृष्टत्वं सदृष्टान्तं निगमयति **यथेति**। त्रयाणां विप्रादीनां मध्ये यथास्य ब्राह्मणस्य स्वयोन्यामिवानुलोम्येन द्वयोः क्षत्रियावैश्ययोः आत्मा द्विज उत्पद्यते, एवं च बाह्येषु वैश्यक्षत्रियाभ्यां क्षत्रियाब्राह्मण्योरात्मा द्विज उत्पद्यते; एवं क्षत्रियवैश्ययोरपि। तेषु आयोगवादितिसृष्वपि ब्राह्मण्यादिषु ॥ २८ ॥

(५) **नन्दनः**। एतदेव स्थापयति **यथा त्रयाणां वर्णानामिति**। त्रयाणां ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानां आनन्तर्याऽनन्तरजातया स्वयोन्यां द्वयोरात्मा स्वस्ववर्णो यथा जायते तथा बाह्येष्वपि क्रमः प्रतिलोमानामपि तथा प्रकारः। एतदुक्तं भवति – यथा वैदेहकः स्वस्यां ब्राह्मण्यां च वैदेहकं आयोगवः स्वस्यां क्षत्रियायां चायोगवं क्षत्ता स्वस्यां चण्डाल्यां च क्षत्तारं जनयति॥२८॥

(६) **रामचन्द्रः**। यथेति दृष्टान्तः। यथा त्रयाणां क्षत्रियादीनां स्वयोन्यामानन्तर्यात् द्वयोः क्षत्रियवैश्ययोरात्मैव जायते। तद्यथा–क्षत्रियात्क्षत्रियायां वैश्याद्वैश्यायां उत्तमासु योनिषु 'आत्मैव जायते पुत्र'इति श्रुतेः। शूद्रायां इति तथा बाह्येषु आयोगवादिषु प्रतिलोमजेषु क्रमः ॥ २८ ॥

(७) **मणिरामः**। वर्णानां क्षत्रियवैश्यशूद्राणां मध्यात् द्वयोः क्षत्रियवैश्ययोः कन्ययोः अस्य ब्राह्मणस्य आनंतर्यात् आनुलोम्यात् आत्मा द्विजः जायते, स्वयोन्यां तु सजातीयायां च द्विजो जायते। तथा बाह्येष्वपि प्रतिलोमेष्वपि क्षत्रियात् ब्राह्मण्यां वैश्यात् क्षत्रियायां द्विजो जायते इत्यर्थः। शूद्रोत्पन्नप्रतिलोमापेक्षया द्विजात्युत्पन्नप्रतिलोमप्राशस्त्यार्थमिदमुक्तं ॥ २८ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **यथेति। आनन्तर्यात् स्वयोन्यां च तथा बाह्येष्वपि क्रमः।** यथा त्रयाणां वर्णानां क्षत्रियवैश्यशूद्राणां मध्यात् द्वयोर्वर्णयोः क्षत्रियवैश्ययोर्गमने ब्राह्मणस्य आनुलोम्याद् द्विज उत्पद्यते स्वजातीयायां च द्विजो जायते। एवं च बाह्येष्वपि वैश्यक्षत्रियाभ्यां क्षत्रियाब्राह्मण्योर्जाते व्युत्क्रमो भवतीति। शूद्रजातिप्रतिलोमापेक्षया द्विजात्युत्पन्नप्रतिलोमस्तुतिः। यत् तु 'द्विजत्वप्रतिपादकं एतदेषां वचनं उपनयनार्थं इत्याहुः–तदसत्; 'प्रतिलोमास्तु धर्महीना' इति **गौतमीये** प्रतिलोमानां संस्कारनिषेधात् ॥ २८ ॥

(९) **भारुचिः**। यथा ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यां जनयितृभ्यां क्षत्रियवैश्ययोरात्मास्य द्विजत्वं जायते। जातस्तन्नधिकारसामर्थ्यात् द्विजो भवति। एवमेव बाह्येष्वपि प्रातिलोम्येनैव वर्तमानेषु

द्वाभ्यामेव वैश्यक्षत्रियाभ्यां क्षत्रि(य)ब्राह्मण्योरात्मा द्विजत्वं भवति। सति च द्विजत्वे उपनयनादेः संस्कारस्य...तिषेधं वक्ष्यति षडेते द्विजधर्माणो भवन्ति इति। एतावांस्तु विशेषः – यथैवानुलोमजान्मातृदोषान्मातृहान्यां मातृजातीयाः, एवं प्रतिलोमजाताः पितृहान्या न पितृजातीयाः। अथ–प्रातिलोम्येन क्षत्रियब्राह्मण्योर्ये मागधसूतौ तयोरनुलोमजाताभ्यां सामान्यापादानं स्तुत्यर्थम्, स्तुतिश्च व्यवहारार्था। अथवा चण्डालादिप्रतिलोमपर्युदासार्था स्तुतिः॥ २८॥

**ते चापि बाह्यान्सुबहूंस्ततोऽप्यधिकदूषितान्॥**
**परस्परस्य दारेषु जनयन्ति विगर्हितान्॥२९॥**

(१) **मेधातिथिः**। **ते चाप्यायोगवादयः** षट् **बाह्यान् सुबहून् परस्परदारेषु जनयन्ति**। तद्यथा...आयोगवः क्षत्तृजायायां क्षत्ताऽऽयोगव्याम्। परस्परमात्मापेक्षया गर्हितान् जनयन्ति। ततोऽपि बाह्यतः चण्डाल्याम्। एवं सर्वत्र॥ २९॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। तदेतदाह **ततोऽप्यधिकदूषितानिति**॥ २९॥

(३) **कुल्लूकः**। ते चायोगवादयः षट् परस्परजातीयासु भार्यासु सुबहूनानुलोम्येऽप्यधिकदुष्टान्सत्क्रियाबहिर्भूताञ्जनयन्ति। तद्यथा–आयोगवः क्षत्तृजायायामात्मनो हीनतरं जनयति, तथा क्षत्ताप्यायोगव्यामात्मनो हीनतरमुत्पादयति; एवमन्येष्वपि प्रतिलोमेषु द्रष्टव्यं॥ २९॥

(४) **राघवानन्दः**। तेभ्योऽपि संकरजातीन्वक्तुमाह **त इति**। आयोगवादयस्ते अधिकदूषितान् पूर्वेभ्योऽपि निकृष्टान्॥ २९॥

(५) **नन्दनः**। अनन्तरासु जातानां पितृवर्णत्वमपि पक्षान्तरमिति **ते चापि बाह्या-नितिं**। ते सूतादिभ्यः प्रसूता अपि ततोऽभ्यधिकदूषितास्त्वेभ्यो हीनतमानत एव विगर्हितान्सुबहून्परस्परस्य दारेषु जनयन्ति स्वयोनिषु स्वानेव जनयन्ति परस्परस्य दारेष्विव॥ २९॥

(६) **रामचन्द्रः**। ते आयोगवादयः बाह्यान् वर्णबाह्यान् विगर्हितान् परस्परदारेषु जनयन्ति॥ २९॥

(७) **मणिरामः**। ते चापि बाह्या आयोगवादयः षट् परस्परस्य दारेषु सुबहून् आनुलोम्येष्वपि अधिक-दूषितान् दुष्टान् विगर्हितान् सत्क्रियाबहिर्भूतान् सुतान् जनयंति। तद्यथा–आयोगवः क्षत्तायां स्वतो हीनतरं जनयति तथा क्षत्ता आयोगव्यां, आत्महीनतरमुत्पादयति। एवमन्येष्वपि प्रतिलोमेषु ज्ञेयं॥ २९॥

(८) **गोविन्दराजः**। **त** इति। तेऽप्यायोगवादयः षट् परस्परजातीयासु भार्यासु प्रतिलोमान् सुष्ठु बहून् आत्मनोऽधिकदुष्टान् निन्दितान् जनयन्ति। तत् तथाऽऽयोगवः क्षत्र्यां आत्मनो हीनतरं जनयति, क्षत्ता आयोगव्यां आत्मनो हीनतरं उत्पादयति, इत्येवं अन्येष्वपि प्रतिलोमेषु द्रष्टव्यम्॥ २९॥

(९) **भारुचिः**। ते चायोगवादयः षडपि बाह्यान् सुबहून् परस्परस्य दारेषु। तद्यथा–आयोगवः क्षत्र्यां क्षत्तायोगवाभ्यामित्येवं जनयतस्ततोऽभ्यधिकदूषिताननन्तरान् जनयन्ति, तद्यथा–आयोगवः क्षत्र्यामात्मनो बाह्यहीनतरं जनयति। ततोऽपि बाह्यतरस्यां तथा क्षत्तायोगव्यामात्मनो बाह्यतरं जनयति। ततोऽपि चण्डालाभ्याम्; एवं चण्डालः क्षत्र्यामात्मनो बाह्यतरमायोगव्याम्। अनेनैव न्यायेन मागधो वैदेह्यात्मनो बाह्यतरं जनय(ति)। ततोऽपि बाह्यतरं सूतायाम्। तथा वैदेहको मागध्याम्...बाह्यतरं जनयति, ततो बाह्यतरं सूतायाम्' तथा च सूतमात्मनो बाह्यतरं मागध्यां ततोऽपि वैदेह्याम्, एवमनेन क्रमेण पुनः पुनरभ्यावृत्ति जनयन्तः परस्परदारेषु सुबहूननन्तांश्च दशविधान् जनयन्ति ।। २९ ।।

**यथैव शूद्रो ब्राह्मण्यां बाह्यं जन्तुं प्रसूयते ।।**
**तथा बाह्यतरं बाह्यश्चातुर्वर्ण्ये प्रसूयते ।।३०।।**

(१) **मेधातिथिः**। एवं परस्परगमने स्त्रीप्रतिलोमानां पूर्वेण बाह्यतरोत्पत्तिर्वर्णिता। इदानीं चातुर्वर्ण्यं कथ्यते। सूयतिर्जनिनात्यन्तसमानार्थोऽत्र प्रकरणे प्रयुक्तः। **प्रसूयते** जनयतीत्यर्थः। तदुत्तरश्लोकेन निर्दिश्यते ।। ३० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। तथा बाह्यतरं चाण्डालतोऽप्यधमम्। बाह्यात् चाण्डालात्। चातुर्वर्ण्ये चातुर्वर्ण्या स्त्री प्रसूयते ।। ३० ।।

(३) **कुल्लूकः**। यथा ब्राह्मण्यां शूद्रोऽपकृष्टं चाण्डालाख्यं प्राणिनं प्रसूयते जनयत्येवं बाह्यश्चाण्डालादिवर्णचतुष्टये चाण्डालादिभ्योऽप्यपकृष्टं पुत्रं प्रसूयते ।। ३० ।।

(४) **राघवानन्दः**। तत्र दृष्टान्तमाह **यथेति**। बाह्यं बहिरेव वर्तमानं जन्तुं जन्ममरणमात्रशालिनम्। बाह्यश्चाण्डालादिः धर्मादावनधिकारित्वात् ततोऽपि भिन्नं संकरान्तरम्। चातुर्वर्ण्ये चातुर्वर्ण्यस्त्रीषु ।। ३० ।।

(५) **नन्दनः**। वर्णजातानां सूतादिप्रतिलोमजानां च परस्परसंकर उक्तः। प्रतिलोमजप्रसूतानां जनकेभ्यः प्रतिलोमजेभ्यो न्यूनतमत्वमुदाहरणविशेषेण व्यनक्ति **यथैव शूद्रो ब्राह्मण्यामिति**। बाह्यजन्तुं चण्डालं बाह्यः सूतादिः चातुर्वर्ण्ये चतुर्वर्णस्त्रीषु ।। ३० ।।

(६) **रामचन्द्रः**। यथैव शूद्रो ब्राह्मण्यां बाह्यं जन्तुं निकृष्टं चाण्डालं प्रसूयते तथा बाह्यः आयोगवः बाह्यतरं अत्यन्तनिकृष्टं चतुर्वर्णेषु प्रसूयते ।। ३० ।।

(७) **मणिरामः**। बाह्यजन्तुं चाण्डालाख्यं प्राणिनं। तथा बाह्यः चण्डालादिः चातुर्वर्ण्येषु ब्राह्मणादिषु बाह्यतरं स्वतो व्यपकृष्टतरं पुत्रं प्रसूयते ।। ३० ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **यथेति**। **तथा बाह्यतरं बाह्याद् बाह्यो वर्णः प्रसूयते**। यथा शूद्रो ब्राह्मण्यां निकृष्टं चाण्डालाख्यं प्राणिनं जनयति; एवं बाह्यात् चाण्डालादेः ब्राह्मणादिषु चतुर्ष्वपि वर्णेषु चाण्डालादिभ्यो निकृष्टतरं जायते ।। ३० ।।

(९) **भारुचिः**। एवं च परस्परस्य दारेषु व्याख्याय चातुर्वर्ण्ये त्वाचष्टे। एवमेते त्रिंशत् भवंति। बाह्यहीनशकाभ्यां षट् प्रतिलोमजा उक्ता अत्र बाह्याः चांडालक्षत्तायोगववैदेहमागध-

सूताः षट् प्रातिलोम्येन स्त्रीषु बाह्यतरान् पंचदश पुत्रान् जनयंति। यथा चांडालं क्षत्रादिषु पंचस्त्रीषु क्षत्ता आयोगव्यादिषु चतसृषु आयोगवो वैदेह्यादिषु त्रिषु वैदेहो मागधसूत्योर्द्वयोः मागधसूत्यामेवं पंचदश जनयंति। पुनःशब्दात् हीनाः सूतादयश्चांडालांताः षट् आनुलोम्येनापि स्वापेक्षया हीनान् पंचदश पुत्रान् जनयंति। तद्यथा–सूतो मागध्यादिषु पंचसु मागधो वैदेह्यादिषु चतसृषु वैदेहो आयोगव्यादिषु तिसृषु आयोगवः क्षत्ताचांडालयोः क्षत्ताचांडालायामेव पंचदश जनयति। इत्थं षष्टिसंकरजातयो जाताः॥ ३०॥

**प्रतिकूलं वर्तमाना बाह्या बाह्यतरान्पुनः॥**
**हीना हीनान्प्रसूयन्ते वर्णान्पञ्चदशैव तु॥३१॥**

(१) **मेधातिथिः**। एकैकस्य तु वर्णस्य संकीर्णयोनयो भवन्ति। कस्यचिदनुलोमाः, कस्यचित्प्रतिलोमाः, कस्यचिदनुलोमप्रतिलोमाः। ब्राह्मणस्यानुलोमाः, शूद्रस्य प्रतिलोमा एव। क्षत्रियवैश्ययोरनुलोमाः प्रतिलोमाः। क्षत्रियस्य द्वावनुलोमौ, एकः प्रतिलोमः। वैश्यस्येकोऽनुलोमो द्वौ प्रतिलोमौ। एवमेते द्वादशानुलोमाः प्रतिलोमाः। एतेषामेकैकस्य चतुर्षु गच्छतश्चत्वारो भेदा भवन्ति। ते च केचित् हीनाः केचिदहीनाः। **बाह्यतरास्तु** सर्व एव। बाह्यतरत्वं मातापितृजातेर्विप्रकर्षः, कर्मभ्यो हीनत्वात्। तदेवमुदाहरणैः स्फुटीक्रियते। प्रतिलोमांस्तावद् गृहीत्वा वक्ष्यामः। आयोगवो वैश्यायां शूद्राज्जातः शूद्रायां वैश्यायां क्षत्रियायां ब्राह्मण्यां चतुरो जनयति। सोऽयमात्मना सह पंचधाऽऽयोगवः। एवं क्षत्तृचण्डालावपि। एवं शूद्रास्त्रयः पंचकाः पंचदशधा भवन्ति।

एवं वैश्यप्रभवौ द्वौ प्रतिलोमौ क्षत्रियायां मागधो ब्राह्मण्यां वैदेहकः। शूद्रायामनुलोमः। तत्र यः शूद्रायां जातः स यदा चातुर्वर्ण्यं जनयति तदैष एव प्रकारः। स यदा शूद्रां गच्छति तदा हीनतरो वर्णो जायते तदपेक्षया। एवं वैश्यां गच्छन्हीनतरं जनयति।

एवं क्षत्रियायां ब्राह्मण्यां च केवलशूद्राज्जाता उत्कृष्टा। एवमित्यपेक्षावशाद्धीनांश्चाहीनांश्च। एवं क्षत्रिये ब्राह्मणे च द्रष्टव्यम्। ब्राह्मणस्य त्वयं विशेषः। अनुलोमा एव तस्य भवन्ति।

एवं चतुर्वर्णानां प्रत्येकं पंचदशधा भेदाः षष्टिः संपद्यन्ते, मुख्याश्चत्वारो वर्णाः सा चतुःषष्टिर्भवति। परस्परसंपर्कात्तेषामन्येऽनन्तभेदा भवन्ति। तदुक्तम् "ते चापि बाह्यान्सुबहून्" (१०-२९) इति।

**प्रतिकूलं** शास्त्रव्यतिक्रमेण। **वर्तमाना** मिथुनीभवन्तः। **हीनाहीना**नित्येकं पदम्। अथवा हीनाः सन्तोऽहीनान्**प्रसूयन्ते** जनयन्तीत्यर्थः। **वर्णान्पंचदशैवेति** 'नास्ति तु पंचम' (१०-४) इति पंचमस्य वर्णाभावात्पंचदशसुवर्णत्वमुपचाराद्द्रष्टव्यम्॥ ३१॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** एतत्प्रपञ्चयति **प्रतिकूलमिति**। बाह्या वर्णबाह्यास्तादृशानेव तथा हीना अत्यधमा हीनानत्यधमानेव प्रसूयन्ते। शूद्रात् ब्राह्मण्यादिषु चण्डालक्षत्रायोगवाख्यास्त्रयो हीना अधमा बाह्यवर्णा व्रात्यश्च प्रतिकूलं प्रतिलोमं वर्तमानाः शूद्रादिस्त्रीषु चतसृषु हीनान्नवान्यान्प्रसूयन्त इति प्रत्येकं चाण्डालादिभ्यश्चत्वारश्चत्वार इति

तथा द्वादश। तथा स्वजातीयासु त्रीनिति पञ्चदश बाह्यान् जनयन्ति। वर्णान्वर्णरूपतया न वस्तुतस्तादृशान् ॥ ३१ ॥

(३) **कुल्लूकः**। एतदेव विस्तारयति **प्रतिकूलमिति**। अत्र **मेधातिथि-गोविन्दराज-**योर्व्याख्यानं चातुर्वर्ण्यबाह्यश्चण्डालक्षत्तायोगवाः शूद्रप्रभवास्त्रयश्चातुर्वर्ण्ये गच्छन्त आत्मनो हीनतरान्परस्परापेक्षयापकृष्टोत्कृष्टवर्णप्रभवत्वात्पञ्चदशवर्णान्संपादयन्ति। तद्यथा—चण्डालः शूद्रायामात्मनो हीनतरं वैश्याक्षत्रियाब्राह्मणीजातेभ्य उत्कृष्टं जनयति। एवं वैश्यायां ततोऽप्यपसदं क्षत्रियायां ब्राह्मणीजातादुत्कृष्टं जनयति। ततोऽपसदं, क्षत्रियायां ब्राह्मणीजाता-दुत्कृष्टं, ततोऽपि हीनं ब्राह्मण्यां जनयति। एवं क्षत्तायोगवावपि चातुर्वर्ण्ये चतुरश्चतुरो जनयतः, इत्येते शूद्रप्रभवचण्डालक्षत्तायोगवेभ्यः चातुर्वर्ण्ये द्वादशप्रभेदा उत्पद्यन्ते। आत्मना च चण्डालक्षत्तायोगवास्त्रय इत्येवं शूद्रप्रभवाः पञ्चदश उत्पद्यन्ते। एवं वैश्यक्षत्रियब्राह्मणप्रभवाः प्रत्येकं पञ्चदश संभवन्ति, एवं षष्टिश्चातुर्वर्ण्येन सह चतुःषष्टिप्रभेदा भवन्ति। ते तु परस्परगमनेन नानावर्णाञ्जनयन्तीति—नैतन्मनोहरं; पूर्वश्लोके षण्णां प्रति-लोमजानां प्रकृततत्त्वात्तद्विस्तारकथनत्वाच्चास्य। अत्रापि श्लोके 'प्रतिकूलं वर्तमाना' इत्यु-पादानात्प्रतिलोमजमात्रविषयोऽयं श्लोको नानुलोमजविषयः। तथा च वैश्यक्षत्रियब्राह्मण-प्रभवाश्च प्रत्येकं पञ्चदश संभवन्त्येवं षष्टिरिति न संगच्छते। न च संभवमात्रेणैवेयं षष्टि-रुक्ता न दुष्टतया, शूद्रप्रभवायोगवक्षत्तृचण्डाला एव चातुर्वर्ण्यसंतानोपेताः पञ्चदश गर्हिता इति वाच्यं। यतो वैश्यक्षत्रियाभ्यामपि प्रतिलोमत उत्पादितानां त्रयाणां हीनत्वात्तैरपि चातुर्वर्ण्ये जनितानां गर्हितत्वस्य संभवात् 'तथा बाह्यतरं बाह्यश्चातुर्वर्ण्ये प्रसूयत' (१०।३०) इति मनुनैवानन्तरं स्फुटमुक्तत्वात्। युवाभ्यामपि तथैव व्याख्यातत्वाच्चातुर्वर्ण्येन सह चतुःषष्टिरिति सर्वथैवाप्रकृतम्। नहि संकीर्णप्रकरणे शुद्धचातुर्वर्ण्यगणनोचिता। किंच 'वर्णान्पञ्चदश प्रसूयन्त' इति श्रूयमाणद्वादशजनानुक्त्वा ते चात्मना चण्डालक्षत्तायोगवास्त्रय इत्येवं शूद्रप्रभवाः पञ्चदशेति न युक्तम्। अपि चात्मना सह पञ्चदश संपादयन्तीति न संगच्छते, असंपाद्यत्वादात्मनः पञ्चदश संपद्यन्त इति च व्याख्यानेऽध्याहार एव दोषः; तस्मादेवं व्याख्यायते—प्रतिकूलं वर्तमानाः प्रतिलोमजाः बाह्याः, द्विजप्रतिलोमजेभ्यो निकृष्ट-त्वात्। शूद्रप्रभवायोगवक्षत्तृचण्डालास्त्रयः पूर्वश्लोकादनुवर्तमाने चातुर्वर्ण्ये स्वजातौ 'एते षट्सदृशा'नित्यत्र (१०।२७) सजात्युत्पन्नस्य पितृतो गर्हितत्वाभिधानात् आत्मापेक्षया बाह्या-तरान्प्रत्येकं पञ्चदश पुत्राञ्जनयन्ति। तद्यथा—आयोगवश्चातुर्वर्ण्यस्त्रीषु चायोगव्यामात्मनो निकृष्टान्पञ्च पुत्राञ्जनयति। एवं क्षत्तृचाण्डालावपि प्रत्येकं पञ्च पुत्राञ्जनयतः, इत्थं बाह्यास्त्रयः पञ्चदश पुत्राञ्जनयन्ति। तथानुलोमजेभ्यो हीना वैश्यक्षत्रियप्रभवा मागध-वैदेहसूता आत्मापेक्षया हीनान्पूर्ववच्चातुर्वर्ण्यस्त्रीषु संजातौ प्रत्येकं पञ्च पुत्राञ्जनयन्तो हीना अपि त्रयः पञ्चदशैव पुत्राञ्जनयन्ति। एवं त्रिंशदेते भवन्ति। अथवा बाह्यशब्दो हीनशब्दश्च षडेव प्रतिलोमजानाह। अत्र बाह्याश्चाण्डालक्षत्तायोगववैदेहमागधसूताः षट् यथोत्तरमु-त्कर्षात्प्रातिलोम्येन स्त्रीषु वर्तमाना बाह्यतरान्पञ्चदशैव पुत्राञ्जनयन्ति। तद्यथा—चाण्डालाः क्षत्रियादिषु पञ्चसु स्त्रीषु, क्षत्तायोगव्यादिषु चतसृषु, आयोगवो वैदेह्यादितिसृषु, वैदेहो

मागधीसूत्योः, मागधः सूत्यां, सूतस्तु प्रतिलोमाभावात्प्रातिलोम्येन पञ्चदशैव पुत्रान्जनयति। पुनरिति निर्देशाद्धीनाः सूतादयश्चाण्डालान्ताः षडचथोत्तरमपकर्षात् आनुलोम्येनापि प्रतिलोमोक्तरीत्या स्वापेक्षया हीनान्पञ्चदशैव पुत्रान्जनयन्त्येवं त्रिंशदेते भवन्ति ।। ३१ ।।

(४) **राघवानन्दः**। ते बाह्याः कति इत्यपेक्षां पूरयति **प्रेति**। प्रतिकूलं प्रातिलोम्यम् बाह्याः सूतादयः षडेव हीनाः स्वयं हीनान् नव बाह्यतरान्। जनयन्तीति वर्णान् पञ्चदशैतेषु वर्णपदमुपचारात् ।। ३१ ।।

(५) **नन्दनः**। प्रतिकूलं वर्तमाना असजातीयस्त्रीषु वर्तमानाः। हीना अनुलोमजेभ्योऽपकृष्टाः। बाह्याः प्रतिलोमजाः षट् सूतादयः हीनानात्मनोऽपकृष्टान् बाह्यतरान्बाह्यतरनाम्नः प्रसूयन्ते वर्णाः पञ्चदशैव ते ते बाह्यान्तरवर्णाः संकरजातयः प्रत्येकं सूतादिभिरुत्पादिताः पञ्चदशैव नाधिकाः असजातीयानां जनयितॄणां पञ्चदशत्वात्तत्प्रसूतानां वर्णानां पञ्चदशत्वं ब्राह्मणप्रभृतयश्चतस्रः अनुलोमजास्त्रयः षट् प्रतिलोमजाश्च। एवं षोडशजातिषु स्त्रीषूत्पादिताः सजातीयाः पञ्चदशैवेति सूतादयस्तावदासु षोडश स्त्रीषु स्वस्त्रीमन्तरेणासु पञ्चदशसु पञ्चदशवर्णाञ्जनयन्ति, एवं वैदेहकादयोऽपि प्रत्येकमिति ।। ३१ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। प्रतिकूलं वर्तमानात् आनुलोम्येन वर्तमानान् बाह्यान्तरान्पुनः प्रसूयन्ते। हीना हीनान्प्रसूयन्ते वर्णान् वर्णभवत्वात्। वर्णान् पञ्चदशैव तु द्विजात्युत्पन्नशूद्रपुरुषजातानां त्रयाणां चातुर्वर्ण्यसंबन्धे द्वादश रूपतश्च त्रय इति ।। ३१ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। एतदेव प्रपञ्चयति **प्रतिकूलमिति**। चातुर्वर्ण्यबाह्याः चण्डालाः क्षत्तायोगवाः शूद्रप्रभवाः त्रयः चातुर्वर्ण्ये गच्छन्त आत्मनो हीनतरान् परस्परापेक्षयोत्कृष्टान् आत्मना सह पञ्चदशवर्णप्रभवत्वाद् वर्णान् संपादयन्ति। तद्यथा– चण्डालः शूद्रायां आत्मनो हीनतरं वैश्याक्षत्रियाब्राह्मणीजातेभ्यः उत्कृष्टं जनयति। ततोऽप्यपसदं क्षत्रियायां ब्राह्मणीजाताद् उत्कृष्टं जनयति। ततोऽपि हीनं ब्राह्मण्यां जनयति। एवं क्षत्तायोगवावपि चातुर्वर्ण्ये च चतुरश्चतुरो जनयेते। इत्येते शूद्रप्रसवेभ्यः चण्डालक्षत्तायोगवेभ्यः (अ. २) द्वादशप्रभेदा उत्पद्यन्ते। आत्मना च चाण्डालक्षत्तायोगवास्त्रयः इत्येवं शूद्रप्रभवाः पञ्चदश (अ. ४) क्षत्रियब्राह्मणप्रभवाश्च पञ्चदश भवन्ति। एवं षष्टिः चातुर्वर्ण्येन सह चतुःषष्टिस्पष्टप्रभेदा भवन्ति। ते तु परस्परस्य गमनेन अनन्तान् जनयन्ति ।। ३१ ।।

(९) **भारुचिः**। तदेव विस्तारयति **प्रतिकूलमिति**। प्रतिकूलवर्तमानाः प्रतिलोमजाः। बाह्याः आयोगवक्षत्ताचांडालास्त्रयः। चातुर्वर्ण्ये स्वजातौ च बाह्यतरान् स्वाऽपेक्षया अतिनिंदितान् प्रत्येकं पंचदश पुत्रान् जनयंति। तद्यथा आयोगवो ब्राह्मण्यादिषु चतुर्षु आयोगव्यां च पंच पुत्रानुत्पादयति। एवं क्षत्ता चांडालश्च पंच पंच उत्पादयतः। इत्थं बाह्यास्त्रयः पंचदश पुत्रानुत्पादयंति। तथा क्षत्रियवैश्याभ्यो त्रयः प्रतिलोमजाः मागधवैदेहसूताः अनुलोमजेभ्यो हीना आत्मापेक्षया हीनान् पूर्वोक्तरीत्या पंच पंच पुत्रान् उत्पादयंति, तेऽपि मिलिताः पंचदशाः; एवमेते त्रिंशत् भवंति। वाह्यहीनशकाभ्यां षट् प्रतिलोमजाः उक्ताः, अत्र बाह्याः चांडालक्षत्तायोगववैदेहमागधसूताः षट्, प्रातिलोम्येन स्त्रीषु बाह्यतरान् पञ्चदश पुत्रान् जनयंति। यथा चांडालं क्षत्रादिषु पंच स्त्रीषु, क्षत्ता आयोगव्यादिषु चतसृषु, आयोगवो वैदेह्यादिषु त्रिषु,

वैदेहो मागध्यसूत्योर्द्वयोः, मागध्यसूत्यामेवं पंचदश जनयंति। पुनःशब्दात् हीनाः सूतादयश्चांडालांताः षट् आनुलोम्येनापि स्वापेक्षया हीनान् पंचदश पुत्रान् जनयंति। तद्यथा–सूतो मागध्यादिषु पंचसु मागध्यो वैदेहादिषु चतसृषु, वैदेहो आयोगव्यादिषु तिसृषु, आयोगवः क्षत्ताचांडालयोः क्षत्ताचांडालायामेव पंचदश जनयति। इत्थं षष्टि संकरजातयो जाताः।

तदिदानीमुच्यते **प्रतिकूलमिति**। एत एव षट् चातुर्वर्ण्ये प्रसूयमाना आत्मनो बाह्यतरान् जनयन्ति। तद्यथा–चण्डालश्शूद्रायामात्मनो हीनतरं जनयति, ततोऽपि बाह्यतरं वैश्यायां ततोऽपि क्षत्र्यां ततोऽपि ब्राह्मण्याम्। एवमेव क्षत्ता चतुर्षु वर्णेषु चत्वारो जनयन् परस्परमात्मनो बाह्यतरं जनयति। तथायोगवश्चतुर्षु वर्णेषु एवमेवा...नवतरं जनयति। एते शूद्रप्रभवेभ्यश्चण्डालक्षत्तायोगवेभ्यश्चतुर्षु वर्णेषु द्वादश वर्णभेदा जायन्ते। आत्मनश्च त्रयश्चण्डा(लाः) क्षत्तायोगव...शूद्रप्रभवाः प्रतिलोमेन पञ्चदश वर्णभेदा भवन्ति। एते च शूद्रप्रभवाः पञ्चदश वर्णाः पुनः पुनश्चातुर्वर्ण्ये बाह्यतरान्तरकल्पान् जनयन्ति। अथ वैश्यप्रभवाः प्रतिलोमाः पञ्चदशवर्णाः...उच्यन्ते। वैश्यस्य द्वौ प्रतिलोमौ, एकस्त्वनुलोमजः मागधवैदेहकौ क्षत्रियायां ब्राह्मण्यां च। शूद्रायां त्वस्यानुलोमजः। एतेषां वैश्येन शूद्रायां जातो यदा चातुर्वर्ण्ये प्रसूयते सदा शूद्रमान्मनोर्बाह्यतरं शूद्रं जनयति। ततोऽपि हीनतरवैश्यायामायोगवः ततोऽपि हीनतरं क्षत्रियायां क्षत्तारं, तस्मादपि हीनतरं ब्राह्मण्यां चण्डालः। एते तु पूर्वेभ्यः केवलशूद्रप्रभवेभ्यः उत्कृष्टतरा विज्ञेयाः। एवं मागधः शूद्रायां जनयन् केवलवैश्यजाताच्छूद्राद्धीनतरं जनयति। तथा वैश्यायां केवलवैश्यजाताद्धीनतरं जनयति। एवं क्षत्रियायामात्मनो हीनतरं मागधं जनयति। तथा ब्राह्मण्यां केवलवैश्यजाताद्वैदेहकाद्धीनतरं जनयति। तदेवं मागधाश्चातुर्वर्ण्ये चतुरो जनयन्ति। एवं वैदेहकस्य वक्ष्यामः। वैदेहकः शूद्रायां जनयन् केवलवैश्यजाताद्धीनतरं जनयति। एवं वैश्यायां क्षत्रियायां (ब्राह्मण्यां) च केवलवैश्यजातेभ्यो मागधजातेभ्यश्च हीनतरं जनयति। एवं वैदेहकोऽपि चातुर्वर्ण्ये (चतुरो) जनयति। एवमेतेभ्यो वैश्यप्रभवेभ्यस्त्रिभ्यश्चातुर्वर्ण्ये आत्मनश्च त्रय इति। एवं वैश्यप्रभवा अपि पञ्चदश वर्णा वेदितव्याः। अथ क्षत्रियस्य वैश्यायां शूद्रायां ब्राह्मण्यां प्रतिलोमजः क्षत्रियेण जातः शूद्रायां चातुर्वर्ण्ये प्रसूयमानः उग्रनामा शूद्रायामात्मनो हीनतरं जनयति। वैश्यजातात्तु शूद्रादुत्कर्ष...ब्राह्मण्यां चालोपक्षत्तृचण्डालानुत्तरोत्तरं हीनान् जनयति। एते तु वैश्यप्रभवेभ्यः आयोगवादिभ्य उत्कृष्टतरा वेदितव्याः। एवमेत उग्रपुत्राश्चत्वारः। क्षत्रियेण...कादुत्कृष्टतरं जनयति। एते क्षत्रियायां तु। तथा प्रतिलोमजाः क्षत्रियेण ब्राह्मण्यां जातस्सूतनामा। चातुर्वर्ण्ये प्रसूयमानश्शूद्रायामात्मनो हीनतरां जनयति। मागधवैदेहकशूद्रेभ्यस्सूतोत्कृष्टम्। एवं वैश्यायां क्षत्रियायां ब्राह्मण्यां चात्मनो हीनतरं मागधवैदेहकजातेभ्यस्सूतोत्कृष्टतरम्। एवं सूतनामा चातुर्वर्ण्ये चतुरो जनयति। एवं क्षत्रियपुत्रेभ्यो द्वादश। आत्मानं च त्रय इति क्षत्रियप्रभवाः पञ्चदशवर्णा भवन्ति। ब्राह्मणस्य त्वन्तलोमजा एव त्रयः। तत्र पारशवः सर्वशूद्रेभ्य उत्कृष्टः चातुर्वर्ण्ये प्रसूयमान...द्रायामात्मनो हीनतरं जनयति। केवलवैश्यजाताच्चोत्कृष्टं क्षत्रियजाता-त्तूग्रात्प्रतिपद्यन्ते। तथा वैश्यायामात्मनो हीनतरं जनयति वैश्यजाताच्चोत्कृष्टम्। क्षत्रियायां

तु केवलवैश्यक्षत्रियाभ्यामुत्कृष्टतरं मागधं जनयति । एवं वैदेहकं वैश्यायां जातश्चातुर्वर्ण्ये प्रसूयमानः शूद्रायामात्मनो हीनतरं जनयति। एते तु क्षत्रियायां तु मागधं जनयन् केवलवैश्यजातान्मागधादुत्कृष्टतरं जनयति। तथा ब्राह्म(ण्यां) वैदेहकं जनय(ति) केवलं वैश्यं वैदेहब्राह्मण्यां जनयन् पूर्वाभ्यां क्षत्रियवैश्यप्रभवाभ्यां जातः वैदेहकाभ्यामुत्कृष्टतरं जनयति । एवमेते बहुपुत्राश्चत्वारः। तथा च क्षत्रियायां ब्राह्मणेन जातश्चातुर्वर्ण्ये प्रसूयमानश्शूद्रायां पुत्रं जनयन् आत्मनो हीनतरं जनयति । क्षत्रियप्रभवात्तूग्रादुत्कृष्टतरम् । तथा वैश्यायां जनयन्नात्मनो हीनतरं जनयति । वैश्यक्षत्रियजाताभ्यामुत्कृष्टरम् । तथा क्षत्रियायामात्मनो हीनतरं जनयति केवलक्षत्रियात्तूत्कृष्टतरम् । एवं ब्राह्मण्यां सूतं जनयन्नात्मनो हीनतरं जनयति पूर्वसूत्रादुत्कृष्टः। एवं च ब्राह्मणजातात् क्षत्रियाच्चत्वारः। त एवं ब्राह्मणप्रभवेभ्यस्त्रिभ्यो द्वादश । आत्मनश्च त्रय इत्येवं ब्राह्मणप्रभवाः पञ्चदश वर्णा भवन्ति । एवमेते चतुर्भ्यो वर्णेभ्यः षष्टिर्वर्णाः । आत्मनश्चत्वारः । इत्येते चतुष्षष्टिर्वर्णभेदाः यथास्थूलं वेदितव्याः; एतेषां पुनः पुनर्विद्यमाना असंख्येया वर्णभेदा भवन्ति । तदेवं 'सङ्कीर्णयोनयो ये' तु प्रतिलोमानुलोमजाः । अन्योन्यव्यतिषक्ताश्चेत्यस्यायं श्लोकस्य प्रपञ्चो विज्ञेयः । वर्णापसदा अपि सन्तो वर्णपदपचर्यन्ते (?) इव । शब्दलोपेन वर्णा तथा चोक्तम्– 'ब्राह्मण्याः क्षत्रिया वैश्यास्त्रीवर्णा द्विजातयः । चतुर्थ एकजातीयः शूद्रो नास्ति तु पञ्चमः' इति ।।

प्रसाधनोपचारज्ञमदासं दासजीवनम् । सैरिन्ध्रं वागु(रा) वृत्तिं सूते दस्युरयोगवे ।। प्रसाधनोपचारज्ञमिति वृत्त्युपदेशः अदासः सन्दास्यजीवनः । प्रसाधनोपचारज्ञ नयापरम-(त) जीवी यस्मात् सैर(न्ध्र)मिति वर्णनामेदम् । अन्यस्त्वाह ग्रन्थकारः– सैर(न्ध्रि)-द्रौपदीदर्शनात् वागुरवृत्तित्वमारणवस्तुहिंसनाख्यं युक्तमार्याणां देवपित्रर्थमौषधार्थं च । प्राणयात्रामात्रार्थं वा पुत्रदारात्ययं प्राप्तस्य ।। ३१ ।।

**प्रसाधनोपचारज्ञमदासं दास्यजीवनम् ।**
**सैरिन्ध्रं वागुरावृत्तिं सूते दस्युरयोगवे ।।३२।।**

(१) **मेधातिथिः । प्रसाधनं** मण्डनम् । **उपचारो**ऽनुवृत्तिः । केशरचनाकुंकुमचन्दनादिनाऽनुलेपनविच्छित्तिः पाणिपादविमर्दनं प्राप्तिलोभात् कर्मकारिक्षिप्रकारिकार्याणामवसरमित्यादिविधिज्ञ एवमुच्यते । **अदासं दास्यजीवनम्** । वत्सरभृत्य षण्मासभृत्या च कंचन सेवते । अथवैतद्विधिज्ञतया सर्वोपस्थापको भवति जीवनाय । मता (?) **वागुरावृत्तिम्** । द्वितीयोऽयं वृत्त्युपायः । 'वागुरा' अरण्यपशुहिंसनम् । तच्चार्याणां देवपित्र्यर्थं क्षुधार्थं च, न तु व्याधवत्पशून्हत्वा मांसविक्रयेण जीवनम् । राजनियोगाद्वहुप्राणिवधो जीविकार्थः ।

**सैरन्ध्रनामानं सूते** उत्पादयति । **दस्युर्नाम** वक्ष्यमाणः । **अयोगवे** जातिविशेषे । सामर्थ्यात्स्त्रीत्वलाभः ।। ३२ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । अन्यानपि कांश्चिदुपलक्षणतया संकीर्णजान्वृत्त्या सह दर्शयति **प्रसाधनेति** । प्रसाधनमहरणं । उपचारो गात्रसंवाहनादिः । अदासं दास्यानर्हं शूद्रस्यैव तदर्हत्वात् । दास्यजीवनं दासयोग्येन कर्मणा जीवनम् । सैरन्ध्रनामानम् । वागुरावृत्तिं

पाशबन्धनवृत्तिम्। दस्युः प्रागुक्तपञ्चदशविधसंकरजात्यन्तरः। अयोगवे अयोगवस्त्रियाम् जातिवाचित्वात्स्त्रीलिङ्गनिर्देशः।। ३२ ।।

(३) **कुल्लूकः**। केशरचनादिः प्रसाधनस्तस्योपचारज्ञं अदासमुच्छिष्टभक्षणादिदासकर्मरहितमङ्गसंवाहनादिदासकर्मजीवनं पाशबन्धनेन मृगादिवधाख्यवृत्त्यन्तरजीवनं सैरिन्ध्रनामानं 'मुखबाहूरुपज्जाना'मिति (१०।४५) श्लोके वक्ष्यमाणो दस्युरायोगवस्त्रीजातौ शूद्रेण वैश्यायामुत्पन्नायां जनयति, तच्चास्य मृगादिमारणं देवपित्रौषधार्थं वेदितव्यम् ।। ३२ ।।

(४) **राघवानन्दः**। तानेव नव विवृणोति **प्रसाधनेति**। प्रसाधनोपचारज्ञं केशप्रसाधनादिनिपुणम्, अदासं हिंसोपजीवित्वेऽपि दासाद्भिन्नं उच्छिष्टाभोजित्वात्। दास्यजीवनं दासकर्मणा जीवनवन्तम्। वागुरावृत्तिं वागुरा मृगबन्धनी तया मृगघातिनम्। आयोगवे शूद्राद्वैश्याजन्यायाम्। दस्युर्वक्ष्यमाणः।। ३२ ।।

(५) **नन्दनः**। अपरमपि संकीर्णयोनिमाह **प्रसाधनोपचारज्ञमिति**। दस्युः प्रतिलोमः सूतादिः। अयोगवे आयोगवस्त्रियां वृत्तभङ्गपरिहारार्थे ह्रस्वः। सैरन्ध्रनामानं प्रसाधनोपचारवृत्त्या जीवन्तम्। अदासं कस्यचिदपि न दासभूतं। दस्यूनां बहुत्वात्सैरन्ध्राणामपि बहुत्वं वृत्तिभेदोपन्यासेन सूचितम्।। ३२ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। प्रसाधनं अलंकरणमात्रं संवहनादिउपचारज्ञं। अदास्यं दास्यानर्हमदास्यं। यत् जीवनं प्राणनं आयोगवो दस्युः वागुरावृत्तिं पाशबन्धनवृत्तिं सूते।। ३२ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **प्रसाधनोपचारज्ञमदासं दास्यजीवनमिति**। केशरचनादिप्रसाधनाङ्गसंवाहनाद्युपचारक्षमदासमशूद्रत्वात् प्रसाधनादिदासकर्मजीवनं पाशबन्धनेन च मृगादिवधजीवनं सैरन्ध्राख्यं 'मुखबाहूरुपज्जाना'मिति वक्ष्यमाणो दस्युरायोगव्यां शूद्राजातायां जनयति। एतस्य मृगादिहिंसनं आर्याणां देवपित्रौषधार्थं आत्मपुत्रदारात्ययप्राप्तः स्यात्। एवं अन्येषां अपि प्रायो वधजीविनां वेदितव्यम् ।। ३२ ।।

(९) **भारुचिः**। दस्युः आयोगवि-सैरंध्रनामानं सूते। तस्य प्रसाधनादिकर्म जीवनं जीवनोपायं। प्रसाधनोपचारज्ञं-केशचरणादिप्रसाधनांगसंवहनज्ञातारं। दासजीवनं दासकर्मणा पाशवेधनेन मृगादिवधाख्येन वृत्त्यंतरेण जीवनं। वागुरावृत्तिं वाग्भुवास्तुतिकरणरूपा वृत्तिर्यस्तं।। ३२ ।।

**मैत्रेयकं तु वैदेहो माधूकं संप्रसूयते ।।**
**नृन्प्रशंसत्यजस्रं यो घण्टाताडोऽरुणोदये ।।३३।।**

(१) **मेधातिथिः**। **मैत्रेयकं** नाम्ना वर्णभायोगव्याम्। **संप्रसूयते** जनयति। **वैदेहनामा** ब्राह्मण्यां वैश्याज्जातो यः। पाठान्तरं **मैरेयकमिति**।

**माधूकम्**। उपमापदमेतत् मधूककुसुमतुल्यम् मधुरभाषित्वात्। अथवा मधुकायतीति 'अन्येष्वपि दृश्यते' (पा. ३।२।१०१) इति डः। अन्येषामपीति दीर्घः। स्वार्थिकेन चादिवृद्धिस्तस्य वृत्तिः।

**नॄन्** मनुष्यान् **प्रशंसन्ति** अजस्रं सर्वदा बन्दीति यः कथ्यते। **अरुणोदये** प्रबोधकाले घण्टां ताडयत्याहन्ति, राज्ञामीश्वराणां चान्येषां प्रबोधाय। आयोगव्यामेवानुजनयति, प्रकृतत्वात् ॥ ३३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। मैत्रेयकं मैत्रेयकनामानम्। माधूकं मधुरस्तुतिपाठकम्। सूते अयोगवस्त्रियामेव। घण्टाताडो घण्टावाद्यकारी ॥ ३३ ॥

(३) **कुल्लूकः**। वैश्याद्ब्राह्मण्यां जातो वैदेहः। प्रकृतायामायोगव्यां मैत्रेयाख्यं मधुरभाषिणं जनयति यः प्रातर्घण्टामाहत्य राजप्रभृतीन्सततं वृत्त्यर्थं स्तौति ॥ ३३ ॥

(४) **राघवानन्दः**। **मैत्रेति**। मैत्रेयकं माधूकं मधुरभाषिणं अयोगव्यां। **नॄन्** राजादीन्। घण्टाताडः तत्ताडनशीलः। अरुणोदये प्रातः प्रातरेव तान्बोधयन्प्रशंसतीति। वैदेहो वैश्यात् ब्राह्मणीजः ॥ ३३ ॥

(५) **नन्दनः**। माधुरं मधुरभाषिणं सुतं प्रसूयते, आयोगव इत्यनुवर्तते, तस्य वृत्तिरुत्तरार्धेनोक्ता। घण्टां ताडयतीति घण्टाताडः ॥ ३३ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। वैदेहो मैत्रेयकनामानं तु पुनः माधूकं मधुरस्तुतिपाठकमायोगव्यां संप्रसूयते। अरुणोदये यो **नॄन्** जने संघण्टानादः भाषायां 'जागा' इति प्रसिद्धः ॥ ३३ ॥

(७) **मणिरामः**। वैदेहः प्रवृत्तयाऽऽयोगव्यामेव मैत्रेयकं प्रसूयते। कथंभूतं माधूकं? मधुरभाषिणं। तस्य कर्माऽऽह **नॄनिति**। अरुणोदये यः घंटाताडः घंटां आहृत्य **नॄन्** राजप्रभृतीन् अजस्रं निरंतरं प्रशंसति ॥ ३३ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **मैत्रेयकमिति**। वैदेहो वैश्याद् ब्राह्मणीजातः प्रकृतायां आयोगव्यां मैत्रेयकाख्यं मधुरभाषिणं जनयति यः प्रातः घंटामाताडय राजप्रभृतीन् अनवरतवृद्धचर्थं स्तौति ॥ ३३ ॥

(९) **भारुचिः**। मैत्रेयकं तु नाम्ना मैरेयकं वा पाठान्तरेण वैदेहको जनयति। वैश्यजातो ब्राह्मण्यां य उक्तः मैत्रेयकं च गुणेन विशिनष्टि—माधूकं मधुरभाषिणं सम्प्रसूयते। आयोगव्यामधिकृतायां तस्य वृत्तिनिर्देशः। नॄन् प्रशंसत्यजस्रं यो घण्टाताडयरुणोदये प्रातर्गायनस्तुतिवन्दनादिभिः ॥ ३३ ॥

**निषादो मार्गवं सूते दासं नौकर्मजीविनम्॥**
**कैवर्तमिति यं प्राहुरार्यावर्तनिवासिनः ॥३४॥**

(१) **मेधातिथिः**। प्रतिलोमप्रकरणात् न यः शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातो निषादः पूर्वमुक्तः स इह गृह्यते, अपि तु दस्युवत्प्रतिलोम एव। **मार्गवं** नाम प्रतिलोमं **सूते**, आयोगव्यामेव। यस्येमे अपरे नामनी 'दासः' **कैवर्त** इति। **आर्यावर्तः** प्रसिद्धः। तस्य वृत्तिर्नौकर्मणा नौवाहनेन जीवति ॥ ३४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। निषादः शूद्रायां विप्राज्जातः अयोगवस्त्रियामेव सूते। मार्गवं मार्गवनामानम्। दासं दासापरनामानम् अयोगव इत्यधिकारादेतावप्यायोगव्यामेव ॥ ३४ ॥

(३) **कुल्लूकः**। ब्राह्मणेन शूद्रायां जातो निषादः प्रागुक्तायामायोगव्यां मार्गवं दासापरनामानं नौव्यवहारजीविनं जनयति। आर्यावर्तदेशवासिनः कैवर्तशब्देन यं कीर्तयन्ति॥ ३४ ॥

(४) **राघवानन्दः**। निषादो ब्राह्मणात् शूद्रकन्याजः। मार्गवं मृगयुरिव हिंसाकर्मिणं। नौकर्मजीविनं नावो यत्कर्म मत्स्यघातनोत्तारणादि तेन जीवितुं शीलम्। तस्यैव देशभेदेन नामान्तरं 'कैवर्त' इति ॥ ३४ ॥

(५) **नन्दनः**। निषादः शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः पूर्वमुक्तः। मार्गवं मार्गवनामानं क्वचिद्दाशनामानं। सूते आयोगव इत्येव ॥ ३४ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। निषादः आयोगव्यां मार्गवं सूते दासं नौकर्मजीविनं ॥ ३४ ॥

(७) **मणिरामः**। निषादः आयोगव्यामेव मार्गवं-दाशाऽपरनामानं नौकर्मजीविनं सूते। आर्यावर्तनिवासिनं यं-मार्गवं कैवर्तं कैवर्तशब्देन प्राहुः ॥ ३४ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **निषादो मागधमिति**। प्रतिलोमाधिकारात् प्रतिलोमो निषादो व्यासोक्तो य उक्तः स प्रकृतायां आयोगव्यां मागधं दासापरनामानं नौव्यापारजीविनं जनयति यं आर्यावर्तनिवासिनः कैवर्तशब्देन ब्रुवते ॥ ३४ ॥

(९) **भारुचिः**। निषादो नाम ब्राह्मणजातस्तं शूद्रं प्रतिलोमो वेदितव्यः, प्रतिलोमाधिकारसामर्थ्यात्। न तु ब्राह्मणजातः शूद्रायाम्, अनुलोमत्वात्। स निषादोऽधिकृतायामेवायोगव्यां मार्गवबर्णनाम्ना जनयति—कर्मजीविनमिति। कैवर्तमिति यं प्राहुस्तृतीये नाम्ना आर्यावर्तनिवासिनो जानपदाः वागुरावृत्तित्वमारणवस्तुहिंसनाख्यं युक्तमार्याणां देवपित्रर्थमौषधार्थं च। प्राणयात्रा-मात्रार्थं वा पुत्रदारात्यर्थं प्राप्तस्य।

येऽनन्तरं उपदिष्टास्त्रयो मार्गवपर्यन्तास्तेषां मातृजातिर्नोक्ता, तत्प्रतिपादनार्थोऽयं श्लोकः ॥ ३४ ॥

**मृतवस्त्रभृत्स्वनार्यासु गर्हितान्नाशनासु च ॥**
**भवन्त्यायोगवीष्वेते जातिहीनाः पृथक् त्रयः ॥ ३५ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **आयोगवीषु** स्त्रीष्वेते जायन्ते। तासां च विशेषणम्। **मृतवस्त्रभृत्सु** शववासांसि परिदधतीष्वित्यर्थः। **अनार्या** अस्पृश्याः। **गर्हितमुच्छिष्टं** मांसादि चान्नमश्नन्ति ॥ ३५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अन्येऽपि त्रयस्तस्यामेव जायन्त इत्याह **मृतेति**। पूर्वार्धेनायोगवीनां धर्म उक्तः ॥ ३५ ॥

(३) **कुल्लूकः**। सैरिन्ध्रमैत्रेयमार्गवा हीनजातीयास्त्रयः मृतवस्त्रपरीधानासु क्रूरासूच्छिष्टादिभक्तान्नाशनायोगवीषु पितृभेदाद् भिन्ना भवन्ति ॥ ३५ ॥

(४) **राघवानन्दः**। त्रयाणामेषां मातॄराह **मृतेति**। मृतवस्त्रभृत्सु तदेव वासो यासां तासु गर्हितान्नाशनासु गर्हितं लशुनमद्याद्यशनं यासां तासु। आयोगवीकन्यासु। **पृथगिति** तासामेकजातीयत्वेऽपि पतीनां भिन्नजातीयत्वात् ॥ ३५ ॥

(५) **नन्दनः**। अनार्यासु केनचित्कर्मदोषेण निन्द्यासु जातिहीना मातृकर्मदोषेण निकृष्टतमाः एते उत्तरश्लोके वक्ष्यमाणाः ॥ ३५ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। मृतवत्सासु अनार्यासु अविवाहितासु गर्हितमन्नमश्नन्त्योऽनार्याः तासु **योगी** [श्वर] 'कदर्यवृद्धचौराणां क्लीबरङ्गावतारिणाम्।" एते गर्हिता। एतासु आयोगवीषु एते जातिहीनाः पृथक् त्रयो भवन्ति ॥ ३५ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **मृतवस्त्रभृत्स्वनार्यासु** इति। एते सैरन्ध्रमैत्रेयकमागधहीन-जातीयाः त्रयः शववस्त्रपरिधानासु क्रूरासु उच्छिष्टादिभक्ष्याख्यायोगवीषु पितृभेदाद् भिन्नजातयो भवन्ति ॥ ३५ ॥

(९) **भारुचिः**। आयोगविपितृबाह्या वादेतव्याः (?) निषादवत् न तु शूद्रेण वैश्याया जाताः। तथा च दर्शयति त्रिभ्यो यथोपदिष्टेभ्यो वर्णेभ्यो दस्युवैदेहकनिषादेभ्यः श्लोकत्रयाधिकृतेभ्यः ये तु 'पुनस्सूतो दस्यायोगव' इत्येवं प्रथमश्लोकस्यान्त्यपादं पठन्ति तेषां तत्र क्षत्रियजातो ब्राह्मण्यां सूत उक्तः। एवं च सति सूतवैदेहकनिषादेभ्यः एवंविध(स्याऽऽ)योगवीषु श्लोकत्रयोपदिष्टानामन्ते वर्णा जायन्ते ॥ ३५ ॥

**कारावरो निषादात्तु चर्मकारं प्रसूयते ॥**
**वैदेहिकादन्ध्रमेदौ बहिर्ग्रामप्रतिश्रयौ ॥ ३६ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। उत्तरत्र वैदेह्यामेव जायन्त इत्येवकारकरणलिङ्गादिहापि वैदेह्यां निषादात्**कारावरो** नाम जायत इति संबंधप्रतीतिः।

वैदेहिकाद्द्वा**वन्ध्रमेदौ**। कस्यां स्त्रियाम्? कारावरीनिषाद्योः। तयोरत्र सन्निधानात्। वैदेह्यां च वैदेह्याद् भिन्नवर्णसंभवादेवं व्याख्यायते। स्त्रीभेदेन चैकस्माद्वर्णादेते द्वे जाती। **बहिर्ग्रामं प्रतिश्रयो** निवासो ययोः ॥ ३६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। निषादादायोगव्यां कारावरनामा चर्मकारस्तद्वृत्तिः प्रसूयते प्रजायते। वैदेहकादायोगव्यामेव...अन्ध्रोऽनन्यपूर्वायामन्यपूर्वायां तु मेदः ॥ ३६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। 'वैदेह्यामेव जायत'(१०/३७) इत्युत्तरत्र श्रवणात् अत्राप्याशङ्कायां सैव संबध्यते। निषादाद्वैदेह्यां जातः कारावराख्यश्चर्मच्छेदनकारी जायते, अत एवौशनसे कारावराणां चर्मच्छेदनाचरणमेव वृत्तित्वेनोक्तम्। वैदेहकसैरिन्ध्रभेदाख्यौ ग्रामबहिर्वासिनौ अन्तरानिर्देशाद्वैदेहकेन च वैदेह्यां जातस्य गर्हितवैदेहकस्याप्युचितत्वात्। कारावरनिषाद-जात्योश्चात्र श्लोके सन्निधानात्कारावरनिषादस्त्रियोरेव क्रमेण जायते ॥ ३६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। वैदेह्यां कारावरादिषण्णामेव जन्मेति वक्तुं पितृभेदमाह

**कारेति** द्वाभ्याम्। निषादवैदेहकचण्डालनिषादाश्चत्वारः पितरः कारावरान्ध्रमेदाद्याः षट् पुत्रा वैदेह्यामिति जात्येकवचनं चेति पौल्कस्यां शूद्रनिषादजातायां अत्र नवजातेरन्यद्विशेषणं सैरन्ध्रकः मैत्रेयकः मार्गवः कारावरः अन्ध्रमेदौ देशभेदेनैक एव पाण्डुसोपाकः आहितुण्डिकः सोपाकः अन्त्यावसायी चैते नव सूतादयः षट् तेन पञ्चदश बाह्याबाह्यतरा इति व्याख्यायन्ते पञ्चदश शब्दस्वरसात्। **कुल्लूकस्तु** सूतादयः षडेते सैरन्ध्रादयो न वेति पञ्चदश तथा अयोगवक्षत्तृचण्डालाश्चातुर्वर्ण्यस्त्रीषु स्वयोन्यां च पञ्च पञ्च जनयन्तीति एवं दश पूर्वोक्ताश्च पञ्चदशेति त्रिंशत्। **मेधातिथिस्तु** विप्रस्यानुलोम्येन त्रयः प्रतिलोमाभावात् क्षत्रियस्य ब्राह्मण्यामेकः प्रतिलोमः, अनुलोमद्वयं वैश्याशूद्रयोः वैश्यस्य च विप्राक्षत्रिययोः प्रतिलोमद्वयमनुलोम एकः शूद्रायां, शूद्रस्य तु प्रतिलोमत्रयं विप्राक्षत्रियवैश्याङ्गनासु अनुलोमाभावादिति द्वादश संकरास्तेषां मातृजातीयप्रतिलोमानुलोमासु पञ्चसु प्रत्येकं पञ्च पञ्चेति षष्टिरेवं संकरा इति ।। ३६–३९ ।।

(५) **नन्दनः**। तानेव त्रीनाह **कारावर इति**। चर्मकारश्चर्मसंस्कारवृत्तिः। कारावरान्ध्रमेदाः क्रमेण मृतवस्त्रभृत्स्वनार्यासु गर्हितान्नाशनास्वायोगवीषु जायन्त इति ।। ३६।।

(६) **रामचन्द्रः**। निषादाद्वैदेह्यां कारावरो नाम चर्मकारः प्रसूयते वैदेहकादंध्रमेदौ भवतः ।। ३६ ।।

(७) **मणिरामः**। निषादात् वैदेह्यां कारावरः। स न चर्मकारः चर्मच्छेदनादिकर्ता वैदेहिकात् वैदेह्यां अंध्रमेदौ अंध्रमेदनामानौ भवतः। बहिर्ग्रामप्रतिश्रयौ बहिर्ग्रामवासिनौ ।। ३६ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **कारावर इति**। 'वैदेह्यामेव जायत' इत्यस्य वक्ष्यमाणस्यावधारणस्य पूर्वत्रापि वैदेह्यवबोधकत्वादिहाश्रुतापि वैदेही लक्ष्यते। निषादस्य प्रतिलोमाधिकारात् प्रतिलोम उक्तः, तेन निषादाद् वैदेह्यां कारावराख्यः कारावराणां चर्मच्छेदनसीवनमिति पौरान् संदर्शनात् चर्मच्छेदनसीवनवृत्तिर् जायते। वैदेहिकाद् अन्ध्रमेदाख्यौ अरण्यनिवासिनौ स्तुत्यन्तरनिर्देशात् वैदेह्यां च भिन्नजात्युत्पादः स्यात् न आद्यत्वात् कारावरनिषादजात्योश्च श्लोकेऽत्र संनिधानात् कारावरनिषादस्त्रियोरेव जायते ।। ३६ ।।

(९) **भारुचिः**। 'वैदेहिकादन्ध्रमेदौ बहिर्ग्यामेव जायते' इति वक्ष्यमाणश्लोकलिङ्गान्निषादात् कारावरनामा वर्णश्चर्मकरणवृत्तिर्वैदेह्यां जायते। वैदेहिकादन्ध्रमेदौ कारावरनिषादवर्णयोः स्त्रियोः अन्ययोरसम्भवादेतल्लोकोपदिष्टयोश्च वर्णयोः सन्निहितत्वाद्वैदेहकाच्च वैदेह्या इन्ध्रमेदयोर्वर्णयोरसम्भवात्। परिशेषात् कारावरनिषादः। ... यावेन (गृह्येते)। एवं हि स्त्रीवर्णभेदे वैदेहिकादन्ध्रमेदौ भिन्नवर्णौ युक्तौ न तु वैदेह्याम् ।। ३६ ।।

**चण्डालात्पाण्डुसोपाकस्त्ववक्सारव्यवहारवान् ।।**
**आहिण्डिको निषादेन वैदेह्यामेव जायते ।।३७।।**

(१) **मेधातिथिः**। **चाण्डालात्** वैदेह्यां **पाण्डुसोपाको** नाम वर्णो जायते।

तस्य वृत्तिस्त्वक्सारव्यवहारवान्। 'त्वक्सारो' वेणुः तद्व्यवहारेण वंशक्रयविक्रयादिना कटादिकरणेन वा जीवति। निषादात्तस्यामेवाहिण्डकस्तस्य वृत्तिरेषैव, अन्वेष्या वा।। ३७।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। चाण्डालादायोगव्यामेव पाण्डुसोपाकः पाण्डुसोपाकनामा। त्वक्सारव्यवहारो वेणुविदलैर्जीवनम्। अत्र चान्ध्रमेदयोर्मातापितृजात्यभेदादिकत्वं विवक्षता पूर्वं त्रय इत्युक्तम् निषादेन विप्रशूद्राजेन।। ३७।।

(३) **कुल्लूकः**। वैदेह्यां चण्डालात्पाण्डुसोपाकाख्यो वेणुव्यवहारजीवी जायते। निषादेन च वैदेह्यामेवाहिण्डिकाख्यो जायते। अस्य च धनस्थानेषु बाह्यसंरक्षणादाहिण्डिकानामित्यौशनसे वृत्तिरित्युक्ता। समानमातापितृकत्वेऽपि कारावराहिण्डिकयोर्वृत्तिभेदसंश्रवणाद्व्यपदेशभेदः।। ३७।।

(५) **नन्दनः**। 'आहिण्डिको निषाद्यान्तु वैदेहेनैव जायते' इति पाठः। त्वक्सारो वेणुवेत्रादिस्तस्य व्यवहारो विक्रयकर्म।। ३७।।

(६) **रामचन्द्रः**। चाण्डालाद्वैदेह्यां पाण्डुसोपाकनामा त्वक्सारव्यवहारवान् वेणुव्यवहारजीवी जायते। निषादेन वैदेह्यामाहिण्डिको जायते।। ३७।।

(७) **मणिरामः**। सोपाकः त्वक्सारव्यवहारवान्-वंशव्यवहारी कारावराऽहितुंडिकयोरैक्येऽपि वृत्तिभेदार्थं पुनः कथनं।। ३७।।

(८) **गोविन्दराजः**। **चाण्डालादिति**। चाण्डालात् वैदेह्यां पाण्डुसोपाकाख्यो वेणुव्यवहारजीवी जायते। स च निषादेन वैदेह्यां एव अहितुण्डिकाख्यो जायते। अस्य वन्धनस्थानेषु बाह्यसंरक्षणं आहितुण्डिकानाम् इति औशनसे वृत्तिरुक्ता।। ३७।।

(९) **भारुचिः**। चण्डालाद्वैदेह्यामेकजातौ वर्णद्वयमिदं पाण्डुसोपाकाहिण्डिकलक्षणो जायते। एवं चात्र वर्णापसद(प्र)करणे मातृभेदाद्वा एकवर्णजातयोरपि भेदः पितृभेदाद्वा एकस्यामेव स्त्रियां भेदो विज्ञेयः।। ३७।।

**चण्डालेन तु सोपाको मूलव्यसनवृत्तिमान्।।**
**पुल्कस्यां जायते पापः सदा सज्जनगर्हितः।।३८।।**

(१) **मेधातिथिः**। **व्यसनं** दुःखं तस्य **मूलं** मारणं तद्वृत्तिर्वध्यमारणं राजादेशादनाथशववहनं तद्वस्त्रादिग्रहणं प्रेतपिण्डभोजनमित्येवमादिवृत्तिः। **पुल्कस्यां चाण्डालेन** जायते। अथवा **मूलादिवृक्षादीनां तद्व्यसनं** विभागकरणं सा वृत्तिर्व्यवच्छिन्नेषु वृक्षेषु यदनुवृत्तं मूलं तदुद्धृत्य विक्रयादिना जीवति।। ३८।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। चण्डालेन पुल्कस्यां मूलव्यसनवृत्तिमान् मूलखननं कृत्वा तद्विक्रयणजीवन इत्यर्थः।। ३८।।

(३) **कुल्लूकः**। शूद्रायां निषादेन जातायां पुल्कस्यां चण्डालेन जातः सोपाकाख्यः

पापात्मा सर्वदा साधुभिर्निन्दितो मारणोचितापराधस्य मूल वध्यः तस्य व्यसनं राजादेशेन मारणं तेन वृत्तिर्यस्य स जायते ॥ ३८ ॥

(५) **नन्दनः** ॥ मूलव्यसनमौपधखननम् ॥३८॥

(६) **रामचन्द्रः** । चाण्डालेन सोपाकनामा तथा पुक्कस्या जायते । कीदृशः ? मूलव्यसनवृत्तिमान् मूलखननवृत्तिमारणोचितः, यद्वा मूल वध्य तस्य व्यसन राजादेशेन मारणं वा ॥ ३८ ॥

(७) **मणिरामः** । पुक्कस्या चण्डालेन सोपाकः । मूलव्यसनवृत्तिमान् मूलव्यसन मारणवृत्तिरित्यर्थः । वध्यं मारणं । राजादेशादनाथशव (निर्वहणं) तद्वस्त्रादिग्रहणम् । प्रेतपिण्डभोजनमित्येवमादिवृत्तिः । पुक्कस्यां चण्डालेन जायते ॥ ३८ ॥

(८) **गोविन्दराजः** । **चाण्डालेन चेति । पुक्कस्यां जायते पापः सदा सज्जनगर्हितः ॥** चण्डालेन पुक्कस्यां जातो निषादात् शूद्रायां इत्युक्तायां सोपाकाख्यः पापात्मा सर्वदा साधुभिर् निन्दितो राजाज्ञया वध्यमारणवृत्तिर् जायते ॥ ३८ ॥

**निषादस्त्री तु चण्डालात्पुत्रमन्त्यावसायिनम् ॥**
**श्मशानगोचरं सूते बाह्यानामपि गर्हितम् ॥३९॥**

(१) **मेधातिथिः** । **अन्त्यावसायिनं** चण्डालमेव वदन्ति । अथवा निषाद्यां चण्डालादुत्पन्नस्यान्त्यावसायीति नामधेयम् । **श्मशानगोचरं** शवदहनादिवृत्तिः । अतश्चाण्डालादपि कुत्सिततरो विज्ञेयः । तदेतदानन्त्यात् संकराणां प्रदर्शनमात्रं कृतम् ॥ ३९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । निषादस्त्री निषादजातीया स्त्री ॥ ३९ ॥

(३) **कुल्लूकः** । निषादी चण्डालादन्त्यावसायिसंज्ञं चण्डालादिभ्योऽपि दुष्टतमं श्मशानवासिनं तद्वृत्तिं च जनयति ॥ ३९ ॥

(५) **नन्दनः** । श्मशानगोचरं-श्मशानवासिनं तद्वृत्तिजीविनं च ॥ ३९ ॥

(८) **गोविन्दराजः** । **निषादस्त्रीति** । प्रतिलोमनिषादस्त्री चण्डालाद् अन्त्यावसायाख्यं पुत्रं चण्डालादिभ्यो दुष्टतमं श्मशानवासिनं तद्वृत्तिं च जनयति ॥ ३९ ॥

(९) **भारुचिः** । श्मशानगोचरस्तद्वृत्तिस्थाननिवासश्च । एवं च सत्ययं चण्डालादपि पापतरो विज्ञेयः, तदेतदानन्त्यात् सङ्करस्य प्रदर्शनमात्रं विज्ञेयम् ॥ ३९ ॥

**सङ्करे जातयस्त्वेताः पितृमातृप्रदर्शिताः ॥**
**प्रच्छन्ना वा प्रकाशा वा वेदितव्याः स्वकर्मभिः ॥४०॥**

(१) **मेधातिथिः** । यान्येतान्यनन्तरमुद्दिष्टानि त्वक्सारव्यवहारादीनि कर्माणि तैः अप्रसिद्धाः सोपाकादिनामतया तज्जातीया वेदितव्याः । पित्रा माता च विभागेन दर्शिताः । **प्रच्छन्ना वा प्रकाशा वा** तज्जातीया **वेदितव्याः** । आयोगव्यां माता विभागो निषादाद्वैदेहिकादन्ध्रमेदाविति पित्रा दर्शितो विभागः ॥ ४० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। पितृमातृप्रदर्शिताः पितृमातृविशेषेण कथिताः। स्वकर्मभिर्गर्हितकर्मवर्तनशीलतया वेदितव्याः प्रच्छन्नाऽप्रच्छन्ना अपि ।। ४० ।।

(३) **कुल्लूकः**। वर्णसङ्करविषय एता जातयो यस्येयं जनयित्र्ययं जनकः स एवंजातीय इत्येवं पितृमातृकथनपूर्वकं दर्शिताः। तथा गूढाः प्रकटा वा तज्जात्युदितकर्मानुष्ठानेन ज्ञातव्याः ।। ४० ।।

(४) **राघवानन्दः**। संकीर्णप्रकरणमुपसंहरति **संकर इति**। पितृतो मातृतः कर्मभिर्वा विभाव्या इत्याह **प्रच्छन्ना वेति** ।। ४० ।।

(५) **नन्दनः**। पितृमातृविगर्हिताः पितृमातृदोषविगर्हिताः आसु जातिषु द्विजधर्मिणः ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रस्त्रीजाताः, अनुलोमजा इति यावत्; द्विजधर्मिणो न केवलं स्वजातिजानामेव द्विजधर्मित्वं किन्त्वनन्तरासु जातानामपि साकल्येन द्विजधर्मित्वमस्तीत्यर्थः। तत्र ब्राह्मणाद्ब्राह्मण्याञ्जातस्य यो द्विजधर्मस्स एव तस्मात्क्षत्रियायाञ्जातस्यापि एवमुत्तरयोरपि योज्यं, वैश्याच्छूद्रायाञ्जातस्यानेन शूद्रेभ्यो वैशिष्ट्यमित्यवगन्तव्यम् ।।४०।।

(६) **रामचन्द्रः**। संकरे एता जातयः पितृमातृप्रदर्शिताः पितृमातृपूर्वकं कथिता **प्रच्छन्न वा** प्रकाशान्तस्वकर्मभिर्वेत्तव्याः ।। ४० ।।

(७) **मणिरामः**। पितृमातृप्रदर्शिताः इयं माता अयं पिता एवंप्रकारेण पितामातृकथनपूर्वकं दर्शिताः ।। ४० ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **सङ्कर** इति। वर्णसङ्करविषये एता जातयो अस्य इयं जननी अयं जनकोऽयं एवंजातीय इति एवं पितृमातृकथनपूर्वकं प्रदर्शिताः। एताश्च गूढाः प्रकटा वा तज्जातिचोदितकर्माचरणदर्शनेन बोद्धव्याः ।। ४० ।।

(९) **भारुचिः**। कर्मणा शास्त्रोपदिष्टजातिरनुमातव्या, जातिप्रदर्शनाच्च स्वकर्मस्वेता नियोज्याः ।। ४० ।।

**सजातिजानन्तरजाः षट् सुता द्विजधर्मिणः ।।**
**शूद्राणां तु सधर्माणः सर्वेऽपध्वंसजाः स्मृताः ।।४१।।**

(१) **मेधातिथिः**। **स्वजातीयास्त्रैवर्णिकेभ्यः** समानजातीयासु जातास्ते **द्विजधर्माण** इत्येतत्सिद्धमेवानूद्यते। अनन्तरजानां तुल्यताभिधानं तद्धर्मप्राप्त्यर्थम्। **अनन्तरजा** अनुलोमाः। ब्राह्मणात् क्षत्रियाद्वैश्ययोः क्षत्रियावैश्यानां जाताः तेऽपि **द्विजधर्माण** उपनेया इत्यर्थः। उपनीताश्च द्विजातिधर्मैः सर्वैरधिक्रियन्ते।

"ननु च 'तानन्तरनाम्न' इति मातृजातीयत्वमेषामुक्तमेव। ततश्च तज्जात्या समेषु धर्मेषु सिद्ध एवाधिकारः"।

सत्यम्। अनन्तरनाम्न इति नामग्रहणात् संज्ञैवैषां न तु जात्यतिदेश' इति कस्यचिदाशङ्का स्यादतः स्पष्टार्थं 'षट् सुता द्विजधर्मिणः' इति वचनारम्भः। ये **पुनरपध्वंसजाः**

संकरजास्ते **शूद्राणां सधर्माणः** समानाचारास्तद्धर्मैरधिक्रियन्त इत्यर्थः। प्रतिलोमानां तु विशेषो वक्ष्यते।

अनन्तरग्रहणमनुलोमोपलक्षणार्थमेव। तेन व्यवहितोऽपि ब्राह्मणाद्वैश्यायां जातो गृह्यते। षट्संख्यातिरिक्तत्वान्न शूद्रायां पारशवः॥ ४१॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** अनुलोमजेषु विशेषमाह **स्वजातीति।** ब्राह्मणस्य ब्राह्मण्यां अनन्तरयोश्च क्षत्रियावैश्ययोरिति त्रयः क्षत्रियस्य, क्षत्रियावैश्ययोः द्वौ, वैश्यस्य वैश्यायामेक इति षट् द्विजानां सुताः द्विजधर्मिणः पितृजातीयसदृशाः। अत्र स्वजातिजग्रहणाद्वृत्त्यन्तरत्वेन योग्याः उपनयनादौ। अपरे त्वपध्वंसजाः संकरजाः शूद्रसधर्माणो न तथाविधसंस्काराद्यर्हाः॥ ४१॥

(३) **कुल्लूकः।** द्विजातिसमानजातीयासु जातास्तथानुलोम्येनोत्पन्ना ब्राह्मणेन क्षत्रियावैश्ययोः क्षत्रियेण वैश्यायामेवं षट् सुपुत्रा द्विजधर्मिण उपनेयाः, **तानन्तरनाम्नस्त्विति** (१०।१४) यदुक्तं तत्तज्जातिव्यपदेशार्थं न संस्कारार्थमिति कस्यचिद्भ्रमः स्यात्, अत एषां द्विजातिसंस्कारार्थमिदं वचनम्। ये पुनरन्ये द्विजात्युत्पन्ना अपि सूतादयः प्रतिलोमजास्ते शूद्रधर्माणो नैषामुपनयनमस्ति॥ ४१॥

(४) **राघवानन्दः।** तत्र विप्रादिवत् करणान्तानां त्रयाणां द्विजवदाशौचोपनयनाद्यतिदिशन् आयोगवक्षत्तृचण्डालमागधैवदेहसूतानां षण्णां शूद्रवदाशौचादिप्राप्तिमाह **सजातिजा इति। अपध्वंसजा इति।** पारिभाषिका आयोगवादयः॥ ४१॥

(५) **नन्दनः।** सङ्कीर्णजातीनां परिज्ञानोपायं शूद्रधर्मिणश्चाह **स्वजातिजानन्तरजा इति।** ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राः स्वजातिजाः अनन्तरवर्णजाताः अपध्वंसजाः प्रतिलोमजातयः॥ ४१॥

(६) **रामचन्द्रः।** स्वजातिजाः षट् सुताः द्विजधर्मिणः द्विजधर्मार्हाः उपनेयाः। शूद्राणां सधर्माणः सर्वे अपध्वंसजाः संकरजाः स्मृताः॥ ४१॥

(७) **मणिरामः।** सजातिजाः द्विजातिसमानजातीयासु जाताः। अनंतरजाः आनुलोम्येन जाताः। अन्ये सर्वे सूतादयः अपध्वंसजाः प्रतिलोमजाः॥ ४१॥

(८) **गोविन्दराजः। स्वजातिजानन्तरजा** इति। द्विजातीनां समानजातीयासु भार्यासु जाताः तथा नान्योत्पन्ना ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यां क्षत्रियावैश्ययोरित्येते षट् सुता द्विजधर्माणः उपनेतव्याः। तान् अनन्तरनाम्नस्तु इति अयं नामनिर्देशो व्यवहारार्थो न संस्कारार्थ इति कस्यचिद् भ्रान्तिः स्याद् इत्यत इदमेषां उपनयनार्थं वचनम्। ये पुनरन्ये सङ्करजाः सूतादयः ते सर्वे तुल्यरूपाः तेषां उपनयनं नास्ति द्विजात्युत्पन्नानामपि॥ ४१॥

(९) **भारुचिः।** स्वजातिजास्त्रिभ्यो द्विजातिभ्यः त्रयो ब्राह्मणीक्षत्रियवैश्यासु जाताः यथा संस्कारार्हाः तथानन्तरजाः ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यां वैश्ययोर्जाताः षट् सुता द्विजधर्मिणः। एवं च स्वजातिजातानामनन्तरजार्थग्रहणं न स्वार्थम्। ननु च ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यामनन्तरवर्णयोः क्षत्रियवैश्ययोर्जातौ द्वावेव भवतः। येन ब्राह्मणजाता वैश्यामला (?) रजः। असावप्यनन्तरज एवं अनुलोमार्थत्वात् द्विजधर्मत्व (प्रवर्त) न्निवर्तयति। 'शूद्रायां तु सधर्माणस्सर्वेऽपध्वंसजाः स्मृताः' इति। ब्राह्मणादिजाता अपि सन्तः। एवं च नैभिः सह...षड्ग्रहणम्। किं तर्हि?

स्वजातिजैस्सहानन्तरजानां। तथा च गौतम :–'प्रतिलोमास्तु धर्महीनाः शूद्रायां चे'ति। ननु च 'पुत्रा येऽनन्तरजा.....श्लोकार्थे। इति अयं पुनरुक्तः श्लोकः'। तत्र ह्युक्तानन्तर (नाम्नां हि) मातृदोषान् प्रचक्षत इति। अनन्तरनामत्वं चोभयथा प्रसज्यते। व्यवहारार्थं संज्ञया संस्कारार्थं च। यतः सन्देहनिवृत्त्यर्थमिदं त्रयाणां। द्विजातिधर्मत्वाभिधानम्। अथवा हेत्वर्थमिदं पूर्वश्लोकस्य कथं तानन्तन्तरना(म्ना) हि मातृदोषान् प्रचक्ष (त इ) त्यत्र कारणं वक्ति। यस्मात्–षट्सु द्विजधर्माणः इति। एवमपुनरुक्तत्वमस्य पूर्वश्लोकाद्विज्ञेयम्॥ ४१॥

**तपोबीजप्रभावैस्तु ते गच्छन्ति युगे युगे॥**
**उत्कर्षं चापकर्षं च मनुष्येष्विह जन्मतः॥४२॥**

(१) **मेधातिथिः**। त एतेऽनन्तरजास्**तपः**सामर्थ्येन **बीज**सामर्थ्येन **युगे युगे** जन्मनि जन्मनि **उत्कर्षमपकर्षं** च गच्छन्ति। तद्वक्ष्यामः 'शूद्रायां ब्राह्मणाज्जात' (१०। ६४) इत्यत्र। यदुक्तं 'स्वकर्मणां त्यागेनेति' तस्यैवायं प्रपञ्चः॥ ४२॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। तपोबीजप्रभावेण तपसा जात्युत्कर्षार्थकृतेन बीजस्य च द्विजजातीयसंबन्धिनः प्रभावेण ते योग्यतया व्यवहिता अपि द्विजधर्माणः युगे युगे उत्तरोत्तरप्रसूतिषु क्रमान्मनुष्येषु जन्मतो जात्युत्कर्षप्रथमप्रथमजातितः श्रेष्ठत्वमसत्कर्मकरणाच्चापकर्षशूद्रतोऽप्यधमां जातिं यान्ति। युगपदं मातापितृयोगसाध्यतया तत्साध्यायां संततौ वर्तते। एतेन ब्राह्मणात्क्षत्रियायां जातो मूर्धावसिक्तो मूर्धावसिक्तां विवाह्य स्वाचारादप्युक्तायां जनयति सततउत्कृष्टः। एवमुत्तरोत्तरं ज्ञेयम्। एवं क्रमेण पञ्चमी प्रसूतिर्ब्राह्मणजातिरेव भवति। एकान्तरवर्णजानां तु सप्तमी प्रसूतिः। एवं क्षत्रियाद्वैश्यायां जातेऽपि। एतदुक्तं **याज्ञवल्क्येन** 'जात्युत्कर्षो युगे ज्ञेयः पञ्चमे सप्तमेऽपि वा।' एवमसत्कर्मणां सद्विधानवत्पूर्वजात्युत्कर्षोऽपि द्रष्टव्यः॥ ४२॥

(३) **कुल्लूकः**। सजातिजानन्तरजाः, तपःप्रभावेण, विश्वामित्रवत्, बीजप्रभावेण ऋष्यश्रृङ्गादिवत्, कृतत्रेतादौ मनुष्यमध्ये जात्युत्कर्षं गच्छन्ति। अपकर्षं च वक्ष्यमाणहेतुना यान्ति॥ ४२॥

(४) **राघवानन्दः**। तपोबीजप्रभावैः सूतादीनामप्युत्कर्षो भवतीत्याह–तपो युगे जन्मनि। तपःप्रभावेण विश्वामित्रवत्। बीजप्रभावेण ऋष्यश्रृङ्गवत्। अपकर्षः कर्मणां त्यागादिना॥ ४२॥

(५) **नन्दनः**। एवं तावद्बीजक्षेत्रवशाज्जातीनामुत्कर्षापकर्षा वृत्ताविदानीं हेत्वन्तरवशादप्याह **तपोबीजप्रभावैश्चेति**। ते ब्राह्मणादयो द्विजधर्मिणश्च वर्णास्तप एव बीजं तपोबीजं, तपोबीजत्ववचनं जात्यन्तरोत्पादकत्वनिबन्धनं युगे युगे मिथुने मिथुने सन्ताने सन्ताने पुत्रपौत्रादिष्वपीत्यर्थः। युगशब्दस्य सन्तानवचनत्वमुत्तरत्र व्यक्तीभविष्यति। इह मनुष्येषु

मध्ये जन्मत उत्कर्षमपकर्षं च गच्छति, तस्मादुत्कर्षहेतुः सेव्योऽपकर्षहेतुस्त्याज्य इत्यभिप्रायः ॥ ४२ ॥

(६) **रामचन्द्रः** । युगे युगे जन्मनि जन्मनि तपोबीजप्रभावैरुत्कर्षं गच्छन्ति । जन्मतः जात्या इह मानुषेषु अपकर्षं नीचत्वं गच्छन्ति ॥ ४२ ॥

(७) **मणिरामः** । तपःप्रभावेण विश्वामित्रवत् । बीजप्रभावेण ऋष्यशृंगादिवत् युगे युगे कृतत्रेतादौ उत्कर्षं गच्छंति । अपकर्षं वक्ष्यमाणरीत्या ॥ ४२ ॥

(८) **गोविन्दराजः** । **तपोबीजप्रभावेण ते गच्छन्ति युगे युगे** इति । **ते स्वजातिजा** इति । अनन्तरजाः तपःप्रभावेण हेतुना जातितो गच्छन्ति ॥ ४२ ॥

(९) **भारुचिः** । अयं च श्लोको ब्राह्मणादिजातानां क्षत्रियाद्यासु पूर्वश्लोकविहितस्य संस्कारस्य स्तुत्यर्थो विज्ञेयः । तथा वक्ष्यति 'शूद्रायां ब्राह्मणाज्जात' इत्येवमादि । एवं च सत्येष वर्णविभाग उत्कर्षापकर्षसम्बन्धो मनुष्यविषय एव द्रष्टव्यः, न गवादिषु । अतश्च गवादीनां मातरि स्वसरि च जातस्यापरिहारः ॥ ४२ ॥

**शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः ॥**
**वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च ॥ ४३ ॥**

(१) **मेधातिथिः** । **क्रियालोपो** यत्र संस्कार्यतया संबध्यते, यथोपनयनादिषु; यत्र वा कर्तृतया यथा नित्याग्निहोत्रसंध्योपासनादिषु । तासां **लोप** उभयासामप्यननुष्ठानम् । अतश्च न केवलमुपनयनसंस्काराभावेन जातिभ्रंशः, अपि तूपनीतानां विहितक्रियात्यागेनापि । तथा चाह **शनकैरिति** । पुत्रपौत्रादिसंततेः प्रभृति शूद्रत्वं, न तु जातस्यैव । उपनयनाभावे तु तस्यैव व्यपदेशान्तरं प्रवर्तते । यद्यपि सा जातिर्न निवर्तते तत्पुत्रपौत्राणां भृज्जकण्टकादिजात्यन्तरमेव व्यपदेशहेतुकमिति ब्राह्मणातिक्रमेण ब्राह्मणविधिविहितातिक्रमेणेत्यर्थः । अथवा शास्त्रार्थसंशये प्रायश्चित्ते वा परिषद्गमनाभावः ॥ ४३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । अत्र दृष्टान्तमाह **शनकैरिति** । शनकैः क्रमेण वृषलत्वं शूद्रत्वं गताः क्रियालोपात् । तत्र हेतुः—ब्राह्मणादर्शनम् ॥ ४३ ॥

(३) **कुल्लूकः** । इमा वक्ष्यमाणाः क्षत्रियजातय उपनयनादिक्रियालोपेन ब्राह्मणानां च याजनाध्यापनप्रायश्चित्ताद्यर्थदर्शनाभावेन शनैः शनैर्लोके शूद्रतां प्राप्ताः ॥ ४३ ॥

(४) **राघवानन्दः** । तत्रैव कैमुतिकन्यायमाह **शनै(नकै)रिति** द्वाभ्याम् । क्रियालोपेन उपनयनाद्यभावेन । ब्राह्मणादर्शनेन याजनाध्यापनप्रायश्चित्ताद्यर्थं तेषां दर्शनाभावेन ॥ ४३ ॥

(५) **नन्दनः** । तपोबीजप्रभाव उत्कर्षहेतुत्वेनोक्तः, कः पुनरपकर्षहेतुरत्रेत्यपेक्षायामाह **शनकैरिति** । शनकैः संताने संताने ब्राह्मणानामदर्शनात्क्रियालोपात् ब्राह्मणादर्शननिमित्तात्क्रियालोपात् । इमा उत्तरश्लोके वक्ष्यमाणाः ॥ ४३ ॥

(६) **रामचन्द्रः** । लोके क्रियालोपात् सत्क्रियालोपात् इमाः क्षत्रियजातयः शनकैः वृषलत्वं शूद्रतां ब्राह्मणादर्शनेन ब्राह्मत्वबोधितकर्माननुष्ठानेन ॥ ४३ ॥

(७) **मणिरामः**। अपकर्षप्रकारमाह **शनकैरिति**। इमाः वक्ष्यमाणाः। क्रिया उपनयनादि। वृषलत्वं शूद्रत्वं ब्राह्मणाऽदर्शनेन च। प्रायश्चित्तार्थं ब्राह्मणानां समीपे आगमनेन ॥ ४३ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। तथा चाह **शनकैरिति**। इमा वक्ष्यमाणाः क्षत्रियजातयः सत्य उपनयनादिक्रियालोपेन ब्राह्मणानां च यजनाध्यापनप्रायश्चित्ताद्यर्थं दर्शनाभावेन शनैः शनैः लोके शूद्रतां प्राप्ताः ॥ ४३ ॥

(९) **भारुचिः**। 'व्यभिचारेण वर्णानामवेद्यावेदनेन च। स्वकर्मणां च त्यागेन जायते वर्णसङ्करः ॥' इति (१०।२४) यदुक्तं तस्य प्रपञ्चोऽयं शूद्रवत्कर्मानधिकारेति या लो... चात्र हेतुः **ब्राह्मणादर्शनेन** चेति। तदभावात् प्रायश्चित्ताभावमाह—अथवोभयार्थं ब्राह्मणादर्शनं क्रियालोपहेतुः। प्रायश्चित्ताभावहेतुश्च अपकर्षहेतुप्रदर्शनं च परिहारार्थम्। यतस्ते प्रदर्श्यन्ते ॥४३॥

**पुण्ड्रकाश्चौड्रद्रविडाः काम्बोजा यवनाः शकाः ॥**
**पारदा पह्लवाश्चीनाः किराता दरदाः खशाः ॥ ४४ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। पुंड्रकादयः शब्दाः परमार्थतो जनपदशब्दाः, इह तु 'क्षत्रियेषु मुख्यास्तत्संबन्धत्वाज्जनपदेषु वर्तन्त' इत्येतद्दर्शनमाश्रितम्। यथा लुग्विधौ 'तस्य निवासो', 'जनपदे लुगिति' न तु यथा 'लुग्योगात्प्रख्यानादिति'।

नैतेषु देशेषु बाहुल्येन चातुर्वर्ण्यमस्तीत्येतदालंबनं वृषलत्ववचनम्। यदि वा पुंड्रादयः शब्दाः कथंचिद्देशसंबन्धेन विना दृश्यन्ते, तदैतज्जातीया वेदितव्याः। 'महाभारतादौ क्षत्रिया वर्ण्यन्ते तथाऽद्यत्वेऽप्येते क्षत्रिया एवेति' कस्यचित् भ्रान्तिः स्यादत एवमुक्त-'मेते वृषला' इति।

ये चैते दिगन्तवासिनः किरातवेनदरदादयस्तेषामप्राप्तरूपं वेदेनानूद्यते 'न जनमियान्नांतमियादिति' (बृ० उप० १।३।१०) ॥ ४४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। तानाह **पुण्ड्रका इति** ॥ ४४ ॥

(३) **कुल्लूकः**। पौण्ड्रादिदेशोद्भवाः संतः क्रियालोपादिना शूद्रत्वमापन्नाः ॥ ४४ ॥

(४) **राघवानन्दः**। पौण्ड्रकादय एकादश, पतितक्षत्रिया नरजातयः ॥ ४४ ॥

(५) **नन्दनः**। ता एव जातीरुदाहरति **पौण्ड्रका इति** ॥ ४४ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। एते पौण्ड्रकादयः खशान्ता उक्ताः ॥ ४४ ॥

(७) **मणिरामः**। पुण्ड्रकादयो हि किरा(ताः) क्षत्रियास्सन्तः क्रियालोपाच्छूद्रीभूताः ॥ ४४ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **पौण्ड्रका** इति। पौण्ड्रकादयः क्षत्रियाः सन्तः क्रियालोपादिना शूद्रत्वमापन्नाः ॥ ४४ ॥

(९) **भारुचिः**। ये शूद्रतां गतास्तानाह **पौण्ड्रका इति**। पौड्रादिदेशोद्भवाः ॥ ४४ ॥

**मुखबाहूरुपज्जानां या लोके जातयो बहिः ।।**
**म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः ।।४५।।**

(१) **मेधातिथिः** । असदविद्यमानार्थासाधुशब्दान्वया वाक् **म्लेच्छो**च्यते । यथा शबराणां किरातानामन्येषां वान्त्यानाम् ।

**आर्यवाच** आर्यावर्तनिवासिनः । ते चातुर्वर्ण्यादन्यजातीयत्वेन प्रसिद्धास्तदा **दस्यव** उच्यन्ते । एतदुक्तं भवति– न देशनिवासेन म्लेच्छवाक् संकरत्वे कारणमपि तु यथोक्त-बर्बरादिशब्दप्रसिद्धिर्मुखादिजानां बहिष्क्रियते ब्राह्मणादिशब्दैरप्रसिद्धैरित्यर्थः । ते सर्वे दस्यव उच्यन्ते ।।४५।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । उक्तमर्थमाक्षेप्याह **मुखे**ति । पञ्चम्यर्थे षष्ठी । चतुर्भ्यो वर्णेभ्यो येऽन्ये ते यदि म्लेच्छदेशस्थतया म्लेच्छवाचः स्युर्यदि वार्यदेशवासादार्यवाचस्तथापि दस्यवोऽपसदा एव ।।४५।।

(३) **कुल्लूकः** । ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राणां क्रियालोपादिना या जातयो बाह्या जाता म्लेच्छभाषायुक्ता आर्यभाषोपेता वा ते दस्यवः सर्वे स्मृताः ।।४५।।

(४) **राघवानन्दः** । बाह्यानुलोमप्रतिलोमजानां त्रिंशतां कर्माणि वक्ष्यंस्तान-नुवदति **मुखे**ति द्वाभ्याम् । मुखबाहूरुपज्जानां ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्राणां तेभ्यश्चतुर्भ्यो बहिर्जा-तयस्ताः म्लेच्छवाचः म्लेच्छवत् भाषणानि येषां ते ।।४५।।

(५) **नन्दनः** । अनुलोमजातीनां प्रतिलोमजानां च साधारणीं संज्ञामाह **मुखबाहू-रुपज्जानामिति** । आर्यवाचः संस्कृतवाचः ।।४५।।

(६) **रामचन्द्रः** । मुखबाहूरुपज्जानां चतुर्वर्णानां जातयः याः लोके बहिर्द्विजक्षेत्र-वैश्यशूद्रात् अन्ये सर्वे ते दस्यवः स्मृताः ।।४५।।

(७) **मणिरामः** । मुखबाहूरुपज्जानां ब्राह्मणादिचतुर्णां बहिः बाह्याः । म्लेच्छवाचः म्लेच्छभाषायुक्ताः । आर्यवाचः आर्यभाषायुक्ता वा । ते सर्वे दस्यवः स्मृताः ।।४५।।

(८) **गोविन्दराजः** । **मुखबाहूरुपज्जानामिति** । ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राणां या बाह्याः क्रियालोपादिना जातयो म्लेच्छभाषोपेता आर्यभाषायुक्ता वा बर्बरकालाद्यास् ते सर्वे दस्युशब्दवाच्याः स्मृताः ।।४५।।

(९) **भारुचिः** । न केवलं क्षत्रियाणां, किन्तर्हि ? सर्ववर्णानामेव क्रियालोपाद्बाह्य-त्वम् । **ब्राह्मणादर्शनेन चेति** । यतश्चैतदेवम् अतस्त्रयोऽप्यपभ्रंशहेतवः यत्नतः परिहरणीयाः । ते च बर्बरा मण्डिका इत्येवमादयः । 'सूते दस्युरयोगव' इत्यत्रापि अनेन वेदितव्यः ।। ४५ ।।

**ये द्विजानामपसदा ये चापध्वंसजाः स्मृताः ।।**
**ते निन्दितैर्वर्तयेयुर्द्विजानामेव कर्मभिः ।।४६।।**

(१) **मेधातिथिः** । **अपसदा** अनुलोमाः प्रतिलोमाः । **अपध्वंसजा** गोबलीवर्दवद्भेदः ।

**द्विजानामुपयोगिभिः प्रेष्यकर्मभिर्वर्तयेयुः** आत्मानम्। **निन्दितैः** प्रेष्यकार्यत्वान्निन्दितानि। तथा च वक्ष्यते ॥४६॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। तथा च वक्ष्यते द्विजानामपसदा द्विजसधर्माणः षट् ये चापध्वंसजाः शूद्रसधर्माणः। निन्दितैर्द्विजानां कर्मभिः द्विजानां भृत्यतया तत्तदुशनःप्रभृतिस्मृत्युक्त' कर्म कुर्वन्ति ॥४६॥

(३) **कुल्लूकः**। ये द्विजानामानुलोम्येनोत्पन्नाः 'षडेतेऽपसदाः स्मृता' (१०।१०) इति तेषामपि पितृतो जघन्यत्वेनापसदशब्देन प्रागभिधानादपध्वंसजास्ते द्विजात्युपकारकैरेव निन्दितैर्वक्ष्यमाणैः कर्मभिर्जीवेयुः ॥४६॥

(४) **राघवानन्दः**। अपसदा मूर्धाभिषिक्तादयः षट्। अपध्वंसजाः सूतादयः। सैरन्ध्रादीनां विशेषणेनैव कर्मलाभः। प्रायेण निन्दितैः द्विजातिषु प्रतिषिद्धैः द्विजानां द्विजात्यपेक्षितैः कर्मभिः ॥४६॥

(५) **नन्दनः**। अथ दस्यूनां साधारणीं वृत्तिमाह **ये द्विजानामपसदा इति**। अपसदाः चौर्यजाता अनुलोमजाः अभिषिक्तादयः। अपध्वंसजाः प्रतिलोमजाः सूतादयः अनुलोमजेष्वप्यनन्तराः पुत्रव्यतिरिक्ता अंबष्ठादयश्च सजातीयेष्वपि कुण्डगोलकादयश्च द्विजानामेव कर्मभिर्द्विजार्थैरेव कर्मभिः चिकित्साऽश्वसारथ्यादिभिर्वर्तयेयुर्जीवेरन् ॥४६॥

(६) **रामचन्द्रः**। ये द्विजानां ब्राह्मणक्षत्रियविशां सकाशादपसदाः सूताम्बष्ठवैदोपध्वंसजाः ते निन्दितैः कर्मभिः सेवादिभिः द्विजानां कर्मभिः उपयोगिभिर्वर्तेरन् ॥४६॥

(७) **मणिरामः**। द्विजातिस्त्रीषु शूद्रादिभिः प्रतिलोमजाता आयोगवादयश्चण्डालवर्जं ये चापध्वंसजाः शूद्रायां द्विजातिभिरनुलोमा अपि सन्तः। तथा चोक्तम्–'शूद्रायां तु सधर्माणः सर्वेऽपध्वंसजाः स्मृताः।' ते निन्दितैर्वर्तेयुरात्मानम्। वृत्तिनियमार्थोऽयमुपदेशस्तेषाम् ॥४६॥

(८) **गोविन्दराजः**। **य** इति। ये द्विजानां प्रातिलाम्येनोत्पन्ना ये च द्विजातिभिरपि शूद्रायां आनुलोम्येन जातास्ते द्विजात्युपकारकैरेव अनिन्दितैः कर्मभिः जीवेयुः ॥४६॥

(९) **भारुचिः**। ये द्विजानां आनुलोम्येन उत्पन्नाः षट् ते अपसदाः स्मृताः। ये च द्विजातिकान्यासु प्रतिलोमे षट् सूतादयः उत्पन्नाः ते अपध्वंसजाः स्मृताः। ते, द्वादश अपि द्विजानां निंदितैः वक्ष्यमाणैः कर्मभिरेव वर्तयेयुः जीवेयुः ॥४६॥

**सूतानामश्वसारथ्यमम्बष्ठानां चिकित्सनम् ॥**
**वैदेहकानां स्त्रीकार्यं मागधानां वणिक्पथः ॥ ४७ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **स्त्रीकार्यमन्तःपुररक्षाकारित्वम्**। **वणिक्पथः** स्थलपथवारिपथादिः प्रसिद्धः ॥४७॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। तदेव कियदप्याह **सूतानामिति**। स्त्रीकार्यमन्तःपुररक्षा। वणिक्पथो वाणिज्यम् ॥४७॥

(३) **कुल्लूकः**। सूतानामश्वदमनयोजनादिरथसारथ्यं जीवनार्थं अम्बष्ठानां रोगशान्त्यादिचिकित्सा, वैदेहकानामन्तःपुररक्षणं, मागधानां स्थलपथवणिज्या ।।४७।।

(४) **राघवानन्दः**। तानि कर्माण्याह **सूतानामिति** दशभिः। चिकित्सितं भिषक्क्रिया स्त्रीकार्यमन्तःपुरादिरक्षा। वणिक्पथः नौयायित्वम् ।।४७।।

(५) **नन्दनः**। तेषां साधारणीं च वृत्तिमाह **सूतानामश्वसारथ्यमिति**। स्त्रीकार्यमन्तःपुरादिषु स्त्रीरक्षा। वणिक्पथो वाणिज्यम् ।।४७।।

(६) **रामचन्द्रः**। अम्बष्ठानां शूद्रादम्बष्ठा जाताः चिकित्सकं शास्त्रं वैद्यकं। स्त्रीकार्यं अन्तःपुररक्षणम् ।। ४७ ।।

(७) **मणिरामः**। तानि कर्माण्याह **सूतानामिति**। स्त्रीकार्यं अंतःपुररक्षादि। वणिक्पथः वाणिज्यं ।।४७।।

(८) **गोविन्दराजः**। **सूतानामिति। वैदेहकानां स्त्रीकार्यं मागधानां वणिक्पथः**। सूतानाम् अश्वदमनयोजनादिकम्, अम्बष्ठानां कायशल्यादिचिकित्सा, वैदेहकानामन्तःपुररक्षादि, मागधानां स्थलपथवारिपथवाणिज्या। अम्बष्ठश्चात्र अवद्यायां शूद्रजातौ बौधायनदर्शनाद् विज्ञेयो न तु ब्राह्मणेन वैश्याज्जातः एतच्छास्त्रोक्ता ये द्विजानामपसदा ये यापध्वंसजाः सुताः ते निन्दितैः वर्तयेयुरिति प्रस्तुतत्वात् ।।४७।।

(९) **भारुचिः**। तथा च दर्शयति—तत्राम्बष्ठजातः प्रतिलोमो गृह्यते। सामर्थ्यात्। अम्बष्ठ्यां वा प्रतिलोमेन। काञ्चुकीयत्वे मागधानां वणिक्पथः हंसपथवारिपथाख्याः।

**मत्स्यघातो निषादानां तष्टिस्त्वायोगवस्य च ।।**
**मेदान्ध्रचुञ्चुमद्गूनामारण्यपशुहिंसनम् ।। ४८ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। त्वष्टिर्दारुतक्षणं तक्षकर्म ।।४८।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। निषादा निषादजानां कैवर्तानां तेन कैवर्तोऽपि निषादपदेनोच्यत इति दर्शितम्। तथा च 'जाता निषादा रुद्राया' मित्यत्र निषादपदेन स एवोच्यत इति। त्वष्टिस्तक्षणं काष्ठादेः। झल्लमल्लपदाभ्यां प्रागुक्तौ ।। ४८ ।।

(३) **कुल्लूकः**। निषादानामुक्तानां मत्स्यवधः आयोगवस्य काष्ठतक्षणं, मेदान्ध्रचुञ्चुमद्गूनामारण्यपशुमारणं चुञ्चुर्मद्गुश्च वैदेहकबन्दिस्त्रियोर्ब्राह्मणेन जातौ बौधायनेनोक्तौ बोद्धव्यौ। बन्दिस्त्री च क्षत्रियेण शूद्रायां जाता सोग्रैव ग्राह्या ।।४८।।

(४) **राघवानन्दः**। त्वष्टिः काष्ठतक्षणम्। चुञ्चुमद्गू वैदेहीमागध्यौ ब्राह्मणजौ **बोधायनोक्तौ** ।।४८।।

(५) **नन्दनः**। तष्टिस्तक्षणं चुञ्चुमद्गू जातिविशेषौ शास्त्रान्तरप्रसिद्धिमाश्रित्योक्तौ अथवा तद्विषयश्लोको नूनं लेखकापराधाद् भ्रष्टः ।।४८।।

(६) **रामचन्द्रः**। आयोगवस्य त्वष्टिस्तक्षणम्। मेदान्ध्रचुंचुमद्गूनां आरण्यपशुजीवनम् ।।४८।।

(७) **मणिरामः**। त्वष्टिः काष्ठतक्षणं, वैदेहकस्त्रियां ब्राह्मणाज्जातः चुञ्चुः। बन्दिस्त्रियां विप्राज्जातो मद्गुः। निषादप्रभवा बाह्याः निषादशब्देन गृह्यन्ते, सामर्थ्यात्। तथा च कृतव्याख्यानमेतत् पुरस्तादिति ।।४८।।

(८) **गोविन्दराजः**। **मत्स्यघात** इति। **मेदान्ध्रचुंचुमद्गूनामारण्यपशुहिंसनम्**। आयोगवस्य तक्षणं मेदान्ध्रचुंचुमद्गूनामारण्यपशुमारणं। मागधक्षत्तारौ चुंचुमद्गू। यथाह **यमः** 'क्षत्रियायां तु वैश्येन चुंचुको नाम जायते। शूद्रेण जायते मद्गुः क्षत्रिया यत्र मुह्यति'।

(९) **भारुचिः**। संज्ञान्तरेणानयोर्निर्देशो देशभेदेनैषां सर्वेषामनेकनामता च भवतीति ज्ञापनार्थम्। तथा च स्मृत्यन्तरे 'तेषां नामान्तराण्यपि दृश्यन्ते' ।।४८।।

**क्षत्रुग्रपुल्कसानां तु बिलौकोवधबन्धनम् ।।**
**धिग्वणानां चर्मकार्यं वेणानां भाण्डवादनम् ।। ४९ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **बिलौकसो**ऽहिनकुलगर्गरादयः। तेषां **वधबन्धनं** क्षत्रादीनां जीविका। **चर्मकार्यं** कवचादिसीवनमुपानद्ग्रथनमित्येवमादि। **भाण्डवादनं** मुरजार्धमुरजादीनाम् ।।४९।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। बिलौकसः सर्पाद्याः। भाण्डवादनं वाद्यभाण्डवादनम् ।।४९।।

(३) **कुल्लूकः**। क्षत्रादीनां बिलनिवासिगोधादिवधबन्धनं, धिग्वणानां चर्मकरणं तद्विक्रयश्च 'चर्मकरणं तद्विक्रयश्च जीवनं धिग्वणाना'मित्यौशनसदर्शनात्, अत एव कारावरेभ्य एषां वृत्तिच्छेदः वेणानां कांस्यमुरजादिवाद्यभाण्डवादनम् ।।४९।।

(४) **राघवानन्दः**। बिलौकोवधबन्धनं बिलौको गोधाकूर्मादि। चर्मकार्यं चर्मशोधनं पादुकादिनिर्माणं कारावरस्येति विशेषः। भाण्डं वादनभाण्डं कांस्यमुरजादि ।।४९।।

(५) **नन्दनः**। बिलौकोवधबन्धनं बिलौकसः श्वाविमूषिकगोऽश्वादयः चर्मकार्यं चर्मकारकृत्यं शस्त्रमार्जनम् ।।४९।।

(६) **रामचन्द्रः**। क्षत्ता उग्रः पुल्कसः बिलौकसर्पादीनां वधजीवनं सर्पान् बद्ध्वा जीवन्ति ।।४९।।

(७) **मणिरामः**। बिलौकोवधबंधनं बिलनिवासिनां गोधादीनां वधबंधनं भांडवादनं कांस्यमुरजादिभांडवादनं ।।४९।।

(८) **गोविन्दराजः**। **क्षत्रुग्रपुल्कसानामिति**। क्षत्रादीनां श्वाविड्गोधादिवधबन्धनमुग्रश्चात्र निकृष्टकर्माभिधानादुग्रजातिः प्रतिलोमः कश्चिद्वेदितव्यो नर्तकोऽनुलोमस्तस्य हि द्विजातिशुश्रूषाधानाध्यक्षता इत्याद्यौशनसोक्ता वृत्तिर्दर्शिता। धिग्वणानां चर्मकरणतद्विक्रयौ, 'चर्मकरणं तद्विक्रयजीवनं धिग्वणानां चे'ति औशनसदर्शनात्। अतः कारावरेभ्यः एषां वृत्तिभेदौ वेणानां च वंशमुरजादिवाद्यभाण्डवादनम् ।।४९।।

**चैत्यद्रुमश्मशानेषु शैलेषूपवनेषु च ।।**
**वसेयुरेते विज्ञाता वर्तयन्तः स्वकर्मभिः ।। ५० ।।**

(१) **मेधातिथिः** । बहिर्ग्रामनिवासिनः पर्वतलक्षणप्रदेशे निवसेयुः । **विज्ञाता** जातिचिह्नं विदुषाम् । यद्यस्य कर्म विहितं स तेनैव जीवेत् । उत्कृष्टं कर्मसंकरं कर्तुं न लभते ।।५०।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । एते सूतादयः विज्ञाताश्चिन्हिताः ।।५०।।

(३) **कुल्लूकः** । ग्रामादिसमीपे ख्यातवृक्षश्चैत्यद्रुमस्तन्मूले श्मशानपर्वतवनसमीपेषु चामी प्रकाशकाः स्वकर्मभिर्जीवन्तो वसेयुः ।।५०।।

(४) **राघवानन्दः** । किंच **चैत्येति** । स्वकर्मभिर्विज्ञाताश्चैत्यवृक्षादिषु वसेयुरित्यन्वयः ।।५०।।

(५) **नन्दनः** । विज्ञातास्ते ज्ञातयः वर्तयन्तः जीवन्तः ।।५०।।

(६) **रामचन्द्रः** । स्वकर्मभिर्वर्तयन्तो विज्ञाता एते पौण्ड्रकादयः यस्य ।।५०।।

(७) **मणिरामः** । उपवनेषु ग्रामादिसमीपे चैत्यद्रुमः ख्यातवृक्षः ।। ५० ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **चैत्यद्रुमश्मशानेषु** इति । ग्रामादिसमीपे ख्यातवृक्षश्चैत्यस्तन्मूलश्मशानपर्वतवनसमीपेषु एते प्रकाशाः सन्तः स्वकर्मभिर्जीवन्तो वसेयुः ।। ५० ।।

(९) **भारुचिः** । ग्रामादिसमंपेषु अमी पूर्वोक्ताः । विज्ञाताः प्रकाशाः स्वकर्मभिर्जीवन्तः ।

**चण्डालश्वपचानां तु बहिर्ग्रामात्प्रतिश्रयः ।।**
**अपपात्राश्च कर्तव्या धनमेषां श्वगर्दभम् ।। ५१ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । **प्रतिश्रयो** निवासस्तेषां **ग्रामान्निष्क्रान्तः** स्यात् । **अपपात्राश्चिरवसनीयास्तैर्येषु पात्रेषु भुक्तं तानि न संस्कार्याणि, त्यक्तव्यानि । सौवर्णराजताभ्यामन्यानि । तयोः शुद्धिविशेषा उक्ताः । अथवाऽपपात्राः** । तदीयेषु च सक्तेषु पात्रेषु सक्तुभक्तादि न दातव्यम् । भूमिष्ठे पात्रेऽन्यहस्तस्थे वा दत्वा तत्पात्रं भूमौ स्थितं ते गृह्णीयुः । भिन्नं वा पात्रमपपात्रं यथा वक्ष्यति "भिन्नभाण्डे च भोजनम्" इत्यादि । **धनमेषां श्वगर्दभम्** । गवाश्वादि सुवर्णरजतादि न धनत्वेन गृह्णीयुः ।। ५१ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । चाण्डालश्वपचानां तु ग्राममलाद्याकर्षकर्तृकत्वाद्ग्रामाद्बहिरेवावस्थानम् । अपपात्राः पात्रबहिर्भूताः तै स्पृष्टं पात्रादि न स्पृश्यमित्यर्थः ।। ५१ ।।

(३) **कुल्लूकः** । प्रतिश्रयो निवासः चण्डालश्वपाकानान्तु ग्रामाद्बहिर्निवासः स्यात् । पात्ररहिताः कर्तव्या यत्र लोहादिपात्रे तर्भुक्तं तत्संस्कृत्यापि न व्यवहर्तव्यं, धनं चैषां कुक्कुरखरं न वृषभादि, वासांसि च शववस्त्राणि, भिन्नशरावादिषु च भोजनं लौहवलयादिश्चालङ्करणं सर्वदा च भ्रमणशीलत्वम् ।। ५१–५२ ।।

(४) **राघवानन्दः**। उक्तः श्वपाकः श्वपचः तेषां प्रतिश्रयो निवासः। अपपात्राः तैर्भुक्तानि पात्राणि संस्कृतान्यपि न व्यवहरणीयानि ॥ ५१ ॥

(५) **नन्दनः**। बहिर्ग्रामान्निर्गतः अपपात्रा अपगतकांस्यादिपानभोजनपात्रा मृण्मयपात्रा इत्यर्थः ॥ ५१ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। अपपात्रा अस्पृश्यपात्राः धातुमयपात्ररहिताः कर्तव्याः। एषां चाण्डालादीनां धनं श्वगर्दभम् ॥ ५१ ॥

(७) **मणिरामः**। प्रतिश्रयः निवासः। अपपात्राः पात्ररहिताः ॥ ५१ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **चण्डालश्वपचानामिति**। **वासांसीति**। चण्डालश्वपाकानां ग्रामाद् बहिर्निवासः स्यात्। पात्रबहिष्कृताश्च कर्तव्याः यतः तदुक्तं, लोहादिपात्रं संस्कारेणापि न शुध्यति। धनं चैषां श्वखरं नान्यत्, वासांसि च शववस्त्राणि। खण्डशरावादिषु च भोजनम्। आयसं च अलंकरणम्। सर्वदा नैकत्रावस्थानम् ॥ ५१–५२ ॥

**वासांसि मृतचैलानि भिन्नभाण्डेषु भोजनम् ॥**
**काष्णायसमलङ्कारः परिव्रज्या च नित्यशः ॥ ५२ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। सर्वकालं **परिव्रज्या**, नैकत्र स्थाने वसेयुः ॥ ५२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। काष्णायसं लौहम्। परिव्रज्या सर्वतो भ्रमणमेकत्रानवस्थानम् ॥ ५२ ॥

(४) **राघवानन्दः**। अत एवाह **भिन्नभाण्डेति**। पृथक्पात्रे भोजनं देयम्। काष्णायसमलंकारः कृष्णायो लोहं तद्विकारः, प्रव्रज्या भ्रमणं न तेषां स्थिरनिकेतनम्। नित्यपदेन संन्यासी व्यावर्तितः 'दयार्थं सर्वभूतानां वर्षास्वेकत्र संवसे'दिति संन्यासिनः स्थितिस्मरणात् ॥ ५२ ॥

(५) **नन्दनः**। परिव्रज्या दूरोपसर्पणम् ॥ ५२ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। काष्णायसं लोहमयं, परिव्रज्या नित्यभ्रमणं, परिधानार्थं मृतानां चेलानि वासांसि ॥ ५२ ॥

(७) **मणिरामः**। काष्णायसं लौहं। परिव्रज्या च नित्यशः सर्वदाभ्रमणशीलत्वं ॥ ५२ ॥

**न तैः समयमन्विच्छेत्पुरुषो धर्ममाचरन् ॥**
**व्यवहारो मिथस्तेषां विवाहः सदृशैः सह ॥ ५३ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **समयः** 'संकेत' 'एककार्यता 'संगति'रित्यनर्थान्तरम्। एकत्र स्थानासनविहारास्तैः सह न कर्तव्या इत्यर्थः। **विवाहो** दारग्रहणादिः। सोऽप्येवमेव ॥ ५३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। समयं व्यवहारम्। व्यवहारः संभाषणे भाजनादिः ॥ ५३ ॥

(३) **कुल्लूकः**। धर्मानुष्ठानसमये चण्डालश्वपाकैः सह दर्शनादिव्यवहारं न कुर्यात्, तेषां च ऋणदानग्रहणादिव्यवहारो विवाहश्च समानजातीयैः सहान्योन्यं स्यात् ॥ ५३ ॥

(४) **राघवानन्दः**। यो हि धर्ममाचरन् स तैः समयं दर्शनालापादि नान्विच्छेदित्यन्वयः। व्यवहारः ऋणादिः ।। ५३ ।।

(५) **नन्दनः**। समयं संगतं धर्ममाचरन्धार्मिकमिति यावत्, मिथोऽन्योन्यव्यवहारः क्रयविक्रयौ ।। ५३ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। समयं व्यवहारं तैः सह नियच्छेत् ।। ५३ ।।

(७) **मणिरामः**। धर्मं आचरन् तैः सह समयं न अन्विच्छेत् । धर्मानुष्ठानसमये चंडालश्वपाठार्कसिंहदर्शनादिव्यवहारं न कुर्यात्। व्यवहारः ऋणादिरूपः ।। ५३ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **न तैरिति**। धार्मिकः पुरुषः चण्डालश्वपचैः सह लोकयात्रादि-व्यवहारान् न कुर्यात् । तेषां च दानग्रहणादिव्यवहारो विवाहश्च समानजातीयैः सह परस्परं स्यात् ।। ५३ ।।

**अन्नमेषां पराधीनं देयं स्याद्भिन्नभाजने ।।**
**रात्रौ न विचरेयुस्ते ग्रामेषु नगरेषु च ।।५४।।**

(१) **मेधातिथिः**। तत्साक्षादेषां न दातव्यम् । प्रेष्यैः कैश्चित्पूर्वोक्तेन प्रकारेण दापयितव्यः। रात्रौ स्पर्शाशङ्क्याऽन्तर्ग्रामनगरचर्याप्रतिषेधः ।। ५४ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अन्नं पक्वं पराधीनं परपाकसिद्धं न स्वयं गृहे निवसन्तः पचेयुरित्यर्थः। भिन्नभाजने भग्नशरावादौ ।। ५४ ।।

(३) **कुल्लूकः**। अन्नमेषां परायत्तं कार्यं, साक्षादेभ्यो न देयं; किन्तु प्रेष्यैर्भिन्नपात्रे दातव्यम्; ते च रात्रौ ग्रामनगरयोर्न पर्यटेयुः ।। ५४ ।।

(४) **राघवानन्दः**। पराधीनं परंपरया देयं, तत्रापि भिन्नभाजने भग्ने। रात्रौ न चरेयुः दस्युत्वात्तेषामिति भावः ।। ५४ ।।

(५) **नन्दनः**। भिन्नभाण्ड इत्येव सिद्धे भिन्नभाजन इति पुनर्वचनमादराति-शयार्थम् ।।५४।।

(६) **रामचन्द्रः**। अन्नं एषां पराधीनं परपाकसिद्धं स्वसहायशूद्रद्वारा दातव्यं वा भिन्नभाजने भिन्नशरावादौ ।। ५४ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **अन्नमिति**। अन्नं चैषां परायत्तं न तु स्वतः साधितम्। तच्च भिन्नपात्रे एषां दातव्यम् । ते च रात्रौ ग्रामनगरयोर्न पर्यटेयुः ।। ५४ ।।

(९) **भारुचिः**। साक्षान्न दातव्यं किंतु प्रेष्यैः भिन्नपात्रे दातव्यमित्यर्थः ।। ५४ ।।

**दिवा चरेयुः कार्यार्थं चिह्निता राजशासनैः ।।**
**अबान्धवं शवं चैव निर्हरेयुरिति स्थितिः ।। ५५ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **दिवा** विचरन्ति **कार्यार्थं** क्रयविक्रयस्वकार्यसिद्ध्यर्थम्। राजकार्याय

वा चरेयुर्नगरोत्सवप्रेक्षादिनिमित्तम् । तत्रापि च **चिह्निता राजशासनै**रुपलक्षिता राजादिष्टैर्वज्रादिचिन्हैः, वध्यवधशासनैर्वा परशुकुठारादिभिः स्कन्धारोपितैः ।। ५५ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । राजशासनैः राज्ञा नियमितैश्चिन्हैः लोहाभरणवत्पिच्छादिभिः । निर्हरेयुः बहिर्नयेयुः ।। ५५ ।।

(३) **कुल्लूकः** । दिवा ग्रामादौ क्रयविक्रयादिकार्यार्थं राजाज्ञया चिन्हाङ्किताः सन्तः पर्यटेयुः, अनाथं च शवं ग्रामान्निर्हरेयुरिति शास्त्रमर्यादा ।। ५५ ।।

(४) **राघवानन्दः** । दिवसे चेच्चिन्हिताः ललाटादिष्वङ्किताः । निर्हरेयुर्ग्रामात् ।।५५।। राजशासनैः राजाज्ञाभिः चिन्हिताः लोका न स्पृशेयुरेतदर्थं चिन्हाङ्किताः ।। ५५ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **दिवेति** । दिवा ग्रामादौ राजादिष्टक्षुरादिचिन्हाङ्किताः सन्तः सप्रयोजनं पर्यटेयुः । अनाथं शवं ग्रामान्निर्हरेयुरिति साधुमर्यादा ।। ५५ ।।

**वध्यांश्च हन्युः सततं यथाशास्त्रं नृपाज्ञया ।।**
**वध्यवासांसि गृह्णीयुः शय्याश्चाभरणानि च ।। ५६ ।।**

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । यथाशास्त्रं दण्डप्रकरणोक्तक्रमेण ।। ५६ ।।

(३) **कुल्लूकः** । वध्यांश्च शास्त्रानतिक्रमेण शूलारोपणादिना सर्वदा राजाज्ञया हन्युः तद्वस्त्रशय्यालङ्कारांश्च गृह्णीयुः ।। ५६ ।।

(४) **राघवानन्दः** । वध्यान् वधार्हान् । यथाशास्त्रं शूलार्पणादिना ।। ५६ ।।

(५) **नन्दनः** । नृपाज्ञया यथाशास्त्रं यथाशासनं यथाज्ञप्तं हन्युः शय्याश्चाभरणानि च वध्यानामिति विपरिणामः ।। ५६ ।।

(७) **मणिरामः** । यथाशास्त्रं शूलारोपणादिना ।। ५६ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **वध्यानिति** । राजाज्ञया च शास्त्रानतिक्रमेण, शुद्धवधशूलारोपणादिना सर्वदा वधार्हान् हन्युः तद्वस्त्रशय्यालंकरणानि च गृह्णीयुः ।। ५६ ।।

(९) **भारुचिः** । वृत्तिनिवासप्रकरणं वर्णापसदानामेवैतत् । आगमाभावे चानतवेतं(?) प्रतिलोमं निन्दितकर्माभ्याससामर्थ्यात् अविज्ञातमागत... ।।५६।।

**वर्णापेतमविज्ञातं नरं कलुषयोनिजम् ।।**
**आर्यरूपमिवानार्यं कर्मभिः स्वैर्विभावयेत् ।। ५७ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । **वर्णादपेतं** चातुर्वर्ण्याद्भ्रष्टम् । **अविज्ञातं** सत्यां शङ्कायां जारजातम् । वक्ष्यमाणैः **कर्मभिः** स्वभावातिशयैश्च निश्चिनुयात् । हीनकर्मरतिः क्रूरकर्मा च सत्यां शङ्कायां **कलुषयोनिजो** जारजातो वेदितव्यः ।। ५७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । वर्णापेतं वर्णभ्रष्टं वर्णबाह्यम् । अविज्ञातं तथा च निश्चितम् । तथा कलुषयोनिजमननुरूपविवाहजातम् । अनार्यं वस्तुतः । कर्मभिर्वक्ष्यमाणैः स्वैः संकरजानां साधारणैः ।। ५७ ।।

(३) **कुल्लूकः**। वर्णत्वादपेतं मनुष्यं सङ्करजातं लोकतस्तथात्वेनाविज्ञातमत एवार्यसदृशं वस्तुतः पुनरनार्यं निन्दितयोन्यनुरूपाभिश्चेष्टाभिर्वक्ष्यमाणाभिर्निश्चिनुयात् ।। ५७ ।।

(४) **राघवानन्दः**। देशान्तरादौ प्रच्छन्नाः कथं ज्ञायेरन्, तत्राह **वर्णेति** षड्भिः। वर्णापेतं वर्णाच्चातुर्वर्ण्यादपेतं संकरतां गतम् विभावयेन्निश्चिनुयात् कृष्णवर्णादियुतं वा। आर्यरूपं दैवात्सुवर्णशोभनं वस्त्रादिधारिणं कर्मभिरपेयपानचौर्याद्यैः ।। ५७ ।।

(५) **नन्दनः**। अन्यगूढोत्पन्नानां परिज्ञानोपायमाह **वर्णापेतमिति**। वर्णापेतं चातुर्वर्ण्याद्बहिष्ठं कलुषयोनिजं संकीर्णयोनिजं विभावयेदनुमिमीत ।। ५७ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। वर्णापेतं वर्णभ्रष्टम् ।। ५७ ।।

(७) **मणिरामः**। वर्णापेतं वर्णरहितं कलुषयोनिजं संकरजातं। अविज्ञातं लोके संकरजत्वेन ज्ञातं। अत एव आर्यरूपमिव वस्तुतः अनार्यं। स्वैः कर्मभिः निंदितैः वक्ष्यमाणैः भावयेत्। अयं सम्यक् दृश्यते परंतु निंदितकार्यं करोत्यतोऽयं संकरजात इति निश्चयं कुर्यात् ।। ५७ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **वर्णापेतमिति**। वर्णत्वाद् भ्रष्टं मनुष्यं सङ्करजातं लोकतः तथाविधेन अज्ञातम् अत एव चार्यसदृशं वस्तुतः पुनरनार्यं कलुषयोनिजं अनुरूपाभिः चेष्टाभिः निश्चिनुयाद्, अतश्च निश्चित्य परिहरेत् ।। ५७ ।।

(९) **भारुचिः**। एवं च लोके कार्याणां कारणानुविधानं दृष्टम्। यतश्चैतदेवमतः। वर्णेभ्यो ब्राह्मणादिभ्यो... नार्यकर्मभिः स्वैः कलुषयोन्यनुरूपैरित्यर्थः ।। ५७ ।।

**अनार्यता निष्ठुरता क्रूरता निष्क्रियात्मता ।।**
**पुरुषं व्यञ्जयन्तीह लोके कलुषयोनिजम् ।। ५८ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **अनार्यो** द्वेषमत्सरप्रधानः। **निष्ठुरः** स्वार्थपरः। **क्रूरो** लोभहिंसापरः। **निष्क्रियात्मा** विहितक्रियावर्जितः। एतैः स्वभावैः कलुषयोनिता व्यज्यते ।। ५८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अनार्यता अनृजुता। निष्ठुरता अक्रियया वैमुख्यम्। कलुषयोनिजं वर्णापेतं च ।। ५८ ।।

(३) **कुल्लूकः**। निष्ठुरत्वपरुषभाषित्वहिंस्रत्वविहिताऽननुष्ठातृत्वानि संकरजातित्वं अस्मिल्लोके प्रकटीकुर्वन्ति ।। ५८ ।।

(४) **राघवानन्दः**। कलुषयोनित्वव्यञ्जककर्माण्याह **अनार्यतेति**। निष्ठुरता परुषभाषिता। क्रूरता अनिमित्तहिंसनं। निष्क्रियात्मता अशीतिन्यूनवत्त्वेऽपि क्रियारहितता। कलुषयोनिजं कलुषा जात्यन्तरबीजाक्रान्ता जात्यन्तरा या योनिस्ततो जातम् ।। ५८ ।।

(५) **नन्दनः**। कानि पुनस्तानि कर्माणीत्यपेक्षायामाह **अनार्यतेति**। अनार्यता नास्तिकता निष्ठुरता नृशंसता क्रूरता स्वल्पापराधेऽपि प्रखरभावता निषिद्धात्मता सकलकर्मनिवर्जनशीलता व्यञ्जयन्ति अनुमापयन्ति अनार्यतादी समस्तानि न पुनर्व्यस्तानि ।। ५८ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। पुरुषं पूर्वोक्ता गुणाः व्यञ्जयन्ति। ईर्ष्यामित्सरप्रधानोऽनार्यः। स्वार्थपरो निष्ठुरः। लोभहिंसापरः क्रूरः। विहितक्रियारहितो निष्क्रियः ॥ ५८ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **अनार्यतेति**। नैर्घृण्यपरुषभाषित्वहिंस्रत्वविहितप्रतिषिद्धानुष्ठानशीलत्वानि सङ्करजातं पुरुषं अस्मिन् लोके प्रकटीकुर्वन्ति ॥ ५८ ॥

(९) **भारुचिः**। कानि एनांसितानि ? यत इष्यते- .... तस्य भाष्यमिदं वेति। निष्ठुरता क्रूरता निष्क्रियात्मतेति। एवमादीनां कलुषयोनिलिङ्गानां निदर्शनार्थान्येतानि नान्यनिवृत्त्यर्थानि। एवं च सत्ये च सत्यमादीनि। पुरुषं व्यञ्जयन्तीह लोके कलुषयोनिजं मुस्य(?) कुलसम्भूतमपि कस्य पुनर्हेतोः बीजानुविधानात्तत्रार्याणाम् ॥५८॥

**पित्र्यं वा भजते शीलं मातुर्वोभयमेव वा ॥**
**न कथंचन दुर्योनिः प्रकृतिं स्वां नियच्छति ॥ ५९ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **दुर्योनिः** संकीर्णजन्मा। **प्रकृतिं स्वामात्मीयं** कारणं न नियमेन निगृह्णाति ॥ ५९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। पित्र्यं मातुरुभयं वा न भजते किंतु स्वामेव संकरजातिप्रकृतिं प्रयच्छति प्रतिगृह्णातीति योज्यम् ॥ ५९ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यस्मात् **पित्र्यं वेति**। असौ सङ्करजातो दुष्टयोनिः पितृसंबन्धि दुष्टस्वभावत्वं सेवते, मातृसंबन्धि वोभयसंबन्धि वा न कदाचिदसावात्मकारणं गोपायितुं शक्नोति ॥ ५९ ॥

(४) **राघवानन्दः**। न नियच्छति स्वकारणमपह्नोतुं न शक्नोति ॥ ५९ ॥

(५) **नन्दनः**। लिङ्गान्तरमप्याह **पितुर्वा भजते शीलमिति**। प्रकृतिं कारणम् ॥ ५९ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। एवं चागमतो विज्ञातस्य प्रतिपत्तयेऽनुमानं युक्तम् ॥५९॥

(८) **गोविन्दराजः**। **यस्मात् पित्र्यमिति**। तज्जनकयोः दुष्टस्वभावत्वेन अकार्यकारित्वाद् असौ दुष्टयोनिः पितृसंबन्धि दुष्टभावत्वं सेवते मातृसंबन्धोभयगतं वा; अतो न कदाचिद् असौ आत्मकारणं गोपायितुं शक्नोति ॥ ५९ ॥

**कुले मुख्येऽपि जातस्य यस्य स्याद्योनिसङ्करः ॥**
**स श्रयत्येव तच्छीलं नरोऽल्पमपि वा बहु ॥ ६० ॥**

(१) **मेधातिथिः**। तस्य शीलं येन जातो, न तु यस्य क्षेत्रम्। स लोके प्रसिद्धः ॥ ६० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। तदेव स्फुटयति **कुल इति**। योनिसंकरोऽसदृशयोनिसांकर्यम्। तच्छीलं सङ्करशीलम् ॥ ६० ॥

(३) **कुल्लूकः**। महाकुलप्रसूतस्यापि यस्य योनिसङ्करः प्रच्छन्नो भवति स मनुष्यो जनकस्वभावं स्तोकं प्रचुरं वा सेवत एव ॥ ६० ॥

(४) **राघवानन्दः**। तदेव स्पष्टयति **कुलेति**। मुख्ये विप्रादिरूपे योनिसंकरः स्वोत्पादकयोनौ विजातीयरेतःप्रवेशात् तच्छीलं तयोः पितृमात्रोः स्वभावम् ।। ६० ।।

(५) **नन्दनः**। एतदेव स्थिरीकरोति **कुले मुख्येऽपीति**। तच्छीलं पितृमातृशीलं संश्रयति यथा परिज्ञातजन्मानो बाह्यव्यवहारादि बाह्या एवमनुचितजन्मानोऽप्येतदित्यभिप्रायः।। ६० ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **कुल** इति। महाकुलोत्पन्नस्यापि यस्य योनिसङ्करः प्रच्छन्नो भवति स जनः स्वपितृगतं स्वभावं ईषद्वा बाहुल्येन सेवत एव ।। ६० ।।

(९) **भारुचिः**। प्रच्छन्नतया विज्ञातः यथावत् ... रा स भजतः तस्मादव्यभिचार्ये तदनुमानं विज्ञेयम्। यथा भद्रं न मृगसङ्कीर्णानां जातिविशेषाणां शास्त्रलक्षणादनुमानात्तद्विशे-(ष) प्रतिपत्तिः, एवमिहापीति। अस्योपदेशप्रयोजनं यथैवागमतो विज्ञातैः वर्णापसदैः सह व्यवहारो न क्रियते। एवमनुमानतो विज्ञातैः सहेति। यतश्चैतदेवं अतो वर्णसङ्करो राज्ञोऽपि प्रयत्नतो रक्षणीयः। यस्मादाह ।। ६० ।।

**यत्र त्वेते परिध्वंसा जायन्ते वर्णदूषकाः ।।**
**राष्ट्रियैः सह तद्राष्ट्रं क्षिप्रमेव विनश्यति ।। ६१ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। तस्माद्वर्णसंकरो राज्ञा परिवर्जनीयः। **राष्ट्रिया** जानपदाः। **राष्ट्रममात्यादयः** ।। ६१ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। यत्र राष्ट्रे वर्णसंकरप्रवृत्त्या प्रथमं जायन्ते वर्णसंकराः संकरजाः। राष्ट्रियैः राष्ट्रजैः ।।६१।।

(३) **कुल्लूकः**। यस्मिन्राष्ट्र एते वर्णसङ्करा वर्णानां दूषका जायन्ते तद्राष्ट्रं राष्ट्रवासिजनैः सह शीघ्रमेव नाशमेति, तस्माद्राज्ञा वर्णानां सङ्करो निरसनीयः ।।६१।।

(४) **राघवानन्दः**। यत्र राष्ट्रे राष्ट्रियैः राष्ट्रनिवासिभिर्जनैः ।। ६१ ।।

(५) **नन्दनः**। राष्ट्रे स्वस्मिन्वर्णसङ्करो राज्ञा परिहरणीय इत्यभिप्रायेणाह **यत्र त्वेते परिध्वंसा इति** परिध्वंसाः संकरजन्मानः गूढोत्पन्नत्वादपरिज्ञानाद्ये वर्णास्तैस्सह संगच्छेरन्नेतान्दूषयन्तीति वर्णदूषकाः ।।६१ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। वर्णदूषकाः वर्णसंकरा जायन्ते ।।६१।।

(७) **मणिरामः**। ध्वंसाः वर्णसंकराः ।।६१।।

(८) **गोविन्दराजः**। **यत्रेति**। यस्मिन् राष्ट्रे एते वर्णानां दूषकाः सङ्करजा विनिपाता जायन्ते तद्राष्ट्रं राष्ट्रवर्तिजनैः सह शीघ्रमेव नाशमेति। तस्माद् राज्ञा वर्णसङ्करो रक्षणीयः ।। ६१ ।।

(९) **भारुचिः**। राज्ञो रक्षणार्थमिदं निन्दावचनं विज्ञेयम् विपर्ययस्तुत्यर्थम्। इदानीमेषां कर्मस्वनधिकृतानां शुद्धिहेतुरयमुच्यते उत्कर्षार्थम् ।।६१।।

**ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा देहत्यागोऽनुपस्कृतः ॥**
**स्त्रीबालाभ्युपपत्तौ च बाह्यानां सिद्धिकारणम् ॥ ६२ ॥**

(१) **मेधातिथिः** । **अनुपस्कृतो** धनमगृहीत्वा । **अभ्यवपत्तिरनुग्रहः** । **बाह्यानां** प्रतिलोमानाम् । **सिद्धिकारणं** उत्कृष्टजातौ जन्मसिद्धेः सिद्धिहेतुत्वादेवमुच्यते । तादृशं जन्म लभन्ते यथाधिकृता भवन्ति । स्वर्गादिप्राप्तिर्वा **सिद्धिः** ॥ ६२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । अनुपस्कृतः स्वकीयदृष्टकार्याभिसन्धिरूपोपस्कारशून्यः । स्त्रीबालाभ्युपपत्तौ ब्राह्मणेतरवर्णयोरपि स्त्रीबालयोरुपरक्षार्थं देहत्यागः बाह्यानां प्रागुक्तानां सूतादीनां सिद्धिः स्वर्गगमनम् ॥ ६२ ॥

(३) **कुल्लूकः** । गोब्राह्मणस्त्रीबालानामन्यतरस्यापि परित्राणार्थं दृष्टप्रयोजनानपेक्षः प्राणत्यागः प्रतिलोमजानां स्वर्गप्राप्तिकारणम् ॥ ६२ ॥

(४) **राघवानन्दः** । किंच **ब्राह्मणेति** । देहत्यागोऽनुपस्कृतो लाभख्यातिपूजाद्यनाक्रान्तः स्त्रीबालाद्युपपत्तौ तेषां मारणादिभ्यो रक्षणं च बाह्यानां वर्णधर्मबहिष्कृतानां सिद्धिकारणं स्वर्गगमनहेतुः किल्बिषनाशहेतुर्वा ॥ ६२ ॥

(५) **नन्दनः** । अथ बाह्यानां धर्मानाह **ब्राह्मणार्थ** इति । अनुपस्कृतोऽर्थकामानुबन्धरहितः बाह्यवर्णा धर्मेष्वधिकृताः प्रतिलोमजाः ॥ ६२ ॥

(६) **रामचन्द्रः** । अनुपस्कृतः स्वकीयदृष्टकार्याभिधरूपोपस्कारशून्यः ब्राह्मणेष्वपि स्त्रीबालयोः अभ्युपपत्तौ रक्षार्थं देहत्यागः बाह्यानां आयोगवादीनाम् ॥ ६२ ॥

(७) **मणिरामः** । परि अनुपस्कृतः दृष्टप्रयोजनरहितः । अभ्युपपत्तौ परित्राणार्थं । सिद्धिकारणं स्वर्गप्राप्तिकारणं । दुष्टाः लभन्ते तैः कृत्वा स्वर्गं इत्यर्थः ॥ ६२ ॥

(८) **गोविन्दराजः** । **ब्राह्मणार्थं** इति । **स्त्रीबालाभ्यवपत्तौ च बाह्यानां सिद्धिकारणम्,** गोब्राह्मणस्त्रीबालपरित्राणार्थं दृष्टप्रयोजनानपेक्षः प्राणत्यागः प्रतिलोमार्थं स्वर्गप्राप्तिकारणम् ॥ ६२ ॥

(९) **भारुचिः** । बाह्याः प्रतिलोमा गृह्यन्ते । अनुपस्कृतेन धनेनापरिक्रीतः । देहत्यागविशेषणमिदं । सिद्धिरधिकार(स्था)न जन्मनः सिद्धिरधिकारणादुच्यतेऽधिकारसामर्थ्यात् । अथवा व्यवहितैव । स्वर्गप्राप्तिनियोगार्थमिदं प्रायश्चित्तशास्त्रं प्रतिलोमा नामेति केचित् कल्पयन्ति । अपरे तु दण्डापूपिकया सर्वेषामविशेषेणेदमिच्छन्ति । अस्य देहत्यागस्य प्रायश्चित्तार्थमुपदेशाद् बाह्यानां पुरुषधर्मार्थमिदमुच्यते ॥ ६२ ॥

**अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ॥**
**एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः ॥ ६३ ॥**

(१) **मेधातिथिः** । **शौचं** मृज्जलादिबाह्यगतम् । **सामासिकं** समस्तस्य सर्वमनुष्यभेदजातेरुक्तम्, न ब्राह्मणादिजातिविभागेन । व्याख्यातमन्यत् ।

"यद्यहिंसाप्रतिलोमानां धर्मः स्यात्कथं? तर्हि तदुक्तम् ।—'मत्स्यघातो निषादानां', 'बिलौकोवधबन्धनम्', क्षत्रादीनामरण्यपशुहिंसनमेव च" ।।

केचिदाहुः— ये जीविकाहेतुतया वध्यत्वेनोक्तास्ततोऽन्यत्राहिंसा ।

अन्ये मन्यन्ते— 'अहिंसा' तेषामभ्युदयसाधनहेतुत्वेन धर्मो, न तु प्रतिषेधो हिंसायाः संमत इति । यथा "न मांसभक्षणे दोष" इतिवत् ।

"यद्यहिंसा धर्मस्तेषां कथं तर्हि तैर्जीवितव्यम् ?" "यथा कुतश्चिदवगमात् तेषामनुपपन्ना हिंसानिवृत्ति'र्धर्मायेति' चेत्तदा को जीवनोपायः? अन्याश्च वृत्तयः प्रतिवर्णनियताः । अध्यापनादयस्तावदत्यन्तासंभवादप्राप्ताः । कृष्यादयोऽपि वैश्यनियताः । शूद्रस्य सेवाऽद्या वा साधारणी वृत्तिरस्ति"' ।

यथा "वर्तेरन्विद्याशिल्पं" (१० । ११६) इत्यत्र दर्शयिष्यामः । यदपीदमुच्यते "ते निन्दितैर्वर्तयेयुर्द्विजानामेव कर्मभिः" इति तत्र किमस्ति निन्दिततरमन्यदतो हिंसायाः ? न च मत्स्यघातो द्विजानामुपयुज्यते । श्राद्धेऽतिथिभोजनादौ च कदाचित्क उपयोगो, न सार्वकालिको जीविकाभावः । तस्मान्न घातादि स्वतंत्रम् ।। ६३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । अहिंसा हिंसानिवृत्तिः, अस्तेयं परद्रव्यानभिलाषः । शौचं मनःकायशौचम् । इन्द्रियनिग्रहः कामार्थं तदप्रवर्तनम् । सामासिकं साधारणम् । बाह्यैः सह चातुर्वर्ण्यं चतुर्वर्णानाम् । बाह्यानामप्येतद्धर्मसाधनमित्यर्थः । अत एव **याज्ञवल्क्यः** 'सर्वेषां धर्मसाधन'मित्याह ।। ६३ ।।

(३) **कुल्लूकः** । हिंसात्यागो यथार्थाभिधानम्, अन्यायेन परधनस्याग्रहणं, मृज्जलादिना विशुद्धिरिन्द्रियसंयम इत्येवं धर्मसंक्षेपतश्चातुर्वर्ण्यानुष्ठेयं मनुराह प्रकरणसामर्थ्यात्संकीर्णीनामप्ययं धर्मो वेदितव्यः ।। ६३ ।।

(४) **राघवानन्दः** । असाधारणं धर्ममुक्त्वा साधारणं धर्ममाह **अहिंसेति** । सत्यं यथोपलब्धाभिधानम् । चातुर्वर्ण्य इति दृष्टान्तार्थः, अन्यथा प्रकरणबाधः । यथाऽयं धर्मश्चातुर्वर्ण्ये साधारणस्तथाऽपसदानामपीति भावः । अत एव बौद्धा अपि तत्स्वीकुर्वते सामासिकं समासवदनेकोपसंग्राहकत्वादिति **मेधातिथिः** । यद्यपि वध्यघातनं बिलौक्यादिहिंसनं न युक्तं तथापि प्रकारान्तरेण जीवितुं शक्तानां ततो निवृत्तिसिद्धेः करणं तदतिरिक्ताहिंसनं चेति भावः ।। ६३ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । सामासिकं साधारणम् चातुर्वर्ण्ये मनुः अब्रवीत् ।। ६३ ।।

(७) **मणिरामः** । सामासिकं संक्षेपतः । प्रकरणसामर्थ्यात्संकीर्णानामप्ययं धर्मो ज्ञातव्यः ।। ६३ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **अहिंसेति । श्राद्धकर्मातिथेयं च दानमक्रोधमार्जवम् । प्रजनं स्वेषु दारेषु तथा चैवानसूयता ।।** हिंसावर्जनं यथोपलब्धाभिधानं परस्वाग्रहणं मृद्वारि-

शुद्धिरिन्द्रियसंयम इत्येतं सांक्षेपिकं धर्मं चातुर्वर्ण्यानुष्ठेयं मनुराह। प्रकरणसामर्थ्याच्च चातुर्वर्ण्यग्रहणस्यान्तरप्रभवे दर्शनार्थत्वे सत्यन्तरप्रभवविषयमपीदं वाक्यम् ।। ६३ ।।

(९) **भारुचिः**। एवं च प्रकरणसामर्थ्यात् चातुर्वर्ण्यान्तरप्रभवानामप्यहिंसादिपुरुषधर्मो विज्ञेयः। एवं चायं शनकैः सिद्धिहेतुरेषां पूर्वस्तु सामर्थ्यात्सह्यत इति विज्ञाते पूर्वस्मात् ब्राह्मणादिवर्णलक्षणशास्त्रात् सर्ववर्णेषु तुल्यास्वित्यैवमादेरन्यथा ब्राह्मणत्वादीन्यप्राप्तानीष्यन्ते च। तान्युत्कर्षापकर्षाभ्यामपि ।। ६३ ।।

**शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः श्रेयसा चेत्प्रजायते ।।**
**अश्रेयान् श्रेयसीं जातिं गच्छत्याऽऽसप्तमाद्युगात् ।। ६४ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। 'गर्भे गृह्णाति', 'गर्भश्च श्रवणाज्जात' इति पुल्लिङ्गनिर्देशेऽप्यर्थयोगता विज्ञेया। अत इदमुक्तं भवति।—**शूद्रायां ब्राह्मणात्** या जाता कुमारी, सा **चेच्छ्रेयसा** जात्युत्कर्षवता ब्राह्मणेनैव, **प्रजायते** विवाहादिसंस्कृताऽपत्योत्पत्तिहेतुसंबन्धं प्राप्नोति। तस्यामपि यदि कुमारी जायते सा ब्राह्मणेनैव विवाह्यते। एवमनया परंपरया सप्तमे पुरुषे प्राप्ते ब्राह्मण्यां यस्तत्र जायते तस्य भवति।

**श्रेयसेति** यद्यप्युत्कृष्टजातीयमात्रे वर्तते, तथापीह ब्राह्मणपदसन्निधानादुत्तरत्र च "शूद्रा ब्राह्मणतामेति" इति वचनात् ब्राह्मण्यप्राप्तिः शूद्रवर्णस्य विज्ञेया। अनयैव कल्पनया पञ्चमे वैश्यायां जातस्य वर्णस्य; तृतीये क्षत्रियायाम्। अत्रापि स्त्रीत उत्कर्षः। एवं वैश्यस्य तृतीये क्षत्रियत्वम्। शूद्रायां जातायाः कुमार्या वैश्यान्तरेण संयोगे तृतीये जन्मनि वैश्यत्वम्। क्षत्रियजातायाः शूद्रायाः पञ्चमे **युग** इति। 'युग'शब्दो जन्मवचनः। **अश्रेयान्निकृष्टजातीयः श्रेयसी**मुत्कृष्टाजातिं **गच्छति** प्राप्नोति। आङ अभिविधौ व्यापकार्थः ।। ६४ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। यः पारशव उक्तः श्रेयसा श्रेष्ठवर्णेन सह प्रजायते श्रेष्ठायां पारशव्यामेव वृत्तादिमत्यामपत्यं जनयति, एवमासप्तमाद्युगादासप्तमात् उत्कर्षतेजोत्कर्षभावतः पितृपरंपरया विच्छिद्यते स्वधर्मान्तरच्युतिस्तदाऽश्रेयानपि सप्तमे श्रेयसीं जातिं द्विजातितामाप्नोति। तस्य सप्तमी संततिर्द्विजातितां याति। यदि मध्ये श्वश्रूतुल्यैरेव विवाहैरुत्पत्तिरित्यर्थः। युगशब्दो मातापित्रोर्युग्मतया तत्परः ।।६४।।

(३) **कुल्लूकः**। इदानीं'सर्ववर्णेषु तुल्यास्वि'त्युक्तलक्षणव्यतिरेकेणापि ब्राह्मण्यादिदर्शयितुमाह **शूद्रेति**। शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः पारशवाख्यो वर्णः प्रजायत इति सामर्थ्यात्स्त्रीरूपः स्यात्। सा यदि स्त्री ब्राह्मणेनोढा सती प्रसूयते सा दुहितरमेव जनयति, साप्यन्येन ब्राह्मणेनोढा सती दुहितरमेव जनयति, साप्येवमेवं सप्तमे युगे जन्मनि स पारशवाख्यो वर्णो बीजप्राधान्याद्ब्राह्मण्यं प्राप्नोति 'आसप्तमाद्युगा'दित्यभिधानात्सप्तमे जन्मनि ब्राह्मणः संपद्यत इत्यर्थः ।। ६४ ।।

(४) **राघवानन्दः**। तपोबीजप्रभावैरित्युक्तेर्न्यूनं पूरयति **शूद्रायामिति। जात इति**। पारशवाख्यो वर्णः स च स्त्रीरूपः। अन्यथा जातः प्रजाया इति पुनरुक्तिः। सा चेच्छ्रेयसा

ब्राह्मणेनोढा श्रेयसीं दुहितरं प्रजायते सूते स्त्रियं साप्यन्येन ब्राह्मणेन परिणीयते ततोऽप्यन्या दुहिता प्रजायते साप्यन्येन ब्राह्मणेनोढा सप्तमे पञ्चमे वा जन्मनि श्रेयसीं ब्राह्मण्यं प्राप्नोतीत्यन्वयः ।।६४।।

(५) **नन्दनः** । अथानुलोमजसंतानानान्धर्मोत्कर्षवशेन प्रत्यपत्यं जात्युत्कर्षो भवतीत्याह **शूद्रायां ब्राह्मणादिति** । शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः पारशवः श्रेयसा प्रजायते चेद्धर्मेण युक्तो भवति चेत् अश्रेयानपकृष्टजातिरपि श्रयसीमुत्कृष्टतरां जातिमासप्तमाद्युगादासप्तमात्संतानात् इच्छति । एतदुक्तं भवति । पारशवसंतानविच्छिन्नसंतानश्चेत् सप्तमादप यादारभ्य ब्राह्मत्वमापद्यत इति । यथा चाह **बौधायनः** निषादेन निषाद्यामापञ्चमाज्जातेरपहन्ति शूद्रतां तमुपनयत्यश्मे याजयेत्तपोबीजप्रभावेणेत्यादिश्लोकस्यायं प्रपञ्चः ।।६४।।

(६) **रामचन्द्रः** । शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः पारशवः श्रेयसा ब्राह्मणेन चेत् प्रजायते अश्रेयान् अहीनवर्णः श्रेयसीं उत्कृष्टजातिं आसप्तमात् जन्मतः सप्तमपुरुषः ब्राह्मणो भवति । तद्यथा **याज्ञवल्क्यः** 'मूर्धावसिक्तादयः यथा ब्राह्मणेन शूद्रायामुत्पादिता निषादी सा ब्राह्मणेनोढा दुहितरं कांचिज्जनयति, सापि ब्राह्मणेनोढान्यामित्यनेन प्रकारेण षष्ठी सप्तमं ब्राह्मणः जनयति । अंबष्ठी साप्यनेन प्रकारेण पंचमी षष्ठं ब्राह्मणं जनयति । मूर्धावसिक्ताप्यनेन प्रकारेण चतुर्थी पंचमं ब्राह्मणमेव जनयति । उग्रा क्षत्रियोढा माहिष्या च [यथाक्रमं षष्ठं पंचमं] क्षत्रियं च जनयति । तथा करणी वैश्योढा पञ्चमं वैश्यमित्येवमन्यत्राप्यूहनीयम् ।।६४।।

(७) **मणिरामः** । शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः पारशवाख्यो वर्णः चेत् श्रेयसा प्रजायते श्रेष्ठेन ब्राह्मणेन प्रसूयते । प्रसवसामर्थ्यात्स्त्रीरूपः पारशवो ज्ञातव्यः, स वर्णः आसप्तमात् युगात् सप्तमे जन्मनि अश्रेयानपि श्रेयसीं जातिं ब्राह्मणत्वं प्राप्नोति । तथा च शूद्रायां ब्राह्मणात्कन्या जाता सा पारशवा ब्राह्मणेनैव विहिता कन्यामेव प्रसूता एवं क्रमेण सप्तमे जन्मनि पारशवाख्यो वर्णो बीजप्राधान्यात् ब्राह्मण्यं प्राप्नोतीत्यर्थः ।।६४।।

(८) **गोविन्दराजः** । इदानीं 'सर्ववर्णेषु तुल्या'स्वित्येतल्लक्षणव्यतिरेकेणापि ब्राह्मणादि दर्शयितुमाह **शूद्रायामिति** । शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः पारशवाख्यो वर्णः स्त्रीलक्षणः । सा यदि स्त्री ब्राह्मणेनोढा सती प्रसूते दुहितरं च जनयति साप्यन्येन ब्राह्मणेन ऊढा सती दुहितरमेव जनयति । साप्येवमेवेत्येवं स पारशवाख्यो निकृष्टे स बीजप्राधान्यात् सप्तमे युगे ब्राह्मणजातिं प्राप्नोति । सप्तमो जातः ब्राह्मणः संपद्यते ।।६४।।

(९) **भारुचिः** । शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातो वर्ण (स्त्री) लक्षणः पारशवाख्यः श्रेयसा चेद् ब्राह्मणेनैव पुन्नाम्ना पुनः पुनः प्रजायते । एवमनेन प्रकारेणासावश्रेयान् शौद्रा वर्णः श्रेयसीं ब्राह्मणजातिं गच्छत्यासप्तमाद्युगात् जन्मन इत्यर्थः । बीजप्राधान्येन । अतश्चानेन युगपरिवर्तक्रमेण ।।६४।।

**शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् ॥**
**क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च ॥ ६५ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **शूद्रो ब्राह्मणतामेति** इत्युक्तोऽर्थः। **ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्**। ब्राह्मणोऽत्र पारशवो ब्राह्मणजातो विज्ञेयः। स चोक्तलक्षणशूद्रां यदि परिणयते तदाऽपकर्षं जन्मनि प्राप्नोति। तृतीय इति व्याचक्षते।

यथोक्ते युगपरिवर्ते उत्कर्षं प्राप्ता यथा संस्कारैः कर्मभिश्चाधिक्रियन्ते ॥६५॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। एतत्स्फोटयति **शूद्र इति**। शूद्रः शूद्रासंतानजः ब्राह्मणा ब्राह्मणसंतानजः। शूद्रतामेति यथा तदग्रे वक्ष्यति। क्षत्रियाद्वैश्याद्वा शूद्रायां जातोऽप्येवं सप्तमे युगे तूत्कर्षं लभते। तथा मूर्धावसिक्तादीनां तत्तत्सदृशविवाहपरंपरया पञ्चमपुरुषे प्रकृतिजातिलाभसिद्धिः ॥६५॥

(३) **कुल्लूकः**। एवं पूर्वश्लोकोक्तरीत्या शूद्रो ब्राह्मणतां याति, ब्राह्मणश्च शूद्रतामेति। ब्राह्मणोऽत्र ब्राह्मणाच्छूद्रायामुत्पन्नः पारशवो ज्ञेयः; स यदि पुमान्केवलशूद्रोद्वाहेन तस्यां पुमांसमेव जनयति सोऽपि केवलशूद्रोद्वाहेनापरं पुमांसमेव जनयति, सोऽप्येवं, तदा स ब्राह्मणः सप्तमं जन्म प्राप्तः केवलशूद्रतां बीजनिकर्षात्क्रमेण प्राप्नोति। एवं क्षत्रियाद्वैश्याच्च शूद्रायां जातस्योत्कर्षापकर्षौ जानीयात्। किंतु जातेरपकर्षात् 'जात्युत्कर्षो युगे ज्ञेयः'। सप्तमे पञ्चमेऽपि वेति **याज्ञवल्क्य** (आचार. १।९६) दर्शनाच्च क्षत्रियाज्जातस्य पञ्चमे जन्मन्युत्कर्षापकर्षौ बोद्धव्यौ। वैश्याज्जातस्य ततोऽप्युत्कर्षात्। याज्ञवल्क्येनापि वाशब्देन पक्षान्तरस्य संगृहीतत्वाद्वृद्धव्याख्यानुरोधाच्च तृतीयजन्मन्युत्कर्षापकर्षौ ज्ञेयौ अनेनैव न्यायेन वैश्यायां जातस्य पञ्चमे जन्मन्युत्कर्षापकर्षौ क्षत्रियायां जातस्य तृतीये क्षत्रियेण वैश्यायां जातस्य तृतीय एव बोद्धव्यौ ॥६५–॥

(४) **राघवानन्दः**। पूर्वोक्तमनुवदन् ब्राह्मणोऽप्येवं शूद्रां परिणीय शूद्र्यां यातीत्याह **शूद्र** इत्यर्धेन। उक्तमर्थं क्षत्रियवैश्ययोरतिदिशति **क्षत्रिये**त्यर्धेन। अत एवाह **याज्ञवल्क्यः आचा** (१६०) 'जात्युत्कर्षो युगे ज्ञेयः सप्तमे पञ्चमेऽपि वा ॥ व्यत्यये कर्मणां साम्यं पूर्ववच्चाधरोत्तर'मिति ॥ युगे जन्मनि विप्रोढाशूद्रागर्भोऽपि श्रेष्ठः यतो 'निषादस्य पतिं याजये'दिति वेदे श्रूयते। स चेत् शूद्रायां पुत्रः सूते स पुत्रः शूद्रां परिणीय तत्र पुत्रं जनयत्येवं सप्तमावधौ तद्वंश्यस्य शूद्रत्वमेव। विप्रस्य क्षत्रियवैश्ययोरपीति **याज्ञवल्क्य**वचने व्यत्ययपदाशयः ॥६५॥

(५) **नन्दनः**। न केवलमनुलोमजानामेवायं न्यायः किन्तु प्रतिलोमजानामपीत्याह **शूद्रो ब्राह्मणतामिति**। श्रेयसा चेत्प्रजायत इत्यनुकर्षः, ब्राह्मणश्चैति शूद्रतामश्रेयसा चेत्प्रजायत इत्यभिप्रायः। क्षत्रियाज्जातमुग्रनामानम् ॥६५॥

(६) **रामचन्द्रः**। शूद्रः पूर्वोक्तरीत्या यथा ब्राह्मणतां एति तथैव ब्राह्मणः शूद्रतामेति। यथा पारशवः पुत्रो जात; तस्य स्त्रीशूद्राः तस्यां पुत्रो जातः तेनापि शूद्रकन्यैव परिणीतेति क्रमेण सप्तमः शूद्रो भवतीत्यर्थः। एवं क्षत्रियवैश्यावपि ज्ञेयौ ॥६५॥

(८) **गोविंदराजः**। **शूद्र** इति। एवमुक्तनीत्या शूद्रो ब्राह्मणतां प्राप्नोति। यदि पुनः ब्राह्मणाच्छूद्रायां पुमानुत्पद्यते स केवलशूद्रोद्वाहेन ततः पुमांसमेव जनयति, सोऽपि केवलशूद्रोद्वाहेन नान्यं पुमांसमेव तदा स ब्राह्मणः सप्तमां संततिं प्राप्तः शनैः शनैः बीजनिष्कर्षात् केवलशूद्रतां प्राप्नोति। सप्तमो जातः शूद्रः संपद्यते। एवं क्षत्रियवैश्याभ्यां शूद्राज्जातस्योत्कर्षापकर्षौ जानीयात्। किंतु जातितारतम्यात् क्षत्रियस्य पञ्चमे जन्मनि उत्कर्षापकर्षौ च वैश्यस्य तृतीय इति व्याचक्षते। एवमनेनैव न्यायेन ब्राह्मणो वैश्याज्जातस्य पञ्चमे उत्कर्षापकर्षौ क्षत्रियाज्जातस्य तृतीयेन वैश्याज्जातस्य च तृतीय एव ॥६५॥

(९) **भारुचिः**। यथा शूद्र एव ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्। पारशवाख्याः शूद्रपुरुषसम्बन्धेन। एवं च शूद्रपुरुषादपकर्षः (पारशव)वर्णस्य शूद्रत्वमासप्तमाद्युगाद्विज्ञेयम्। शूद्रायामुत्कर्षापकर्षौ च विद्यात्। पञ्चमे युगे परिवर्तते। अत्रापि स्त्रीत उत्कर्षः पुरुषादपकर्षः। वैश्याज्जातोऽपि विज्ञेयः, स तेनैव न्यायेन ब्राह्मणजातोऽपि वर्णः क्षत्रियात् तृतीये जन्मनि ब्राह्मणो विज्ञेयः। उत्कर्षः अपकर्षश्च तृतीये जन्मनि क्षत्रियसम्बन्धेन क्षत्रियवर्णाद्विज्ञेयः। तथा च ब्राह्मणाद्वैश्यायां पञ्चमे जन्मन्युत्कर्षापकर्षौ सामर्थ्याद्विज्ञायते। क्षत्रियेण च वैश्यायामनन्तरायामेष एव न्यायः। यथा ब्राह्मणस्य क्षत्रियायामिति। अशाब्दं चैतत् सामर्थ्यसिद्धं व्याख्येयम्। प्रथमश्लोकलिङ्गं...। अथवा दृष्टा यथा ब्राह्मणवर्णो योनिदोषात् पारशवात्मना शूद्रसम्बन्धेन निकृष्यमाणे शूद्रो भवत्यासप्तमाद्युगात्। एवं पारशवो वर्णः (स्त्र्या)ख्यं ब्राह्मणे वर्तमानो ब्राह्मणवर्णो भवति। अस्य च ब्राह्मणसंस्कारः श्रौतस्मार्ताधिकाराश्च पूर्वस्मरणवद्युक्ताः। अपरस्त्वाह श्रौतेष्वस्य कर्मस्वधिकारः—तदयुक्तम्; समानशास्त्रत्वात् पूर्वोत्तरयोः। तथा चोक्तं पुरस्तादि(ति।) एवमिदं बीजप्राधान्यमुपश्रुत्याह—यदि शूद्रो ब्राह्मणतामेति बीजप्राधान्येन ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्। शूद्रः क्षेत्रप्राधान्येन ॥६५॥

**अनार्यायां समुत्पन्नो ब्राह्मणात्तु यदृच्छया ॥**
**ब्राह्मण्यामप्यनार्यात्तु श्रेयस्त्वं क्वेति चेद्भवेत् ॥ ६६ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। किंशब्दः क्षेपे। यदि बीजप्राधान्याद्धीनजातीयासु जाता मातृजातेरुत्कृष्टाः क्रमेण पितृजातितां प्राप्नुवन्ति, इदं तर्हि क्षेत्रप्राधान्येऽपि द्रष्टव्यम्, यथा क्षेत्रजः पुत्रः। अतश्च यथाऽनार्यायां शूद्रायां **ब्राह्मणाज्जात** उत्कृष्टो भवति, **यदृच्छया** यथाकथंचिदनूढायामपि, एवं **ब्राह्मणायामनार्याच्छूद्रात्क्षेत्रप्राधान्येन श्रेयस्त्वम्**। यथोक्तं "क्वचित् बीजं क्वचिद्योनिः" इति ॥६६॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। प्रागेवोक्तं ब्राह्मणस्याब्राह्मण्यं यत्र तद्विचार्य निर्धारयति **अनार्यायामिति**। सावित्रीपतितादिकन्यायां ब्राह्मणाच्छ्रेष्ठाद्यदृच्छया अबुद्धिपूर्वमपि। बुद्धिपूर्वे तु किं वाच्यमित्याशयः। ब्राह्मण्यामुत्तमायामनार्यात्पतितसावित्रीकादेः ॥६६॥

(३) **कुल्लूकः**। एकः शूद्रायां यदृच्छयाऽनूढायामपि ब्राह्मणादुत्पन्नोऽन्यश्च ब्राह्मण्यां शूद्राज्जातो द्वयोर्मध्ये क्व चोत्पन्नस्य श्रेयस्त्वमिति चेत्संशयः स्यात्; संशयबीजं च यथा बीजोत्कर्षात्। ब्राह्मणाच्छूद्रायां जातः साधुः शूद्रः। एवं क्षेत्रोत्कर्षाद्ब्राह्मण्यामपि शूद्रेण जातः किमिति साधुः शूद्रो न स्यात्? ॥६६॥

(४) **राघवानन्दः**। अनूढाविशेषेणानुलोमप्रतिलोमजौ श्रेष्ठत्वाश्रेष्ठत्वेन संदिग्धेऽनार्यायामिति संशय्य जनकानुरूपेण निर्णयमाह **अनार्यायामिति** त्रिभिः। अनार्यपदमत्र शूद्रपरं, आर्यपदं तु ब्राह्मणपरमिति। यदृच्छयोद्वहनं विना ॥६६॥

(५) **नन्दनः**। अनार्यायां शूद्रायां ब्राह्मणब्राह्मणीशब्दौ द्विजात्युपलक्षणार्थौ, यदृच्छया कामचारेणोत्पन्नः कश्चिदनार्याच्छूद्राद्ब्राह्मणस्समुत्पन्नः कश्चित्तयोः श्रेयस्त्वं बीजोत्कर्षेण क्षेत्रोत्कर्षेण वा केन भवेत्? अत्रेतिशब्दो द्रष्टव्यः। भवेच्चेदित्यन्वयः चेदिति वा प्रश्नश्चेच्छृणुतेत्यभिप्रायः ॥६६॥

(६) **रामचन्द्रः**। अनार्यायां शूद्रायां अनूढायां यदृच्छया ब्राह्मणः समुत्पन्नः तु पुनः अनार्यात् शूद्राद्ब्राह्मण्यां श्रेयस्त्वे उत्कृष्टत्वे क इति चेत् किंचन न भवेत् ॥६६॥

(७) **मणिरामः**। अनार्यायां शूद्रायां। यदृच्छया अनूढायामपि। अनार्यात् शूद्रात्। शूद्रयोर्मध्ये क्व उत्पन्नस्य श्रेयस्त्वं इति चेत् संदेहो भवेत् तत्राग्रिममुत्तरं ज्ञेयं ॥६६॥

(८) **गोविन्दराजः**। **अनार्यायामिति**। यः शूद्रायामनूढायां ब्राह्मणादुत्पन्नो यश्च ब्राह्मण्यामपि शूद्राज्जातस्तयोः कस्य प्रशस्ततरत्वमिति यदि भवतां संशयः स्यादिति भृगुर्बीजप्राधान्येनोत्कर्ष उपन्यस्ते सति क्षेत्रबीजकारणत्वाज्जगतः क्षेत्रप्राधान्येनाप्युत्कर्षः किमिति न स्यादित्यृषीणां भ्रान्तिमाशङ्कमानस्तानाह ॥६६॥

(९) **भारुचिः**। एवं च सति अनार्यतो वा ब्राह्मण्यां श्रेय (स्त्वं) क्षेत्री चेद् भवेत् अनार्यायां शूद्रायां समुत्पन्नो ब्राह्मणात्तु यदृच्छया अप्यनूढायां। किं पुनरूढायां यथा न (गर्ह्यः) प्रशस्तश्च। केवलशूद्रवैश्यक्षत्रियजातेभ्यो भवति।

एवं ब्राह्मण्यामप्यनार्या(यां) शूद्राज्जातस्यागर्ह्यत्वं पारशववत् प्राप्नोति। क्षेत्रप्राधान्यात् श्रेयस्त्वं चास्य क्षत्रियावैश्यजाताभ्यां प्राप्नोति क्षेत्रसामर्थ्यात्। तथा च क्षेत्रजातास्सुता उपदिष्टाः शास्त्रत इति बीजप्राधान्याक्षेपाभिप्रायोऽयं श्लोको वेदितव्यः। न संशयप्रश्नाख्यः। यथा चेदं केचिदाहुः 'क्वचिद्बीजं क्वचिद्योनि' रिति बीजयोन्याः प्राधान्यावस्थानात् सम्मोह इव जायत इति। एवं च सति बीजप्राधान्यप्रकरणमनुगृहीतं भवति ॥ ६६ ॥

**जातो नार्यामनार्यायामार्यादार्यो भवेद्गुणैः ॥**
**जातोऽप्यनार्यादार्यायामनार्य इति निश्चयः ॥ ६७ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **नार्यां** स्त्रियामनार्यायां हीनजातीयायामार्याज्जात उत्कृष्टजातीयाद्ब्राह्मणादार्य एव भवेत्।

किं ब्राह्मणजातीयत्वम् ? नेत्याह–**गुणैः**। गुणतो गौण्या वृत्त्या पाकयज्ञाद्यधिकारमात्रेण। वक्ष्यमाणानार्यापेक्षयाऽऽर्य इत्युच्यते। **अनार्याच्छूद्रादार्यायां** ब्राह्मण्यां **जातोऽनार्य** एवैष **निश्चयः**।

एतदुक्तं भवति–यावद्वचनमेव प्राधान्यमवतिष्ठते, नानुमानेन शक्यमन्यत्प्रसंजयितुम्। अतः समानजातीयागमनमेव युक्तं, क्षेत्रप्राधान्यं क्षेत्रज एव नान्यत्र ।।६७।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अनार्यायां नार्यामार्याज्जातः आर्यो एव श्रेष्ठ एव बीजप्राधान्याद्भवेत्। गुणैर्यद्यार्यगुणैर्युज्यते। यद्यार्यायामनार्याज्जातः स ब्राह्मणोत्पन्नोऽपि शूद्रतुल्य इत्यर्थः ।।६७।।

(३) **कुल्लूकः**। तत्र निर्णयमाह **जात इति**। शूद्रायां स्त्रियां ब्राह्मणाज्जातः स्मृत्युक्तैः पाकयज्ञादिभिर्गुणैरनुष्ठीयमानैर्युक्तः प्रशस्यो भवति। शूद्रेण पुनर्ब्राह्मण्यां जातः प्रतिलोमत-उत्पन्नतया शूद्रधर्मेष्वप्यनधिकारादप्रशस्य इति निश्चयः। न्यायप्राप्तोऽप्यर्थो वचनप्रामाण्यादत्र बोध्यते ।।६७।।

(४) **राघवानन्दः**। अनार्या योषिति आर्याज्जात आर्य एव। तथा अनार्यादार्याजातोऽपि अनार्यः ।।६७।।

(५) **नन्दनः**। बीजमुत्कर्षहेतुर्न क्षेत्रमित्यस्यार्थः ।।६७।।

(६) **रामचन्द्रः**। नार्यां स्त्रियां अनार्यायां इन्द्रियाज्जातः गुणैः पाकयज्ञादिभिः आर्यः द्विजः भवेत्। अनार्यायां जातोऽपि अनार्यः शूद्रस्य पाकयज्ञानधिकारात् इति निश्चयः ।।६७।।

(७) **मणिरामः**। अनार्यायां शूद्रायां। नार्यां स्त्रियां आर्यात् ब्राह्मणात् जातः गुणैः आर्यः श्रेष्ठो ज्ञेयः ।।६७–७०।।

(८) **गोविन्दराजः**। अत्र निर्णयमाह **जात** इति। शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः स्मृत्यभ्यनुज्ञानैः पाकयज्ञादिभिरनुष्ठीयमानैः प्रशस्यो भवति। शूद्रात्पुनर्ब्राह्मण्यामपि जातः प्रतिलोमत्वेन शूद्रधर्मेष्वप्यनधिकारात् न प्रशस्य इति निश्चयो यतो यावद्वचनमत्र प्राधान्यमवतिष्ठते नानुमानतः ।।६७।।

(९) **भारुचिः**। चण्डालादिभिः तस्य शूद्रधर्मैरप्यनधिकारात्। अस्याभिप्रायः–को हि शक्तो धर्मस्याहेतुतः साधुत्वमवधारयितुम्। एवं हि हेत्वनवस्थानाद् धर्मानवस्थानमपि प्रसज्येत। तथा चैतत् पुरस्तात् प्रत्याख्यातमेव। अचिन्त्यस्याप्रमेयस्यान्यत्र। एवं च सति यथोपदेशं बीजयोन्याः प्राधान्यमभ्युपगन्तव्यम्, न त्वनुमानतः। उपदेशविषयादन्यत्रापि। यथा सुख-दुःखयोः धर्माधर्मोत्पत्ताविति। तथा च कृत्वा ।।६७।।

**तावुभावप्यसंस्कार्याविति धर्मो व्यवस्थितः ।।**
**वैगुण्याज्जन्मतः पूर्व उत्तरः प्रतिलोमतः ।। ६८ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **उभावपि**, चण्डालः पारशवश्चासंस्कार्यावनुपनेयौ। अत्र हेतुवचनिगदोऽर्थवादः। **वैगुण्याज्जन्मतः पूर्वः**। ब्राह्मणाद्यः शूद्रायां जातः, सत्यपि बीजप्राधान्ये

विगुणमेतस्य जन्म, योनिदोषात्। उत्तरश्चण्डालः। स प्रतिलोमोऽत्यन्तप्रातिलोम्यात्, सत्यपि क्षेत्रप्राधान्ये, पितृदोषात् ॥६८॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। यद्यपि पूर्वस्य श्रैष्ठ्यं तथापि मातृदोषेण जन्मवैगुण्यात्पूर्वो न संस्कारार्हः, उत्तरस्तु प्रातिलोम्यात् क्षेत्रापेक्षया बीजस्यापकर्षादित्याह **तावुभाविति**। एतच्च पूर्वस्योपनयनादियोग्यत्वमार्यतोक्त्या प्रागुक्तापि पुनः संस्कारानर्हताभिधानान्नास्योपनयने उपनेतृदोषः। उपनीतत्वेऽपि च यज्ञादियोग्यत्वं नास्त्यतोऽग्राह्ययाजनं तद्याजनमिति दर्शयितुं संस्कारानर्हत्वमुक्तम्। अत एवाग्रे सर्वसंस्कारमिति विशेषयति ॥६८॥

(३) **कुल्लूकः**। पारशवचण्डालौ द्वावप्यनुपनेयाविति व्यवस्थिता शास्त्रमर्यादा। पूर्वः पारशवः शूद्राजातत्वेन जातिवैगुण्यादनुपनेयः। प्रतिलोम्येन शूद्रेण ब्राह्मण्यां जातत्वादित्युत्तरत्वेनानुपनेयः ॥६८॥

(४) **राघवानन्दः**। तौ पारशवचण्डालौ असंस्कार्यौ उपनयनादिरहितौ जन्मनः। आविर्भविष्यन्त्या जनन्याः पूर्वः संस्कारानर्हः। उत्तरोऽपि संस्कारानर्हः प्रतिलोमतः पितुर्जातिः ॥६८॥

(५) **नन्दनः**। असंस्कार्यावनुपनेयौ पूर्व आर्यः जन्मनो वैगुण्यात्क्षेत्रासौष्ठवात् उत्तरः प्रतिलोम्यतावीजासौष्ठवादिति यावत् ॥६८॥

(६) **रामचन्द्रः**। तौ उभौ पारशवचाण्डालौ (अ)संस्कार्यौ वैगुण्याज्जन्मनः मातृदोषेण जातः पूर्वः अनुलोमजः असत्, उत्तरः प्रतिलोमजः सन् असत् ॥६८॥

(७) **मणिरामः**। न केवलं चण्डालादिः। किं तर्हि? पारशवादयोऽपि। तथा चोक्तम् 'वैगुण्याज्जन्मनः पूर्व उत्तरः प्रतिलोमतः ॥' पारशवादिः। सत्यपि बीजप्राधान्ये क्वचिदुत्तरः चण्डालादिः प्रतिलोमतः पितृदोषात् सत्यपि योनिप्राधान्ये क्वचित् लोकदृष्ट्या तु स्वजातिजानन्तरजान् पु(नः) स्तौति ॥६८॥

(८) **गोविन्दराजः**। **तावि**ति। तौ पारशवचण्डालौ द्वावप्यनुपनेयौ चेति शास्त्रमर्यादा स्थिता। शूद्राज्जातत्वेन जातिवैगुण्यात् पारशवानुपनेयचाण्डालस्य प्रातिलोम्येन उत्पन्नत्वात् ॥६८॥

**सुबीजं चैव सुक्षेत्रे जातं संपद्यते यथा ॥**
**तथाऽऽर्याज्जात आर्यायां सर्वं संस्कारमर्हति ॥ ६९ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। पूर्वोक्तावसंस्कार्यौ, स्वजातिजास्तु संस्कार्याः, इत्युभयत्राप्यर्थवादः। अत एतदेव स्थितं "क्वचिद्बीजं क्वचिद्योनिः" इति यथोपदेशात्। एकान्तरपरिग्रहस्तु न युक्तः ॥ ६९ ॥

(३) **कुल्लूकः**। यथा शोभनबीजं शोभनक्षेत्रे जातं समृद्धं भवति, एवं द्विजातेर्द्विजातिस्त्रियां सवर्णायामानुलोम्येन च क्षत्रियावैश्ययोर्जातः सवर्णसंस्कारं क्षत्रियवैश्यसंस्कारं च सर्वश्रौतस्मार्तं चार्हति। नच 'पारशवचण्डाला'वितिपूर्वोक्तदाढर्ढ्यार्थमेतत् ॥ ६९ ॥

(४) **राघवानन्दः**। सदृष्टान्तं प्रतियोगितयाह **सुबीजमिति**। सुक्षेत्रे शोभनं बीजमिव ब्राह्मणेनोढब्राह्मणीजः संस्कारार्हः [इत्यनुवादमात्रं सर्वसंस्कारान्तेऽस्यैव पारिव्राज्यदर्शनाच्चेति शंकरभगवदुक्तेः]॥ ६९॥

(५) **नन्दनः**। कस्तर्हि संस्कारयोग्य इत्यपेक्षायामाह सुबीजमेव **सुक्षेत्र** इति॥ ६९॥

(६) **रामचन्द्रः**। तथा आर्यात् आर्यायां जातः स च संस्कारं अर्हति॥ ६९॥

(८) **गोविन्दराजः**। **सुबीजमिति**। यथा शोभनं बीजं शोभने क्षेत्रे जातं समृद्धं भवति एवं द्विजातेर्द्विजातिस्त्रियामानुलोम्येन जातः स्वजातिजानन्तरजैकान्तरजरूपं सर्वं श्रौतं स्मार्तं संस्कारमर्हति न पारशवचण्डालमिति पूर्वोक्तदाढ्यर्थमेतत्॥ ६९॥

(९) **भारुचिः**। तथार्यजा (त) स्त्वार्यायां सर्वसंस्कारमर्हति। उपदेशसामर्थ्यात् श्रौतं स्मार्तं च। कः पुनरसौ स्वजातिजोऽनन्तरजश्च शूद्रवर्जं पारशवादिस्त्वनुलोमोऽपि स्मार्तमेव पाकयज्ञादि(कं न) श्रौतः मातृदोषविगर्हणादित्युक्तम्। प्रतिलोमाः पुनरायोगवादयः पुरुषधर्म्यैरपाहिंसादिभिरधिक्रियते। ब्राह्मणादि(त्रा)णे च देहत्यागेन एवं च सत्येकान्तपरिग्रहेण सर्वत्र यत्॥६९॥

**बीजमेके प्रशंसन्ति क्षेत्रमन्ये मनीषिणः॥**
**बीजक्षेत्रे तथैवान्ये तत्रेयं तु व्यवस्थितिः॥ ७०॥**

(१) **मेधातिथिः**। यथा त्रय एते पक्षाः। तेषां कश्चित्पक्षः केनचित्परिगृहीतः। केचिदाहु**र्बीज**मेव ज्यायः। तथा च ब्राह्मणाज्जातः क्षत्रियादिस्त्रीषु मातृजातित उत्कृष्टः। अन्ये पुनराहुः—**क्षेत्रं** श्रेष्ठं, यतः क्षेत्रियो यत्र क्षेत्रे जातः तज्जातीयो भवति, तस्यैव च तदपत्यम्।

अपरे मन्यन्ते—उभये बीजक्षेत्रे ज्यायसी। तदुक्तं "सुबीजं चैव सुक्षेत्र" (१०।६९) इति।

तदेतत्सर्वमारोचयमान आह **तत्रेयं तु व्यवस्थितिः** इयमत्र निरूप्यावस्थितम्॥ ७०॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। बीजमेक इति विप्रतिपत्तेः संशयहेतोरभिधानम्॥ ७०॥

(३) **कुल्लूकः**। दर्शनान्तराण्युक्तस्यैवार्थस्य स्थैर्यार्थमाह **बीजमिति**। केचित्पण्डिता बीजं स्तुवन्ति, हरिण्याद्युत्पन्नऋष्यश्रृङ्गादेर्ब्रह्ममुनित्वदर्शनात्। अपरे पुनः क्षेत्रं स्तुवन्ति, क्षेत्रस्वामिपुत्रत्वदर्शनात्। अन्ये पुनर्बीजक्षेत्रे उभे अपि स्तुवन्ति, सुबीजस्य सुक्षेत्रे समृद्धिदर्शनात्। एतस्मिन्मतभेदे वक्ष्यमाणेयं व्यवस्था ज्ञेया॥ ७०॥

(४) **राघवानन्दः**। [बीजप्राधान्यं] उक्तमपि स्मारयन्नाह **बीजमिति** त्रिभिः। मतभेदेनैवम्॥ ७०॥

(५) **नन्दनः**। इयं वक्ष्यमाणा॥ ७०॥

(६) **रामचन्द्रः**। एके बीजं ऋष्यश्रृङ्गादयो मनीषिणः क्षेत्रं वियोगपातादौ प्रशंसन्ति। तथा अन्यबीजक्षेत्रे इयं व्यवस्थितिः॥ ७०॥

(८) **गोविन्दराजः**। दर्शनान्तराण्यपास्यैवार्थस्योपोद्बहनार्थमाह **बीजमिति**। केचिद् बीजं स्तुवन्ति, यक्षाद्युत्पन्नानां ऋष्यश्रृङ्गादीनां ऋषित्वदर्शनादपरे पुनः सूरयः क्षेत्रं स्तुवन्ति, समृद्धिदर्शनात् तदेतस्यां पुनर्विप्रतिपन्नत्वादियं वक्ष्यमाणा व्यवस्था विज्ञेया ॥ ७० ॥

(९) **भारुचिः**। तदयुक्तं – एवं यत् उभयत्रैकान्तयोर्दोषदर्शनात्। यदप्येकान्तत आहुः तदप्यसाधु, यस्मात् क्षेत्रे वैगुण्येऽपि सति क्षत्रियावैश्ययोर्ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यां गर्ह्यास्त्रयोऽधिकृताश्च यथा सम्भवं कर्मभिर्दृश्यन्ते तत्रैवमेकान्तत्रयेऽपि दोषदर्शनादियमेव स्थितिः यथोक्ता विज्ञेयेति। अथवा सुबीजमेव सुक्षेत्रे इतीयमुत्कर्षापेक्षा व्यवस्थोच्यते। पूर्वा तु यथाविषयं उपदेशसामर्थ्याद्विज्ञेया ॥ ७० ॥

**अक्षेत्रे बीजमुत्सृष्टमन्तरैव विनश्यति ॥**
**अबीजकमपि क्षेत्रं केवलं स्थण्डिलं भवेत् ॥ ७१ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **अक्षेत्रे** ऊषरे **उत्सृष्टमुप्तमपि बीजमन्तरैवादत्वैव फलं नश्यति**। **अबीजकमयोग्यबीजकं वा क्षेत्रं स्थण्डिलमेव भवे**त्खिलमेव। ततो न फलं लभ्यत इत्यर्थः ॥ ७१ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अनिश्चये हेतुमाह **अक्षेत्र इति**। अन्तरैवाङ्कुरोत्पादात्प्रागेव ॥ ७१ ॥

(३) **कुल्लूकः**। ऊषरप्रदेशे बीजमुप्तं फलमददन्तराल एव विनश्यति। शोभनमपि क्षेत्रं बीजरहितं स्थण्डिलमेव केवलं स्यान्नतु सस्यमुत्पद्यते, तस्मात्प्रत्येकनिन्दया 'सुबीजं चैव सुक्षेत्रं' (१०।६९) इति प्रागुक्तमुभयप्राधान्यमेवाभिहितम् ॥ ७१ ॥

(४) **राघवानन्दः**। अक्षेत्रे ऊषरादौ अन्तरा अंकुरमजनयित्वैव स्थण्डिलं सस्यानुत्पत्तिस्थलम्। मनुजपक्षे अन्तरालजातिर्भूत्वा विनश्यति संस्कारानर्हः। स्थण्डिलं योग्यपुत्राजनकम् ॥ ७१ ॥

(५) **नन्दनः**। अक्षेत्रे क्षेत्रं विनान्तरैव मध्य एव विनश्यति वस्तुन भविष्यति नापि प्ररोहति अबीजकं बीजं विनोभयमन्योन्यापेक्षमित्यर्थः ॥ ७१ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। अबीजकं क्षेत्रं केवलं स्थण्डिलं भवेत् ऊषरं भवेत् ॥ ७१ ॥

(७) **मणिरामः**। अंतरैव फलमदत्वैव, तस्मादुभयोः प्राधान्यमिति स्वीकारः कृतः ॥ ७१ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **अक्षेत्र** इति। ऊषरप्रदेशे बीजमुप्तमदत्वैव फलं विनश्यति। शोभनमपि च क्षेत्रं बीजरहितं शुद्धस्थण्डिलमेव स्यात् सस्यानुत्पादः। तस्मादुभयं प्रधानमिति न्याय्यम् ॥ ७१ ॥

(९) **भारुचिः**। उभयप्राधान्यमेव च परिगृह्य वान्वयव्यतिरेका उच्यन्ते सूपस्कृतमपि केवलं बीजरहितं स्थण्डिलमिव निष्फलं भवेत् ॥ ७१ ॥

**यस्माद्बीजप्रभावेण तिर्यग्जा ऋषयोऽभवन् ।।**
**पूजिताश्च प्रशस्ताश्च तस्माद्बीजं प्रशस्यते ।। ७२ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । **पूजिताः** सर्वेण केनचित्प्रणम्यन्ते । **प्रशस्ताः** स्तुतिवचनैः स्तूयन्ते । **तस्माद्बीजं विशिष्यत** इति बीजप्राधान्यवादिनः — तदेतदयुक्तमित्युक्तम् । "तत्रेयं तु व्यवस्थितिः" इति ।

अथवा **बीजप्रभावेणेति** न बीजप्राधान्यं दर्शितमपि तु दूषणमेव । यदाशंक्यते बीजप्राधान्यान्मन्त्रदपालादीनां **तिर्यग्जा ऋषय** इति बीजप्राधान्यं तद्दर्शनात् न तत्र बीजप्राधान्येन तदपत्यानामृषित्वमपि य तपःश्रुतादिजेन प्रभावेण धर्मविशेषेण ।। ७२ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । यद्येवं तथापि बीजस्यातिप्राधान्याद्बीजशुद्धिरेव ग्राह्येति स्वमतमुपसंहरति **यस्मादिति** । तिर्यग्जा ऋष्यश्रृङ्गादयः पूजिता अभवन् । प्रशस्ताश्च ऋषयो ब्रह्मर्षयः ।। ७२ ।।

(३) **कुल्लूकः** । इदानीं बीजप्राधान्यपक्षे दृष्टान्तमाह **यस्मादिति** । यस्माद्बीजमाहात्म्येन तिर्यग्जातिहरिण्यादिजाता अपि ऋष्यश्रृङ्गादयो मुनित्वं प्राप्ताः पूजिताश्चाभिवाद्यत्वादिना वेदज्ञानादिना प्रशस्ता वाचा संस्तुतास्तस्माद्बीजं प्रस्तूयते । एतच्च बीजप्राधान्यनिगमनं बीजयोन्योर्मध्ये बीजोत्कृष्टाजाति प्रधानमित्येवंपरतया बोद्धव्यम् ।। ७२ ।।

(४) **राघवानन्दः** । हरिण्यादिजाता ऋष्यश्रृङ्गादयस्तिर्यग्जाः प्रशस्ताः । अन्येषु सत्सु ऋषिषु दशरथयज्ञ ऋष्यश्रृङ्गः प्राशस्त्यं गतः । तिर्यग्जोऽपि संस्क्रियते तज्जातेरपर्युदस्तत्वात् । 'न शूद्रे पातकं किंचिन्नंच संस्कारमर्हतीति' शूद्रजातेः पर्युदस्तत्वान्न पारशवादेः संस्कार इति भावः ।। ७२ ।।

(५) **नन्दनः** । तथापि बीजं प्रधानमित्याह **यस्माद्बीजमिति** । तिर्यग्जाः ऋष्यश्रृङ्गादयः ।। ७२ ।।

(७) **मणिरामः** । बीजप्राधान्यपक्षे दृष्टांतमाह **यस्मादिति** । तिर्यग्जाः हरिण्यादिजाः ऋषयः ऋष्यश्रृङ्गादयः ।। ७२ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । बीजप्राधान्यपक्षे दृष्टान्तमाह **तस्मादिति** । यस्माद्बीजमाहात्म्येन तिर्यग्जातिमातृजा अपि ऋष्यश्रृङ्गादयः संपन्नाः पूजिताश्च पादवन्दनादिभिः पूजाभिः प्रशस्ताश्च बालाः संस्तुताः । तस्माद् बीजं कैश्चित् स्तूयत इति बीजप्राधान्यं पुनर्गमयत्वेन (?)ज्ञापयति तद्बीजयोन्योर्मध्याद् बीजोत्कृष्टजातिः प्रशस्यत इति ।। ७२ ।।

(९) **भारुचिः** । अथ चोभयप्राधान्यं क्वचिदुच्यते बीजं च प्रभावं च बीजप्रभावे द्वंद्वैकवद्भावः नपुंसकलिङ्गः बीजं यथोक्तं प्रभावः प्रतिनिविष्टधर्मविशेषाविष्कृतात्मत्वं तेन बीजप्रभा तिर्यग्जा अपि सन्तः ऋष्यशृङ्गप्रभृतयः । तस्माद्बीजं प्रशस्यते इत्याहुः । एतच्चैकान्तपरिग्रहे सत्युक्तदोषं बीजप्राधान्यम् । पुनर्निगमनायैतद् ज्ञापयति । बीजयोन्योः बीजोत्कृष्टजातिः प्रशस्यत इति । तथा च सत्यनुलोमानुत्कृष्टानेव सतः स्तौति क्षत्रियवैश्याजान् शूद्रावर्जम् । बीजयोन्योरवोचामेति ।। ७२ ।।

**अनार्यमार्यकर्माणमार्यं चानार्यकर्मिणम् ॥**
**संप्रधार्याब्रवीद्धाता न समौ नासमाविति ॥ ७३ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **अनार्यः** शूद्रः। स **आर्यकर्मा** द्विजातिशुश्रूषादिरतः पाकयज्ञयाजी च देवद्विजनमस्कारपरः। **आर्यो** ब्राह्मणादिः सोऽ**नार्यकर्मा** प्रतिषिद्धाचरणो विहितकर्मत्यागी। तावुभौ **संप्रधार्य** तद्गुणत्वेनावगम्य तयोः किं कस्यचित्सातिशयो गुणः कस्याश्चित् वा अन्ते निरूपणबुद्धिः। **संप्रधार्य धाता** प्रजापतिर्मनुर्बुद्धया निरूप्या**ब्रवीत्**।

न **समौ** जातेर्गरीयस्या उत्कृष्टगुणोऽपि शूद्रः **तुल्यो न स्यात्**। पुनराह **ना समौ**। किं जात्या तूत्कृष्टयाऽपि बहुदोषावगृहीतस्य।

एतदुक्तं भवति – न जातिबलमाश्रित्य नरो माननीयः किंतु गुणा माननीयाः। न गुणहीनं जातिः परित्रातुमलम्। प्रायश्चित्तोपदेशवैयर्थ्यप्रसङ्गात्।

"अनार्यायां समुत्पन्नः"(१०/६६) इत्यत आरभ्य यावदयं श्लोको वर्णसङ्करनिन्दा कर्मप्रशंसार्थो नात्र किंचिद्विधीयते प्रतिषिध्यते वा। नापूर्वार्थो ज्ञाप्यतेऽभिलक्षणवत्। तस्मात्प्रशंसार्था एवैते ॥ ७३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। यथा क्षेत्रविशेषोत्पन्नत्वेऽपि बीजदोषान्न श्रेष्ठत्वं तथा दुष्टकर्मकरणादपि न श्रैष्ठ्यमित्याह **अनार्यमिति**। अनार्यं व्रात्याद्युत्पन्नमार्यकर्माणं ब्राह्मणकर्मकर्तारम्। तथा आर्यमव्रात्योत्पन्नमपि निन्दितकृष्यादिकरम्। न समौ ब्राह्मणैः सदृशौ दोषसद्भावात्। नासमौ नात्यन्तमपकृष्टौ ब्राह्मण्यभावात्। एवं च वृत्त्युत्कर्षे तेषामपि क्रमादुत्कर्ष इत्युक्तम्। अत एवापस्तम्बो येषामपतितसाविलीकाः पूर्वपुरुषाः वेषे ज्ञायन्ते तेषामपि प्रायश्चित्तपूर्वकं संस्कारं विहितवान्। एतदर्थमेव च 'आर्यं चानार्यकर्माण'मित्यप्रकृतमप्युक्तम् ॥ ७३ ॥

(३) **कुल्लूकः**। शूद्रं द्विजातिकर्मकारिणं द्विजातिं च शूद्रकर्मकारिणं ब्रह्माविचार्य 'न समौ नासमा'वित्यवोचतायतः शूद्रो द्विजातिकर्मापि न द्विजातिसमः, तस्यानधिकारिणो द्विजातिकर्माचरणेऽपि तत्साम्याभावात्। एवं शूद्रकर्मापि द्विजातिः न शूद्रसमः, निषिद्धसेवनेन जात्युत्कर्षस्यानपायात्, नाप्यसमौ निषिद्धाचरणेनोभयोः साम्यात्। तस्माद्यद्यस्य विगर्हितं तत्तेन न कर्तव्यमिति संकरपर्यन्तवर्णधर्मोपदेशः ॥ ७३ ॥

(४) **राघवानन्दः**। अनधिकारिणा क्रियमाणं कर्म न फलायेति ज्ञापनार्थं चातुर्वर्ण्येषु प्रथमाध्यायाद्युक्ताः स्वधर्मवृत्तीः संस्मारयन्नापद्धर्ममाह **अनार्येत्यध्यायसमाप्तेः**। अनार्यं क्षत्रियादिभार्यकं आर्यकर्माणं याजनादिकर्तारं आर्यं युद्धसेवादिकारिणं समौ कर्मणा जात्यन्तरानुत्पत्तेः नाऽसमौ उभयोर्निषिद्धाचरणस्य तुल्यत्वात् 'परधर्मो भयावह'इत्युक्तेः ॥ ७३ ॥

(५) **नन्दनः**। अनार्यमद्विजातितोऽपकृष्टं आर्यकर्माणं गुणतो विशिष्टं न समौ नातिविषमावल्पान्तरावित्यर्थः ॥ ७३ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। अनार्यं व्रात्यादुत्पन्नं आर्यकर्माणं च पुनः आर्यमनार्यकर्माणं धाता संप्रधार्य अवधार्य समौ न असमौ न इत्यब्रवीत् ॥ ७३ ॥

(७) **मणिरामः**। संप्रधार्य विचार्य । द्विजातिधर्माऽनधिकारिणस्तदाचरणेऽपि न द्विजसमता भवतीति न समत्वं । निषिद्धशूद्रधर्माचरणे न जात्युत्कर्षता न गच्छतीति नाऽसमत्वमित्यर्थः ॥ ७३ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **अनार्यमिति**। शूद्रं द्विजातिकर्मकारिणं द्विजातिं च शूद्रकर्मकारिणं प्रजापतिर्विचार्य न समौ तौ नाप्यसमावित्याह । यतः शूद्रो द्विजातिकर्माणि न द्विजातिसमः, तस्य द्विजातिकर्माधिकारे सति तत उत्कर्षाभावात् निषिद्धाचरणेन च प्रत्यवायात् द्विजातिरपि शूद्रकर्माणि आचरन् न शूद्रसमो निषिद्धसेवने जातेऽपि महाभाग्यान्नाप्यसमोऽपि निषिद्धाचरणेनोभयोः पातित्यात्; तस्माद् यस्य विहितं तत्तेन कर्तव्यमिति सङ्करपर्यन्तवर्णोपदेशः ॥ ७३ ॥

(९) **भारुचिः**। अनार्य (स्ताव) च्छूद्र आर्यकर्मा द्विजातिकर्मापि सन्नसमो द्विजातिभिः। कस्मात् ? तस्य तेनानधिकाराद्उत्कर्षाभावात् । न केवलमुत्कर्षाभावः । अपरश्च प्रत्यवायः प्रतिषिद्धसेवनात् ब्राह्मणः शूद्रकर्मापि सन्नसमः शूद्रेण । जाते (र्मे) हाभाग्यात् प्रतिषिद्धसेवनेऽपि एवं तावदनयोरसाम्येन चासमौ येनोभावपि तौ प्रतिषिद्धसेवनया पतितौ । तथा च **गौतमः** 'आर्यानार्ययोर्ह्यतिक्षेपे कर्मणः सा...मित्याह-सैयमेवं कर्मप्रशंसासामर्थ्याद्विज्ञायते । एवं च सति न जातिबलमाश्रित्य कर्माणि हापयेत् । यस्मात् संयुक्ते हि जातिकर्मणी । कार्यमदृष्टं पुरुषार्थाख्यं साधयत इदानीमापत्कल्पप्रकरणोपन्यासार्थमिदं प्रस्तूयते ब्राह्मणादीनां वर्णानाम् ॥ ७३ ॥

**ब्राह्मणा ब्रह्मयोनिस्था ये स्वकर्मण्यवस्थिताः ॥**
**ते सम्यगुपजीवेयुः षट्कर्माणि यथाक्रमम् ॥ ७४ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। आपद्धर्माणामुपोद्घातः। **योनिः** कारणम्। **ब्राह्मणा ब्रह्मयोनिस्थास्ते षट्कर्माण्युपजीवेयुरनुतिष्ठेयुः** । अनेकार्था धातवः। **यथाक्रमं** यथाधिकारम् । यस्मिन् कर्मणि योऽधिकारी। कानिचिद्विध्यर्थानि कानिचिद्दृष्टार्थानि ॥ ७४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। ब्रह्मयोनिस्थाः ब्राह्मणमातापितृजन्याः सम्यक् कृत्स्नानि षट्कर्माणि उपजीवेयुरनुतिष्ठेयुः, नतु व्रात्यादयः; तेषामध्ययनादावनधिकारात् । यथाक्रमं यथायोगम् ॥ ७४ ॥

(३) **कुल्लूकः**। इदानीं ब्राह्मणानामापद्धर्मं प्रतिपादयिष्यन्निदमाह **ब्राह्मणा इति**। ये ब्राह्मणा ब्रह्मप्राप्तिकारणब्रह्मध्याननिष्ठाः स्वकर्मानुष्ठाननिरताश्च ते षट्कर्माणि वक्ष्यमाणान्यध्यापनादीनि क्रमेण सम्यगनुतिष्ठेयुः ॥ ७४ ॥

(४) **राघवानन्दः**। विप्रस्य वृत्तीराह **ब्राह्मणा इति** चतुर्भिः। ब्राह्मणा ब्रह्मबुभूषवः । ब्रह्मयोनिस्था ब्रह्मयोनिजाः ॥ ७४ ॥

(५) **नन्दनः**। एवं तावद्धर्माधिकारिणो वर्णाः सान्तरप्रभावाः सोत्कर्षापकर्षाः प्रतिपादिताः, आपद्धर्मान्वक्तुमनापद्धर्मं पूर्वोक्तं संक्षिप्य सप्तभिः श्लोकैरनुभाषते **ब्राह्मणा**

**ब्रह्मयोनिस्था** इति। ब्रह्मयोनिधर्म इति यावत्तत्रस्थाः अथवा वेदस्य योनित्वेन प्रवक्तृत्वेन स्थिताः। यथाक्रममित्यस्यायमर्थः—स्वयं नित्यं स्वाध्यायशीलः स्यादध्यापयेच्च स्वयं यजेद्याजयेच्च स्वयं दद्यात्प्रतिगृह्णीयाच्चेति षट्कर्माणि वक्ष्यमाणानि सम्यगापत्कल्पेनोपजीवेयुरनुतिष्ठेयुः ॥ ७४ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। ते यथाक्रमं द्विजाः षट्कर्माणि षट्कर्मणा उपजीवेयुः ॥ ७४ ॥

(७) **मणिरामः**। इदानीमापद्धर्मं प्रतिपादयिष्यन्निदमाह **ब्राह्मणेति**। ब्रह्मयोनिस्थाः ब्रह्मध्याननिष्ठाः ॥ ७४ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। इदानीमापद्धर्मविवक्षयेदमाह **ब्राह्मणा इति**। ये ब्राह्मणा ब्रह्मप्राप्तिकारण आत्मज्ञानाभ्यासे व्यवस्थिताः ते षट्कर्माणि सम्यगनुतिष्ठेयुः। यानि च स्वकर्मानुष्ठाननिरताश्च ते षट्कर्माणि वक्ष्यमाण आत्मज्ञानाभ्यासे व्यवस्थिताः सम्यगनुतिष्ठेयुः ॥ ७४ ॥

(९) **भारुचिः**। ब्रह्मयोनिस्था इत्येतत् स्वयमेव विवृणोति—ये स्वकर्मस्वव्यवस्थिताः न वर्णान्तरकर्मसु ते सम्यगुपजीवेयुः षट्कर्माणि। तथा च वक्ष्यति—'वैश्यवृत्तिमनातिष्ठन्ब्रह्मक्षत्रियवि'-मादि। यथाक्रममिति शास्त्रविहितेन क्रमेणानुपरिपाट्या आचारो(प)क्रमः। तेन यथा चैतिहासिकाः प्रवाराः श्रुतिः क्रमादधीतेत्येवमादिकर्ममात्रानुष्ठाने चोपजीवनशब्दो विज्ञेयः। आजीवकर्मसम्बन्धेन वा ॥ ७४ ॥

**अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा ॥**
**दानं प्रतिग्रहश्चैव षट्कर्माण्यग्रजन्मनः ॥ ७५ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। प्रथमेऽध्याये शास्त्रस्तुत्यर्थं एषा पाठः। इह तु विध्यर्थम्। यद्यपि तेषां केवलानां विधिरुक्तस्तथापीह समस्य निर्दिश्यते सौहार्देन। विध्यन्तरमप्यपेक्ष्यमेवेद रूपम्। वचनाच्चैतेषां कर्मणाम्। अतो यथाविहितमनूद्य वक्ष्यमाणोऽर्थो विधीयते ॥ ७५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। तान्येव षट् कर्माणि प्रथमाध्यायोक्तान्यपि स्मारयति **अध्यापनमिति** ॥ ७५ ॥

(३) **कुल्लूकः**। तानि कर्माण्याह **अध्येति**। अध्यापनाध्ययने साङ्गस्य वेदस्य तथा यजनयाजने दानप्रतिग्रहौ चेत्येतानि षट् कर्माणि ब्राह्मणस्य वेदितव्यानि ॥ ७५ ॥

(४) **राघवानन्दः**। किंच **अध्यापनमिति**। दानं स्वस्वत्वध्वंसपुरःसरं परस्वत्वापत्तिफलकम्। अग्रजन्मनो विप्रस्य ॥ ७५ ॥

(७) **मणिरामः**। षट्कर्माण्याह **अध्ययनमिति** ॥ ७५–७७ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **अध्यापनमिति**। अध्यापनादीनि षट् कर्माणि ब्राह्मणस्यानुष्ठेयानि अध्ययनाध्यापने साङ्गस्य वेदस्य पाठशिष्यप्रवचने यजनयाजने यागनिर्वर्त्ये ते षट्कर्माणि ॥ ७५ ॥

(९) **भारुचिः**। तानि पुनः विध्यर्थं हिस्यादि . . . मिहोपदेशः, प्रथमेऽध्याये तु शास्त्रस्तुत्यर्थ उक्तः। अथ तु विधिरेषां पूर्वशास्त्रादेव विज्ञातुं शक्यस्तत आपत्प्रकरणार्थ-मेषामिहोपदेशो विज्ञेयः ॥ ७७ ॥

**षण्णां तु कर्मणामस्य त्रीणि कर्माणि जीविका ॥**
**याजनाध्यापने चैव विशुद्धाच्च प्रतिग्रहः ॥ ७६ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। कर्मत्रिकविभागः स्पष्टप्रयोजनः। एकं त्रिकं दृष्टार्थमुपात्तं सामर्थ्यात्। अन्यस्यादृष्टार्थता। **विशुद्धो**ऽपापकर्मा। एवं शूद्रोऽपि विशुद्धः प्राप्नोति। को भवतो मत्सरः? स्मृत्यन्तरविरोधः प्राप्नोति। 'प्रशस्तानां स्वकर्मसु द्विजातीनां ब्राह्मणो भुञ्जीत प्रतिगृह्णीयाच्चे'ति। एवं तर्हि यथाऽविरोधो भवति तथा व्याख्येयम्। न ह्यविरोधे संभवति विरोधो न्याय्यः। अपि वाऽनुवाद एवायं, 'राजतो धनमन्विच्छेत्' (४।३३) इति। एवमादावस्यार्थस्य विहितत्वात् ॥ ७६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। जीविका जीवनोपायः। याजनाध्यापने शुद्धे अदुष्टे। विशुद्धः परिग्रहदोषरहितः ॥ ७६ ॥

(३) **कुल्लूकः**। अस्य ब्राह्मणस्यैषामध्यापनादीनां षण्णां कर्मणां मध्याद्याजनमध्यापनं विशुद्धप्रतिग्रहैःद्विजातिभ्यो धनं लिप्सेत् प्रशस्तेभ्यो द्विज इति वचननिर्देशाद् द्विजातेः प्रतिग्रह इत्येतानि त्रीणि कर्माणि जीवनार्थानि ज्ञेयानि ॥ ७६ ॥

(४) **राघवानन्दः**। षण्णां कर्मणां मध्ये जीविकाः जीवनहेतवः ॥ ७६ ॥

(५) **नन्दनः**। विशुद्धात्स्वकर्मनिरतात्त्रैवर्णिकात् ॥ ७६ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **षण्णामिति**। एषामध्यापनादीनां षण्णां कर्मणां मध्याद्याजन-मध्यापनं प्रशस्तानां स्वकर्मसु द्विजातीनां ब्राह्मणो भुञ्जीत। प्रतिगृह्णीयाच्चेति **गौतम**दर्शनाद्धार्मिकात् द्विजातेः प्रतिग्रह इत्येतानि त्रीणि कर्माणि जीवनार्थानि ॥ ७६ ॥

(९) **भारुचिः**। इदानीं धर्मद्वयप्रविभागो दृष्टादृष्टत्वादेषां प्रतिक्रियते। विशुद्धात् प्रतिग्रहोऽयमुच्यते; यतः स विचार्यते कः पुनरिह शुद्धः। यो जात्या कर्मणा चेति। नन्वेवं सति ब्राह्मण एवैको विशुद्धः प्राप्नोत्युभयसम्पदा एवं च तस्मिन् मुख्यो निरपेक्षत्वाद्विशुद्धः प्रत्ययः। स्मृत्यन्तरे 'तु प्रशस्तानां स्वकर्मसु द्विजातीनां ब्राह्मणो भुञ्जीत प्रतिगृह्णीयाच्चे'ति क्षत्रियवैश्यावप्युपगृह्येते, इह तु यदि विशुद्धशब्दः क्षत्रियवैश्ययोरपि ग्राहकः परिकल्प्यते ब्राह्मणव्यतिरेकेण तेन शूद्रेण को मत्सरः? असावपि हि जात्या कर्मणापि शुद्धः। विशेषोऽस्ति चेत्, क्षत्रियवैश्ययोरपि ब्राह्मणात् परस्परविशेषोऽस्ति। यतः शूद्रो वा ग्राह्यो वृत्तस्थः क्षत्रियवैश्यौ वा उत्सृष्टव्यौ ब्राह्मणं परिगृह्योच्यते—सत्यप्येतस्मिन् वेदाध्ययनं वैदिककर्मसम्बन्धं चावेक्ष्य त्रयाणामप्यविशिष्टैव कर्मशुद्धिरधिकारसाम्यादुच्यते। तथा चाविशेषेण त्रिभ्योऽपि स्मृत्यन्तरे प्रतिग्रहोऽनुज्ञायते, स्वकर्मस्थेभ्यः, न तु शूद्रात्। एवं च सति तथैवेहापि व्याख्येयम्। विशुद्धग्रहणं च प्रतिग्रहसम्बन्धमपि सद्याजनाध्यापनार्थमपि

सामर्थ्याद्द्रष्टव्यम् । इतरथा हि ताभ्यामसम्बन्धं शूद्रार्थमेवैतत् स्यादेतस्य याजनाध्यापनानधिकारात् ।। ७६ ।।

**त्रयो धर्मा निवर्तन्ते ब्राह्मणात्क्षत्रियं प्रति ।।**
**अध्यापनं याजनं च तृतीयश्च प्रतिग्रहः ।। ७७ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । जीविकाकर्माण्येतानि क्षत्रियस्य न भवन्ति । यानि त्वदृष्टार्थानीष्टयध्ययनदानानि न निवर्तन्ते । वेदस्य च प्रकृतत्वादेतदध्यापनं निषिध्यते । न तु धनुर्वेदशिल्पकलाविद्यानाम् ।। ७७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । ब्राह्मणाद् ब्राह्मणसंबन्धिनो धर्माः ।। ७७ ।।

(३) **कुल्लूकः** । ब्राह्मणापेक्षया क्षत्रियस्याध्यापनयाजनप्रतिग्रहाख्यानि वृत्त्यर्थानि त्रीणि कर्माणि निवर्तन्ते । अध्ययनयागदानानि तु तस्यापि भवन्ति ।। ७७ ।।

(४) **राघवानन्दः** । याजनादित्रयो ब्राह्मणात् ब्राह्मणं स्वधर्मित्वेन प्राप्य क्षत्रियं प्रति निवर्तन्त इत्यन्वयः ।। ७७ ।।

(५) **नन्दनः** । ब्राह्मणानां ब्राह्मणसंबन्धिनां धर्माणां मध्ये याजनाध्यापनप्रतिग्रहाः याजनाध्यापनप्रतिग्रहाणां रक्षा युद्धानामिव तेषां जीविकात्वेऽपि धर्मत्वनिवृत्त्यभावख्यापनार्थं धर्मा इत्युक्तम् ।। ७७ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । त्रयो धर्माः क्षत्रियं प्रति निवर्तन्ते अध्ययनं याजनं प्रतिग्रहः एतत्त्रयम् ।। ७७ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **त्रय इति** । ब्राह्मणानपेक्ष्य क्षत्रियस्याध्यापनयाजनप्रतिग्रहाख्यानि त्रीणि वृत्त्यर्थानि कर्माणि निवर्तन्ते । एवं च सत्यध्ययनयागदानानि भवन्ति ।। ७७ ।।

(९) **भारुचिः** । अत्र च धर्मशब्दो वृत्तिकर्मविषय एव द्रष्टव्यः, तन्निर्देशसामर्थ्यात् । एवं च सति याज्याध्ययनदानादि तस्या दृष्टार्थानि न प्रतिषिध्यन्ते । तथा च तानि वक्ष्यन्ति । अत्र चाधिकाराद्वेदाध्यापनं प्रतिषिध्यते क्षत्रियस्य सहाङ्गैः । न तु धनुर्वेदादीनाम् ।। ८८ ।।

**वैश्यं प्रति तथैवैते निवर्तेरन्निति स्थितिः ।।**
**न तौ प्रति हितान्धर्मान्मनुराह प्रजापतिः ।। ७८ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । पूर्वेणैतद्व्याख्यातम् । **तौ** क्षत्रियवैश्यौ **प्रत्येते**ऽध्यापनादयो **धर्मा मनुना** प्रजापतिना नोक्ताः, न स्मृता इत्यर्थः ।। ७८ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । एते धर्मा अध्यापनादयस्त्रयः ।। ७८ ।।

(३) **कुल्लूकः** । यथा क्षत्रियस्याध्यापनयाजनप्रतिग्रहा निवर्तन्ते तथा वैश्यस्यापीति

शास्त्रव्यवस्था, यस्मान्मनुः प्रजापतिः तौ क्षत्रियवैश्यौ प्रति तानि वृत्त्यर्थानि कर्माणि कर्तव्यत्वेन नोक्तवान् । एवं वैश्यस्याप्यध्ययनयागदानानि भवन्ति ।। ७८ ।।

(४) **राघवानन्दः** । एवं **वैश्यं प्रतीति** । तौ क्षत्रियवैश्यौ । तान्याजनादीन् ।। ७८ ।।

(५) **नन्दनः** । एतौ क्षत्रियवैश्यौ तानध्यापनादीन् ।। ७८ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । तथैव वैश्य प्रति तान्धर्मान् अध्ययनादीन् मनुः प्रजापतिर्नाह ।।७८।।

(७) **मणिरामः** । एते अध्यापनाद्यास्त्रयः । तौ प्रति क्षत्रियवैश्यौ प्रति । तान् त्रीन् ।। ७८–७९ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **वैश्यमिति** । यथैव क्षत्रियस्याध्यापनयाजनप्रतिग्रहा निवर्तन्ते एवं वैश्यस्यापीति शास्त्रव्यवस्था । यस्मान्मनुः प्रजापतिः क्षत्रियवैश्ययोरेतानि वृत्त्यर्थानि कर्माणि कर्तव्यत्वेन स्मृतवान् । एवं च वैश्यस्याप्यध्ययनयागदानानि भवन्ति ।। ७८ ।।

(९) **भारुचिः** । वृत्तिकर्मप्रतिलो ... ... नामिज्यादीनां पूर्ववदिहाप्यप्रतिषेधो विज्ञेयः । तथा च तानि वक्ष्यति ।। ७८ ।।

**शस्त्रास्त्रभृत्त्वं क्षत्रस्य वणिक्पशुकृर्षिवशः ।।**
**आजीवनार्थं धर्मस्तु दानमध्ययनं यजिः ।। ७९ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । इदं तयोर्जीविकाकर्म । **शस्त्रं** खड्गादि । **अस्त्रं** तन्मन्त्राः धनुर्वेद-प्रसिद्धाः । अयमप्युक्तानुवाद एव । **वणिक्पशुशब्दौ** कर्मान्तभावेन प्रयुक्तौ, वणिज्या पशुपालनं च । यद्यप्यध्ययनादिधर्माः सर्वेषां सन्ति तथापि प्राधान्यमेतेषाम् ।। ७९ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । शस्त्रं खड्गादिकमुक्तं अस्त्रं शराद्यिमुक्तं तद्धारणं न तत्साध्यं द्रव्यादिकं लक्षयति तदाजीवनार्थं क्षत्रस्येत्यर्थः । वणिक् वाणिज्यं पशुः पशुपाल्यं वणिक्पशुकृषीरिति प्रथमाबहुवचने, पूर्वसवर्णेन छान्दसं रूपम् । एतच्च सर्वत्र यागो जीवनार्थम् । धर्मो धर्मसाधनम् । यजिर्यागः ।। ७९ ।।

(३) **कुल्लूकः** । शस्त्रं खड्गादि, अस्त्रं बाणादि, एतद्धारणं प्रजारक्षणाय क्षत्रियस्य च वृत्त्यर्थम् । वाणिज्यपशुरक्षणकृषिकर्माणि वैश्यस्य जीवनार्थानि । धर्मार्थाः पुनरनयोर्दाना-ध्ययनयागा भवन्ति ।। ७९ ।।

(४) **राघवानन्दः** । क्षत्रियवैश्ययोरसाधारणान्याह **शस्त्रेति** । शस्त्रं खड्गादि, अस्त्रं तत्प्रेरकमन्त्रादि । आजीवनार्थं वृत्त्यर्थं, वणिक् वाणिज्यं तेन सह पशुकृषी वा । धर्मस्तु दानादित्रयमित्यन्वयः । धर्मो धर्मार्थम् ।। ७९ ।।

(५) **नन्दनः** । क्षत्रियवैश्ययोर्वृत्तिं धर्मं त्वाह **शस्त्रास्त्रभृत्त्वं क्षत्रस्येति** । शस्त्रमायुधरूपं शस्त्रास्त्रभरणेन तत्कार्याणि रक्षायुद्धादीनि लक्ष्यन्ते । वणिग्वाणिज्यं पशुरक्षणं यजिर्यजनम् ।। ७९ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । क्षत्रस्य शस्त्रास्त्रभृत्त्वं शस्त्रं खड्गादिकं, अस्त्रं शरादिकम् ।।७९ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **शस्त्रास्त्रभृत्त्वमिति**। वृत्त्यर्थत्वेन रक्षणार्थं खड्गाद्यायुध-प्रहरणमन्त्रधारणं क्षत्रियस्य। वाणिज्यपशुपालनकर्षणानि वैश्यस्य जीवनार्थान्यदृष्टार्थाः पुनरनयोर्दानाध्ययनयागा भवन्ति ॥ ७९ ॥

(९) **भारुचिः**। आजीव(निः) स्वकर्मसु स्वयमभ्यासोऽध्यापनं च वेदाभ्यासशब्देन सामर्थ्यादिहोच्यते न त्वध्ययनम्। समानत्वाद्विशिष्टानि, 'स्वकर्मस्वि'ति वचनाद् वृत्तिरपि सत्येषा ब्राह्मणस्यैव ज्यायसी दृष्टादृष्टपुरुषार्थप्रयोजनत्वात्। तथा च क्षत्रियस्य रक्षणं वृत्त्यर्थं धर्मार्थं च विज्ञेयम्। तथा वैश्यस्य धनव्यवहारो ब्राह्मणादिपुष्टचर्थमवश्यानुष्ठेयः। येन तस्य धनातिसर्ग एव विशिष्टो धर्मः। अथवा विशिष्टानि स्वकर्मस्थितिवचनात् इदमन्यद्विज्ञायते। यथा अनीचाद्वा वेदाभ्यासमात्रेणैव ब्राह्मणः सूतो भवति। एवं क्षत्रियोऽनधी(या)नश्चायजमानश्च। प्रजासंरक्षणमात्रेणैवोत्कृष्यते वैश्यश्च वार्तयैव द्विजात्यर्थया इज्याध्ययनासम्भवेऽपीति ॥ ७९ ॥

**वेदाभ्यासो ब्राह्मणस्य क्षत्रियस्य च रक्षणम् ॥**
**वार्ताकर्मैव वैश्यस्य विशिष्टानि स्वकर्मसु ॥ ८० ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **वेदाभ्यासो** वृत्तिप्रकरणादध्यापनम्। एवं **विशिष्टानि स्वकर्मसु**। शास्त्रीयवृत्तिकर्मस्वन्येभ्यो जीवनकर्मभ्य इमानि श्रेयस्करतराणि ॥ ८० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। वेदाभ्यासः सदा जप्यपरता। वार्ताकर्म वार्तया कृष्यार्जितेन धनेन कर्म दानयागकर्म नतु वार्तारूपं तस्य कर्म जीविकात्वात् स्वाध्यायसंभिव्याहारयोगात् ॥ ८० ॥

(३) **कुल्लूकः**। वेदाभ्यासो वेदाध्यापनं रक्षावार्ताभ्यां वृत्त्यर्थाभ्यां सहोपदेशात् तद्ब्राह्मणस्य, प्रजारक्षणं क्षत्रियस्य, वाणिज्यं पाशुपाल्यं वैश्यस्य। एतान्येतेषां वृत्त्यर्थकर्मसु श्रेष्ठानि ॥ ८० ॥

(४) **राघवानन्दः**। **किंच वेदेति**। वेदाभ्यासरक्षावार्ताश्च द्विजानां यथाक्रममतीव प्रशस्ता इति भावः ॥ ८० ॥

(५) **नन्दनः**। वार्ताकर्म वाणिज्यकर्म ॥ ८० ॥

(६) **रामचन्द्रः**। रक्षणं प्रजायाः, द्विजस्य वेदाभ्यासः, वैश्यस्य वार्ताकर्म, स्वकर्मे स्वकर्मसु विशिष्टानि ॥ ८० ॥

(७) **मणिरामः**। वार्ताकर्म वाणिज्यं पशुपाल्यं च ॥ ८० ॥

(८) **गोविंदराजः**। **वेदाभ्यास इति**। वृत्त्यर्थाभ्यां सहोपदेशादध्ययनस्य समानत्वाद् वेदाभ्यासोऽध्यापनं ब्राह्मणस्य। लोकसंरक्षणं क्षत्रियस्य। कृषिवाणिज्यपशुपाल्यं वैश्यस्य इत्येतान्येषां वृत्त्यर्थत्वेऽपि सत्यदृष्टजनकत्वात् स्वकर्ममध्ये प्रशस्तानि ॥ ८० ॥

**अजीवंस्तु यथोक्तेन ब्राह्मणः स्वेन कर्मणा ॥**
**जीवेत्क्षत्रियधर्मेण स ह्यस्य प्रत्यनन्तरः ॥ ८१ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। यदाऽस्य शरीरकुटुंबनित्यकर्मावसादो भवति, न तेभ्यः पर्याप्तं धनं भवति, तदाऽयं '**अजीवन्नि**'त्युच्यते। **यथोक्तेनाध्यापनादिना**। तदा क्षत्रियवत् ग्रामनगररक्षादिना शस्त्रास्त्रधारणेन सति संभवे सर्वाधिपत्येन **जीवेत्**। जीवतिर्व्याख्यातार्थः शरीरमात्रसंधारणे न वर्तते। किं तर्हि? कुटुंबस्वकर्माणि नित्यकर्मावस्थितामपि लक्षयति। **स ह्यस्य प्रत्यनन्तरोऽनन्तर** एव प्रत्यनन्तरः। हेतुवचनाद्व्यवहितवृत्तिः पापकरी। स्ववृत्तिपरित्यागेऽपि नैवं मन्तव्यं शास्त्रातिक्रमकृतस्तत्र न विशेषो वैश्यशूद्रेष्वपीति तथा चाह ॥ ८१ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अनापद्वृत्तिरुक्ताऽऽपद्वृत्तीः प्रस्तौति **अजीवन्निति**। प्रत्यनन्तरोऽनन्तरतः प्रतिनिधिः ॥ ८१ ॥

(३) **कुल्लूकः**। अधुनाऽऽपद्धर्ममाह **अजीवन्निति**। यथोक्तेनाध्यापनादिस्वकर्मणा ब्राह्मणो नित्यकर्मानुष्ठानेन कुटुंबसंवर्धनपूर्वकमजीवन्क्षत्रियकर्मणा ग्रामनगररक्षणादिना जीवेत्; यस्मात्क्षत्रियधर्मोऽस्य सन्निकृष्टा वृत्तिः ॥ ८१ ॥

(४) **राघवानन्दः**। यथोक्तेन याजनाध्यापनप्रतिग्रहेण। पूर्वस्य पूर्वस्य प्राशस्त्यार्थं प्रत्यनन्तरः प्रातिलोम्यवृत्तावप्यव्यवहितः संनिधेरपि मानत्वात् ॥ ८१ ॥

(५) **नन्दनः**। अथापद्धर्मानाह **अजीवंस्त्विति** ॥ ८१ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। अजीवंश्चेत् क्षत्रियधर्मेण जीवेत् स क्षात्रधर्मः अस्य द्विजस्य प्रत्यनन्तर उक्तः ॥ ८१ ॥

(७) **मणिरामः**। आपद्धर्ममाह **अजीवन्निति**। हि यस्मात् स क्षत्रियधर्मः अस्य विप्रस्य अनंतरः निकटवर्ती ॥ ८१ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। एवं नैसर्गिकं स्वधर्ममेषामुक्त्वाऽधुनापद्धर्ममाह **अजीवन्निति**। उक्तरूपेण पुनरध्यापनादिना स्वकर्मणा ब्राह्मणकुटुंबस्थितिनित्यकर्मानुष्ठानपूर्वकमजीवन् क्षत्रियकर्मणा ग्रामरक्षणनगरादिना जीवेत्; यस्मात् सोऽस्य संनिकृष्टवर्णनोदितत्वात् सन्निकृष्टा वृत्तिः ॥ ८१ ॥

(९) **भारुचिः**। एवमेतानि ब्राह्मणादीनामाजीवनार्थानि धर्माय च कल्प्याह– धर्मात्मकुटुम्बा(या)देयमजीवद् भवति, यतः एतस्यामवस्थायामुत्सृज्य स्वकर्म क्षत्रियवृत्तिग्रामनगरदेशादिरक्षणमस्य स्यात्। अपरे त्वेकपुरुषोत्थानेन राजत्वमाहुः। एवं च प्रत्यनन्तरहेतुवचनादस्य ईषत्प्रत्यवायता गम्यते। क्रमभेदे च प्रत्यवायगौरवम् ॥ ८१ ॥

**उभाभ्यामप्यजीवंस्तु कथं स्यादिति चेद्भवेत् ॥**
**कृषिगोरक्षमास्थाय जीवेद्वैश्यस्य जीविकाम् ॥ ८२ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **उभाभ्यामप्यजीवंस्तु** क्रमोऽनेन प्रदर्श्यते। प्रथममनन्तरा वृत्तिस्तदभावे व्यवहितेति। **कृषिगोरक्षाग्रहणं** वैश्यवृत्तिमात्रप्रदर्शनार्थम्। तथा च वाणिज्यायामविक्रेयप्रतिषेधं वक्ष्यति। **जीवेद्वैश्यस्य जीविकामिति**। सामान्यविशेषभावेन

क्रियायाः साध्यसाधनभावः प्रागुपपादितः। तत्र कृषिवाणिज्यकुशीदान्यनापद्यैवोक्तान्यध्यापनादिवत्। "प्रभूतं कर्षणं स्मृतम्"। "सत्यानृतं तु वाणिज्यम्" इति तु केचिदाहुः। "कृषिवाणिज्ये चास्वयंकृते। कुसीदं चेति" (गौ. १०/५-६) उक्तं स्वयंकरणमत्राभ्यनुज्ञायते।

यत्त्वध्यापनादिवदिति साम्यमाशङ्कितमेव परिहृतम्। यदि सर्वेषां कृष्यादयः समत्वेन स्युः कथमिदमुच्यते "वणिक्पशुकृषीर्विशः आजीव तार्थम्" ब्राह्मणक्षत्रिययोरपि नाऽऽजीवनार्थस्तदा। किंच 'याजनाध्यापने चैव विशुद्धाच्च प्रतिग्रहः' इत्यत्र तान्यपि समाख्यास्यत्। तस्मादध्यापनादिनियमेजीवतः कृष्यादयः प्रतिषिद्धा एव। यस्तु प्रकरणादन्यत्रैषामुपदेशः स तत्रैव प्रदर्शितप्रयोजनः ॥ ८२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। उभाभ्यां स्वरवानन्तरवृत्तिभ्याम्। जिज्ञासागोरक्षं कृष्यर्थगोरक्षणम्। कृषिरत्रास्वयंकृता ॥ ८२ ॥

(३) **कुल्लूकः**। ब्राह्मण उभाभ्यां स्ववृत्तिक्षत्रियवृत्तिभ्यामजीवन्केन प्रकारेण वर्तेतेति यदि संशयः स्यात्तदा कृषिपशुरक्षणे आश्रित्य वैश्यस्य वृत्तिमनुतिष्ठेत्, कृषिगोरक्षग्रहणं वाणिज्यदर्शनार्थं। तथा च विक्रेयाणि वक्ष्यति। स्वयंकृतं चेदं कृष्यादि ब्राह्मणापद्वृत्तिः। अस्वयंकृतस्य 'ऋतामृताभ्यां जीवेत्'(४/४)त्यनापद्येव विहितत्वात् ॥ ८२ ॥

(५) **नन्दनः**। उभाभ्यां धर्मक्षयधर्माभ्यामिति भवेच्चेदिति यः प्रश्नो भवेच्चेच्छृणुतेत्यर्थः। कृषिगोरक्षशब्दौ वाणिज्यस्याप्युपलक्षणार्थौ, गां रक्षतीति गोरक्षस्तस्य कर्म गौरक्ष्यम् ॥ ८२ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। उभाभ्यां ब्रह्मक्षत्रयोर्वृत्तिभ्यां अजीवंस्तु तदा वैश्यजीवी कृषिं पशुवृत्तिं गोरक्षमास्थाय जीवेत् ॥ ८२ ॥

(७) **मणिरामः**। उभाभ्यां स्वक्षत्रियवृत्तिभ्यां ॥ ८२ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **उभाभ्यामिति**। ब्राह्मणक्षत्रियवृत्तिभ्यामपि जीवन् ब्राह्मणः केन प्रकारेण वर्तेत इति यदि संशयः स्यात् तदा कृषिगोरक्षणे आश्रित्य वैश्यवृत्तिमनुतिष्ठेत्। कृषिगोरक्षग्रहणं वाणिज्या वा अपि प्रदर्शनार्थम्। तथा च विक्रेयाविक्रेयाणि वक्ष्यति। स्वयंकृतं चेदं ब्राह्मणस्यापदि कृष्यादयुच्यते अस्वयंकृतस्यापदि 'ऋतामृताभ्यां जीवेत्'(४।४) त्यादिनाभ्यनुज्ञानात् ॥ ८२ ॥

(९) **भारुचिः**। कृषिगोरक्षग्रहणं च सर्ववैश्यवृत्तिप्रदर्शनार्थम्। स्वयंकरणपक्षे चेयं ब्राह्मणस्य वैश्यवृत्तिरुच्यते, अस्वयंकृता तु पूर्वमुक्ता 'ऋतामृताभ्यां जीवेत्'त्येवमादौ ॥ ८२ ॥

**वैश्यवृत्त्याऽपि जीवंस्तु ब्राह्मणः क्षत्रियोऽपि वा ॥**
**हिंसाप्रायां पराधीनां कृषिं यत्नेन वर्जयेत् ॥ ८३ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। कृषिनिन्देतरवैश्यवृत्तिस्तुत्यर्था, न पुनस्तस्याः प्रतिषेधार्था। तथा च सति उपदेशो व्यर्थोऽस्या आपद्यते ॥ ८३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। स्वयंकृतायां दोषमाह **वैश्यवृत्त्येति**। पराधीनामनेकोपकरणसीतादिसंपाद्याम् ।। ८३ ।।

(३) **कुल्लूकः**। संप्रति कृष्यादेर्बलाबलमाह **वैश्येति**। ब्राह्मणः क्षत्रियोऽपि वा वैश्यवृत्त्यापि जीवन्भूमिष्ठजन्तुहिंसाबहुलां बलीवर्दादिपराधीनां कृषिं यत्नतस्त्यजेत्। अतः पशुपालनाद्यभावे कृषिः कार्येति द्रष्टव्यम्। 'क्षत्रियोऽपि वे'त्युपादानात्क्षत्रियस्याप्यात्मीयवृत्त्यभावे वैश्यवृत्तिरस्तीत्यभिगम्यते ।। ८३ ।।

(४) **राघवानन्दः**। वैश्यस्य जीविकामास्थायेत्युक्तेः कृष्यादेः चतुष्टयस्य प्राप्तत्वेन कृषिमनूद्य निषेधति **वैश्येति**। हिंसाप्रायां हिंसा प्रायेण बाहुल्येन यत्र ताम्। पराधीनां हलवृष्टिकर्षकाद्यधीनाम् ।। ८३ ।।

(५) **नन्दनः**। पराधीनां स्वयमेकेन कर्तुमशक्याम् ।। ८३ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। पराधीनां अनेकोपकरणसाध्यां कृषिं स्वयंकृतां वर्जयेत् ।। ८३ ।।

(७) **मणिरामः**। हिंसाप्रायां हिंसाबहुलां पराधीनां बलीवर्दादिपराधीनां तथा च पशुपाल्याभावे कृषिः ।। ८३ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। बलाबलमधुना कृष्यादेः प्राह **वैश्यवृत्त्येति**। ब्राह्मणः क्षत्रियो वा वैश्यवृत्त्यापि जीवेत्। भूमिं भूमिशयांश्च हन्तीति वक्ष्यमाणया नीत्या हिंसाबहुलां बलीवर्दाद्यायत्तां कृषिं यत्नतः परिहरेत्। अतः गोरक्षाभाव इयं कार्येत्यपि गम्यते। 'क्षत्रियोऽपि वे'त्युपादानात् क्षत्रियस्यापि स्ववृत्त्यभावे वैश्यवृत्तिरस्तीति गम्यते ।। ८३ ।।

**कृषिं साध्विति मन्यन्ते सा वृत्तिः सद्विगर्हिता ।।**
**भूमिं भूमिशयांश्चैव हन्ति काष्ठमयोमुखम् ।। ८४ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **कृषिं** लोकाः साध्वेव कर्मेति मन्यन्ते। यदुक्तम् 'कर्षतः पुरुषस्य बहु धान्यं भवति' ततोऽतिथ्यादिभ्योऽन्नदानेनोपकरोत्यतः साध्वी। तथा चोक्तं "नाकृष्यतोऽतिथिप्रियः"। "कृषिं यत्नेन कुर्वीत मौर्व्यां सर्वत्र यत्नतः"। तथा "लाङ्गलं पवीरवं सुशेवं सुमतिसरु। उदित्कृषतिगामविप्रफर्व्यं च पीवरीम्" (**वाजसनेयिसंहिता** १२/७१) इत्यादि। ते न सम्यक् मन्यन्ते। सा हि वृत्तिः सद्भिर्निन्द्यते। कस्य हेतोः? **भूमिं हन्ति काष्ठमयोमुखं** लाङ्गलम्। **भूमिशयांश्च**। भूमौ शेरते ये प्राणिनस्तृणजलूकादयस्तांश्च **हन्ति**।

ननु च भूमेः कीदृशं हननं हि सा प्राणिवत्काष्ठहत्यापीडामनुभवति। अनुभूतं तु सर्वैर्विदारणं भूमेर्दोषवदिति ज्ञापयति ।। ८४ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। भूमिं भूमिदेवताम् ।। ८४ ।।

(३) **कुल्लूकः**। साध्विदं जीवनमिति कृषिं केचिन्मन्यन्ते, सा पुनर्जीविका साधुभिर्निन्दिता, यस्माद्बलकुद्दालादिलोहप्रान्तं काष्ठं भूमिं भूमिष्ठजन्तूंश्च हन्ति ।। ८४ ।।

(४) **राघवानन्दः**। तद्दोषसहिष्णुं प्रत्याह **कृषिमिति**। भूमिशयान् प्राणिनः। अयोमुखं फलाकाराद्ययोमुखे यस्य तत् लाङ्गलमित्यर्थः। अत एव कुद्दालाद्यपि गृहीतम् ॥ ८४ ॥

(५) **नन्दनः**। हिंसाप्रायतां प्रपञ्चयति **कृषिं साध्विति मन्यन्त इति**। काष्ठं काष्ठमयं हलादिकं तेन वाणिज्याद्यभावे कृषिः कर्तव्येति सूचितम् ॥ ८४ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। कृषिं साध्विति मन्यन्ते सा वृत्तिः सद्भिर्विगर्हिता। अयोमुखं काष्ठं हि भूमिं भूमिशयान् जीवान् हन्ति ॥ ८४ ॥

(७) **मणिरामः**। भूमिशयान् भूमिस्थजंतून्। अयोमुखं काष्ठं हलकुद्दालिकं ॥ ८४ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **कृषिः साध्वितीति**। कृषिर्युक्तरूपेति केचिन्मन्यन्ते। सा पुनर् जीविका साधुभिर्निन्दिता। यस्माद् हलकुद्दालाद्ययःप्रान्तं काष्ठं भूमिबिलनिवासिनश्च प्राणिनो हन्ति ॥ ८४ ॥

(९) **भारुचिः**। एवं च वैश्यवृत्तेः प्रकरणभेद उपपद्यते—बहुलमासामिदमधुनोच्यते कृष्यपवा(दो)ऽभितरवैश्यवृत्तिस्तुत्यर्थः। कृषेरुपदेशसामर्थ्यादेतद्विज्ञायते। इतरथा ह्यनुपदेशार्हेव सा प्रसज्येत। 'निन्दितं न समाचरे'दित्यनेन कारणेन भूमिविलेखन-प्रतिषेधार्थोऽर्थवादो न चैतन्याद्भुवः। यथा भूमिशयानाम्। अपरे त्वाहुः—'एतस्मादेव नखाग्रेणापि भूमिविलेखनं न कर्तव्य'मिति ॥ ८४ ॥

**इदं तु वृत्तिवैकल्यात्त्यजतो धर्मनैपुणम् ॥**
**विट्पण्यमुद्धृतोद्धारं विक्रेयं वित्तवर्धनम् ॥ ८५ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **इदमिति** वक्ष्यमाणस्य प्रतिनिर्देशः। विशः पण्यं **विट्पण्यं, वैश्यानां** यद्विक्रेयं तदपि वृत्तिवैकल्याद्धनाभावाद्ब्राह्मणेन विक्रेयम्। उद्धार्याणि द्रव्याण्युद्धार-शब्देनोच्यन्ते। **उद्धृत उद्धारो** यस्मिन् तदेवमुच्यते। वक्ष्यमाणानि द्रव्याण्यत उद्धृत्यान्यानि विक्रेयाणि। **वित्तवर्धनमिति** स्वभावानुवादः। वाणिज्यायां हि धनवृद्धिः प्रसिद्धा। **त्यजतो धर्मनैपुणं** धर्मे या निष्ठा। अतस्तेन पण्यविक्रयो न कर्तव्य इति ज्ञापयति। अतश्चेदमवगम्यते सर्वासां वैश्यवृत्तीनां गर्हिततरा कृषिः। ततो न्यूना वाणिज्या। ततो गोरक्षा ॥ ८५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। इदं वक्ष्यमाणं वित्तवैकल्याद्वित्ताभावात्। धर्मनैपुणं धर्मवृत्तिं स्वजीविकां त्यजतो विप्रस्य क्षत्रियस्य च। विट्पण्यं वैश्यविक्रेतव्यं तद्गतोद्धारं त्यक्तत्याज्यं त्यक्तपातित्यहेतुरसादिविक्रयमित्यर्थः ॥ ८५ ॥

(३) **कुल्लूकः**। ब्राह्मणस्य क्षत्रियस्य चात्मीयवृत्तेरसंभवे, धर्मं प्रति यथोक्तनिष्णात-तत्त्वं त्यजतो वैश्येन यद्विक्रेतव्यं द्रव्यजातं तद्वक्ष्यमाणवर्जनीयवर्जितं धनवृद्धिकरं विक्रेयं ॥८५॥

(४) **राघवानन्दः**। यज्वनः कुटुम्बिनो विप्रस्य वित्तवर्धनोपायमाह **इदमिति**। वृत्तिवैकल्याद्वृत्त्यभावात् धर्मनैपुणं स्वधर्मनिष्ठां त्यजतो विप्रस्य त्वयमिदं विट्पण्यं वैश्येन यद्विक्रीयते। तेन चर्मपादुकादिव्यावृत्तिः, उद्धृतोद्धारं विक्रेयं विनिमेयं राजदण्डविशिष्टं कुसीदं च ॥ ८५ ॥

(५) **नन्दनः**। तथा वाणिज्यवृत्त्या नियममाह **इदन्तु वृत्तिवैकल्यादिति**। धर्मनैपुणमनापद्धर्मं वृत्तिवैकल्यात्त्यजतो विप्रस्य इदमिति वक्ष्यमाणं विट्पण्यं विट्क्रेयं वित्तवर्धनं लाभवर्धनं उद्धृत उद्धारो यस्मात्तदुद्धृतोद्धारमुद्धृतमुद्धार्यं त्यजन्निषिद्धमिति यावत्॥ ८५॥

(६) **रामचन्द्रः**। इदं धर्मनैपुण्यं वित्तवैक्लव्यात्त्यजतां विट्पण्यं वैश्यविक्रेयं उद्धतोद्धारं परित्यक्ताविक्रेयं वित्तवर्धनम्॥ ८५॥

(७) **मणिरामः**। ब्राह्मणस्य क्षत्रियस्य च वृत्तिवैकल्यात् स्वस्योक्तजीवनवृत्त्यभावात् धर्मनैपुणं धर्मे भक्तिं त्यजतः। विट्पण्येषु वैश्येन यद्विक्रेतव्यं तेषु द्रव्येषु मध्ये वित्तवर्धनं धनवृद्धिकरं विक्रेयं विक्रयेण जीवनं कुर्यात्। कथंभूतं तत्? कृतोद्धारं वक्ष्यमाणनिषिद्धं विक्रयरहितं॥ ८५॥

(८) **गोविन्दराजः**। **इदमिति**। ब्राह्मणस्य क्षत्रियस्य वा स्ववृत्त्या अजीवतो धनाभावाद् धर्मं प्रति निष्णातत्वं त्यजतो वैश्येन यद् विक्रेतव्यं तद्वर्जितवक्ष्यमाणवर्जनीयं धनवृद्धिकरं विक्रेतव्यम्॥ ८५॥

(९) **भारुचिः**। इदं तु वित्तवैकल्यात् त्यजते धर्मनैपुणम् विट्पण्यमुद्धृतोद्धारं विक्रेयं वित्तवर्धनम्। धर्मनैपुणत्यागवचनादस्यापि हीना गम्यते गोरक्ष्यात्। एवं च सति। कृषेर्वाणिज्यमुत्कृष्टम्। तथापि गोरक्ष्यः ज्याय इत्येतत् सामर्थ्याद्गम्यते, सोऽयमधुना विट्पण्यार्थमुच्यते विक्रीणानश्च पण्यम्॥ ८५॥

**सर्वान् रसानपोहेत कृतान्नं च तिलैः सह॥**
**अश्मनो लवणं चैव पशवो ये च मानुषाः॥ ८६॥**

(१) **मेधातिथिः**। मधुरादयः षड्रसाः। तत्प्रधानानि द्रव्याणि गुडदाडिमकिरातितिक्तकादीनि प्रतिषिध्यन्ते। न हि केवलानां रसानां संभवः। यद्यपि रसशब्दो न स्वयं द्रव्ये शुक्लादिशब्दवद्वर्तते सामानाधिकरण्येन, तथापि लक्षयति द्रव्यम्। 'गंगायां घोष' इति यथा। **अपोहेत** त्यजेन्न विक्रीणीयादिति यावत्। **कृतान्नं** सिद्धमन्नमोदनादि तण्डुलादि च। **तिलैः सह** तिला अपि न विक्रेयाः। न तु पुनस्तिलकृतान्नयोः सहप्रयुक्तयोः प्रतिषेधः केवलयोरभ्यनुज्ञानम्। **अश्मानः** सर्वपाषाणाः। **लवणमपाषाणरूपमपि**, सैन्धवस्य पाषाणशब्देन ग्रहणम्। रसपक्षे लवणस्य नित्यार्थं आरंभः। तेन मधुरादीनां पाक्षिको विक्रयः। **पशवो** ग्राम्या आरण्याः। **मानुषा** मनुष्याः॥ ८६॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। तदेवाह **सर्वानिति**। रसान् पत्रकाष्ठादिनिर्यासान् अपोहेत विक्रये त्यजेत्, न विक्रीणीतेत्यर्थः। अश्मनः उपलान्। पशवश्छागाः। ये च मानुषास्तानिति पूरणीयम्॥ ८६॥

(३) **कुल्लूकः**। तानि वर्जनीयान्याह **सर्वानिति**। सर्वानचोद्यमानानधर्म्यान्यथा सिद्धार्थतिलपाषाणलवणपशुमनुष्यान्न विक्रीणीत। रसत्वेनैव लवणस्य निषेधसिद्धौ विशेषेण निषेधो दोषगौरवज्ञापनार्थः। तच्च प्रायश्चित्तगौरवार्थमेवमन्यस्यापि पृथङ्निषेधो व्याख्येयः॥ ८६॥

(४) **राघवानन्दः**। प्राप्तपण्यं परिसंख्याति **रसानिति** चतुर्भिः। अपोहेत ब्राह्मण इति शेषः। रसान् सर्षपादिस्नेहान्। कृतान्नं पक्वान्नं। अश्मनः पाषाणतद्विकारान्। पशवो ये च मानुषा गवाश्वादयः ॥ ८६ ॥

(५) **नन्दनः**। कानि पुनस्त्याज्यानि द्रव्याणीत्याह **सर्वान् रसानिति**। अपोहेत त्यजेन्न विक्रीणीयात् ये पशवो ये च मानुषास्तानपि ॥ ८६ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। **सर्वानिति** चतुर्भिराह। सर्वान् रसान्विक्रये परित्यजेत्। कृतान्नं सिद्धान्नम्। पशवः छागादयः ॥ ८६ ॥

(७) **मणिरामः**। वर्जनीयान्याह **सर्वेति** ॥ ८६ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। तानि वर्जनीयान्याहुः **सर्वानिति**। सर्वान् खण्डादीन् रसांस्तथा सिद्धान्नतिलपाषाणपशुलवणमनुष्यान् न विक्रीणीत। लवणस्य रसशब्देनैव ग्रहणसिद्धौ पृथग्वचनं दोषविशेषज्ञापनार्थम्। एतेनान्यस्यापि पृथगाम्नातव्याख्यातम् ॥ ८६ ॥

(९) **भारुचिः**। अत्र च र(सः) प्रधानं द्रव्य...नि सामर्थ्याद्रस उच्यते, यथा तगरोशीरचन्दनसमुदायो गन्ध(प्र)धानो गन्धशब्देन। कृतान्नं च तण्डुलादिप...कमपरे। अश्मानः सर्वपाषाणाः लवणस्यापाषाणार्थं आरम्भः, न तु सैन्धवार्थः। तस्य पाषाणशब्देन ग्रहणात् (रस)पक्षे च लवणस्य नित्यार्थं आरम्भः, पशवो ये च मानुषाः पशवश्च ग्राम्यारण्या मानुषाश्च पशवोऽपि ॥ ८६ ॥

**सर्वं च तान्तवं रक्तं शाणक्षौमाविकानि च ॥**
**अपि चेत्स्युररक्तानि फलमूले तथौषधीः ॥८७॥**

(१) **मेधातिथिः**। **तान्तवं** तन्तुनिर्मितं वस्त्रपटबृहतिकादि। **रक्तं** लोहितम्। लोहिते वर्णे रक्तशब्दः प्रसिद्धतरः। तथा हि—रक्तो गौर्लोहित उच्यते, यद्यपि शुक्लस्य वर्णान्तरापादनमपि रञ्जेरर्थः **शाणक्षौमाविकान्यरक्तान्यपि** यत आह **अपि चेत्स्युररक्तानि**। शिष्टं प्रसिद्धम् ॥८७॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। तन्तुकृतं पटादि कुसुम्भादिरक्तम्। शाणं शणसूत्रकृतं आविकमविरोमकृतम्। अरक्तमप्येतत्त्रयम्। फलप्रदं क्रीतपण्यफलपरम्। अन्यस्यापस्तम्बेन क्रीतपण्यमेव हरेत् मुञ्जवल्कलैर्मूलफलैरिति विक्रेतव्यतया विधानात्। औषधीस्त्रिवृदाद्याः ॥ ८७ ॥

(३) **कुल्लूकः**। सर्वं तन्तुनिर्मितं वस्त्रं कुसुभादिरक्तं वर्जयेत्। शणक्षुमातन्तुमयान्याविकलोमभवानि च यद्यलोहितान्यपि भवेयुस्तथापि न विक्रीणीत; तथा फलमूलगुडूच्यादीनि वर्जयेत् ॥८७॥

(४) **राघवानन्दः**। तान्तवं कार्पासजं रक्तं चेत् शाणं शणविकारः। क्षौमं क्षुमोद्भवम्। आविकं कम्बलादि। तान्तवे रक्ते प्रतिषेधः। शाणादिषु रक्तेष्वपीति भावः। फलमूले फलं ताम्बूलादि, मूलं लशुनादि, औषधीरपक्वाः ॥ ८७ ॥

(५) **नन्दनः**। रक्तं रागरूषितं शाणक्षौमाविकानि रक्तान्यपि चेत्स्युस्तान्यपोहेत ॥८७॥

(६) **रामचन्द्रः**। सर्वं तान्तवं रक्तं रक्तवस्त्रं क्षौमाविकानि अरक्तानि ॥८७॥

(७) **मणिरामः**। तान्तवं तंतुनिर्मितं वस्त्रं रक्तं कुसुंभादिरक्तं वर्जयेत्। शाणक्षौमाऽविकानि अरक्तान्यपि ॥ ८७ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **सर्वमिति**। सर्वतन्तुनिर्मितं रक्तं पट्टबृहतिकादि वर्जयेत् क्षौमौर्णातन्तुमयान्यलोहितान्यपि यदि भवेयुस्तथापि वर्जयेत्। तथा फलमूलद्रव्याद्यौषधीर् वर्जयेत् ॥८७॥

(९) **भारुचिः**। शाणादीनामरक्तार्थं आरम्भः। तथौषधयो विक्रेयाः॥ ८७ ॥

**अपः शस्त्रं विषं मांसं सोमं गन्धांश्च सर्वशः ॥**
**क्षीरं क्षौद्रं दधि घृतं तैलं मधु गुडं कुशान् ॥ ८८ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **शस्त्रं** खड्गपाशादि। **गन्धा**स्तगरोशीरचन्दनादयो द्रव्यविशेषाः। रसशब्दवदेतद्द्रव्याख्येयम्। **क्षीरं** रसाविकारं स्मृत्यंतरप्रसिद्धमतो मस्तुकिलाटोदश्विदादीन्यपि न विक्रेयाणि **दधिघृत**ग्रहणं प्राधान्यादुपात्तम्। **मधु** मधूच्छिष्टमेकदेशलोपाद्देवदत्तो दत्त इतिवत्। स्मृत्यन्तरे हि तत्प्रतिषिद्धम्। इह च क्षौद्रशब्देन सारघस्य निषिद्धत्वात्। माध्वीकस्य च मद्यग्रहणेनोत्तरत्र प्रतिषेधात्। अन्ये तु माध्वीकस्यैवाप्राप्तमद्यावस्थस्य प्रतिषेधार्थं मधुशब्दं वर्णयन्ति–तदयुक्तम्, नायं निष्पीडितमृद्वीकारसवचनः। किं तर्हि? मद्यरूपतयैव वर्तते। उभौ 'मध्वासवशौ वावि'ति प्रयोगदर्शनात्, क्षीबता मद्यकृतैव। गुडस्य रसत्वप्रतिषेधनिवृत्त्यर्थं ग्रहणम्। अन्ये तु खण्डमत्स्यण्डिकादीनामनुज्ञानार्थं व्याचक्षते ॥ ८८ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अपो जलं। शस्त्रं लोहं। गन्धान् चन्दनादीन्। क्षारं यवक्षारादि। क्वचित्क्षीरमित्यपि पाठः। क्षौद्रं मधु मधूच्छिष्टं दधीति क्वचित्पाठः। मज्जा जन्तूनामस्थिपीतसार आकृष्टः। गुडस्य तदाकारत्वेऽपि दृढतयाऽफलत्वशङ्कां निरसितुं पुनरुक्तिः ॥८८॥

(३) **कुल्लूकः**। जललोहविषमांससोमक्षीरदधिघृततैलगुडदर्भान् तथा गन्धवर्न्तसर्वाणि कर्पूरादीनि, क्षौद्रं माक्षिकं मधु मधूच्छिष्टं 'सभ्रामरमधूच्छिष्टे'ति **याज्ञवल्क्येन** (आ. २/३३) पठितं वर्जयेत् ॥ ८८ ॥

(४) **राघवानन्दः**। शस्त्रं श्रृङ्गादिनिर्मितं लोहनिर्मितस्य लोहनिषेधेन निषिद्धत्वात्। विषं शैलजादि। सोमं सोमलताम्। गन्धान् गुग्गुलादीन्। क्षौद्रं माक्षिकं मधु मधूच्छिष्टं सिक्थम्। अत्र ये पुनरुक्ताः पदार्थास्तेषु प्रायश्चित्ताधिक्यं ज्ञेयम् ॥८८॥

(७) **मणिरामः**। लोहं क्षौद्रं माक्षिकं मधु मधूच्छिष्टं, सिक्थमिति यावत् ॥८८॥

(८) **गोविन्दराजः**। **अप** इति। उदकायुधविषमांससोमक्षीरदधिघृततैलगुडदर्भांस्तथा

गन्धवन्ति कर्पूरादीनि सर्वाणि क्षौद्रं च माक्षिकं मधु च मधूच्छिष्टं सिक्थकं तथा 'शस्त्रासव-मधूच्छिष्टे'ति याज्ञवल्क्येन पठितं वर्जयेत् ॥८८॥

(९) **भारुचिः**। क्षीरदधिघृतग्रहणमिह सर्वक्षीरविकारप्रदर्शनार्थम्। एवं च मस्तु .... लाटादीन्यपि विक्रेयाणि। क्षीरादीनां च प्राधान्यात् ग्रहणं प्रदर्शनार्थं युक्तम्, नतु परिसंख्यार्थम्। स्मृत्यन्तरे चोक्तम्–'क्षीरं सवितारमिति।' सशब्देन गुळ...धाय पूर्वश्लोके तत उपगुळग्रहणं नित्यार्थम्। एवं च तरुरसानां विकल्पेन प्रतिषेधः। अथ तु रसशब्देन गुळो न गृह्यते, तत एष रसानां विकल्पो नास्ति। एतेन मधु...॥८८॥

**आरण्यांश्च पशून्सर्वान्दंष्ट्रिणश्च वयांसि च ॥**
**न नीलीं च लाक्षां च सर्वांश्चैकशफांस्तथा ॥८९॥**

**[त्रपु सीसं तथा लोहं तैजसानि च सर्वशः।**
**बालांश्चर्म तथास्थीनि सस्नायूनि च वर्जयेत् ॥१॥]**

(१) **मेधातिथिः**। **आरण्यपशु**शब्दौ गुडलवणेनैव व्याख्यातौ। ग्राम्यपश्वानुज्ञानार्थम्। ग्राम्या अपि पशवो हिंसायां संयोग इति निषिद्धार्थः।

**वयांसि** पक्षिणः। **एकशफा** अश्वाश्वतरगर्दभादयः। **दंष्ट्रिणः** श्वशूकरादयः।

'बहूनि'ति 'तथा'शब्दस्थाने पठन्ति। एकस्य विक्रये तथा न दोषः ॥८९॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। दंष्ट्रिणः कुक्कुराद्यान् ग्राम्यानपि। वयांसि पक्षिणः। नीलीं नीलीरोगः (?) ॥८९॥

(३) **कुल्लूकः**। आरण्यान्सर्वान्पशून्हस्त्यादीन्दंष्ट्रिणः सिंहादीन् तथा पक्षिजलजन्तून्मद्यादीन् एकशफांश्चाश्वादीन् न विक्रीणीत ॥८९॥

(४) **राघवानन्दः**। दंष्ट्रिणः सूकरादीन्। वयांसि पक्षिणः। एकशफान् अश्वगर्दभादीन् ॥८९॥

(५) **नन्दनः**। दंष्ट्रिणो मार्जारादयः। एकशफा अश्वादयः ॥८९॥

[**नन्दनः**। तैजसानि कांस्यादीनि अस्थीनि गजदन्तादीनि। अत्र सामान्यतोऽपि निषेधो विशेषतश्च निषेधो दोषातिशयप्रकाशनार्थः ॥८९॥]

(६) **रामचन्द्रः**। आरण्यान्पशून् हस्त्यादीन् दंष्ट्रिणः सूकराद्यान् सर्वान् एतान् तथा एकशफान् वर्जयेत् ॥८९॥

(८) **गोविन्दराजः**। **आरण्यानिति**। आरण्यान् पशून् हस्त्यादीन् सर्वान् दंष्ट्रिणः सिंहादीन् एकशफानश्वादीन् तथा पक्षिमद्यनीलीलाक्षान् न विक्रीणीत ॥८९॥

(९) **भारुचिः**। बहूनित्यपरे पठन्ति। आरण्यपशुनिषेधो नित्यार्थः। एवं च 'पशवो ये च मानुषा' इत्य(तः) श्लोके ग्राम्यपशूनां विकल्पो विज्ञायते। अत्रापि चैकशफग्रहणा-

दश्वाश्वतरगर्दभानामविकल्पः। गोखुराणां (इति) ये तु पठन्ति--'सर्वांश्चैकशफान् बहूनिति'। एवं च सति तेषां विशेषार्थः पुनरारम्भः। एकशफा बहवो विक्रेयाः इति ॥ ८९ ॥

**काममुत्पाद्य कृष्यां तु स्वयमेव कृषीवलः ॥**
**विक्रीणीत तिलान् शुद्धान्धर्मार्थमचिरस्थितान् ॥ ९० ॥**

(१) **मेधातिथिः**। "कृतान्नं च तिलैः सह" इति प्रतिषिद्धानां तिलानां स्वरूपप्रयोजनविशेषाश्रयः प्रतिप्रसवः।

**शुद्धानचिरस्थितानिति** च स्वरूपविशेषः। **धर्मार्थमिति** प्रयोजनविशेषः। **शुद्धा** व्रीह्यादिभिरमिश्राः। कृशराद्यर्थं मिश्राणां विक्रयासंभवः। **अचिरस्थिताः**। अर्थादिकं लाभमनपेक्ष्य स्वल्पं मूल्यमद्य कालान्तरे चागामिनि बहु मूल्यं लभेयेत्येवं न प्रतीक्षितव्यम्। अथवा **शुद्धा** अकृष्णाः। कृष्णतिलानां प्रतिषेधः। **अचिरस्थितानिति** वेयमर्थः। चिरस्थितं हि कृष्णं भवति। कृष्णा उत्पाद्य क्रीत्वा न विक्रेयाः। **स्वयं कृष्यां कृषीवल इति** प्रायिकोऽनुवादो, न विवक्षितानि पदानि। प्रतिग्रहाद्यर्जितानामप्यप्रतिषेधः।

धर्मप्रयोजने यत्र तिलान् विक्रीणीते। इह च रूपकैर्गावो दक्षिणाद्यर्थं स्वाध्यायाग्निहोत्राद्यर्थं क्रीयन्ते। व्रीह्यादयो वा दर्शपूर्णमासाद्यर्थं स धर्मार्थो विक्रयः। यस्य वा तिला एव दानादिधर्मायोपयुज्यन्ते, भेषजतैलोपयोगे वा क्रेतुः, सोऽप्येवमेव ॥ ९० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। तिलान्विक्रीणीत हिरण्येनापि। शुद्धान् बुसशून्यान्। धर्मार्थं क्रेता यदि दानाद्यर्थं क्रीणीते। अचिरस्थितान् लवनानन्तरमेव नतु लाभार्थं चिरं स्थापयित्वा। एवं च कृष्युत्पत्तिशुद्धत्वधर्मार्थत्वाचिरस्थत्वविशिष्टतिलविक्रयो ब्राह्मणस्याप्यापत्तिरिति दर्शितम् ॥ ९० ॥

(३) **कुल्लूकः**। कर्षकः स्वयमेव कर्षणेन तिलानुत्पाद्य द्रव्यान्तरेणामिश्रानुत्पत्त्यनंतरमेव नतु लाभार्थं कालान्तरं प्रतीक्ष्य धर्मनिमित्तमिच्छतो विक्रीणीत निषिद्धस्य तिलविक्रयस्य धर्मार्थमयं प्रतिप्रसवः ॥ ९० ॥

(४) **राघवानन्दः**। तिलवाणिज्यं निषिद्धं कृष्युत्पन्नतिलान्प्रत्याह **काममिति**। शुद्धानन्यद्रव्यामिश्रितान् धर्मार्थं यज्ञादिकर्मनिमित्तं तदैव विक्रीणीत, नतु लाभार्थं चिरं संचिनुयात् ॥ ९० ॥

(५) **नन्दनः**। तिलानां प्रतिप्रसवमाह **काममुत्पाद्य कृष्यान्त्विति**। शुद्धानिति विशेषणात्कृष्णानां प्रतिषेधः ॥ ९० ॥

(६) **रामचन्द्रः**। विक्रीणीत हिरण्येनापि ॥ ९० ॥

(७) **मणिरामः**। शुद्धान् केवलान् न तु द्रव्यांतरमिश्रितान्। अचिरस्थितान् उत्पत्त्यनंतरमेव नतु लाभार्थं कालांतरं प्रतीक्ष्य ॥ ९०-९१ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **काममिति**। **विक्रीणीत तिलान् शुद्धान् धर्मार्थमचिरस्थितान्**।

कर्षकः स्वयमेव कर्षणेन तिलानुत्पाद्य द्रव्यान्तरेणामिश्रानुत्पत्तिकाल एव धर्मनिमित्तमिच्छतो विक्रीणीतेति 'कृतान्नं च तिलैः सहे'ति प्रतिषिद्धानामयं प्रतिप्रसवः ।। ९० ।।

(९) **भारुचिः**। तिलानां विक्रयप्रतिषेधादयं तेषां विशेषाश्रयो विक्रयप्रतिप्रसवः। शुद्धग्रहणं मिश्रीकृतान्यद्रव्यप्रतिषेधार्थम्। अथवा तिलशब्दस्यावधारणार्थत्वं दर्शयति। एवं च नेदमन्यधान्यप्रदर्शं (नं) कारणस्य समानत्वादिति। धर्मार्थं नित्यकर्मसङ्गे पुत्रदारात्ययप्राप्तौ अचिरस्थितानित्यर्घप्रतीक्षणप्रतिषेधः। अस्यार्थवादः ।।९०।।

**भोजनाभ्यञ्जनाद्दानाद्यदन्यत्कुरुते तिलैः ।।**
**कृमिभूतः श्वविष्ठायां पितृभिः सह मज्जति ।। ९१ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। प्रकृततिलविशेषव्यतिरेकेण तिलविक्रयप्रतिषेधे विशेषोऽयमर्थवादः। "ननु चोक्तं प्रतिषेधानां दोषसूचनं फलतयैव संबध्यते। तत्किं **भोजनाभ्यञ्जनाद्दानाद्यदन्यत्कुरुते तिलः। कृमिभूत** इत्ययमर्थवाद" इति।

उच्यते। असंभविनः फलस्य शास्त्रान्तरेण विरुद्धस्य च श्रवणादेवमुच्यते। तथा पितृभिः सहेत्युच्यते, न च तैः किंचिदपराद्धम्। सुकृतदुष्कृतयोः फलं हि कर्तृगामि। न च पितृणां कथंचिदपि कर्तृत्वमित्येतत्प्रागुक्तमेव। किंच "सद्यः पतति मांसेन" इति पतितत्ववचनं 'परेषां' न पातित्यमिति नियमात्। तस्मादस्ति किंचिदनिष्टमित्येतावन्मात्रं प्रतिषेधेन संबध्यते। यथाश्रुतमेव न युक्तम्। भोजनादिक्रिया यत्र सद्व्यतिरेकेण यदन्यद्विक्रयस्नानादि तत्र **तिलैर्यः कुरुते** स कृमित्वं प्राप्नोति यथोक्तेन दोषेण संयुज्यते ।। ९१ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। यदन्यत्कुरुते विक्रयाद्यनापत्तौ ।। ९१ ।।

(३) **कुल्लूकः**। भोजनाभ्यङ्गदानव्यतिरिक्तं यदन्यन्निषिद्धं विक्रयादि तिलानां कुरुते, तेन पितृभिः सह कृमित्वं प्राप्तः कुक्कुरपुरीषे मज्जति ।। ९१ ।।

(४) **राघवानन्दः**। अत आह **भोजनेति**। अभ्यञ्जनं तैलादिना। दानपदं धर्मार्थतदर्थविक्रयोपलक्षकम्। **अन्यत्** क्रयविक्रयादि न कर्तव्यमित्यत्र तात्पर्यं पितृभिः सहेति विरुद्धफलश्रवणात् सुकृतदुष्कृतयोः फलं तु कर्तर्येवेतिनात्र पितृकृणामपराधः कश्चिदितिमैव (?) ।।९१।।

(५) **नन्दनः**। कुरुते विप्र इति शेषः ।। ९१ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। भोजनात् अभ्यञ्जनात् दानात् तिलैः विक्रयं कुरुते स **पुरुषः** श्वविष्ठायां कृमिभूतः पितृभिः सह मज्जति ।। ९१ ।।

(८) **गोविन्दराजः। भोजनाभ्यञ्जनादिति**। भोजनाभ्यञ्जनदानव्यतिरिक्तमन्वयादन्नविक्रयादि यदि तिलानां कुरुते तदा पितृभिः सह कृमित्वं प्राप्तः श्वपुरीषे निमज्जतीति पूर्वव्यक्तिक्रमफलकथनम् ।। ९१ ।।

**सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च ।।**
**त्र्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात् ।। ९२ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। उक्तार्थः ॥ ९२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। पतति द्विजातिकर्मभ्यो हीयते। एतदेव स्पष्टीकृतं **शूद्रो भवती-ति**। व्यहेणेति त्रिविक्रयणमुपलक्ष्यते ॥९२॥

(३) **कुल्लूकः**। मांसलाक्षालवणविक्रयैर्ब्राह्मणस्तत्क्षणादेव पततीति दोषगौरवव्याख्याना-र्थमेतत्। पञ्चानामेव महापातकिनां पातित्यहेतूनां वक्ष्यमाणत्वात् क्षीरविक्रयात्व्यहेण शूद्रतां प्राप्नोति। एतदपि दोषगौरवात्प्रायश्चित्तगौरवख्यापनार्थम् ॥९२॥

(४) **राघवानन्दः**। उक्तद्रव्येषु कानिचिदनुवदन् तद्विक्रये [दोषमाह सद्य इति द्वाभ्याम्। व्यहेणाव्यवहितेन ] ॥९२॥

(५) **नन्दनः**। मांसेन विक्रीतेन ॥९२॥

(८) **गोविन्दराजः**। **सद्य** इति। मांसलाक्षालवणविक्रयी ब्राह्मणः तत्क्षणादेव पतितो भवतीति दोषगौरवख्यापनार्थम्। एतत् पञ्चानामेव महापातकानां पातित्यनियमादेतद्विक्रये **वा** पण्यानां च विक्रय इति उपपातकप्रायश्चित्तस्य लघुतादर्शनात्। एतेन व्यहक्षीरविक्रयात् शूद्रतां प्राप्नोति इत्येतदपि व्याख्यातम्। तथा वैश्यभावगमनं च वक्ष्यमाणम् ॥९२॥

(९) **भारुचिः**। सद्यः विक्रयकाले एव ॥९२॥

**इतरेषां तु पण्यानां विक्रयादिह कामतः ॥**
**ब्राह्मणः सप्तरात्रेण वैश्यभावं नियच्छति ॥ ९३ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **कामत** इति वचनादनापदीत्यनुमीयते। गुरुलघुत्वदर्शनं मांसादीनां प्रायश्चित्तविशेषार्थम् । गुरुणि गुरूणि लघुनि लघूनीति वक्ष्यामः ॥९३॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। इतरेषामपण्यानां कृतान्नादीनां निषिद्धानां कामतोऽकामतस्तु पापमात्रम् ॥९३॥

(३) **कुल्लूकः**। ब्राह्मण उक्तेभ्यो मांसादिभ्योऽन्येषां प्रतिषिद्धानां पण्यानामिच्छातो नतु प्रमादाद्द्रव्यान्तरसंश्लिष्टानां सप्तरात्रविक्रयणेन वैश्यत्वं गच्छति ॥९३॥

(४) **राघवानन्दः**। इतरेषां निषिद्धानां पण्यानां विक्रयिणां ॥९३॥

(५) **नन्दनः**। अपण्यानामविक्रेयाणां कामतः अनापदि ॥९३॥

(६) **रामचन्द्रः**। इतरेषां पण्यवस्तूनाम् ॥९३॥

(७) **मणिरामः**। इतरेषां मांसादिभ्यः अन्येषां निषिद्धानां ॥९३॥

(८) **गोविन्दराजः**। **इतरेषामिति**। उक्तदोषेभ्यो मांसादिभ्योऽन्येषां प्रतिषिद्धानां पण्यानां इच्छातो नतु प्रमादादन्यद्रव्यसंपृक्तानां सप्तरात्रविक्रयेण ब्राह्मणो वैश्यत्वं प्राप्नोति ॥ ९३ ॥

(९) **भारुचिः**। मांसादीनां श्लोकद्वयेन गुरुलघुत्वप्रदर्शनं प्रायश्चित्तार्थं विज्ञेयम्। गुरुणि गुरुप्रायश्चित्तं यथा स्यात् लघु लघ्विति" ॥ ९३ ॥

**रसा रसैर्निमातव्या न त्वेव लवणं रसैः ।।**
**कृतान्नं चाकृतान्नेन तिला धान्येन तत्समाः ।।९४।।**

(१) **मेधातिथिः** । **रसाः** पूर्वोक्तास्ते **रसैर्निमातव्याः** । मधुररसं गुडादि दत्वाऽम्लादि-रसमामलक्यादि ग्रहीतव्यम् । **न** केवलं **लवणं** दत्वा रसान्तरमादेयम् । पाठांतरं 'लवणं तिलैरिति' । अस्मिन्पाठे तिलैरेव लवणस्य प्रतिषेधो न रसान्तरैः । **कृतान्नं** सक्त्वोदनाद्यन्नेन पायसापूपादिना निमातव्यम् । **तिलास्तु धान्येन** व्रीह्यादिना **तत्समाः** । प्रस्थं दत्वा प्रस्थ एव ग्रहीतव्यो नार्थापेक्षयाऽधिकं वाऽऽदेयम् । 'विनिमयो' नाम विक्रय एव । क्रीणातिस्तु द्रव्यविनिमये पठ्यते । न हि तद्युक्तम्, "विक्रये प्रकृतिविनिमयमस्त्विति" गौतमो भेदं दर्शयति । एवं तर्हि प्रसिद्धेन रूपकादिना द्रव्यार्पणं 'विक्रयः' । तदन्यद्रव्यपरिवृत्तौ 'विनिमयः' ।। ९४ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । रसा गुडादयो रसैर्निमातव्याः । परिवर्तनेन ग्राह्याः । लाभ-प्रेप्सया इयत्तानवधारणेन ग्रहणं विनिमयो विक्रयस्त्वियत्तावधारणेन लाभेच्छयेति विशेषः । तत्र रसानां रसैर्विनिमयः कार्यो नतु विक्रयः । लवणं तु मृन्निर्यासतया रसभूतं विनिमेयमपि न रसैः । कृतान्नं सक्त्वाद्यकृतान्नेन यवादिना विनिमेयम् । नतु नेत्यवान्वितमप्राप्तार्थनिषेधा-योगात् । तिला धान्येनेति स्वयं कृष्याद्युत्पादितत्वाद्यभावेऽपि धान्यैर्विनिमये नास्ति दोष इत्यर्थः । किंतु तत्समानन्यूनाधिकाः ।। ९४ ।।

(३) **कुल्लूकः** । रसा गुडादयो रसैर्घृतादिभिः परिवर्तनीयाः, लवणं पुनः रसान्तरेण न परिवर्तनीयं सिद्धान्नं चामान्नेन परिवर्तनीयं, तिला धान्येन धान्यप्रस्थः प्रस्थेनेत्येवं तत्समाः परिवर्तनीयाः ।। ९४ ।।

(४) **राघवानन्दः** । [विप्रक्षत्रिययोरुक्तरसादिपरिवर्तनेन दोष इति] वदन् वाच-निकप्रतिनिधीनाह **रसा इति** । अकृतान्नेनामेन ।। ९४ ।।

(५) **नन्दनः** । अथ रसादीनां विक्रयोपायमाह **रसा रसैर्निमातव्या इति** । रसा रसैः कृतान्नं कृतान्नेन धान्येन तिलाश्च निमातव्या व्यत्येतव्याः तत्समः समपरिमाणः **लवणं** रसैर्नतु निमातव्यम् ।। ९४ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । रसै रसा निमातव्याः मानं परस्परं कर्तव्याः अन्यरसैः लवणं न । अकृतान्नेन कृतान्नं तिला धान्येन तत्समाः ।। ९४ ।।

(७) **मणिरामः** । रसाः गुडादयः । रसैः घृतादिभिः । निमातव्याः परिवर्तनीयाः । गुडादिकं दत्त्वा घृतादिकं ग्राह्यं । तथा घृतादिकं दत्त्वा गुडादिकं ग्राह्यमिति परस्परं परिवर्तनं न विक्रेयमित्याशयः । लवणं तु रसांतरेणापि न परिवर्तनीयं ।। ९४ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **रसा** इति । रसा गुडादयो रसैर्घृतादिभिः परिवर्तनीयाः । लवणं पुना रसान्तरेण न परिवर्तनीयम् । सिद्धान्नमसिद्धान्नेन परिवर्तनीयम् । तिला धान्येन प्रस्थः प्रस्थेनेत्येवं विनिमातव्याः ।। ९४ ।।

(९) **भारुचिः**। लवणस्य तिलैर्नियमप्रतिषेधाद्रसैरन्यैस्तिला निमातव्याः। तिला धान्येन व्रीह्यादिना धान्येन तत्सममेव (प्रस्थं) प्रस्थे (न) निमातव्याः न त्वास्थितया ॥९४॥

**जीवेदेतेन राजन्यः सर्वेणाप्यनयं गतः ॥**
**न त्वेव ज्यायसीं वृत्तिमभिमन्येत कर्हिचित् ॥९५॥**

(१) **मेधातिथिः**। **एतेन सर्वेणापि**। प्रतिषिद्धपण्यप्रतिप्रसवोऽयं राजन्यस्य। न किंचित्तस्याविक्रेयं वैश्यवत्। किंतु सत्यपि स्ववृत्तित्यागे **न ज्यायसीं** ब्राह्मणवृत्तिं कदाचिदप्यभिमन्येत। इमां करोमीति चेतसि न कुर्यात्।

प्रतिकूलं दैवमनयः। एतदापदुपलक्षणार्थम्। **गतः** प्राप्तः, आपद्गत इति यावत् ॥९५॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। एतेन सर्वेण निषिद्धेनापि रसादिना विक्रीतेन अनयमवृत्तिम्। ज्यायसीं ब्राह्मणस्य वृत्तिं प्रतिग्रहादि अभिमन्येत स्वीकुर्यात् ॥९५॥

(३) **कुल्लूकः**। क्षत्रियः आपदं प्राप्तः 'एतेने'त्यभिधाय 'सर्वेणे'त्यभिधानात् ब्राह्मणगोचरतया निषिद्धेनापि रसादिविक्रयणेन वैश्यवज्जीवेत् न पुनः कदाचिद्ब्राह्मणजीविकामाश्रयेत्। न केवलं क्षत्रियः क्षत्रियवदन्योऽपि ॥९५॥

(४) **राघवानन्दः**। आपद्गतक्षत्रियस्य तु वैश्यवृत्तिमनुवदन् [विप्र]वृत्तिं निषेधति **जीवेदिति**। सर्वेण निषिद्धविक्रयेणापि अत एवास्य मांसादिविक्रयो न पातित्यहेतुः। अतस्तत्प्रकरणे ब्राह्मणपदम्। अनयमापदम्। ज्यायसीं अध्यापनयाजनादिकाम्। अन्नप्रतिलोमपरिणयनवत्प्रतिलोमवृत्तिरपि निषिद्धा। यत्त्वापत्काले क्षत्रियादप्यध्ययनं अब्राह्मणादध्ययनमापत्काले विधीयत इति विप्रस्य तद्विप्राकांक्षाप्रयुक्तत्वान्न तस्य जीविकाद्यर्थतेति भावः॥९५॥

(५) **नन्दनः**। अनयमापदं, एतेन वाणिज्येन सर्वेण प्रतिषिद्धद्रव्यविक्रयेणापीत्यर्थः; ज्यायसीं वृत्तिं ब्राह्मणवृत्तिम् ॥ ९५ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। अनयं गतः आपद्गतः ज्यायसीं विप्रसंबन्धिनीं वृत्तिं कर्हिचित् ॥९५॥

(७) **मणिरामः**। राजन्यः क्षत्रियः। अनयं गतः आपदं प्राप्तः, एतेन सर्वेण। ब्राह्मणस्य यन्मांसादिविक्रयणं निषिद्धं तेनापि जीवेत्। नतु ज्यायसीं वृत्तिं ब्राह्मणवृत्तिं अध्यापनादिकां अभिमन्येत अंगीकुर्यात् ॥ ९५ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **जीवेदिति**। क्षत्रिय आपदं प्राप्त एतद्रसादि सर्वं द्रव्यादिविक्रयेणापि जीवेन्न तु कदाचिद् ब्राह्मणजीविकामाश्रयेत् ॥ ९५ ॥

(९) **भारुचिः**। सर्वेणेत्ययं प्रतिषिद्धः,...रण्यप्रतिप्रसवः पूर्वेणाजीविनः। ज्यायस्या वृत्तेः प्रतिषे(धो) नित्यानुवादः। 'न त्वेव ज्यायसीं वृत्ति'मिति यदुक्तं तस्य प्रतिषेधस्य निन्दार्थवादः ॥ ९५ ॥

**यो लोभादधमो जात्या जीवेदुत्कृष्टकर्मभिः ॥**
**तं राजा निर्धनं कृत्वा क्षिप्रमेव प्रवासयेत् ॥ ९६ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **यो जात्याऽधमो** निकृष्टः क्षत्रियादिः। सत्यपि प्रकृतत्वे राजन्यस्य, सर्वेषामयं ब्राह्मणवृत्तिप्रतिषेध एवमेवायं श्लोकः। **उत्कृष्टो** निरपेक्षो ब्राह्मण एव। **कर्मभिरध्ययनादिभिर्जीवति**। दण्ड्योऽयं सर्वस्वग्रहणप्रवासनैः॥ ९६॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। एवं वैश्यादेरपि क्षत्रधर्मग्रहो निषिद्ध इत्याह **य इति**॥ ९६॥

(३) **कुल्लूकः**। यो निकृष्टजातिः सँल्लोभादुत्कृष्टजातिविहितकर्मभिर्जीवेत्तं राजा गृहीतसर्वस्वं कृत्वा तदानीमेव देशान्निःसारयेत्॥ ९६॥

(४) **राघवानन्दः**। तत्रैवं दृष्टादृष्टार्थं सामान्योक्तिमाह **य इति** द्वाभ्याम्। जात्या क्षत्रियत्वादिनाधमः। उत्कृष्टकर्मभिः उत्कृष्टाः पूर्वपूर्वेण तेषां कर्मभिः। प्रवासयेत् बहिर्निर्वासयेत्॥ ९६॥

(६) **रामचन्द्रः**। जात्या अधमः उत्कृष्टकर्मभिर्न जीवेत्॥ ९६-९७॥

(७) **मणिरामः**। प्रवासयेत् देशान्निष्कासयेत्॥ ९६॥

(८) **गोविंदराजः**। **य इति**। यो निकृष्टजातिः संल्लोभादुत्कृष्टजातिनोदितमकर्मभिर्जीवेत्तं राजा सर्वस्वमपहृत्य तदानीमेव देशान्निर्वासयेत्॥ ९६॥

(९) **भारुचिः**। तस्य सर्वस्वमपहृत्य प्रवासनं नियमेन कुर्यात्। धार्मिको राजा। यद्यपि चैतत् प्रकरणसामर्थ्यात् क्षत्रियविषयं शास्त्रं, तथापि समानत्वात् कारणस्य वैश्यशूद्रयोरपि विज्ञेयम्॥ ९६॥

**वरं स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वधिष्ठितात्॥**
**परधर्मेण जीवन्हि सद्यः पतति जातितः॥९७॥**

(१) **मेधातिथिः**। पूर्वस्य विधेर्निन्दार्थवादोऽयम्। यो यस्य विहितो **धर्मो** जात्याश्रयेण **विगुणोऽप्यपरिपूर्णाङ्गोऽपि** युक्तोऽनुष्ठातुम्। न परधर्मः सर्वाङ्गसंपूर्णोऽपि। अत्र निन्दार्थवादः **परधर्मेणेति**॥ ९७॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अत्र वैश्यवृत्तेरुक्ताया वरमशुद्धात्प्रतिग्रहो विगुणीभूतापि स्ववृत्तिः स्ववृत्तितया प्रशस्तेत्यवतारयति **वरमिति**। पतति जातितः स्वानन्तरजातितुल्यतां याति॥ ९७॥

(३) **कुल्लूकः**। विगुणमपि स्वकर्म कर्तुं न्याय्यं, न परकीयं संपूर्णमपि यस्माज्जात्यन्तरविहितकर्मणा जीवंस्तत्क्षणादेव स्वजातितः पततीति दोषो वर्जनार्थः॥ ९७॥

(४) **राघवानन्दः**। पारक्यः परकीयः स्वनुष्ठितः साङ्गोऽपि न श्रेयान्। 'स्वधर्मो विगुणः श्रेयान् परधर्मो भयावहः' (भ. गी. ३।३५)इति स्मृतेः। जातितः कर्म जात्यन्तरप्राप्त्या जात्यन्तरं जायते, ततः साम्यादिति **मनु**भट्टोक्तेः॥ ९७॥

(५) **नन्दनः**। वरशब्द उत्कृष्टवचनः॥ ९७॥

(७) **मणिरामः**। स्वनुष्ठितः संपूर्ण अपि॥ ९७॥

(८) **गोविन्दराजः**। **वरमिति**। स्वकर्म विगुणमपि कर्तुं न्याय्यं न तु परकीयं संपूर्णमपि। यस्मादपरनोदितकर्मणा जीवंस्तत्क्षणादेव जातितः पततीति निन्दातिशयो वर्जनार्थम्॥ ९७॥

(९) **भारुचिः**। अयमपरो निन्दार्थवादः। उत्कृष्टवर्णवृत्त्यनुष्ठानप्रतिषेधैः स्वधर्मः परधर्म इति प्रकरणात्तु वृत्तिविषयो धर्मशब्दः॥ ९७॥

**वैश्योऽजीवन्स्वधर्मेण शूद्रवृत्त्याऽपि वर्तयेत्॥**
**अनाचरन्नकार्याणि निवर्तेत च शक्तिमान्॥ ९८॥**

(१) **मेधातिथिः**। **स्वधर्मेणाजीवतो** वैश्यस्य शूद्रवृत्तिरनुज्ञायते। पादधावनादिशुश्रूषया। **अनाचरन्नकार्याणि**। उच्छिष्टापमार्जनाद्य'कार्यम्', तत्परिहर्तव्यम्। **शक्तिमान्निवर्तेतेति** सर्वशेषः। अत्र केनचिदुक्तम् सामर्थ्यात् ब्राह्मणक्षत्रिययोरप्येतदतिदिश्यते। तत्रापरेण संदिह्यते। कथं शूद्रवृत्तिं ब्राह्मणः कुर्यात्? एवं हि श्रूयते–"उत्कृष्टं चापकृष्टं च विद्येते कर्मणो तयोः। मध्यमे कर्मणो हित्वा सर्वसाधारणे हि ते" इति–तदयुक्तम्; न त्वस्यायमर्थो ब्राह्मणस्य शूद्रवृत्तिरनुज्ञायते सामर्थ्यादिति। किं तर्हि? **निवर्तेत च शक्तिमानिति** यदस्माभिरुक्तं सर्वशेष इति॥ ९८॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अकार्याण्युच्छिष्टभक्षणादीनि। निवर्तेत शक्तिमान् यदि जीवन् शक्तः प्रकारान्तरेण तदा न कुर्यादित्यर्थः॥ ९८॥

(३) **कुल्लूकः**। वैश्यः स्ववृत्त्या जीवितुमशक्नुवन् शूद्रवृत्त्यापि द्विजातिशुश्रूषयोच्छिष्टभोजनादीन्यकुर्वन्वर्तेत निस्तीर्णापत्क्रमशः शूद्रवृत्तितो निवर्तेत॥ ९८॥

(४) **राघवानन्दः**। विप्रराजन्ययोरापद्धर्ममुक्त्वा वैश्यशूद्रयोरप्याह **वैश्य** इति त्रिभिः। अजीवन्निति च्छेदः। अकार्याणि उच्छिष्टभक्षणादीनि। निवर्तेत शूद्रवृत्तेः। शक्तिमान् लब्धस्ववृत्तिश्चेत् लब्धवृत्त्योर्विप्रक्षत्रिययोरपि निवृत्तिः प्रायश्चित्तपूर्विका शक्तिमानित्यनेन सूचिता॥ ९८॥

(५) **नन्दनः**। अजीवन्निति पदं, अकार्याण्यभक्ष्यभक्षणादीनि शक्तिमानापद्विमुक्तः निवर्तेत शूद्रवृत्तितः॥ ९८॥

(६) **रामचन्द्रः**। वैश्यः स्वधर्मेणाजीवन् शूद्रवृत्त्यापि वर्तयेत् अकार्याणि उच्छिष्टभक्षणादीनि न कुर्यात् शक्तिमान्निस्तीर्णापत् क्रमशः शूद्रवृत्त्या निवर्तेत॥ ९८॥

(७) **मणिरामः**। शूद्रवृत्त्या त्रिवर्णसेवोच्छिष्टभोजनादिरूपया वर्तेत। जीवेत शक्तिमान् निस्तीर्णापत्॥ ९८॥

(८) **गोविन्दराजः**। **वैश्य** इति। वैश्यः स्ववृत्त्या जीवन् शूद्रवृत्त्यापि द्विजशुश्रूषया उच्छिष्टभोजनादीनि अकार्याण्यकुर्वन् जीवेन्निस्तीर्णापत्कालः शूद्रवृत्तितो निवर्तेत॥ ९८॥

(९) **भारुचिः**। सामर्थ्याद् ब्राह्मणक्षत्रिययोरप्येतदिष्यते॥ ९८॥

**अशक्नुवंस्तु शुश्रूषां शूद्रः कर्तुं द्विजन्मनाम् ।।**
**पुत्रदारात्ययं प्राप्तो जीवेत्कारुककर्मभिः ।। ९९ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **कारुकाः** शिल्पिनः सूदतन्तुवायादयः। तेषां कर्माणि पाकवयनादीनि प्रसिद्धानि । **तैर्जीवेत्** । **पुत्रदारात्ययस्त**द्भरणासमर्थता । एतेन धनतन्त्रभंगेन तस्यापदि विवाहादिकर्मणामेषां विधानान्निकृष्टताऽनुमीयते ।। ९९ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । पुत्रदारात्ययं प्राप्तस्तेषां जीवनाभावेन कर्तुमशक्नुवन् । कारुकाणां विशिष्टकर्मकराणां चित्रकारादीनां कर्मभिः ।। ९९ ।।

(३) **कुल्लूकः**। शूद्रः द्विजातिशुश्रूषां कर्तुमक्षमः क्षुदवसन्नपुत्रकलत्रः सूपकारादि-कर्मभिर्जीवेत् ।। ९९ ।।

(४) **राघवानन्दः**। पुत्राद्यत्ययं नाशं ।। ९९ ।।

(५) **नन्दनः**। शूद्रस्यापद्वृत्तिमाह **अशक्नुवंस्तु शुश्रूषामिति**। अशक्नुवन्वृत्तिहान्येति शेषः ।। ९९ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। पुत्रदारात्ययं प्राप्तः भृत्यभावेन जीवनम् ।। ९९ ।।

(७) **मणिरामः**। पुत्रदाराऽत्ययं प्राप्तः। क्षुत्पीडितपुत्रकलत्रे । कारुककर्मभिः सूपकारादिभिः ।। ९९ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **अशक्नुवन्निति**। शूद्रो द्विजातिशुश्रूषया अजीवन् क्षुदवसन्नात्म-कलत्रः सूपकारकर्मभिर्जीवेत् ।। ९९ ।।

(९) **भारुचिः**। एतस्माच्च विज्ञायते शूद्रकर्मभ्यः कारुककर्माण्यत्यन्तनिकृष्टानि। वर्णापसदानां वृत्तिः ।। ९९ ।।

**यैः कर्मभिः प्रचरितैः शुश्रूष्यन्ते द्विजातयः ।।**
**तानि कारुककर्माणि शिल्पानि विविधानि च ।। १०० ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **प्रचरितै**रनुष्ठितैः। **शुश्रूष्यन्ते** सेव्यन्ते । तदुपयोगीनि यानि **कर्माणि शिल्पानि**। यद्यपि शिल्पमपि कारुकर्मैव, तथापीह भेदेनोपादानात्तक्षकिवर्धकिप्रभृतयः कारवस्तेषां कर्माणि तक्षणवर्धनादीनि । **शिल्पानि** पत्रच्छेदरूपकर्माण्यालेख्यानि ।। १०० ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। शिल्पानि पटनिर्माणादीनि ।। १०० ।।

(३) **कुल्लूकः**। पूर्वोक्तकारुकर्मविशेषाभिधानार्थमिदं यैः कर्मभिः कृतैर्द्विजातयः परिचयन्ते तानि च कर्माणि तक्षणादीनि शिल्पानि च चित्रलिखितादीनि नानाप्रकाराणि कुर्यात् ।। १०० ।।

(४) **राघवानन्दः**। यैः कटघटनिर्माणैः सुरचितैः सुष्ठुकृतैः शुश्रूष्यन्ते शुश्रूषामा-प्नुवन्ति । द्विजात्यपेक्षितकारुककर्माणि कुर्यादिति भावः ।। १०० ।।

(५) **नन्दनः**। कानि पुनस्तानि कारुकर्माणीत्याह **यैः कर्मभिः सुचरितैरिति**। शिल्पानि सुवर्णलोहच्छत्रादिकरणानि ।। १०० ।।

(६) **रामचन्द्रः**। सामान्यतः सर्व कारुकर्म प्राप्तौ विशेषमाह **यैरिति**। तथा च यैः कारुककर्मभिर्ब्राह्मणादीनां सेवा भवति तानि तक्षणादीन्येव कुर्यात्, नान्यानीत्यर्थः ।। १०० ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **यैरिति**। यैः कर्मभिरनुष्ठितैः द्विजातयः परिचर्यन्ते तानि कारुककर्माणि तक्षणादीनि शिल्पानि च लाक्षादीनि नानाप्रकाराणि कुर्यात् ।। १०० ।।

(९) **भारुचिः**। कारुककर्माणि शिल्पानि विविधानि च कारुककर्माणि वर्धकिलोहकारादिनानाशिल्पान्यालेख्यादीनि आपत्काले शूद्रवृत्त्यर्थमिदं श्लोकद्वयं प्रकरणसामर्थ्याद्विज्ञेयम् ।। १०० ।।

**वैश्यवृत्तिमनातिष्ठन्ब्राह्मणः स्वे पथि स्थितः ।।**
**अवृत्तिकर्षितः सीदन्निमं धर्मं समाचरेत् ।। १०१ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **अनातिष्ठन्निच्छया**। एतदुक्तं भवति– क्षत्रवृत्त्यसंभवे यदि वा वैश्यवृत्तिमाचरेदसत्प्रतिग्रहं वा। तुल्ये एते वृत्ती। असत्प्रतिग्रहात्क्षत्रवृत्तिः श्रेयसी। अथवाऽ**नातिष्ठन् वैश्यवृत्तिम**संभवे। ततश्चासत्प्रतिग्रहो वैश्यवृत्तेर्हीनतरः। **स्वे पथि स्थित** इति ब्रुवन्नापद्वृत्तीनां समुच्चयोऽस्तीति ज्ञापयति। **अवृत्त्या कर्षितः**। **सीदन्न**वसादं प्राप्नुवन् ।। १०१ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। **वरं स्वधर्म इति**। यदुक्तं तत्स्फारयति **वैश्येति**। स्वे पथि स्ववृत्तौ स्थित उद्यतः, अत एव क्षत्रवृत्तिमप्यनातिष्ठन्। इमं वक्ष्यमाणम् ।। १०१ ।।

(३) **कुल्लूकः**। ब्राह्मणो वृत्त्यभावपीडितोऽवसादं गच्छन्क्षत्रियवैश्यवृत्तिमनातिष्ठन् 'स्वधर्मो वरमविगुण' इत्युक्तत्वात्। स्ववृत्तावेव वर्तमान इमां वक्ष्यमाणां वृत्तिमनुतिष्ठेत्, अतश्च विगुणप्रतिग्रहादिस्ववृत्त्यसंभवे परवृत्त्याश्रयणं ज्ञेयम् ।। १०१ ।।

(४) **राघवानन्दः**। किंचान्यत् वैश्यवृत्त्याऽपरितुष्यतो ब्राह्मणस्य स्ववृत्तौ स्वाच्छन्द्यमाह **वैश्येति** द्वाभ्याम्। स्वे पथि वेदाभ्यासादौ। इममसत्प्रतिग्रहाख्यम् ।। १०१ ।।

(५) **नन्दनः**। अथ ब्राह्मणस्यापद्यप्यनाश्रितवृत्त्यन्तरस्य स्वधर्मनिरतस्य कर्तव्यमाह **वैश्यवृत्तिमनातिष्ठन्निति** स्वे पथि स्वे धर्मे, इमं वक्ष्यमाणम् ।। १०१ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। ब्राह्मण इति क्षत्रियस्याप्युपलक्षणम्। इमं वक्ष्यमाणलक्षणम् ।।१०१।। 'स्वधर्मो विगुणः श्रेयानि'त्युक्तान्निदितं स्वकर्ममेव कर्तव्यं नान्यत्कर्ममि(र्मे)त्याह **वैश्यवृत्ति**मिति। इमं वक्ष्यमाणं ।। १०१ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **वैश्यवृत्तिमिति**। ब्राह्मणवृत्त्यभावपीडितोऽवसादं गच्छन् क्षत्रिय-वैश्यवृत्तिमनुतिष्ठन् स्ववृत्तौ वर्तमान इदं वक्ष्यमाणं वृत्तिकर्मानुतिष्ठेत्। अतश्च परवृत्तितोऽसत्प्रतिग्रहो ब्राह्मणस्य श्रेयांस्तदुक्तं 'वरं स्वधर्मो विगुण' इति ।। १०१ ।।

(९) **भारुचिः**। स्वे पथि स्थित इति च लिङ्गात् क्षत्रियवृत्तिमप्यनातिष्ठन् इति गम्यते, न तु समुच्चयेन ॥ १०१ ॥

**सर्वतः प्रतिगृह्णीयाद्ब्राह्मणस्त्वनयं गतः ॥**
**पवित्रं दुष्यतीत्येतद्धर्मतो नोपपद्यते ॥ १०२ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **सर्वत** इति प्रतिग्राह्यजातिगुणानामपेक्षा न कर्तव्या। अत्रापि हीनहीनतरहीनतमेषु क्रमेण पूर्वपूर्वाभावे उत्तरोत्तरप्राप्तिरस्त्येव। यथा क्षत्रवृत्त्यभावे वैश्यवृत्तिः। **पवित्रं** गङ्गास्रोतस्तदमेध्यसंसर्गे न **दुष्यति**। "नदी वेगेन शुध्यति" इत्युक्तम्। एवं ब्राह्मणोऽपीति ॥ १०२ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। पवित्रं वन्ह्यादि। धर्मतो धर्मबलात् ॥ १०२ ॥

(३) **कुल्लूकः**। ब्राह्मण आपदं प्राप्तः सर्वेभ्योऽपि निन्दिततमेभ्यः क्रमेण प्रतिग्रहं कुर्यात्। अत्रार्थान्तरन्यासो नामालङ्कारः। यस्मात्पवित्रगङ्गादिरश्योदकादिना दुष्यतीत्येतच्छास्त्रस्थित्या नोपपद्यते ॥ १०२ ॥

(४) **राघवानन्दः**। अनयं मरणम्, पवित्रं वेदाभ्यासेन सर्वदा पूतो विप्रः प्रकरणात्पवित्रं वन्ह्यादिदृष्टान्तीवाधर्मतो धर्मशास्त्रात्स्वधर्मत्वाद्वा यत्पवित्रं तन्न दुष्यति न दुष्टमिति प्रमितम् ॥ १०२ ॥

(५) **नन्दनः**। सर्वतः अप्रतिग्राह्यादपि प्रतिगृह्णीयादिति याजनाध्यापनयोरप्युपलक्षणम् ॥ १०२ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। अनयं गतः आपद्गतः धर्मतः पवित्रं द्विजं न दुष्यति एतदुपपद्यते युक्तमेव ॥ १०२ ॥

(७) **मणिरामः**। निंदितस्वकर्म (में) मेवाह **सर्वत इति**। सर्वतः निंदिततरनिंदिततमेभ्यः। अर्थांतरेणैतद्दृढयति **पवित्रमिति**। यस्मात् पवित्रं वस्तु गंगादि अपवित्रेण रथ्याजलादिना दुष्यति एतत् धर्मतः शास्त्रस्थित्या न उपपद्यते ॥ १०२ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **सर्वत** इति। ब्राह्मण आपद्गतः निन्दितानिन्दितमेभ्यः क्रमेण प्रतिग्रहं कुर्याद् यस्मात् पवित्रगङ्गादिरश्योदकादि न दुष्यत्येतच्छास्त्रस्थित्या नोपपद्यते। तच्च ब्राह्मण आपद्यसत्प्रतिग्रहेण न प्रत्यवैति ॥ १०२ ॥

(९) **भारुचिः**। यथैव च वर्णान्तरकर्मानुष्ठान...नन्तरमस्य क्रमेणोक्तम् एवं प्रतिग्राह्याण्याप्ये .. शस्त्रानां गुरुलघुत्वाल्लघोरभावे असत्प्रतिग्रहोऽपि गुरोः सकाशात् स्यादिति। एवं च...प्रशस्तः स्यात्। तदभावे अप्रशस्ततरात् तस्याप्यभावे अप्रशस्ततमात्। तथा च वक्ष्यति-'सर्वस्वं वा वेदविदे ब्राह्मणायोपपादये'दिति। यदि चैतदेवं न स्यात् तेन तर्ह्ययं ब्रह्महत्याप्रायश्चित्तोपदे(शोऽ)नर्थकः स्यात्; न चैतदिष्टम्। अतो यथोक्त एव शास्त्रार्थः। पवित्रं च ..... दुष्यतीत्ययमापद्धर्मस्तुत्यर्थवादः ईषत्प्रत्यवायहेतुर्वेति कृत्वा। अथवा प्राणधारणस्य प्रयोजनातिशयदर्श(नमनर्थकं) स्यात् येन जीवन्नयं शक्ष्यति ह्यतिक्रमाकुशलञ्च निहर्तुमिति ॥ १०२ ॥

**नाध्यापनाद्याजनाद्वा गर्हिताद्वा प्रतिग्रहात् ॥**
**दोषो भवति विप्राणां ज्वलनांबुसमा हि ते ॥ १०३ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। पूर्वेणासत्प्रतिग्रह उक्तः। अनेन याजनाध्यापने अनुज्ञायेते। **गर्हितादिति** सिंहावलोकितवत्पूर्वाभ्यामप्यभिसंबध्यते। यथाग्निरापश्च सर्वत्र शुद्धा एवं ब्राह्मणा अपीति प्रशंसा। केचिदाहुः—असत्प्रतिग्रहवदसद्याजनाध्यापने अप्यनुज्ञायेते। यद्यभविष्यतां, तदा पूर्वश्लोक एव प्रतिग्रहवदपठिष्यताम्। इह तु विधिप्रत्यवायाभावाद्**दोषो भवति विप्राणा**मिति। वर्तमानप्रत्ययेन सिद्धव्यपदेशादर्थवादताप्रतीतेः। किंच प्रतिवचनं तावदर्थवादः, पूर्वेण सिद्धत्वात्तदेकवाक्यत्वापत्तेर्याजनाध्यापने अप्येवं भवितुमर्हतः। वयं तु ब्रूमोऽसंभवेऽसत्प्रतिग्रहस्य तत्रापि वृत्तिर्युक्ता। यतः प्रवृत्तिः स्मर्यते। 'यथाकथंचित्स आत्मानमुद्धरेदन्यत्र प्रत्यवायेभ्यः'। कर्मार्थस्त्वापद्धर्मपाठः॥ १०३॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। गर्हितादिति त्रिष्वन्वितम्। विप्राणां वेदविद्यावताम्। यथा ज्वलनोऽशुचीनपि दहन् अप्पूरनद्यादिर्मलक्षालनं कुर्वन्नपि न दुष्यति॥ १०३॥

(३) **कुल्लूकः**। यस्मात् **नाध्यापनादिति**। ब्राह्मणानामापदि गर्हिताध्यापनयाजनप्रतिग्रहैरधर्मो न भवति यस्मात्स्वभावतः पवित्रत्वेनाग्न्युदकतुल्यास्ते॥ १०३॥

(४) **राघवानन्दः**। अत एवाह **नेति**। यथा याजनाध्यापने दोषानापादके दृष्टान्तः ज्वलनेन ग्रीष्मातपेन युक्तोऽर्क इव वेदाभ्यासेन युक्तो विप्रः प्रतिग्रहोऽपि तथा 'विशुद्धाच्च प्रतिग्रह' इत्यत्र विशुद्धपदं तदर्जितधनस्य फलसिद्धत्वार्थम्॥ १०३॥

(५) **नन्दनः**। एतदेव स्थिरीकरोति **नाध्यापनाद्याजनाच्चेति**॥ १०३॥

(६) **रामचन्द्रः**। ज्वलनार्कसमाहितः समीपे आपद्गतस्य दोषो न॥ १०३॥

(७) **मणिरामः**। तदेव स्पष्टयति **नाध्यापनादित्यादिभिः** श्लोकैः॥ १०३॥

(८) **गोविन्दराजः**। **नाध्यापनादिति**। ब्राह्मणानामपि गर्हिताध्यापनयाजनप्रतिग्रहैरधर्मो न भवति। तस्मात् पवित्रत्वेनाग्न्युदकतुल्यास्ते॥ १०३॥

(९) **भारुचिः**। अत्राध्यापनयाजनयोर्हितयोर्नानुज्ञानम्, असत्प्रतिग्रहस्तुत्यर्थत्वात् तयोर्ग्रहणस्य। स चाधिकृत एव। 'सर्वतः प्रतिगृह्णीया'दिति न त्वसदध्यापनयाजनेऽधिकृते। तथा च सति पूर्ववदयमप्यर्थवादो व्याख्यातः॥ १०३॥

**जीवितात्ययमापन्नो योऽन्नमत्ति ततस्ततः ॥**
**आकाशमिव पङ्केन न स पापेन लिप्यते ॥ १०४ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। पूर्वेणासत्प्रतिग्रह उक्तः। अनेन परिग्रहदुष्टमन्नमभ्यनुज्ञायते। **ततस्तत इति** जातिकर्मानपेक्षमन्नस्वामिनमाह। शेषोऽर्थवादः॥ १०४॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। किं पुनः? प्रतिग्रहादि कुर्वन्॥ १०४॥

(३) **कुल्लूकः**। यः प्राणात्ययं प्राप्तः प्रतिलोमजादन्नमश्नाति सोऽन्तरिक्षमिव कर्दमेन पापेन न संबध्यते ।। १०४ ।।

(४) **राघवानन्दः**। किंच **जीवितेति**। य इति सामान्यशब्दोऽपि ब्राह्मणविषय एव प्रकरणात् अन्येषां प्रतिग्रहनिषेधाच्च। अत्र अनदनीयोदनम् अवृत्तिकर्शितत्वं जीवितात्ययमिति लिङ्गत्रयं पवित्रमित्यादिदृष्टान्तद्वयं च लौकिकालौकिकसर्वथादोषतात्पर्यकम् ।।१०४।।

(५) **नन्दनः**। सर्वत्र भोजनमप्यस्यादृष्टमित्याह **जीवितात्ययमापन्न** इति ।। १०४ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। जीवितात्ययं आपन्नः जीवितस्य अत्ययं नाशं प्राप्तः सन् यतस्ततः प्रतिलोमजातान् यः अन्नं अत्ति भक्षयति ।। १०४ ।।

(७) **मणिरामः**। यतस्ततः प्रतिलोमजात् ।। १०४ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **जीवितात्ययमिति**। यः प्राणात्ययं प्राप्तः प्रतिलोमादपि अन्नमश्नाति सोऽन्तरिक्षमिव कर्दमेन पापेन न संबध्यते। अत्र परवृत्त्यर्थवादः ।। १०४ ।।

**अजीगर्तः सुतं हन्तुमुपासर्पद्बुभुक्षितः ।।**
**न चालिप्यत पापेन क्षुत्प्रतीकारमाचरन् ।। १०५ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **अजीगर्तो** नाम ऋषिः। स क्षुत्परिपीडितः पुत्रं **सुतं** शुनःशेपनामानं **हंतुमुपासर्पत्** प्रचक्रमे। न चासौ क्रव्याद इति युज्यते। शौनःशेपमाख्यानं बहृवृचि सुप्रसिद्धम्। नात्र विस्तर आगमस्योपयुज्यते। परमार्थस्तु परकृतिरूपोऽर्थवादः। एवं सर्व एते द्रष्टव्याः ।। १०५ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। सुतं शुनःशेपम् ।। १०५ ।।

(३) **कुल्लूकः**। अत्र परकृतिरूपार्थवादमाह **अजीगर्त** इति। ऋषिरजीगर्ताख्यो बुभुक्षितः सन्पुत्रं शुनःशेपनामानं स्वयं विक्रीतवान् यज्ञे गोशतलाभाय यज्ञयूपे बद्ध्वा विशसिता भूत्वा हंतुं प्रचक्रमे। नच क्षुत्प्रतीकारार्थं तथा कुर्वन्पापेन लिप्तः। एतच्च **बहूवृचब्राह्मणे** शुनःशेपाख्यानेषु व्यक्तमुक्तम् ।। १०५ ।।

(४) **राघवानन्दः**। अत्रार्थे ऐतिह्यं प्रमाणयति **अजीगर्त** इति चतुर्भिः। सुतं शुनःशेपम्, हन्तुं वरुणार्थं पुरुषमेधे। उपासर्पद्विक्रीतस्य सुतस्य पुनर्हननार्थं गतवान् ।। १०५ ।।

(५) **नन्दनः**। अत्र शिष्टाचारान्दर्शयति **अजीगर्तः सुतं हंतुमिति**। आचरन्निति हेत्वर्थे शतृप्रत्ययः ।। १०५ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। अजीगर्तः ऋषिः। सुतं शुनःशेपं। दोषेण न अलिप्यत ।। १०५ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **अजीगर्त** इति। अजीगर्ताख्यऋषिः बुभुक्षितः पुत्रं शुनःशेपं हन्तुं प्रचक्रमे, न च तथा क्षुत्प्रतीकारं कुर्वन् पापेन लिप्तवान् ।। १०५ ।।

(९) **भारुचिः**। पुत्रं शुनःशेपनामानं उपासर्पत् प्रचक्रमे ।। १०५ ।।

**श्वमांसमिच्छन्नार्तोऽत्तुं धर्माधर्मविचक्षणः ।।**
**प्राणानां परिरक्षार्थं वामदेवो न लिप्तवान् ।। १०६ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । एवं **वामदेवो** नाम ऋषिः । स **आर्तः** क्षुधा **श्वमांसमत्तुं** भक्षयितुमैच्छत् ।। १०६ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । श्वमांसमिच्छन्नार्तोऽत्तुमितीच्छामात्रेणापि पापोत्पत्तिं दर्शयति ।। १०६ ।।

(३) **कुल्लूकः** । वामदेवाख्यऋषिर्धर्माधर्मज्ञः क्षुधार्तः प्राणत्राणार्थं श्वमांसं खादितुमिच्छन्दोषेण न लिप्तवान् ।। १०६ ।।

(४) **राघवानन्दः** । श्वमांसं शुनो मांसं वामदेवोऽप्यत्तुमिच्छन्न लिप्तवानित्यन्वयः ।। १०६ ।।

(५) **नन्दनः** । न लिप्तवान्दोषं न स्पृष्टवान् ।। १०६ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । श्वमांसं वामदेवः क्षुधार्तोऽत्तुमिच्छन्पापेन न लिप्तवान् ।। १०६ ।।

(७) **मणिरामः** । श्वमांसं कुक्कुरमांसं अत्तुं भक्षितुं ।। १०६ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **श्वमांसमिच्छन्निति** । वामदेवाख्य ऋषिः कार्याकार्यवित् क्षुधार्तः प्राणपरित्राणार्थं श्वमांसं भक्षयितुमिच्छन् पापेन न लिप्तवान् ।। १०६ ।।

**भरद्वाजः क्षुधार्तस्तु सपुत्रो विजने वने ।।**
**बह्वीर्गाः प्रतिजग्राह वृधोस्तक्ष्णो महातपाः ।। १०७ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । **वृधो** नाम तक्षा अप्रतिग्राह्यः । ततो **बह्वीर्गा भरद्वाजो** नाम ऋषिः प्रतिजग्राह ।। १०७ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । बहुवीर्गा इति सतात्पर्यं विशेषणं, 'एकैव गौः प्रतिग्राह्येति वचनात् । बृहत्तक्ष्णो रथकारात् ।। १०७ ।।

(३) **कुल्लूकः** । भरद्वाजाख्यो मुनिः महातपस्वी पुत्रसहितो निर्जने वनेऽरण्य उषित्वा क्षुत्पीडितो वृधुनाम्नस्तक्ष्णो बह्वीर्गाः । प्रतिगृहीतवान् ।। १०७ ।।

(४) **राघवानन्दः** । वृधोर्वृधुनामकस्य तक्ष्णो आयोगवजातेः विजने निर्हृत्य प्रतिजग्राहेत्यन्वयः । अत्र हेतुः—महातपा इति तेन संभवत्प्रकारान्तरे न कार्यं तदिति भावः ।।१०७।।

(६) **रामचन्द्रः** । बृहत्तक्ष्णो राज्ञः प्रतिग्रहः ।। १०७ ।।

(७) **मणिरामः** । वृधोस्तक्ष्णोः वृधुनाम्नस्तक्ष्णोः ।। १०७ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **भारद्वाज** इति । **बह्वीर्गाः प्रतिजग्राह वृधुतक्ष्णोर्महामनाः** । भारद्वाजाख्यो मुनिर्मनस्वी सपुत्रो निर्जने वने क्षुत्पीडितो वृधुनाम्नस्तक्ष्णोः बह्वीर्गाः प्रतिगृहीतवान् ।। १०७ ।।

**क्षुधार्तश्चात्तुमभ्यागाद्विश्वामित्रः श्वजाघनीम् ॥**
**चण्डालहस्तादादाय धर्माधर्मविचक्षणः ॥ १०८ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **विश्वामित्रो** नाम महामुनिः प्रसिद्धः। स कस्मिंश्चिदवसरे क्षुधादुःखेन **श्वजाघनीं चण्डालहस्तादादायात्तुमभ्यागत** आभिमुख्येनाध्यवसितः। न केवलं परिदुष्टेऽन्ने दोषोऽस्ति यावत्स्वभावदुष्टेऽपीति श्वजाघनीग्रहणम्। सर्वदोषदुष्टमप्यापदि भक्षयितव्यमिति श्लोकतात्पर्यार्थः ॥ १०८ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। श्वजाघनीं शुनः पुच्छमूलमांसम् ॥ १०८ ॥

(३) **कुल्लूकः**। ऋषि**र्विश्वामित्रो** धर्माधर्मज्ञः क्षुत्पीडितः चण्डालहस्ताद्गृहीत्वा कुक्कुरजघनमांसं भक्षितुमध्यवसितवान् ॥ १०८ ॥

(४) **राघवानन्दः**। **श्वजाघनीं** शुनो जघनवर्तमानं मांसम् ॥ १०८ ॥

(५) **नन्दनः**। **श्वजाघनीं** श्वमांसं अत्तुं भक्षितुम् ॥ १०८ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। क्षुधार्तो विश्वामित्रः **श्वजाघनीं** श्वपुच्छमूलमांसं **अत्तुं अभ्यागात्** ॥ १०८ ॥

(७) **मणिरामः**। **श्वजाघनीं** कुक्कुरजघनमांसं ॥ १०८ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **क्षुधार्त** इति। विश्वामित्रः कार्याकार्यवित् क्षुत्पीडितः चण्डालहस्तात् श्वश्रेणीं (?) प्रतिगृह्य भक्षयितुमध्यवसितवान् ॥ १०८ ॥

(९) **भारुचिः**। जीवितात्यये सर्वान्नाभ्यनुज्ञानार्थाः पञ्च श्लोकाः स्वपरकृत्यर्थवादा विज्ञेयाः ॥ १०८ ॥

**प्रतिग्रहाद्याजनाद्वा तथैवाध्यापनादपि ॥**
**प्रतिग्रहः प्रत्यवरः प्रेत्य विप्रस्य गर्हितः ॥१०९॥**

(१) **मेधातिथिः**। आपदीषद्गर्हितयोजनाध्यापनयोः संभवे न गर्हितप्रतिग्रहे वर्तितव्यमिति श्लोकार्थः ॥ १०९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। अत्र पुनर्विशेषमाह **प्रतिग्रहादिति** ॥ १०९ ॥

(३) **कुल्लूकः**। गर्हितानामप्यध्यापनयाजनप्रतिग्रहाणां मध्याद्ब्राह्मणस्यासत्प्रतिग्रहो निकृष्टः परलोके नरकहेतुः ततश्चापदि प्रथमं निन्दिताध्यापनयाजनयोः प्रवर्तितव्यं तदसंभवे त्वसत्प्रतिग्रह इत्येवंपरमेतत् ॥ १०९ ॥

(४) **राघवानन्दः**। याजनाध्यापने प्रतिग्रहात्प्राशस्त्ये इत्यनुवदति **प्रतिग्रहादिति**। प्रत्यवरः प्रति पूर्वं अपेक्ष्यावरो निकृष्टः प्रेत्य स्थितस्यापि नरकहेतुत्वात् ॥ १०९ ॥

(५) **नन्दनः**। याजनाध्यापनाभ्यामसत्प्रतिग्रहस्यावरत्वमाह **प्रतिग्रहाद्याजनाच्चेति**। प्रेत्य परलोके ॥ १०९ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। प्रतिग्रहः प्रत्यवरः हीनहीनः ॥ १०९ ॥

(७) **मणिरामः**। प्रत्यवरः निकृष्टः ॥ १०९ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **प्रतिग्रहादिति**। 'आपत्करणाज्जपहोमैरपैत्येन' इति वक्ष्यमाण-दर्शनात् गर्हितयाजनाध्यापनप्रतिग्रहाणां मध्यात् असत्प्रतिग्रहो निकृष्टो ब्राह्मणस्य परलोके नरकहेतुः अत आपदि प्रथममसद्याजनाध्यापनयोः प्रतिवर्तितव्यम्। तदभावेऽसत्प्रतिग्रह इत्येवंपरमेतत् ॥ १०९ ॥

(९) **भारुचिः**। प्रकरणादसत्प्रतिग्रहनिन्दामीषद्गर्हितयाजनाध्यापनवृत्तिसंस्तुत्यर्था-सामर्थ्यात्। एवं च स(ति षडतीषद्) गर्हित याजनेऽध्यापने वा सति वृत्त्यर्थेनासत्प्रतिग्रहे प्रवर्तते। ते तदर्थाः विज्ञायते इतरथाभ्यापत्कल्पविहितासत्प्रतिग्रहनिन्दापूर्वकशास्त्रविरोधिनी प्रसज्येत; न चैतदिष्टम्। अतस्तन्निन्दया इतरवृत्तिस्तुतिर्विज्ञेया ॥ १०९ ॥

**याजनाध्यापने नित्यं क्रियते संस्कृतात्मनाम् ॥**
**प्रतिग्रहस्तु क्रियते शूद्रादप्यंत्यजन्मनः ॥ ११० ॥**

(१) **मेधातिथिः**। अत्रैव हेतुरूपोऽर्थवादः। प्रवृत्तिरेवेदृशो लोकस्य यदनुपनीता नाधीयते न च यजन्ते। अतः सुष्ठुवार्तोऽपि न शूद्रं याजयिष्यत्यध्यापयिष्यति वा। दानं तु सार्ववर्णिकं प्रसिद्धम्। **शूद्रादपि प्रतिग्रहः** कर्तुं प्राप्नोत्यतः स प्रत्यवरः ॥११०॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। संस्कृतात्मनां द्विजानामेव संभवति नतु तस्य शूद्रे प्रसंगः। प्रतिग्रहस्तु प्रवर्तमानः शूद्रेऽपि प्रसज्यत एवेति युक्तेर्निन्दितत्वात्। न केवलं शूद्रात् किंतु अप्यन्त्यजन्मनः चण्डालात् ॥११०॥

(३) **कुल्लूकः**। अत्र हेतुमाह **याजनेति**। याजनाध्यापने आपद्यनापदि चोपनयन-संस्कृतात्मनां द्विजातीनामेव क्रियेते; प्रतिग्रहः पुनर्निकृष्टजातेः शूद्रादपि क्रियते तस्मादसौ ताभ्यां गर्हितः ॥११०॥

(४) **राघवानन्दः**। अत्र हेतुमाह **याजनेति**। संस्कृतात्मनां वेदेनैव संस्कारो द्विजानाम्। शूद्रस्य याजनमपि प्रतिग्रहवन्निन्दितम् ॥११०॥

(५) **नन्दनः**। अत्र कारणमाह याजनाध्यापने नित्यं क्रियेते संस्कृतात्मनान्त्रैवर्णिकाना-मेव नित्यमापद्यनापद्यपि क्रियते ॥११०॥

(६) **रामचन्द्रः**। (अन्त्य)जन्मनः निकृष्टजातेः ॥११०॥

(७) **मणिरामः**। तत्र हेतुमाह **याजनाध्यापन इति** ॥ ११० ॥

(८) **गोविन्दराजः**। अत्र हेतुमाह **याजनाध्यापन** इति। याजनाध्यापने आपद्यनापदि च द्विजातीनामेव क्रियेते। प्रतिग्रहः पुनर्निकृष्टजातेः शूद्रादपि क्रियते, अतोऽसौ गर्हितः ॥ ११० ॥

(९) **भारुचिः**। सा च क्रमार्थेत्युक्तम्। अत्र कारणमाह यतश्चैतदेवमतो यथोपदिष्टः क्रमः प्रतिपादनी(यः) ॥ ११० ॥

**जपहोमैरपैत्येनो याजनाध्यापनैः कृतम् ॥**
**प्रतिग्रहनिमित्तं तु त्यागेन तपसैव च ॥ १११ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **जपेन होमेन चैनः पापमपैति** विनश्यति। तेन न क्षतिः। प्रतिग्रहाद्यदेनस्तत्**त्यागेन** तस्य प्रतिग्रहस्य, **तपसा**, वक्ष्यमाणेन "मासं गोष्ठे पयः पीत्वा" इत्यादि ॥१११॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। जपहोमैर्नतु तदुपात्तवित्तत्यागैरेव अतः सुशकप्रायश्चित्ततापि। त्यागेन प्रतिग्रहोपात्तवित्तस्य। तपसा चान्द्रायणादिना। तपसैवेति क्वचित्पाठः। तद्वित्तस्य त्यागासंभवे तपसापि भूयसाऽपैतीत्यर्थः ॥१११॥

(३) **कुल्लूकः**। एनोग्रहणादसत्प्रतिग्रहयाजनाध्यापनैर्यदुपपन्नं पापं तत्प्रायश्चित्तप्रकरणे वक्ष्यमाणक्रमेण जपहोमैर्नश्यति असत्प्रतिग्रहजनितं पुनः प्रतिगृहीतद्रव्यत्यागेन 'मासं गोष्ठे पयः पीत्वे'त्येवमादिवक्ष्यमाणतपसाऽपगच्छति ॥१११॥

(४) **राघवानन्दः**। प्रायश्चित्तगौरवादपि ताभ्यां प्रतिग्रहोऽवर इत्याह **जपेति**। एनः पापम् त्यागेन तद्द्रव्यस्य। तपसा 'गोष्ठे पयः पीत्वे'त्येवमादिवक्ष्यमाणेन ॥१११॥

(५) **नन्दनः**। प्रतिग्रहस्तु दानस्य सर्वसाधारणत्वादन्त्यजन्मनः प्रतिलोमादपि क्रियते कर्तुं प्राप्तो भवति, तेन प्रतिग्रहः प्रत्यवर इत्याह **जपहोमैरपैत्येन इति**। प्रायश्चित्तगौरवादप्यसत्परिग्रहः प्रत्यवर इत्यर्थः ॥१११॥

(६) **रामचन्द्रः**। तु पुनः त्यागेन प्रतिगृहीतवस्तुनः त्यागेन वा तपसैव गोष्ठे पयः पीत्वा वक्ष्यमाणतपसा ॥१११॥

(७) **मणिरामः**। प्रायश्चित्तमाह **जपहोमैरिति**। त्यागेन प्रतिगृहीतद्रव्यत्यागेन तपसा 'मासं गोष्ठे पयः पीत्वे'ति वक्ष्यमाणउपायेन ॥१११॥

(८) **गोविन्दराजः**। किं च **जपहोमैरिति**। अतो ग्रहणादसद्याजनाध्यापने यदुत्पन्नं पापं तत्प्रायश्चित्तप्रकरणवक्ष्यमाणरूपेण जपहोमैर्निवर्तते। असत्प्रतिग्रहजनितं पुनस्तद्द्रव्यत्यागेन 'मासं गोष्ठे पयः पीत्वे'त्येवमादिवक्ष्यमाणतपसा चोपशाम्यति ॥१११॥

(९) **भारुचिः**। प्रकरणादयं प्रतिग्रहोऽसत्प्रतिग्रहो विज्ञेयः। छन्दोभङ्गभयात्। सच्छन्दोऽत्र न पठितः। प्रतिग्रहोपपदं जपहोमत्यागतपसां च प्रायश्चित्तप्रकरणोपदिष्टानामिहोपदेशः स्तुत्यर्थः, न विध्यर्थः ॥१११॥

**शिलोञ्छमप्याददीत विप्रोऽजीवन्यतस्ततः ॥**
**प्रतिग्रहाच्छिलः श्रेयांस्ततोऽप्युञ्छः प्रशस्यते ॥ ११२ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। अस्याप्यनुवादोऽर्थवादमेवाह महदेतदन्याय्यं यत्परद्रव्यग्रहणम्। तत्र कदाचिदश्रूयमाणस्य ग्रहणेऽपीदं भवद्दुष्यतोऽप्येतावता प्रशस्यत्वम्। अत्र शिलः प्रतिग्रहसमानजातीयः। स एवायं प्रकर्षप्रत्ययहेतुर्भवति। **प्रतिग्रहाच्छिलः श्रेयानिति**। यतो

निकृष्टमपेक्ष्योत्कृष्टत्वनिमित्तं प्रकर्षमनुभवति। न हि भवति चण्डालाद्ब्राह्मणः श्रेयान्। अतः शिलोञ्छयोरपि ग्रहणेऽनस्वग्रहणम्। तथापि शिलोञ्छं श्रेयः। यद्यपि शिलोञ्छवृत्तिरत्यन्तोत्कृष्टोक्ता तथाप्यस्ति प्रतिग्रहेण किंचित्साम्यम्। यतस्तत्राधिदेवतानिष्ठितभृत्यागतं क्रियावैकल्यम्। असत्प्रतिग्रहेऽप्यात्मनि ग्रह उपपन्नो न कुप्यतीत्ययमिति। तत्रेतरसंनिहितद्रव्यस्याऽऽत्मनिग्रहः। अतः शिलोञ्छवृत्तिरपि न निरवद्या। ततो युक्तं **प्रतिग्रहाच्छिलः श्रेयानि**त्यादि ॥११२॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः। शिलोञ्छमिति**। जीवनासंभवे यतस्ततोऽपि चाण्डालादिक्षेत्रजादि यतस्ततोऽपीत्यन्वयः। 'लूनशीर्णमनुज्ञातं शिल'मिति **देवलः**। तदेव 'स्वामिना' त्यक्तं तदनुमतिं विनैव गृह्यमाणमुञ्छः। एकैककणादानमुञ्छः, कणिशादानं तु शिलमित्यन्ये। तद्वृत्तिद्वयजीवनसंभवे सत्प्रतिग्रहोऽपि न कार्यः। तत्राप्युञ्छेन जीवनसंभवे शिलं न ग्राह्यं, तत्रोपरोधसंभवात् ॥११२॥

(३) **कुल्लूकः**। ब्राह्मणः स्ववृत्त्याऽजीवन्यतस्ततोऽपि शिलोञ्छं गृह्णीयान्नतु तत्संभवेऽसत्प्रतिग्रहं कुर्यात् यस्मादसत्प्रतिग्रहाच्छिलः प्रशस्तः, मञ्जर्यात्मकानेकधान्योन्नयनं शिलस्ततोऽप्युञ्छः श्रेष्ठः। एकैकधान्यादिगुडकोच्चयनमुञ्छः ॥११२॥

(४) **राघवानन्दः**। याजनादिभ्योऽपि शिलोञ्छे प्रशस्ते इत्यनुवदंस्तयोरपि शिलादुञ्छं प्रशस्ततरमित्याह **शिलेति**। उञ्छेन जीवञ्छिलं न कुर्यात्। शिलेन जीवन्नध्यापनं न कुर्यात्। अध्यापनेन जीवन्याजनं न कुर्यात्। याजनेन जीवन्प्रतिग्रहं न कुर्यात्। तत्रापि विशुद्धेन जीवन्नविशुद्धं न कुर्यादिति भावः ॥११२॥

(५) **नन्दनः**। कल्पान्तरमाह **शिलोञ्छमप्याददीतेति**। अजीवन्निति पदं यतस्ततो विशिष्टाविशिष्टधनेभ्यः क्षेत्रखलादिषु शिलमुञ्छं वाददीत उत्तरार्धेन यतस्ततः प्रतिग्रहशिलोञ्छानां विशेष उक्तः, यतस्ततः प्रतिग्रहादन्यतःप्रतिग्रहाच्छिलः श्रेयान्, ततोऽपि तस्मादपि एतौ शिलोञ्छौ अदत्तादानविषयौ चतुर्थाध्यायोक्तावापद्धर्मवृत्त्यर्थौ। उञ्छो धान्यशः आदानं, कणिशाद्यर्जनं शिलमिति ॥११२॥

(६) **रामचन्द्रः**। पूर्वं शिलोञ्छं शिलं वा उञ्छं वा यदाऽपर्याप्तं तदा यतस्ततः महापातकिनोऽपि उपपातकादिभ्योऽपि गृह्णीयात्। ततः शिलात् उञ्छः प्रशस्यते ॥११२॥

(७) **मणिरामः**। शिलोञ्छेनाजीवनसिद्धौ प्रतिग्रहं न कुर्यादित्यर्थः। तत्र हेतुमाह **प्रतिग्रहादिति**। मंजर्याद्यनेकधान्येनोच्चयनं शिलः। एकैकधान्याद्युच्चयनमुञ्छः ॥११२॥

(८) **गोविन्दराजः**। **शिलोञ्छमिति**। ब्राह्मणः स्ववृत्त्या अजीवन्नुपपातकिभ्योऽपि शिलोञ्छं गृह्णीयान्न तु तत्संभवे असत्प्रतिग्रहेण वर्तते। यस्मादसत्प्रतिग्रहात् शिलोच्चयनं प्रशस्तं। ततोऽप्येकैकधान्यकणोच्चयनमिति ॥११२॥

(९) **भारुचिः**। असत्प्रतिग्रहपक्षे (शि)लोञ्छाभ्यां दुर्धराविमौ विज्ञेयौ, सत्प्रतिग्रहादित्येके। येन (शि)लोञ्छयोः किलासत्प्रतिग्रहात् साधुवादो न युक्तः। अत्यन्तहीनत्वादसत्प्रतिग्रहस्य (शि)लोञ्छाभ्यां दुर्धरौ हि तावकृतात्मभिरिति यदुक्तं तदेतदरादसत्यम्।

यस्मात् (शि)लोञ्छवृत्तिनो तद्यप्यात्मनिग्रहोऽस्ति; तथापि देवतातिथिभृत्यगतमवश्यमस्य क्रियावैकल्यं जायते, असत्प्रतिग्रहे चात्मनिग्रह उच्यते। 'न तु तृप्येत् स्वयं तत' इति वचनात् तीव्रतश्च सन्निहितद्रव्यस्यात्मनिग्रहः। तथा द्रव्यस्यार्जनर(क्षण)प्रतिपादनेषु प्रयत्ननियमः। अपि च (शि)लोञ्छवृत्तिनोऽप्यस(च्छि)लोञ्छगन्धोऽस्ति 'यतस्तत' इति वचनात् अविशेषेण सर्वकृषीवलेभ्यः एताविह् (शि)लोञ्छा(वुच्येते)। यतः असत्प्रतिग्रहापकरणाल्लिङ्गाच्च। 'विप्रो जीवन्यतस्तत' इति एतस्माद्विज्ञायते च। सत्प्रतिग्रहपक्ष एतौ (शि)लोञ्छौ। एवं च नाधिकार उत्स्रक्ष्यते, न लिङ्गम्। गुणवृत्त्या कल्प इष्यत इति। तथा च सत्यसत्प्रतिग्रहात् (शि)लोञ्छयोः साधुवाद एतद् गम्यते। तदभावेऽसत्प्रतिग्रहः स्यात्। 'यथा याजनाध्यापनयो'रित्युक्तम् ॥११२॥

**सीदद्भिः कुप्यमिच्छद्भिर्धनं वा पृथिवीपतिः ॥**
**याच्यः स्यात्स्नातकैर्विप्रैरदित्संस्त्यागमर्हति ॥ ११३ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। अत्र त्रीणि निमित्तानि राजप्रतिग्रहे उच्यन्ते। **सीदद्भिः** कुटुंबावसादं प्राप्तैरापदीत्यर्थः। **कुप्यमिच्छद्भिः**। कुण्डलकटकाद्युष्णीषासनादि काञ्चनादि। अन्यद्वा **धनं** गोहिरण्यादि यज्ञोपयोग्यन्यद्वा। **विप्रैः पृथिवीपतिर्याच्यो** देशेश्वरोऽभ्यर्थयितव्यः। अत्र यदुक्तं 'न राज्ञः प्रतिगृह्णीयात्' इति स दुष्टराजविषयः प्रतिषेधो द्रष्टव्यः। तथा चोक्तं "लुब्धस्योच्छास्त्रवर्तिन" इति। **अदित्सन्** याचितः सन् दातुं यो नेच्छति, स त्यागमर्हति। तस्य विषये न वस्तव्यम्। अथवा **त्यागो** हानिः। अन्यस्य चानिर्देशाद्धर्महानिं प्राप्नोति ॥ ११३ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। सीदद्भिरन्नाभावेन उञ्छस्याप्यलाभात्। तथा कुप्यं कांस्यताम्रादीच्छद्भिस्तदर्थिभिः। तथा धनं बहुसुवर्णादिकोशमिच्छद्भिः। अजीवनदशायामतिरागौत्कट्ये वा नृपतिर्याच्यो नान्यथेत्यर्थः। स च नृपोऽदित्सन्ब्राह्मणैरन्यैरपि त्याज्यः ॥११३॥

(३) **कुल्लूकः**। स्नातकैर्ब्राह्मणैर्धनाभावाद्धर्मार्थं कुटुंबावसादं गच्छद्भिः सुवर्णरजतव्यतिरिक्तं धान्यवस्त्रादिकुप्यं धनं यागाद्युपयुक्तं हिरण्याद्यप्यापत्प्रकरणात्क्षत्रियोप्युच्छास्त्रवर्ती याचितव्यः स्यात्। यश्च दातुं नेच्छति कृपणत्वेनावधारितः स त्याज्यो न याचनीय इत्यर्थः। **मेधातिथिगोविन्दराजौ** तु त्यागमर्हतीति तस्य देशे न वस्तव्यमिति व्याचक्षाते ॥ ११३ ॥

(४) **राघवानन्दः**। स्नातकैर्हि राज्ञोऽपि धनं ग्राह्यमित्याह **सीदद्भिरिति**। बहुवचनलिङ्गाद्बहुतरकुटुम्बैः। कुप्यं सुवर्णरजतव्यतिरिक्तं धान्यवस्त्रादि। धनपदं सुवर्णादिपरम्। पृथिवीपतिः राजा याच्यः आपत्प्रकरणत्वादुच्छास्त्रवर्त्यपि अन्यथा धर्मजीवनयोर्हानावतीव पातकितेति भावः। अदित्सन्कार्पण्यात्। त्यागं तस्य राज्ञः देशस्य वा ॥ ११३ ॥

(५) **नन्दनः**। कुप्यं वस्त्रादिकं धनं हिरण्यादिकं त्यागं याजनादिषु नादेयत्वम् ॥११३॥

(६) **रामचन्द्रः**। स्नातकैर्विप्रैः सीदद्भिः कुप्यं ताम्रादिधनं इच्छद्भिः पृथिवीपति-

र्याच्यः स्यात् । अदित्सन् अप्रयच्छन् तर्हि त्यागं अर्हति ब्राह्मणैरन्यैस्त्याज्यः तद्देशे न स्थातव्यम् ॥ ११३ ॥

(७) **मणिरामः** । सीदद्भिः धनाभावात् कुटुंबावसादं गच्छद्भिः । स्नातकैः ब्राह्मणैः ॥ कुप्यं सुवर्णरजतव्यतिरिक्तं धान्यवस्त्रादिधनं यागाद्युपयुक्तं हिरण्याद्यपि इच्छद्भिः पृथिवीपतिः याच्यः स्यात् यः अदित्सन् दातुं न इच्छति, कृपण इति यावत् सः अर्हति कृतात क्षेत्रात् लुप्तः स स्यात् । अदोषकृत् अदुष्टं । तथा गवाद्यपि पूर्वं पूर्वमुद्दिष्टं ॥ ११३ ॥

(८) **गोविन्दराजः** । **सीदद्भिरिति** । स्नातकैर्ब्राह्मणैर्धनाभावात् धर्मात्मकुटुंबावसादं गच्छद्भिरसारद्रव्यं गृहोपयोगि शयनासनादि वा धनं धान्यं हिरण्यादि वेच्छद्भिः पार्थिवः क्षत्रियो क्षत्रियोऽपि वोच्छास्त्रवर्ती याचितव्यः स्यात् । अददतस्तस्य देशे न वस्तव्यमिति । इदं न राज्ञः प्रतिगृह्णीयादराजन्यप्रसूतितः ।

यो राज्ञः प्रतिगृह्णाति लुब्धस्योच्छास्त्रवर्तिनः । इत्यक्षत्रियोच्छास्त्रवर्तिनोऽराज्ञोऽनापदि निषिद्धयोरापद्यभ्यनुज्ञानार्थम् ॥ ११३ ॥

(९) **भारुचिः** । अयं च प्रतिषेधविषये क्षत्रियाद्राज्ञः क्षत्रियादपि वा लुब्धादुच्छास्त्रवर्तिनः सकाशादयं प्रतिग्रहो विज्ञेयः । उपाध्या (य) स्त्वाह-क्षत्रियादेव राज्ञः... प्राथ (म्य) कल्पकोऽयम् । कुप्यं काष्ठमयं शयनासनाद्यसारं धनं वा गोहिरण्यादि याच्य..स्यादयोगे क्षुदवसन्नात्मकलत्रापत्यधर्ममन्त्रेण ॥११३॥

**अकृतं च कृतात्क्षेत्राद्गौरजाविकमेव च ॥**
**हिरण्यं धान्यमन्नं च पूर्वं पूर्वमदोषवत् ॥ ११४ ॥**

(१) **मेधातिथिः** । **अकृतम**कृष्टं क्षेत्रं प्रशस्यम् । **अजाविकं** च भवति । परस्परविशेष उक्तार्थः श्लोको गम्यते ॥ ११४ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । **अकृतं** खिलं । **कृतं** परिकर्मितं । **अन्नं** पक्वं । कृतादकृतं । ततः क्रमेणा**जादौ** । तत्रापि **पूर्वं पूर्वं न दोषवत्** परिग्रहेऽल्पदोषम् ॥ ११४ ॥

(३) **कुल्लूकः** । **अकृतमनुप्तसस्यं** क्षेत्रतत्कृतादुप्तसस्यात्प्रतिग्रहे दोषरहितं तथा गोछागमेषहिरण्यधान्यसिद्धान्नानां मध्यात्पूर्वं पूर्वमदुष्टम् ततश्चैषां पूर्वपूर्वासंभवे परः परो ज्ञेयः ॥ ११४ ॥

(४) **राघवानन्दः** । ग्राह्येष्वेतेषु पूर्वपूर्वप्रशस्तिमाह **अकृतेति** । अकृतमनुप्तसस्यं क्षेत्रं ततो नीवारादेर्ग्रहणम् । कृतादुप्तसस्यात् । अन्नं सिद्धान्नम् । नात्र तर्कापेक्षा किमिव वचनं न करोतीति न्यायात् ॥ ११४ ॥

(५) **नन्दनः** । अथ ब्राह्मणस्य प्रतिग्रहे द्रव्यविशेषेषु दोषतारतम्यमाह **अकृतञ्च गृहं क्षेत्रमिति** । **पूर्वं पूर्व**मदोषकं परस्मात्परस्मात्पूर्वं पूर्वं द्रव्यं प्रतिग्रहणेऽल्पदोषम् ॥ ११४ ॥

(६) **रामचन्द्रः** । **अकृतं** अनुप्तसस्यं क्षेत्रात् **कृतात्** हलादिना **पूर्वं अदोष**भाक् ॥ ११४ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **अकृतमिति**। कृष्टात् क्षेत्रात् प्रतिग्रहेऽकृष्टमनुप्तं तथा गोच्छागैडकहिरण्यधान्यानां मध्यात् पूर्वं पूर्वमदुष्टतमं चैषां पूर्वस्यासंभवे परः परः प्रतिग्राह्यः ॥ ११४ ॥

(९) **भारुचिः**। उत्तरस्योत्तरस्य परित्यागेऽभ्युदयः ॥ ११४ ॥

**सप्त वित्तागमा धर्म्या दायो लाभः क्रयो जयः ॥**
**प्रयोगः कर्मयोगश्च सत्प्रतिग्रह एव च ॥११५॥**

(१) **मेधातिथिः**। **दायोऽन्वयागतं** धनम्। **लाभो** निध्यादेः। पित्राद्यर्जिताद्वा बन्धात्संविभागः। यद्यपि तत्पित्रादिक्रमायातं तथापि न तद्दायशब्देन शक्यमभिधातुं, बहुसाधारण्यात्। तथा च 'निबन्धो द्रव्यमिति' (याज्ञ. २-१२१) स्मृत्यन्तरे पठितम्। अथवा मित्राच्छ्वशुरगृहाद्वा यल्लब्धं प्रीत्या स 'लाभः'। **क्रयः** प्रसिद्धः। **जयः** संग्रामे। **प्रयोगकर्मयोगौ** कुसीदकृषिवाणिज्यानि। अतश्च वर्णभेदेनैतेषां धर्म्यत्वम्। तत्राद्यास्त्रयः सर्वसाधारणाः। 'जयः क्षत्रियस्य'। 'प्रयोगकर्मयोगौ' वैश्यस्य। 'सत्प्रतिग्रहो' ब्राह्मणस्य विशेषः। सर्ववर्णेऽपि प्राग्दर्शनन्यायो विभागः। केचित्क्रये विवदन्ते—तन्न युक्तम्; सर्वव्यवहारोच्छेदप्रसङ्गात्। **जयं** यानबन्धेनापि केचिदिच्छन्ति सर्वविषयम्—तदयुक्तम्; द्यूतधनस्य स्मृत्यन्तरेष्वशुद्धित्ववचनात् पाशुकद्यूतेत्यत्र। तथा परे **प्रयोग**मव्यापारमाहुः। तथा हि प्रयोगो दृश्यते 'ज्ञानपूर्वप्रयोग' इति। तत्र शब्दस्य प्रयोग इति गम्यते। तथा 'कर्मयोगः' कर्मप्रचारः ॥ ११५ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। धर्म्या धर्मादनपेताः। दायः पित्रादिधनस्य विभागादिना लभ्यस्य प्राप्तिः। लाभो निध्यादेरकस्माल्लाभः। क्रयो धनेन प्राक्स्थितेन भूम्यादेः परिग्रहः। जयो युद्धोद्योगात्प्राप्तिः। प्रयोगः कलावाणिज्यादिना वर्धनम्। कर्मयोगः शिल्पादिकर्म कृत्वा भृतिग्रहः। सत्प्रतिग्रहः शुद्धाच्छुद्धस्य द्रव्यस्य तिलादिव्यतिरिक्तस्य प्रतिग्रहः। अत्राद्यास्त्रयः सर्वेषां वर्णानां ततः परे त्रयः क्षत्रविट्शूद्राणामेवं क्रमादन्त्यो विप्रस्यैवेति ॥ ११५ ॥

(३) **कुल्लूकः**। दायाद्याः सप्तधनागमाः। यथा धनाधिकारं धर्मादनपेतास्तत्र दायोऽन्वयागतधनं। लाभो निध्यादेः मैत्र्यादिलब्धस्य च। क्रयः प्रसिद्धः। एते त्रयश्चतुर्णामपि वर्णानां धर्म्याः। जयधनं विजयत्वेन क्षत्रियस्य। धर्म्यः प्रयोगो वृद्ध्यादिधनस्य कर्मयोगश्च कृषिवाणिज्ये एतौ प्रयोगौ वैश्यस्य धार्म्यौ। सत्प्रतिग्रहो ब्राह्मणस्य धर्म्यः एवं चैतेषां धर्मत्ववचनादेतदभावेऽन्येष्वनापद्विहितेषु वृत्तिकर्मसु प्रवर्तितव्यं तदभावे चातद्विहितेषु प्रकृतेष्वित्येतदर्थमेतदिहोच्यते ॥ ११५ ॥

(४) **राघवानन्दः**। प्रतिग्रहप्रसंगेन धनोपायान्तरमनुवदन्नुपसंहरति **सप्तेति**। वित्तागमा धनस्य प्राप्त्युपायाः धर्म्या धर्मादनपेताः। दायः पित्रादिधनादेर्विभजनम्। लाभो निध्यादेः। क्रयः स्वधनेन विनिमयेन वा। जयः द्यूतयुद्धाद्यैः। प्रयोगो वृद्ध्यर्थं धनस्य। कर्मयोगः कृषिवाणिज्ये। अत्र दायलाभक्रयाश्चातुर्वर्ण्यस्य साधारणाः। जयः

क्षत्रियस्यासाधारणः। प्रयोगकर्मयोगौ वैश्यस्य। सत्प्रतिग्रहो ब्राह्मणस्य। आपदि प्रतिग्रहशङ्कानिरासाय विवरणम् ॥ ११५ ॥

(५) **नन्दनः**। अथ ब्राह्मणस्यानापद्विषयांस्तावदाह **सप्त वित्तागमा इति**। धर्म्या धर्मयुक्ता अनापद्विषया इत्यर्थः। दायः प्रसिद्धः। लाभो निध्यागमादिः। क्रयः क्षेत्रादिक्रयः। जयो वादिषु प्रतिवादिनिग्रहः। प्रयोगः अध्यापनं कर्मयोगो याजनं सत्प्रतिग्रहो विशुद्धद्विजातिप्रतिग्रहः ॥ ११५ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। दायः पित्र्यांशलाभः निध्यादेः प्राक्स्थितस्य भूम्यादेः परिग्रहः। जयो युद्धयोगादेः प्राप्तिः। प्रयोगः कलावाणिज्यादिना वर्धनम्। कर्मयोगः शिल्पादिकर्म कृत्वा सप्तैते धर्म्या वित्तागमाः वित्तस्य आगमोपायाः ॥ ११५ ॥

(७) **मणिरामः**। सप्त वित्तागमाः धनागमा धर्म्याः श्रेष्ठाः। तानाह **दाय**इत्यादीति। दायः स्ववंशगतं धनं। लाभः निध्यादेः क्रया एते त्रयश्च चतुर्णामपि वर्णानां धर्म्याः। जयः विजयेन धनार्जनं इदं क्षत्रियस्यैव। प्रयोगः वृद्ध्यर्थं धनप्रयोगः। कर्मयोगः कृषिवाणिज्ये। एतौ द्वौ वैश्यस्य, सत्प्रतिग्रहो ब्राह्मणस्येत्यर्थ ॥ ११५ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। **सप्तेतिः**। **प्रयोगः सर्वयोगश्चेति**। सत्पधनागमा दायादयो धर्मादनपेतास्तत्र दायोऽन्वयागतं धनं। लाभो निधिः प्रतीतो वा कुतश्चित्। क्रयः प्रसिद्धः। एते त्रयश्चतुर्णामपि वर्णानां धर्म्याः। जयो युद्धेन क्षत्रियस्य धर्म्यो वृद्ध्यर्थं धनप्रयोगश्च कृषिवाणिज्ये इत्येते वैश्यस्य धर्म्याः। सत्प्रतिग्रहो ब्राह्मणस्य धर्म्यः। इत्येवं च सति एषु धर्म्यवचनाद् एतद् भावेनैष्वनापच्चोदितेषु वृत्तिकर्मसु प्रवर्तितव्यं तदभावे भावे च वापद्युदितेषु प्रकृतेष्वित्येवमर्थमिहोच्यते ॥ ११५ ॥

(९) **भारुचिः**। दायं पित्र्यं ज्ञातिधनं वा। लाभो निध्यधिगमः। संविभागतो कुतश्चिदन्योन्योपकारनिमित्तः क्रयजप्यौ प्रसिद्धौ। प्रयोगो धर्म्यः कुसीदः। कर्मयोगः कृषिवाणिज्यो अस्य यत्कृते सत्प्रतिग्रहो व्याख्यातः। एतेषां दायलाभेन चतुर्णामपि वर्णानां साधारणोऽप्रतिषेधात् क्रये विवदन्ते। चतुर्णामित्येके। वैश्यस्येत्यपरे, येन क्रयनिमित्त उपकारो न युक्तो ब्राह्मणादीनामिति। एवं तर्हि शाकाद्यपि क्रीत्वा नोपयोक्तव्यं ब्राह्मणादिभिः। अन्ये तु क्रयविक्रयादप्युपजीवनात् प्रतिषेधं मन्यमानब उपभोगे दानादौ च ब्राह्मणादीनां क्रीत्वाप्युपयोगं मन्यन्ते। जयस्तु धर्म्यवचनात् क्षत्रियस्येतरेभ्यो विशिष्टः। प्रयोगकर्मयोगौ च ब्राह्मणक्षत्रिययोर्वैश्यवृत्तिप्रवृत्ते सत्यं धर्म्यतरौ, वैश्ये हि कृषिवाणिज्यकुसीदा (दीनि) अविशेषेणाभ्यनुज्ञातानि। तस्या अपि धर्म्यवचनादस्वयं क्रियायामभ्युदयविशेषसिद्धिमविरुद्धां मन्यामहे। एवं च सत्येषां दायादीनां धर्म्यनिर्देशात् दायादिभिर्वृत्तिविशेषैस्सन्निहितद्रव्याणां ब्राह्मणादीनां न नियोगतो याजनादिवृत्तिता स्यात्। ब्रह्मचा(रि)भैक्षवत्। अथास्य श्लोकस्यायमन्योऽर्थः। यथा प्रकृतौ ब्राह्मणस्य सत्प्रतिग्रहादयो धर्म्याः एवम यान्यव्यापत्कल्पोपदिष्टानि ब्राह्मणादीनां कर्माण्यभावेकल्पिकानि धर्माण्येव विज्ञेयानि। तथा च सति विहितार्थानुष्ठानस्तुतिरात्मकुटुम्बधारणार्था। आपदि तस्य प्रयोजनातिशयदर्शनात् ॥ ११५ ॥

**विद्या शिल्पं भृतिः सेवा गोरक्ष्यं विपणिः कृषिः ॥**
**धृतिर्भैक्षं कुसीदं च दश जीवनहेतवः ॥ ११६ ॥**

(१) **मेधातिथिः।** सर्वपुरुषाणामापदि वृत्तिरियमनुज्ञायते। तत्र **विद्या** वेदविद्याव्यतिरेकेण वैद्यकतर्कभूतविषासनविद्या सर्वेषां जीवनार्था न दुष्यति। **शिल्पं** व्याख्यातम्। **भृतिः** प्रेष्यकत्वम्। **सेवा** परवृत्तानुवृत्तित्वम्। **धृतिः** संतोषः। दृष्टान्तार्थं चैतत्। अतो यथाविहितवृत्त्यभावेनैते जीवनोपायाः संकीर्यन्ते। पुरुषमात्रविषयत्वात् ॥ ११६ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः।** विद्यादयो दश जीवनहेतवः प्राणधारणहेतवः धर्माधर्मसाधारणाः। विद्या विद्यातिशयस्तेन प्रासादादिना धनलाभः। शिल्पं चित्रादिकौशलम्। भृतिः परप्रेषणं कृत्वा मासादिनियतभृतिः। सेवा चाटुकारेण नियतं धनप्राप्तिः, गोरक्षं पशुपालनं कृत्वा यथोक्तपशुभागग्रहणम्। वाणिज्यं, कृषिः कर्षणम्। धृतिः प्राप्तेनाल्पेनापि संतोषः। भैक्ष्यं याच्ञया लब्धं। कुसीदं वृद्ध्या धान्यादिदानम्। सर्वमेतदापदि यथायोगं वर्णानां, तत्र विप्रस्य 'सेवा श्ववृत्ति'रित्यादिना सेवा निन्दिता ॥ ११६ ॥

(३) **कुल्लूकः। आपत्प्रकरणाज्जीवनहेतव** इति निर्देशात् एषां मध्ये यया वृत्त्या यस्यानापदि न जीवनं तया तस्यापद्यभ्यनुज्ञायते, यथा ब्राह्मणस्य भृतिसेवादि, एवं शिल्पादावपि ज्ञेयम्। विद्या वेदविद्याव्यतिरिक्ता वैद्यतर्कविषापनयनादिविद्या सर्वेषामापदि जीवनार्थं न दुष्यति, शिल्पं गन्धयुक्त्यादिकरणं, भृतिः प्रैष्यभावेन वेतनग्रहणं, सेवा पराज्ञासंपादनं, गोरक्ष्यं पशुपाल्यं, विपणिर्वणिज्या, कृषिः स्वयंकृता, धृतिः संतोषः, तस्मिन्सत्यल्पकेनापि जीव्यते, भैक्ष्यं भिक्षासमूहः कुसीदं वृद्ध्या धनप्रयोगः स्वयं कृतोऽपि इत्येभिर्दशभिरापदि जीवनीयम् ॥ ११६ ॥

(४) **राघवानन्दः।** अनापद्धर्मान् संक्षिप्योक्त्वा आपद्धर्मान्संक्षिपति **विद्येति।** विद्या तर्कनयादि वेदस्यानापद्धर्मत्वात्। शिल्पं चित्रादिकृतिः। भृतिर्वेतनम्। सेवा परचित्ताराधनम्। विपणिर्वाणिज्यम्। धृतिः संतोषः, धनार्थव्याजेनापि धृतिमते साधुरिति कृत्वा धनं प्रयच्छन्तो दृश्यन्ते 'अर्थस्य मूलं निकृतिः क्षमा चे'त्युक्तेः। जीवनहेतवः जीवनप्रयोज्याः, अतः 'सर्वपुरुषाणामापदि वृत्तिरियमनुज्ञायत'इति **मेधातिथिः** ॥ ११६ ॥

(५) **नन्दनः।** अथापद्विषयानर्थलाभानाह **विद्या शिल्पं भृतिः सेवेति।** विद्या नृत्यवादित्रादि। शिल्पं छत्रादिनिर्माणं। भृतिर्भारोद्वहनं द्विजातिविषये। विपणिर्वाणिज्यं गिरिपर्वतप्ररूढफलमूलविक्रयः। कुसीदं वृद्धिप्रयोगः जीवनहेतवः आमादिजीवनमात्रहेतवो नत्वर्थार्जनहेतवः ॥ ११६ ॥

(६) **रामचन्द्रः।** भृतिः भृतकाध्यापनं विपणिः कृषिः धृतिः प्राप्तेनाल्पेन संतोषः ॥ ११६ ॥

(७) **मणिरामः।** धर्माधिकाराद्यस्य विप्रतिषिद्धं तत्तस्यैतस्यामवस्थायामभ्यनुज्ञायते। यथा ब्राह्मणस्यार्थे नाध्यापनमित्येवमादि। पुत्रदात्ययप्राप्तस्य स्थित्यै तथा च कृत्वोक्तं **दश जीवनहेतवः** इति। अपरे तु धृतिर्निर्दिदृक्षया विद्यादीनां निर्देशं मन्यन्ते। यस्मान्न

धृतिमन्तरेण विद्यादयो जीवनहेतवो भवन्ति। धृत्यनुगतास्त्वेते जीवनाय पर्याप्ताः। अतः सर्वत्र धृतिः कर्तव्येति धृत्यर्थोऽयमुपदेशः ॥११६॥

(८) **गोविन्दराजः**। **विद्येति। आपत्प्रकरणाज्जीवनहेतव** इति च निर्देशात् तेषामध्याप्येन यस्यानापदि जीवनं निषिद्धं तेन तस्यापद्यभ्यनुज्ञायते यथा ब्राह्मणस्य भृताध्यापकत्वेन। तदनेनापद्यभ्यनुज्ञायते। एवं शिल्पादिष्वपि विज्ञेयम्। शिल्पं गन्धयुक्त्वादिकर्मकरणं भृतिः प्रेक्षत्वं सेवा चित्रानुवर्तनं गोरक्षा पाशुपाल्यं विपणिर्वणिज्या कृषिः स्वयं कृताभिधृतिः संतोषः तस्मिन् हि सति स्वल्पकेनापि जीव्यते; भैक्ष्यं स्नातकस्यापि, कुसीदं वृद्ध्या धनप्रयोगः स्वयंकृतोऽपि इत्येभिर्दशभिरापदि जीवनम् ॥११६॥

(९) **भारुचिः**। इदानीं यस्य यया वृत्त्या जीवनं निषिद्धं तस्य आपदि तयापि जीवनं भवतीत्याज्ञापयति **विद्येति**। विद्या वेदव्यतिरिक्तवैद्यतर्कविषाऽध्यनयनादि। इयमापदि सर्वेषां जीवनार्हा। शिल्पं सुगंधादिकरणं। भृतिः प्रेष्यभावेन वेतनंग्रहणं। कृषिः स्वयंकृतापि। धृतिः संतोषः। तस्मिन्सति स्वल्पेनापि जीव्यते। भैक्ष्यं भिक्षासमूहः। कुसीदं वृद्ध्या धनप्रयोगः स्वयंकृतोऽपि, जीवनहेतवः आपदीत्यर्थः ॥११६॥

**ब्राह्मणः क्षत्रियो वाऽपि वृद्धिं नैव प्रयोजयेत् ॥**
**कामं तु खलु धर्मार्थं दद्यात्पापीयसेऽल्पिकाम् ॥ ११७ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **धर्मार्थमिति** पूर्वोक्तैवाऽऽपत्तिवृत्तिर्वेदितव्या। **पापीयस** इति वचनाद्धार्मिकादल्पाऽपि न ग्रहीतव्या। यदुक्तं 'अध्यापनतुल्यानि कृषिवाणिज्यकुसीदानि' तदापद्गतेन ॥११७॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। कुसीदमिदानीं ब्राह्मणक्षत्रिययोरकर्तव्यतया दर्शयति **ब्राह्मण** इति। अत्यन्तापदि वृद्धिदा(द्ध्यादिध)नमपि पापिष्ठेषु सूतादिष्वत्यन्तापकृष्टेषु कर्तव्यम्। तदापि नातिबहु किंत्वल्पमेव, तच्च धर्मार्थं पञ्चमहायज्ञादिधर्मोद्देशेनेत्यर्थः ॥११७॥

(३) **कुल्लूकः**। ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वृद्ध्यादिधनमापद्यपि न प्रयुञ्जीत किन्तु निकृष्टकर्मणा धर्मार्थमनुकल्पितया वृत्त्या प्रयुञ्जीत ॥११७॥

(४) **राघवानन्दः**। विप्रक्षत्रिययोरनापदि कुसीदाभावमनुवदन्नापदि तत्र लभ्याल्पतामाह **ब्राह्मण** इति। धर्माद्यर्थं पापीयसे पापकर्मणे स्वस्मादधमवर्णाय वा। अल्पिकां अल्पपरिमाणां अशीतिभागाम् वृद्धिम् ॥११७॥

(५) **नन्दनः**। कुसीदस्यात्रापदि जीवनमात्रत्वमुक्तं, वित्तार्थस्तु कुसीदो न ब्राह्मणक्षत्रिययोरापद्ययुक्त इत्याह **ब्राह्मणः क्षत्रियो वापीति**। पापीयसः शूद्रादेः अल्पिकामल्पवृद्धियुक्ताम् ॥११७॥

(६) **रामचन्द्रः**। वृद्धिं वृद्धिजीविकां। न प्रयोजयेत् धर्मार्थं पापीयसे निकृष्टकर्मणे कामं भैक्षिकं खलु दद्यात् अल्पकं स्वल्पकलया ॥११७॥

(७) **मणिरामः**। वृद्धिं वृद्ध्या धनं आपद्यपि न प्रयुंजीत। किंतु पापीयसेऽपि धर्मार्थं अल्पिकां अल्पवृद्ध्या दद्यात् ॥११७॥

(४) **राघवानन्दः**। अनिन्दितो (लोकैरिति शेषः) ।।१२८।।

(५) **नन्दनः**। सद्वृत्तानुष्ठानस्य फलमाह **यथा यथा हि सद्वृत्तमिति** ।।१२८।।

(६) **रामचन्द्रः**। तथा तथा इमं लोकं अमुं परलोकं अनिन्दितं प्राप्नोति ।।१२८।।

(८) **गोविन्दराजः**। **यथेति**। यस्मादनिन्दकः शूद्रो यथावद् द्विजात्याचारमनिषिद्ध-मनुतिष्ठति तथा तथा अगर्हितः सन्निह लोके कीर्तिं परलोके स्वर्गं प्राप्नोति ।।१२८।।

**शक्तेनापि हि शूद्रेण न कार्यो धनसंचयः ।।**
**शूद्रो हि धनमासाद्य ब्राह्मणानेव बाधते ।। १२९ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। **शक्तेनापि** कृष्यादिकर्मणा **धनसंचयः शूद्रेण न** कर्तव्यः। तत्र हेतुस्वरूपमर्थवादमाह **शूद्रो धनं** बह्वासाद्य स्वीकृत्य **ब्राह्मणानेव बाधते**। "का पुनर्ब्राह्मणानां बाधा ?"। महाधनत्वादत्यर्थं ब्राह्मणान्प्रतिग्राहयेत्। शूद्रप्रतिग्रहश्च तेषां प्रतिषिद्धः। तत्र निमित्तभावमापद्यमानो दुष्येत्। एतच्च न विहितं कुर्वतः कर्मदोषाशङ्का। तस्माद् ब्राह्मणान्न परिचरेदित्येषैव 'बाधा' ।। १२९।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। शक्तेनार्जनसमर्थेनापि ।।१२९।।

(३) **कुल्लूकः**। धनार्जनसमर्थेनापि शूद्रेण पोष्यवर्गसंवर्धनपञ्चयज्ञाद्युचितादधिकबहु-धनसंचयो न कर्तव्यः। यस्माच्छूद्रो धनं प्राप्य शास्त्रानभिज्ञत्वेन धनमदात् शुश्रूषायाश्चा-करणात् ब्राह्मणानेव पीडयतीत्युक्तस्यानुवादः ।।१२९।।

(४) **राघवानन्दः**। शक्तेनापि तेन धनोद्यमो न कार्यः। तत्र हेतुः **शूद्रो होति**। बाधते धनगर्वितः ।।१२९।।

(६) **रामचन्द्रः**। शक्तेन समर्थेन ।।१२९।।

(८) **गोविन्दराजः**। **शक्तेनेति**। धनार्जनशक्तेनापि हि शूद्रेण न धनसंचयः कर्तव्यः। अपि त्वाश्रितब्राह्मणाय यदि नियमतो धनं देयमित्येवंपरमेतत्। तथा च **गौतमः** 'यं चार्थमाश्रियेत भर्तव्यस्तेन क्षीणोऽपि तेन चोत्तरस्तदर्थोऽस्य निचयः स्या'दिति। अत्रार्थवादः शूद्रोऽर्हति, तस्माच्छूद्रो धनं प्राप्य शास्त्रानभिज्ञत्वेन धनोत्सेका शूश्रूषा ।।१२९।।

(९) **भारुचिः**। महाफलैः शिल्पादिभिः वृत्त्यन्तरैः पर्याप्तधनः शूद्रो विशेषतो दानेन गुणवद्ब्राह्मणेभ्यो वृत्तिः शूद्रप्रतिग्रहोपच्छन्दनेन महतो ब्राह्मणान् स्वधर्मात् प्रच्यावयेत्। अयं तावन्नार्थः—नहि शास्त्रोपदिष्टं कुर्वतः सत्यपि परोपघाते कश्चिद्दोषोऽस्ति। यदि स्यात् नवश्राद्धादिष्वपि ददतो दोषः स्यात्। असावपि परस्परोपघातं करोति। योऽर्थमानाभ्यां गुणवतो ब्राह्मणान् प्रतिपूजयति तस्मान्नायमर्थः। धनोत्सेकाच्छूद्रो ब्राह्मणबाधने वर्तेतेत्ययमपि न शक्योऽभ्युपगन्तुम्। सर्वेषामेव गृह्येत ब्राह्मणादिना तुल्यं। केन कः शूद्रे विशेषः। येन तस्यैवमर्थसञ्चयं निषिध्येत। अयं तर्ह्यन्योऽर्थः। न केवलं नित्यदानं शूद्रस्याभ्यनुज्ञायते। किं तर्हि? अभ्युदयप्रयोजनमप्यनेन दानमनुष्ठेयम्। एवं च न कार्यो धनसञ्चय इत्यय-मेवमर्थः प्रतिषेधः'। अथवोक्तम्—'प्रकल्प्यास्य तैर्वृत्तिः सुकुटुम्बाद्यथार्हतः।' इत्येवमादि।

(१) **मेधातिथिः**। **विजय**शब्देन विजयफलं युक्तं स्वधर्मतया विधीयते। तथा **चाहवे न स्यात्पराङ्मुखः**। भये उपस्थिते पराङ्मुखो युद्धे न स्यादित्यर्थः। अनेन प्रकारेण प्रजा **रक्षित्वा वैश्याद्बलि**र्हारयितव्यः। वैश्या महाधना भवन्ति। ततस्तथाहरणे नियुक्ताः कृतापराधा न हन्यन्ते ॥ ११९ ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। विजयो युद्धे परहिंसा स्वधर्मोऽसाधारणो धर्महेतुः, अतो न तत्र दोषः। धर्म्यमनापदि वक्ष्यमाणम् ॥ ११९ ॥

(३) **कुल्लूकः**। कस्मात् पुनरापद्यपि राज्ञोऽपि रक्षणमुच्यते ? यस्मात् **स्वधर्म इति**। राज्ञः शत्रुविजयः स्वधर्मो विजयफलं युद्धमित्यर्थः, प्रजारक्षणप्रयुक्तस्य यदि कुतश्चिद्भयं स्यात्तदा स युद्धपराङ्मुखो न भवेत्। एवं च शस्त्रेण वैश्यान्दस्युभ्यो रक्षित्वा तेभ्यो धर्मादनपेतमाप्तपुरुषैर्बलिमाहारयेत् ॥ ११९ ॥

(४) **राघवानन्दः**। वैश्येतराणां भागमुक्त्वा, राज्ञे वैश्यविषयकतद्विशेषमाह **स्वधर्म** इति सार्धेन। विजयान्वेषी न पराङ्मुखः स्यात् ॥ ११९ ॥

(५) **नन्दनः**। क्षत्रियस्य मुख्या वृत्तिरेषेति श्लोकाभ्यामाह **स्वधर्मो विजयस्तस्येति**। तस्य स्वधर्मो विजयः तस्मादाहवे पराङ्मुखो न स्यात् ॥ ११९ ॥

(६) **रामचन्द्रः**। धर्म्यं धर्महिं बलिं आहरेत् ॥ ११९ ॥

(८) **गोविन्दराजः**। कस्मात् पुनरापद्यपि रक्षणमुच्यते? यस्मात् **स्वधर्म** इति। राज्ञः शत्रुपराजयः स्वधर्मः। प्रजारक्षणप्रवृत्तस्य च यदि कुतश्चिद् भयं स्यात् तदा न युद्धपराङ्मुखः स्यादेवं शस्त्रेण वैश्यान् क्षत्रियो दस्युभ्यो रक्षित्वा तेभ्यो धर्मादनपेतं आप्तपुरुषैर्बलिमाहरेत् ॥ ११९ ॥

(९) **भारुचिः**। क्षत्रियस्य। विजयः विजयमूलं युद्धं स्वधर्मः। यदि प्रजारक्षणे कुतश्चिद्भयं स्यात्तदा युद्धे पराङ्मुखो न भवेत्। एवंप्रकारेण वैश्यान् दुष्टेभ्यो रक्षित्वा वैश्यात् धर्म्यं बलिं आहारयेत् गृह्णीयात् ॥ ११९ ॥

**धान्येऽष्टमं विशां शुल्कं विंशं कार्षापणावरम् ॥**
**कर्मोपकरणाः शूद्राः कारवः शिल्पिनस्तथा ॥ १२० ॥**

(१) **मेधातिथिः**। धान्यव्यवहारिणां लाभादष्टमो भागो ग्रहीतव्यः। **विट्**शब्दः प्रजावचनः। हिरण्यव्यवहारिणां विंशतितमः। शूद्राः **कर्मोपकरणाः** कर्म उपकरणमुपकारो येषाम्। न ते किंचिद्दापयितव्याः। एवं **शिल्पिनः कारव**स्तदेवमुक्तं प्राक् 'शिल्पिनो मासि मासि' इत्यादि। अधिकभागग्रहणार्थोऽयं श्लोकः ॥ १२० ॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। विशां वैश्यानामष्टमं, शूद्राणां तु चतुर्थमेव शुल्कं भागम्। **विंशत्कार्षापणमिति**। धान्यादिषु विंशद्विंशतिकार्षापणमूल्यं तादृशालाभे कार्षापण एको राज्ञा ग्राह्य इत्यवरः पक्षः; संभवे त्वधिकमपि ग्राह्यमित्यर्थः। कर्मोपकरणाः कर्मभिर्विश्वमुपकुर्वन्तः तन्तुवायादयः शूद्राः कारवो वर्णबाह्या नटचित्रकाराद्याः शिल्पिनश्च रथकाराद्यास्तेऽपि कर्म

कृत्वा भृतित्वेऽपि विंशतिकार्षापणालाभे कार्षापणावरं शुल्कं दद्युरिति शेषः। त्रिंशत्कार्षापणावरमिति क्वचित्पाठः॥ १२०॥

(३) **कुल्लूकः**। कोऽसौ बलिस्तमाह **धान्य इति**। धान्ये विंश उपचये वैश्यानामष्टमंभागं शुल्कमाहारयेत्। धान्यानां द्वादशोऽपि भाग उक्तः, आपद्ययमष्टम उच्यते, अत्यन्तापदि प्रागुक्तश्चतुर्थो वेदितव्यः। तत्रापि विंशं ग्राह्यं; तथा हिरण्यादीनां कार्षापणान्तानां विंशतितमं भागं शुल्कं गृह्णीयात्तत्रापि पञ्चाशद्भाग आदेयो राज्ञा। पशुहिरण्ययोरित्यनापदि पञ्चाशद्भाग उक्तः। आपद्ययं विंश उच्यते। तथा शूद्राः कारवः सूपकारादयः शिल्पिनः तक्षादयः कर्मणैवोपकुर्वन्ति, नतु तेभ्य आपद्यपि करो ग्राह्यः॥ १२०॥

(४) **राघवानन्दः**। धर्म्यं बलिमाह **धान्य इति**। अनापदि विशां धान्यानां द्वादशभाग उक्तः; हिरण्यादिकार्षापणानां तु पञ्चाशद्भागः, अत्र तु तेषां संकोच उक्तः, 'धान्यानामष्टमो भागः षष्ठो द्वादश एव वे'त्युक्तत्वात्। तत्र विंशं प्रति षष्ठांशग्रहणे सपादाढकत्रयं द्वादशांशग्रहणे किंचिदधिकसार्धाढकं चतुर्थांशग्रहणे त्वाढकपञ्चकम्। एवं च सुवर्णादिषु विंशं प्रति तोलकमन्यत्रैवम्। परिचारककारुशिल्पिनां तु विशेषमाह **कर्मेति**। कर्मोपकरणाः कर्मैव उपकरणकरो येषां ते तथा तेषामपि विंशं प्रत्येकैः स्वकर्मणि प्रयोक्तव्योऽनापद्यपि ते करदा इत्यर्थः॥ १२०॥

(५) **नन्दनः**। विशां कार्षापणावरं यः शुल्को धान्यव्यतिरिक्तेषु विंशो भागः पूर्वमुक्तः स पणः कार्षापणावरः कार्षापणान्यूनतरश्चेन्न ग्राह्यः। कर्मोपकरणाः कर्मोपकारिणः। करार्थं कर्मैव शूद्रादीन्कारयेन्नार्थं दापयेदित्यर्थः॥ १२०॥

(६) **रामचन्द्रः**। धान्ये विशां अष्टमं शुल्कं अष्टमं भागं विंशं अपरं वा कर्मोपकरणाः कर्म कर्तुं शूद्रा योग्याः॥ १२०॥

(८) **गोविन्दराजः**। कोऽसौ धर्म इत्यत आह **धान्येऽष्टममिति**। कृषिर्जीविनां वैश्यानां धान्यविषये उपचयतोऽष्टमं भागं शुल्कमाहारयेद् हिरण्यादीनां कार्षापणान्तानां विंशतितमं चतुर्थतमम्॥ १२०॥

(९) **भारुचिः**। प्रजासंरक्षणं कुर्वन्। एवं च सति सोऽयमुच्यते– ...सर्वधर्म .... भागो ग्रहीतव्यः। जानपदात् स्वबलापेक्षया हिरण्यव्यवहारिणां च लाभाच्छुल्कं विंशो भागः। सोऽयमनुवादो विज्ञेयः। पूर्वोक्तस्य कर्मोपकरणाः शूद्राः .....। तथा च कारवः शिल्पिनश्च। कारुशिल्पव्यपदेशश्च गोबलीवर्दन्यायेन। शूद्रवृत्तिं कांक्षन्नापदीति वर्तते। क्षत्रमाराधयेद्यदि क्षत्रमाराधयितुमिच्छेत्। तदभावे बलिमाह **धान्ये इति**। धान्ये उपचीयमाने विशां वैश्यानां अष्टतमं भागं शुल्कं गृह्णीयात्। अयं च आपदि। अनापदि द्वादशोऽपि भाग उक्तः। अत्यंतापदि धान्यचतुर्थभागः प्रागुक्तो ग्राह्यः। तथा विंशं कार्षापणाऽवरं। कार्षापणादिप्रमाणद्रव्यं पशोर्वा वृद्धौ आपदि विंशतितमं भागं वैश्यात् बलिं आहरेत्। अनापदि पंचाशद्भागस्योक्तत्वात्। तथा शूद्राः। कारवः सूपकारादयः। शिल्पिनः तक्षादयश्च एते कर्मोपकरणाः। एभ्यः कर्माण्येव कारयेत्, नतु बलिं गृह्णीयात्॥ १२०॥

**शूद्रस्तु वृत्तिमाकांक्षन्क्षत्रमाराधयेदिति ।।**
**धनिनं वाऽप्युपाराध्य वैश्यं शूद्रो जिजीविषेत् ।। १२१ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । **शूद्रस्तु वृत्तिमाकांक्षेत्तदा क्षत्रमाराधयेत्** । वृत्तिग्रहणाज्जीविकार्थमेव क्षत्राराधनम्, न धर्मार्थम् । ब्राह्मणाराधनं तूभयार्थमपीत्युक्तं भवति । एवं **धनिनं** वैश्यमाराध्य जीवेत् ।। १२१ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । यदि वृत्तिमाकांक्षन्भवेच्छूद्रस्तदा क्षत्रमाराधयेदित्यन्वयः ।। १२१ ।।

(३) **कुल्लूकः** । शूद्रो ब्राह्मणशुश्रूषयाऽजीवन्यदि वृत्तिमाकांक्षेत्तदा क्षत्रियं परिचर्य तदभावे धनिनं वैश्यं परिचर्य जीवितुमिच्छेत् । द्विजातिशुश्रूषणासामर्थ्ये तु प्रागुक्तानि कर्माणि कुर्यात् ।। १२१ ।।

(४) **राघवानन्दः** । ब्राह्मणशुश्रूषोः शूद्रस्य धनाकांक्षायां तदुपायमाह **शूद्रस्त्विति** । यदि वा धनिनं वैश्यमित्यन्वयः ।। १२१ ।।

(५) **नन्दनः** । अथ शूद्रस्यापदि वृत्तिमाह **शूद्रस्तु वृत्तिमाकांक्षेदिति** । क्षत्रमाराधयेदपि क्षत्रमप्याराधयेत् ।। १२१ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । शूद्रस्तु वृत्तिमाकांक्षन्नापदि क्षत्रमाराधयेत् । धनिनं वा वैश्यं उपाराध्य जिजीविषेत् ।। १२१ ।।

(७) **मणिरामः** । शूद्रो ब्राह्मणसेवया अजीवन् यदि वृत्तिं आकांक्षेत् तदा क्षत्रं आराधयेत्, तदभावे धनिनं वैश्यं वा उपाराध्य परिचर्य जिजीविषेत् जीवितुमिच्छेत् । द्विजातिशूश्रूषणाऽसामर्थ्ये च प्रागुक्तानि कारुशिल्पादीनि कर्माणि कुर्यात् ।। १२१ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **शूद्रस्येति** । शूद्रो ब्राह्मणशूश्रूषया अजीवन् यदि वृत्त्याकाङ्क्षी स्यात् तदा क्षत्रियं परिचरेत्, तदभावे धनवन्तं वैश्यं परिचर्य जीवितुमिच्छेत्, तदभावेऽत्यन्तापद्युक्तानि कारुकर्माणि कुर्यात् । एवं च क्षत्रियवैश्याराधनं शूद्रस्य वृत्त्यर्थमेव धर्मार्थं च ।। १२१ ।।

(९) **भारुचिः** । एवं च सति क्षत्रियवैश्याराधनं वृत्तिरेव केवला शूद्रस्य ।। १२१ ।।

**स्वर्गार्थमुभयार्थं वा विप्रानाराधयेत्तु सः ।।**
**जातब्राह्मणशब्दस्य सा ह्यस्य कृतकृत्यता ।।१२२।।**

(१) **मेधातिथिः** । **आराधये**दित्युक्तं भवति । तदाह **जातब्राह्मणशब्दस्य** 'ब्राह्मणोऽयमिति' यदाऽस्य एष शब्दो भवति, तदासौ **कृतकृत्यः** कृतार्थो वेदितव्यः । अथवा जातब्राह्मणव्यपदेशस्येति व्याख्येयम् । ब्राह्मणाश्रितोऽयमिति यदाऽस्य व्यपदेशो जायते ।। १२२ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । [ उभयार्थं वृत्त्यर्थं स्वर्गार्थं च । विप्रानेवाभिवाचयेदिति

क्वचित्पाठः । ] अभिवाचनं सेवा । जातब्राह्मणशब्दस्य ब्राह्मणदासोऽयमिति जातप्रसिद्धेः । सा ब्राह्मणदासत्वेन प्रसिद्धिः ।। १२२ ।।

(३) **कुल्लूकः** । स्वर्गप्राप्त्यर्थं स्वर्गस्ववृत्तिलिप्सार्थं वा ब्राह्मणानेव शूद्रः परिचरेत् । तस्माज्जातब्राह्मणाश्रितोऽयमिति शब्दो यस्य शाकपार्थिवादित्वात्समासः । साऽस्य शूद्रस्य कृतकृत्यता तद्व्यपदेशतयाऽसौ कृतकृत्यो भवति ।। १२२ ।।

(४) **राघवानन्दः** । तस्य यद्यनापदि चेद्द्विजशुश्रूषणमेवोभयत्र सुखदमित्याह **स्वर्गार्थ-**मिति । स शूद्रः । उभयार्थं दृष्टार्थं जातब्राह्मणशब्दस्य जातो ब्राह्मणाश्रितोऽयमिति शब्दो यस्य स तथा तस्य शाकपार्थिवादित्वात्समासः । अतः सा शुश्रूषा तादृशी शब्दप्रवृत्तिर्वा कृतकृत्यता कर्तव्यपर्यन्तता 'दास्यायैव हि सृष्टोऽसौ ब्राह्मणस्ये'त्युक्तेः ।। १२२ ।।

(५) **नन्दनः** । उभयार्थमैहिकपारत्रिकार्थमाराधयेत् । जातब्राह्मणशब्दस्य दास्यादिति शेषः । ब्राह्मणाराधनेन ब्राह्मणवद्भवतीत्यर्थः ।। १२२ ।।

(६) **रामचन्द्रः** । उभयार्थं स्वर्गार्थं भूमौ सुखार्थं च शूद्रो जातब्राह्मणशब्दस्य जातब्राह्मणव्यपदेशस्येत्यर्थः । ब्राह्मणाश्रितोऽयमिति यदस्य व्यपदेशो जायते ब्राह्मणस्य दासोऽयं सा सेवा अस्य शूद्रस्य कृतकृत्यता ।। १२२ ।।

(७) **मणिरामः** । सा हि अस्य शूद्रस्य .... कृतकृत्यता ।। १२२ ।।

(८) **गोविन्दराजः** । **स्वर्गार्थमिति** । वृत्तिप्राप्त्यर्थमथवा स्वर्गवृत्तिलिप्सया इत्येवमुभयार्थं ब्राह्मणानेव शूद्रः परिचरेत् । यस्माद् ब्राह्मणाश्रितोऽयमित्येवमुत्पन्नव्यपदेशस्य जात्युपदेशता तयासौ कृतकृत्यो भवति ।। १२२ ।।

(९) **भारुचिः** । शूद्रः येनास्येदं ब्राह्मणाराधनं वृत्त्यर्थमपि सद्धर्माय । एवं च सत्येषा स्तुतिरस्योपपन्ना भवति । यतश्चैतदेवमतः विप्रसेवैव शूद्रस्य विशिष्टं कर्म कीर्त्यते ।।१२२।।

**विप्रसेवैव शूद्रस्य विशिष्टं कर्म कीर्त्यते ।।**
**यदतोऽन्यद्धि कुरुते तद्भवत्यस्य निष्फलम् ।।१२३।।**

(१) **मेधातिथिः** । ब्राह्मणशुश्रूषैव मुख्यः शूद्रस्य धर्मः । **ततो यदन्यद्व्रतोपवासादि कुरुते तदस्य निष्फलम्** । न तु दानपाकयज्ञादीनामस्य प्रतिषेधः, प्रत्यक्षविधानात् । इतर-प्रतिषेधो ब्राह्मणशुश्रूषास्तुत्यर्थः ।। १२३ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । यदतोऽन्यदेतद्विना कुरुते ।। १२३ ।।

(३) **कुल्लूकः** । यत एवमतः **विप्रेति** । ब्राह्मणपरिचर्यैव शूद्रस्य कर्मान्तरेभ्यः प्रकृष्टं कर्मशास्त्रेऽभिधीयते यस्मादेतद्व्यतिरिक्तं यदसौ कर्म कुरुते तदस्य निष्फलं भवतीति पूर्वस्तुत्यर्थं नत्वन्यनिवृत्तये, पाकयज्ञादीनामपि तस्य विहितत्वात् ।। १२३ ।।

(४) **राघवानन्दः** । तामेव द्रढयन्नन्यदस्य निषेधति **विप्रसेवेति** । निष्फलं दृष्टधनादि-संपत्तिरपि न परलोकफलहेतुः ।। १२३ ।।

(५) **नन्दनः**। एतदेव प्रपञ्चयति **विप्रसेवैव शूद्रस्येति** ।। १२३ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। यतः सैवास्य कृतकृत्यता अत आह **विप्रेति** ।। १२३ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। यत एवमतः **विप्रसेवेति**। ब्राह्मणशुश्रूषैव शूद्रस्य विशिष्टं कर्म कर्मान्तरेभ्यः शास्त्र उच्यते। यस्माद् एतद्व्यतिरिक्तं यदसौ कर्म कुरुते तदस्य निष्फलं भवतीति पूर्वार्थवादो नत्वन्यनिवृत्त्यर्थः, पाकयज्ञादीनां विहितत्वात् ।। १२३ ।।

(९) **भारुचिः**। क्षत्रियवैश्याराधनम् अथवा यदतोऽन्यत् प्रकुरुते पाकयज्ञादि। **तद्भूयस्त्यस्य निष्फलमिति**। एवं च सति (इयं) विहितकर्मनिन्दा विप्रसेवास्तुत्यर्थम् उपदेशसामर्थ्याद्धि जायते ।। १२३ ।।

**प्रकल्प्य तस्य तैर्वृत्तिः स्वकुटुंबाद्यथार्हतः ।।**
**शक्तिं चावेक्ष्य दाक्ष्यं च भृत्यानां च परिग्रहम् ।। १२४ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। द्विजातीनामयं धर्मः। **तस्य वृत्तिः** कल्पनीया शुश्रूषमाणस्य। **स्वकुटुंबादिति**। पुत्रवदसौ पालनीयः। आत्मीयां **शक्तिमवेक्ष्य**। **दाक्ष्यं च** तस्य कार्येषु योगम्। **भृत्यानां** च पुत्रदाराणां तदीयानां **परिग्रहं** कियंतोऽस्य भर्तव्या इत्येतदवेक्ष्य सर्वेषां भरणं कर्तव्यम् ।। १२४ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। तैर्द्रव्यैः स्वकुटुम्बार्थधनात्। शक्तिं कर्मसु सामर्थ्यम्। दाक्ष्यमुत्साहम्। भृत्यानां भरणीयानां पुत्रादीनां परिग्रहमियतास्येति विशिष्टसंख्याभरणीयत्वम् ।। १२४ ।।

(३) **कुल्लूकः**। तस्य परिचारकशूद्रस्य परिचर्यासामर्थ्यं कर्मोत्साहं पुत्रदारादिभर्तव्यपरिमाणं चावेक्ष्य तैर्ब्राह्मणैः स्वगृहादनुरूपा जीविका कल्पनीया ।।१२४।।

(४) **राघवानन्दः**। तादृशस्य शूद्रस्य विप्रदत्तदेहभरणमनुजानंस्तं नियमयति **प्रकल्प्येति** द्वाभ्याम्। तैर्विप्रैः। वृत्तिर्वस्त्राच्छादनादिका। स्वकुटुम्बात् स्वगृहात्। यथार्हतः यद्यदर्हति न तदतिक्रमतः। शक्तिं परिचर्यासामर्थ्यम्। दाक्ष्यं कर्मसामर्थ्यम्। परिग्रहं पुत्रादिसंख्याम् ।। १२४ ।।

(५) **नन्दनः**। तैर्ब्राह्मणादिभिः भृत्यानां भर्तव्यानाम् ।। १२४ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। तैः द्विजैः स्वकुटुम्बात्तस्य यथार्हतो वृत्तिः प्रकल्प्या ।। १२४ ।।

(७) **मणिरामः**। सत्यामपि धर्मार्थायां विप्रसेवायां प्रकल्प्या तस्य **तैर्वृत्तिः**। अर्थाच्चैतदापद्यते। वृत्तितोऽप्याश्रितस्य किं पुनरावृत्ते शूद्रस्य पुत्रवच्चास्य शुश्रूषा न वृत्तिपरिक्रयेण येनासौ धर्मोपनतः एवंविधस्यापि च शूद्रस्य ।। १२४ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। **प्रकल्प्येति**। तस्य शुश्रूषोः शूद्रस्य शुश्रूषासामर्थ्यमुत्साहं पुत्रदारादिभर्तव्यपरिमाणतामवेक्ष्य तैर्ब्राह्मणैः स्वगृहादनुरूपा जीविका कल्पनीया ।। १२४ ।।

(९) **भारुचिः**। तस्य परिचारकशूद्रस्य। शक्तिं परिचर्यासामर्थ्यं। दाक्ष्यं कर्मोत्साहं

भृत्यानां च परिग्रहं पुत्रदारादि भर्तव्यपरिमाणं च वीक्ष्य दृष्ट्वा तैः विप्रैः स्वकुटुंबात् स्वगृहात्। यथार्हतः शूद्रकुटुंबस्य अनुरूपा वृत्तिः जीविका। प्रकल्प्या कल्पनीया इत्यर्थः ।। १२४ ।।

**उच्छिष्टमन्नं दातव्यं जीर्णानि वसनानि च ।।**
**पुलाकाश्चैव धान्यानां जीर्णाश्चैव परिच्छदाः ।। १२५ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। उच्छिष्टशब्दो व्याख्यातार्थः। अतिथ्यादिभुक्तशिष्टमाश्रिताय शूद्राय दातव्यम्। एवं वासांसि **जीर्णानि** धौतानि शुक्लानि। **पुलाका** असारधान्यानि। एवं **परिच्छदाः** शय्यासनादयः ।। १२५ ।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। उच्छिष्टं पाकभाण्डावशिष्टं नतु भुक्तोच्छिष्टं निषिद्धत्वात्। पुलाकाः तुच्छधान्यासारभूतानि धान्यानि विक्रीय जीवितुं जीर्णाः परिच्छदाः ।। १२५ ।।

(३) **कुल्लूकः**। तस्मै प्रकृताश्रितशूद्राय भुक्तावशिष्टान्नं ब्राह्मणैर्देयं। एवं च न शूद्राय गतिं दद्यान्नोच्छिष्टमित्यनाश्रितशूद्रविषयमवतिष्ठते। तथा जीर्णवस्त्रासारधान्यजीर्ण-शय्यापरिच्छदा अस्मै देयाः ।। १२५ ।।

(४) **राघवानन्दः**। किंच **उच्छिष्टमिति**। जीर्णानि स्वभोगेन। पुलाकाः असार-धान्यानि। परिच्छदाः शय्यासनादयोऽपि जीर्णाः 'न शूद्राय मतिं दद्यादि'त्यादिकं त्वनाश्रितशूद्रविषयम् ।। १२५ ।।

(५) **नन्दनः**। 'न शूद्राय मतिं दद्यान्नोच्छिष्ट'मिति यदुक्तं तस्यापद्विषये प्रतिप्रसवो यदुच्छिष्टमन्नं दातव्यमिति। पुलाकास्तुच्छधान्यानि। परिच्छदा आसनादयः ।। १२५ ।।

(६) **रामचन्द्रः**। धान्यानां पुलाकाः असारधान्यानि चूर्णानि ।। १२५ ।।

(७) **मणिरामः**। पुलाकाः असारधान्यं परिच्छदः जीर्णवस्त्रपरिच्छदः। तथा च 'न शूद्राय मतिं दद्यान्नोच्छिष्ट' (४।८०) मिति निषेधोऽनाश्रयशूद्रविषयो ज्ञातव्यः ।। १२५ ।।

(८) **गोविन्दराजः**। किंच **उच्छिष्टमिति**। अस्य च प्रकृतस्याश्रितस्य शूद्रस्य पात्रस्थं भुक्तावशिष्टं ब्राह्मणेन देयम्। एवं च 'न शूद्राय मतिं दद्यान्नोच्छिष्ट'मिति अनाश्रितशूद्र-विषयमिति व्याख्यातम्। तथा जीर्णवस्त्रासारधान्यजीर्णशय्यादीन्यस्य देयानि ।। १२५ ।।

(९) **भारुचिः**। प्रतिषिद्धार्थस्य प्रतिप्रसवोऽयम्। यदुक्तं–'न शूद्राय मतिं दद्यान्नोच्छिष्टं' एवं च सत्यनाश्रितशूद्रविष(योऽयं) प्रतिषेधो द्रष्टव्यः। ब्राह्मणाश्रितशूद्रविषयोऽयं प्रतिषेधो द्रष्टव्यः। ब्राह्मणाश्रितशूद्रविषयोऽस्त्वयं प्रतिप्रसवः प्रकरणसामर्थ्यात् जीर्णमिति। ब्राह्मण-परिभुक्तानि गृह्यन्ते। आसनं शयनास्तरणोपधानादयः, एवंविधेऽपि च 'न शूद्रे पातकं किञ्चिदि'ति सामर्थ्यान्न ब्रह्महत्यादि यथासम्भवं प्रतिषिध्यते। किं तर्हि ? लशुनादिभक्षजाः। येन तदभावलक्षणं द्विजातिधर्मः, तथा चोक्तम् (५।२६) 'एतदुक्तं द्विजातीनां भक्ष्या-भक्ष्यमशेषतः' ।। १२५ ।।

**न शूद्रे पातकं किंचिन्न च संस्कारमर्हति ।।**
**नास्याधिकारो धर्मेऽस्ति न धर्मात्प्रतिषेधनम् ।। १२६ ।।**

(१) **मेधातिथिः** । सर्वोऽयमनुवादश्लोकः । यदस्याहत्यश्रृङ्गग्राहिकया न प्रतिषिद्धं, यथा हिंसास्तेयाद्यनादृतवर्णविशेषं सामान्यशास्त्रप्रतिषिद्धं, न तद्व्यतिक्रमादस्य पापमुत्पद्यते । श्रुतमेवास्य शब्देन यथा हिंसास्तेयादिस्तत्रास्य भवत्येव दोषः । **न च संस्कारमुपनयन-**लक्षणमर्हति । तदुक्तं 'त्रयो वर्णा द्विजातय" इति । एवं **नास्याधिकारो धर्मेऽस्ति** स्नानोपवासदेवतार्चनादौ नास्य नित्योऽधिकारोऽस्ति । अकरणे न प्रत्यवैति ।

**न धर्मात्प्रतिषेधनम्** । येषु स्नानोपवासव्रतादिषु नित्याधिकारो नास्त्यकरणे प्रत्यवाया-भावोऽथ निषेधो नास्ति तादृशेभ्यो धर्मेभ्यो न प्रतिषेधः । न चेदृशादस्य प्रतिषेधः । अतः शिष्टाप्रतिषिद्धत्वादभ्युदयकामस्य तदनुष्ठानं युज्यते । एवं लशुनादिभक्षणनिवृत्तिरप्यभ्युदया-यास्य वेदितव्या । सामान्यशास्त्रे विहितं 'निवृत्तिस्तु महाफलेति' । अतो न धर्मात्प्रति-षेधनमिति यत्नारम्भः ।।१२६।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः** । पञ्चयज्ञादिकरणरूपाद्धर्मात्प्रतिषेधनम् ।।१२६।।

(३) **कुल्लूकः** । लशुनादिभक्षणेन शूद्रे न किंचित्पातकं भवति, नतु ब्रह्मवधादावपि 'अहिंसा सत्य'मित्यादेश्चातुर्वर्ण्यसाधारणत्वेन विहितत्वात् । नचाप्युपनयनादिसंस्कारमर्हति, नास्याग्निहोत्रादिधर्मेऽधिकारोऽस्ति अविहितत्वात् । नच शूद्रविहितात्पाकयज्ञादिधर्मादस्य निषेधः । एवं चास्य सर्वस्य सिद्धार्थत्वादयं श्लोक उत्तरार्धोऽनुवादः ।।१२६।।

(४) **राघवानन्दः** । शूद्रस्य विप्रसेवेति पुनःपुनर्द्रढयन्प्राप्तमर्थवादतयाऽनुवदति **नेति** चतुर्भिः । पातकं सूनादिकृतं नतु विप्रवधादिकृतं 'अहिंसा सत्यमस्तेय'मित्यादिचातुर्वर्ण्य-साधारणस्योक्तत्वात् । न धर्मात्प्रञ्चयज्ञादेः ।।१२६।।

(५) **नन्दनः** । पातकं विहितकर्माननुष्ठानप्राप्तः प्रत्यवायः शूद्रे नास्ति तस्याऽविहित-धर्मत्वात् । संस्कारंनिषेकादिकं श्रौते धर्मेऽधिकारो नास्ति धर्मात्पाकयज्ञादेः ।।१२६।।

(६) **रामचन्द्रः** । शूद्रेऽभक्ष्यभक्षणे कृते किंचित्पातकं न ।।१२६।।

(८) **गोविन्दराजः** । **न शूद्र इति** । न शूद्रे पातकं किञ्चिद् भवति लशुनाद्यभक्षण-भक्षणेनैतदुक्तं द्विजातीनां भक्षाभक्षमित्युक्त्वान्न ब्राह्मणादिभिः अहिंसा सत्यमस्तेयमित्यादि सर्वविषयत्वान्न चोदितत्वान्न चोपनयनाख्यं संस्कारमसावर्हति 'गर्भाष्टम' इत्यादि कालत्रैवर्णिक-कृतस्य चोदितत्वान्न चास्याग्निहोत्रादौ श्रौते धर्मेऽधिकारेऽन्यविवाहत्वं, न च स्मार्त-धर्माञ्छूद्रकर्तृकत्वादस्य निवारणमस्ति विहितत्वात् तथा चत्वारः न चेच्छूद्रः पततीति निश्चयो न चैव संस्कारमिहार्हति इति श्रुतिप्रयुक्तं न धर्ममश्नुते न चास्य धर्मात् प्रतिषेधनं स्मृतापेति । एवं चास्याथ धर्मस्य प्रेतसिद्धत्वादयं श्लोकानुवाद उत्तरार्धः ।।१२६।।

(९) **भारुचिः** । शूद्रस्य लशुनादिभक्षणे पातकं नास्ति ब्रह्मवधादौ तु पातकमस्त्येव, अहिंसा 'सत्यमस्तेय'मित्यादेश्चातुर्वर्ण्यसाधारणत्वेन विहितत्वात् संस्कारं उपनयनादिकं । धर्मे अग्निहोत्रादौ । धर्मात् पाकयज्ञादिधर्मात् ।।१२६।।

नास्याधिकारो धर्मोऽस्ति । ?"इति उत्तरार्थस्त्वितीदमारभ्यते ।' न धर्माप्रतिषेधनम् ।। इति तथा च वक्ष्यति–

'धर्मेप्सवस्तु धर्मज्ञाः' 'यथा यथा हि सद्वृत्ति'मिति च । अथवा विकल्पार्थोऽस्यारम्भः । शूद्रस्य हि कानिचित् कर्माणि अमन्त्रकाण्यनुज्ञायन्ते पाकयज्ञादीनि । तेषामनुष्ठानाद् ब्राह्मणमाश्रित्यास्य शूद्रस्याधिकारो धर्मेऽस्ति नियोगतः । न चैतस्मात् प्रतिषेधनम् । एवं च सत्युक्तप्रतिषेधत्वाविकल्पेनैषां क्रिया स्यात् । (तस्य) चास्य क्रियायामभ्युदयः, अक्रियायां प्रत्यवायाभाव इत्येतत् सिद्धं भवति । प्रकरणसामर्थ्याद् ब्राह्मणाश्रितस्यैतत् इतरस्य वा ।।१२६।।

**धर्मेप्सवस्तु धर्मज्ञाः सतां धर्ममनुष्ठिताः ।।**
**मन्त्रवर्जं न दुष्यन्ति प्रशंसां प्राप्नुवन्ति च ।।१२७।।**

(१) **मेधातिथिः ।** एतदेवाह–धर्ममाप्तुमिच्छन्तोऽभ्युदयकामाः । **सतां** साधूनां **धर्ममनुष्ठिताः** समाश्रिताः । **मन्त्रवर्जं न** दुष्यन्ति । अतस्ते अनेकाहोपवासदेवतार्चनगुरुब्राह्मणनमस्कारादि सतां वृत्तमाचरन्तो न दुष्यन्ति । **प्रशंसां** फलं **च प्राप्नुवन्ति ।**

न पुनरेतन्मन्तव्यं "यानि समन्त्रकाणि ब्राह्मणादीनां कर्माणि दर्शपौर्णमासादीनि तानि मन्त्रवर्जं शूद्रस्य न दुष्यन्तीति" । यतः समन्त्रेषूत्पन्नेषु मन्त्ररहितेनानुष्ठानमशाब्दं स्यात् । **मन्त्रवर्जमित्येतस्य** दर्शितो विषयः । तथा च भगवान् **व्यासः–**

**"न चेह शूद्रः पततीति निश्चयो न चापि संस्कारमिहार्हतीति ।**
**स्मृतिप्रयुक्तं तु न धर्ममश्नुते न चास्य धर्मे प्रतिषेधनं स्मृतम्" ।। इति ।**

एतदपि यथाविहितानुवाद्येव । लशुनसुरापानादेर्न पतति । संस्कारानर्हतोक्तैव । उक्तं चानुपनीतत्वात् श्रुतिविहितधर्माभावे स्मृतिविषये सामान्यविहिता धर्मा यथोक्तप्रकारास्ते नास्य प्रतिषिध्यन्ते । तथा च स्मृत्यंतरं–"पाकयज्ञैः स्वयं यजेत्, अनुज्ञातोऽस्य नमस्कारो मन्त्र इति" (गौतम० १० । ६४-६५) ।

ये पुनराहुः–"आवसथ्याधानपार्वणवैश्वदेवान्नपाकयज्ञादिषु शूद्राणां पाक्षिकोऽधिकारः" तेषामभिप्रायं न विद्मः । आवसथ्याधानं तावद्गृह्यकारैराम्नातं त्रैवर्णिकोद्देशेनैव । मन्वादिभिश्च नैवमाम्नातम् । तथा केवलं "वैवाहिकाग्नौ कुर्वीत गृह्यं कर्मेति" (३।६७) तत्र नैवाम्नातम् । कुतः शूद्रस्याधानम् ? अथ पाकयज्ञविधानादग्न्याधानाक्षेपस्तदपि न, लौकिकाग्नौ वैश्वदेवो भविष्यति । यावद्वचनं वाचनिकं नान्यदाक्षेप्तुमलम् । विवाहाग्नावित्यत्रैव प्रदर्शितम् । पार्वणशब्देन च यद्यामावास्यं श्राद्धमुच्यते तदभ्यनुजानीमः, अष्टकापार्वणश्राद्धवैश्वदेवानां विहितत्वात् । अथ दर्शपौर्णमासौ, तदपाकृतम् ।।१२७।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः ।** तदेवाह **धर्मेप्सव** इति । मंत्रवर्जं न सोमयागादिकर्मकामयज्ञकरणे प्रशंसां प्राप्नुवन्ति धर्मं च लभन्त इत्यपि द्रष्टव्यम् । पञ्चमहायज्ञकरणे न दोष इत्युक्तम् । सतां वृत्तमनुष्ठिताः सतां वृत्तं लक्षीकृत्योद्युक्ताः । प्रशंसां सच्छूद्रताम् ।।१२७।।

(३) **कुल्लूकः**। ये पुनः शूद्राः स्वधर्मवेदिनो धर्मप्राप्तिकामास्त्रैवर्णिकानामाचारमनिषिद्धमाश्रितास्ते। 'नमस्कारेण मन्त्रेण पञ्चयज्ञान्न हापये'दिति **याज्ञवल्क्य**वचनान्नमस्कारमन्त्रेण मन्त्रान्तररहितं पञ्चयज्ञादिधर्मान्कुर्वाणा न प्रत्यवयन्तिं ख्यातिं च लोके लभन्ते ।।१२७।।

(४) **राघवानन्दः**। अत एवाह **धर्मेति**। धर्मेच्छवो धर्मं कर्तुकामाः। धर्मज्ञाः पुराणादिद्वारा धर्मानुष्ठानज्ञाः। तथा च **याज्ञवल्क्यः** 'नमस्कारेण मन्त्रेण पञ्चयज्ञान्न हापयेत्।' सतां धर्मं ब्राह्मणाद्यमनुष्ठितं पञ्चयज्ञादिरूपम्। मन्त्रवर्जं नमोतिरिक्तमन्त्रवर्जम् ।।१२७।।

(५) **नन्दनः**। यद्यप्येवं तथापि धर्मेप्सवो धर्मज्ञाः सतां वृत्तिनिषेकादिसंस्कारं मन्त्रवर्जितमनुष्ठिता अनुष्ठितवन्तः शूद्रा न दुष्यन्ति" ।।१२७।।

(६) **रामचन्द्रः**। धर्मेप्सवः धर्मज्ञाः मन्त्रवर्जं अध्ययनवर्जं न दुष्यन्ति।

धर्मेप्सवः धर्मप्राप्तिकामाः। सतां वृत्तं त्रैवर्णिकानामाचारं आश्रिताः संतः मंत्रवर्जं तंत्रांतरविहितं पंचयज्ञान् कुर्वाणाः न दुष्यंति न प्रत्यवदंति प्रशंसां च प्राप्नुवंतीत्यर्थः ।।१२७।।

(७) **मणिरामः**। अनसूयकः परगुणाऽनिंदकः शूद्रः ।।१२८–१२९।।

(८) **गोविन्दराजः**। तथा च दर्शयति **धर्मेप्सव** इति। ये पुनः शूद्राः स्वधर्मवेदिनो धर्मप्राप्तिकामास्त्रैवर्णिकानां संबन्धिनमनिषिद्धमाचारं आश्रितास्तेऽमन्त्रकमन्नप्राशनपाकयज्ञादि कुर्वाणा न प्रत्यवयन्ति न तूपनयनं 'चतुर्थ एक जातिस्त्रि'त्युक्तत्वात् ख्यातिं च लोके प्राप्नुवन्ति ।।१२७।।

(९) **भारुचिः**। इतरस्य वा तथा च सत्याह **धर्मेप्सव इति**।

अप्रतिषिद्धमासेवनाप्रकरणाब्राह्मणाश्रितशूद्रा उच्यन्ते। न चानेन मन्त्रप्रतिषेधेनाग्निहोत्रादिष्वप्यस्याधिकारोऽनुज्ञायते। मन्त्रवर्जं न दुष्यन्तीत्येतस्माद् येन श्रुत्याग्निहोत्रादिषु शूद्रः पर्यदस्तः, तस्माद्धर्मेप्सवः स्मार्तविषयम्। नियमसंस्कारेषु पाकयज्ञेषु चा (व) साक्ष्याधानपार्वणवैश्वदेवान्नप्राशनादिषु शूद्राणां पाक्षिकोऽधिकार इत्युक्तम्। तथा च स्मृत्यन्तरम् ।।

'पाकयज्ञे स्वयं यज्ञे तस्यैक' इति, एवं च यथा यथा हि सद्वृत्तमातिष्ठत्यनसूयकः। तथा तथेमञ्चामुञ्च लोकं प्राप्नोत्यनिन्दितः। स्मार्तानां कर्मणां शूद्रक्रियापक्षेस्तुरनुष्ठानप्ररोचनार्थाः (?) ।।१२८–१२९।।

**यथा यथा हि सद्वृत्तमातिष्ठत्यनसूयकः ।।**
**तथा तथेमं चामुं च लोकं प्राप्नोत्यनिन्दितः ।। १२८ ।।**

(१) **मेधातिथिः**। उक्तार्थः श्लोकः ।।१२८।।

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। तत्र युक्तिमाह **यथेति**। अनसूयकोऽद्विजद्वेष्टा ।।१२८।।

(३) **कुल्लूकः**। परगुणानिन्दकः शूद्रो यथा यथा द्विजात्याचारमनिषिद्धमनुतिष्ठति तथा तथा जनैरनिन्दित इह लोक उत्कृष्टः स्मृतः स्वर्गादिलोकं च प्राप्नोति ।।१२८।।

(४) **राघवानन्दः**। अनिन्दितो (लोकैरिति शेषः) ॥१२८॥

(५) **नन्दनः**। सद्वृत्तानुष्ठानस्य फलमाह **यथा यथा हि सद्वृत्तमिति** ॥१२८॥

(६) **रामचन्द्रः**। तथा तथा इमं लोकं अमुं परलोकं अनिन्दितं प्राप्नोति ॥१२८॥

(८) **गोविन्दराजः**। **यथेति**। यस्मादनिन्दकः शूद्रो यथावद् द्विजात्याचारमनिषिद्धमनुतिष्ठति तथा तथा अगर्हितः सन्निह लोके कीर्तिं परलोके स्वर्गं प्राप्नोति ॥१२८॥

**शक्तेनापि हि शूद्रेण न कार्यो धनसंचयः ॥**
**शूद्रो हि धनमासाद्य ब्राह्मणानेव बाधते ॥ १२९ ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **शक्तेनापि** कृष्यादिकर्मणा **धनसंचयः शूद्रेण न** कर्तव्यः। तत्र हेतुस्वरूपमर्थवादमाह **शूद्रो धनं** बह्वा**साद्य** स्वीकृत्य **ब्राह्मणानेव बाधते**। "का पुनर्ब्राह्मणानां बाधा ?"। महाधनत्वादत्यर्थं ब्राह्मणान्प्रतिग्राहयेत्। शूद्रप्रतिग्रहश्च तेषां प्रतिषिद्धः। तत्र निमित्तभावमापद्यमानो दुष्येत्। एतच्च न विहितं कुर्वतः कर्मदोषाशङ्का। तस्माद् ब्राह्मणान्न परिचरेदित्येषैव 'बाधा' ॥ १२९॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। शक्तेनार्जनसमर्थेनापि ॥१२९॥

(३) **कुल्लूकः**। धनार्जनसमर्थेनापि शूद्रेण पोष्यवर्गसंवर्धनपञ्चयज्ञाद्युचितादधिकबहुधनसंचयो न कर्तव्यः। यस्माच्छूद्रो धनं प्राप्य शास्त्रानभिज्ञत्वेन धनमदात् शुश्रूषायाश्चाकरणात् ब्राह्मणानेव पीडयतीत्युक्तस्यानुवादः ॥१२९॥

(४) **राघवानन्दः**। शक्तेनापि तेन धनोद्यमो न कार्यः। तत्र हेतुः **शूद्रो हीति**। बाधते धनगर्वितः ॥१२९॥

(६) **रामचन्द्रः**। शक्तेन समर्थेन ॥१२९॥

(८) **गोविन्दराजः**। **शक्तेनेति**। धनार्जनशक्तेनापि हि शूद्रेण न धनसंचयः कर्तव्यः। अपि त्वाश्रितब्राह्मणाय यदि नियमतो धनं देयमित्येवंपरमेतत्। तथा च **गौतमः** 'यं चार्थमाश्रियेत भर्तव्यस्तेन क्षीणोऽपि तेन चोत्तरस्तदर्थोऽस्य निचयः स्या'दिति। अत्रार्थवादः शूद्रोऽर्हति, तस्माच्छूद्रो धनं प्राप्य शास्त्रानभिज्ञत्वेन धनोत्सेका शुश्रूषा ॥१२९॥

(९) **भारुचिः**। महाफलैः शिल्पादिभिः वृत्त्यन्तरैः पर्याप्तधनः शूद्रो विशेषतो दानेन गुणवद्ब्राह्मणेभ्यो वृत्तिः शूद्रप्रतिग्रहोपच्छन्दनेन महतो ब्राह्मणान् स्वधर्मात् प्रच्यावयेत्। अयं तावन्नार्थः—नहि शास्त्रोपदिष्टं कुर्वतः सत्यपि परोपघाते कश्चिद्दोषोऽस्ति। यदि स्यात् नवश्राद्धादिष्वपि ददतो दोषः स्यात्। असावपि परस्परोपघातं करोति। योऽर्थमानाभ्यां गुणवतो ब्राह्मणान् प्रतिपूजयति तस्मान्नायमर्थः। धनोत्सेकाच्छूद्रो ब्राह्मणबाधने वर्तेतेत्ययमपि न शक्योऽभ्युपगन्तुम्। सर्वेषामेव गृह्येत ब्राह्मणादिना तुल्यं। केन कः शूद्रे विशेषः। येन तस्यैवमर्थसञ्चयं निषिध्येत। अयं तर्ह्यन्योऽर्थः। न केवलं नित्यदानं शूद्रस्याभ्यनुज्ञायते। किं तर्हि? अभ्युदयप्रयोजनमप्यनेन दानमनुष्ठेयम्। एवं च न कार्यो धनसञ्चय इत्ययमेवमर्थः प्रतिषेधः'। अथवोक्तम्—'प्रकल्प्यास्य तैर्वृत्तिः सुकुटुम्बाद्यथार्हतः।' इत्येवमादि।

एवं च सति ब्राह्मणमाश्रितस्य शूद्रस्यायमुपदेशः–'शक्तेनापि हि शूद्रेण न कार्यो धनसञ्चयः' इति। तथा स्मृत्यन्तरम्। यश्चार्यमाश्रयेत भर्तव्यं धनक्षीणोऽपि तेन चोत्तरस्तदर्थोऽस्य निचयः स्यादिति।

**एते चतुर्णां वर्णानामापद्धर्माः प्रकीर्तिताः ॥**
**यान्सम्यगनुतिष्ठंतो व्रजन्ति परमां गतिम् ॥ १३० ॥**

(१) **मेधातिथिः**। **सम्यगापद्धर्मा**नुष्ठानात्परमा **गतिः** प्राप्यते। शरीररक्षणाद्धितातिक्रमो न भवतीति, युक्ता शुभफलप्राप्तिः। नापद्गतेनासत्प्रतिग्रहादौ। विचिकित्सितव्यमिति शास्त्रन्यायानुवादः ॥१३०॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। आपद्धर्माः प्रसंगायाताः। सम्यगापत्काल एव ॥१३०॥

(३) **कुल्लूकः**। अमी चतुर्णां वर्णानामापद्यनुष्ठेया धर्मा उक्ताः, यान्सम्यगाचरन्तो विहितानुष्ठानान्निषिद्धानाचरणाच्च निष्पापतया ब्रह्मज्ञानलाभेन परमां गतिं मोक्षलक्षणां लभते ॥१३०॥

(४) **राघवानन्दः**। उपसंहरति **एत इति**। यानापद्धर्मान्। सम्यक् तत्कालानुरूपेण। परमां मोक्षाख्याम्। लब्धविप्रजन्मान इति शेषः ॥१३०॥

(५) **नन्दनः**। प्रकरणार्थं फलोपपादनेनोपसंहरति **एते चतुर्णां वर्णानामिति** ॥१३०॥

(६) **रामचन्द्रः**। चतुर्णां वर्णानां उक्ताः। चातुर्वर्ण्यः धर्मविधिः ॥१३०-३१॥

इति श्रीरामचन्द्रविरचितटीकायां दशमोऽध्यायः ॥१३०॥

(८) **गोविन्दराजः**। **एत** इति। चतुर्णां वर्णानां आपद्यनुष्ठेया धर्माः त एते कथिताः। यान् सम्यगाचरन्तो आत्मसंरक्षणे सत्यात्मज्ञानाद्यबाह्या ब्रह्मप्राप्तिं भजन्ते ॥१३०॥

(९) **भारुचिः**। आत्मकुटुम्बप्राणधारणस्य प्रयोजनातिशयदर्शनाद् धर्मतन्त्रसङ्गे च तदनुष्ठानार्थस्याग्निहोत्रादेर्नित्यस्य कर्मण इयमेव स्थितिरुपपन्ना। 'यान् सम्यगनुतिष्ठन्त' इत्येवमादि। अथवा महाफलानामल्पप्रत्यवायानुषङ्गापेक्षयेदं स्तुतिवचनमुपपन्नमापद्धर्मोपसंहारार्थः श्लोकः ॥१३०॥

**एष धर्मविधिः कृत्स्नश्चातुर्वर्ण्यस्य कीर्तितः ॥**
**अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविधिं शुभम् ॥ १३१ ॥**

**इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥**

(१) **मेधातिथिः**। पाठादेव सिद्धार्थोऽयमिति ॥१३१॥

(२) **सर्वज्ञनारायणः**। चातुर्वर्ण्यस्य तद्भ्रवस्य संकरस्य च। कीर्तितो दशभिरध्यायैः ॥१३१॥

मनुवृत्तौ जातिविवेकापद्धर्माधिकारनामा दशमोऽध्यायः ॥१०॥

(३) **कुल्लूकः**। अयं चतुर्णां वर्णानामाचारः समग्रः कथितः, अत ऊर्ध्वं **प्रायश्चित्तानुष्ठानं** शुभमभिधास्यामि ।।१३१।।

इति श्रीकुल्लूकभट्टविरचितायां मन्वर्थमुक्तावल्यां दशमोऽध्यायः ।।१०।।

(४) **राघवानन्दः**। वृत्तवर्तिष्यमाणयोः संबन्धं वक्तुं वृत्तमनूद्य वर्तिष्यमाणं प्रतिजानीते **एष इति**। शुभं शोधकम् वध्यघातकसंगतिः ।।१३१।।

इति मन्वर्थचन्द्रिकायां दशमोऽध्यायः ।।१०।।

(५) **नन्दनः**। पूर्वोक्तं सर्वमर्थमुपसंहृत्यार्थान्तरं प्रस्तौति **एष धर्मविधिः कृत्स्न इति**। उत्तरे अध्याये प्रायश्चित्तप्राधान्यस्य वक्ष्यमाणत्वात्सत्यप्यर्थान्तरोपन्यासे प्रायश्चित्तंवक्ष्यामीत्युक्तम् ।।१३१।।

इति श्रीनन्दनविरचिते मानवव्याख्याने दशमोऽध्यायः ।।१३१।।

इति श्रीमिश्रगंगारात्मजदीक्षितमणिरामकृतायां सुखबोधिन्यां दशमोऽध्यायः समाप्तः ।।१०।।

(८) **गोविन्दराजः**। **एष** इति। यच्चतुर्णां वर्णानां धर्मानुष्ठानं तदेतदखिलं कथितमधुना ऊर्ध्वं प्रायश्चित्तविधिं वक्ष्यामि ।।१३१।।

इति श्रीभट्टमाधवात्मजगोविन्दराजविरचितायां मन्वाशयानुसारिण्यां प्रतिलोमानुलोमजातकनिरूपणं नाम दशमोऽध्यायः ।। १०।।

(९) **भारुचिः**। एष धर्मविधिः कृत्स्नश्चातुर्वर्ण्यस्य कीर्तितः। अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविधिं शुभम् ।। पूर्वार्धश्लोकश्चात्र सर्वधर्मोपसंहारार्थः। उत्तरः प्रायश्चित्तोपन्याससिद्धय इति ।।१३१।।

इति भारुचिकृते विवरणे दशमोऽध्यायः ।।

**मनुस्मृतौ दशमोऽध्यायः संपूर्णः ।।**

---